इकाई 1 मध्य और पश्चिम एशिया में राजनैतिक संघटन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 तूरान और ईरान की भौगोलिक सीमा
1.3 उज़बेगों और सफ़वियों का पूर्ववर्ती इतिहास
1.4 मध्य एशिया में राजनैतिक संघटन के समय का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
1.5 ट्रांसऑक्सियाना में उज़बेग सत्ता की स्थापना
1.5.1 उज़बेगों, फारसियों और तैमूरों के बीच त्रिपक्षीय संघर्ष
1.5.2 उज़बेग सत्ता का पुनः उदय
1.5.3 उज़बेग साम्राज्य
1.6 सफ़वियों का उद्भव : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
1.6.1 अक क्युयूनलू और कारा क्युयूनलू
1.6.2 तुर्कमान और सफ़वी
1.6.3 शियावाद और सफ़वी
1.6.4 सफ़वी और उज़बेग-ऑटोमन संघर्ष
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भारतीय सीमा पर मुगलों की उपस्थिति की पृष्ठभूमि से अवगत हो सकेंगे तथा उनके मूल स्थान और पूर्वजों के बारे में बता सकेंगे,
- मुगल साम्राज्य के दो शक्तिशाली पड़ोसी राज्यों की भोगौलिक सीमा को पहचान सकेंगे,
- उज़बेग और सफ़वी साम्राज्यों की स्थापना के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को रेखांकित कर सकेंगे,
- आरंभिक काल में मुगलों की आंतरिक और बाह्य नीतियों और निर्णयों को प्रभावित और आकार देने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1.1 प्रस्तावना

पन्द्रहवीं शताब्दी के आते-आते भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर कुछ महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय राजनीतिक उथल-पुथल हुई तथा साम्राज्यों में बदलाव आया। इस बदली हुई स्थिति में मुगलों ने भारत की ओर रुख किया और यहां अपना राज्य स्थापित किया। इसी माहौल में तूरान (मध्य एशिया में ट्रान्सऑक्सियाना और ईरान (फारस) दो नये राज्य कायम हुए। तूरान पर उज़बेगों का और ईरान पर सफ़वी बादशाहों का शासन कायम हुआ।

सोलहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में मध्य और पश्चिम एशिया उभरे राजनीतिक ढ़ाँचे का अध्ययन जरूरी है क्योंकि इन क्षेत्रों और भारत के बीच परंपरागत और नजदीकी सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध थे। शैइबानी खाँ के नेतृत्व में दश्त-ए-किपचक के विस्थापित उज़बेग राजकुमारों ने तैमूर द्वारा स्थापित राज्य को नष्ट कर दिया और तैमूर शासकों से मध्य एशिया छीन लिया। वस्तुतः इसी कारण से बाबर भारत की ओर अग्रसर हुआ।

मुगलों का मूल स्थान मध्य एशिया था, जहां उन्होंने लगभग तेरह दशकों (1370-1505) तक शासन किया। इस दौरान उनके पास एक जाँची-परखी हुई प्रशासनिक व्यवस्था तैयार हो गयी थी, वसीयत के रूप में उन्हें तुर्की मुगल शब्दावली, संस्थान (राजनीतिक और आर्थिक) और रस्में (देखिए खंड 4) प्राप्त थीं, जिनका स्पष्ट प्रभाव भारत में मुगल शासन के दौरान देखा जा सकता है। मुगलकालीन भारत के अध्ययन के लिए आसपास के क्षेत्रों के बारे में थोड़ा-बहुत जानना जरूरी है। मुगलकालीन भारत को इन क्षेत्रों में हुई गतिविधियों से जोड़कर ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन से हमें भारत में मुगल शासन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और प्रकृति को समझने में मदद मिलेगी। मुगलों के साथ-साथ मध्य एशिया और फारस का एक साथ उत्थान और पतन हुआ। सोलहवीं शताब्दी के दौरान प्रत्येक स्तर पर इन राज्यों के बीच राजनीतिक और सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुए। विचारों के आदान-प्रदान, लोगों के आने जाने और वस्तु विनिमय के चलते युगों से चली आ रही समान सांस्कृतिक विरासत समृद्ध हुई।

यहां इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि पश्चिम और मध्य एशिया की परिभाषा विवादास्पद है, क्योंकि इसके सीमा-क्षेत्र का निर्धारण भौगोलिक या क्षेत्रीय प्रसार की अपेक्षा व्याख्याओं के अनुरूप बदलता रहा है। जिस क्षेत्र का अध्ययन हम कर रहे हैं उसे सर्वसम्मत नाम "अंदरूनी एशिया" कहना ही अधिक संगत होगा। इस संदर्भ में पश्चिम और मध्य एशिया का प्रयोग दो "राज्यों" क्रमशः तूरान और ईरान के लिए किया जाएगा। सोलहवीं शताब्दी के दौरान एक स्वतंत्र राजनीतिक और सांस्कृतिक अस्तित्व के रूप में उभरे ये राज्य ज्यादातर किसी केन्द्रीकृत शक्ति (जैसे उमय्यद, अब्बासिद, मंगोल और तैमूर) के अधीन स्थापित बृहद् साम्राज्य के अंग हुआ करते थे। अतः दोनों राज्यों की प्रशासनिक और संगठनात्मक व्यवस्था में काफी समानताएं थीं। उनकी जमीन एक रही, युगों से चली आ रही समानताएं बनी रहीं, परम्पराएं और विरासत समान रहीं, पर युग-परिवर्तन से उत्पन्न धार्मिक-राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन ने उन्हें एक नया और अलग स्वरूप प्रदान किया। हालांकि 16वीं शताब्दी के दौरान इन दोनों राज्यों का आधार जनजातीय ही था, उनके सांस्कृतिक और प्रजातीय अलगाव बने रहे तथा (साप्रदायिक विभेद के कारण यह काफी गहरा हो गया) उनके पतन होने तक यही स्थिति बनी रही। इस इकाई में तूरान और ईरान से संबद्ध विभिन्न मुद्दों की जानकारी दी जाएगी।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

1.2 तूरान और ईरान की भौगोलिक सीमा

अंदरूनी एशिया क्षेत्र जिसे तूरान भी कहते हैं, दो नदियों के बीच बसा हुआ था। अरब आक्रमणकारियों ने इस क्षेत्र को मवारून्नहर (अर्थात् दो नदियों—सीर एवं अमू—के बीच) कहा था। यह क्षेत्र उत्तर में अरल सागर, सीर नदी और तुर्कीस्तान से घिरा था; दक्षिण में ईरान, अमू नदी और अफगानिस्तान था; पूरब में तीनशान और हिंदुकुश पर्वतों से लेकर कराकोरम रेगिस्तान था; पश्चिम में कैस्पियन सागर और साथ में खाई, पहाड़, घाटी, रेगिस्तान तथा शुष्क और अर्द्धशुष्क भूमि। इस प्रकार इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की जीवन शैलियां देखने को मिलती थीं। यहां बंजारे और पशुपालक भी थे तथा स्थाई रूप से बसे हुए लोग भी। इस क्षेत्र में जमीन के अंदर जल प्रवाह था और जगह-जगह घिरे हुए समुद्र तटीय क्षेत्र थे, जो समुद्र से दूर थे और अतलांतिक और प्रशांत सागर से अलग-थलग थे। कृषि के अलावा पशुपालन एक लोकप्रिय व्यवसाय था। यह स्थान घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था। यहां से काफी मात्रा में भारत को घोड़ों का निर्यात किया जाता था। समरकंदी कागज़ और फल (ताजे भी और सूखे भी) निर्यात किए जाते थे। एलबुर्ज पर्वतों के पूर्वी घाट ईरानी पठार को तुर्कीस्तान (ईरान) से अलग करते थे।

जहां तक भौगोलिक विस्तार का सवाल है, ईरान और फारस में एशिया माइनर और कॉकेसस की पहाड़ी शृंखलाओं से लेकर पंजाब की समतल धरती भी शामिल थी, जिसे ईरानी पठार के नाम से जाना जाता था। मध्य पठार के रेतीले लवणीय रेगिस्तान को पहाड़ी शृंखला ने घेर रखा था। अतः यह एक प्रकार का बंद समुद्रतट बन गया था। ईरान के चार प्रमुख हिस्से थे: खुजिस्तान और लघु बाहरी समतल भूमि को मिलाकर बनी ज़ागरोस व्यवस्था; ईरान की उत्तरी उच्च भूमि (जैसे अलबुर्ज और तालिश व्यवस्था) और कैस्पियन समतल भूमि; पूर्वी और दक्षिण पूर्वी उच्च भूमि रिम और अंदर का इलाका। जहां तक आर्थिक जीवन का प्रश्न है सभी प्रकार की जीवनशैलियां एक साथ मौजूद थीं। ऊपरी भाग में पशुपालन, निचले इलाकों में कृषि

व्यवस्था तथा पश्चिम में कुर्दिश गडेरिये बंजारों का जीवन बिताते थे। ज़ागरोस के उत्तरी-पश्चिमी भाग प्राचीन पूर्वी-पश्चिमी व्यापार मार्गों से जुड़े हुए थे और यहां से ईरानी ऊन, चमड़े, कालीन और रेशम का निर्यात होता था।

1.3 उज़बेगों और सफ़वियों का पूर्ववर्ती इतिहास

तूरान या ट्रान्सऑक्सियाना के उज़बेग चंगेज के बड़े पुत्र जूज़ी के वशंज थे। उन्होंने जूज़ी के अधीनस्थ दश्त-ए-किपचक के उज़बेग खाँ (1212-40) पर अपना नाम आधारित किया था। उज़बेग चग़ताई तुर्की बोलते थे और तुर्क-मंगोल परंपरा का निर्वाह करते थे। वे कट्टर सुन्नी थे और हनफी कानून मानते थे। नैमान, कुशजी, दुर्मान, कुनघरात और अन्य तुर्क-मंगोल जनजातियां उज़बेग राज्य को अपना समर्थन देती थीं। बार-बार आक्रमण करके इनके विरोधी कबीलों (मंगोल, कज़ाक़ और किरधिज़) ने इनकी शक्ति काफी कम कर दी।

सफ़वी

सफ़वी मूलतः ईरानी (कुर्दिस्तान से) थे। वे शिया और फारसी इस्लामी परंपरा का निर्वाह करते थे। वे शासन करने के लिए लाये गये थे। वे अज़री तुर्की और फारसी बोलते थे। सूफी मूल के होने के कारण उन्होंने बाद में एक प्रभावी वंशावली तैयार की। सफ़वी शक्ति का मूल आधार तुर्कमान जनजातियों का संगठन था पर प्रशासनिक नौकरशाही में ईरानी तत्व भी बराबरी के स्तर पर मजबूत था। बाद में जॉरजियन और सिरकासियन नामक दो समूह और जुड़े। ये चारों तत्व (खासकर तुर्कमान समूह) बाहरी राजनीतिक संबंधों को मजबूती देने के स्रोत थे, क्योंकि वे हमेशा एक दूसरे के खिलाफ षड्यंत्र करते रहते थे।

बोध प्रश्न 1

1) मुगल शासकों के संदर्भ में मध्य एशिया के इतिहास के अध्ययन के महत्व का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

2) उज़बेगों और सफ़वियों के पूर्ववर्ती इतिहास का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

3) तूरान और ईरान का भौगोलिक वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

....

....

....

....

....

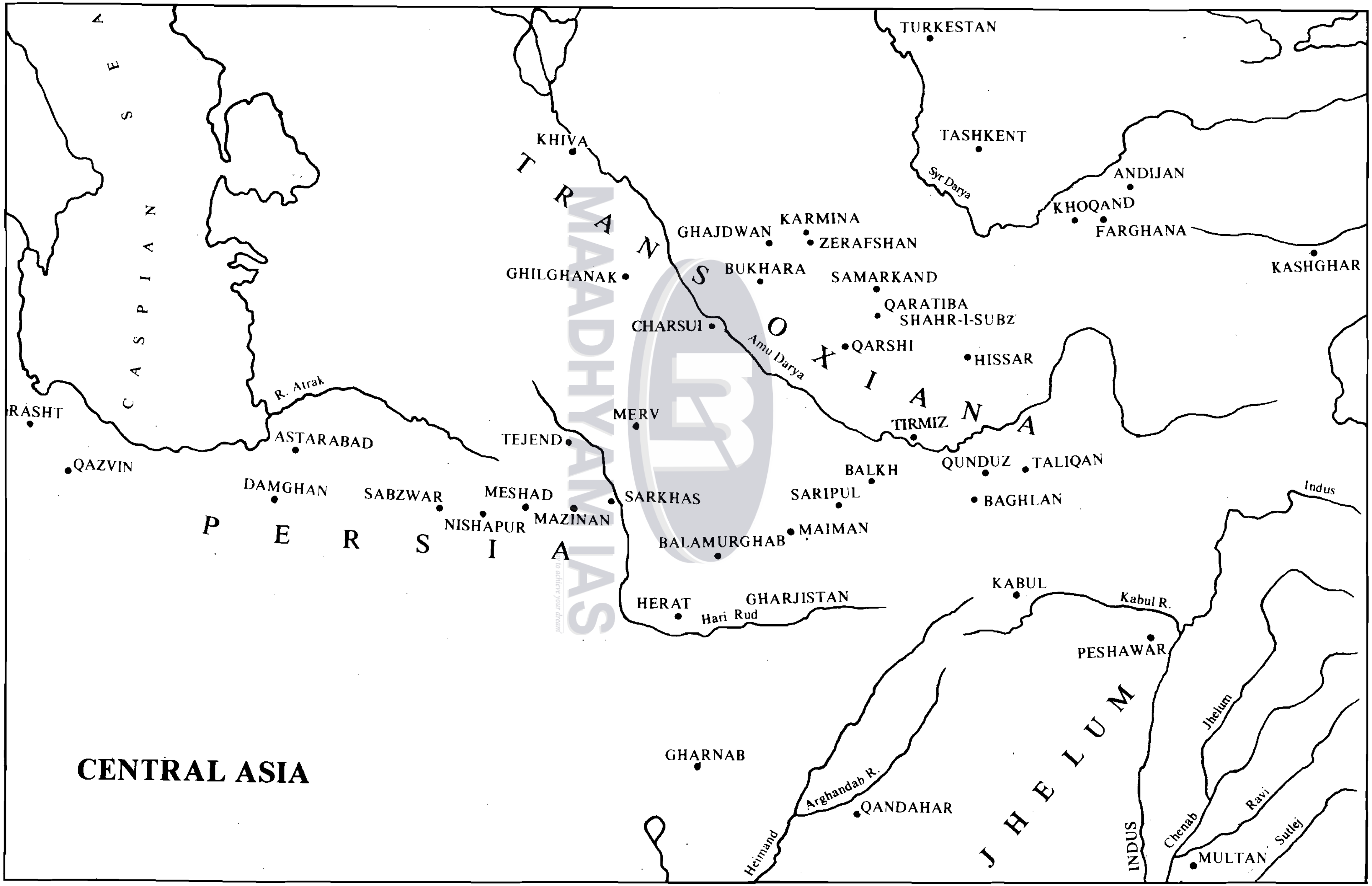

CENTRAL ASIA

MAADHYAM IAS

1.4 मध्य एशिया में राजनैतिक संघटन के समय का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

तैमूरकालीन ट्रांसऑक्सियाना में गृह युद्ध आम बात थी। इस दौरान ट्रांसऑक्सियाना के तैमूरी शासक (जैसे अबू सईद, मौहम्मद जूगी, सुल्तान हुसैन बैक़रा और मनूचीहर मिर्ज़ा) दश्त ए किपचक के उज़बेग शासक अबुलखैर से अपने प्रतिद्वन्द्वियों के खिलाफ सहायता मांगते रहते थे। उन्होंने तैमूरी राजनीति में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया और अबू सईद (1451), मौहम्मद जूगी (1455), और अन्य शासकों को गद्दी दिलाने में मदद की। दश्त में अबुल खैर (1428-68) के साम्राज्य के पतन के बाद उसके पोते शैबानी ने मध्य एशिया में तैमूर शासकों की शरण ली। इस समय ट्रांसऑक्सियाना में पाँच राज्य थे। सुल्तान अबू सईद (1451-69) के तीन पुत्र सुल्तान महमूद मिर्ज़ा, सुल्तान अहमद मिर्ज़ा (1469-94) और उमर शेख मिर्ज़ा का तीन राज्यों पर कब्जा था, जिसमें समरकंद, बुखारा, तिरमिज़, हिसार, कुंदूज, बदखशान और फरग़ना और इसके आसपास के इलाके शामिल थे। चौथे तैमूरी राज्य बल्ख और खुरासान पर सुल्तान हुसैन बैक़रा का आधिपत्य था। इसके अलावा ताशकंद और मुगलिस्तान का मंगोल इलाका था जिस पर मंगोल शासक यूनुस खाँ (1462-87) और उसके दो पुत्रों महमूद खाँ और अहमद खाँ का शासन था। यूनुस खाँ की तीन बेटियों की शादी ऊपर उल्लिखित अबू सईद के बेटों के साथ हुई थी। इन पाँचों राज्यों के बीच कट्टर दुश्मनी थी और ये एक दूसरे से ईर्ष्या-द्वेष का भाव रखते थे। इस कारण इनमें अक्सर लड़ाई हुआ करती थी। ऐसी ही एक लड़ाई, जिसे सीर के युद्ध के नाम से जाना जाता है सुल्तान अहमद और सुल्तान महमूद के बीच लड़ी गई थी। इस युद्ध में मंगोल युद्ध कला का सामना करने के लिए सुल्तान अहमद ने शैबानी खाँ की सहायता ली। इसमें शैबानी खाँ अपने दल-बल के साथ शामिल हुआ। हालांकि इस युद्ध में शैबानी खाँ सुल्तान अहमद मिर्ज़ा की सहायता के लिए आया था, पर वह सुल्तान महमूद से पहले ही गुप्त संधि कर चुका था। इस कारण महमूद खाँ की अप्रत्याशित विजय हो गयी। इस सहायता के लिए उपहारस्वरूप शैबानी खाँ ओतरार का राज्यपाल बनाया गया। ओतरार क्वाराजमिया का एक शहर था। इससे शैबानी खाँ को ट्रांसऑक्सियाना में एक आधार मिल गया, जिसकी उसे काफी दिनों से प्रतीक्षा थी। इसके बाद शैबानी खाँ ने विभिन्न क्षेत्रों (खानेत) में फैली अव्यवस्था का फायदा उठाया और अपनी राजनीतिक कुशाग्रता और छल-बल से वहां पर कब्जा जमा लिया।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

1.5 ट्रांसऑक्सियाना में उज़बेग सत्ता की स्थापना

उमर शेख और सुल्तान अहमद मिर्ज़ा की मौत के बाद सुल्तान महमूद मिर्ज़ा की भी हत्या कर दी गयी। समरकन्द और हिसार की गद्दी के लिए उसके दोनों पुत्र सुल्तान अली और बैसुन्धर मिर्ज़ा एक दूसरे के दुश्मन हो गये। तैमूरी साम्राज्य में फैली अव्यवस्था के दौरान तरखान कुलीन वर्ग शक्तिशाली हो गया। उन्होंने न केवल पूरी राजस्व व्यवस्था पर अपना अधिकार जमा लिया वरन् 15 अवसरवादी संधियां की और एक शासक को दूसरे के खिलाफ लड़वाया। इस स्थिति का लाभ उठाकर शैबानी खाँ ने 1499 में तैमूरी सरदार बक़र तरख़ान से बुखारा छीन लिया और बाद में समरकन्द पर भी घेरा डाल दिया। चूंकि राजमाता जुहरा बेगी उज़बेग महिला थी अतः उसने समरकन्द समर्पण की एक शर्त रखी कि उसके बेटे सुल्तान अली को मनपसन्द प्रांत का राज्यपाल बनाया जाना चाहिए। इस प्रकार बिना युद्ध लड़े 1500 ई० में शैबानी खाँ का समरकन्द पर कब्ज़ा हो गया। जल्द ही सुल्तान अली की मौत हो गयी। उज़बेग बहुत जल्द ही निकाल फेंके गये। ख्वाजा अब्दुल मुकर्रम ने समरकन्दियों का नेतृत्व किया और बाबर को आमंत्रित किया। सरिपुल के युद्ध में (1501) बाबर की हार हुई। किसी प्रकार की सहायता के अभाव में बाबर ने समरकन्द छोड़ दिया और अपने चाचा महमूद खाँ के पास चला गया। 1503 के आरंभ में शैबानी खाँ ने बाबर, उसके मामू महमूद और अहमद खाँ के संयुक्त मोर्चे को जमकर हराया। बाबर के दोनों मामूओं को कैद भी कर लिया। बाबर के कुलीन तंबाल ने शैबानी खाँ को फरग़ना पर अधिकार जमाने के लिए आमंत्रित किया। शैबानी खाँ ने 1504 ई० में फरग़ना और कुंदूज पर अधिकार जमा लिया और बल्ख, मेमना और फरयाब को 1505 ई० में कुचल दिया। हालांकि पहले के रिश्तों का ख्याल कर शैबानी खाँ ने मंगोल खानों महमूद और अहमद (जिसकी कुछ समय पश्चात् ही मृत्यु हो गयी) को छोड़ दिया, पर अंततः महमूद खाँ और उसके पाँच बच्चों को मौत के घाट उतार दिया (1508) ताकि उसके साम्राज्य के लिए कोई खतरा न उत्पन्न हो सके।

सुल्तान हुसैन बैक़रा के नेतृत्व में तैमूर राजकुमार बाबर, बदिउज़्ज़माँ और मुज़्फ़्फ़र हुसैन ने एक साथ मिलकर उज़बेगों का सामना करने की योजना बनाई। इस संयुक्त योजना के कार्यान्वियन के पहले ही 1506 ई० में सुल्तान हुसैन का देहांत हो गया। हेरात में उत्तराधिकार युद्ध शुरू हुआ। बदिउज़्ज़माँ और मुज़फ़्फ़र हुसैन के द्वैध शासन के बावजूद अव्यवस्था बनी रही। अतः तैमूर राज्य पर अधिकार स्थापित होने में देर नहीं थी। इसके बाद जल्द ही 1509 ई० में शैबानी खाँ ने मोगलिस्तान के कसकों के खिलाफ अभियान शुरू किया। अब पूरा का पूरा ट्रांसऑकिसयाना शैबानी खाँ के कदमों पर पड़ा था। शैबानी खाँ द्वारा स्थापित साम्राज्य शैबानिद के नाम से जाना गया। तैमूर शासकों से उज़बेगों को सत्ता हस्तान्तरण के तात्कालिक कारण निम्नलिखित थेः

- बाद के तैमूर शासकों की व्यक्तिगत अक्षमता
- उनकी आपसी दुश्मनी
- उत्तराधिकार के स्पष्ट नियम का अभाव
- मज़बूत प्रशासन का अभाव

1.5.1 उज़बेगों, फारसियों और तैमूरों के बीच त्रिपक्षीय संघर्ष

खुरासान पर अधिकार स्थापित होने के बाद शैबानी साम्राज्य और सफ़वियों की क्षेत्रीय सीमा-रेखा पास आ गयी। शैबानी खाँ महत्वाकांक्षी था, अतः उसने शाह इस्माइल को अपना मातहत बनाने का प्रयास किया, परिणामतः 1510 ई० में युद्ध हुआ, जिसमें शैबानी खाँ की हार हुई और वह मारा गया। शाह इस्माइल ने न केवल खुरासान पर कब्जा कर लिया बल्कि बाद में उज़बेगों से ट्रांसऑक्सियाना छीनने में बाबर की मदद भी की। समरकन्दियों ने बाबर का ज़ोरदार स्वागत किया, पर विधर्मी शिया शाह से उसके संबंध को स्वीकार नहीं किया। धीरे-धीरे प्रतिशोध की भावना फैली, जिसे बाबर के लालची अनुयायियों ने और भड़का दिया और इससे मध्य एशिया में उज़बेगों की स्थिति मज़बूत हुई।

1.5.2 उज़बेग सत्ता का पुनः उदय

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

मध्य एशिया से निष्कासन (1510-11) के बाद उज़बेग तुर्कीस्तान में जमा हुए, पर उनमें बाबर और शाह इस्मांइल की संयुक्त सेना का सामना करने की शक्ति नहीं थी। उज़बेग राजकुमारों में केवल उबेदुल्लाह ही कुछ महत्वाकांक्षी था। वह शैबानी खाँ का भतीजा था। हालांकि उसके पास स्रोत सीमित थे, पर उसने बाबर को हराकर ट्रांसऑक्सियाना पर कब्जा कर लिया। इसके बाद 1512-13 में धीरे-धीरे उज़बेगों ने बुखारा, समरकन्द और अन्य क्षेत्रों पर अधिकार जमा लिया। ऑटोमन सुल्तान सलीम (1512-20) ने 1514 ई० में शाह इस्माइल के खिलाफ युद्ध करने के लिए उबेदुल्लाह को आमंत्रित किया। हालांकि उबेदुल्लाह ने सलीम की सहायता नहीं की, पर सलीम ने अपनी सामरिक कुशलता के बल पर शाह इस्माइल को बुरी तरह हराया। 1526 की पानीपत की लड़ाई में बाबर ने इसी युद्ध नीति का अनुसरण किया। उबेदुल्लाह और अब्दुल्ला खाँ शैबानिद साम्राज्य के प्रमुख बादशाह थे। अब्दुल्ला खाँ अकबर का समकालीन था। उबेदुल्लाह और अब्दुल्ला खाँ (इनका शासन काल क्रमशः 1513-40 और 1565-98 के बीच रहा) ने ईरान के खिलाफ अनेक लड़ाईयां लड़ीं (देखिए इकाई 7)।

अस्तरखानिदः अब्दुल्ला खाँ के देहांत (1598) और छह महीने बाद उसके एकमात्र पुत्र और उत्तराधिकारी अब्दुल मोमिन की हत्या के बाद से इस राजवंश को अस्तरखानिद के नाम से जाना जाने लगा। रूसी आक्रमण के समय तक उज़बेग साम्राज्य कायम रहा। उपनिवेशवाद के संकट के समय अन्य एशियाई राज्यों के समान यह साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गया।

1.5.3 उज़बेग साम्राज्य

उज़बेग ट्रांसऑक्सियाना की राजस्व वसूली के मुख्य आधार युद्ध लूट, नगर कर और व्यापारिक स्रोत थे। कृत्रिम सिंचाई की सहायता से थोड़ी बहुत खेती की जाती थी। पर यह खेतिहर क्षेत्र इतना कम था कि ज्यादा कर (उपज का आधा) लगाने के बावजूद नगण्य आमदनी होती थी। रेशम मार्ग के रास्ते में होने के कारण मध्य युग में ट्रांसऑक्सियाना हमेशा फलता-फूलता रहा। कुछ मंगोल खानों के समय व्यापार मार्ग के

परिवर्तन और 1498 में एशिया से यूरोप तक के समुद्री मार्ग की खोज से व्यापार में गिरावट आयी। ऐतिहासिक लेख और व्यापारियों के दस्तावेज इसका प्रमाण हैं। तुर्क-मुगल परंपरा के लगातार मजबूत होते चले जाने से उज़्बेगों के अधीन तैमूरियों के प्रशासनिक ढाँचे में भी मामूली परिवर्तन आया। सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में धर्मांधता, कट्टरपंथ और सांप्रदायवाद को बढ़ावा मिला। इसी के साथ-साथ राजनैतिक क्षेत्र में नक्शबंदी संतों के प्रभुत्व को बढ़ावा मिलने से उज़्बेगों के अधीन एक नया आयाम सामने आया।

बोध प्रश्न 2

1) उज़्बेगों द्वारा **ट्रांसऑक्सियाना** पर जमाए गए आधिपत्य के प्रमुख चरणों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) तैमूरों के पतन के कारणों पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

3) उज़्बेगों, ईरानियों और तैमूरों के त्रिपक्षीय संबंध पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1.6 सफ़वियों का उद्भव : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

सफ़वी साम्राज्य का उदय उसी भौगोलिक क्षेत्र में हुआ जहां कभी इलखानिद राज्य हुआ करता था। हलाकू साम्राज्य छोटे रूप में पुनः उभरा (जलेरिद साम्राज्य), यह मेसोपोटेमिया, अज़रबाइजान और बाद में शीर्वन में भी फैल गया। इलखानिद शासन के अन्य क्षेत्रों पर दो तुर्कमान संघों अक़ क्युयूनलू (सफेद भेड़) और कारा क्युयूनलू (काली भेड़) का आधिपत्य था। अक़ क्युयूनलू का मुख्यालय अमीद था और उनका अधिकार क्षेत्र दीयार बक्र तक फैला हुआ था। कारा क्युयूनलू का मुख्यालय अर्जिश (विन झील के पूर्वी किनारे पर) में स्थित था। उनका राज्य उत्तर में एर्ज़े रूम और दक्षिण में मोसूल तक फैला हुआ था। इन दोनों राज्यों में विभिन्न नस्लों के लोग रहते थे, जैसे अरब, आर्मेनिया मूल के लोग, कुर्द और अन्य।

1.6.1 अक़ क्युयूनलू और कारा क्युयूनलू

उद्यमशील जहानशाह के नेतृत्व में कारा क्युयूनलू राजवंश वेन से लेकर ईरान और खुरासान के रेगिस्तान

तक और कैस्पियन सागर से फारस की खाड़ी तक फैला हुआ था। उन्होंने तैमूरों से अपने को स्वतंत्र कर लिया था। जहानशाह शियाओं के जनक के रूप में प्रसिद्ध था जबकि अक़ क्युयूनलू लोग सुन्नी थे। उज़ून हसन (1453-78) अक़ क्युयूनलू राजवंश का सबसे प्रसिद्ध बादशाह था, जिसने जहानशाह को हराकर लगभग समस्त ईरान पर अपना अधिकार जमा लिया था। इस प्रकार उसके साम्राज्य की सीमा तैमूरों की सीमा के पास आ गयी। ऑटोमन शासक मौहम्मद द्वितीय उसे बलवान शासक मानता था, क्योंकि उसका अनातोलिया, मेसोपोटेमिया, अज़रबाइजान और फारस के संसाधनों पर अधिकार था। इसके बावजूद 1473 में अपने उत्कृष्ट तोपखाने के बल पर आटोमन शासक ने उज़ून हसन को हरा दिया। उज़ून हसन की मौत (1478) के समय उसका तुर्कमान साम्राज्य फरात के ऊँचे इलाकों से लेकर बृहद् लवणीय रेगिस्तान तक और दक्षिण फारस में किरमान प्रांत और ट्रांसऑक्सियाना से मेसोपोटेमिया और फारस की खाड़ी तक फैला हुआ था।

उज़ून हसन खाँ की बहन ख़दिजा बेगम की शादी एक उद्यमी और प्रभावशाली शेख जुनैद (1447-60) के साथ हुई। वह सर्वाधिक लोकप्रिय सूफी संप्रदाय सफ़विया का नेता था और अरदबिल में उसका मुख्यालय था। शेख जुनैद शेख ज़ाहिद (1218-1301) के दामाद और शिष्य शेख सफीउद्दीन इशाक (1222-1334) का उत्तराधिकारी था। शफीउद्दीन इशाक (जिसके नाम पर सफ़वी वंश का नामकरण हुआ) ने न केवल शेख ज़ाहिद की सूफी परंपरा को ग्रहण किया बल्कि 1301 ई० में अरदबिल में खुद अपना सफ़विया संप्रदाय स्थापित किया। उनकी लोकप्रियता के कारण शेख सफीउद्दीन और उसके उत्तराधिकारी हमेशा कारा क्युयूनलू सुल्तानों की ईर्ष्या के पात्र बने रहे। शेख जुनैद सफ़वी संप्रदाय का पहला आध्यात्मिक दिग्दर्शक था। कारा क्युयूनलू शासक से टक्कर लेने के लिए उसने 10,000 सैनिकों का सैन्यबल इकठ्ठा किया। उसने संप्रदाय में लड़ाकूपन का समावेश किया और सूफी के स्थान पर ग़ाज़ी (आस्था के योद्धा) को प्रतिस्थापित किया। 1455 में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र और उत्तराधिकारी हैदर ने अपने मामू अमीर हसन बेग की लड़की से शादी की, जो जहानशाह को मारकर अजरबाइजान और दो ईराकों का बादशाह बन बैठा था। हैदर के तीन लड़के हुए, सुल्तान अली, इब्राहिम और इस्माइल। सबसे छोटा पुत्र इस्माइल (जन्म 1487) सफ़वी साम्राज्य का संस्थापक बना। सुल्तान हैदर ने खून के रंग से बारह पंखों वाली (बारह इमामों के प्रसंग में) एक टोपी बनवायी और अपने सभी अनुयायियों को इसी तरह की टोपी बनवाने का हुक्म दिया। इस कारण से उन्हें किज़िलबश (लाल सिर) कहा जाने लगा।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

चर्क और दाघिस्तान के कबीलों पर हैदर ने चढ़ाई की। रास्ते में ही 1488 में, याकूब मिर्ज़ा के दामाद शिखत शासक फारूख़ यासर से हुए युद्ध में वह मारा गया। हालांकि अपनी बहन हलीमा बेगी आग़ा का ख्याल करते हुए उसने हैदर के तीनों भाइयों की जिंदगी बख्श दी पर उन्हें इस्तखार के किले में कैद कर दिया। जब याकूब मिर्ज़ा के बेटों बैसुनघर और रूस्तम मिर्ज़ा में लड़ाई छिड़ गयी तो रूस्तम मिर्ज़ा ने सुल्तान अली की मदद मांगी। जैसे ही रूस्तम मिर्ज़ा को सफलता मिली, उसने ईर्ष्यावश सुल्तान अली को मौत के घाट उतार दिया। सुल्तान अली को खतरे का आभास हो गया था अतः उसने इस्माइल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था (1494)। जुलाई 1497 में रूस्तम मिर्ज़ा की मृत्यु तक इस्लाइम को कई प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ा। रूस्तम मिर्ज़ा की मृत्यु के बाद अरदबिल में गृह युद्ध छिड़ गया। इस्माइल ने इस मौके का फायदा उठाया और लोगों को अपने बिखरे साथियों को एकत्रित करने के लिए दौड़ाया। कराच इलियास से सैनिक सहायता प्राप्त कर और तुर्कमान कबीले के अपने 7000 साथियों की मदद से उसने जॉरजिया का दमन किया और 1500 में पर्याप्त युद्ध-लूट का माल प्राप्त किया। पन्द्रह साल की उम्र में गुलिस्तां के किले में उसका मुकाबला शिरवन के फारूख यासार के साथ हुआ। उसने उसे मारकर बाकू पर आक्रमण किया। 1501 ई० में अक़ क्युयूनलू पर इस्माइल ने विजय प्राप्त की, तुर्कमान की राजधानी तबरीज में प्रवेश किया और शाह की पदवी के साथ गद्दी पर बैठा।

1.6.2 तुर्कमान और सफ़वी

सफ़वियों (नया राजवंश, जो ईरान में 1736 तक कायम रहा) की शक्ति के आधार शामलू, रूमलू, जुल्कदार, अफ्शार, कचर, उस्तजलू और वारसक़ आदि तुर्कमान कबीले थे। अरदबिल संप्रदाय के तुर्कमान अनुयायी सफ़वियों के सहयोग के आधार थे क्योंकि सफ़वी शुद्ध तुर्कमान नहीं थे। धार्मिक एकबद्धता तथा सामाजिक और राजनीतिक कारणों से तुर्कमान लोग ईरानी शाह की ओर आकृष्ट हुए थे। अपने प्रजातीय और धार्मिक विभेदों के कारण एशिया माइनर या मध्य एशिया के तुंर्कमान अपने को ऑटोमन या उज़्बेग

साम्राज्य से नहीं जोड़ पाये थे। दूसरी तरफ ऑटोमन या उज़बेग शासन में उनके लिए कुछ खास आकर्षण भी नहीं था। ईरानी साम्राज्य में तुर्कमानों को अभूतपूर्व महत्व प्राप्त था। आरंभ में सभी नागरिक, सैन्य और प्रशासनिक पदों पर उन्हीं की नियुक्ति हुई थी। सफ़वियों ने शासन और प्रशासन के क्षेत्र में तबरीज़ के शासकों का अनुकरण किया। शाह इस्माइल को तुर्कमान कबीलों की पूरी निष्ठा प्राप्त थी और इससे उसे काफी बल मिला था। शाह इस्माइल ने न केवल ईश्वर की परिकल्पना की परंपरा (अपने को धार्मिक और सांसारिक सत्ता का प्रतीक बताकर) का सहारा लिया बल्कि अपने दादा उज़ुन हसन के संबंध का सहारा लेकर उसने अपने शासन को वैधता प्रदान की। अक़ क्युयूनलू के साथ शाह इस्माइल के संबंध का भी महत्वपूर्ण योगदान था। निस्संदेह कारा क्युयूनलू और अक़ क्युयूनलू ने फारस की पुरानी राजनीतिक और सांस्कृतिक परंपरा का निर्वाह करते हुए नये राजवंश की स्थापना के लिए पहले से ही कुछ माहौल बनाया था।

1.6.3 शियावाद और सफ़वी

नये राजवंश ने कुछ बदला हुआ सैन्य और राजनैतिक ढांचा खड़ा किया, शिया धर्म को राज्य का धर्म बनाया और फारसी इस्लाम का ईरानीकरण किया अर्थात् ''फारसी लोगों'' का नया रूप सामने आया। सफ़वी राज्य का जन्म धर्म और राजनीति की कोख से हुआ। अतः धर्म और राजनीति का आपस में ताल-मेल स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यह सुन्नी ऑटोमन और उज़बेग राज्यों के सांप्रदायिकतायुक्त दृष्टिकोण से काफी मिलता-जुलता है। शाह इस्माइल को कशान और कुम से भरपूर समर्थन मिला। यहां शिया लोगों का वर्चस्व था। दूसरी जगहों पर (जैसे सुन्नी बगदाद या हेरात में) उसके अभियान को प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा।

1.6.4 सफ़वी और उज़बेग-ऑटोमन संघर्ष

शिया ''सफ़वियों'' (मुस्लिम दुनिया में सर्वोच्चता प्राप्ति के नये दावेदार) की उभरती शक्ति के कारण ऑटोमन फारस को अपने अधिकार में नहीं ले सके। वस्तुतः सोलहवीं शताब्दी में ईरानी उज़बेग और ईरानी ऑटोमन युद्ध आम बात हो गयी थी।

MAADHYAM IAS

1594 में चलदीरां में हुए युद्ध में ऑटोमन शासक सलीम (1512-20) के हाथों परास्त होने के बाद शाह इस्माइल (1502-1524) ने हालांकि कोई युद्ध नहीं लड़ा पर उसके पुत्र और उत्तराधिकारी शाह तहमस्प (1524-76) को लगातार उज़बेगों और ऑटोमनों का सामना करना पड़ा। खुरासान पर उज़बेगों ने पाँच बार (1524-38) बड़े हमले किये और अजरबाइजान पर ऑटोमनों ने चार बार (1534-35, 1548, 1553) पूरी तैयारी के साथ आक्रमण किया, पर वे शाह तहमस्प को परास्त नहीं कर सके, पर उसने ऑटोमनों के साथ अमस्या के संधि पत्र पर (29 मई 1555) हस्ताक्षर किए। इन बाहरी खतरों के अलावा उसे कुछ अंदरूनी समस्याओं का भी सामना करना पड़ा। उदाहरण के लिए, तुर्कमान और ईरानियों, (इनका मूल, संस्कृति और रीति-रिवाज एक दूसरे से अलग थे) जिनमे प्रजातिगत और भाषागत विभिन्नता थी, के अंतर्गत जॉरजिया मूल के लोगों और सिरकासियन मूल के लोगों का भी समावेश हो गया। इससे दरबार के षडयंत्र और भी बढ़ गये। भारत के मुगलों से सफ़वियों के राजनयिक संबंध थे (देखिए इकाई 7), इसके साथ-साथ उन्होंने रूस और पुर्तगाल से भी संबंध ठीक रखने का प्रयास किया।

शाह तहमस्प के अलावा शाह अब्बास I (1588-1629, जिसके शासन काल को सफ़वी सत्ता का स्वर्ण युग माना जाता है), शाह अब्बास II (1642-66) और शाह सफी अन्य सफ़वी शासक थे। शाह अब्बास I, के नेतृत्व में सफ़वी राज्य धीरे-धीरे धार्मिक और सैन्य आधार को पीछे छोड़ते हुए पूर्व के पूर्ण विकसित साम्राज्य में विकसित हुआ। उसने कई प्रकार के प्रशासनिक और सैन्य सुधार लागू किए। निष्ठावानों (गुलामों) का एक नया समुदाय कायम किया गया, जिन्हें कई महत्वपूर्ण पद दिए गए। रॉबर्ट शरले को ''तुर्कों के खिलाफ मास्टर जनरल'' नियुक्त किया गया था और उसी के सुझाए हुए ढांचे पर एक मज़बूत सेना का संगठन किया गया था जिसे केन्द्र से ही वेतन दिया जाता था। इसके अतिरिक्त 500 बंदूकों के तोपखाने का एक बल तैयार किया ग.।।

बोध प्रश्न 3

1) शाह अब्बास I की उपलब्धियों पर संक्षेप में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

2) कारा क्युयूनलू और अक़ क्युयूनलू का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

3) सफ़वियों के आरंभिक इतिहास पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

4) सफ़वी साम्राज्य में तुर्कमानों के महत्व को रेखांकित कीजिए।

....

....

....

....

1.7 सारांश

इस इकाई में हमने मुगलों के मूल स्थान और उनके पूर्ववर्ती इतिहास को समझने की कोशिश की। भारत के दो प्रमुख पड़ोसी राज्यों—मध्य एशिया में ट्रांसऑक्सियाना और ईरान— की भौगोलिक रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। उज़बेग और सफ़वी के क्रमशः ट्रांसऑक्सियाना और ईराम साम्राज्यों के जातीय और राजनीतिक पूर्ववर्ती इतिहास की जानकारी दी गयी है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इन दोनों साम्राज्यों का अध्ययन किया गया है। मुगलों का उद्भव मध्य एशिया में हुआ था और तीन दशकों तक इस क्षेत्र पर उन्होंने शासन किया। इस प्रकार मध्य एशियाई इतिहास की पृष्ठभूमि में ही भारत में मुगल शासन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक आधार और प्रकृति को अच्छी तरह समझा जा सकता है।

1.8 शब्दावली

खानेत : यह खान के कार्यालय और अधिकार क्षेत्र को प्रतिबिंबित करता है। मंगोल खान एक खास क्षेत्र का राजनीतिक और प्रशासनिक मुखिया हुआ करता था।

बंजारा जीवन : कबीलों के बीच प्रचलित जीवन शैली, जिसमें वे किसी एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते और भोजन पानी की खोज में इधर-उधर भटकते रहते हैं।

ऑटोमन : यह शब्द अरबी उस्मान का विकृत अंग्रेजी रूप है। ऑटोमन तुर्क थे, जिनकी शक्ति 15वीं शताब्दी के दौरान तेजी से बढ़ी। 1453 में कुस्तुनतुनिया (कान्सटेन्टिनोपल) पर अधिकार प्राप्त करने के बाद एशिया माइनर पर उनका पूरा कब्जा हो गया।

पशुपालन जीवन शैली : यह जीवन शैली भी कबीलों के बीच पनपी। इसमें जीवन का मुख्य आधार पशुपालन था। इस जीवन शैली से बंजारा जीवन शैली का आरंभ हुआ।

शिया : यह मुसलमानों का एक संप्रदाय है जो अपने को पैगम्बर मौहम्मद का सीधा उत्तराधिकारी मानते हैं और यह भी मानते हैं कि मुसलमान समुदाय को धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व देने का अधिकार उसे पैगम्बर से मिला है। यह नाम शियात अली के नाम पर आधारित है। यह हज़रत अली (पैगम्बर मौहम्मद के चचेरे भाई और उनकी बेटी फातिमा के पति) के दल के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला अरबी भाषा का शब्द है।

सुन्नी : मुसलमानों का एक संप्रदाय जो शियाओं के दावे को स्वीकार नहीं करता। सुन्नी शब्द अरबी सुन्नत से निकला है। सुन्नियों को क़ुरान के बाद केवल **हदीस,** जो **शरिअत** (इस्लामी कानून) का स्त्रोत है में वर्णित पैगम्बर मौहम्मद के कथन और उपदेश ही मान्य हैं।

तुर्कमान समूह : एशिया माइनर और मध्य एशिया के कबीले।

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 1.1। आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ:
   i) मुगल विजेता मध्य एशिया से आए और उन्होंने वहां शासन किया था।
   ii) भारत में मुगल शासन पर इसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।
   iii) इस दृष्टि से मध्य एशिया के संबंधों आदि का अध्ययन प्रासंगिक है।

2) देखिए भाग 1.3 । आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ:
   i) तूरान के उज़बेग चँगेज के बड़े पुत्र के वंशज थे।
   ii) उन्होंने अपना नाम उज़बेग खाँ से ग्रहण किया आदि।

3) देखिए भाग 1.2 । आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ:
   i) अरब विजेताओं ने **अंदरूनी** एशिया अर्थात् तूरान का नाम ट्रांसऑक्सियाना रख दिया, क्योंकि यह सीर और अमू नामक दो नदियों के बीच स्थित था।
   ii) ईरान में पहाड़ियों की शृंखला एशिया और कॉकेसस से लेकर पंजाब के समतल इलाके तक फैली थी, जिसे ईरानी पठार के नाम से भी जाना जाता है, आदि।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ:
   तैमूर साम्राज्य में फैली अव्यवस्था का लाभ उठाकर उज़बेगों ने तैमूरों से बुखारा और समरकन्द छीन लिया। उज़बेगों ने बाबर और उसके मामू की संयुक्त फौज को हराकर फरगना, कुनदूज़, बल्ख, मेमना और फरयाब पर कब्जा कर लिया। हेरात में फैली अव्यवस्था का लाभ उठाकर उज़बेगों ने वहां भी कब्जा जमा लिया। (देखिए भाग 1.4 और 1.5)

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ:
   बाद के तैमूर शासकों की व्यक्तिगत अक्षमता, आपसी वैमनस्य, आदि (देखिए भाग 1.5)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ :
खुरासान पर विजय प्राप्त करने के बाद उज़बेगों की सीमा सफ़वी फारस के नज़दीक आ गयी । इस इलाके में उज़बेगों ने अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करनी चाही, पर वे फारसियों द्वारा दबा दिए गए, आदि । (देखिए उपभाग 1.5.1)

बोध प्रश्न 3

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ :
अक क्युयूनलू (सफेद भेड़) और कारा क्युयूनलू (काली भेड़) तुर्कमान राज्यसंघ थे, अक क्युयूनलू की राजधानी आमिद में और कारा क्युयूनलू का मुख्यालय अर्जिश में स्थित था, आदि (देखिए उपभाग 1.6.1)

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ :
प्रमुख अक़ क्युयूनलू नेता उजुन हसन की बहन की शादी शेख जुनैद के साथ हुई थी, जो सफ़वी नाम के एक सूफी संप्रदाय का नेता था । इसका मुख्यालय अरदबिल में था । उसके पुत्र और उत्तराधिकारी हैदर ने कारा क्युयूनलू के शासक को मार डाला और अज़रबाइजान का शासक बन बैठा, उसके छोटे पुत्र इस्माइल ने सफ़वी साम्राज्य की स्थापना की, आदि । (देखिए भाग 1.6 और उपभाग 1.6.1)

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ :
तुर्कमान कबीले सफ़वी साम्राज्य के प्रमुख आधार-स्तम्भ थे, उन्होंने शासक वर्ग का आधार निर्मित किया, आदि । (देखिए उपभाग 1.6.2)

4) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएँ :
शाह अब्बास I के समय में सफ़वी राज्य एक साम्राज्य के रूप में उभरा, उसने कई प्रशासनिक और सैन्य सुधार लागू किए, आदि । (देखिए भाग 1.7)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 2 उत्तर भारत में राजनीति और अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 लोदी साम्राज्य
  2.2.1 सिकन्दर लोदी
  2.2.2 इब्राहिम लोदी
2.3 मुगल सत्ता की स्थापना
2.4 दूसरा अफगान साम्राज्य
2.5 प्रशासनिक ढांचा
  2.5.1 राजत्व की प्रकृति
  2.5.2 प्रशासन व्यवस्था
2.6 अर्थव्यवस्था
  2.6.1 कृषीय ढांचा
  2.6.2 **इक्ता** व्यवस्था
  2.6.3 नगरीकरण
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस इकाई में सोलहवीं शताब्दी में उत्तर भारत की राजनीतिक व्यवस्था और अर्थव्यवस्था की जानकारी दी जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सिकन्दर लोदी की राजनीतिक सत्ता की प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे,
- इब्राहिम लोदी की समस्याओं का उल्लेख कर सकेंगे,
- मुगल साम्राज्य की स्थापना में बाबर की आरंभिक कठिनाइयों की चर्चा कर सकेंगे,
- शेरशाह द्वारा हुमायूं की पराजय के कारणों को रेखांकित कर सकेंगे, और
- लोदी सुल्तानों के अधीन प्रशासनिक ढांचे और नगरीकरण की प्रक्रिया पर प्रकाश डाल सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

उत्तर भारत में सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजनीतिक अव्यवस्था और अनिश्चितता का माहौल था। इस काल में कई शासक राजवंश उभरे और विभिन्न प्रकार के शासकों का उदय हुआ। भारत में मुगलों का आगमन इसमें सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। इसने आने वाले 200 वर्षों तक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और समाज को काफी हद तक प्रभावित किया। इस इकाई में हम सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। यहाँ हमारा उद्देश्य आपको उस राजनीतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से परिचित कराना है, जिसमें शक्तिशाली मुगल साम्राज्य ने भारत में अपने को स्थापित किया।

सबसे पहले हम इस काल में हुई राजनीतिक गतिविधियों की चर्चा करेंगे। हम अपनी बात अफगानों के लोदी राजवंश से शुरू करेंगे। इसके बाद हम देखेंगे कि किस प्रकार मुगलों ने अफगानों को हराया और

अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित की। इसके बाद अफगानों द्वारा मुगलों को पदस्थ करने का मुद्दा सामने आएगा। इस इकाई के अंत में हुमायूं की वापसी और मुगल सत्ता की पुनर्स्थापना की चर्चा की जाएगी। इस काल में अफगानों के तहत प्रमुख आर्थिक गतिविधियों की भी चर्चा की जाएगी। हमें आशा है कि यह इकाई मुगलकालीन राजनीति और अर्थव्यवस्था को समझने में सहायक होगी। आइए, लोदी साम्राज्य से अपनी बात शुरू करें।

2.2 लोदी साम्राज्य

15वीं शताब्दी का अंत होते-होते बहलोल लोदी ने दिल्ली में लोदी राजवंश की स्थापना सुदृढ़ रूप से कर दी थी। उसने उत्तर भारत के बड़े हिस्से को अपने कब्जे में ले लिया था। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र सिकन्दर लोदी गद्दी पर बैठा।

2.2.1 सिकन्दर लोदी

सोलहवीं शताब्दी में सुल्तान सिकन्दर लोदी के नेतृत्व में उत्तर भारत में लोदी साम्राज्य अपने उत्कर्ष पर पहुंच गया। 1496 में जौनपुर के भूतपूर्व शासक हुसैन शरकी को दक्षिण बिहार से खदेड़ दिया गया और उनके राजपूत सरदार सहयोगियों को या तो समझौते के लिए मजबूर कर दिया गया या परास्त कर दिया गया। उनकी ज़मींदारियों को या तो सुल्तान के सीधे नियंत्रण में ले लिया गया या उनका दर्जा परतंत्र प्रदेश का हो गया। इसी प्रकार से सुल्तान की सत्ता को चुनौती देने वाले अफगान और गैर-अफगान सरदारों को दिल्ली और उसके आस-पास के इलाके से हटा दिया गया।

सोलहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में धौलपुर पर कब्जा होने के बाद राजपूताना और मालवा प्रदेशों में अफगान शासन के विस्तार का रास्ता प्रशस्त हो गया। नरवर और चंदेरी के किलों को जीत लिया गया। नागौर के ख़ानज़ादा ने 1510-11 में लोदी सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली। संक्षेप में, संपूर्ण उत्तर भारत, उत्तर-पश्चिम में पंजाब से लेकर पूरब में उत्तर-बिहार के सरन और चंपारन तक और चंदेरी से लेकर दिल्ली के दक्षिण तक लोदी साम्राज्य की परिधि में आ गया था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2.2.2 इब्राहिम लोदी

अपने पिता के विपरीत, सुल्तान इब्राहिम लोदी (1517-26) को 1517 में गद्दी पर बैठते ही अफगान सरदारों की दुश्मनी का सामना करना पड़ा। उसने अपने पिता को शक्तिशाली सामंतों से घिरा पाया, जो अपनी शक्ति बढ़ाने के चक्कर में केन्द्रीय सत्ता को कमजोर बनाना चाहते थे। उसके पिता को अपने भाइयों और संबंधियों से लड़ना पड़ा था। इस लड़ाई में उन सरदारों ने उसके पिता का समर्थन किया, जो राजकुमारों को समृद्ध प्रांतों से हटाना चाहते थे। सुल्तान सिकन्दर की मौत के बाद सरदारों ने सुल्तान इब्राहिम लोदी और उसके छोटे भाई राजकुमार जलाल खाँ लोदी (कालपी का गवर्नर) के बीच साम्राज्य का बंटवारा करने का निर्णय लिया। सुल्तान इब्राहिम को यह बंटवारा मानने के लिए मजबूर किया गया जिससे स्वाभाविक रूप से केन्द्र कमजोर हुआ। कुछ समय बाद, ख़ान-खाना नुहानी जैसे बुजुर्ग सरदारों ने, जो नये शासक को **नज़राना** पेश करने आये थे, बंटवारे के समर्थकों की आलोचना की। उन्होंने कहा कि यह विभाजन साम्राज्य के लिए घातक है।

उन्होंने सुल्तान से विभाजन को निरस्त करने का आग्रह किया। उनके सुझाव पर सुल्तान इब्राहिम ने वरिष्ठ सरदारों को राजकुमार जलाल के पास भेजा। उनका उद्देश्य राजकुमार को अपने दावे को वापस करने के लिए और अपने बड़े भाई को सुल्तान के रूप में स्वीकार करने के लिए राज़ी करना था। ये प्रयत्न असफल रहे और उत्तराधिकार का संकट उत्पन्न हो गया।

इस मोड़ पर अपने भाई की अपेक्षा सुल्तान इब्राहिम अधिक शक्तिशाली प्रतीत हो रहा था। अतः पुराने सरदार उससे जुड़े रहे। हालांकि कड़ा के राज्याध्यक्ष आज़म हुमायूं सरवानी और उसके पुत्र फतह खाँ सरवानी जैसे कुछ अपवाद मिल जाते हैं। वे कुछ देर के लिए ही सही, पर जलाल खाँ से जुड़े रहे। जब

सुल्तान ने व्यक्तिगत रूप से उनके विरुद्ध युद्ध किया तो दोनों ने जलाल खाँ को छोड़ दिया और सुल्तान से जा मिले।

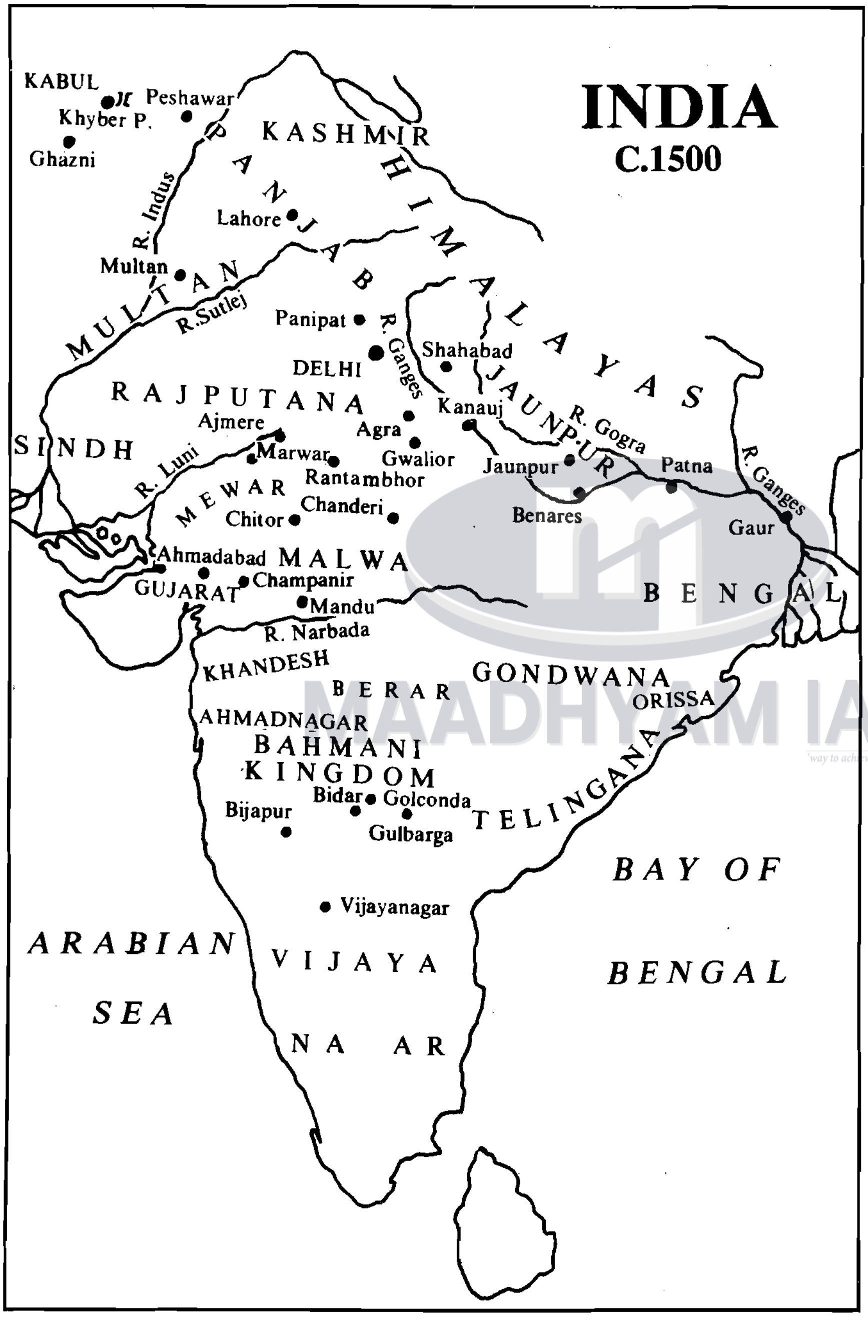

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सुल्तान ने आज़म हुमायूं सरवानी को ग्वालियर के राजा विक्रमजीत के खिलाफ युद्ध करने के लिए भेजा।

जलाल खाँ ने वहां शरण ले रखी थी। जलाल खाँ ग्वालियर से मालवा की ओर भागा, पर गोंडों ने उसे पकड़ लिया और बंदी बनाकर सुल्तान के पास आगरा भेज दिया। हालांकि ग्वालियर से उसके भागने पर सुल्तान को अपने पुराने सरदारों पर शक होने लगा। आजम हुमायूं को बुलाया गया और उसे कैदखाने में डाल दिया गया। ग्वालियर के राजा ने सरदारों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और सुल्तान की सेवा में शामिल होने के लिए तैयार हो गया। उसे **इक्ता** के रूप में शमसाबाद (फर्रूखाबाद ज़िला) का इलाका दिया गया। इसी समय प्रतिष्ठित **वज़ीर** मियांभुआ पर भी सुल्तान का विश्वास उठ गया और उसे कैद कर लिया गया। पुराने सरदारों को कैद किए जाने से पूर्वी क्षेत्र में विद्रोह की लहर फैल गयी।

सुल्तान ने अपने विश्वासपात्रों को दरबार में महत्वपूर्ण पद दिए और कुछ को प्रांतों का प्रमुख बनाकर भेजा। इसके परिणामस्वरूप पुराने सामंतों को अपने भविष्य की चिंता होने लगी और वे प्रांतों में अपनी शक्ति मजबूत करने लगे।

बिहार का शक्तिशाली गवर्नर दरिया खां नूहानी पूर्वी क्षेत्र के असंतुष्ट सरदारों का रहनुमा बन गया। लगभग इसी समय बाबर ने भेरा की **सरकार** पर कब्जा जमा लिया और सतलज पार पंजाब का सर्वाधिक शक्तिशाली गवर्नर दौलत खां लोदी उसे मुक्त कराने में सफल नहीं हुआ।

दौलत खां को दरबार में पेश होने का हुक्म मिला, पर उसने इससे इंकार कर दिया और लाहौर में सुल्तान के खिलाफ बगावत कर दी। उसने सुल्तान इब्राहिम के चाचा आलम खां लोदी (बहलोल लोदी का बेटा) को भी आमंत्रित किया और उसे सुल्तान अलाउद्दीन के नाम से नया सुल्तान घोषित किया। इन्होंने सुल्तान इब्राहिम के खिलाफ काबुल के शासक बाबर के साथ संधि की। इब्राहिम लोदी के खिलाफ राणा संग्राम सिंह और बाबर के बीच भी लगभग संधि हो गयी थी (विस्तार के लिए इकाई 7 पढ़िए)।

2.3 मुगल सत्ता की स्थापना

MAADHYAM IAS

बाबर ने अब तक उत्तरी-पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों पर कुछ सफलताएं हासिल की थी। इसके बाद उसने भारत में अपने सहयोगियों के साथ नियोजित ढंग से आक्रमण करने की योजना बनाई।

1526 में पानीपत में बाबर और उसके सहयोगियों तथा सुल्तान इब्राहिम के बीच युद्ध हुआ। बाबर ने उत्तर भारत में पहली बार बन्दूकों व तोपों का उपयोग किया और उसे आसानी से विजय मिल गयी। युद्ध में इब्राहिम लोदी मारा गया और आगरा से दिल्ली तक का रास्ता बाबर के लिए साफ हो गया।

बाबर ने जब अपने ही बल पर लोदी शासन को ध्वस्त कर दिया तो उसके भारतीय साथी निराश हो गये। असंतुष्ट अफगान और गैर-अफगान सरदारों ने राजकुमार महमूद लोदी को अपना सुल्तान मान लिया और मुगलों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष करते रहने का निश्चय किया। बाबर और हुमायूं के शासन के पन्द्रह वर्षों की अवधि को लोदी साम्राज्य के पतन और शेरशाह सूर के साम्राज्य की स्थापना के बीच के काल को मुगलशासन के राज्यातंराल के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

बाबर (मृत्यु 1530) और हुमायूं ने भारत में लोदी सुल्तानों द्वारा स्थापित राज्य व्यवस्था को ही लागू रखा। जैसे ज़मींदारों के प्रति अपनायी जाने वाली नीति के मामले में दिल्ली सुल्तानों द्वारा स्थापित परंपरागत नियमों को ही उन्होंने जारी रखा। बाबर ने लिखा है कि हिंदुस्तान के सभी कोनों में **राय** और **राजा** मिल जाएंगे, वे मुस्लिम शासकों के आज्ञाकारी भी होते हैं और अवज्ञाकारी भी। वस्तुतः परंपरागत रूप से राजाओं के नाममात्र की अधीनता स्वीकार कर लेने से ही वह संतुष्ट हो गया। **बाबरनामा** में स्पष्ट रूप से यह वर्णित है कि बाबर ने सरदारों को इलाकों का भार सौंपा, राजस्व वसूल करने का अधिकार दिया और परंपरागत रूप से शासक के नाम पर शासन करने की प्रथा को जारी रखा। **खालिसा** के अधीन **परगनों** में **शिकदारों** की नियुक्ति हुई। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बाबर और हुमायूं ने उत्तर भारत की राजनीतिक व्यवस्था में कोई खास परिवर्तन नहीं किया।

सुल्तान महमूद लोदी के नाममात्र के नेतृत्व में अफगान और गैर-अफगान सरदार बाबर और हुमायूं के खिलाफ कुछ खास नहीं कर सके। इसका महत्वपूर्ण कारण, उनके आपसी झगड़े और षड़यंत्र थे। 1531 में हुमायूं के हाथों परास्त होने के बाद पुराने अफगान सामंतों के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग गया। इसके बाद शेर खाँ सूर ने मुगलों के खिलाफ अफगानों का नेतृत्व किया। इस समय तक वह चुनार के किले और दक्षिण बिहार के इलाके पर अपना अधिकार जमा चुका था। पुराने अफगान सरदार गुजरात भाग गये। वहां उन्होंने सुल्तान बहादुरशाह की शरण ली, जो दिल्ली पर अधिकार जमाने के सपने देख रहा था। गुजरात का सुल्तान बहादुर शाह सबसे शक्तिशाली भारतीय राजा था। उसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ और सैन्य शक्ति बहुत प्रबल थी। गुजरात के कुछ समुद्र तटीय शहर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के गढ़ बन गये थे। इन शहरों में विदेशों से व्यापारी आया करते थे। व्यापार के फलने-फूलने से राजकोष भी भरा-पूरा था। उसके पास एक मजबूत सेना भी थी।

1531 ई० से सुल्तान बहादुरशाह ने विस्तारवादी नीति का आरंभ किया। उसने मालवा पर आक्रमण किया और उसे अपने राज्य में मिला लिया। 1533 ई० में उसने चित्तौड़ पर घेरा डालकर उस पर कब्जा कर लिया। इसी समय गुजरात तोपखाने के सेनाध्यक्ष रूमी खाँ ने चुपके से हुमायूं से संधि कर ली और उसे सहायता देने का वचन दिया। रूमी खाँ की धोखा-धड़ी के कारण गुजरात की सेना पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो गयी। अंततः बहादुरशाह ने दीव के टापू पर शरण ली और मालवा तथा गुजरात पर हुमायूं का शासन हो गया। पर इस विजय का आनन्द देर तक न टिक सका। गुजरात में अपनी विजय के बाद हुमायूं ने यह खबर सुनी कि शेर खां सूर ने बगावत कर दी है और अपने को शेरशाह सूर घोषित कर दिया है। उसने बंगाल के सुल्तान से बड़ा भूभाग छीन लिया और मुगलों के पूर्वी राज्य-क्षेत्रों पर हमला किया। हुमायूं ने अन्य सरदारों के साथ अपने भाई अस्करी को गुजरात में छोड़ दिया और आगरे की ओर पलटा। हुमायूं के गुजरात से निकलते ही मुगलों के खिलाफ बगावत हो गयी। बहादुरशाह दीव से लौट आया और गुजरात और मालवा से उसने मुगलों को मार भगाया।

इसी समय हुमायूं ने जल्दबाजी में युद्ध की तैयारी की और शेरशाह के गढ़ चुनार की ओर प्रस्थान किया। इस समय शेरशाह रोहतास का किला उसके राजा से छीन चुका था। हुमायूं ने चुनार के किले पर आधिपत्य जमा लिया और बिना किसी अफगानी प्रतिरोध के बंगाल में प्रवेश किया। उसने गौड़ (बंगाल) में कुछ समय निष्क्रियता में बिताए। शेरशाह ने इस परिस्थिति का पूरा फायदा उठाया। उसने आगरा और गौड़ की संचार व्यवस्था को बंद कर दिया और बनारस तक के मुगल प्रांतों पर हमले किए। इस बिगड़ती हुई परिस्थिति को देखते हुए हुमायूं आगरा की ओर बढ़ा। 1539 ई० में चौसा में उसकी मुठभेड़ अफगान सेना से हुई और उसे पराजय का सामना करना पड़ा। उसने पुनः एक सेना संगठित की और 1540 में कन्नौज के युद्ध में शेरशाह का सामना किया। हुमायूँ पुनः पराजित हुआ और काबुल भाग गया।

MAADHYAM IAS

2.4 दूसरा अफगान साम्राज्य

अंततः हुमायूं को भगाने के बाद शेरशाह पूर्व में सिंधु से लेकर बंगाल की खाड़ी तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मालवा तक के उत्तर भारत का सम्राट बन गया। मुल्तान और ऊपरी सिंध के बलोच सरदार और पश्चिमी राजपूताना में मालदेव और रायसीन के भैया पूरनमल पराजित हो गये। शेरशाह सूर के अधीन एक बार फिर एक केन्द्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था की शुरूआत हुई। शेरशाह के आगमन के बाद, उत्तर भारत में एक नये इतिहास का सूत्रपात हुआ। विचारों और संस्थाओं में भी कई बदलाव आये।

1545 ई० में बारूद के सुरंग में आग लग जाने से उसकी मृत्यु हो गयी। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इस्लाम शाह (1545-1553) ने न केवल उसकी व्यवस्था को बरकरार रखा बल्कि जहां जरूरी था वहां उसने सुधार की कोशिश भी की। निश्चित रूप से यह एक प्रकार की व्यक्तिगत सरकार थी, जहां व्यक्तिगत शौर्य पर ही शक्ति और समृद्धि निर्भर करती थी।

बोध प्रश्न

1) सिकन्दर लोदी के साम्राज्य के विस्तार का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

2) निम्नलिखित का मिलान कीजिए।

1) आज़म हुमायूं	क) बिहार का गवर्नर
2) बहादुरशाह	ख) पंजाब का गवर्नर
3) दरिया खाँ नूहानी	ग) गुजरात का शासक
4) जलाल खां लोदी	घ) कड़ा का गवर्नर
5) दौलत खां लोदी	ङ) कालपी का गवर्नर

3) किन परिस्थितियों में बाबर ने भारत पर आक्रमण किया?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.5 प्रशासनिक ढांचा

इस काल के दौरान कई नये प्रशासनिक कदम उठाये गये। अफगान शासन काल में तुर्की अवधारणा को पीछे छोड़ दिया गया और नयी अवधारणाएं सामने आयीं। इस बदलाव का प्रतिफलन लगभग सभी प्रशासनिक नीतियों के निर्माण में देखा जा सकता है।

2.5.1 राजत्व की प्रकृति

तुर्की सुल्तानों का राजत्व काफी केन्द्रीकृत था (पढ़िए ऐच्छिक पाठ्यक्रम 3 की इकाई 16, उपभाग 16.4.1)। सुल्तान के पास निरंकुश शक्तियां थी। हालांकि अफगान शक्ति के उदय के साथ राजतंत्र की प्रकृति में भी स्पष्ट बदलाव नजर आता है। अफगान राजतंत्र मूलतः अपनी प्रकृति में कबीलाई था। उनके लिए राजा अन्यों के साथ बराबरी का स्थान रखता था, पर वह उन सबमें प्रथम स्थान का अधिकारी था। वस्तुतः राजनीतिक कुशलता की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। एक अफगान होने के नाते बहलोल तुर्कों से सहयोग की उम्मीद नहीं रख सकता था। उसे वस्तुतः अपने साथी अफगानों की शर्तों को मानना पड़ता था। अफगान सरदार निश्चित रूप से पूर्ण स्थानीय स्वायत्तता पर जोर देते थे। उनके और सुल्तान के बीच एक ही समझौता था कि जब कभी सुल्तान को सैन्य सहायता की आवश्यकता होगी, वे अपने सुल्तान की मदद करेंगे। बहलोल की स्थिति यह थी कि वह अपने साथी अफगानों के समक्ष कभी भी सिंहासन पर नहीं बैठा था और न ही उसने खुला दरबार आयोजित करने की चेष्टा की। वह अपने अफगान सरदारों को **मसनद ए आली** कहकर सम्मान से संबोधित किया करता था।
सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। सिकन्दर लोदी अनियंत्रित सरदारों के खतरे से पूरी तरह वाकिफ था। उसे इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उसने कुछ महत्वपूर्ण बदलाव लाकर अपने साम्राज्य में केन्द्रीकृत सत्ता की स्थापना की।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

अपने पिता सुल्तान बहलोल लोदी के विपरीत सुल्तान सिकन्दर लोदी ने अपने सरदारों से आज्ञा पालन की अपेक्षा की। उसके सैनिक अभियानों और विजयों के कारण सरदार उसके प्रति पूरी तरह वफादार और आज्ञाकारी बने रहे। इससे सुल्तान के साथ समानता की भावना को भी धक्का पहुँचा। वह खुले दरबार आयोजित करता था, सिंहासन पर बैठता था और उसके सरदार सेवकों की तरह सुल्तान को सम्मान देने की मुद्रा में खड़े रहते थे। यहां तक कि उसकी अनुपस्थिति में भी बड़े सरदार बड़े सम्मान से **फरमान** ग्रहण किया करते थे। जिस सरदार को **फरमान** भेजा जाता था उसे छह मील आगे बढ़कर **फरमान** ग्रहण करना पड़ता था। एक मंच बनाया जाता था। संदेशवाहक उस मंच पर खड़ा होकर **फरमान** नीचे खड़े सरदार के सिर पर रखता था। इसके बाद सभी संबद्ध लोग इसे खड़े होकर सुनते थे। जो सरदार सुल्तान का विश्वास नहीं प्राप्त कर पाते थे, उन्हें सुल्तान का कोप-भाजन बनना पड़ता था। एक समकालीन लेखक के अनुसार "अगर कोई आज्ञा के रास्ते से भटकता था, तो वह (सुल्तान) या तो उसे मृत्यु-दण्ड देता था या उसे साम्राज्य से बाहर निकाल दिया करता था।" हालांकि आमतौर पर सुल्तान स्थानीय स्तर पर उनकी स्वायत्तता में दखल नहीं देता था, पर कई बार सरदारों का स्थानान्तरण हुआ करता था और कभी-कभी उन्हें पदच्युत भी कर दिया जाता था। सुल्तान ने अहमद खां जिलवानी के पुत्र सुल्तान अशरफ को पदच्युत कर दिया क्योंकि उसने सुल्तान बहलोल लोदी की मृत्यु के बाद बयाना में अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। 1500 ई० में उसने अपने खिलाफ षड्यंत्र में शामिल बाइस बड़े अफगान और गैर-अफगान सरदारों को देश निकाला दे दिया था। 1506 ई० में जलाल खां लोदी को उसके पिता के स्थान पर कालपी का गवर्नर बनाया गया था। उसे केवल इसलिए कालकोठरी में डाल दिया गया, क्योंकि उसने 1508 में नरवर के किले का घेरा डालने में ढील दिखायी।

सरदारों के **इक्ताओं** में भी उन पर कड़ी नजर रखी जाती थी। पर इन परिवर्तनों के बावजूद अफगान राजत्व मूल रूप से अपरिवर्तनशील रहा। कुछ पद वंशानुगत बन रहे। अफगानों को **खान-ए-जहान, ख़ान-ए-ख़ाना, आज़म हुमायूं, खान-ए-आज़म** आदि जैसी बड़ी पदवियाँ दी जाती रहीं। खेल के मैदान, अभियानों, शिकार आदि जगहों पर सुल्तान के साथ उन्हें अनौपचारिक संबंध बनाए रखने की छूट दी जाती रही। अंतः सिकन्दर लोदी के अधीन राजतंत्र तुर्की और कबीलाई संगठनों के मिले-जुले रूप में विकसित हुआ।

इब्राहिम के नेतृत्व में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को और भी बल मिला। उसका मानना था कि राजत्व में भाई-बंधुत्व का कोई स्थान नहीं है। उसके शासन काल में सुल्तान की प्रतिष्ठा इस कदर ऊँचाई पर चली गयी थी कि शाही डेरे को भी सम्मान की निगाह से देखा जाने लगा था। हालांकि, इब्राहिम की नीति के बुरे परिणाम सामने आये और यह अफगान साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। अफगान सरदार सुल्तान के साथ मालिक-सेवक के संबंध को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इससे सरदारों में असंतोष फैला और उनमें से कइयों ने बगावत कर दी। स्थिति यहां तक पहुंच गयी कि सुल्तान को अपदस्थ करने के लिए उन्होंने बाबर तक का साथ दे दिया।

जब भारत में दूसरी बार अफगान साम्राज्य की स्थापना हुई (सूर साम्राज्य), तो उन्होंने पहले के अनुभवों से सीख ली और कभी भी कबीलाई राजतंत्र स्थापित करने की कोशिश नहीं की। इसके स्थान पर शेरशाह सूर ने अति केन्द्रीकृत निरंकुश राजतंत्र की स्थापना की और उसे इसमें सफलता भी मिली। मुगलों के आगमन के बाद एक नया अध्याय शुरू होता है। मुगल तुर्की और मंगोल दोनों परंपराओं से प्रभावित थे।

2.5.2 प्रशासन व्यवस्था

एक सुदृढ़ प्रशासनिक व्याख्या की स्थापना का श्रेय सुल्तान सिकन्दर लोदी को जाता है। **मुक्तियों** और **वालियों** (राज्याध्यक्षों) के हिसाब-किताब को जांचने के लिए उसने लेखा-परीक्षण की प्रथा आरंभ की। सबसे पहले 1506 में जौनपुर के गवर्नर मुबारक खां लोदी (तुजी ख़ैल) के हिसाब-किताब की जांच हुई थी। उसके हिसाब-किताब में गड़बड़ी पायी गयी और उसे बर्खास्त कर दिया गया। इसी प्रकार भ्रष्टाचार के आरोप में दिल्ली के प्रशासक गैर-अफगान पदाधिकारी ख्वाजा असगर को कैदखाने में डाल दिया गया। साम्राज्य की स्थिति से अपने को पूर्ण अवगत रखने के लिए सुल्तान ने गुप्तचर व्यवस्था को पुनर्संगठित किया। परिणामस्वरूप सुल्तान की अप्रसन्नता के भय से सरदार आपस में डरते थे। आम जनता की भलाई के लिए राजधानी और प्रांतों में कल्याणकारी केंद्र खोले गये थे, जहां अनाथ और विकलांग लोगों की सहायता की जाती थी। ये कल्याणकारी केंद्र ज़रूरतमंदों को वित्तीय सहायता दिया करते थे। पूरे साम्राज्य में विद्वानों और कवियों को संरक्षण दिया जाता था और शिक्षण संस्थानों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती थी। उसने सरकारी कार्यालयों में फारसी के अलावा किसी अन्य भाषा के उपयोग पर पाबंदी लगा रखी थी। इससे अनेक हिंदू फारसी सीखने लगे और जल्द ही वे फारसी में निपुण हो गये। परिणामस्वरूप वे राजस्व व्यवस्था में हाथ बंटाने लगे। भारत आने पर बाबर यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि राजस्व विभाग में पूर्णतः हिंदू ही काम करते थे। इसी प्रकार सिकन्दर लोदी निष्पक्ष न्याय का हिमायती था। इस कारण उसके साम्राज्य में शांति और समृद्धि का वर्चस्व रहा।

शेरशाह सम्भवतः अलाउद्दीन खलजी (1296-1316) के शासन के इतिहास से प्रेरित था। उसने खलजी सुल्तान के अधिकांश नियमों और कानूनों को अपना लिया, हालांकि खलजी के समान उसने उन्हें लागू करने के लिए उतनी कठोरता नहीं अपनायी। दोआब क्षेत्र में **सरकार** (खलजियों के **शिक** का पर्याय) प्रशासनिक व राजस्व की इकाई था, जबकि प्रतिरक्षा व प्रशासन की सहूलियत के लिए बंगाल, मालवा, राजपूताना, सिंध और मुलतान जैसे दूर के क्षेत्रों में प्रशासनिक इकाई के रूप में **विलायत** की व्यवस्था को कायम रखा गया। एक विलायत में कई **सरकारें** होती थीं। **सरकार** के अंतर्गत कई **परगने** होते थे, प्रत्येक **परगने** में कई गांव होते थे। गांव मूलतः राजस्व की इकाई था। **सरकार** या **विलायत** में नियुक्त सरदार को असीमित अधिकार नहीं दिए जाते थे। नये नियमों और कानूनों को लागू करने के लिए उसे हमेशा शाही **फरमान** के जरिए निर्देश भेजे जाते थे। जासूस पदाधिकारियों के व्यवहार की सूचना सुल्तान को देते रहते थे। सही ढंग से काम न करने वाले पदाधिकारियों को दंड दिया जाता था। बंगाल के राज्याध्यक्ष खिज़्र तुर्क को इस कारण से बर्खास्त कर जेल में डाल दिया गया क्योंकि उसने शेरशाह की अनुमति के बिना बंगाल के भूतपूर्व सुल्तान की बेटी से शादी कर ली थी और स्वतंत्रता जाहिर करने की कोशिश की थी।

इसी प्रकार शेरशाह को जिन क्षेत्रों में विरोध की आशंका थी, उन क्षेत्रों में उसने अफगानों को बसाकर अफगान क्षेत्र स्थापित किए। यह उसकी राजत्व नीति की प्रकृति को प्रतिबिंबित करता है। उदाहरण के लिए, शेरशाह के शासनकाल में ग्वालियर अफगानों की एक प्रमुख बस्ती थी। संक्षेप में, सभी दृष्टियों से शेरशाह एक निरंकुश शासक था।

MAADHYAM IAS

शेरशाह ने अपने सरदारों की नियुक्ति में यह खास ध्यान रखा कि एक ही प्रजाति या समुदाय के लोगों का वर्चस्व न हो जाए। उसने विभिन्न संप्रदायों से सरदारों की भर्ती की ताकि उसके शासन को किसी गंभीर चुनौती का सामना न करना पड़े। कोई भी समूह इतना शक्तिशाली नहीं था कि वह शासक पर किसी प्रकार का दबाव डाल सके। हम पाते हैं कि खव्वास खां, हाजी खां और हबीब खां सुल्तानी जैसे गैर-अफगान सरदारों को महत्वपूर्ण प्रांत और बड़े "**इक्ते**" सौंप गये थे। इससे पता चलता है कि शेरशाह ने कभी भी शुद्ध अफगान कुलीन वर्ग की स्थापना को महत्व नहीं दिया। शेरशाह की मृत्यु के बाद उसका दूसरा बेटा राजकुमार जलाल खां इस्लाम शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। उसने कई वरिष्ठ और अनुभवी सरदारों को निष्कासित कर दिया जिन्होंने उसके बड़े भाई आदिल खां का समर्थन किया था। उन्हें निकालने के बाद इस्लाम शाह अपने राजनीतिक विचारों को व्यवहारिक रूप देने के लिए स्वतंत्र था। उसने अपनी राजधानी आगरा के बजाय ग्वालियर बनाई और चुनार से अपने पिता का खज़ाना भी ले आया। इस प्रकार दिल्ली की तरह ग्वालियर भी भारतीय-मुस्लिम संस्कृति का केन्द्र बना। यह उल्लेखनीय है कि साम्राज्य की राजनीतिक व्यवस्था को केन्द्रीकृत करने में इस्लाम शाह शेरशाह से एक कदम और आगे बढ़ गया। उसने सभी सरदारों से **इक्ते** वापस ले लिये और पूरे साम्राज्य को **खालिसा** के अंतर्गत व्यवस्थित किया गया। उसने अपने अधिकारियों को "**इक्तों**" की जगह नगद वेतन देना शुरू किया। कुलीनवर्ग और सेना को उसने नये स्तरों में पुनर्गठित किया। सैनिकों के सही रखरखाव के निरीक्षण और उनकी देखभाल करने के लिए तथा सरदारों के लिए जरूरी अस्त्रशस्त्रों की पूर्ति के लिए उन्हीं में से पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई। कुलीनों को युद्ध में काम में लाए जाने वाले हाथी रखने की इजाजत नहीं दी गई थी जो कि राजा का विशेषाधिकार था। इस्लाम शाह अपने सरदारों से बड़ी कड़ाई से पेश आता था, पर वह जनता के प्रति उदार था। उसने जनता के जीवन और संपत्ति को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की। अगर किसी व्यक्ति की हत्या हो जाती थी या उसकी संपत्ति को कोई हानि पहुंचती थी, तो इसके लिए उस इलाके के पदाधिकारी को जिम्मेदार ठहराया जाता था। अतः पदाधिकारी दोषी व्यक्तियों को गिरफ्तार करने में बहुत मुस्तैदी दिखाते थे। अपने पिता के समान इस्लाम शाह ने अपने साम्राज्य में निष्पक्ष न्याय व्यवस्था की स्थापना भी की।

बोध प्रश्न 2

1) तुर्की और अफगान राजनीतिक व्यवस्था में क्या अंतर था?

....

....

....

....

....

2) सरदारों की शक्ति को दबाने के लिए सूर शासकों ने कौन-कौन से कदम उठाए?

....

....

....

....

....

2.6 अर्थव्यवस्था

समकालीन लेखक सिकन्दर लोदी की इस बात के लिए प्रशंसा करते हैं कि उसने आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता बढ़ाई और इनका दाम कम रखने में सफलता प्राप्त की। शेख रिज़कुल्लाह मुश्ताकी (**वाक़यात-ए मुश्ताकी**) के अनुसार अनाज, कपड़े, घोड़े, भेड़ें, सोना और चांदी कम मूल्य पर और पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे। समग्रता में पूरी अर्थव्यवस्था को समझने के लिए इसके आधारभूत तत्वों पर विस्तार से विचार-विमर्श करना होगा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2.6.1 कृषीय ढांचा

उस समय की राजनीतिक व्यवस्था कृषीय उत्पादन के अधिशेष में राज्य के हिस्से पर निर्भर करती थी। सुल्तान सिकन्दर लोदी ने एक व्यवस्थित विकासोन्मुख भूराजस्व नीति बनायी। यह नीति उसने अपने राज्य की भौगोलिक प्रकृति को मद्देनजर रखते हुए अपनायी। चूँकि उसका राज्य चारों ओर से जमीन से ही घिरा था, खेती के विस्तार से प्राप्त अधिक उपज ही उसके वित्तीय संसाधन को बढ़ा सकती थी। बहुत सी अनजुती जमीन पड़ी हुई थी और अगर खेतिहरों को इसे जोतने से प्राप्त होने वाले अपेक्षित मुनाफों का विश्वास दिलाया जाता तो वे इसे जोत सकते थे। कृषि के विस्तार के लिए कृषकों को प्रोत्साहित करने हेतु सुल्तान ने प्रशासनिक व्यवस्था में कई परिवर्तन किए। भूमिपतियों और सरकारी पदाधिकारियों द्वारा किसानों से कराये जाने वाले **बेगार** पर प्रतिबंध लगा दिया गया। किसानों को तरह-तरह की रियायतें देकर नयी जमीन जोतने के लिए प्रोत्साहित किया गया। रिज़कुल्लाह मुश्ताकी कहते हैं कि एक इंच जमीन भी अनजुती नहीं छोड़ी गयी। राज्य कर के रूप में कृषि उत्पाद का एक तिहाई हिस्सा लिया करता था और इसे ग्रामीण पदाधिकारी **पटवारी** (वंशानुगत ग्रामीण पदाधिकारी), **खोत** और **मुकद्दम** (गांव का मुखिया) के माध्यम से वसूला जाता था। **जकात** कर (बिक्री और चुंगी या पारगमन कर) समाप्त कर दिए गए।

सुल्तान ने अपने साम्राज्य में किसानों को छूट दे रखी थी कि मूल्यांकन की प्रचलित तीन प्रविधियों में से किसी एक को अपना सकते हैं। राजस्व मूल्यांकन के तीन तरीके थे : फसल का बंटवारा (**बटाई**), माप (**जब्त** व्यवस्था), और **कनकूत** (मूल्यांकन)। सुल्तान सिकन्दर एक मानकीकृत माप व्यवस्था का पक्षधर था। ऐसा कहा जाता है कि उसने **अमीन** और **पटवारी** की सुविधा के लिए बत्तीस अँगुल का **गज-ए-सिंकदरी** निर्धारित किया। इसका उपयोग फसल कटने के समय किया जाता था। **पटवारियों** की यह जिम्मेदारी थी कि वे प्रति **बीघा** के हिसाब से उपज का हिसाब रखें और खेती की गयी भूमि का भी माप रखें।

शेरशाह और इस्लाम शाह ने भी कृषि व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। उन्होंने लोदी काल के राजस्व प्रशासन को फिर से सुव्यवस्थित किया। **परगना** और **सरकार** स्तर पर नये राजस्व पदाधिकारियों को नियुक्त करने के अलावा, शेरशाह ने भूमि अधिन्यासियों (**वजहदार** और **मुक्ता**) की शक्तियाँ और विशेषाधिकार कम कर दिए। राज्य को देय राजस्व को रोककर रखने वाले और अक्सर लूटपाट में हिस्सा लेने वाले विद्रोही ज़मींदारों को झुकने के लिए मज़बूर किया गया। जमींदार की सीमा में हुए किसी भी अपराध के लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराया जाता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अब प्रांत (**सरकार** और **विलायत**) के गवर्नर (**मुक्तियों** के लिए) फसल कटने के समय राजस्व मूल्यांकन की कोई भी विधि मनमाने ढंग से नहीं अपना सकते थे। **बटाई** और मूल्यांकन की विधि समाप्त कर दी गयी और सब जगह **ज़ब्त** (माप) को लागू किया गया। **जरीबाना** और **मुहास्सिलाना** (भूमि और राजस्व वसूली को मापने के लिए) जैसे अतिरिक्त कर समाप्त कर दिए गये। दोषी पदाधिकारियों को दंड दिया जाता था।

शेरशाह ने आदेश दिया कि प्रत्येक वर्ष कटाई के समय जोती गयी भूमि को मापा जाएगा। उत्पाद में राज्य के हिस्से का निर्धारण शाही नियम-कानून के अनुसार होगा। **मुल्तान** और सिंध के संयुक्त प्रांतों के अलावा यह व्यबस्था पूरे साम्राज्य में लागू थी। दमनात्मक बलूच शासन के कारण **मुल्तान** का क्षेत्र उजड़ चुका था। इसलिए शेरशाह ने अपने गवर्नरों को अपने क्षेत्रों के विकास का निर्देश दिया और किसानों से बंटाई के आधार पर उत्पाद का एक चौथाई हिस्सा वसूलने को कहा। बलूच सरदारों के पहले स्थानीय शासकों के समय में यही व्यवस्था प्रचलित थी। अन्य प्रांतों में राज्य का हिस्सा कुल कृषीय उत्पाद का एक तिहाई होता था।

अबुल फ़ज़ल कहता है कि भूमि उर्वरता के हिसाब से शेरशाह ने भूमि को तीन श्रेणियों (उत्तम, मध्यम और निम्न) में विभक्त किया था। इन तीनों तरह की भूमि से प्रति **बीघा** औसत पैदावार के अनुसार ही वसूली की जाती थी। इसका एक तिहाई हिस्सा राज्य के हिस्से में जाता था। राजस्व संकलनकर्त्ताओं की सुविधा और दिशा-निर्देश के लिए **रे** (प्रति बीघा उपज) तैयार कर ली जाती थी। अब बाजार भाव को आधार बनाकर राज्य के हिस्से को आसानी से नगदी भाव में बदला जा सकता था। अबुल फज़ल ने शेरशाह की इस उपलब्धि का उल्लेख किया है (विस्तार के लिए इकाई 27 देखिए) उसके अनुसार "शेरखाँ (शेरशाह) ने सभी प्रांतों में आज की दर के हिसाब से काफी कम दर से राजस्व की मांग की और किसानों तथा सेना की

सुविधा के लिए नगद में वसूली की।''अतः यह स्पष्ट है कि राज्य का हिस्सा प्रति बीघा में हुई उपज के आधार पर निर्धारित किया जाता था, पर वसूली करते वक्त उस क्षेत्र में चल रहे **बाजार भाव** के अनुसार फसल को नगदी में बदल दिया जाता था।

1553 में इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद उसके संबंधियों और भतीजों के बीच सिंहासन के लिए झगड़े हुए और पूरे साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गयी। दो साल तक यही क्रम जारी रहा और काफी लोग मारे गये। भुखमरी से बचने के लिए किसान दूर के इलाकों में भाग गये। इसी का फायदा उठाकर हुमायूं ने उत्तर भारत पर पुनः विजय प्राप्त की और नये सिरे से मुगल साम्राज्य की नींव डाली।

2.6.2 इक्ता व्यवस्था

पूरा साम्राज्य ''**खालिसा**'' और ''**इक्ता**'' में विभक्त था। **खालिसा** सीधा राजस्व मंत्रालय **दीवान-ए-विज़ारत** के अधीन था। **खालिसा** से वसूला गया राजस्व सीधे राजकोष में जाता था। लोदी काल के दौरान कई शहरों और **परगनों** को **खालिसा** के लिए आरक्षित कर लिया गया जहाँ सुल्तान के प्रतिनिधि के रूप में **शिकदार** सैन्य के साथ-साथ राजस्व प्रशासन की भी देख-रेख करता था। उसे वेतन और भत्ते दिए जाते थे, पर यह नगद वेतन उसके इलाके में वसूले गये राजस्व के बीस प्रतिशत से ज्यादा नहीं हो सकता था। सुल्तान जिन सरदारों को **परगना** या **सरकार** जैसी प्रशासनिक इकाइयों का राजस्व वसूल करने का जिम्मा देता था, उन्हें **शिकदार** से बड़ी सेना की देख-रेख करनी होती थी। आम तौर पर **खान** नामक अधिन्यासी का पद 5,000 सवार से 10,000 सवार (घुड़सवार) तक का हो सकता था। ऐसे अधिन्यासियों को या तो **मुक्ता** कहा जाता था या फिर **वजहदार**।

लोदी शासनकाल में **इक्ता** व्यवस्था (हमने ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03 के खंड-5 और 6 में दिल्ली सल्तनत के अधीन **इक्ता** व्यवस्था की विस्तार से चर्चा की है) के तहत जिन सरदारों को वेतन के बदले **इक्ता** प्रदान किया जाता था, उन्हें उस क्षेत्र विशेष की कानून व्यवस्था और रक्षा का जिम्मा भी संभालना पड़ता था। **दीवान-ए-विज़ारत** में उनके राजस्व लेखा को हर वर्ष जांचा और निबटाया जाता था। इसके अलावा, बुद्धिजीवियों या अन्य योग्य व्यक्तियों को दिए जाने वाले भूमि अनुदान और एक सरदार को दिए गए **इक्ता** में फर्क था। **इक्ता** के आकार में भी फर्क होता था। **इक्ता** में एक **परगना** शामिल हो सकता था, **परगना** से छोटा भी हो सकता था और कभी पूरी **सरकार** ही शामिल हो सकती थी। अगर **इक्ता** में वसूला गया राजस्व इ...**दार** के हिस्से से ज्यादा हो जाता था तो इस अधिशेष (**फवाज़िल**) को राजकोष में डाल दिया जाता था।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

लोदी शासन काल में **इक्ता** का हस्तांतरण अपवाद रूप में ही हुआ, अतः **इक्तादारों** ने **इक्ता** के आर्थिक विकास में काफी दिलचस्पी दिखाई। शक्तिशाली सरदारों ने अपने **इक्ता** के जमींदारों से दोस्ताना संबंध कायम किए और इस प्रकार केन्द्र के खिलाफ उन्हें स्थानीय सहयोग मिल गया। सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद ऐसी एक स्थिति उत्पन्न हो गयी जिसमें सरदारों और सुल्तान इब्राहिम लोदी (सिकन्दर लोदी का पुत्र और उत्तराधिकारी) के बीच ठन गयी।

इस स्थिति को टालने के लिए शेरशाह ने **इक्ता** को हस्तांतरणीय बना दिया। सरदारों का एक **इक्ता** से दूसरे **इक्ता** में स्थानातंरण हो सकता था। उदाहरण के लिए, एक वरिष्ठ सरदार शुज़ात खाँ सूर को चार बार बिहार से मालवा वहाँ से हरदिया **सरकार** वहाँ से फिर मालवा, स्थानांतरित किया गया।

2.6.3 नगरीकरण

यह बात आपको याद दिलानी जरूरी है कि इस काल में आर्थिक उन्नति होने से शहरों का विकास हुआ। बहलोल लोदी के शासन काल में शांति रही और पंजाब तथा अन्य क्षेत्रों में नये नगर बसाये गये। सिकन्दर लोदी के शासन काल में नगरीकरण की प्रक्रिया और तेज हुई। इस काल में शहरों और नगरों की स्थापना से संबद्ध जो स्रोत मिलते हैं, उनसे पता चलता है कि इस दिशा में सुल्तान और उनके सरदारों ने गंभीर प्रयत्न किए थे। इस काल में सुल्तानपुर (जालंधर जिला), सिकंदराबाद (बुलंदशहर जिला) और सिकंदराराऊ (अलीगढ़ जिला) जैसे महत्वपूर्ण शहर बसे। जलाली **परगना** में पिलखना गांव (अलीगढ़ जिला) के चारों ओर कई गांव बसाए गए और इस प्रकार पिलखना एक उपनगर के रूप में विकसित हो गया। इस दौरान भवन

निर्माण गतिविधि में भी तेजी आई। उदाहरण के लिए, पिलखना में बनी जामा मस्जिद का भव्य दरवाजा लोदी स्थापत्य शैली का एक नमूना है।

सुल्तान सिकंदर लोदी ने प्रमुख शहर आगरा की स्थापना की। इसे सुल्तान के कारीगरों ने यमुना के किनारे पोया और बासी गांव के बीच की ऊँची भूमि पर बनाया था, जो आगरा के पुराने किलाबंद शहर से कुछ दूर था। इस नये शहर के विकास के लिए इसे बनाये गये **सरकार** (एक अपेक्षाकृत बड़ा राज्य क्षेत्र) का मुख्यालय बना दिया गया और साथ ही दिल्ली की जगह इसे ही सल्तनत का भी मुख्यालय बना दिया गया सुल्तान और उसके सरदारों ने आगरा में अपने **कारखाने** स्थापित किए। इससे देश भर के दक्ष कलाकार विभिन्न शहरों और नगरों से खिंचे चले आये। इसी प्रकार दरबार की तरफ से प्रोत्साहित व्यापार से आकर्षित होकर व्यापारी यहां इकट्ठा होने लगे। विदेशों से भी व्यापारी आने लगे। इस क्रम में आगरा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख क्रेन्द्र बन गया।

बोध प्रश्न 3

1) सिकंदर लोदी की आर्थिक नीतियों का परीक्षण कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

MAADHYAM IAS

2) लोदी शासन काल में नगरीकरण पर एक टिप्पणी लिखें।

....
....
....
....
....
....
....

2.7 सारांश

सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अफगानों और खासकर लोदी वंश का राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभुत्व बना रहा। मुगलों का आगमन भी हो चुका था पर वे अफगान राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। वस्तुतः यह काल अस्थिरता का युग था। अफगान सरदार सुल्तान की निरंकुशता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इस काल की राजनीतिक घटनाओं के पीछे इस तथ्य का बहुत बड़ा हाथ रहा है। राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल, बहलोल अफगान सरदारों के द्वारा पूर्ण रूप से नियंत्रित था। सिकंदर ने सरदारों की कमर तोड़ी पर वह समझौते के लिए तैयार रहता था। पर इब्राहिम

लोदी और बाद में सूर शासकों ने निरंकुश केन्द्रीकृत राजतंत्र की स्थापना की और सरदारों को सुल्तान का मातहत बना दिया।

राजनीतिक अस्थिरता के बावजूद समृद्धि और आर्थिक स्थिरता थी, दाम कम थे, विभिन्न स्थानीय करों को घटा कर, कर का भार कम किया गया। लेकिन लोदी सुल्तानों ने **इक्ता** को वंशानुगत बना दिया। इस काल में शहरों का विकास हुआ। इस काल में आगरा सहित कई शहर उभरे। मुगलों के अधीन आगरा का महत्व और भी बढ़ा।

2.8 शब्दावली

अमीन : राजस्व निर्धारित करने वाला पदाधिकारी।
बाबरनामा : बाबर की आत्मकथा, इसे **तुजुक ए बाबरी** भी कहा जाता है।
इक्ता : वेतन के बदले भू-आबंटन।
कनकूत : राजस्व निर्धारण का एक तरीका जिसमें इलाके को मापा जाता था और राजस्व अनाज के रूप में निर्धारित और नगद धन या वस्तु के रूप में वसूल किया जाता था।
कारखाना : इस काल में **कारखाने** न केवल निर्माण-केन्द्र थे बल्कि वे भंडार-गृह का भी कार्य करते थे।
खालिसा : राजा की भूमि, इस भूमि का राजस्व राजकीय कोष के लिए सुरक्षित रखा जाता था।
परगना : कई गांवों को मिलाकर बनाई गई एक प्रशासनिक इकाई।
सरकार : कई **परगनों** को मिलाकर **सरकार** एक प्रशासनिक क्षेत्र बनता था। **परगना** और **सरकार** के बीच **शिक** होता था, पर अकबर और उसके बाद **शिक** का आमतौर पर उपयोग नहीं किया गया।
शिक : कई **परगनों** को मिलाकर प्रशासनिक इकाई **शिक** बनाई गई थी।
वाली/मुक्ता : प्रांतीय गवर्नर / **इक्तेदार**।
वज़ीर : प्रधानमंत्री।
विलायत : प्रांत। इस काल में प्रांत सुपरिभाषित प्रशासनिक इकाइयां नहीं थीं। 1580 ई० में पहली बार अकबर के शासन काल में सुपरिभाषित प्रांतों (**सूबे**) का उदय हुआ।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 2.2.1
2) कड़ा (इलाहाबाद के निकट) का गवर्नर; गुजरात का शासक; बिहार का गवर्नर; कालपी का गवर्नर; पंजाब का गवर्नर।

बोध प्रश्न 2

1) अफगान कबीलाई राजनीतिक व्यवस्था का उल्लेख कीजिए, कैसे यह विकेन्द्रीकरण पर आधारित थी, और इसकी तुलना केंद्रीकृत तुर्की राजनीतिक व्यवस्था से कीजिए (देखिए उपभाग 2.5.1)
2) देखिए उपभाग 2.5.2, शेरशाह और इस्लाम शाह दोनों की नीति पर विचार कीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए उपभाग 2.6.1, 2.6.2
2) देखिए उपभाग 2.6.3

इकाई 3 दक्खन तथा दक्षिण भारत में राजनीति और अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 भौगोलिक विन्यास
3.3 दक्खन में राजनैतिक संरचनाएँ
3.4 दक्षिण भारत में राजनैतिक संरचनाएँ
3.4.1 **नायक** राज्यों का उदय
3.4.2 मालाबार में स्थित राज्य
3.5 राज्य-व्यवस्था की प्रकृति : विभिन्न दृष्टिकोण
3.6 प्रतिष्ठित शासक वर्ग
3.7 अर्थव्यवस्था
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आपको निम्नलिखित के विषय में जानकारी मिल सकेगी :

- दक्खन एवं दक्षिण भारत की राज्य व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था पर पड़े भौगोलिक प्रभाव,
- दक्खन एवं दक्षिण भारत की राजनैतिक व्यवस्थाओं की प्रकृति,
- राजनीति तथा अर्थव्यवस्था में प्रतिष्ठित शासक वर्ग (**नायक** तथा **पोलीगार**) की भूमिका, तथा
- उभरते आर्थिक रूझानों, अर्थात इस क्षेत्र मे पुर्तगालियों के आगमन का प्रभाव।

3.1 प्रस्तावना

यह इकाई 8वीं से 15वीं शताब्दी के बीच के घटनाक्रम तथा दक्खन एवं दक्षिण भारत में दो बड़े साम्राज्यों (बहमनी एवं विजयनगर) के पतन के बाद जो कुछ घटा उसके बीच संपर्क सूत्र उपलब्ध कराती है। यह इकाई इस क्षेत्र में मुगलों के प्रवेश के साथ उभर कर सामने आने वाले घटनाक्रमों के लिए भी एक पृष्ठभूमि प्रदान करती है। इस इकाई का अध्ययन करने से दक्खन तथा दक्षिण भारतीय राज्यों की राज्य व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था के संदर्भ में 16वीं शताब्दी के दौरान हुए परिवर्तन तथा निरंतरता को समझने में मदद मिलेगी।

3.2 भौगोलिक विन्यास

राजनैतिक आर्थिक घटना विकास में भौगोलिक व्यवस्था एक अत्यंत निर्णायक भूमिका निभाती है। दक्षिण भारत तथा दक्खन के कुछ मूल भौगोलिक लक्षणों ने इस क्षेत्र के घटना विकास को प्रभावित किया। (ई. एच. आई.-03 का खंड 3 **देखें**।) मौटे तौर पर नर्मदा नदी के दक्षिण में स्थित समूचा क्षेत्र दक्षिण भारत कहलाता है। हालांकि, तकनीकी तौर पर यदि कहा जाये तो यह क्षेत्र दो बड़े इलाकों से मिलकर बना है, दक्खन तथा दक्षिण भारत।

दक्खन

ई. एच. आई.-03 की इकाई 12 में हमने दक्खन की भौगोलिक स्थिति पर कुछ चर्चा की थी। दक्खन उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में नर्मदा एवं महानदी नामक नदियों से घिरा हुआ है; जबकि नीलगिरी की पहाड़ियां और पैनार नदी इसकी दक्षिणी सीमा निर्धारित करती हैं। पश्चिम तथा पूर्व में, दोनों तरफ लंबे समुद्री तट सहित पश्चिमी एवं पूर्वी घाट मौजूद हैं। विशाल पश्चिमी समुद्री तट तथा सहयाद्री पहाड़ियों के बीच का क्षेत्र कोंकण कहलाता है, जो कि दक्खन का एक उप-क्षेत्र है। समूची पट्टी घने जंगलों से भरी हुई है और भूमि पर्याप्त रूप से उपजाऊ नहीं है। सामरिक दृष्टि से इस क्षेत्र का भारी महत्व है। इसलिए वहां पर अनेक मजबूत दुर्गों का निर्माण किया गया था। चौल तथा दाभोल के मशहूर बंदरगाह भी इसी क्षेत्र में पड़ते हैं। यहां पहुंचना कठिन होने की वजह से स्थानीय सरदारों (**देशमुखों**) की निष्ठाएं अक्सर बदलती रहीं और कई बार वह केन्द्रीय सत्ता की भी अवहेलना करते रहे। आप यह पाएंगे कि मराठों के उदय में भी निर्णायक भूमिका भौगोलिक स्थिति ने ही निभाई थी। इसके पहाड़ी एवं जंगली क्षेत्रों के कारण दक्खन राज्यों में घुसपैठ करना कठिन था। किन्तु दक्षिण गुजरात की तरफ से उपजाऊ बगलाना क्षेत्र से होकर यहां आसानी से पहुंचा जा सकता था। इसी वजह से गुजराती शासकों द्वारा बार-बार इस पर धावे बोले गए। अंततः 16वीं शताब्दी में, पुर्तगालियों ने इस क्षेत्र के संतुलन को बदल दिया। मामूली भिन्नताओं के साथ गोवा बहमनी तथा विजयनगर राज्यों के बीच की सीमाएं निर्धारित करता था।

मध्य दक्खन (अजंता पर्वत श्रेणियों से नीलगिरी पहाड़ियों तथा पालाघाट दर्रे तक) में काली मिट्टी मौजूद है जो कि कपास की खेती के लिए अच्छी है। ताप्ती, वर्धा तथा पेनगंगा नदियों के किनारे स्थित महाराष्ट्र के खानदेश तथा बरार क्षेत्र उपजाऊ जमीन के लिए मशहूर थे। इससे खेरला तथा माहुर पर कब्जा करने के लिए मालवा तथा बहमनी शासकों के बीच निरंतर झड़पों का रास्ता तैयार हुआ। (विस्तृत जानकारी के लिए ई. एच. आई.-03 पाठ्यक्रम की इकाई 11,12 तथा 28 देखिए)।

कृष्णा एवं गोदावरी के बीच समतल मैदानी क्षेत्र स्थित है जो कि कपास की खेती के लिए उपजाऊ जमीन के लिए भी मशहूर है। उसके बाद तेलंगाना क्षेत्र पड़ता है। उसकी जमीन रेतीली है और उसमें नमी को बनाये रखने की क्षमता नहीं है। नदियों में भी पूरे वर्ष पानी नहीं रहता है। इसके परिणामस्वरूप जलाशयों से सिंचाई करना जरूरी बन गया। कृष्णा घाटी के साथ कुरनूल की चट्टानें स्थित हैं जहां पर हीरे की मशहूर गोलकुंडा खदानें स्थित थीं। दक्षिणी दक्खन का पठार (जिसका कुछ हिस्सा आधुनिक कर्नाटक राज्य में पड़ता है) भी खनिज स्रोतों (तांबा, सीसा, ज़िंक, लोहा, सोना, मैंगनीज़ इत्यादि) से समृद्ध है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

दक्षिण भारत

कृष्णा-तुंगभद्रा दोआब के दक्षिण में स्थित क्षेत्र दक्षिण भारत का निर्माण करता है। पूर्व में स्थित तटीय क्षेत्र कोरोमंडल कहलाता है जबकि केनरा के दक्षिण में (नेत्रावती नदी से कन्याकुमारी तक) स्थित पश्चिमी क्षेत्र मालाबार के नाम से जाना जाता है, जो कि पूर्व में पश्चिमी घाटों से घिरा हुआ है। इस पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं (ई. एच. आई.-03 पाठ्यक्रम की इकाई 12 एवं 27 देखिए) कि किस प्रकार से चोल शासकों के दौरान गतिविधियों का केन्द्र मुख्यतः कावेरी क्षेत्र के आसपास तक सीमित था, जो कि, विजयनगर काल के दौरान, पुनः उत्तर-पूर्व में तुंगभद्रा-कृष्णा दोआब (रायलसीमा क्षेत्र) की तरफ सरक गया, जहां विजयनगर की राजधानी स्थित थी। 13वीं से 16वीं शताब्दी के बीच की समूची अवधि में यह क्षेत्र संघर्षों का केन्द्र बना रहा, पहले विजयनगर एवं बहमनी शासकों के बीच तथा बाद में विजयनगर तथा इसके उत्तराधिकारी **नायक** राज्यों तथा बीजापुर के शासकों के बीच। कुतुब शाही शासक भी बार-बार इस टकराव में शामिल रहे।

एक अन्य विशेषता, जिसने 16वीं शताब्दी की दक्षिण भारतीय राज्य-व्यवस्था, अर्थव्यवस्था तथा समाज पर प्रभाव डाला, वह थी (दक्षिण भारत के) उत्तरी क्षेत्र से तेंलुगु आबादी का प्रवास, जो 15वीं शताब्दी के मध्य से शुरू हुआ और 16वीं शताब्दी में भी जारी रहा। दिलचस्प बात यह है कि लोगों का यह आगमन तटीय एवं डेल्टाकार नमी वाले भू-क्षेत्रों से हुआ था, जो कि काफी उपजाऊ और अच्छी कृषि व सिंचाई सुविधाओं वाले क्षेत्र थे। इस प्रवास के अनेक कारण संभव हो सकते हैं, जैसे बहमनी दबाव, विजयनगर के शासकों द्वारा अपने राज्यों का दक्षिण की तरफ और अधिक विस्तार करने के लिए जानबूझ कर किए गए प्रयत्न, सहज प्रक्रिया अर्थात अधिक घनी आबादी वाले क्षेत्रों से पलायन, प्रवासियों (जो सूखी खेती में निपुण थे) के लिए सूखी खेती (जहां सिंचाई के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग किया जाता हो) करने के लिए यहाँ की

जमीन अधिक अनुकूल रही हो इत्यादि । कारण कुछ भी रहा हो, इसका गहरा सामाजिक-आर्थिक प्रभाव पड़ा । जैसा कि आप देखेंगे कि सूखी खेती के विकास ने जलाशयों से होने वाले सिंचाई का मार्ग प्रशस्त किया जो कि सोलहवीं शताब्दी के दक्षिणी भारत की अर्थव्यवस्था का निर्णायक हिस्सा बन गई । दूसरे यह कि इसकी अपेक्षाकृत कम उत्पादकता के परिणामस्वरूप अतिरिक्त उत्पादन (surplus) कम प्राप्त हुआ जिसने इस क्षेत्र में उन वर्गों की उत्पति में मदद की, जिन्हें आधुनिक **विद्वान** "पोर्टफोलियो पूंजीपति" कहते हैं ।

3.3 दक्खन में राजनैतिक संरचनाएँ

बहमनी सत्ता के पतन ने दक्खन में 5 राज्यों के उदय का रास्ता तैयार किया (ई. एच. **आई.-3 की इकाई** 28 देखिये) । अफाक़ी कुलीन महमूद गावां की मृत्यु से दक्खन में बहमनी सत्ता को काफी धक्का पहुंचा था और अंततः बहमनी **शासक** महमूद शाह (1482-1518) की मृत्यु से बहमनी शासन का अंत हुआ । इस पतन का निर्णायक कारक अफाकियों व दक्खनियों के बीच लंबे समय से चला आ रहा टकराव था । ये दोनों ही समुदाय असंतुष्ट थे, उदाहरण के लिए, दक्खनियों ने अफाकियों को अतिरिक्त रियायतें देने के लिए सुल्तान को दोषी ठहराया जबकि अफाकियों का विचार था कि उनकी स्थिति अब उतनी सुरक्षित एवं स्थिर नहीं रह गयी है ।

ये कारक जिन्होंने दक्खन राज्यों की स्थापना में अपना योगदान किया था बहमनी शासन के दौरान ही उभरना शुरू हो गये थे । बहमनी शासन पराभव की तरफ बढ़ रहा था । यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि सभी दक्खनी राज्यों के संस्थापक किसी न किसी समय पर बहमनी कुलीन रहे थे तथा जिन्होंने किसी न किसी बहमनी शासक की सेवा की थी । उदाहरण के लिए, यूसुफ आदिल शाह जिसने 1489 में बीजापुर में आदिल शाही वंश की स्थापना की थी बीजापुर का **तरफदार** रहा था । अहमदनगर (1496) में निज़ाम शाही राज्य का संस्थापक निज़ाम शाह बहरी, सहयाद्री पर्वत श्रेणियों में अनेक दुर्गों का प्राभारी रहा था । बीदर (1504) में बरीद शाही वंश के संस्थापक कासिम **बरीद-उल मुमलिक़** ने बीदर के **कोतवाल** के साथ-साथ **वकील** के रूप में भी महमूद शाह के शासन काल में सेवा की थी । बरार (1510) के इमाद शाही वंश के संस्थापक फतहउल्लाह इमाद शाह ने बरार के **तरफदार** के रूप में सेवा की थी और कुतुब शाही वंश की गोलकुंडा (1543) में स्थापना करने वाले कुली कुतबुलमुल्क ने तेलंगाना की गवर्नरशिप संभाली हुई थी ।

MAADHYAM IAS

बहमनी राज्यों के पतन के बाद उभरे 5 राज्यों में से तीन : बीजापुर, बीदर, तथा गोलकुंडा के संस्थापक अफाकी कुलीन थे । अहमदनगर तथा बरार दक्खनी कुलीनों के अधीन थे । किन्तु अफाकी-दक्खनी कारक शायद ही उनके पारस्परिक संबंधों पर हावी रहा हो । इसकी बजाय यह इस बात पर अधिक आधारित था कि उनके हितों, परिस्थितियों तथा समय की आवश्यकताओं के अनुकूल क्या ठीक रहेगा । तदनुसार कोई अफाकी राज्य किसी एक दक्खनी राज्य के खिलाफ किसी अन्य दक्खनी राज्य तक से हाथ मिलाता रहा या इसके विपरीत भी होता रहा ।

सोलहवीं शताब्दी के दक्खन राज्यों के इतिहास का अध्ययन अलग-अलग करके नहीं किया जा सकता । प्रत्येक राज्य अन्य राज्य की कीमत पर अपने शासन का विस्तार करना चाहता था । जिसके परिणामस्वरूप गठजोड़ एवं जवाबी गठजोड़ एक नियमित लक्षण बने रहे ।

जैसा कि बार-बार इंगित किया गया है भौगोलिक स्थिति ने दक्खन की राजनीति में निर्णायक भूमिका अदा की । अहमदनगर (उत्तर में), गोलकुंडा (पूर्व में) तथा बीजापुर (दक्षिण में) की भौगोलिक स्थिति इस तरह की थी कि उसने उत्तर तथा दक्षिण की तरफ विस्तार के लिए उन्हें पर्याप्त अवसर प्रदान किया । अतः इन राज्यों के पास शक्ति अर्जित करने का प्राकृतिक लाभ बना रहा । बीदर एवं बरार (जो कि मध्य दक्षिण में स्थित थे) पिस गये क्योंकि वे शक्ति गुटों के बीच में स्थित थे, वे किसी न किसी दक्खनी सत्ता के हाथों की कठपुतली मात्र बनकर रह गए । शायद निष्ठाएँ बदलते रहना ही उनके अस्तित्व के लिए एकमात्र रणनीति थी । बीजापुर (जो कि उत्तर में अहमदनगर, पूर्व में बीदर तथा दक्षिण में विजयनगर और उसके उत्तराधिकारी **नायक** राज्यों से घिरा हुआ था) में कृष्णा-तुंगभद्रा दोआब के उपजाऊ मैदानी क्षेत्रों को प्राप्त करने की

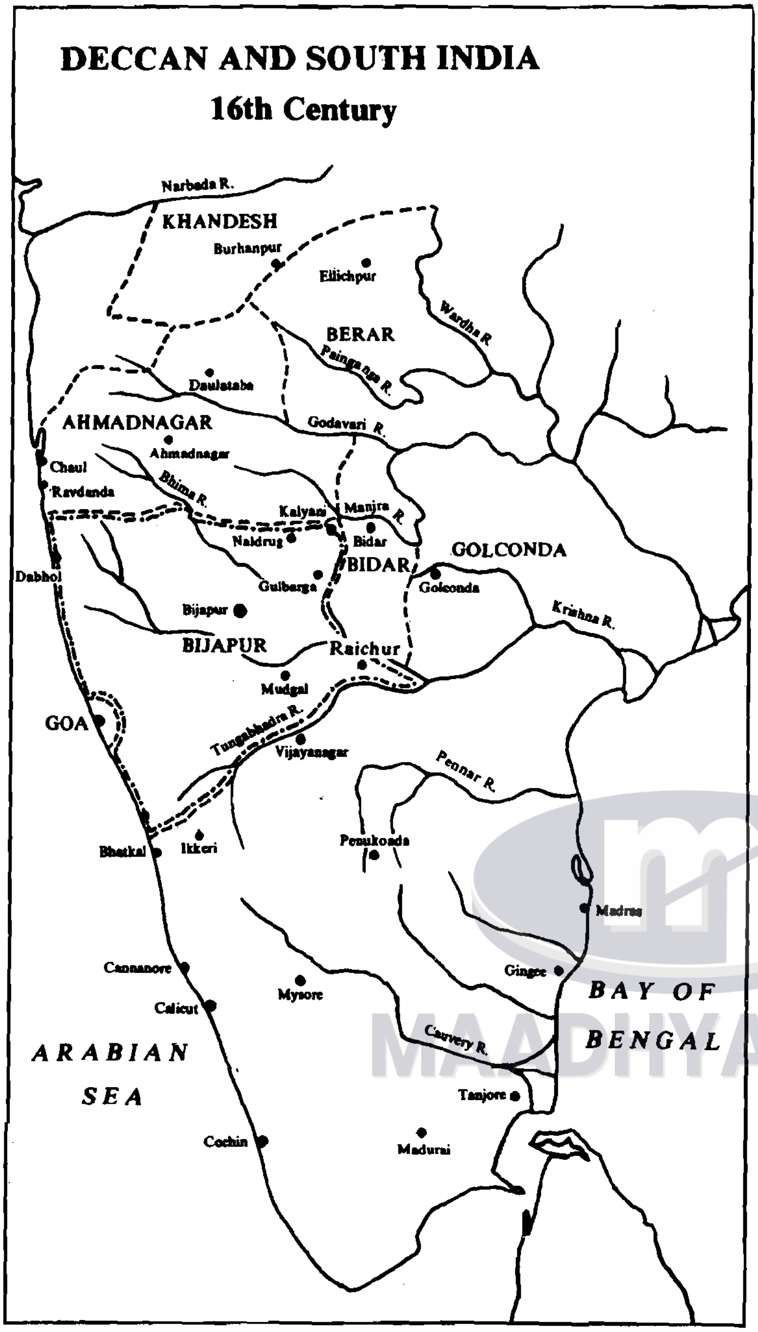

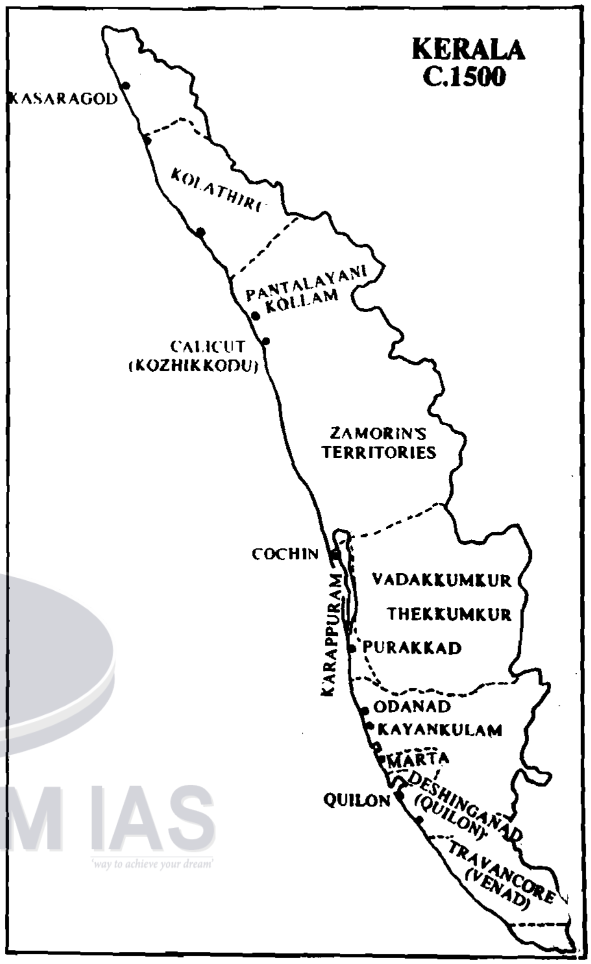

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

लालसा थी। जिससे दक्षिण भारतीय राज्यों तथा बीदर एवं गोलकुंडा के हितों पर सीधी चोट पहुंची। पुनः शोलापुर एवं नालदुर्ग में बीजापुर के हित ही अहमदनगर के साथ हुए टकराव के पीछे प्रमुख कारक थे। गोलकुंडा के लिए (जो कि उत्तर में बरार, पश्चिम में बीदर तथा दक्षिण में विजयनगर एवं उसके उत्तराधिकारी नायक राज्यों से घिरा हुआ था) बीदर एवं बरार का अस्तित्व गोलकुंडा एवं बीजापुर तथा अहमदनगर एवं गोलकुंडा के बीच प्रतिरोधक के तौर पर काम करने के लिए काफी महत्व रखता था। गोलकुंडा ने मुदगल एवं रायचूर दोआब में अपनी महत्वाकांक्षी योजनाओं के लिए अहमदनगर से सहायता लेना बेहतर समझा। दूसरी तरफ नालदुर्ग, शोलापुर तथा गुलबर्ग पर बीजापुर की आक्रामक योजनाओं के खिलाफ अहमदनगर को भी गोलकुंडा की मदद की जरूरत थी। बरार लगातार पश्चिम में अहमदनगर के साथ तथा दक्षिण में गोलकुंडा के साथ टकराव में उलझा रहा। गठबंधन करने के लिए केवल बीजापुर राज्य ही शेष बचा था इसलिए 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बीजापुर-बरार गठबंधन अधिक समय तक कायम रहा किन्तु शताब्दी के उत्तरार्द्ध में धीरे-धीरे परिस्थिति बदल गई। इसकी वजह यह थी कि बीजापुर के हित गोलकुंडा तथा विजयनगर के विरुद्ध टकराव की स्थिति में अहमदनगर तथा बीदर का समर्थन जुटाने पर अधिक जोर देते थे। 1574 में बरार पर कब्जा करने में बीजापुर ने मुर्तज़ा निज़ाम शाह की मदद की। 1619 में बीजापुर ने बीदर पर कब्जा कर लिया। हालांकि मुगलों के उदय के साथ ही दक्खन के परिदृश्य में जबरदस्त बदलाव आ गया। मुगलों ने 1595 में अहमदनगर पर आक्रमण किया इस आक्रमण ने दक्खनी राज्यों को नये समझौते तथा संतुलन हासिल करने के लिए विवश किया (विस्तृत जानकारी के लिए इकाई 9 देखें)।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए:

कोंकण ....

....

मालाबार ....

....

MAADHYAM IAS

कोरोमण्डल ....

....

2) निम्नलिखित का मिलान कीजिए:

क		ख	
1.	बीजापुर	क.	निजाम शाही
2.	गोलकुंडा	ख.	बरीद शाही
3.	बरार	ग.	आदिल शाही
4.	बीदर	घ.	इमाद शाही
5.	अहमदनगर	ङ.	कुतुब शाही

3) सही/गलत वक्तव्यों पर (√ या ×) के निशान लगाइये :

i) निज़ाम शाही शासक रायचूर दोआब पर कब्जा करना चाहते थे।

ii) अफाकी-दक्खनी कारक द्वारा दक्खन में उत्तर-बहमनी राजनीति में शायद ही कोई उल्लेखनीय भूमिका निभाई गई हो।

iii) 1550 के बाद बीजापुर के बरार के साथ संबंधों में परिवर्तन आया।

iv) गोलकुंडा मुदगल तथा शोलापुर पर कब्जा करना चाहता था।

3.4 दक्षिण भारत में राजनैतिक संरचनाएँ

1500 ई० तक मालाबार (दक्षिण-पश्चिमी तट) तथा तिरूनेलवेली को छोड़कर शेष समूचे दक्षिणी भारत को विजयनगर साम्राज्य का हिस्सा बना लिया गया। बाद में, तिरूनेलवेली को भी (1540 में) विजयनगर

साम्राज्य ने हथिया लिया। हमारे अध्ययन के तहत आने वाले काल के प्रारंभ में मालाबार क्षेत्र में चार स्वतंत्र राज्य मौजूद थे : ''कोलाथिरियों द्वारा शासित कोलाथुनाड (कैन्नानोर)'', समुद्री राजाओं द्वारा शासित कोज़ीकोड (कालीकट), तिरूवेदियों के आधिपत्य के तहत वेनाड तथा उभरता हुआ कोचीन राज्य। 16वीं शताब्दी के दौरान, विजयनगर साम्राज्य के भीतर इक्केरी, सेन्जी (जिन्जी), ओडेयार मैसूर, मदुरई तथा तन्जौर के **नायक** राज्यों का उदय हुआ जो केवल नाममात्र के लिए विजयनगर के अधिनस्थ बने रहे।

कृष्ण देव राय तथा उसके अधिकारियों के मातहत दक्षिण भारत में राजनैतिक संरचनाओं के बारे में पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03 की इकाई 27 में विचार किया गया है। यहां हम **नायक** राज्यों तथा मालाबार राज्यों पर जोर देगें।

3.4.1 नायक राज्यों का उदय

आप यह जानना चाहेंगे कि **नायक** राज्यों की उत्पत्ति कब हुई? कुछ इतिहासकारों (नीलकंठ शास्त्री आदि) का मानना है कि विजयनगर की पराजय (1565 में) ने विद्रोहों को जन्म दिया। इसने **''पलायगरों की निरंकुशता''** में भी बढ़ोत्तरी की जिसके परिणामस्वरूप मदुरा, तंजौर तथा सेन्जी के **नायकों** ने स्वतंत्रता प्राप्त की। किन्तु अन्य इतिहासकारों (बर्टन स्टीन आदि) के अनुसार **नायकों** के उदय को 1530 से खोजा जा सकता है। इस विवाद में और अधिक जाए बिना हम यहां पर प्रत्येक **नायक** राज्य के विकास का संक्षिप्त विवरण करेंगे।

सेन्जी

सेन्जी का राज्य (पूर्वी तट के किनारे उत्तर में पालार से लेकर दक्षिण में कोल्लेरून तक) नायक शासकों के अधीन कृष्ण देव राय के शासन काल के दौरान शुरू हुआ प्रतीत होता है। वैअप्पा (1526-1544) इसका प्रथम **नायक** था। 1592 तक सेन्जी के सभी **नायक** विजयनगर के प्रति वफ़ादार बने रहे। हालांकि, विजयनगर के शासक वेंकट प्रथम ने **नायकों** पर विजयनगर के प्रभाव को मजबूत बनाने के इरादे से 1592 के बाद अपनी राजधानी पेनुकोंडा से बदलकर चन्द्रगिरी में स्थापित की। इससे **नायकों** में आक्रोश व्याप्त हो गया क्योंकि इससे उन्हें अपने अंदरूनी मामलों में विजयनगर की दखलंदाज़ी का अंदेशा हुआ। (नायकों द्वारा बार-बार विजयनगर को अदा किए जाने वाले नजराने के प्रति उपेक्षाभाव प्रकट करने का मुख्य कारण भी यही था, जिसने अंततः 1614 में वेंकट प्रथम की मृत्यु के बाद गृहयुद्ध का रास्ता तैयार किया।) इस तरह की दखलंदाजी का एक उदाहरण वैलोर का **नायक** था, जो कि सेन्जी के **नायकों** के अधीन कार्यरत था, वेंकट प्रथम द्वारा उसे प्रोत्साहित किया गया कि वह सेन्जी के **नायकों** की सत्ता को अस्वीकार कर दे। वेंकट प्रथम ने साम्राज्य के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों के **नायकों** को कमज़ोर बनाने के लिए ''फूट डालो और राज करो'' की नीति का अनुसरण किया। इस सब के कारण वैलोर तथा सेन्जी के **नायकों** ने विद्रोह किया (1600 के कुछ समय बाद) बाद में (1604-1608) वेंकट प्रथम ने वैलोर तथा सेन्जी पर कब्जा कर लिया।

तंजौर

नायकों के अधीन तंजौर (आधुनिक तंजौर तथा उत्तरी अरकॉट) का उदय 1532 में अच्युतराय के शासन काल के दौरान सेवप्पा नायक के अधीन हुआ। तंजौर के **नायक** समूची 16वीं शताब्दी के दौरान विजयनगर शासकों के प्रति वफादार बने रहे। उन्होंने हमेशा लड़ाइयों में विजयनगर साम्राज्य का साथ दिया। उदाहरण के लिए, गोलकुंडा पर आक्रमण के समय उन्होंने वेंकट प्रथम की सहायता की और यह वफादारी 1614 मे वेंकट प्रथम की मृत्यु के समय तक जारी रही।

मदुरा

मदुरा (कावेरी के दक्षिण में) को कृष्ण देव राय के शासनकाल के आखिरी वर्षों के दौरान (1529) **नायक** के नियंत्रण में लाया गया। पहला **नायक** विश्वनाथ (मृत्यु 1564) था। आम तौर पर वह और उसके उत्तराधिकारी विजयनगर के प्रति वफादार बने रहे, यहां तक कि तालीकोटा की लड़ाई के समय भी उन्होंने विजयनगर शासक का साथ दिया। उन्होंने पुर्तगालियों के खिलाफ भी साम्राज्य की मदद की। किन्तु **1580 के दशक के आरंभ में, वेंकट प्रथम तथा वीरप्पा नायक के बीच तनाव उत्पन्न हो गया। शायद वीरप्पा नायक ने उस नज़राने की उपेक्षा करने का प्रयास किया जिसे वेंकट ने अपनी सेना भेजकर राजस्व**

देने के लिये मज़बूर किया। पुनः मुटट् कृष्णप्पा नायक ने 1605 के आसपास **नज़राना** अदा नहीं किया तो **वैंकट प्रथम को एक बार फिर अपनी सेनाएं भेजनी पड़ी। इससे यह प्रदर्शित होता है कि अपने शासन-काल के अंतिम वर्षों के दौरान, जब वैंकट प्रथम ने** अधिक से अधिक केन्द्रीकरण थोपा **तो नायकों** ने उसकी सत्ता **को चुनौती देने का प्रयत्न किया।**

इक्केरी

इक्केरी (उत्तरी कर्नाटक) के **नायकों** का उदय भी कृष्ण देव राय के शासनकाल में ही हुआ। पहला **नायक** केलाडी नायक चौडप्पा था जिसने अच्युतराय तथा रामराय की सेवा की थी। चौडप्पा के बेटे व उत्तराधिकारी, सदाशिव नायक (1540-65) ने रामराय के हाथों बीजापुर की पराजय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और इसके पुरस्कार के रूप में बाद में उसे रामराय द्वारा ''राय'' की उपाधि से सम्मानित किया गया। इक्केरी के तुलू नायक 16वीं शताब्दी के शुरू से अंत तक विजयनगर के वफादार बने रहे किन्तु 17वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में वे वैंकटप्पा नायक प्रथम (1586-1629) के समय खास तौर पर स्वतंत्र हो गये। इक्केरी के **नायकों** को हमेशा बीजापुर के भारी दबाव का सामना करना पड़ा किन्तु वे उसके हमलों को नाकाम करने में सक्षम रहे। इसके अलावा उन्हें मैसूर के ओडियार **नायकों** की शत्रुता का भी सामना करना पड़ा। इक्केरी के नायक गरसोप्पा को भी लालच की दृष्टि से देखते थे, जो कि उत्तरी कैनारा में कालीमिर्च की खेती के लिए सबसे अधिक समृद्ध भूमि थी। इसकी वजह से गरसोप्पा की रानी भैरवदेवी को कमजोर बनाने के लिए नियमित अभियान चलाये गये।

ओडियार मैसूर

ओडियार **नायकों** का इतिहास 1399 तक के सुदूर अतीत तक जाता है जबकि वे इस क्षेत्र में आकर बस गये थे। किन्तु चामराजा तृतीय (1513-53) तथा उसके पुत्र तिम्मराजा (1553-72) के अधीनस्थ ही ओडियारों को प्रमुखता हासिल हुई। इस क्षेत्र पर (खासतौर से उम्मेटूर पर) कभी भी विजयनगर का संपूर्ण नियंत्रण नहीं रह सका। हम यह पाते हैं कि विजयनगर के सबसे शक्तिशाली शासक कृष्ण देव राय के लिए **भी उम्मेटूर के इन मुखियाओं को दबा पाना कठिन रहा। ओडियार नायकों ने विजयनगर की सत्ता का उल्लंघन करना जारी रखा अंततः श्रीरंगपट्टम में विजयनगर के प्रतिनीधि को हटाकर 1610 में ओडियार राजा को अंतिम सफलता प्राप्त हुई तथा उसने श्रीरंगपट्टम को अपनी राजधानी बनाया।**

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

3.4.2 मालाबार में स्थित राज्य

15वीं शताब्दी तक आते-आते मालाबार में तीन प्रमुख राज्य विद्यमान थेः (i) कोलाथुनाड अथवा कैन्नानूर (कालीकट के उत्तर में नेत्रावती नदी से लेकर दक्षिण में कोरापुज्हा तक; कोलाथिरियों द्वारा शासित), (ii) कोजीकोड अथवा कालीकट (उत्तर में कोलाथिरी राज्य तथा दक्षिण में ज़मोरिन द्वारा शासित तिरूवदी राज्य के बीच), (iii) वेनाड अथवा ट्रावनकोर (उत्तर में क्वीलोन से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक), (iv) इसके अलावा कोचीन एक उदीयमान राज्य था। 16वीं शताब्दी की मालाबार की राज्य व्यवस्था का प्रमुख लक्षण, कोलाथुनाड तथा कोज़ीकोड के बीच तथा साथ ही कोज़ीकोड तथा कोचीन के (नायर) राजाओं के बीच चलने वाला चिरस्थाई युद्ध था। कोलाथुनाड तथा कोचीन (क्षत्रीय) राजाओं द्वारा एक दूसरे से श्रेष्ठ वंशावलियों के दावे किए जा रहे थे। इन चार प्रमुख शासकों के अलावा, तानुर, क्रैन्गानौर, मंगत, इडापल्ली, वेडाक्कुमकुर , प्रोकॉड, कयामकुलम तथा क्वीलोन में अनेक छोटे स्वायत्त शासक/राजा मौजूद थे। क्रैन्गानौर, इडापल्ली तथा वेडाक्कुमकुर के राजा कालीकट के अधीनस्थ थे। इडापल्ली कालीकट के लिए महत्वपूर्ण था क्योंकि यह कोचीन के विरुद्ध उसकी कार्यवाहियों के लिए आधार उपलब्ध कराता था। दिलचस्प बात यह है कि केरल की सामाजिक-राजनैतिक संरचना कुछ इस तरह की थी कि अक्सर राजाओं को एक दूसरे के राज्य क्षेत्र में कुछ अधिकार एवं संपत्तियां हासिल रहती थीं। इस तरह मालाबार की राजनैतिक संरचना में, अतिरिक्त प्रादेशिक दावे किए जाने की काफी गुंजाइश मौजूद थी। उदाहरण के लिए, कालीकट को कोचीन और ट्रावनकोट के मंदिरों पर अनेक अधिकार प्राप्त थे। इसी तरह ऐसे अनेक राजा थे जो कि कालीकट के अधीनस्थ नहीं थे किंतु ज़मोरिन के राजा के क्षेत्र के तहत आने वाले अनेक मंदिरों पर वे अपने प्राधिकार का इस्तेमाल करते थे। यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक रहेगा कि 16वीं शताब्दी के दौरान, कालीकट को अन्य मालाबार राज्यों पर कुछ विशिष्ट लाभ हासिल थे—यह पश्चिमी व्यापार का बड़ा केन्द्र था, इसके पास शक्तिशाली नौ सेना थी और इसे अरब के सौदागरों का समर्थन हासिल था, जो कि हथियार एवं घोड़े प्रदान करते थे।

16वीं शताब्दी का मालाबार का इतिहास भारत में पुर्तगालियों के आरंभिक इतिहास का समकालीन है। (मालाबार में पुर्तगाली शासन की स्थापना के लिए इकाई-04 **देखिए**।) कालीकट के अरब सौदागर शुरू से ही पुर्तगालियों के मंसूबों के बारे में सशंकित थे। ज़मोरियों ने यूरोपीय शक्तियों के खिलाफ उनका समर्थन किया। दूसरी तरफ कैन्नानूर तथा कोचीन के साथ कालीकट की शत्रुता ने उन्हें पुर्तगालियों से मित्रता करने के लिए विवश कर दिया। उस समय के कोचीन के राजा के गद्दी पर बैठते समय ही उसका तख्ता पलट देने के लिए हर हथकंडा इस्तेमाल किया गया। इसके अलावा उन्होंने कोचीन को अपना सारा माल कालीकट के माध्यम से बेचने के लिए मजबूर किया। ऐसा उसने कालीकट से बदला लेने के लिए किया था। हालांकि कोचीन के शासक ने यूरोपियों को कोचीन में एक कारखाना लगाने की इज़ाज़त दी। इससे पुर्तगालियों ने अपने लाभ के लिए परिस्थिति का भरपूर इस्तेमाल किया। उन्होंने महसूस किया कि मालाबार तट पर व्यापार नियंत्रण करने में मुख्य रूकावट कालीकट ही है। अतः 16वीं शताब्दी के दौरान पुर्तगालियों ने कालीकट के खिलाफ हथियारबंद टकराव जारी रखे। पुर्तगालियों को खदेड़ देने के इरादे से, ज़मोरिन ने कई बार बीजापुर, गुजरात, अहमदनगर तथा मिस्त्र के साथ संयुक्त मोर्चा बनाया। हालांकि इन प्रयासों में उसे कोई सफलता नहीं मिल सकी। कुछ भी हो, ज़मोरिन भूक्षेत्रों पर पुर्तगालियों के लिए समस्या बने रहे। यहां तक कि समुद्र पर भी पुर्तगालियों के लिए कालीकट की नौ सेना को ध्वस्त करना कठिन हो गया। कालीकट की यह नौ सेना विशेषज्ञों के सुविख्यात मरक्कार परिवार के नेतृत्व में संगठित थी। 1528 से 1598 तक पुर्तगालियों और ज़मोरिन के बीच का टकराव मुख्यतः समुद्र तक सीमित रहा। अंततः 1599 में पुर्तगाली मरक्कारों के खिलाफ जीत हासिल करने में सफल हो सके।

पुर्तगालियों का नियंत्रण केवल उन स्थानों पर ही प्रभावी था, जहां उन्होंने अपने किलों का निर्माण कर लिया था – कैन्नानोर, कोचीन, प्रौकॉड तथा क्वीलोन। किंतु पुर्तगालियों की स्वेच्छाचारिता और बर्बरता ने उनके इन मित्रों को, कालीकट के साथ अपनी परंपरागत शत्रुता के बावजूद, उनसे नाता तोड़ लेने पर विवश कर दिया। उदाहरण के लिए, कैन्नानोर के शासकों ने, जिन्होंने आरंभिक वर्षों में कालीकट के विरुद्ध पुर्तगालियों का समर्थन किया था, बाद में 1558-60 में पुर्तगालियों के विरुद्ध ज़मोरिन का पक्ष लिया। इसी तरह, तानूर का राजा, जो ईसाई बन गया था तथा उसने कालीकट के खिलाफ पुर्तगालियों का समर्थन क़िया था, उसने भी पुर्तगालियों से मुंह मोड़ लिया। दरसअल केवल कोचीन, प्रोकॉड तथा क्वीलोन ही थे जिनके साथ पुर्तगाली एक स्थाई मैत्री कायम रख पाने में सफल रहे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 2

1) मालाबार के राज्यों के नाम बताइये।

....

....

....

....

2) **नायक** राज्यों का उदय कब हुआ?

....

....

....

....

3) 16वीं शताब्दी के दौरान **नायक**-विजयनगर सबंधों की प्रकृति की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

4) जमोरिन कौन थे? पुर्तगालियों के साथ उनके संबंधों की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

3.5 राज्य-व्यवस्था की प्रकृति : विभिन्न दृष्टिकोण

दक्खनी राज्यों की राजनैतिक संरचनाओं की प्रकृति दक्षिण भारत की राजनैतिक संरचनाओं की प्रकृति से थोड़ी भिन्न थी। हाल ही में संजय सुब्रहमण्यम द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार पेन्नार के उत्तर एवं दक्षिण में स्थित राज्यों, अर्थात दक्खन तथा विजयनगर एवं उत्तराधिकारी **नायक** राज्यों के बीच मामूली अंतर ही विद्यमान था। इतिहासकार संजय सुब्रहमण्यम ऐसा इसलिए मानते हैं क्योंकि सभी जगहों पर नज़राना देने वाले मुखियाओं (**नायकों** एवं **पलाईयाक्करारों** आदि) की उपस्थिति तथा ठेके पर राजस्व वसूलने की प्रथा की मौजूदगी आदि देखने को मिलती है।

दक्खनी राज्यों ने अपने पूर्वजों अर्थात बहमनियों की प्रणाली का व्यापक तौर पर अनुसरण किया था। इसीलिए तुर्की-ईरानी तत्वों का वर्चस्व था। इसने स्थापित हुए नये राज्यों को एक महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि प्रदान की। इतिहासकार एम. ए. नईम बीजापुर राज्य को ''सामंती'' मानते हैं। उनके अनुसार यह व्यवस्था ''सांविदागत (contractual) संबंधों'' पर आधारित थी, अर्थात, संरक्षण के बदले में कुलीनों ने शासकों के प्रति राज्य निष्ठा तथा सेवाएं देने का वायदा किया था। किंतु सभी दक्खनी राज्य ''केन्द्रीकृत राजतंत्र'' थे जिनमें सुल्तान की शक्तियां लगभग संपूर्ण थीं। इसके अलावा परिधि एवं केन्द्र के बीच एक वित्तीय संपर्क कायम था। यहां विजयनगर शासन के विपरीत साँझा प्रभुसत्ता की कोई धारणा मौजूद नहीं थी। दक्खनी शासकों के अधीन वेलमा, रेड्डी अथवा मराठा सरदारों को कोई भी शक्तियां प्राप्त क्यों न रही हों, वे प्रत्यक्ष रूप से केन्द्रीय नियंत्रण के अधीन थे। हालांकि, दक्खनी राज्यों ने जब दक्षिण में और आगे विस्तार करना शुरू किया तो वे केवल नज़राने से ही संतुष्ट रहने लगे क्योंकि व्यावहारिक तौर पर दूर-दराज़ के इन क्षेत्रों पर सीधे शासन कर पाना उनके लिए कठिन था। जे. एफ. रिचर्ड ने गोलकुंडा को एक 'विजय से प्राप्त राज्य' (conquest state) के रूप में परिभाषित किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि 16वीं शताब्दी की दक्खन राज्य व्यवस्थाएं निरंतर चलते रहने वाले युद्धों की विशेषता लिए हुए है (इकाई 9 देखिए) फिर भी हम विजयनगर की तरह उनकी व्याख्या विजय से प्राप्त राज्यों के रूप में नहीं कर सकते।

विजयनगर के विस्तार की प्रकृति दक्खनी राज्यों के विस्तार की प्रकृति से पूरी तरह भिन्न है : विजयनगर में ''तेलुगु नायक'' विस्तार का साधन बने जबकि दक्खनी राज्यों में राजतंत्र अथवा केन्द्रीकृत राज्य प्रत्यक्ष रूप से विस्तार की प्रक्रिया में शामिल हुआ था। जहाँ तक दक्षिण भारतीय राज्यों की प्रकृति का संबंध है कुछ इतिहासकारों ने विजयनगर राज्य को ''सामंती'' कहा है, कुछ ने इसे ''युद्ध राज्य'' कहा है, अन्य ने इसके ''विभाजित'' चरित्र को उजागर किया है। पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03 के खंड 3 तथा 7 में हम इस पर पहले ही विस्तृत चर्चा कर चुके है। ''सामंती'' नमूने में सरदारों से अपने से उच्चतर शासकों को सैन्य सेवाएं प्रदान करने की आशा की जाती थी। किंतु वे अपने प्रादेशिक क्षेत्रों का प्रशासन चलाने के लिए स्वतंत्र थे। ''विभाजित'' राज्य में परिसरीय सरदारों ने केन्द्र की औपचारिक प्रभुसत्ता को मान्यता दे दी थी, किन्तु कृषि की अतिरिक्त पैदावार विभाजित हिस्सों से केन्द्र की ओर प्रवाहित नहीं होती थी। हालांकि संजय सुब्रहमण्यम इस बात पर जोर देते हैं कि (यहां तक कि 17वीं शताब्दी तक भी) मदुरई, सेन्जी तथा तजांवुर संभागों से अच्छा खासा राजस्व प्रवाह होता रहा। वैसे भी 16वीं शताब्दी के दौरान ''विभाजित'' चरित्र धीरे-धीरे केन्द्रीकरण की दिशा में बदल गया था। बर्टन स्टीन के अनुसार, जो कि ''विभाजित'' राज्य के सिद्धांत के प्रमुख प्रतिपादक हैं, केन्द्रीकरण की यह प्रक्रिया कृष्ण देव राय के शासन काल के समय ही शुरू हो गई थी। यह परिवर्तन, मुख्यतः कर्नाटक (उम्मेटूर) तथा तमिल सरदारों में व्याप्त व्यापक असंतोष के कारण हुए जिसके फलस्वरूप कृष्ण देव राय को और अधिक व्यापक रणनीतियों पर विचार करना पड़ा।

इनके अंतर्गत सेना पर राजसी नियंत्रण किलों में विश्वासपात्र ब्राह्मण सेनानायकों की नियुक्ति तथा स्थानीय सेना (**पॉलीगारों**) की भर्ती जंगल में रहने वाले आदिवासियों में से करना, आदि शामिल थी। हम यह देख चुके हैं कि वैंकट प्रथम ने किस तरह से, खासकर पेनुकोंडा से चन्द्रगिरी में अपनी राजधानी के स्थानातंरण के बाद, **नायकों** की बढ़ती शक्ति पर दृढ़ नियंत्रण कायम करने का प्रयास किया था। किन्तु उसका परिणाम 17वीं शताब्दी के शुरू में **नायकों** के विद्रोह के रूप में सामने आया। फिर भी हम देखते हैं कि 16वीं शताब्दी के दौरान जो प्रक्रिया शुरू हुई थी वह अठारवीं शताब्दी के दौरान हैदरअली और टीपू सुल्तान के अधीन मैसूर में एक मजबूत और केन्द्रीकृत राज्य के निर्माण के साथ पूरी हुई।

मालाबार के राज्य "सामंती" आधारों पर अधिक संगठित थे। नायर सरदारों को अपने प्रादेशिक क्षेत्रों में स्वायत्त शक्तियां हासिल थीं जिनके बदले में वे अपने राज्य प्रमुख को अनिवार्य सैन्य सेवाएं प्रदान करते थे। हालांकि ये "सामंती" सरदार आनुवांशिक तौर पर भूमि के स्वामी थे।

16वीं शताब्दी के दौरान, खासतौर से रामराय के शासनकाल के समय से, दक्षिण भारत की राज्य व्यवस्था में एक अन्य लक्षण विकसित हुआ, जिसे बर्टन स्टीन "आनुवांशिकतावाद" के उदय के रूप में व्याख्यायित करते हैं। रामराय ने किलों के ब्राह्मण सेनानायकों (जिनकी अपने अधिराजों के साथ कोई स्वकुटुंबी नातेदारी नहीं थी) को हटाकर अपने कुटुम्बीजनों की नियुक्त कर दिया और तेलुगु सरदारों को और अधिक स्वायत्तता प्रदान कर दी (खासतौर से कर्नाटक-आंध क्षेत्र में)। यहां तक कि उसने अपने दोनों भाइयों तिरूमल और वैंकटाद्रि को सेना का प्रभारी बना दिया। इस तरह "अनुवांशिक" राज्य व्यवस्था की शुरुआत हुई। आगे यह और अधिक परिष्कृत हुई। **नायकों** ने अपनी शक्तियों एवं प्रभावों का "अनुवांशिकता" के आधार पर विस्तार करने की चेष्टा की – खास तौर पर मारावार के सरदारों ने, जो आगे चलकर 17वीं शताब्दी मे रमनाद में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करने में सफल रहे, और पुद्दूकोट्टई (रायलसीमा) में कल्लार के सरदारों ने अपने कुटुम्ब/जाति संबंधों के जरिए, मारावार के सरदारों ने रामेश्वरम, मदुरई तथा रमनद (उनकी मातृभूमि) तक अपने प्रभाव का विस्तार कर लिया। कल्लार सरदारों ने अपने स्वकुटुम्बी रिश्तों के माध्यम से लगभग समूचे पुद्दूकोट्टई पर अपनी सत्ता का विस्तार कर लिया। वे कल्लार तोन्डइमन राजा द्वारा जारी किए गए वारंटों (**पट्टों**) के रूप में जमीन हासिल करते थे। इसी तरह, लापाक्शी **नायकों** ने लापाक्शी के आसपास 'अनुवांशिकता' का निर्माण करने का प्रयास किया। वीरप्पन्यगा नायक ने पैनुकोंडा राज्य का नियंत्रण संभाला जबकि उसके अन्य दो भाइयों ने चित्रदुर्ग (अच्युतदेव राय के अधीन) के किलों में पद संभाल लिए। इन **नायकों** ने उन्हीं रिवाजों व प्रचलनों का पालन करना जारी रखा जिनका पालन विजयनगर के राजाओं द्वारा किया जाता था। मदुरई के **नायकों** ने राज्याभिषेक की उन्हीं औपचारिकताओं का अनुसरण किया जिनका कृष्ण देव राय द्वारा पालन किया जाता था। मदुरई के नायक विश्वनाथ ने अपने स्वकुटम्बीजनों तथा निकट सहयोगियों के साथ कुटुम्ब भोज की राजसी-प्रथा भी शुरू की। मदुरई के **नायकों** ने तो सरदारों को किलों के साथ संबद्ध करने और इस तरह समूचे राज्य के साथ संबद्ध करने की पुरानी काकतीय प्रथा को दोबारा से शुरू किया। विश्वनाथ नायक ने पलाईक्कारार के मातहत "सैन्य शिविरों" की प्रणाली शुरू की – प्रत्येक पलाईक्कारार किसी न किसी किले का संरक्षक था और इस तरह वे मंदुरई के शासक प्रतिष्ठित वर्ग (**कुमारावरूक्कम**) के सदस्य बन गए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

3.6 प्रतिष्ठित शासक वर्ग

16वीं शताब्दी के दक्खन और दक्षिण भारतीय शासक वर्गों को अपने प्रभाव क्षेत्रों में करीब-करीब पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त थी। इस तथ्य के बावजूद कि कुलीनता का चरित्र अपने आप में सभी जगह एक समान ही था, परन्तु जहां तक गठन एवं शक्तियों का प्रश्न है, उनके बीच कुछ भिन्नताएं भी मौजूद थीं।

दक्खन

अहमदनगर एवं बीजापुर कुलीनों का गठन काफी कुछ समान था किंतु गोलकुंडा के कुलीनों की प्रकृति भिन्न थी।

16वीं शताब्दी के गोलकुंडा के निवासियों में अधिकतर मुख्यतः तेलुगुभाषी हिन्दू थे। किंतु कुलीन एवं प्रभुसत्ता संपन्न लोग मुसलमान थे। इसके अलावा, जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं, गतिविधि का केन्द्र

सिंचित उपजाऊ इलाके (राजमुंदरी) से हटकर भीतरी तेलंगाना के कम उपजाऊ शुष्क क्षेत्रों में पहुंच गया था, जिसने जलाशयों से सिंचाई पर आधारित सूखी खेती का उपयोग किए जाने का मार्ग प्रशस्त किया। इससे बहमनी काल के बाद तेलुगु रेड्डी तथा वेलमा **नायक** किसानों की संख्या बढ़ती गई। कुतुब शाही शासकों के सामने यह समस्या थी कि इस शक्तिशाली स्थानीय प्रतिष्ठित वर्ग का प्रतिकार किस तरह से किया जाए। इन तेलुगु **नायकों** को अपने सजातीय बंधुओं अर्थात, विजयनगर के शासकों से लगातार समर्थन मिलता रहता था। (इस समस्या का पूरी तरह से निराकरण 1565 में तालीकोटा की लड़ाई में विजयनगर के शासक की पराजय के बाद ही हो सका।)

हालांकि, इब्राहिम कुतुब शाह (1530-80) की तमिल संस्कृति को संरक्षण देने की चालाक नीति ने उसे एक मुस्लिम शासक के बजाए एक देशी शासक के रूप में अधिक पेश किया। वह तेलुगु जानता था और उसकी एक तेलुगु पत्नी थी। इसके अलावा उसने ब्राह्मणों व उलेमाओं, दोनों को ही, राजस्व मुक्त अनुदान दिये। बीजापुर शासकों के विपरीत, उसने **जज़िया** आरोपित नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब 1542-65 के बीच अलिया राम राय के नेतृत्व में विजयनगर की सत्ता द्वारा गोलकुंडा के शासकों के सामने खतरा उपस्थित हुआ तो उसके तेलुगु **नायक** वफादार बने रहे जबकि स्वयं उसके तुंगभद्रा दोआब के कुटुम्बीजनों ने विजयनगर के शासकों का साथ दिया। हालांकि, इन तेलुगु **नायकों** को अपने दक्षिण भारतीय साथियों की तुलना में कम स्वायत्तता प्राप्त थी। हम उन्हें कुछ हद तक मुस्लिम नियंत्रण के अधीन रखा हुआ पाते हैं। सामरिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण स्थान मुस्लिम सेनानायकों के अधीन थे। किंतु समूचे दक्खन और दक्षिण भारत के राजस्व कार्यालयों में करीब-करीब ब्राह्मणों का ही वर्चस्व था। अन्य दक्खनी राज्यों में कुलीन वर्ग पूर्णतया मुस्लिम कुलीनों में से लिये जाते थे।

इन मुस्लिम कुलीनों को सैन्य बलों का एक निर्धारित कोटा रखना पड़ता था जिसके लिए उन्हें भू-आवंटन (**मोकासा**) प्राप्त होते थे। वे उस समय तक पद पर बने रह सकते थे जब तक उन्हें सुल्तान की कृपा प्राप्त रहती थी और वे उनके प्रति वफादार बने रहें। उनकी कृषि भूमि का भी हस्तांतरण किया जा सकता था किन्तु यह कभी-कभार ही होता था। उन्हें अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र छोड़ दिया जाता था जहां उन्हें लगभग पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त थी। जब बीजापुर के शासकों ने दक्षिण में और आगे विस्तार करना शुरू किया तो उन्हें क्षेत्र का प्रत्यक्ष तौर पर शासन करना कठिन लगा। इसके परिणामस्वरूप सुल्तानों ने "सह शासित राज्यों" की नीति अपनाई और स्वयं को वार्षिक नजराने से ही संतुष्ट करने लगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

दक्षिण भारत

नायक दक्षिण भारत के शासक कुलीन थे। **नायकों** तथा उनको मिली सुविधाओं व उनके कर्तव्यों के बारे में ई.एच.आई.-03 पाठ्यक्रम की इकाई 27 में, विस्तार से चर्चा की गई है। यहां हमारा मुख्य ध्यान 16वीं शताब्दी की कृषीय व्यवस्था पर है, जबकि **पलाईक्कारार** खेतिहर अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करते थे। नायकों के उनके अधीनस्थ **पलाईक्कारारों** तथा **पॉलीगारों** के सम्बन्धों, विशेषकर 1565 ई० के बाद, की भी चर्चा करेंगे। जहां तक **पलाईक्कारारों** के गठन का प्रश्न है, इसके अंतर्गत तेलुगु, कन्नड़, कलाडी, कल्लार, मोरासू वोक्कालिग, तमिल, मुलबगल आदि, शामिल थे।

16वीं शताब्दी के दौरान, **पलाईक्कारारों** ने मंदिरों को ज़मीनें देकर तथा मंदिरों के संरक्षण के कार्यों का नियंत्रण अपने हाथ में लेकर तमिल किसान कुलीनों को हटा देने की कोशिश की। दूसरी तरफ, मंदिरों की जमीनों को अक्सर सैन्य सरदारों को हस्तांतरित किया गया। इस तरफ के भूमि हस्तांतरणों के कारण मंदिरों की अर्थव्यवस्था में गिरावट आई – खासतौर से रिकार्डों के रख-रखाव पर उनका एकाधिकार समाप्त हो गया। **नायकों** ने रिकार्डों के केन्द्रीयकरण का काम मराठों तथा कन्नड़ों की मदद से किया। इस प्रकार नायकों ने केन्द्रीकृत राज्य व्यवस्थाओं के उदय के लिए जरूरी पृष्ठभूमि तैयार की थी। निरंकुश राज्य की उत्पत्ति की दिशा में स्थानीय सत्ता के आधार का विनाश तथा मंदिरों की संस्थागत अर्थव्यवस्था में कमी किया जाना, शुरुआती कदम थे। हालांकि, कृषि आधारित सत्ता का सैन्य सरदारों के हाथों में हस्तातंरण पूरे तौर पर किसानों को नहीं हटा सका। उदाहरण के लिए, **कुडिनिंगदेवदना** में किसानों को जमीन की पैदावार में से एक स्थाई हिस्सा दिया जाता था और इस तरह उन्हें बेदखल नहीं किया जा सकता था।

सैन्य सरदारों ने बड़े पैमाने पर जमीन पुनः हथिया ली थी और उस पर नगरों का विकास किया जिन्हें **पलाईयम** कहा जाता था, इसके प्रमुख को **पलाईक्कारार** कहा जाता था। इन **पलाईयमों** पर उनका लगभग

पूर्ण नियंत्रण रहता था। वे किसानों, दस्तकारों तथा व्यापारियों पर विभिन्न कर आरोपित करते थे। इन सरदारों के शासन में करारोपण का बोझ बहुत अधिक था और इससे खासतौर से किसानों में अक्सर तनाव और असंतोष व्याप्त रहता था।

दूसरी तरफ, मदुरई में **नायकों** ने **पलाईक्कारारों / पॉलीगारों** (कनिष्ठ सैन्य सरदार) को शासक वर्ग में ले आने का प्रयास किया। उन्हें किलों/सैन्य शिविरों का प्रभारी बना दिया गया और वे शासक वर्ग के सदस्य बन गए और उन्हें **कुमारवरूक्कम** कहा जाने लगा। हालांकि अन्य **नायक** राज्यों में ऐसा नहीं था वहां सहयोग की अपेक्षा संघर्ष और टकराव का रिश्ता अधिक था। तंजावुर तथा सेन्जी में **पलाईक्कारार** नहीं होते थे, उनकी जगह पर ब्राह्मण एवं वेल्लला सरदारों का वर्चस्व था और उन पर समुचित सैन्य नियंत्रण भी नहीं था। इक्केरी तथा मैसूर के **नायकों** की लगातार अपने कनिष्ठ सरदारों से झड़पें होती रहती थीं। इक्केरी के **नायक** सदाशिव (1540-1565) द्वारा एण्डीग, मुप्पीना, वैलूर, माबासेल, कानेव तथा सीरवंती के **पॉलीगारों** के साथ सख्ती की गई थी। इसी तरह, वैंकटप्पा प्रथम के शासनकाल (1586-1629) के दौरान दानिवर, कुम्बेसी, यालावण्डूर, हैबी मंडगाडि, काराबुरा, मोराबादी, तथा सालानाडु के सरदारों ने बगावत की थी, हालांकि उन सभी को सफलता के साथ दबा दिया गया।

मालाबार के कुलीन लगभग समूचे तौर पर नायरों में से थे। वे नाम्बियार, कैमल, मेन्नाडिआर, कारतावू, तथा कुरूप कहलाते थे। वे स्थानीय सत्ता का नियंत्रण करते थे और इसके बदले में उनसे अनिवार्य सैनिक सेवा करने की अपेक्षा की जाती थी। उनके **कलारी** नामक स्वयं अपने सैनिक संगठन हुआ करते थे। कभी-कभी वे एक से अधिक राजाओं के साथ स्वामिभक्ति रखते थे। वे अपने नियंत्रण वाली भूमि पर निरंकुश सत्ता के स्वामी थे। दिलचस्प बात यह है कि मालाबार के कानून में किसी अनुवांशिक सरदार द्वारा विद्रोह किए जाने की स्थिति में शासक द्वारा उसे सत्ताच्युत कर देने अथवा उसकी संपत्ति जब्त कर लेने का शायद ही कोई प्रावधान था।

3.7 अर्थव्यवस्था

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

दक्खन तथा दक्षिण भारत की भू-राजस्व प्रणाली तथा कृषि संबंधों के विषय में हम इकाई 19 व 20 में विस्तार से चर्चा करेंगे। यहां हम इन पहलुओं पर बहुत संक्षेप में विचार करेंगे।

सभी दक्षिण भारतीय एवं दक्खनी राज्यों की अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर आधारित थी। तटीय क्षेत्र वर्षा के पानी से भली भांति सिंचित थे और अन्य क्षेत्रों में, जलाशयों से सिंचाई की अच्छी तरह विकसित प्रणाली प्रचलित थी खासतौर से आंध्र क्षेत्र में। पश्चिम की तरफ नहरों से सिंचाई का भी महत्वपूर्ण स्थान था, खासतौर से अहमदनगर में।

काराशिमा, सुब्बरायलु एवं हाइट्ज़मेन के अनुसार किसान दक्षिण भारत में भूमि के स्वामी थे। किन्तु बर्टन स्टीन तथा संजय सुब्रहमण्यम ने इस संबंध में कुछ शंकाएं प्रकट की हैं। चूंकि किसानों/काश्तकारों को भूमि बेचने का अधिकार प्राप्त था, अतः इससे यही प्रदर्शित होता है कि भूमि के स्वामित्व की व्यवस्था मौजूद थी। किन्तु इस काल के दौरान "भूमि" पर स्वामित्व तथा "सुविधाओं (राजस्व अधिकारों) पर स्वामित्व के बीच भेद स्पष्ट किया गया था। वास्तव में संजय सुब्रहमण्यम् के अनुसार इस काल में किसानों को राजस्व अधिकारों पर स्वामित्व हासिल था (न कि भूमि पर)। सामुदायिक कृषि व्यवस्था विद्यमान थी। भू-कर राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत था। दक्षिण भारत में विजयनगर की पुरानी प्रणाली जारी रही। राजस्व की मांग 1/6 से 1/4 भाग तक रहा करती थी। हालांकि, गोलकुंडा में यह फसल का 1/2 भाग थी। राज्य राजस्व की नकद वसूली को प्राथमिकता देते थे। किन्तु मालाबार के राज्य अपवाद थे, यहां किसी तरह का भू-कर नहीं था। मालाबार के शासक सीमा-शुल्क की वसूलियों, **जनमन** स्वामित्व, इत्यादि पर अधिक निर्भर रहते थे। लेकिन कुछ इतिहासकार इस बात पर जोर देते हैं कि भू-कर विद्यमान था, हालांकि अधिकांश भूमि राजस्व से मुक्त थी क्योंकि यहं नम्बूदरी ब्राह्मणों के कब्जे में थी। चूंकि राज्य को भुगतान करने के मुकाबले मंदिरों को राजस्व का भुगतान कम करना पड़ता था, अतः किसानों ने मंदिरों के भुगतान को वरीयता दी।

मूलतः तीन प्रकार के भूमि वर्गीकरण मौजूद थेः (i) सम्राट की भूमि जिसे दक्षिण भारत में **भंडारवड़ा** के नाम से जाना जाता था, बीजापुर में **मुआमला** अथवा **क़लाह** तथा गोलकुंडा में **खालिसा** कह कर पुकारा जाता था (ii) कुलीनों, मातहतों आदि को प्रदान की गई भूमि, जो कि **आमरा** (दक्षिण भारत में) तथा **मोक़ासा** (दक्खन में) के नाम से जानी जाती थी। ये कुलीन शासक को निर्धारित राशि का वार्षिक भुगतान करते थे, (iii) राजस्व-मुक्त अनुदान जिसे **मान्या** (दक्षिण भारत में) तथा **इनाम** (दक्खन में) कहा जाता था। राजस्व की वसूली का प्रचलित स्वरूप राजस्व वसूली ठेके पर देना था, अर्थात् राजस्व की वसूली का अधिकार सबसे ऊंची बोली लगाने वालों को दिया जाता था, जो कि राज्य/कुलीनों को एक़ निर्धारित राशि का वार्षिक भुगतान करते थे और प्रायः उन्हें किसानों से अधिक से अधिक राजस्व वसूल करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता था।

दक्खनी शासकों ने स्थानीय राजस्व वसूली तंत्र को कायम रखा। विभिन्न ओहदों के राजस्व अधिकारी भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्य करते थे। उदाहरण के लिए, सम्राट की भूमि का कर अधिकारी **हवलदार** कहलाता था, जबकि **परगना** स्तर पर **देसाई** तथा **देशमुख** होते थे। लेखाकारों को **देशकुलकर्णी** तथा **देशपाण्डे** के नाम से जाना जाता था। गांव के मुखिया, **मुकद्दम तथा पटेल कहलाते थे जबकि कुलकर्णी** ग्राम स्तर पर लेखाकार का कार्य करते थे। वे सभी राजस्व में से अपने काम के बदले में अपना हिस्सा प्राप्त करते थे जो कि विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न रहता था। तटीय क्षेत्र में पृथक गवर्नर (**सर-समातु**) नियुक्त किए गए जो राजस्व किसानों की ही तरह एक़ निर्धारित राशि का वार्षिक भुगतान करते थे। यद्यपि **आमिलों** की नियुक्ति अपने स्वामियों पर नजर रखने के लिए की गई थी फिर भी राज्य की रुचि किसानों के कल्याण से अधिक नियमित तौर पर भुगतान प्राप्त होते रहने में ही थी।

राज्य भू-कर के अलावा अन्य स्रोतों से भी राजस्व की वसूली करता था – नज़राने, युद्ध तथा लूटमार से प्राप्त धन और इन सबसे ऊपर सीमा शुल्क द्वारा। बीजापुर के शासक **जज़िया** के जरिये भी काफी आय प्राप्त करते थे। निजी तौर पर सिक्के ढालने हेतु लाइसेंस शुल्क भी आय का एक अच्छा साधन था। गोलकुंडा के शासकों ने हीरे की खानों से अच्छी खासी आय प्राप्त की। भू-राजस्व के अलावा अन्य करों की वसूली का अधिकार भी व्यापारी श्रेणियों का ही होता था जो वार्षिक तौर पर निर्धारित राशि का भुगतान करते थे और अपने निजी अधिकारियों (राजस्व वसूली आदि के लिए) को नियुक्त करते थे। अधिकांशतः वे तेलुगु व्यापारी जातियों से होते थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

16वीं-17वीं शताब्दी का एक प्रमुख लक्षण "पोर्टफोलियो पूंजीवाद" का उदय था। कुछ **विद्वानों का** मानना है कि भारत में व्यापार गतिविधि उन व्यापारियों के हाथों में केन्द्रित थी जिनके पास कोई राजनैतिक अथवा सैनिक शक्ति नहीं थी। हालांकि, हाल ही में (संजय सुब्रहमण्यम द्वारा) यह तर्क दिया गया है, खासतौर से कोरोमण्डल के मामले में, कि राजस्व के ठेकेदारों (अधिकांशतः **पलाईक्कारारों**) ने अर्थव्यवस्था के विकास में सकारात्मक योगदान किया। राजस्व की वसूली की अपनी भूमिका के अलावा वे कृषि संबंधी व्यापार, सिंचाई का विकास, जहाजरानी एवं बैंकिंग का विकास करने में भी संलग्न रहे।

हमें इस काल में विभिन्न तरह के व्यापारियों की मौजूदगी के प्रमाण मिलते हैं, आर्मीनियाई, पुर्तगाली, तेलुगु बालीजा नायडु, चेट्टी, कोमाती, अरब, गुजराती, इत्यादि। अन्तर्देशीय व्यापार अधिकतर मुस्लिम मोपला व्यापारियों के हाथों में केन्द्रित था। कनारा तट पर हिन्दू तथा जैन सरदार मुख्य लाभार्थी थे, जबकि कोरोमण्डल तट का नियंत्रण मुख्यतः अरब, मारक्करार (धर्म परिवर्तित), तथा मोपलाओं के हाथों में था।

कुछ विद्वानों का मत यह है कि दक्षिण भारत की अर्थव्यवस्था 16वीं शताब्दी में गिरावट का शिकार नहीं हुई थी, जैसा कि अन्य लोग मानते हैं। वे इस बात पर जोर देते हैं कि **नायकों** ने बाज़ारों तथा शहरों आदि का निर्माण करके आर्थिक गतिविधि को तेज किया था। 1565 के उपरांत लगातार युद्धों के जारी रहने संबंधी तर्क का खंडन इस आधार पर किया गया है कि यह एक सामान्य लक्षण था जो कि आरंभिक शताब्दियों के दौरान भी विद्यमान रहा था।

बोध प्रश्न 3

1) "16वीं शताब्दी के दौरान दक्षिण भारतीय राज्यों में केन्द्रीकरण के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।" टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) गोलकुंडा के कुलीन शासक वर्ग की प्रकृति एवं गठन पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3) "पोर्टफोलियो पूंजीवाद" को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

....

....

....

....

3.8 सारांश

16वीं शताब्दी के दक्खन तथा दक्षिण भारत की राज्य व्यवस्था संहारक युद्धों से घिरी रही थी। इस शताब्दी ने विजयनगर साम्राज्य का पतन देखा। यह धारणा कि तालिकोटा की लड़ाई के बाद विजयनगर ध्वस्त हो गया तथा **नायकों** ने अपने स्वतंत्र राज्यों का निर्माण कर लिया पूरे तौर पर स्वीकार नहीं की जा सकती। विडम्बना यह है कि **नायक** सरदारों का विकास उस समय हुआ जब कि विजयनगर, कृष्ण देव राय के अधीन, अपने शिखर बिन्दु पर था। सेन्जी, इक्केरी, मदुरा तथा तंजावुर के शक्तिशाली **नायक** 1565 के बाद भी विजयनगर के शासकों के प्रति वफादार बने रहे और यह 17वीं शताब्दी के दौरान ही हुआ कि वैंकट प्रथम की नीतियों ने, उन्हें विद्रोह करने पर बाध्य कर दिया। 16वीं शताब्दी के विजयनगर की शासन व्यवस्था ने केन्द्रीकरण की तरफ बढ़ने की प्रवृत्ति दर्शायी थी। यह "वंशानुगत राजनीति" के उदय का काल भी था। इस काल के दौरान "पोर्टफोलियो पूंजीपतियों" के एक वर्ग का उदय हुआ जो महज शोषक ही नहीं थे अपितु उन्होंने आर्थिक विकास में काफी योगदान किया। इस शताब्दी में दक्खन तथा दक्षिण भारत में पुर्तगाली सत्ता का उभार देखा गया। दोनों राज्य व्यवस्थाओं में निरंतर युद्ध चलते रहने के बावजूद, समूचे क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में, इस शताब्दी के दौरान कोई गिरावट नहीं हुई।

3.9 शब्दावली

अफाक़ी	:	मध्य एशिया (ईरान, ईराक, ट्रांसऑक्सियाना) से आया नया कुलीन वर्ग
आमिल	:	राजस्व की वसूली करने वाला
बगलाना क्षेत्र	:	आधुनिक नासिक जिले के उत्तर-पश्चिमी कोने में घटमाथा क्षेत्र के उत्तरं में स्थित उपजाऊ क्षेत्र, जहां सालहर, मुलहर तथा हतगढ़ के मजबूत किले हैं, हतगढ़ का किला गुजरात से आने-जाने वाले मार्ग की सुरक्षा करता था। यह इलाका खानदेश, गुजरात, अहमदनगर अथवा मुगलों के आधिपत्य को, परिस्थितियों के अनुसार मान्यता देता रहा
जनमन	:	वंशानुगत स्वामित्व
कुडिनिंगदेवदाना	:	**देवदाना** (मंदिर की भूमि) भूमि सैन्य सरदारों को कनीप्पारू (जमीन के पट्टे) के रूप में दी जाती थी
दक्खनी	:	दक्खन का परंपरागत कुलीन वर्ग
मुआमला/क़लाह	:	बीजापुर में इन शब्दों का प्रयोग साम्राज्य की भूमि के लिए किया जाता था, हालांकि **मुआमला** व्यापार और आवागमन का केन्द्र था जबकि **क़लाह** पश्चिमी घाट से लगे हुए सामरिक महत्व के स्थल थे
नायक	:	सैन्य सरदार
सहयाद्रि पर्वत मालाएं	:	पश्चिम में स्थित पर्वत शृंखलाएं जो ताप्ति नदी के दक्षिण से शुरू होती हैं, ये पश्चिमी घाट के नाम से भी जानी जाती हैं

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

बोध प्रश्न 1

1) आप इनकी भौगोलिक स्थिति तथा विशिष्टताओं की चर्चा करें। भाग 3.2 भी देखें।
2) 1) **आदिल शाही**, 2) **कुतुब शाही**, 3) **बरीद शाही**, 4) **इमाद शाही**, 5) **निजाम शाही**।
3) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ×

बोध प्रश्न 2

1) इनके नाम तथा भौगोलक स्थिति बताइए। देखें भाग 3.4 तथा उपभाग 3.4.2
2) **नायकों** के विकास के विषय में लिखें। देखें उपभाग 3.4.1
3) आपको यह बताना चाहिए कि क्या 1565 के बाद भी **नायक** विजयनगर के प्रति वफादार बने रहे या उनके संबंधों में कोई अंतर आया। देखें उपभाग 3.4.1
4) यह बताइये कि वे कौन थे और संक्षेप में जमोरिन व पुर्तगाल के संबंधों के विषय में चर्चा कीजिए (देखिए उपभाग 3.4.2)।

बोध प्रश्न 3

1) यह बताइये कि दक्षिण भारतीय राज्य की प्रकृति में क्या परिवर्तन आए और क्यों? देखें भाग 3.5
2) यह बताइये कि गोलकुंडा के शासकों ने स्थानीय कुलीन वर्गों को केन्द्रीय सत्ता के अधीन क्यों बनाए रखा। मुस्लिम कुलीन वर्गों की भी चर्चा कीजिए। संघटन में कुलीनों के विभिन्न वर्गों के बारे में बताइये (देखें भाग 3.6)।
3) देखें भाग 3.7

इकाई 4 एशिया की व्यापारिक गतिविधियाँ और पुर्तगालियों का आगमन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 कारखाने, किले और वाणिज्यिक व्यवस्थाएँ
4.3 निर्यात और आयात की वस्तुएँ
  4.3.1 मालाबार और कोंकण तट
  4.3.2 उत्तर-पश्चिमी भारत
  4.3.3 पूर्वी तट
  4.3.4 दक्षिण-पूर्व एशिया
4.4 पुर्तगाली व्यापार के लिए पूँजी निवेश
  4.4.1 यूरोपीय पूँजी निवेशक
  4.4.2 भारतीय व्यापारी और शासक
4.5 भारत के साथ पुर्तगाली व्यापार की प्रकृति
  4.5.1 एकाधिकार व्यापार
  4.5.2 भारतीय शासकों और व्यापारियों द्वारा व्यापार
  4.5.3 व्यापार और उत्पादन
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यूरोप और एशिया के बीच समुद्र मार्ग से आवागमन शुरू होने के महत्व को रेखांकित कर सकेंगे,
- इस काल में समुद्री मार्ग पर पुर्तगालियों के वर्चस्व पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- यह बता सकेंगे कि पुर्तगालियों द्वारा शुरू किए गए व्यापार और वाणिज्य का यूरोपीय शक्तियों ने किस प्रकार अनुगमन किया, और
- इस काल में आयात-निर्यात की जा रही प्रमुख वस्तुओं के बारे में जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों (2 और 3) में हमने उत्तर तथा दक्खन और दक्षिण भारत की राज्य व्यवस्था और अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया है। इस इकाई में हम समुद्री मार्ग से होने वाली व्यापारिक गतिविधियों की

प्रकृति पर विचार-विमर्श करेंगे। भारत का व्यापारिक संबंध दूर-दूर तक था। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों और पश्चिम एशिया के विभिन्न भागों से भारत के व्यापारिक संबंध थे। परन्तु यूरोपीय देशों, खासकर अटलांटिक सागर पर बसे देशों, के साथ सीधा समुद्री व्यापार नहीं होता था। 1510 में गोवा पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद पुर्तगाली भारतीय समुद्र क्षेत्र में प्रमुख नौ शक्ति के रूप में उभरे (विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03, खंड-7)।

पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य लाल सागर क्षेत्र से चीनी और अल-करीमी व्यापारी भारत के विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों में अक्सर आया करते थे। इसके बाद भारत के अंतर्राष्ट्रीय समुद्री व्यापार में कुछ समय के लिए ठहराव आ गया। इसी समय 1453 में कुस्तुनतुनिया (कांस्टैन्टिनोपल) पर तुर्कों के आधिपत्य से पूर्व और पश्चिम को जोड़ने वाला मार्ग बाधित हुआ, इस कारण यूरोपवासी पूर्व के साथ व्यापार करने के लिए वैकल्पिक मार्ग खोजने लगे (इस मत को लेकर विद्वानों के बीच मतैक्य नहीं है)। इसी समय पुर्तगाली नाविकों ने समुद्री व्यापार से ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाने के लिए व्यवस्थित ढंग से तैयारियाँ शुरू कर दीं। उन्होंने मानचित्र बनाने की कला और जहाजरानी के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता अर्जित की। वास्कोडिगामा की प्रारंभिक सफलताओं के बाद पुर्तगालियों ने एशिया और खासकर भारत की वाणिज्यिक क्षमताओं का भरपूर उपयोग करने के लिए योजनाबद्ध ढंग से प्रयास किए। स्थानीय शासकों ने व्यापार और वाणिज्य के विकास के लिए कारखाने और अन्य सुविधाओं की स्थापना की अनुमति दे दी। कहीं-कहीं किले भी बनाए गये। इसके साथ-साथ उन्होंने इसाई धर्म के प्रचार का भी काम शुरू किया। विवाह, धर्म परिवर्तन और यूरोपीयों के बसने से एक नये सामाजिक समूह का उदय हुआ। स्थानीय शासकों ने पुर्तगालियों के साथ राजनीतिक और वाणिज्यिक संधियां कीं। इस काल के दौरान पुर्तगाली भारत के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करने वाले प्रथम यूरोपवासी थे। पुर्तगालियों को देखकर कई यूरोपीय देश एशिया की व्यापारिक गतिविधियों में शामिल होने के लिए प्रेरित हुए।

इस इकाई में उपरोक्त पृष्ठभूमि में एशिया में पुर्तगालियों की व्यापारिक गतिविधियों की चर्चा की जा रही है। इसके साथ-साथ 1500 से 1600 के बीच भारतीय उपमहाद्वीप में समाज के विभिन्न वर्गों के साथ उनके आपसी आदान-प्रदान की भी चर्चा की जाएगी। समग्र रूप में एशिया के साथ पुर्तगालियों के व्यापारिक संबंधों के आर्थिक परिणामों की चर्चा की जाएगी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

4.2 कारखाने, किले और वाणिज्यिक व्यवस्थाएँ

काहिरा और अलेक्ज़ेन्ड्रिया में व्यापार और वाणिज्य को सुचारू ढंग से चलाने के लिए इतालवी व्यापारियों ने भण्डारगृहों (कारखानों) की स्थापना की। इसकी नकल करते हुए पुर्तगालियों ने भी भारत और एशिया के विभिन्न स्थानों के तटीय प्रदेशों में कारखानों की स्थापना की। इन यूरोपीय कारखानों को ऐसे वाणिज्यिक संगठन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनका किसी देश-विशेष में स्वायत्त अस्तित्व होता था। इनकी स्थापना उसी देश में की जाती थी जिसके साथ वाणिज्यिक संबंध हुआ करता था। प्रत्येक कारखाने में एक कारखानेदार हुआ करता था। कारखानादार कारखाने का सर्वोच्च अधिकारी हुआ करता था। उसकी सहायता के लिए कई लोग होते थे, जिनकी नियुक्ति पुर्तगाली सम्राट किया करता था। कारखानादार सम्राट का प्रतिनिधि होता था। उसका कार्य सभी प्रकार की आर्थिक, वित्तीय और प्रशासनिक गतिविधियों को बढ़ावा देना था। सभी मामलों में वह पुर्तगाली राष्ट्रीय हितों का सबसे ज्यादा ध्यान रखता था। दुश्मनों से कारखाने की रक्षा भी की जानी थी अतः अपनी शक्ति को मजबूत और सुदृढ़ बनाने के लिए पुर्तगालियों ने कारखानों को किलाबंद करना शुरू कर दिया। पुर्तगालियों के समुद्री व्यापार की सहायता के लिए कई कारखाने और किले निर्मित किए गए। पुर्तगाली किलाबंद केन्द्रों का उपयोग दूसरों के जहाजों को आने से रोकने के लिए किया करते थे। इसके अतिरिक्त यह क्षेत्र सेना और नौ सेना के लिए आरक्षित थे। सोलहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक वाणिज्यिक गतिविधियों में कारखाना व्यवस्था की प्रमुख भूमिका रही। आइए, विभिन्न प्रांतों में पुर्तगालियों द्वारा स्थापित कारखानों के बारे में संक्षेप में चर्चा करें।

पश्चिम भारत

मालाबार क्षेत्र में सबसे पहले 1500 में पुर्तगालियों ने कालीकट में अपना कारखाना लगाया। हालांकि यह ज्यादा दिन तक नहीं टिक पाया (इकाई 3 में आपने पढ़ा है कि मालाबार में पुर्तगाली सत्ता की स्थापना में कालीकट का जमोरिन शासक बड़ी बाधा सिद्ध हुआ। वहां ज़मोरिनों ने पुर्तगालियों को अपने कारखाने को किलेबंद भी नहीं करने दिया। अंततः 1525 में पुर्तगालियों ने कालीकट में कारखाने के निर्माण का विचार छोड़ दिया। हालांकि मालाबार तट पर बसे कोचीन (1501), कैन्नानोर (1503), क्वीलोन (1503), चलियम (1531), रचोल (1535), क्रेंगानोर (1536), मैंगलोर और होनावर (1568) तथा भतकल में पुर्तगालियों ने अपने कारखाने स्थापित किए। धीरे-धीरे इन सभी कारखानों को किलाबंद कर दिया गया। सोलहवीं शताब्दी के दूसरे दशक में अहमदनगर के निज़ाम-उल-मुल्क ने भी पुर्तगालियों को चौल में कारखाने की स्थापना की इजाजत दे दी।

उत्तर-पश्चिम में, मलक्का, और कालीकट के बीच खम्बायत (कैम्बे) एक प्रमुख पड़ावी बंदरगाह था। यह लाल सागर और फारस की खाड़ी को भूमध्य सागर के बंदरगाहों के साथ भी जोड़ता था। खम्बायत के अतिरिक्त पुर्तगालियों ने अपने कारखाने दीव (1509, 1538), बेसीन (1534), सूरत, दमन (1599) और भावनगर में स्थापित किए। इस प्रकार मालाबार, कोंकण और उत्तर-पश्चिम भारत के सारे तटीय इलाके पुर्तगालियों के प्रभाव-क्षेत्र में आ गये।

पूर्वी भारत

मलक्का पर कब्जा होने और वहां पुर्तगाली बस्ती बसने के साथ भारत के पूर्वी तट से सीधा संपर्क स्थापित हुआ। पूर्वी भारत में पुर्तगालियों का संपर्क ऐसे व्यापारियों से हुआ जो मलक्का और अन्य दक्षिण-पूर्व एशियाई केन्द्रों से व्यापार करते थे। कोरोमण्डल तट पर बसे मसूलीपट्टम, पूलीकट, सैन थोम, पांडिचेरी, कुड्डालोर, पोर्टो नोवो, नागापट्टम आदि जैसे तटीय शहरों से पुर्तगाली कपड़ा और अन्य वस्तुएँ इकट्ठा करते थे। पोर्टो नोवो, मलक्का, मनीला और पूर्व के अन्य क्षेत्रों से व्यापार करने के लिए नागापट्टम पुर्तगालियों का एक प्रमुख बंदरगाह था।

नागापट्टम के उत्तर में स्थित सैन थौम (मेलपुर) में भी पुर्तगालियों की बस्ती थी। यह बस्ती दीवार से घिरी थी। 1518 में श्रीलंका के पश्चिमी तट पर स्थित मनार में भी पुर्तगालियों ने एक किला बनाया। हालांकि यह किला भारतीय भूभाग पर स्थित नहीं था, पर यहां से इस उपमहाद्वीप के पश्चिम से पूर्व की ओर जाने वाले जहाजों को नियंत्रित किया जा सकता था।

1517 ई. के बाद पुर्तगालियों ने बंगाल से भी वाणिज्यिक संपर्क स्थापित किया। सबसे पहले इस काल के बंगाल के प्रमुख बंदरगाह चटगाँव पर कारखाना खोलने का प्रयत्न किया गया। काफी आग्रह के बाद 1536 में बंगाल में राजा महमूद शाह ने उन्हें चटगाँव और सतगाँव में कारखाना स्थापित करने की इजाजत दे दी। अकबर ने 1579-80 में पुर्तगालियों को हुगली में दूसरी बस्ती बसाने की इजाजत दे दी। 1633 में शाहजहां के **फरमान** से बंदेल में तीसरा कारखाना खुला। पर सोलहवीं शताब्दी के दौरान पश्चिमी तट की तरह पूर्वी तट पर कोई किलाबंदी नहीं की जा सकी। पर इन बस्तियों में अस्त्र-शस्त्र रखे जाते थे और यहां से सामान ले जाते जहाजों पर निगरानी रखी जाती थी।

दक्षिण पूर्व एशिया

भारतीय समुद्री क्षेत्र के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए पुर्तगालियों ने दक्षिण-पूर्व एशिया के महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्रों पर नियंत्रण स्थापित करना जरूरी समझा। समुद्री व्यापार के प्रमुख केन्द्र मलक्का पर उनकी नजर थी और 1511 में उन्होंने इस पर अधिकार जमा लिया। उन्होंने कोलम्बो, बट्टिकोला जाफनापट्टम आदि (सभी श्रीलंका में) में नये किले स्थापित किए। इसी के साथ—जावा, स्याम, मलक्का, मर्तबन और पेगू से संपर्क स्थापित किया गया। 1518 से पुर्तगालियों ने चीन के संचाओ द्वीप पर बस्ती बसानी शुरू की। यहीं 1552 ई. में प्रसिद्ध इसाई धर्म प्रचारक सेंट फ्राँसिस जेवियर की मृत्यु हुई थी।

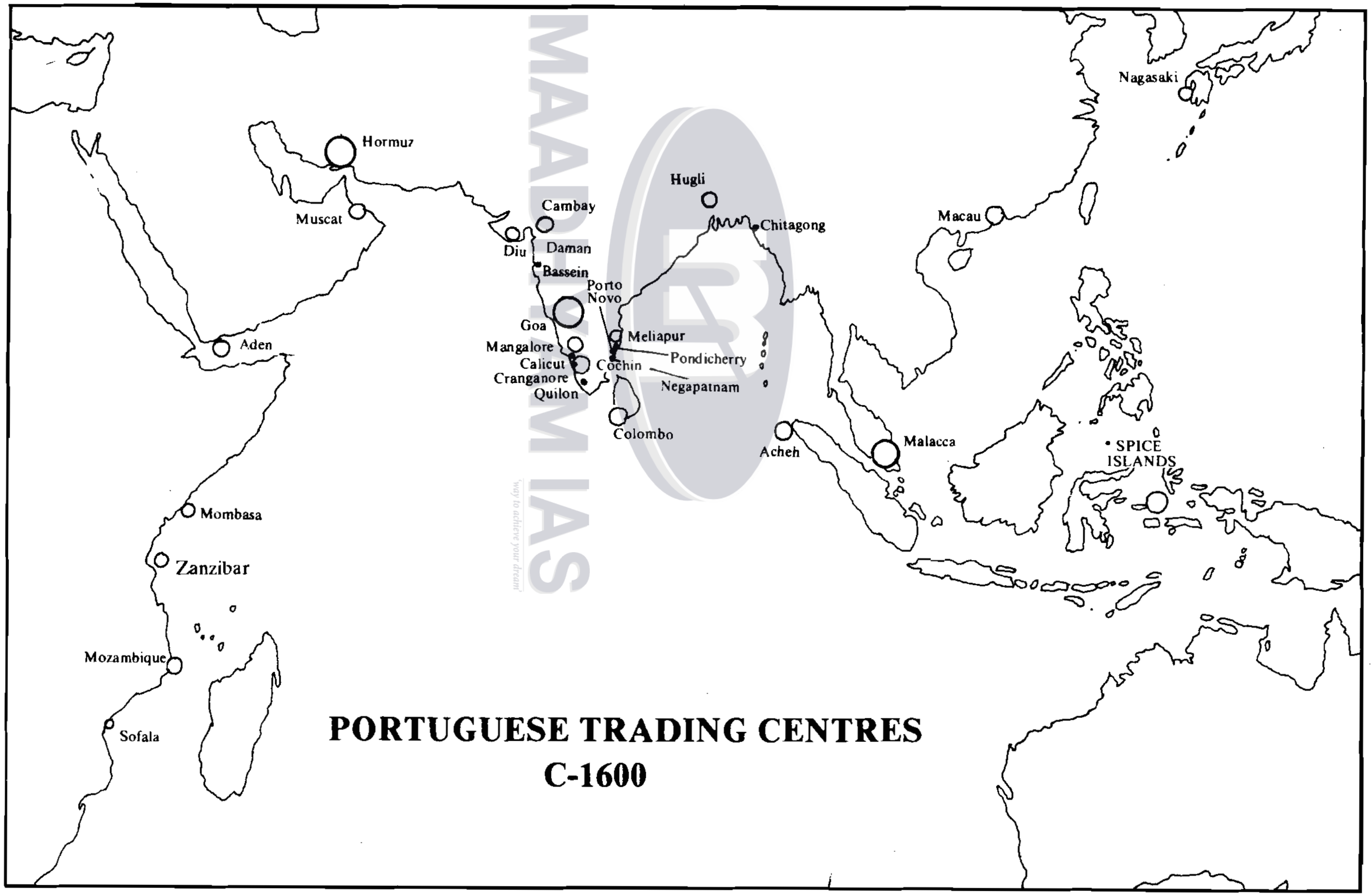

PORTUGUESE TRADING CENTRES
C-1600

बोध प्रश्न 1

1) 16वीं-18वीं शताब्दी में व्यापार और वाणिज्य के परिप्रेक्ष्य में कारखाना का क्या अर्थ था? इसकी क्या भूमिका थी?

....

....

....

....

....

....

2) कारखानों की किलाबंदी की क्या आवश्यकता थी?

....

....

....

....

....

....

3) भारत में पुर्तगालियों की घुसपैठ किस प्रकार हुई?

....

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

4.3 निर्यात और आयात की वस्तुएँ

पुर्तगालियों ने पूर्वी देशों के साथ समुद्री रास्ते से व्यापार करना शुरू किया। उनका मूल उद्देश्य उत्पादन के क्षेत्रों से सीधे मसाले प्राप्त करना था। अभी तक उन्हें इतालवी या मुसलमान व्यापारियों से इसे खरीदना पड़ता था। यूरोपीय भोजन में काली मिर्च का उपयोग खूब होने लगा था। खासकर मांस को ज्यादा देर तक टिकाए रखने के लिए काली मिर्च की मांग बढ़ी। अदरक दालचीनी, इलाइची, जावित्री, जायफल और पूर्व की कई वनस्पतियों की यूरोपीय बाजार में खूब मांग थी। इसके अतिरिक्त मलमल, छींट के कपड़े तथा हाथी आदि की पुर्तगाल में खूब मांग थी।

पुर्तगालियों के पास कोई ऐसी वस्तु नही थी जिससे वे पूर्व की इन चीजों से आदान-प्रदान कर सकें। पूर्वी कुलीन तंत्र के बीच उनकी वस्तुओं की कुछ मांग थी पर यह काफी कम थी। अतः पूर्व से वस्तुओं की खरीद के लिए व्यापारी पश्चिम से सोना, चांदी और अन्य बहुमूल्य रत्न लाया करते थे।

4.3.1 मालाबार और कोंकण तट

मालाबार और कोंकण से सबसे ज्यादा काली मिर्च का निर्यात होता था। आरंभ में मालाबार की काली मिर्च मलक्का, जावा और कनारा की काली मिर्च से बेहतर मानी जाती थी। सोलहवीं शताब्दी के अंत और

सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में कनारा से पहले से ज्यादा काली मिर्च का निर्यात होने लगा। ऐसा माना जाता है कि सोलहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में पुर्तगालियों ने मालाबार से लिस्बन को 25000 से 30000 क्विंटल मसाले (सभी प्रकार के) निर्यात किये थे। शताब्दी के अंत में ठेकेदारों के लिए मालाबार से लिस्बन को 30000 क्विंटल काली मिर्च के निर्यात का लक्ष्य रखा गया। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि 1546 में मालाबार और कोकण तट से 36,664 क्विंटल काली मिर्च पुर्तगाल को निर्यात की गई।

मालाबार से निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तु अदरक थी। इसे सुखाकर भी निर्यात किया जाता था। मालाबार से दालचीनी का भी व्यापार होता था, पर यह श्रीलंका की दालचीनी से बेहतर नहीं थी। मालाबार तट से सफेद और लाल चंदन की लकड़ी भी पुर्तगाल को निर्यात की जाती थी। इनके अतिरिक्त मालाबार, दाबुल, विजयनगर और समग्र रूप में दक्खन से सभी प्रकार के हरड़ (myrobalans) निर्यात किए जाते थे। इसी प्रकार मालाबार और कोंकण तट से पुर्तगाल को अलग-अलग मात्रा में लाख, नील, जटामांसी (spikenard), इमली, सुपारी, कपड़े, हाथी दांत और हल्दी निर्यात किए जाते थे। दालों का भी निर्यात किया जाता था।

1498 में कालीकट के ज़मोरिन ने वास्कोडिगामा से जो निवेदन किया या उससे मालाबार और कोंकण तट पर आयातित वस्तुओं का पता चलता है। उससे सोना, चांदी, मूंगा और सिंदूरी रंग (scarlet) के लिए आग्रह किया गया था। गोवा के गवर्नर अफोन्सो डि अलबुकर्क ने 1513 में पुर्तगाल के राजा को उन वस्तुओं की सूची दी थी जिन्हें भारत में बेचा जा सकता था। इन वस्तुओं में मूंगा, तांबा, पारा, सिंदूर, जरी, मखमल, कालीन, गेरूआ रंग, गुलाब-जल और विभिन्न प्रकार के कपड़े शामिल थे। ये सभी वस्तुएं पुर्तगाल में नहीं मिलती थीं, लेकिन पुर्तगाली इन्हें फ्लैन्डर्स, ज़र्मनी, इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशों से प्राप्त करते थे। उदाहरण के लिए, डेमारक, बूटेदार कपड़ा, सीसा, हिंगुल (cinnabar), सोफाला से सोना, फ्रांसीसी और अंग्रेजी लिनन (एक प्रकार का चमकीला कपड़ा) के कपड़े, फिटकरी-पत्थर, टिन, अफीम, इस्पात, जेनेवा का मखमल, फ्लोरेंस का सिंदूरी रंग, लंदन से लाल कपड़ा, हॉलैंड से मूंगा, आदि भारत में लाये जाते थे। कई प्रकार के ढाले हुए सिक्के भी आयातित होते थे। यह सब भारत में पुर्तगालियों के वाणिज्यिक-मुख्यालय कोचीन लाया जाता था। यहीं से इन वस्तुओं को भारत के विभिन्न भागों में भेजा जाता था। गोवा के मुख्यालय बनने के बाद पुर्तगाली सोना, चांदी जैसी बहुमुल्य वस्तुएँ और नगदी अपने साथ गोवा ले गये और वितरण का कार्य वहीं से करने लगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

4.3.2 उत्तर-पश्चिमी भारत

उत्तर-पश्चिमी भारत से पुर्तगाल को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में नील, कई प्रकार के कपड़े, रेशम, कछुए के खोल से बने हस्तशिल्प आदि कुछ महंगी वस्तुए थीं। टाफ्टा (एक प्रकार का कपड़ा) भी निर्यात की जाने वाली महंगी वस्तु थी। साटन, चिंट्स, मलमल, धारीदार सूती कपड़ा, कैम्ब्रिक-मलमल, रेशम के रूमाल, गोलकुंडा मलमल और चौल, दभोल तथा गुजरात के तट पर उपलब्ध विभिन्न प्रकार के रेशमी उत्पादों का निर्यात पुर्तगाल को किया जाता था। इनमें रेशम का उत्पादन बुरहानपुर और बालघाट में होता था। चिंट्स, कैम्बे में बनता था, और दमन के आसपास के इलाके में सूती कपड़ा बनता था। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान कपड़े के उत्पादन में वृद्धि हुई। उत्तर-पश्चिम तट पर तांबा, चौड़े पाट वाले कपड़े और विभिन्न तरीके से नकद धन का आयात हुआ। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत से कपड़ों के बदले काली मिर्च और मसाले भी उत्तर-पश्चिमी तट पर पहुँचे।

4.3.3 पूर्वी तट

भारत के पूर्वी तट से मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के कपड़ों का निर्यात होता था। कोरोमंडल तट से पुर्तगालियों को चंदन की लकड़ी भी निर्यात की जाती थी। जटामांसी (spikenard) बंगाल में उपजाया जाता था और इसे पुर्तगाल को निर्यात करने के लिए कोचीन लाया जाता था। इस इलाके से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में मोती सबसे महंगी वस्तु थी। यह मुख्य रूप से उस तट से जहाँ मोती वाले सीपी हों प्राप्त किया जाता था। बंगाल से पुर्तगाल जाने वाली वस्तुओं में सूती और रेशमी वस्त्र तथा कढ़ाई वाले वस्त्र का महत्वपूर्ण स्थान था। सूखा अदरक, हरड़ (myrobalans), मक्खन, तेल, मोम और चावल भी बंगाल से प्राप्त किए जाते थे।

पुर्तगाली जरीदार कपड़ा, बूटेदार कपड़ा, साटन का कपड़ा, टाफ्टा, लौंग, जायफल जावित्री, कपूर, दालचीनी, काली मिर्च, संदूक, लिखने का डेस्क, अमूल्य मोती और गहने बंगाल में व्यापार के लिये लाए। ये सब वस्तुएं मलक्का, चीन, बोर्नियो, श्रीलंका और मालाबार तट से लायी गयीं। पुर्तगाली मालदीव से कौड़ियाँ सोलोर और तिमोर से सफेद और लाल चंदन की लकड़ी भी बंगाल तक ले गये।

4.3.4 दक्षिण-पूर्व एशिया

कई प्रकार के मसाले दक्षिण-पूर्व प्रदेशों और श्रीलंका से इकट्ठे किए जाते थेः जैसे, मलक्का और जावा से काली मिर्च प्राप्त की जाती थी। मलक्का में अच्छी कोटि का लौंग उपजाया जाता था। श्रीलंका से श्रेष्ठ दालचीनी प्राप्त कर लिस्बन भेजी जाती थी। तीमोर और तेन्नासेरिम में अच्छी चंदन की लकड़ी पायी जाती थी जिसकी लिस्बन में मांग थी। सुमात्रा से लाख भेजा जाता था। बोर्नियो, सुमात्रा, पासेम और चीन से अच्छी कोटि का कपूर लिस्बन भेजा जाता था। पुर्तगाली पेगू से बैन्जोइन अपने देश ले जाते थे। पुर्तगाली चीन से रेबंदचीनी (rhubarb) और पेगू से कस्तूरी ले जाते थे।

इसके बदले पुर्तगाली दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र को नगद, धन, चांदी, सोना और कपड़ा देते थे। इनमें से अधिकांश कपड़ा भारत में बना होता था।

बोध प्रश्न 2

1) यूरोपवासी काली मिर्च का आयात करने में रुचि क्यों रखते थे?

....

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2) पुर्तगाल को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

4.4 पुर्तगाली व्यापार के लिए पूँजी निवेश

1500 से 1506 के बीच पुर्तगालियों ने मालाबार तट से जितना व्यापार किया था उसे आधार बनाकर 1506 में एक इतालवी ने यह अनुमान लगाया था कि पूरे पूर्व के साथ प्रत्येक वर्ष व्यापार करने के लिए 170,000 **डूकाट** की ज़रूरत पड़ेगी। पुर्तगाल का राजा इस राशि का एक चौथाई हिस्सा खर्च करता था, शेष राषि पुर्तगाली राजा के सहयोगी व्यापारियों और पूँजी निवेशकों से प्राप्त की जाती थी। 1500 में उसने एक आदेश द्वारा देशी और विदेशी व्यापारियों को पूर्व की ओर अपना जहाज ले जाने की अनुमति दे दी। युद्ध-लूट, नज़राना और निजी व्यापारियों पर लगाए गए कर से भी भारत के साथ होने वाले व्यापार के लिए धन प्राप्त होता था।

4.4.1 यूरोपीय पूँजी निवेशक

सोलहवीं शताब्दी में इतालवी, खासकर फ्लोरेंस निवासी प्रमुख पूँजी निवेशक के रूप में सामने आये। अधिकांश इतालवी पूँजी निवेशकों ने पुर्तगाली राजाओं के साथ समझौता किया। वे लिस्बन में राजा को नगद धन या वस्तुएँ दिया करते थे। राजा उसका इस्तेमाल भारत से काली मिर्च खरीदने के लिए किया करता था। समझौते के मुताबिक ये वस्तुएं लिस्बन में इन पूँजी निवेशकों को दे दीं जाती थीं। कुछ पूँजी निवेशकों ने अपने प्रतिनिधि भी भारत भेजे। पूर्वी क्षेत्र में पुर्तगाली अधिकारियों की निगरानी में नगद धन या वस्तुएँ भेजी जाती थीं।

भारतीय वस्तुओं की ओर जर्मन पूँजी निवेशकों और व्यापारियों का भी ध्यान आकृष्ट हुआ। पुर्तगाली राजा ने खुले दिल से उनका स्वागत किया क्योंकि अपने बल पर उसे पूर्वी व्यापार को संभालने में कठिनाई हो रही थी। भारत से लाई गयी वस्तुओं, खासकर काली मिर्च और अन्य मसालों का आंशिक रूप में तांबे के माध्मम से भुगतान होता था, अतः तांबे की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती थी। यूरोप में फूगर जैसे कुछ जर्मन व्यापारी पूँजी निवेशकों का तांबे के उत्पादन पर एकाधिकार था। इससे भारत से व्यापार करने में काफी सुविधा हो गयी। अब जर्मन पूँजी निवेशक लिस्बन स्थित भारतीय केंद्र को अपना जहाज, धन और वस्तुएं सौंप दिया करते थे। ये वस्तुएं पुर्तगाली झंडे के नीचे भारत में लायी जाती थीं और वहाँ से लायी वस्तुएं समझौते की शर्तों के अनुसार लिस्बन में पूँजी निवेशकों को बेच दी जाती थीं।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वैलसर और फूगर ने गिराल्डो पेरिस और युआन बैतिस्ता रोवालेस्को ने एक व्यापार-संघ बनाया और 30,000 क्विंटल काली मिर्च सीधे भारत से खरीदने और भारत को प्रतिवर्ष 170,000 **कूसेडो** भेजने का समझौता किया। इस प्रकार वैलसर और फूगर की फर्में लगातार भारत के व्यापार से जुड़ी रहीं। फूगर के अलावा हरवार्ट और इम्होफ की फर्में भी विजयनगर से हीरे और अन्य मूल्यवान पत्थरों का व्यापार करती थीं।

सोलहवीं शताब्दी में कुछ ही पुर्तगाली व्यापारी ऐसे थे जिन्होंने अपने बल पर भारत के साथ व्यापार किया। भारत में नियुक्त राज्य के अधिकारियों को भी भारत के साथ व्यापार करने की इजाज़त थी। पदानुक्रम में अपने पद के अनुसार उन्हें नगद राशि के बदले भारतीय वस्तुएं पुर्तगाल ले जाने का कुछ अधिकार प्राप्त था। उनके नियुक्ति पत्र में इन सेवा-शर्तों का उल्लेख कर दिया जाता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

4.4.2 भारतीय व्यापारी और शासक

कई बार पुर्तगालियों के पास नगद धन या वस्तु विनियम के लिए कोई वस्तु नहीं होती थी तो भारतीय व्यापारी उन्हें उधार में सामान दे देते थे। कोचीन के व्यापारी खासकर मरक्कारों ने इस ढंग से पुर्तगालियों की काफी सहायता की और इसके लिए पुर्तगाली अधिकारी उनका आभार मानते थे। कभी-कभी पुर्तगाली राजा से ऐसे व्यापारियों को रियायत देने को भी सिफारिश की गई। बीजापुर राजदरबार से पद मुक्त होने के बाद ख्वाजा शमसुद्दीन गिलानी कैन्नासौर में आकर बस गया था। वह पुर्तगालियों को ऋण दिया करता था।

कुछ स्थानीय राजाओं ने पुर्तगालियों की जमानत भी भरी। जब पुर्तगालियों के पास माल खरीदने के लिए पैसा नहीं होता था, तो ये राजा व्यापारियों से धन दिलाया करते थे। उदाहरण के लिए, कोचीन के राजा ने इस प्रकार कई बार पुर्तगालियों के लिए ऋण उपलब्ध करवाकर सहायता की। हिंद महासागर और अरब सागर में चलने वाले पुर्तगाली जहाज अस्त्र-शस्त्र से सजे होते थे। पुर्तगालियों से आज्ञा पत्र (cartaz) लिए बिना अगर कोई जहाज सामान ढ़ोने की कोशिश करता था, तो उसे जब्त कर लिया जाता था (अधिक विस्तार के लिए ऐच्छिक पाठ्क्रम-3, इकाई-21, उपभाग 21.4.1 देखिए)। इस प्रकार की लूट से भी काफी धन इकट्ठा होता था जिसे पुनः व्यापार में निवेशित किया जाता था। पुर्तगालियों ने पराजित राजाओं को नगद या वस्तु के रूप में नजराना देने के लिए बाध्य किया। निवेश के लिए कई बार उनके द्वारा इस स्रोत का भी इस्तेमाल किया गया। भारत के किसी भाग में या एशिया के किसी देश में जहाज भेजने के लिए व्यक्तियों को पुर्तगालियों से आज्ञा-पत्र लेना होता था, जिसके लिए वे शुल्क वसूल करते थे। हालांकि यह अपने आप में नगण्य था, पर ऐसे जहाजों को भारत के बंदरगाहों पर बने पुर्तगाली सीमा शुल्क कार्यालय में हाजिरी देनी होती थी और कर अदा करना पड़ता था। यह पुर्तगालियों की आय का अन्य स्रोत था। इस प्रकार पुर्तगाली विभिन्न तरीकों से अपने व्यापार के लिए धन इकट्ठा किया करते थे।

4.5 भारत के साथ पुर्तगाली व्यापार की प्रकृति

कालीकट आगमन के समय से ही पुर्तगालियों ने विदेशी और भारतीय सभी व्यापारियों की हिस्सेदारी समाप्त करने और स्वंय के लिए व्यापार के एकाधिकार की मांग की। पुर्तगाली जहाज अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रहा करते थे और दूसरे व्यापारियों को डरा धमकाकर उनके जहाज और समान जब्त कर लिया करते थे। 1501 तक पुर्तगाली राजा ने हिन्द महासागर क्षेत्र में अपने स्वामित्व की घोषणा कर दी। उसने **इथोपिया, अरब, फारस और भारत के जहाजरानी, वाणिज्य तथा विजयों के शाह** की उपाधि ग्रहण कर ली। 1502 में पुर्तगालियों ने कालीकट क्षेत्र से एकाधिकार व्यापार करने की मांग की जिसे कालीकट के जमोरिन राजा ने अस्वीकार कर दिया। इसके बाद वास्कोडिगामा ने अरब सागर और हिन्द महासागर में चलने वाले सभी जहाजों के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। उसने एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार पुर्तगालियों से आज्ञा-प्राप्त जहाज पर कोई आक्रमण नहीं किया जाना था। यह प्रमाण-पत्र पहली बार 1502 में जारी किया गया।

समुद्री व्यापार में संलग्न सभी भारतीय व्यापारियों और शासकों को पुर्तगालियों से आज्ञा-पत्र लेना पड़ता था। इस प्रकार के आज्ञा-पत्र पर अंकित कर दिया जाता था कि ये जहाज काली मिर्च, घोड़े, अदरक, जहाज में प्रयोग होने वाली नारियल की रस्सी, गंधक, सीसा, शोरा (saltpetre), दालचीनी आदि नहीं लादेंगे। इन जहाजों के मार्गों और गंतव्य स्थान पर भी नियंत्रण लगाया गया। अकबर और उसके उत्तराधिकारियों, अहमदनगर के निजाम शाही शासक, बीजापुर के आदिल शाही शासक, कोचीन के राजा, कालीकट के ज़मोरिन शासकों और कैन्नानो के राजाओं ने अपने जहाजों को विभिन्न जगहों पर भेजने के लिए ऐसे आज्ञा-पत्र पुर्तगालियों से खरीदे थे।

4.5.1 एकाधिकार व्यापार

पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत तक विश्व के अनेक हिस्सों से व्यापारी वाणिज्य और व्यापार करने के लिए भारत के तटीय इलाकों में पहुँच चुके थे। 1498 में वास्कोडिगामा ने कालीकट के बंदरगाह पर मक्का, तेनसेरी, पेगू, श्रीलंका, तुर्की, मिश्र, फारस, इथोपिया, ट्यूनिस और भारत के विभिन्न क्षेत्रों के व्यापारियों की उपस्थिति का जिक्र किया है। यह सर्वविदित तथ्य है कि लाल सागर तथा चीन से व्यापारी भारतीय तटों पर अक्सर आया करते थे। ऐसी कोई सूचना नहीं मिलती है कि किसी व्यापारिक समूह ने कभी व्यापार के क्षेत्र में समग्र रूप से एकाधिकार की मांग की हो या किसी एक वस्तु या अनेक वस्तुओं के व्यापार के लिए अपना हक जताया हो। पर पुर्तगालियों के आगमन के बाद यह स्थिति बिल्कुल बदल गयी। राजाओं पर दबाव डाला गया कि वे दूसरे व्यापारियों को उनके बंदरगाह पर व्यापार करने से रोकें। इसी प्रकार कुछ वस्तु विशेष का व्यापार अन्य पुर्तगाली व्यापारियों के अलावा अन्य व्यापारियों के लिए वर्जित कर दिया गया। दूसरे शब्दों में, पुर्तगालियों ने व्यापार के एकाधिकार की मांग की। भारतीय राजाओं के साथ हुई संधियों में इसका विशेषरूप से उल्लेख कर दिया जाता था। एशियाई समुद्र क्षेत्र में अपने एकाधिकार को स्थापित करने के लिए पुर्तगालियों ने सामरिक महत्व के स्थानों पर किले बनाये, अपने जहाजों से आने जाने वाले जहाजों पर निगरानी रखी और दूसरे जहाजों को आज्ञा-पत्र लेने के लिए दबाव डाला।

4.5.2 भारतीय शासकों और व्यापारियों का व्यापार

पुर्तगालियों द्वारा व्यापार पर पूर्ण एकाधिकार स्थपित करने के प्रयत्न के बावजूद भारतीय शासक और व्यापारी व्यापार में भाग लेते रहे। उदाहरण के लिए, कैन्नानोर का राजा पुर्तगालियों से आज्ञा-पत्र लेकर सामान से भरा अपना जहाज कैम्बे और होर्मुज भेजा करता था। पुर्तगालियों का एकाधिकार होने के बावजूद वह इन स्थानों से घोड़े मंगवाया करता था। कभी-कभी इन जहाजों पर पुर्तगालियों द्वारा कब्जा किए जाने का भी खतरा होता था। मालाबार तट पर स्थित तानूर, चाले और कालीकट के राजाओं के साथ भी यही बात थी। पुर्तगालियों के एकाधिकार के बावजूद गुजरात के कुलीन वर्ग अपना व्यापार करते रहे। व्यापार में रुचि रखने वाले मलिक गोपी, मलिक अयाज, ख्वाजा सफर जैसे कुलीन अपने जहाजों के लिए कभी आज्ञा-पत्र लेते थे, कभी नहीं लेते थे। इसके अलावा भारत में बसे स्थानीय और विदेशी व्यापारी भी कभी आज्ञा-पत्र लेते थे कभी नहीं लेते थे। यह अनुमान लगाया गया है कि कालीकट और कन्याकुमारी (केप कोमोरिन) के बीच के इलाके में प्रति वर्ष 60,000 क्विंटल काली मिर्च उगाई जाती थी। इसमें से केवल

15,000 क्विंटल पुर्तगाली कारखाने को सुपुर्द किया गया बाकि तीन चौथाई माल अन्य बंदरगाहों पर ले जाया गया। इसे पुर्तगालियों ने अवैध व्यापार बताया। पुर्तगाली कई दशक बीत जाने के बाद भी 1503 में तय किए काली मिर्च के मूल्य में बढ़ोत्तरी नहीं करना चाहते थे। अतः अब काली मिर्च के उत्पादकों के पास अन्य कोई चारा नहीं रह गया और वे दूसरों को अपना माल बेचने लगे। ये व्यापारी पुर्तगालियों की निगाह से बचकर इसे दूसरे व्यापारिक स्थलों पर भेज दिया करते थे। इसके अलावा अपनी सरकार की निगाह बचाकर कई पुर्तगाली अधिकारी कई वस्तुओं का व्यापार करते थे। वस्तुतः लाल सागर क्षेत्र में पुर्तगाली एकाधिकार में कोई खास दम नही था।

4.5.3 व्यापार और उत्पादन

सोलहवीं शताब्दी के दौरान एशिया और खासकर भारत से होने वाले समुद्री व्यापार में व्यापारियों को काफी लंबी दूरी तय करनी पड़ती थी। एक छोर पर एशिया के बंदरगाह थे और दूसरे छोर पर अटलांटिक महासागर के बंदरगाह थे। भारत से निर्यातित वस्तुएं यूरोप के विभिन्न हिस्सों में पहुंचाई जाती थी। इस काल का व्यापार केवल "फेरी व्यापार" तक ही सीमित नहीं था, बल्कि यह उससे अलग था।

काली मिर्च की भारी मांग को देखते हुए उत्पादकों ने इसका उत्पादन बढ़ा दिया। यह गणना की गयी है कि 1515 से 1607 के बीच मालाबार क्षेत्र में काली मिर्च का उत्पादन 200 से 275 प्रतिशत तक बढ़ गया था। पुर्तगालियों के आगमन के पहले के उत्पादन का कोई लेखा-जोखा प्राप्त नहीं है अतः यह बताना या तुलना करना कठिन है कि काली मिर्च के उत्पादन में वस्तुतः कितनी बढ़ोत्तरी हुई। परन्तु यह बिना किसी हिचक के कहा जा सकता है कि पुर्तगालियों के आगमन के बाद काली मिर्च के उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि मुगल साम्राज्य और सफवी साम्राज्य में काली मिर्च की मांग से भी भारत में इसके उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई होगी।

बोध प्रश्न 3

1) भारत के साथ पुर्तगालियों के व्यापार में विदेशी पूँजी निवेश की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

2) आज्ञा पत्र (cartaz) को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3) भारतीय समुद्री क्षेत्र पर पुर्तगाली किस प्रकार अपना एकाधिकार स्थापित कर सके।

....

....

....

....

....

....

4.6 सारांश

इस इकाई को पढ़कर आप समझ गये होंगे कि पुर्तगालियों के आने के बाद किस प्रकार एशिया और खासकर भारत के व्यापार जगत में परिवर्तन आया। अब तक समुद्री व्यापार सबके लिए खुला था, परन्तु अब पुर्तगालियों ने एकाधिकार की मांग की और अपने एकाधिकार की रक्षा के लिए कारखाने और किले स्थापित किए। पुर्तगालियों ने अन्य व्यापारियों के जहाजों के लिए आज्ञा-पत्र लेना अनिवार्य कर दिया अन्यथा वे उनका जहाज जब्त कर लेते थे। सोलहवीं शताब्दी के पहले ऐसा कभी न सुना न देखा गया था। भारत के तटीय प्रदेशों में अपने को स्थापित करने के बाद मसाले के व्यापार से पुर्तगालियों ने खूब मुनाफा कमाया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के इतिहास में पहली बार भारतीय राजाओं के साथ वाणिज्यिक संधियां की गयीं। मांग को देखते हुए नगदी फसलों, खासकर मसालों का उत्पादन तेजी से बढ़ा। इस बात पर गौर करना चाहिए कि कृषि शुद्ध रूप से बाजारोन्मुख थी और इसका रुख अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के अनुकूल था।

4.7 शब्दावली

क्रूसेडो : पुर्तगाली सोने का सिक्का : 390 **रेइस** = 1 **क्रूसेडो**; रेइस (अंग्रेजी शब्द **रियल** का बहुवचन) यह पुर्तगाली मुद्रा की इकाई थी; आजकल 1000 **रेइस** = 1**एस्कूडो** (पुर्तगाली सिक्का) है।

डूकाट : एक इतालवी सिक्का; एक सोने का **डूकाट** अकबर के चार चांदी के रुपये के बराबर था, जबकि चांदी **डूकाट** अकबर के दो चांदी के रुपये के बराबर था।

कारखानेदार : अंग्रेजी में इसे "फैक्टर" कहते थे। यह "कारखाने" या "फैक्ट्री" का मुख्य पदाधिकारी होता था।

कारखाना : यह एक वाणिज्यिक संगठन था जिसका अपना स्वायत्त आस्तित्व होता था। स्थानीय शासक की आज्ञा मिलने पर विदेशी व्यापारी या शासक कारखाना स्थापित करते थे।

जमोरिन : कालीकट के राजा की पदवी (संभवतः समुद्र राय का अपभ्रंश)

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) वाणिज्यिक संगठन के रूप में कारखाने की अवधारणा और ऐसे कारखाने में फर्क है जहां उत्पादन होता है। कारखाना मात्र किसी देश का वाणिज्यिक प्रतिनिधि नहीं बल्कि इससे कुछ ज्यादा हुआ करता था (देखें भाग 4.2)।
2) किलाबंद कारखानों के महत्व का उल्लेख कीजिए (देखिए भाग 4.2)।
3) इस बात की परीक्षा कीजिए कि किस प्रकार पुर्तगाली मालाबार से धीरे-धीरे उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी तट की ओर बढ़े। इसके साथ-साथ उनकी पूर्वी और पश्चिमी बस्तियों के अंतर को भी विश्लेषित कीजिए (देखिए भाग 4.2)।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 4.3 यह मुख्य रूप से उनके भोजन से संबद्ध है।
2) देखिए उपभाग 4.3.1, 4.3.2, 4.3.3, 4.3.4

बोध प्रश्न 3

1) देखिए उपभाग 4.4.1 इसका उत्तर देते हुए बताइए कि क्यों पुर्तगाली राजा ने विदेशी व्यापारियों को पूर्व में व्यापार करने की इजाजत दी।

2) देखिए भाग 4.5
3) देखिए उपभाग 4.5.1 आज्ञा-पत्र सैन्य शक्ति तथा जहाज़रानी की भूमिका का पुर्तगाली व्यांपारिक एकाधिकार की स्थापना के संदर्भ में वर्णन कीजिए।

स्रोतों पर एक टिप्पणी

स्रोतों पर यह हिस्सा खासकर इसलिए दिया गया है ताकि आप अपने अध्ययन काल के भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोतों की जानकारी हासिल कर सकें। इस काल के अनेक स्रोत समकालीन पुस्तकों, साहित्यिक रचनाओं और पुरातात्विक अवशेषों, शिलालेखों और सिक्कों के रूप में काफी मात्रा में विद्यमान हैं। यहाँ हम अपना ध्यान केवल साहित्यिक स्रोतों पर केंद्रित करेंगे जो प्रमुखतः फारसी भाषा में प्राप्त होते हैं। इसके अलावा राजस्थानी, मराठी, बंगला आदि भारतीय भाषाओं के स्त्रोतों में भी समकालीन स्थिति का वर्णन मिलता है। इसी समय पुर्तगाली, अंग्रेज, फ्रांसीसी और डच आदि यूरोपीय भारत के दृश्य पटल पर उपस्थित हुए। इस काल की भारतीय परिस्थितियों के संबंध में उन्होंने अपने अनुभव और विचार व्यक्त किए हैं, यह भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं। यहां हम इनमें से उन कुछ प्रमुख समकालीन स्त्रोंतों के विषय में जानकारी दे रहे हैं जो आपके लिए महत्वपूर्ण हैं।

फारसी स्त्रोत

फारसी भाषा में लिखित स्रोत प्रशासनिक और लेखा नियमावली, संख्यिकी-तालिकाओं, प्रशासनिक विवरणों (**फरमान, निशान, परवाना** आदि), पत्र-लेखन (**पत्र, इंशा**-साहित्य) ऐतिहासिक और भौगोलिक लेखन, शब्दकोश (समकालीन) आदि के रूप में मिलते हैं। पर यहां हम मुख्य रूप से चुने हुए ऐतिहासिक लेखन पर ही विचार करेंगे।

इनमें सबसे प्रमुख बाबर के संस्मरण **बाबरनामा** है। यह मूल रूप में चगताई तुर्की भाषा में लिखा गया था। इसमें बाबर के जन्म 1483 से 1529 तक की घटनाओं की जानकारी मिलती है।

दूसरा प्रमुख ग्रंथ **हुमायूँनामा** है। इसे अकबर के शासनकाल में बाबर की बेटी गुलबदन बेगम ने लिखा था। इसमें मुख्य रूप से बाबर और हुमायूं के शासनकाल का जिक्र है। **तोहफा-ए अकबर शाही (तारीख-ए शेरशाही)** भी एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसे अकबर ने 1586 के बाद तैयार करवाया था। इसके लेखक अब्बास खां सरवानी थे। इसमें शेरशाह के जीवन और कार्यों का उल्लेख हुआ है।

MAADHYAM IAS

अब्दुल कादिर बदायूंनी की रचना **मुंतखब-उततवारिख** अकबर के शासन की एकमात्र ऐसी रचना है जो अकबर को समर्पित नहीं है। इसमें बदायूंनी ने अकबर की विधर्मिता और "नवीनता" के लिए उसकी जमकर आलोचना की है। प्रथम खंड में सुबुक्तगीन से लेकर हुमायूं तक का इतिहास शामिल है। यह खंड राजनैतिक इतिहास पर प्रकाश डालता है। दूसरे खंड में अकबर के प्रथम चालीस वर्षों के शासन की घटनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। तीसरे खंड में उसने अकबर के काल के **मशायक (सूफियों) उलेमा**, चिकित्सक और कवियों की जीवनियाँ लिखी है। **अकबरनामा** में जिन महत्वपूर्ण तथ्यों को शामिल नहीं किया गया है उनमें से कुछ **मुंतखब (महज़र** आदि) में मिलते हैं।

अबुल फज़ल का **अकबरनामा** अकबर के शासन काल के दौरान लिखा गया अमर ग्रंथ है। इसके तीन खंड हैं, प्रथम दो खंड ऐतिहासिक विवरण प्रदान करते हैं और तीसरा खंड **आइन-ए अकबरी** है। प्रथम खंड में आदम के जमाने से लेकर अकबर के शासनकाल के प्रथम सत्रह वर्षों का उल्लेख है। दूसरे खंड में अकबर के शासनकाल के 46वें वर्ष तक का लेखा जोखा है। तीसरे खंड **आईन-ए अकबरी** साम्राज्य के विभिन्न विभागों, शाही टकसाल, खाद्य पदार्थ और वस्तुओं की कीमतों, सुलेखन, और चित्रकला, शास्त्रागार, शाही अस्तबलों, आदि का विवरण है। इसमें विभिन्न राजस्व और प्रशासनिक पदाधिकारियों के कार्यों के विषय में भी जानकारी मिलती है। इसमें विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक और दार्शनिक बातों की भी चर्चा है। हमें विभिन्न वस्तुओं की कीमतों के बारे में भी जानकारी मिलती है। **आईन** में अकबर के साम्राज्य के समय के **सूबों, सरकारों** और **परगनो** के विवरण, भूमि की माप, राजस्व की दरों, अनुमानित राजस्व आय तथा सैनिकों की संख्या आदि की विस्तृत तालिकाएं मिलती हैं।

जहांगीर द्वारा लिखित **तुजुक-ए जहांगीरी** में जहांगीर के शासनकाल के प्रथम 19 वर्ष के संस्मरण हैं, इससे

जहांगीर के शासनकाल की जानकारी मिल जाती है। मौतमद खां का **इकबालनामा-ए जहांगीरी** (1632 के बाद) जहाँगीर के काल का अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

शाहजहां के शासनकाल में उसके शासन का इतिहास लिखने के लिए तीन इतिहासकार नियुक्त किए गए। अमीन कज़वीनी ने प्रथम दस वर्षों का इतिहास लिखा। इसके बाद अब्दुल हमीद लाहौरी को यह जिम्मा सौंपा गया जिसने शाहजहां के शासनकाल के प्रथम बीस वर्षों का इतिहास पूरा किया। इसके बाद मौहम्मद वारिस ने 21वें से 30वें शासकीय वर्ष तक का इतिहास लिखा। इन तीनों खंडों को **बादशाहनामा** के नाम से जाना गया। शेख फरीद भक्खरी का **ज़खीरत-उल खवानीन** अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें अकबर से लेकर शाहजहां तक के शासनकाल के अमीरों (कुलीनों) की जीवनियां प्रस्तुत की गयी हैं।

औरंगजेब के शासनकाल के प्रथम दस वर्षों का इतिहास हमें मौहम्मद काज़िम द्वारा संकलित सरकारी ऐतिहासिक ग्रंथ **आलमगीरनामा** (1668) से प्राप्त होता है। इसके बाद औरंगजेब ने सरकारी इतिहास लेखन की परंपरा बंद करवा दी। परन्तु अन्य समकालीन स्रोतों से इस काल की काफी सूचनाएं प्राप्त हो जाती है। औरंगजेब के शासनकाल में लिखी जाने वाली महत्वपूर्ण रचनाएं हैं खाफी खां की **मुंतख़ब-उल लुबाब**, ईश्वर दास नागर कृत **फुतुहात-ए आलमगीरी** (प्रथम से चौतीसवें शासन वर्ष तक), साक़ी मुस्तैद खां की **मासिर-ए आलमगीरी** (1710-11), भीमसेन की **नुस्ख़ा-ए दिलकुशा** (1708-9)।

राजस्थानी स्रोत

राजस्थानी भाषा में काफी संख्या में स्रोत सामग्री उपलब्ध हैं जो मध्यकालीन भारत विशेषकर-राजस्थान पर प्रकाश डालते हैं। इनमें सबसे प्रमुख मुहता नैनसी का **मारवार रा परगना री विगत** (लगभग 1666) और उसकी **ख्यात** (1667 के बाद) है। काफी हद तक उपेक्षित बनारसी दास जैन का **अर्द्धकथानक** मुगल इतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत है। श्यामल दास की **वीर विनोद** (जो बाद में लिखी गई है) में महत्वपूर्ण समकालीन सूचनाओं और तथ्यों का उल्लेख है।

यूरोपीय स्रोत

समकालीन पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच और अंग्रेजों के लेखन से उस समय के भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं पर काफी प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार की सूचनाएं दो रूपों में उपलब्ध हैं। पहला है: संस्मरण, यात्रा वृतांत और पत्रों के (धर्म प्रचारकों के) रूप में। दूसरा है—उनकी कंपनियों और फैक्ट्रियों के रिकार्ड। एंतोनियो मॉनसरेट नामक एक इसाई धर्म-प्रचारक ने पुर्तगाली में एक **कमेंट्री** लिखी है (1597), जिससे अकबर के दरबार का जीवंत ब्यौरा प्राप्त होता है। सर टामस रो (**एम्बेसी** 1615-19) का ग्रंथ जहाँगीर के काल की राजनीति और अर्थव्यवस्था का वर्णन प्रस्तुत करता है। डच अधिकारी पेल्सार्ट का संस्मरण (**रिमांस्ट्रैंट**) एक संक्षिप्त परन्तु बहुत महत्वपूर्ण विवरण प्रदान करता है। पीटर मंडी (1628-34) और सेबेस्टियन मैनरीक (1629-43) के यात्रा संस्मरणों से शाहजहां के शासनकाल की महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होती हैं। औरंगजेब के जमाने के यूरोपीय स्रोत काफी मात्रा में मिलते हैं। फ्रेंसिसको बर्नियर (1656-68) ने अपने यात्रा विवरण में आगरा और दिल्ली का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसमें मुगल साम्राज्य के राजस्व स्रोतों आदि का भी विस्तृत उल्लेख है। निकोलाओ मानुक्की (1656-1712) के ग्रंथ **स्टोरिया डो मोगोर** से भी औरंगज़ेब के शासनकाल से संबंधित काफी विवरण प्राप्त होता है। वह सामूगढ़ की लड़ाई में उपस्थित था। अतः उत्तराधिकार के युद्ध पर उसका लेखन बहुत उपयोगी है।

इसके अलावा कारखानेदारों के दस्तावेजों (**फैक्ट्री रिकॉर्ड्स**) से भी मुगल साम्राज्य के बारे में काफी जानकारी मिलती है। इसी प्रकार डच ईस्ट इंडिया कंपनी के रिकार्ड डच अभिलेखागार में भी उपलब्ध हैं। यह रिकार्ड काफी उपयोगी हैं और समकालीन व्यापारिक और वाणिज्यिक गतिविधियों को समझने में बड़े उपयोगी हैं।

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

आर.पी. त्रिपाठी : **मुगल साम्राज्य का उदय और अस्त**

प्रो. एच.के. शेरवानी एवं डॉ. पी.एम. जोशी : **History of Medieval Deccan 2 vols.**

ए.बी. पाण्डेय : **The First Afghan Empire in India**

के. एल. मैथ्यू : **Portuguese Trade with India in the 16th century**

डॉ. के. ए. नीलकंठशास्त्री : **दक्षिण भारत का इतिहास**

16वीं शताब्दी में भारत	(अनु.) वीरेन्द्र वर्मा	
	एच. सी. वर्मा	: **मध्यकालीन भारत (केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय)**
	अवध बिहारी पांडे	: **उत्तरमध्य कालीन भारत**

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 5 मुगल साम्राज्य का विकास : 1526

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर राजनैतिक स्थिति
5.3 मध्य एशिया तथा बाबर
5.4 भारत में मुगल शासन की स्थापना
    5.4.1 बाबर तथा राजपूत राज्य
    5.4.2 बाबर तथा अफगान सरदार
5.5 हुमायूं
    5.5.1 बहादुर शाह तथा हुमायूं
    5.5.2 पूर्वी अफगान तथा हुमायूं
    5.5.3 हुमायूं एवं उसके भाई
5.6 भारत में द्वितीय अफगान साम्राज्य की स्थापना : 1540-1555
5.7 भारत में मुगल शासन की पुनः स्थापना
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई से आपको निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होगी :

- बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर भारत की राजनैतिक स्थिति के विषय में,
- लोदी शासकों के विरुद्ध बाबर के सफलतम अभियानों की,
- स्थानीय शक्तियों विशेषकर अफगानों तथा राजपूतों के साथ मुगलों के संघर्ष एवं उनकी विजयों के विषय में,
- शेरशाह के उत्थान तथा सुदृढ़ीकरण के बारे में, और
- उन परिस्थितियों तथा कारकों की जिनके द्वारा हुमायूं के नेतृत्व में मुगल शासन की पुनः स्थापना हो सकी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

5.1 प्रस्तावना

वर्तमान इकाई का कार्य क्षेत्र बाबर तथा हुमायूं की अधीनता में भारत में मुगल शासन की स्थापना की प्रक्रिया तक सीमित है। इस इकाई में अफगानों द्वारा प्रस्तुत की गई चुनौती एवं मुगल सत्ता को उखाड़ फेंकने के अफगान प्रयत्नों का भी विवरण किया गया है। अफगान शासन का संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया गया है। यह इकाई मुख्यतः बाबर तथा हुमायूं के नेतृत्व में किये क्षेत्रीय प्रसार का विवरण प्रस्तुत करती है। मुगल शासन के संगठनात्मक पक्षों का विवरण आगामी खंडों में किया जाएगा।

5.2 बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर राजनैतिक स्थिति

तुगलक शासन के पतन के पश्चात् पंद्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध राजनैतिक अस्थिरता का दौर था। सैय्यद (1414-1451) तथा लोदी (1451-1526) शासक दोनों ही विनाशक

शक्तियों का सामना करने में असफल रहे। (देखें इकाई 2) कुलीन वर्ग अवसर प्राप्त होते ही विरोध एवं विद्रोह करते। उत्तर पश्चिम प्रांतों में व्याप्त राजनैतिक अराजकता ने केन्द्र को कमजोर किया। अब हम भारत के विभिन्न भागों में घटित घटनाचक्र का विवरण करेंगे।

मध्य भारत में तीन राज्य थे— गुजरात, मालवा एवं मेवाड़। किंतु मालवा के सुलतान महमूद खिलजी द्वितीय की शक्ति का पतन हो रहा था। गुजरात मुजफ्फर शाह के अधीन था। जबकि मेवाड़ सिसोदिया शासक राणा सांगा के अधीन सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य था। मालवा के शासकों पर निरंतर लोदी, मेवाड़ एवं गुजरात के शासकों का दबाव था क्योंकि यह न केवल एक उपजाऊ क्षेत्र एवं हाथियों की आपूर्ति का महत्वपूर्ण स्रोत था अपितु इस क्षेत्र से होकर गुजरात के बंदरगाहों को महत्वपूर्ण मार्ग गुजरता था। अतः यह क्षेत्र लोदी शासकों के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। इसके अतिरिक्त यह गुजरात एवं मेवाड़ के शासकों के लिए लोदी शासकों के विरुद्ध मध्यवर्ती राज्य का कार्य कर सकता था। मालवा का सुल्तान एक असक्षम शासक था और उसके प्रधानमंत्री मेदिनी राय के लिए आतंरिक कलहों के कारण राज्य की एकता बनाये रखना मुश्किल था। अंततः मेवाड़ के शासक राणा सांगा ने मालवा एवं गुजरात पर अपने प्रभाव को बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली। 15वीं सदी के अंत तक राणा सांगा द्वारा रणथम्भौर एवं चन्देरी पर अधिकार प्राप्त करने के साथ ही संपूर्ण राजपूताना उसके अधीन आ गया। दक्षिण में विजयनगर एवं बहमनी दो शक्तिशाली राज्य थे। (देखें पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03, खंड 7) पूर्व की ओर बंगाल पर नुसरत शाह का शासन था। इब्राहिम लोदी के शासन के अंतिम वर्षों में अफगान सरदारों नसीर खां लोहानी, मारूफ फरमूली आदि ने सुल्तान मौहम्मद शाह के नेतृत्व में अलग जौनपुर राज्य की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। इन बड़े राज्यों के अतिरिक्त आगरा के आसपास बहुत से अफगान सरदारों के अधीन कुछ महत्वपूर्ण छोटे-छोटे स्वायत्त क्षेत्र भी थे— मेवात में हसन खां, बयाना में निजाम खां, धौलपुर में मौहम्मद जैतुन, ग्वालियर में तातार खां सारंग खानी, रापरी में हुसैन खां लोहानी, इटावा में कुतुब खां, कालपी में आलम खां, सम्भल में कासिम सम्भली आदि। बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर राजनैतिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए सामान्यतः यह कहा गया है (रशब्रुक विलियम) कि उस समय राजपूत राज्यों का एक 'महासंघ' था जो हिन्दुस्तान पर नियंत्रण करने की तैयारी में था। यह भी कहा जाता है कि यदि बाबर का आक्रमण न हुआ होता तो राजपूत अपने प्रख्यात नेता राणा सांगा के नेतृत्व में उत्तर भारत में राजनैतिक सत्ता पर अधिकार करने में सफल हो जाते। यह तर्क दिया जाता है कि क्षेत्रीय राज्यों के बीच राजनैतिक विभाजन की प्रकृति धार्मिक थी और राणा सांगा के नेतृत्व में राजपूत महासंघ, जो कि धार्मिक भावना से प्रेरित था, हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। यह मान्यता **बाबरनामा** में उद्धृत उस अंश पर आधारित है जहां बाबर कहता है कि हिन्दुस्तान पांच मुसलमान शासकों— लोदी (केंद्र में), गुजरात, मालवा, बहमनी तथा बंगाल और दो हिन्दू शासकों— मेवाड़ के राणा सांगा तथा विजयनगर द्वारा शासित है। इसके अतिरिक्त खानवा की लड़ाई के बाद जारी किये गये **फतहनामा** के आधार पर कहा जाता है कि राणा सांगा के नेतृत्व में राजपूत महासंघ धार्मिक भावना से प्रेरित था और उसको "इस्लाम की सत्ता" को उखाड़ फेंकने की भावना से संगठित किया गया था।

किंतु इस तरह के अनुमानों के विषय में इतिहासकारों ने प्रश्न उठाये हैं। बाबर ने ऐसा नहीं कहा कि ये राज्य एक दूसरे के विरुद्ध धार्मिक आधार पर शत्रुता रखते थे। बल्कि बाबर स्वयं स्वीकार करता है कि बहुत से **राय एवं राणा** इस्लाम (मुस्लिम शासकों) के प्रति वफादार थे। यदि हम महासंघ की बनावट को देखें तो हम पायेंगे कि हसन खां मेवाती, महमूद खा लोदी आदि मुसलमान शासक भी इस महासंघ के सदस्य थे और वे बाबर के विरुद्ध राणा सांगा के साथ थे। इसकी अपेक्षा **वाकियात-ए-मुश्ताकी** (1560) में हसन खां मेवाती पर भारत में मुगल सत्ता को उखाड़ने के लिए महासंघ बनाने का आरोप लगाया गया है। वास्तव में यह राणा सांगा नहीं अपितु सुल्तान महमूद था जिसने स्वयं को दिल्ली का राजा घोषित कर दिया था। यद्यपि राणा सांगा निश्चय ही शक्तिशाली था किंतु बाबर अफगान भय से ज्यादा चिंतित था। अतः धार्मिक सिद्धांत का कोई आधार नहीं है।

MAADHYAM IAS

5.3 मध्य एशिया तथा बाबर

हम पहले ही इकाई 1 में 16वीं शताब्दी के दौरान मध्य एशिया तथा ईरान में राजनैतिक स्वरूपों का विवेचन कर चुके हैं। 15वीं सदी के अंत से तैमूर शासकों की शक्ति का पतन होने लगा था। इस समय तक उजबेगों ने शैबानी खां के अधीन ट्राँसऑक्सियाना में अपनी स्थिति मजबूत करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। इसी समय के लगभग शाह इस्माइल के नेतृत्व में ईरान में सफवियों का एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उदय हुआ। जबकि और आगे पश्चिम की ओर ऑटोमन तुर्कों का प्रभुत्व था। हम पहले ही बता चुके हैं कि कैसे लगभग संपूर्ण ट्राँसऑक्सियाना तथा खोरासान पर शैबानी खां ने प्रभुत्व स्थापित किया। अंततः 1510 में ईरान के शाह इस्माईल ने शैबानी खां को पराजित कर दिया। परंतु थोड़े समय बाद ही ऑटोमन सुल्तान ने 1512 ई० में शाह इस्माईल को पराजित कर दिया। इस प्रकार उजबेगों को संपूर्ण ट्राँसऑक्सियाना का स्वामी बनने का पुनः एक बार अवसर प्राप्त हो गया।

बाबर 12 वर्ष की आयु में ट्राँसऑक्सियाना की एक मामूली रियासत फरगना की गद्दी पर 1494 ई० में सत्तारुढ़ हुआ। किंतु बाबर को यह उत्तराधिकार सरलता से प्राप्त नहीं हुआ था। मंगोल खान के साथ-साथ तैमूर राजकुमार विशेषकर समरकंद का सुल्तान अहमद मिर्जा दोनों फरगना में रुचि रखते थे। इसके अतिरिक्त बाबर को असंतुष्ट कुलीनों का भी सामना करना पड़ा। इन सभी विपत्तियों के बावजूद बाबर ने मध्य एशिया में अपनी स्थिति को मजबूत करने तथा समरकंद पर दो बार (1497 एव 1500 ई०) अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। लेकिन इस पर वह लंबे समय तक अधिकार बनाये रखने में असफल रहा। तैमूर सत्ता के चार केन्द्रों में से एक खोरासान पर (1507 ई०) शैबानी खां के द्वारा अधिकार कर लिये जाने के कारण बाबर के लिए मध्य एशिया के द्वार अंततः बंद हो गये और अब उसके सम्मुख काबुल के अलावा कोई विकल्प शेष न रहा क्योंकि काबुल में परिस्थितियां उसके लिए सबसे अधिक अनुकूल थी। इसके शासक उलुग बेग मिर्जा की मृत्यु पहले ही (1501 ई०) हो चुकी थी। बाबर ने 1504 ई० में काबुल को अपने अधीन कर लिया। लेकिन बाबर ने इस समय तक मध्य एशिया पर शासन करने के स्वप्न का त्याग नहीं किया था। शाह इस्माईल सफवी की मदद से वह 1511 ई० में समरकंद पर अधिकार करने में सफल हो गया। किंतु 1512 ई० में शाह इस्माइल के पराजित हो जाने एवं उजबेगों के उत्थान से बाबर के पास काबुल में अपनी स्थिति को मजबूत करने के अलावा कोई विकल्प शेष न रहा।

इस तरह मध्य एशिया की स्थिति ने बाबर पर दबाव डाला एवं उसको यह मानने के लिए बाध्य किया (1521 ई० के बाद) कि वह मध्य एशिया साम्राज्य स्थापित करने की आशा का परित्याग कर दे और भारत की ओर देखे। जैसा कि अबुल फजल ने लिखा है, भारत के संपन्न संसाधन एवं अफगानिस्तान की दुर्बल आर्थिक स्थिति भी बाबर के लिए आकर्षण का कारण रहे होंगे। सिकंदर लोदी की मृत्यु के पश्चात दिल्ली सल्तनत की अस्थिर राजनैतिक स्थिति ने बाबर को लोदी साम्राज्य में राजनैतिक असंतोष तथा अराजकता का विश्वास दिलाया। राणा सांगा एवं पंजाब के गवर्नर दौलत खां लोदी द्वारा बाबर को दिए गए निमंत्रण ने बाबर की लालसाओं को और बढ़ाया। संभवतः तैमूर की संपत्ति पर पैतृक अधिकार ने भी उसके आक्रमण की पृष्ठभूमि तैयार की। 1519 ई० में भीरा पर अधिकार करने के बाद बाबर ने इब्राहिम लोदी से पश्चिमी पंजाब की मांग की जो कभी उसके चाचा उलुग बेग मिर्जा के अधिकार में था। इस प्रकार बाबर के पास भारत आक्रमण के लिए कारण एवं अवसर दोनों थे।

बोध प्रश्न 1

1) बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर भारत की राजनैतिक स्थिति का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) "यह मध्य एशिया की स्थिति ही थी जिसने बाबर को भारत की ओर देखने के लिए बाध्य किया।" टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

....

5.4 भारत में मुगल शासन की स्थापना

पानीपन के युद्ध (1526 ई०) से पूर्व बाबर ने भारत पर चार बार आक्रमण किये। ये भिड़न्त मुगल एवं लोदी सेनाओं के बीच शक्ति परीक्षण मात्र था। बाबर ने प्रथम विजय हिन्दुस्तान के प्रवेशद्वार भीरा (1519-20) पर प्राप्त की। फिर स्यालकोट (1520) तथा इसके बाद लाहौर (1524) पर अधिकार प्राप्त किया। निर्णायक मुकाबला इब्राहिम लोदी एवं बाबर की सेनाओं के मध्य ऐतिहासिक पानीपत के मैदान पर हुआ। कुछ घंटों में ही बाबर ने इस युद्ध में विजय प्राप्त कर ली। यह लड़ाई युद्धकला में बाबर की निपुणता को प्रदर्शित करती है। संख्या में कम होने के बावजूद उसका संगठन उच्च कोटि का था। इब्राहिम लोदी की सेना संख्या में बहुत अधिक होने के बावजूद (लगभग 100000 सैनिक तथा 500-1000 हाथी जबकि इसकी तुलना में बाबर के पास मात्र 12000 घुड़सवार थे) युद्ध के मैदान में अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाई। बाबर ने सफलतापूर्वक रूमी (ऑटोमन) युद्ध पद्धति का इस्तेमाल किया (नीचे दिए गए चित्र को देखें) जैसे ही अफगान सेनाओं ने दाहिने

MAADHYAM IAS

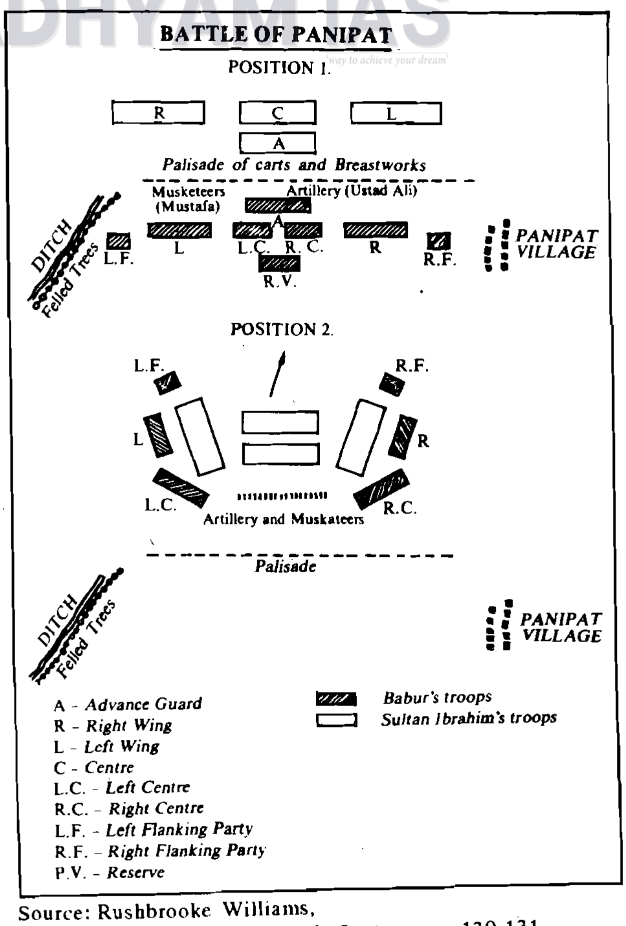

Source: Rushbrooke Williams,
An Empire Builder of the 16th Century. pp 130-131.

भाग पर आक्रमण किया बाबर ने तुरंत उब्दुल अजीज के नेतृत्व में अपनी सुरक्षित सेनाओं को आगे बढ़ने का आदेश दिया। अफगान सेनायें संख्या में अधिक होने के बावजूद न आगे बढ़ सकी और न पीछे। उनपर दोनों ओर से आक्रमण किया गया। इससे अफगान सेना में पूर्णतः गड़बड़ी पैदा हो गई। बाबर ने इस स्थिति का भरपूर लाभ उठाया तथा उसके दायें एवं बायें दोनों भागों ने अफगान सेना पर शीघ्रता से पीछे से हमला किया। इसी के साथ तोप से आग के गोले बरसाये जाने प्रारंभ कर दिये गये। इससे संपूर्ण अफगान सेना तुरंत निष्क्रिय हो गई। बाबर के अनुसार इब्राहिम लोदी सहित अफगान सेना के 20000 सैनिक मारे गये। युद्ध में बाबर के तोपखाने ने नहीं अपितु उसकी सर्वोच्च युद्ध नीति तथा घोड़े पर सवार धनुर्धारियों ने निर्णायक भूमिका अदा की। इस तथ्य की पुष्टि स्वयं बाबर ने की है।

पानीपत के युद्ध में बाबर द्वारा अपनायी गई रूमी युद्ध प्रणाली

यद्यपि पानीपत के युद्ध से औपचारिक तौर पर भारत में मुगल शासन की स्थापना हो गई किंतु यह आगामी वर्षों में होने वाली लड़ाइयों में प्रथम मात्र थी। दृष्टांत के रूप में इस विजय को सुनिश्चित करने के लिए मेवाड़ के राणा सांगा पर तथा दिल्ली एवं आगरा तथा उसके आसपास के सरदारों पर विजय प्राप्त करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण था। दूसरे महत्वपूर्ण प्रतिद्वन्द्वी पूर्वी भारत के अफ़गान राज्य थे। इसके अतिरिक्त बाबर के स्वयं के कुलीनों की समस्याएं भी बढ़ रही थी।

5.4.1 बाबर तथा राजपूत राज्य

जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि मेवाड़ का राणा सांगा एक महत्वपूर्ण शक्ति था। बाबर ने अपने संस्मरणों में राणा सांगा पर आरोप लगाया है कि इब्राहिम लोदी के विरुद्ध पानीपत के युद्ध में उसने उसका साथ न देकर अपना वायदा तोड़ा था। यहाँ इस विवाद में न जाते हुए कि सहायता का प्रस्ताव राणा की तरफ से अथवा बाबर की तरफ से आया था यह वास्तविकता है कि दोनों के मध्य इब्राहिम लोदी के विरुद्ध समझौता करने के लिए अवश्य कुछ सहमति थी जिससे राणा सांगा पीछे हट गया था। राणा को आशा थी कि बाबर काबुल वापस लौट जाएगा और ऐसी स्थिति में राणा सांगा को अगर संपूर्ण हिन्दुस्तान पर नहीं तो कम से कम राजपूताना पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो जाएगी। बाबर के ठहर जाने के निर्णय से राणा सांगा की अभिलाषाओं को एक गहरा आघात लगा। बाबर भी इस तथ्य से भली-भांति परिचित था कि उसके लिए अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना तब तक असंभव होगा जब तक कि वह राणा की शक्ति को नष्ट नहीं कर देता। राणा ने अफगान सरदारों की मदद से बाबर के विरुद्ध 'महासंघ' की स्थापना करने में सफलता प्राप्त कर ली। हसन खां मेवाती न केवल राणा के साथ मिल गया अपितु उसने 'महासंघ' के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका भी अदा की। इस समय (1527) बारी के हसन खां और हुसेन खां गुर्गअंदाज भी राणा से जा मिले। हुसैन खां नोहानी ने रापरी पर अधिकार कर लिया; रूस्तम खां ने कोल पर जबकि कुतुब खां ने चन्दावर पर अधिकार कर लिया। पूर्वी अफगानों पर भी इतना अधिक दबाव था कि सुल्तान मौहम्मद दुलदई को कन्नौज छोड़ना पड़ा और वह बाबर के साथ शामिल हो गया। बाबर के सेनापति अब्दुल अजीज तथा मुहिब अली की बयाना में पराजय और उनके द्वारा राजपूत सेना के शौर्य की प्रशंसा ने बाबर की सेना को निरुत्साहित किया। फरिश्ता तथा बदायुनी (अकबर के समकालीन) के अनुसार पराजय की भावना इतनी अधिक प्रबल थी कि युद्ध परिषद की बैठक में बहुमत से यह प्रस्ताव पारित किया गया कि बादशाह को पंजाब वापस लौट जाना चाहिए तथा अप्रत्याशित घटनाक्रम की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यद्यपि **बाबरनामा** में इस प्रकार के प्रस्ताव के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है किंतु इस वक्तव्य से निराशा एवं भटकाव का स्पष्ट आभास मिलता है। लेकिन बाबर ने इस स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए अपने लोगों की धार्मिक भावनाओं की छूने वाला एक ओजस्वी भाषण दिया। बाबर ने सीकरी के पास खानवा गांव में अपनी स्थिति को घेरेबंदी द्वारा मजबूत किया। यहां पर भी उसने अपनी सेना को ऑटोमन विधि के आधार पर योजनाबद्ध एवं संगठित किया। इस बार उसने अपनी बायीं ओर एक तोपगाड़ी की सहायता ली।

MAADHYAM IAS

अग्रिम भाग को सुरक्षित बनाने के लिए इस बार भी लकड़ी की गाड़ियों का प्रयोग किया किंतु इस बार इनको रस्सी के स्थान पर लोहे की जंजीरों से कसकर बांधा। इस बार लकड़ी की मजबूत तिपाइयों (tripods) का प्रयोग उनको एक-दूसरे से रस्सी से बांध कर किया गया। इससे न केवल सुरक्षा एवं तोपों को आराम से रखना संभव हुआ अपितु उनको पहियों की मदद से सरलता से आगे-पीछे भी घुमाया जा सकता था। इस युद्धकला को उस्ताद मुस्तफा तथा उस्ताद अली के नेतृत्व में पूरा करने में लगभग 20-25 दिन लगे। इस लड़ाई, 17 मार्च, 1527 ई०, में बाबर ने अपने तोपखाने का सफल प्रयोग किया। राणा सांगा गंभीर रूप से घायल हो गया और उसको आमेर के पास बसवा ले जाया गया। उसके अन्य सहायकों में महमूद खां लोदी भाग निकला किंतु हसन खां मेवाती मारा गया। राजपूतों को भारी नुकसान उठाना पड़ा। वास्तव में सेना की ऐसी कोई टुकड़ी न थी जिसका सेनापति न मारा गया हो। श्यामल दास **(वीर विनोद)** ने रायसेन के शासक सिलहदी पर विश्वासघात का आरोप लगाया है और इसे राणा की पराजय का मुख्य कारण माना है। किंतु वास्तव में राणा द्वारा तीन सप्ताह तक निष्क्रिय बने रहना अतार्किक था। इससे बाबर को स्वयं को शक्तिशाली बनाने और लड़ाई की पूर्ण तैयारी करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। बाबर की अनुशासनबद्ध सेना, गतिशील घुड़सवार एवं उसके तोपखाने ने युद्ध में निर्णायक भूमिका अदा की।

यद्यपि मेवाड़ के राजपूतों को खानवा के युद्ध में भारी आघात पहुंचा था। किंतु मालवा में मेदिनी राय अभी भी निश्चित रूप से शक्तिशाली था। हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं कि राणा सांगा ने मालवा के महमूद द्वितीय के मुख्य मंत्री मेदिनी राय को 1520 ई० में पराजित कर मालवा पर अपना प्रभाव कायम करने में सफलता प्राप्त की थी। 1528 में चन्देरी के युद्ध में यद्यपि राजपूतों ने अपने पूरे पराक्रम के साथ युद्ध किया किंतु बाबर ने मेदिनी राय पर सरलता से विजय प्राप्त कर ली। मेदिनी राय की पराजय के साथ ही राजपूताना में विद्रोही ताकतें पूर्णतः विखण्डित हो गयी। लेकिन अभी भी बाबर को अफगान समस्या का सामना करना शेष था क्योंकि महमूद खां लोदी पहले ही पूर्व की ओर भाग गया और यदि उसे स्वतंत्र छोड़ दिया जाता तो वह बाबर के लिए समस्या पैदा कर सकता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

5.4.2 बाबर तथा अफगान सरदार

यद्यपि अफगानों को दिल्ली का समर्पण करना पड़ा फिर भी वे बिहार एवं जौनपुर के क्षेत्रों में काफी शक्तिशाली थे जहां पर सुल्तान मौहम्मद नोहानी के नेतृत्व में नोहानी अफगानों का प्रभुत्व था। किंतु चुनार, जौनपुर तथा अवध के अफगान नोहानी अफगानों के साथ मिलकर मुगल शक्ति का संयुक्त विरोध करने के लिये तैयार नहीं थे। बल्कि उन्होंने 1527 ई० में कायरतापूर्वक हुमायूं के सम्मुख समर्पण कर दिया। इसी बीच 1528 ई० में सुल्तान मौहम्मद नोहानी की मृत्यु हो गई जिसने नोहानियों को असंगठित कर दिया क्योंकि उसका पुत्र जलाल खां नाबालिग था। परंतु इस खाली स्थान को शीघ्र ही सिकंदर लोदी के पुत्र तथा इब्राहिम के भाई राजकुमार महमूद लोदी के पूर्व में आगमन ने भर दिया। इससे गैर नोहानी अफगान जो पहले नोहानियों के साथ सहयोग करने में थोड़ा हिचकिचा रहे थे महमूद लोदी के नेतृत्व को स्वीकार करने को तैयार हो गये। इसके अतिरिक्त बब्बन, बायजिद तथा फतह खां सरवानी जैसे नोहानी अफगान, जो जलाल के बंगाल चले जाने पर नेतृत्वविहीन हो गये थे, ने भी महमूद का स्वागत किया। यद्यपि बंगाल का शासक नुसरत शाह बाह्य तौर पर बाबर के साथ मित्रता का दावा कर रहा था किंतु गुप्त रूप में उसने बाबर के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण उपायों को अपनाया। उसके लिए बिहार के नोहानी राज्य का अस्तित्व अपने अधीनस्थ बिहार अधिकृत क्षेत्र की सुरक्षा के लिए मुगलों के विरुद्ध मध्यवर्ती राज्य के समान था।

बाबर इन घटनाक्रमों की अनदेखी नहीं कर सकता था। उसने अपनी सेनाओं को घाघरा नदी के समीप एकत्रित किया और 1529 ई० में नुसरत शाह की सेना पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार अफगान-नुसरत गठबंधन टूट गया और नुसरत खां को उन अफगानों का समर्पण करना पड़ा जिन्होंने उसके राज्य में शरण ले रखी थी। इस घटनाक्रम से अफगानों का मनोबल पूर्णतः टूट गया। यद्यपि बब्बन एवं बायजिद ने अवध में मुगल शक्ति का

प्रतिरोध करने का प्रयास किया लेकिन जब उन पर मुगल दबाव पड़ा तो वे भी महमूद के पास भाग गये (1529 ई०)। इस प्रकार बाबर ने चार वर्षों के अंदर समस्त विरोधी शक्तियों को कुचलने में सफलता प्राप्त की और वह अब स्वयं को दिल्ली में सुदृढ़ करने की योजना बना सकता था। परंतु उसको शासन करने का उचित अवसर प्राप्त नहीं हो सका क्योंकि शीघ्र ही, 29 दिसंबर, 1530 को उसकी मृत्यु हो गई।

बाबर के शासन काल में मुगल साम्राज्य की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी। यद्यपि उसके द्वारा राजपूत एवं अफगान शक्ति का पूर्ण दमन नहीं किया जा सका था, यह कार्य उसके उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ दिया गया, लेकिन पानीपत तथा खानवा की सफलतायें निर्णायक थीं जिन्होंने इस क्षेत्र में तत्कालीन शक्ति सतुलन को नष्ट किया और संभवतः वह अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना की दिशा में एक कदम था।

बोध प्रश्न 2

1) खानवा के युद्ध के महत्व की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) बाबर के विरुद्ध नुसरत-अफगान गठबंधन पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

5.5 हुमायूं

हुमायूं के अधीन स्थिति काफी भिन्न थी। बाबर के विपरीत उसे कुलीनों का सम्मान एवं आदर प्राप्त न था। इससे भी खतरनाक स्थिति यह थी कि चगताई कुलीन वर्ग हुमायूं के विशेष पक्ष में नहीं था। साथ ही भारतीय कुलीन भी जिन्होंने बाबर की स्वायत्तता स्वीकार कर ली थी हुमायूं के सत्तारुढ़ होने पर उसका साथ छोड़ गये। तैमूर के वंशज मौहम्मद सुल्तान मिर्जा, मौहम्मद जमां तथा बाबर के बहनोई मौहम्मद मेंहदी ख्वाजा सिंहासन पर अपना अधिकार करना चाहते थे और विशेषकर बाबर के एक विशिष्ट कुलीन निजामुद्दीन अली खलीफा ने एक षड्यंत्र रचा किंतु वह असफल रहा। हुमायूं को शाही सत्ता तथा आधिपत्य को बनाये रखने के लिए पूर्व एवं पश्चिम में उन अफगानों के विरुद्ध संघर्ष करना था जिनके पास व्यापक सामाजिक आधार था। लेकिन हुमायूं के लिए सबसे बड़ा खतरा उसके स्वयं के भाई कामरान मिर्जा से था। साम्राज्य में सत्ता के दो केन्द्रों-केन्द्र में हुमायूं और अफगानिस्तान तथा पंजाब पर मिर्जा कामरान की स्वायत्तता स्थापित हो जाने से स्थिति और भी बिगड़ गई। हुमायूं ने पहले पश्चिम के अफगानों से निपटने का निर्णय किया।

5.5.1 बहादुर शाह तथा हुमायूं

परिस्थितियों के कारणवश बहादुरशाह तथा हुमायूं के संबंधों के बीच एक विचित्र विरोधाभास था। बहादुर शाह ने प्रारंभ में (जनवरी 1531 से 1533 के मध्य तक) हुमायूं

मारा गया

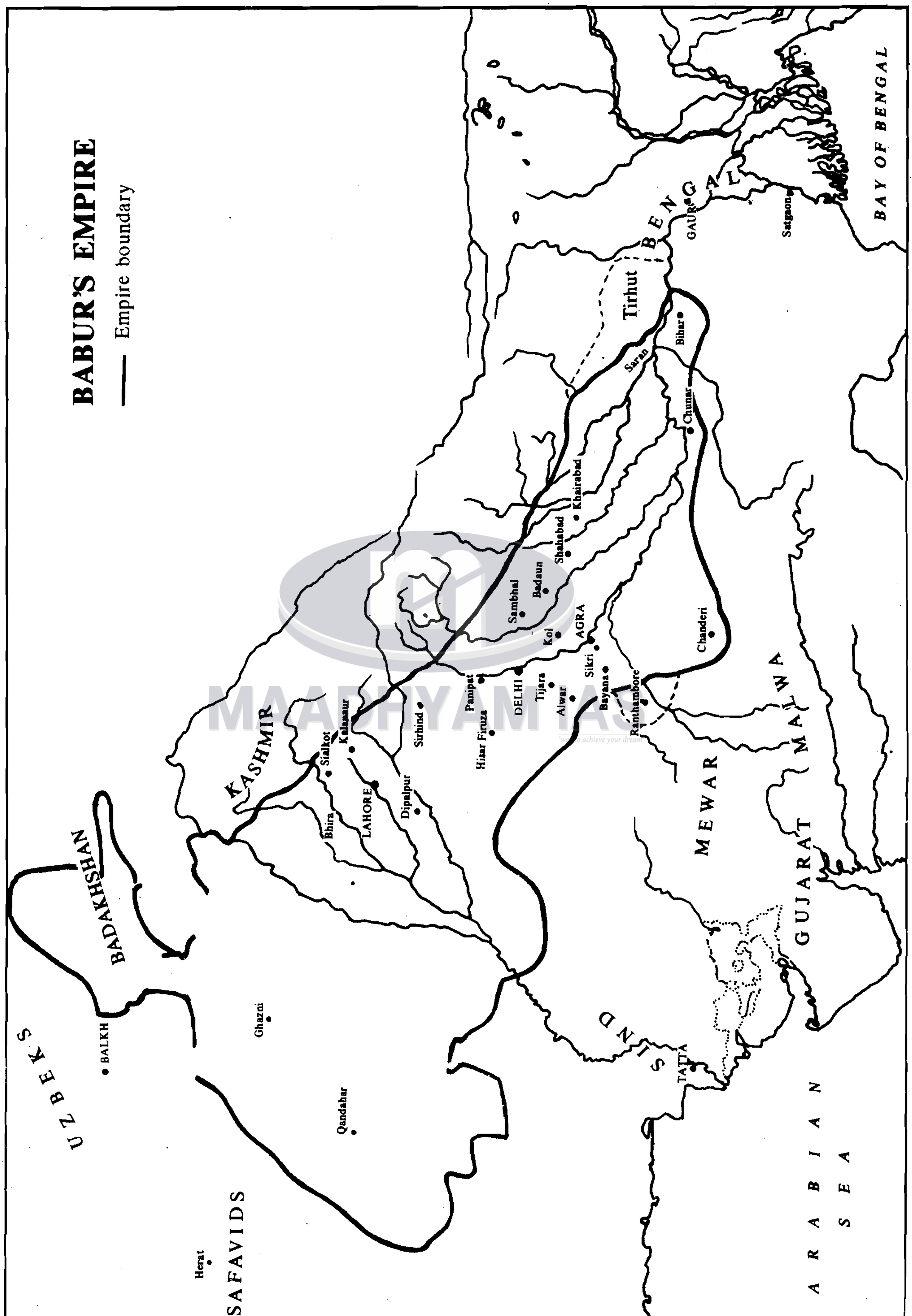
BABUR'S EMPIRE
Empire boundary
BAY OF BENGAL
BENGAL
GAUR
Satgaon
Tirhut
Saran
Bihar
Chunar
Khairabad
Shahabad
Badaun
Sambhal
Kol
AGRA
Chanderi
Sikri
Bayana
Ranthambore
DELHI
Tijara
Alwar
Panipat
Hisar Firuza
Sirhind
Kalanaur
Sialkot
KASHMIR
LAHORE
Dipalpur
Bhira
MEWAR
MALWA
GUJARAT
BADAKHSHAN
SIND
TATTA
BALKH
Ghazni
Qandahar
UZBEKS
Herat
SAFAVIDS
ARABIAN SEA

को मित्रता एव वफादारी का आश्वासन दिया। लेकिन ठीक उसी समय उसने मुगल सीमाओं से लगे क्षेत्र में अपने प्रभाव का भी प्रसार करने का प्रयत्न किया। बहादुर शाह का प्रथम शिकार मालवा था। बहादुर शाह को पहले से ही मालवा पर मुगलों की नीयत का आभास हो गया था। उसको डर था कि यदि इस मध्यवर्ती राज्य पर अधिकार किये बगैर छोड़ दिया गया तो मुगल शासक इसको विजित करने का प्रयास कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त गुजरात की ओर जाने वाले सभी व्यापारिक मार्ग मालवा से होकर गुजरते थे। यह अनाज उत्पादन की दृष्टि से भी एक उपजाऊ एवं सम्पन्न क्षेत्र था और गुजरात अनाज की आपूर्ति के लिए मालवा पर निर्भर था। 1530 ई. के बाद बहादुरशाह ने मालवा पर सैनिक दबाव डालना प्रारंभ कर दिया। अन्ततः जनवरी 1531 में बहादुर शाह ने इस पर अधिकार कर लिया। इस घटना के तुरंत बाद बहादुर शाह ने हुमायूं के विरोधियों– बिहार में शेरशाह (1531-32) तथा बंगाल में नुसरत शाह (अगस्त-सितंबर 1532), के साथ गठबंधन की प्रक्रिया शुरू कर दी। नुसरत शाह ने भी ख्वाजासरा मालिक के अधीन (अगस्त-सितंबर1532) एक प्रतिनिधि मंडल गुजरात भेजा जिसका बहादुरशाह ने पूर्ण स्वागत किया। इसके अतिरिक्त उत्तर तथा पूर्व के अनेक हताश अफगान भी अपने खोये सम्मान को 'पुनःस्थापित' करने के लिए मुगलों को बाहर निकालने के प्रयास में बहादुर शाह के साथ शामिल हो गये। बहलोल लोदी का पुत्र सुल्तान अलाउद्दीन लोदी तथा उसके पुत्र फतह खां एवं तातार खां, ग्वालियर के राजा विक्रमाजीत का भतीजा राय नरसिंह (1529) तथा कालपी का आलम खां लोदी ये सभी नेतृत्व के लिए बहादुर शाह की ओर देखने लगे और उन्होंने उसे मुगलों के विरुद्ध मदद देने की पेशकश की। पूर्व के अफगान बब्बन खां लोदी (शाहू खैल), मलिक रूपचंद, दत्तू सरवानी तथा मारुफ फरमूली भी बहादुर शाह के साथ मिल गये।

इन घटनाक्रमों की हुमायूं द्वारा अवहेलना करने पर उसे भयंकर परिणामों का सामना करना पड़ सकता था। हुमायूं पर पश्चिम एवं पूर्व की ओर से संयुक्त आक्रमण की स्थिति और भी भयंकर सिद्ध होती। इस दौरान बहादुर शाह का विजय अभियान बगैर किसी रुकावट के जारी था। उसने भीलसा, रायसेन, उज्जैन तथा गगरौन पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह मुगलों को ग्वालियर, कालिंजर, बयाना एवं आगरा से दूर रख सका। जिस समय बहादुरशाह मालवा तथा राजपूताना की ओर क्षेत्रीय प्रसार में व्यस्त था उस समय हुमायूं चुनार पर अधिकार करने में उलझा हुआ था। इस घटनाक्रम ने हुमायूं को आगरा वापस लौटने के लिए बाध्य किया (1532-33)। लेकिन बहादुरशाह प्रकट तौर पर मुगलों के साथ किसी भी प्रकार के संघर्ष को टालना चाहता था। उसने तत्काल खुरासान खां (1533-34) के अधीन एक प्रतिनिधि मंडल हुमायूं के पास भेजा। हुमायूं ने मांग की कि बहादुरशाह किसी भी मुगल विद्रोही विशेषकर मौहम्मद जमां मिर्जा को शरण नहीं देगा। इसी के साथ हुमायूं बहादुर शाह के गुजरात अधीनस्थ क्षेत्रों को चुनौती न देने के लिए सहमत हो गया और बहादुर शाह ने भी माण्डू छोड़ने का वायदा किया। तत्पश्चात बहादुर शाह पुर्तगालियों द्वारा उत्पन्न खतरे का दमन करने में (सितंबर-दिसंबर 1533) तथा हुमायूं पूर्व में अफगान समस्या का समाधान करने में व्यस्त रहा।

नये घटनाचक्र का परिणाम गुजरात पर 1535 ई० में हुमायूं के आक्रमण के रूप में निकला। जनवरी 1534 में बहादुर शाह ने मौहम्मद जमां मिर्जा को शरण दी और चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। चित्तौड़ बहादुर शाह के लिए इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि इससे उसे राजपूताना में एक मजबूत आधार प्राप्त हो जाता जिससे वह सफलता पूर्वक अजमेर, नागौर तथा रणथम्भौर की ओर प्रसार कर सकता था। लेकिन हुमायूं ने इस बिन्दु पर बहादुर शाह को चित्तौड़ विजय करने से रोकने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया। आगरा से कालपी की ओर हुमायूं का प्रस्थान भी काफी धीमा था। ठीक इसी प्रकार उसने चित्तौड़ पहुंचने के लिए भी लंबे मार्ग को चुना। ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं को बहादुर शाह को चित्तौड़ पर अधिकार करने से रोकने में कोई विशेष दिलचस्पी न थी। बहादुर शाह हुमायूं के अवरोध खड़ा करने से पूर्व ही माण्डू पहुंचने के लिए चिंतित था। लेकिन हुमायूं काफी पहले माण्डू पहुंचने में सफल रहा। चित्तौड़ से गुजरात को वापस लौटने का एक मात्र मार्ग माण्डू से था और इस पर पहले ही हुमायूं द्वारा अधिकार कर लिया गया था। हुमायूं ने बहादुर शाह की सेना की सभी ओर से घेरेबंदी कर उसकी आपूर्ति रोक दी। एक माह के अंदर ही, जब कोई आशा शेष न रही, गुजरात की सेना ने मुगलों को रोकने

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

के लिए उनके विरुद्ध प्रयोग करने वाले अपने सर्वश्रेष्ठ तोपखानों को स्वयं ही नष्ट करना पड़ा। बहादुर शाह माण्डू से चम्पानेर, अहमदाबाद होता हुआ कैम्बे (खम्बायत) की ओर भाग गया और काठियावाड़ को पार कर दयु पहुंचा। मुगलों ने उसका पीछा किया। लेकिन एक बार फिर उन्होंने बहादुर शाह को गिरफ्तार करने या उसकी हत्या करने के लिए कोई उत्सुकता नहीं दिखांई। ऐसा लगता है कि हुमायूं का मुख्य उद्देश्य मात्र गुजरात की शक्ति को नष्ट करना था। जिस समय चम्पानेर में मुगल सेनाओं ने बहादुर शाह को पहचान लिया उन्होंने उसको गिरफ्तार नहीं किया। लेकिन आगरा में लंबे समय से हुमायूं की अनुपस्थिति के कारण दोआब एवं आगरा में विद्रोह भड़क उठे। अतः उसे शीघ्र ही माण्डू छोड़ना पड़ा तथा उसने आगरा की ओर तेजी से कूच किया। उधर गुजरात तथा मालवा में मुगलों द्वारा स्थानीय जनता के साथ किये गये व्यवहार के कारण स्वदेशी-विद्रोह प्रारंभ हो गये। मुगल सेनाओं ने लोगों को लूटा एवं उनकी हत्या की। इसके फलस्वरूप जैसे ही हुमायूं ने माण्डू छोड़ा वैसे ही लोगों ने बहादुर शाह का दयू से वापस लौटने पर स्वागत किया। बहादुर शाह ने अवसर का लाभ उठाते हुए मुगलों को अहमदाबाद में पराजित कर दिया। किंतु इसी बीच बहादुर शाह को पुर्तगालियों को आगे बढ़ने से रोकने के लिए दयू वापस लौटना पड़ा लेकिन इस बार पुर्तगाली अपने अभियान में सफल रहे और उन्होंने विश्वासघात से बहादुर शाह की हत्या कर दी (17 फरवरी 1937)। इस्से सभी जगहों पर संशय उत्पन्न हो गया। अफगानों के सम्मुख कोई विकल्प शेष न रहा और वे नेतृत्व के लिए शेरशाह की ओर देखने लगे।

5.5.2 पूर्वी अफगान तथा हुमायूं

नवम्बर 1531 में हुमायूं के हाथों पराजित हो जाने पर (चुनार पर अधिकार) अफगान कुलीन गुजरात की ओर भाग गये थे। इससे पूर्व में राजनैतिक रिक्तता उत्पन्न हो गई जिसने शेरशाह को अपनी सत्ता को सुदृढ़ीकरण करने का सुअवसर प्रदान किया।

1530-35 के वर्ष शेरशाह के लिए निर्णायक साबित हुए। पूर्व में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करते समय उसको बंगाल एवं उन अफगान कुलीनों का सामना करना पड़ा जिनको बंगाल के शासक द्वारा आश्रय प्रदान किया गया था। दूसरी ओर वह मुगलों के साथ सीधा संघर्ष करने की स्थिति में भी नहीं था। भाग्यवश परिस्थितियों में शेरशाह के अनुकूल परिवर्तन हुआ। हुमायूं ने गुजरात के शासक बहादुर शाह को गंभीर खतरा मानकर सर्वप्रथम उससे निपटने का निर्णय किया। इन वर्षों के दौरान शेरशाह को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया।

शेरशाह को बगाल शासकों के दो हमलों का सामना करना पड़ा। प्रथम आक्रमण मुंगेर के **मुक्ती** (गवर्नर) कुतुब खां के नेतृत्व में 1532-33 ई० में सुल्तान नुसरत शाह के शासन काल में हुआ। दूसरा सुल्तान महमूद शाह के शासन काल में इब्राहिम खां के नेतृत्व में 1534 ई० में किया गया। लेकिन दोनों अवसरों पर बंगाल की सेना को पराजय का सामना करना पड़ा। इन सफलताओं ने बंगाल सेनाओं की कमजोरियों को पूर्णतः उजागर कर दिया। इससे शेरशाह की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई। पूर्व के वे अफगान जो पहले उसको छोड़कर चले गये थे अब उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार हो गये। इसके अतिरिक्त हुमायूं द्वारा बहादुर शाह की शक्ति नष्ट कर दिये जाने एवं बहादुर शाह की मृत्यु हो जाने के कारण अफगानों के पास मुगलों के विरुद्ध शेरशाह का साथ देने के अलावा कोई विकल्प शेष न रहा था।

अब शेरशाह स्वयं को अफगानों का सार्वभौमिक नेता सिद्ध करना चाहता था इस समय 1535 ई० में उसने स्वयं बंगाल के शासक पर आक्रमण किया तथा सूरजगढ़ के युद्ध में बंगाल की सेना को पराजित कर दिया। युद्ध के बाद एक शांति समझौते के अनुसार शेरशाह को जब कभी भी आवश्यकता होगी बंगाल का सुल्तान महमूद शाह उसको हाथियों की आपूर्ति एवं वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए सहमत हो गया। इस शानदार सफलता के बाद शेरशाह ने मुगलों के पूर्वी क्षेत्र गोरखपुर एवं बनारस पर आक्रमण किया जो हुमायूं के लिए चेतावनी थी। हुमायूं ने पूर्वी क्षेत्र की निगरानी करने के लिए हिन्दू बेग को जौनपुर का गवर्नर (**हाकिम**) नियुक्त किया। लेकिन शेरशाह ने एक

ओर सावधानी पूर्वक हिन्दू बेग को मुगलों के प्रति अपनी निष्ठा का आश्वासन दिया दूसरी ओर इस समय का सदुपयोग अपनी सेना को मुगलों पर कड़ा प्रहार करने के लिए मजबूत करने में लगाया। जैसे ही शेरशाह की तैयारियां पूर्ण हो गई उसने हिंदू बेग को एक धमकी भरा पत्र लिखा। ठीक उसी समय उसने बंगाल पर (1537 ई०) दूसरा आक्रमण किया। हिन्दू बेग ने शेरशाह के इस व्यवहार से नाराज हो उसके शत्रुता पूर्ण इरादों की सूचना हुमायूं को दी। हुमायूं के अफगान कुलीनों ने उसे सुझाव दिया कि वह शेरशाह को बंगाल पर अधिकार करने से रोके जबकि उसके मुगल कुलीनों का विचार था कि उसको प्रथम चुनार पर अधिकार करना चाहिए तथा उसे आधार बनाकर पूर्व में अपनी कार्यवाहियों का संचालन करे। आगरा के साथ सम्पर्क रखने के लिए द्वितीय विकल्प महत्वपूर्ण था लेकिन रूमी खां को चुनार पर अधिकार करने में छः माह का लंबा समय लगा। इतिहासकार इसको एक "भयंकर भूल" मानते हैं क्योंकि हुमायूं को इसका मूल्य अपना साम्राज्य खोकर चुकाना पड़ा। यद्यपि चुनार को अफगानो के हाथों में स्वतंत्र छोड़ना जहां एक ओर मूर्खतापूर्ण कार्य था वहीं शेरशाह को बंगाल में स्वतंत्र एवं बगैर किसी नियंत्रण के छोड़ना भी गलत था। शेरशाह ने इस समय का उपयोग बंगाल की राजधानी गौड़ पर अधिकार (अप्रैल 1538 ई०) करने के लिए किया। इस स्थिति में हुमायूं ने शेरशाह से बंगाल एवं रोहतासगढ़ की मांग की किंतु शेरशाह बंगाल देने के लिए तैयार न था अतः वार्तालाप असफल हो गया। अंततः हुमायूं ने शेरशाह की शक्ति को समाप्त करने का निर्णय किया लेकिन वह स्वयं को बंगाल की राजनीति में फंसाना नहीं चाहता था। फिर भी परिस्थितियों ने उसको ऐसा करने के लिए बाध्य किया। शेरशाह ने चतुराई से स्वयं को बंगाल से अलग कर लिया और सितंबर 1538 में हुमायूं को बगैर किसी बाधा के बंगाल तक पहुंचने दिया।

हुमायूं को बंगाल में चार माह तक वहां पर व्याप्त अराजकता को ठीक करने के लिए ठहरना पड़ा। इसी बीच शेरशाह ने आगरा के मार्गों पर नियंत्रण करने में सफलता प्राप्त की और इस प्रकार हुमायूं के लिए आगरा के साथ संपर्क मुश्किल कर दिया। हिन्दाल मिर्जा ने हुमायूं की चिंताओं को उस समय और बढ़ा दिया जबकि उसे सेना के लिए आपूर्ति की व्यवस्था करने के लिए भेजा गया था किंतु उसने स्वयं को एक स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। हुमायूं ने तुरंत चुनार की ओर प्रस्थान किया और वह मार्च 1538 को चौसा पहुंचा। उसने कर्मनासा नदी के पश्चिमी किनारे पर अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया। इस समय भी हुमायूं का स्थिति पर पूर्ण नियंत्रण था। उसका अग्रिम भाग नदी द्वारा सुरक्षित था और पीछे के हिस्से में चुनार स्थित था जिस पर अभी भी उसकी सेना का नियंत्रण था। शेरशाह ने भी समझौता करने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन इस स्थिति में हुमायूं ने नदी पार कर स्वयं को अनावश्यक खतरे में डाल दिया। शेरशाह हुमायूं की सामग्री, हथियारों एवं परिवहन की कमी से भली-भांति परिचित था। अतः उसने स्थिति से लाभ उठाने में कोई समय नष्ट नहीं किया। उसने समझौते की शर्तों को पूरा करने का बहाना करते हुए मुगल सेना पर अचानक आक्रमण कर दिया। मुगल खेमे में भय व्याप्त हो गया। बड़ी संख्या में मुगल सेना नष्ट हो गयी। हुमायूं एवं असकरी मिर्जा ने भागने में सफलता प्राप्त की। हुमायूं मानिकपुर तथा कालपी के रास्ते आगरा पहुंचा (जुलाई 1539)। गहोरा के राजा वीरभान ने उनके बचाव में काफी मदद की। कामरान मिर्जा ने हुमायूं का नष्ट हुई सेना के साथ आगरा वापस लौटने पर स्वागत किया। जबकि शेरशाह ने अपनी विजय से पुलकित होकर स्वयं को स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया। इन परिस्थितियों में अंतिम संघर्ष अपरिहार्य था। हुमायूं को गंगा के तट पर 1540 में हुए कन्नौज के युद्ध में बुरी तरह से पराजय का सामना करना पड़ा। इस हार ने भारत में "दूसरे अफगान साम्राज्य" की स्थापना के मार्ग को प्रशस्त्र किया।

शेरशाह के विरुद्ध हुमायूं की असफलता के बहुत से कारण थे। कुछ मुख्य इस प्रकार हैं।

I) भाइयों का वैमनस्य। उसने भाइयों के साथ कई अवसरों पर अत्यधिक दयालुतापूर्वक व्यवहार किया।

II) कई परिस्थितियों में जबकि उसे तीव्रता के साथ कार्यवाही करनी चाहिए थी उसने सुस्ती दिखायी। इसे उसके गुजरात एवं बंगाल अभियानों के दौरान देखा जा सकता है।

III) वह "निष्ठुर भाग्य" का भी शिकार हुआ। उदाहरण के लिए, बंगाल के महमूद शाह ने उसे अनावश्यक बंगाल की राजनीति में उलझाये रखा। जिससे शेरशाह को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का अवसर प्राप्त हुआ।

IV) निरंतर युद्धों को जारी रखने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों की भी हुमायूं के पास कमी थी। जिस समय वह बंगाल में था वह निःसहाय था एवं उसके पास धन तथा आपूर्ति दोनों की कमी थी (1539)।

V) इसके अतिरिक्त शेरशाह के पास साहस, अनुभव तथा संगठनात्मक योग्यता थी। वह राजनैतिक अवसरों से लाभ उठाने में निपुण था। हुमायूं का इन गुणों में उससे कोई मुकाबला न था।

1) बहादुर शाह के साथ हुमायूं के संघर्ष की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

....
....
....
....
....

2) शेरशाह के विरुद्ध हुमायूं की असफलता के कारणों को बताइये।

....
....
....
....
....
....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

3) निम्नलिखित को मिलाइये :

(i)	पानीपत का प्रथम युद्ध	1528
(ii)	चौसा का युद्ध	1527
(iii)	कन्नौज का युद्ध	1539
(iv)	खानवा का युद्ध	1526
(v)	चन्देरी का युद्ध	1540

5.5.3 हुमायूं एवं उसके भाई

अपने पिता बाबर की मृत्यु के पश्चात् हुमायूं ने अपने साम्राज्य को अपने चार भाईयों के बीच विभाजित कर दिया। मेवात हिन्दाल को, सम्भल असकरी को तथा पंजाब, काबुल तथा कन्धार कामरान को दिया। साम्राज्य का हुमायूं द्वारा किया गया विभाजन उसके लिए हानिकारक था क्योंकि इससे उसके पास सीमित संसाधन शेष रहे। उसके उदारतापूर्ण व्यवहार के बावजूद जब कभी भी उसको आवश्यकता हुई उसके भाइयों ने उसकी मदद नहीं की। अहमदाबाद पर बहादुरशाह के आक्रमण के समय उसका भाई असकरी मिर्जा जिसे हुमायूं ने गुजरात का गवर्नर नियुक्त किया था उत्पन्न समस्या का हल न कर सका। फलस्वरूप हुमायूं को मालवा खोना पड़ा (1537)। कन्नौज के युद्ध में शेरशाह द्वारा पराजित होने के पश्चात जब हुमायूं को सहायता की अति आवश्यकता थी उस समय असकारी मिर्जा ने इस निर्णायक अवसर पर उसका साथ छोड़कर कामरान के साथ कन्धार

की ओर प्रस्थान किया। परंतु हिन्दाल मिर्जा हुमायूं के प्रति वफादार बना रहा। अंततः वह 1551 ई० में उसके लिए युद्ध करता हुआ मारा गया।

हुमायूं को सबसे बड़ा खतरा कामरान मिर्जा से था क्योंकि उसने अफगानिस्तान तथा पंजाब में लगभग एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। इस प्रकार सत्ता के दो केन्द्र बन गये एक काबुल में और दूसरा आगरा में। इस स्थिति ने एक केन्द्रीकृत राज्य के उदय में बाधा उत्पन्न की। उस प्रथम संकट के समय (1538-40 ई०), जिसका सामना मुगलों को करना पड़ा, उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता इसका प्रमाण थी। यद्यपि कामरान मिर्जा हुमायूं के प्रति प्रारंभिक वर्षों में वफादार बना रहा और एक बार हिन्दाल मिर्जा द्वारा उत्पन्न समस्या का समाधान करने के लिए वह दिल्ली के गवर्नर यादगार नासिर मिर्जा के आमंत्रण पर दिल्ली भी आया (जून 1539)। किंतु दोनों भाई हिन्दाल तथा कामरान चौसा के युद्ध में हुमायूं की सहायता करने के स्थान पर दूर से ही स्थिति का आकलन करते रहे। यदि उन्होंने समय पर हुमायूं की भरपूर सहायता की होती तो संभवतः हुमायूं शेरशाह को पराजित कर पाता।

ऐसा प्रतीत होता है कि कामरान अफगानों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाने की अपेक्षा अपने क्षेत्र की सुरक्षा बनाये रखने में अधिक रुचि रखता था। हुमायूं के शेरशाह के साथ अंतिम युद्ध (1540 ई०) से पूर्व ही कामरान मिर्जा ने लाहौर में हुमायूं की सेवा में संपूर्ण सेना भेजने के स्थान पर मात्र 3000 सिपाहियों को ही भेजा। 1540 में हुमायूं के शेरशाह के हाथों पराजित हो जाने के बाद कामरान ने काजी अब्दुल्लाह के माध्यम से शेरशाह को पंजाब को सीमा के रूप में स्वीकार करने का प्रस्ताव भेजा। शेरशाह ने इससे अनुमान लगाया कि दोनों भाइयों के मध्य एकता का अभाव है अतः मौके का फायदा उठाकर उसने उसे सिंधु नदी को सीमा मानने पर मजबूर किया। कामरान का विचार था कि उसको अपने भाई हुमायूं की अक्षमता के कारण शेरशाह को पंजाब देना पड़ा और वह काबुल तथा कन्धार को बचाने के लिए अधिक चिंतित हो गया। 1545-1553 के वर्षों में हुमायूं सतत् कामरान मिर्जा से संघर्षरत रहा (देखें भाग 5.7)। परंतु इन सब के बावजूद हुमायूं की असफलता का पूरा उत्तरदायित्व उसके भाइयों पर नहीं थोपा जा सकता। फिर भी यदि हुमायूं को अपने भाइयों का भरपूर समर्थन प्राप्त हुआ होता तो साम्राज्य को बचाया जा सकता था।

MAADHYAM IAS

5.6 भारत में द्वितीय अफगान साम्राज्य की स्थापना: 1540-1555 ई०

मुगल सम्राट को पराजित करने के पश्चात शेरशाह ने स्वयं को शासक घोषित कर दिया तथा दूसरे अफगान साम्राज्य को संगठित करना शुरू किया। अफगान शासन के पंद्रह वर्ष (1540-1555 ई० तक) मुगल साम्राज्य के इतिहास में अंतराल के वर्ष थे। लेकिन इसके बावजूद भी यह समय प्रशासनिक प्रयोगों एवं पुनर्गठन की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। शेरशाह के अधीन सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया के विषय में खंड-4 एवं खंड-5 में विवरण किया जाएगा। शेरशाह अपने संक्षिप्त शासन काल (1540-1545 ई० तक) में नये साम्राज्य को एकीकृत बनाये रखने के लिए युद्धरत रहा। यहां हम इस काल के दौरान शेरशाह के संघर्षों का संक्षिप्त विवरण करेंगे।

शेरशाह का प्रथम संघर्ष धोक्करों (सिंधु तथा झेलम के बीच बसे उत्तर-पश्चिम सीमा के निवासी) के साथ हुआ। लेकिन शेरशाह को अपने इस अभियान में पूर्ण सफलता प्राप्त न हो पाई। धोक्करों ने कड़ा संघर्ष किया। बंगाल का गर्वनर खिज्र खां भी स्वतंत्र होने के लिए प्रयत्न करने लगा। जिसके कारण उसे पंजाब से पीछे हटना पड़ा और उसने 1541 में बंगाल की ओर प्रस्थान किया। जहां उसने खिज्र खां को अपदस्थ कर दिया। शेरशाह का अगला लक्ष्य मालवा था जहां कादिर शाह उसके विरुद्ध षड्यंत्ररत था। मार्ग में उसने अब्दुल कासिम को हराकर ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। कादिर शाह ने भी आत्म समर्पण कर दिया और उसे 1542 ई० में गिरफ्तार कर लिया गया। राजपूत समस्या का समाधान करने के लिए सर्वप्रथम उसने रायसेन (1543 ई०) पर अधिकार कर लिया। रायसेन का राजा पूरनमल यद्यपि शेरशाह की संप्रभुता को स्वीकार करने के लिए तैयार था लेकिन शेरशाह ने आक्रमण कर दिया जिससे पूरनमल कई अन्य सिपाहियों के साथ युद्ध में मारा गया।

1543 ई० में मुल्तान प्रांत को भी विजित कर लिया गया। रायसेन के युद्ध में राजपूतों की पराजय के बावजूद मेवाड़ का राजा मालदेव अभी भी काफी शक्तिशाली था। उसने अपने प्रभुत्व का प्रसार साम्भर, नागौर, बीकानेर, अजमेर तथा बेदनार तक कर दिया था। शेरशाह ने उसकी ओर प्रस्थान किया और 1544 में अजमेर, पाली तथा माऊंट आबू पर अधिकार कर लिया। चित्तौड़ के शासक उदय सिंह ने भी बिना किसी विशेष विरोध के चित्तौड़ शेरशाह को सौंप दिया। इस प्रकार लगभग संपूर्ण राजपूताना उसके अधीन हो गया। शेरशाह को कालिंजर के अजेय दुर्ग पर भी अधिकार करने में सफलता प्राप्त हुई। लेकिन जिस समय वह इस दुर्ग पर अपना अधिकार करने का प्रयत्न कर रहा था शेरशाह एक विस्फोट में घायल हो गया और इस घटना के बाद शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई (22 मई, 1545 ई०)। इस प्रकार शेरशाह के शानदार जीवन का अंत हो गया।

शेरशाह के पुत्र इस्लाम शाह (1545-1553 ई०) ने पैतृक साम्राज्य को बनाये रखा किंतु वह साम्राज्य का और अधिक विस्तार तथा सुदृढ़ीकरण न कर सका। उसका अधिकतर समय उन आंतरिक विद्रोहों को दबाने में ही व्यतीत हो गया जिनका नेतृत्व उसका भाई आदिल शाह, आजम हुमायूं तथा खव्वास खां के साथ मिलकर कर रहा था। इसके अतिरिक्त उसका अफगान कुलीनों, विशेषकर नियाजी अफगानों के साथ अपमानजनक व्यवहार से उनमें उसके विरुद्ध विरोध को बढ़ावा मिला। जिसका प्रभाव उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारियों को झेलना पड़ा इस्लाम शाह द्वारा अपने पुत्र को सरलता से उत्तराधिकारी बनाने के लिए मार्ग को प्रशस्त करने के प्रयत्नों के बावजूद यह नवीन अफगान साम्राज्य आंतरिक कलहों की चपेट में आ गया जो हुमायूं के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। इस्लाम शाह की मृत्यु के तुरंत बाद मुबारिज खां ने इस्लाम शाह के पुत्र फिरोज की हत्या कर दी और आदिल शाह के नाम से स्वयं सत्तारुढ़ हो गया। विद्रोह एवं षडयंत्र संपूर्ण राज्य में व्याप्त हो गये अंततः साम्राज्य पांच भागों में विभाजित हो गया (अहमद खां सूर पंजाब में; इब्राहीम शाह सम्भल तथा दोआब में; आदिल शाह चुनार तथा बिहार में; मालवा में बाज बहादुर और सिकन्दर शाह का आगरा तथा दिल्ली पर अधिकार हो गया)। इन परिस्थितियों ने हुमायूं को पुनः आक्रमण करने के लिए आदर्श पृष्ठभूमि प्रदान की।

MAADHYAM IAS

5.7 भारत में मुगल शासन की पुनःस्थापना

कन्नौज के युद्ध में हुमायूं की पराजय के बाद असकरी मिर्जा तथा कामरान उत्तर-पश्चिम में चले गये किंतु हिन्दाल तथा यादगार नासिर मिर्जा ने हुमायूं का साथ देने का निर्णय किया। हुमायूं ने सर्वप्रथम सिंध में अपना भाग्य आजमाने का प्रयत्न किया लेकिन यहां हिन्दाल मिर्जा ने भी उसका साथ छोड़ दिया और वह कामरान के निमंत्रण पर कन्धार चला गया। सिंध के शासक शाह हुसैन अर्धुन ने यादगार नासिर मिर्जा के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर उसको भी अपने साथ मिला लिया। इस बीच हुमायूं सीवान पर अधिकार करने में असफल रहा। इन सभी घटनाक्रमों से निराश होकर हुमायूं ने अकेले ही अपने भाग्य की परीक्षा राजपूताना में लेने का निर्णय किया। मारवाड़ के शासक मालदेव ने हुमायूं को आमंत्रित किया (जुलाई 1542 ई०)। लेकिन शेरशाह ने मालदेव पर हुमायूं को उसे देने के लिए दबाव डाला। हुमायूं भयवश भाग गया (अगस्त, 1542 ई०)। जहां अन्य राजपूत शासक राणा बीरसाल द्वारा उसका स्वागत किया गया। हुमायूं ने राणा बीरसाल की मदद से एक बार फिर सिंध में अपने भाग्य की परीक्षा लेने की ठानी किंतु वह इस बार भी असफल रहा। अब उसने गजनी के मार्ग से ईरान की ओर प्रस्थान किया। ईरान के शासक शाह तहमस्प द्वारा उसका गर्मजोशी के साथ स्वागत किया गया (1544 ई०)। ईरान के शाह ने हुमायूं से वायदा किया कि अगर वह उसको कन्धार दे देगा तब वह उसकी कन्धार, काबुल एवं गजनी पर अधिकार करने में सहायता करेगा। हुमायूं इसके लिए तैयार हो गया। कन्धार उस समय अस्करी मिर्जा के अधीन था। हुमायूं ने शीघ्र ही कन्धार पर अधिकार कर लिया और उसे शाह के हवाले कर दिया। लेकिन दोनों के मध्य गलत फहमियां प्रारम्भ हो गई क्योंकि ईरानियों ने काबुल एवं गजनी पर अधिकार करने में हुमायूं की मदद करने में जल्दबाजी नहीं दिखाई। इससे बाध्य होकर हुमायूं ने ईरानियों से

कन्धार छीन लिया (1545 ई०)। कन्धार में हुमायूं की सफलता ने कई कुलीनों को, विशेषकर हिन्दाल तथा यादगार नासिर मिर्जा को पुनः उसके पक्ष में कर दिया। इस घटनाक्रम से भयभीत होकर कामरान काबुल से गजनी भाग गया और वहां से सिंध। इसके कारण हुमायूं सरलता से काबुल में (नवम्बर, 1545 ई०) प्रवेश कर सका। 1545 ई० से 1553 के मध्य हुमायूं ज्यादातर अपने भाई कामरान की शक्ति का दमन करने में ही व्यस्त रहा। लेकिन कामरान भी हुमायूं को लगातार संकट में डाले रहा। इस संघर्ष में ही उसका भाई हिन्दाल मिर्जा मारा गया (1551 ई०)।इससे उत्तेजित होकर हुमायूं ने कामरान पर अंतिम प्रहार करने का निर्णय लिया। कामरान ने इस संघर्ष में इस्लाम शाह से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया किंतु वह सफल न हो सका। जिस समय मिर्जा कामरान एक स्थान से दूसरे स्थान अपने बचाव में दौड़ रहा था उसको धोक्कर सरदार सुल्तान आदम ने गिरफ्तार कर हुमायूं के हवाले कर दिया। अंत में हुमायूं ने कामरान को अंधा करने का हुक्म दिया और उसे मक्का जाने की आज्ञा दी गई। जहां पर अक्टूबर, 1557 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

कामरान के विरोध का अंत हो जाने पर हुमायूं काबुल का सार्वभौमक स्वामी बन गया। भारत में अनुकूल राजनैतिक परिस्थिति देख (देखें भाग 5.6) हुमायूं ने अपने खोये साम्राज्य को पुनःप्राप्त करने के लिए व्यवस्थितता ढंग से योजना तैयार की। उसने नवम्बर, 1554 ई० में लाहौर की ओर प्रस्थान किया और फरवरी, 1555 ई० में वहां पहुंच गया। थोड़ी बहुत मुश्किलों के बावजूद मुगल सेना का विजय अभियान जारी रहा। उसने शीघ्र ही माच्छीवाड़ा पर अधिकार कर लिया। अंतिम संघर्ष सरहिन्द में हुआ। सिकन्दर शाह सूर को शिवालिक की पहाड़ियों की ओर भागना पड़ा। इस प्रकार दिल्ली प्रस्थान के लिए मार्ग साफ कर लिया गया। किंतु हुमायूं अभी अपने विजय अभियान को पूर्ण एवं सुदृढ़ भी न कर पाया था कि शीघ्र ही 26 जनवरी, 1566 ई० को उसकी मृत्यु हो गई। वह अपने पीछे अपने नाबालिग पुत्र अकबर को विपरीत परिस्थितियों में अकेला छोड़ गया।

बोध प्रश्न 4

1) हुमायूं के अपने भाइयों के साथ संबंधों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....
....
....
....
....

2) उन परिस्थितियों का विवरण कीजिए जिनके कारण हुमायूं को अपने खोये साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने में सफलता मिली।

....
....
....
....
....

5.8 सारांश

इस इकाई में हमने बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर व्याप्त भारत की राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन किया।यह स्वीकार करना गलत होगा कि भारत की राजनीति के निर्धारण में धार्मिक हितों की प्रमुख भूमिका थी अपितु उसके निर्धारण में तत्कालीन परिस्थितियों एवं व्यक्तिगत हितों ने प्रमुख भूमिका निभाई। पानीपत में बाबर की सफलता के पश्चात् भी उसका मार्ग सरल न था। उसे न केवल राजपूत सरदारों अपितु निराश

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अफगानों का भी सामना करना था। इन संघर्षों के दौरान बाबर के विरुद्ध जो गठबंधन बनाये गये उनमें धर्म प्रमुख आधार नहीं था। हम देख चुके हैं कि "महासंघ" में अफगान एवं राजपूत दोनों थे। यह बाबर का महान नेतृत्व ही था कि विपरीत परिस्थितियों के बावजूद वह सफल रहा। हुमायूं अपने पिता के समान महान् सेनापति न था। अंततः वह अफगानों के संयुक्त मोर्चे का सामना न कर सका। इस प्रकार वह एक समय अपने पिता के साम्राज्य को बनाये न रख सका। उसको भारत छोड़ना पड़ा और वह लगभग 13 वर्षों तक बनवास की स्थिति में भटकता रहा। इस दौरान हमने एक महान् अफगान-शेरशाह का उत्थान देखा। यद्यपि शेरशाह ने कुछ ही समय तक शासन किया किंतु उसने इतिहास पर अपनी सफलता की अमिट छाप छोड़ी। उसने एक ऐसे मजबूत प्रशासनिक ढांचे का निर्माण किया (खंड-4 एवं खंड-5) जिसका अकबर द्वारा अनुसरण किया गया तथा उसने इसे और मजबूती प्रदान की। इसी ढांचे की बदौलत वह संपूर्ण उत्तर भारत को एक प्रशासनिक इकाई के अंतर्गत ला सका। लेकिन शेरशाह के उत्तराधिकारी उसके साम्राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करने में असफल रहे। उनके व्यक्तित्व षडयंत्रों एवं व्याप्त अराजकता ने हुमायूं को पुनः हमला करने का शानदार अवसर प्रदान किया। इस बार हुमायूं ने कोई गलती नहीं की। उसने 1555 ई० में पुनः सत्ता प्राप्त की। किंतु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। अतः साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण के कार्य को अपने पुत्र अकबर के लिए छोड़ गया।

5.9 शब्दावली

मुक्ती : गवर्नर, **इक्ताधारी**

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS

बोध प्रश्न 1

1) भारत में विद्यमान राज्यों तथा एक दूसरे के साथ उनके संबंधों की विवेचना करें। यह भी उद्धृत करें कि कैसे उनके व्यक्तिगत हित, दरबारी षड्यंत्र आदि ने बाबर के पक्ष में कैसे उनकी शक्ति को कम किया। (देखें भाग 5.2)

2) उजबेगों एवं इरानियों के बारे में वर्णन करें। फरगना तथा मध्य एशिया में उनके हितों की व्याख्या करें। किस प्रकार शैबानी खां कीपराजयने मध्य एशिया में उजबेगों को अपनी शक्ति मजबूत करने के लिए अवसर प्रदान किया। (देखें भाग 5.3)

बोध प्रश्न 2

1) वर्णन करें कि किस प्रकार खानवा का युद्ध निर्णायक साबित हुआ न कि पानीपत का। राजपुतों के पतन के बावजूद बाबर की कठिनाइयों का अंत न हुआ। (देखें उपभाग 5.4.1)

2) बिहार में नोहानी अफगानों की पराजय के बाद, नसरत्त शाह ने उनको शरण दी जिसके कारण बाबर को उसके साथ संघर्ष करना पड़ा। (देखें उपभाग 5.4.2)

बोध प्रश्न 3

1) संक्षिप्त राजनैतिक घटनाक्रम का उल्लेख करने के बाद आप उन परिस्थितियों एवं स्थितियों का उल्लेख भी करें जिनके प्रति हुमायूं ने अकर्मण्यता का दृष्टिकोण अपनाया और जो अंततः उसके लिए घातक साबित हुई। (देखें उपभाग 5.5.2)

2) हुमायूं का चरित्र, उसके भाइयों का उसके प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण एवं शेरशाह द्वारा अपनायी गयी अवसरवादी नीतियां हुमायूं की असफलता के लिए उत्तरदायी थीं। (देखें उपभाग 5.5.2)

3) i) 1526 ii) 1539 iii) 1540 iv) 1527 v) 1528

बोध प्रश्न 4

1) देखें उपभाग 5.5.3

2) काबुल में हुमायूं ने कैसे कामरान पर विजय प्राप्त की इसका वर्णन करें। इसी बीच भारत में हुए परिवर्तन पर चर्चा करें। शेरशाह के उत्तराधिकारी शेरशाह के शासन को बनाये रखने में असफल रहे और हुमायूं ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया। इन सभी तथ्यों को अपने उत्तर में शामिल करें।(देखें उपभाग 5.6, 5.7)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 6 विस्तार और सुदृढ़ीकरण : 1556-1707

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सत्ता की राजनीति और बैरम खां का संरक्षण : 1556-1560

6.3 अकबर के अधीन क्षेत्रीय प्रसार

- 6.3.1 उत्तर तथा मध्य भारत
- 6.3.2 पश्चिम भारत
- 6.3.3 पूर्वी भारत
- 6.3.4 1581 ई० के विद्रोह
- 6.3.5 उत्तर-पश्चिम में विजय
- 6.3.6 दक्खन तथा दक्षिण

6.4 प्रशासनिक पुनर्गठन

6.5 अकबर के उत्तराधिकारियों के अधीन क्षेत्रीय प्रसार

6.6 स्वायत्त सरदारों के प्रति नीतियां

6.7 सारांश

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप जानकारी प्राप्त कर सकेंगे:

- कि बैरम खां के संरक्षण का किस प्रकार से अंत हुआ और अकबर ने कैसे राज्य के मामलों को अपने नियंत्रण में कर लिया,
- अकबर और उसके उत्तराधिकारियों के काल में मुगल साम्राज्य के क्षेत्रीय प्रसार की,
- साम्राज्य के प्रसार के समय मुगलों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा,
- अकबर के अधीन प्रांतों के निर्माण एवं,
- मुगल सम्राटों एवं स्वायत्त राज्यों के संबंधों की तथा इसने कैसे साम्राज्य के प्रसार एवं सुदृढ़ीकरण में मदद की।

6.1 प्रस्तावना

हुमायूं ने मुगल साम्राज्य का उद्धार कर उसे सन् 1555 ई० में पुन: स्थापित किया। अकबर की नीतियों ने साम्राज्य को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अकबर के शासन काल में ही मुगल साम्राज्य एक राजनीतिक वास्तविकता बन गया और उसने भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। अकबर के उत्तराधिकारियों ने कुछ परिवर्तनों के साथ उस नीतियों को अपनाया या यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने समय के राजनीतिक वातावरण के अनुरूप नीतियां अपनाई। इस इकाई में हम प्रशासनिक व्यवस्था एवं शासक वर्ग के उद्भव की विस्तृत चर्चा नहीं करेंगे। इसकी विस्तृत विवेचना खंड-4 में की जाएगी। इस इकाई में मुख्य रूप से क्षेत्रीय प्रसार एवं इससे जुड़ी समस्याओं तक ही हम स्वयं को सीमित रखेंगे। एक विशाल साम्राज्य के रूप में विकसित होने के दौरान मुगल शासकों को ऐसी राजनीतिक शक्तियों के साथ जूझना पड़ा जिनका कई क्षेत्रों में आधिपत्य कायम था। इनमें राजपूत, विन्ध्याचल के दक्षिण में स्थित

बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर और मराठा शासक महत्वपूर्ण थे खंड-3 में हम इस पक्ष की विस्तृत विवेचना करेंगे।

हम अपनी विवेचना का प्रारंभ अकबर से करते हैं कि कैसे उसने अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त की और किस प्रकार से अपनी सर्वोच्चता को मुगल दरबार में स्थापित किया।

6.2 सत्ता की राजनीति और बैरम खां का संरक्षण : 1556-1560

हुमायूं की मृत्यु के समय अकबर की आयु मात्र 13 वर्ष थी। हुमायूं के विश्वासपात्र एवं अकबर के शिक्षक बैरम खां ने 1556-1560 तक उसके संरक्षक के रूप में कार्य किया। बैरम खां के संरक्षक काल को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम अकबर के सिहांसनागेहण से पानीपत के द्वितीय युद्ध से पूर्व अर्थात जनवरी 1556 से अक्टूबर 1556 तक था। यह वह समय था जबकि अभिजात वर्ग ने अपने हितों की रक्षा करने के लिए बैरम खाँ के नेतृत्व को स्वीकार किया। दूसरा चरण पानीपत की लड़ाई के बाद भारत में शाही स्त्रियों (हामिदा बानू बेगम आदि) के आगमन तक का था। इस समय के दौरान बैरम खां ने राज्य के मामलों पर अपना पूर्ण नियंत्रण स्थपित किया। उसने अपने व्यक्तित्व समर्थकों का एक गुट बनाने का प्रयास किया। तीसरे चरण में जो कि 1559 के मध्य तक था, बैरम खां की शक्ति एवं प्रभाव का ह्रास हुआ। अंतिम चरण में बैरम खां ने पुनः अपने नियंत्रण को स्थापित करने का प्रयास किया। इसी समय में गुटीय तनाव भी बढ़ा जिसके कारण बैरम खां को सत्ता से निरस्त कर दिया गया। राजनीतिक तौर पर प्रथम चरण असुरक्षा का था। इस समय में न केवल हुमायूं की मृत्यु हुई अपितु साम्राज्य को हेमू की अफगान सेनाओं को सामना करना पड़ा। इस समय अकबर काफी छोटा था जिसके कारण इन घटनाओं से निराशा का वातावरण छा गया। इस स्थिति से सुरक्षित बचने का उपाय सम्राट के लिए एक संरक्षक की नियुक्ति करना था। लेकिन भय यह था कि यदि किसी अभिजात को एक संरक्षक के रूप में नियुक्त किया जाए और अगर वह एक वास्तविक सार्वभौम के रूप में कार्य करेगा तब अभिजात वर्ग के पारस्परिक संबंधों में तनाव उत्पन्न होगा जिससे प्रशासन को खतरा पैदा हो जाएगा। इन सभी खतरों के बाबजूद बैरम खां को **वकील** नियुक्त किया गया। आश्चर्य की बात यह है कि किसी भी अभिजात सदस्य ने बैरम खां की नियुक्ति का विरोध न किया। अभिजात वर्ग का कोई भी सदस्य लंबी सेवाओं, रक्त संबंधी रिश्ते या अकबर के साथ पूर्ववर्ती निकटता के आधार पर **वकालत** के लिए दावा प्रस्तुत कर सकता था। इन सभी को बैरम खां की कड़ी आलोचना के लिए आधार भी बनाया जा सकता था।

कुलीनों द्वारा बैरम खां को संरक्षक स्वीकार करने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि वे उसके साथ सत्ता एवं प्रभाव में भागीदारी चाहते थे। दूसरी ओर बैरम खां सत्ता का स्वयं उपभोग करने के लिए कृत संकल्प था। **वकील-उस-सल्तनत** का पद ग्रहण करने पर बैरम खां को सत्ता के लिए गुटीय संघर्ष की आशंका थी। इसलिए उसने उन सभी कुलीनों के प्रभाव को समाप्त करने का निश्चय किया जो उसको चुनौती दे सकते थे। उसने अपने कड़े आलोचक शाह अबुल मॉली को पदमुक्त कर जेल में डाल दिया। मॉली कुलीनों के बीच अलोकप्रिय था जिसके कारण बैरम खां की इस कार्यवाही का कोई विशेष विरोध न हुआ।

आगे चलकर ऐसे सभी कुलीनों को काबुल भेज दिया गया जो बैरम खां के लिए खतरा उत्पन्न कर सकते थे। बैरम खां ने काबुल के गवर्नर मुनीम खां तथा अवध में स्थित मुगल सेना के प्रधान अली कुली खां उजबेग के समर्थन को भी प्राप्त करने के प्रयास किये। बैरम खां को मुनीम खां पर विश्वास न था। वह उसको काबुल तक सीमित कर दरबार से दूर रखना चाहता था। जिस समय मई 1556 में मिर्जा सुलेमान ने काबुल पर आक्रमण किया तब उसे मुनीम खां को अलग करने का अवसर प्राप्त हो गया और उसने आगामी चार माह तक मुनीम खां के दरबार के साथ संपर्कों को काट कर रखा और इस बीच बैरम खां ने अपनी स्थिति को दरबार में और सुदृढ़ किया। कुलीनों के बीच लगातार तनाव बढ़ रहे थे और पानीपत की द्वितीय लड़ाई के समय तक यह संकट और भी गहरा हो गया था। तारदी

बेग के नेतृत्व में शाही सेनायें तुगलाकाबाद की लड़ाई में अफगान सेनाओं का सामना करने में असफल रही। इस अवसर का लाभ उठाते हुए बैरम खां ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए विश्वासघात का आरोप लगाकर सम्राट की आज्ञा के बिना तारदी बेग को फांसी देने का आदेश दिया। इससे कुलीन वर्ग में असंतोष बढ़ने लगा। किंतु पानीपत की लड़ाई में बैरम खां की विजय ने उसके सम्मान को पुनः स्थापित करने में सहायता प्रदान की। उसने अपने विश्वासपात्रों को उपाधियां एवं दोआव में जागीरें तथा तरक्की प्रदान कर अपनी स्थिति को ओर मजबूत किया। उसने अपने समर्थकों को कुछ महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया। पीर मोहम्मद खां को अपना व्यक्तिगत **वकील**, ख्वाजा अमीनुद्दीन को **बख्शी** और शेख गदाय को **सदर** नियुक्त किया।

तारदी बेग को फांसी देने के बाद छः माह तक साम्राज्य के मामलों पर बैरम खां का पूर्ण नियंत्रण था। सत्ता पर लगभग अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने के बाद उसने संभावित प्रतिद्वंद्वियों को बादशाह पर प्रभाव कायम करने से रोकने का कार्य किया। मुनीम खां तथा, ख्वाजा जलालुद्दीन महमूद को काबुल भेज दिया गया और उनको दरबार के साथ संपर्क स्थापित करने से रोका गया। बैरम खां की मजबूत होती स्थिति तथा उसके द्वारा वास्तविक सत्ता के उपभोग करने का कुलीनों ने विरोध किया।

बैरम खां की सत्ता के ह्रास का प्रथम साक्ष्य अकबर द्वारा मुनीम खां के दामाद मिर्जा अब्दुल्ला मुगल की पुत्री के साथ विवाह करना था। बैरम खां के प्रबल विरोध के बावजूद यह विवाह संपन्न हुआ था। अप्रैल 1557 में काबुल से हमीदा बानू बेगम के आगमन ने भी बैरम खाँ की स्थिति को प्रभावित किया। हमीदा बानू बेगम के साथ महम अन्गा, भी थी जिसने तारदी बेग की फांसी की घटना के समय बैरम खां का समर्थन किया था।

अब बैरम खां को केन्द्रीय सरकार के कार्यो का संचालन करने में महत्वपूर्ण कुलीनों के साथ समझौता करने को बाध्य होना पड़ा। एक **वकील** के रूप में बैरम खां कुलीनों की सहमति के बगैर राजा के सम्मुख कोई प्रस्ताव न रख सका। इस समझौते ने उसकी ताकत को और क्षीण कर दिया तथा 1558 तक उसका व्यक्तिगत **वकील** पीर मोहम्मद भी उसका विरोधी हो गया।

MAADHYAM IAS

पुनः अपनी ताकत को प्राप्त करने के लिए 1559 में उसने सत्ता हथियाने का प्रयास किया। इस प्रयास में उसने अपने व्यक्तिगत **वकील** पीर मोहम्मद के स्थान पर मोहम्मद खान सिस्तनी को नियुक्त किया। शेख गदाई को **सदर** के अतिरिक्त अन्य कार्य भार सौंपा गया। कई छोटे अधिकारियों को तरक्की दी गई। किंतु बैरम खां का अधिकतर कुलीनों एवं सम्राट से अलगाव बना रहा। अपनी स्वेच्छाचारिता के कारण उसने कुलीनों के असंतोष में और वृद्धि की।

आर० पी० त्रिपाठी जैसे इतिहासकारों ने बैरम खां की यह कहकर आलोचना की है कि उसने सुन्नियों की उपेक्षा कर शियाओं का पक्ष लिया। इस कारण उसने सुन्नियों को अपना विरोधी बना लिया। किंतु इक्तिदार आलम खान का तर्क है कि यद्यपि बैरम खां शिया था फिर भी ऐसा कोई ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं होता जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि बैरम खां ने धार्मिक आधार पर पक्षपातपूर्ण कार्य किये। वास्तव में बैरम खां का कट्टर समर्थक शेख गदाई जो **सदर** नियुक्त किया गया शिया नहीं बल्कि सुन्नी था। बैरम खां ने अकबर की चतुर्तता का आकलन कम करके देखा। उसने बादशाह के विश्वास को जीतने के लिए कोई प्रयास नहीं किया और जब मार्च 1560 में बादशाह ने बैरम खां को पद से हटाने की घोषणा की तब बैरम खां के सभी वफादारों (विश्वासपात्रों) ने बादशाह का समर्थन किया या फिर वे तटस्थ हो गये।

बैरम खां के संरक्षक काल के अध्ययन से स्पष्ट है कि वास्तविक राजनीतिक सत्ता कुलीन वर्ग में निहित थी। कुलीनों ने बैरम खां के प्रभुत्व को सीमित रूप में ही स्वीकार किया। वे उसकी वास्तविक सार्वभौम सत्ता को स्वीकार करने को तैयार न थे।

अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए उसको कभी कुलीन वर्ग के एक गुट पर निर्भर रहना पड़ता कभी दूसरे पर। इस प्रकार वह स्वतंत्र समर्थकों के एक स्थायी गुट को प्राप्त करने में असफल रहा। वास्तव में उसने अपेक्षाकृत छोटे अधिकारियों के ओहदों में वृद्धि

और उनको तरक्की प्रदान कर कुलीनों के एक बड़े समूह को अपना विरोधी बना लिया। इस प्रक्रिया में उसने अयोग्य अमीरों का भी गठन किया। अपने जीवन के अंत में उसने महसूस किया कि उसके अपने समर्थक भी उसके विरोधी हो गये थे।

बैरम खां तथा कुलीनों के बीच का संघर्ष वास्तव में संरक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व करने वाली केन्द्रीय सत्ता एवं कुलीन वर्ग के बीच का संघर्ष था। इस काल के दौरान सम्राट सत्ता का प्रतीक मात्र था और वह बैरम खां के विरोधियों की कठपुतली बना हुआ था। बैरम खां ने मुगल कुलीनों के दो गुटों चगताई तथा खुरासानी कुलीनों को संयुक्त करने का प्रयास किया। लेकिन बैरम खां के इस मेल मिलाप के प्रयास को कुलीनों ने अपनी शक्ति एवं निर्भरता के लिए खतरा समझा। बैरम खां के वफादारों ने भी बैरम खां द्वारा प्रतिनिधित्व की जाने वाली केन्द्रीय प्रभुसत्ता को स्वीकार नहीं किया।

बैरम खां का संरक्षक काल उसके लिए एक संकट बना रहा। जहां एक ओर वह कुलीनों की स्वतंत्रता में कटौती करना चाहता था वहीं दूसरी ओर उसे अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए उनके समर्थन की भी आवश्यकता थी। इस कारण उसके संपूर्णकाल में एक विरोधाभास बना रहा। एक नये गुट का गठन कर इसको संतुलित किया जा सकता था, किंतु यह उसके लिए संभव न था। नये गुट का गठन करने के लिए अफगानों को शामिल किया जा सकता था लेकिन वे सिंहासन पर अपना दावा मानते थे। उसके सम्मुख राजपूत सरदारों, जमींदारों एवं स्थानीय सरदारों का विकल्प था। लेकिन इनको शामिल करने का कार्य एक लंबी प्रक्रिया थी। इस प्रकार बैरम खां ने जब कभी भी अपनी स्थिति को मजबूत करने का प्रयास किया तभी दरबारी कुलीनों ने उसका विरोध किया इसके फलस्वरूप वह यदा-कदा स्वयं को अलग-थलग पाता और अंततः उसको सत्ता से हटना पड़ा।

बैरम खां के निष्कासन ने मुगल राजनीति में अंतर्निहित केन्द्रीय सत्ता एवं इसकी विपरीत प्रवृत्ति के बीच के संघर्ष की पुष्टि की। इसकी परणिति केन्द्रीयकृत सत्ता की विरोधी प्रवृत्ति की विजय के रूप में हुई। इस प्रवृत्ति के द्वारा उन मुश्किलों को समझने में मदद मिलती है जिनका सामना अकबर ने सार्वभौम सत्ता को संभालने के बाद 1562-1567 के वर्षों में किया।

हम देखते हैं कि बैरम खां के संपूर्ण संरक्षक काल में राजनीतिक सत्ता तूरानी उत्पत्ति के अन्य गुटों एवं चगताई कुलीनों में निहित थी। बैरम खां तभी तक सत्ता का उपयोग कर सका जब तक इन गुटों ने उसका समर्थन किया। जैसा कि पहले भी बताया गया कि कुलीन गुटों ने बैरम खां की सत्ता को सीमित तौर पर ही स्वीकार किया था न कि एक वास्तविक शासक के रूप में। उन्होंने उसका तब तक विरोध न किया जब तक कि अफगानों को न कुचल दिया गया। लेकिन पानीपत की दूसरी लड़ाई में हेमू की पराजय के बाद उन्होंने संरक्षक के केन्द्रीयकरण की नीतियों का विरोध करना प्रारंभ कर दिया और उसको मुख्य कुलीन गुटों के प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

बोध प्रश्न 1

1) बैरम खां ने अपनी सत्ता के लिए प्रारंभिक चुनौतियों का सामना कैसे किया?

....

....

....

....

....

2) **पानीपत की दूसरी लड़ाई के बाद बैरम खां द्वारा** सत्ता की पुनर्स्थापना **की व्याख्या कीजिए।**

....

....

....

....

....

3) 1557 के बाद बैरम खां की शक्ति के पतन का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

6.3 अकबर के अधीन क्षेत्रीय प्रसार

प्रारंभिक समस्याओं का समाधान करने और सिंहासन पर अपने अधिकार को सुदृढ़ करने के बाद अकबर ने मुगल साम्राज्य के क्षेत्रीय प्रसार की नीति का प्रारंभ किया। प्रसार की किसी भी नीति के अनुसरण का अभिप्राय था देश के विभिन्न भागों में विद्यमान भिन्न-भिन्न राजनीतिक शक्तियों के साथ संघर्ष। इनमें से कुछ राजनीतिक शक्तियां सुसंगठित थी। राजपूत राज्य इसी श्रेणी के थे। वे स्वायत्त सरदारों एवं राजाओं के रूप में सारे देश में विद्यमान थे परन्तु वे मुख्य रूप से राजपूताना में विराजमान थे। अफगानों का राजनीतिक नियंत्रण मुख्य तौर पर गुजरात, बिहार एवं बंगाल पर था। दक्खन तथा दक्षिण भारत में खान देश, अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा तथा अन्य दक्षिणी रियासतें विद्यमान थी। उत्तर-पश्चिम भारत में कुछ कबाइलियों के छोटे-छोटे राज्य कायम थे। यद्यपि काबुल तथा कन्धार पर मुगल गुटों का अधिकार था किंतु वे गुट भी अकबर का विरोध करते थे।

MAADHYAM IAS

अकबर ने सुनियोजित ढंग से साम्राज्य के प्रसार का प्रारंभ किया। यहां पर यह भी याद रखा जाना चाहिए कि मुगल साम्राज्य का महत्वपूर्ण प्रसार अकबर के शासन काल के दौरान हुआ। उसके उत्तराधिकारियों (जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगजेब) के शासन काल में साम्राज्य के क्षेत्रीय प्रसार में आंशिक वृद्धि हुई। औरंगजेब के शासन काल में मुख्य प्रसार दक्षिण भारत तथा उत्तर-पूर्वी (असम) भारत को साम्राज्य में शामिल करने के रूप में हुआ।

6.3.1 उत्तर तथा मध्य भारत

प्रथम सैनिक अभियान 1559-60 ई० में ग्वालियर एवं जौनपुर पर अधिकार करने के लिए किया गया। एक संक्षिप्त लड़ाई के बाद राम शाह ने ग्वालियर के किले का समर्पण कर दिया। खान जमां को जौनपुर पर अधिकार करने के लिए भेजा गया। खान जमां ने जौनपुर के अफगान शासकों को पराजित कर उसे मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया।

मध्य भारत में मालवा पर बाजबहादुर का शासन था। उसे अधम खान के नेतृत्व में मुगल सेनाओं ने पराजित कर दिया तथा बाज बहादुर बुरहानपुर की ओर भाग गया।

मध्य भारत में गढ़ कातंग या गोण्डवाना का एक अन्य स्वतंत्र राज्य था। इस राज्य पर दलपत शाह की विधवा रानी दुर्गावती का शासन था। दुर्गावती को 1564 में पराजित कर दिया गया। बाद में 1567 ई० में इस राज्य को अकबर ने दलपत शाह के भाई चन्द्रशाह को सौंप दिया।

इस काल के दौरान अकबर को मध्य भारत में अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। अब्दुल्ला खां उजबेग इन विद्रोहों का नेता था। उसके साथ अन्य दूसरे उजबेग भी मिल गये। खान जमां तथा आसफ खां ने भी विद्रोह किया। अकबर ने मुनीम खां की सहायता से इन विद्रोहों का दमन कर दिया और अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया।

बैरम खां के पतन के बाद (1560 ई०) कुलीनों के साथ अकबर का जो संघर्ष प्रारंभ हुआ था अब उसका भी अंत हो गया। अकबर ने अपनी कूटनीतिक निपुणता, संगठनात्मक योग्यताओं तथा विश्वसनीय मित्रों की सहायता से इस गंभीर समस्या का समाधान किया।

6.3.2 पश्चिम भारत

राजपूताना की विजय

अकबर का मानना था कि स्थायी साम्राज्य के लिए उसको राजपूताना में विद्यमान राजपूत राज्यों को अपने अधीन करना होगा। अतः अकबर ने इन राज्यों के प्रति एक सुनिश्चित नीति का निर्धारण किया। इन राज्यों को न केवल विजित करने का निर्णय लिया अपितु इसके शासकों को अपना सहयोगी बनाने का निश्चय किया। यहां पर हम अकबर की राजपूत राज्यों के प्रति नीति की विस्तृत विवेचना नहीं करेंगे। (इस नीति का विस्तृत अध्ययन आप खंड-3 की इकाई 11 में करेंगे।) चित्तौड़ के शासक महाराणा प्रताप को छोड़कर सभी राजपूत शासको ने अकबर के प्रति राजभक्ति अभिव्यक्त की। बहुत से राजपूत शासकों को मुगल कुलीनों में शामिल कर लिया गया और इस प्रकार अकबर ने न केवल मुगल साम्राज्य का प्रसार किया अपितु उसे सुदृढ़ भी किया।

राजा सुरजन हाड़ा द्वारा रणथम्भौर के किले की चाभियों का समर्पण

गुजरात की विजय

अकबर ने मध्य भारत तथा राजपूताना में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के बाद 1572 ई० में गुजरात पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। गुजरात से हुमायूं के वापस लौट जाने के बाद से कोई संगठित राज्य कायम न हो सका था तथा वहां के छोटे-छोटे राज्यों के बीच निरंतर आपसी वैमनस्य बना रहता। गुजरात जहां एक ओर कृषि की दृष्टि से अत्यंत उपजाऊ क्षेत्र था वहीं दूसरी ओर वहां पर अनेकों व्यस्त बंदरगाह थे और व्यापारिक केंद्रों का तेजी से विकास हो रहा था।

सुल्तान मुजफ्फर शाह तृतीय नाम मात्र का शासक था और सात युद्धरत रियासतें उसके अधीन थी। राजकुमार इतिमाद खां ने इन रियासतों को विजित करने के लिए अकबर को आमंत्रित किया। स्वयं अकबर ने अहमदाबाद की ओर कूच किया। बगैर किसी गंभीर विरोध के नगर पर अधिकार कर लिया गया। सूरत की मजबूत किलेबंदी के कारण कुछ प्रतिरोध का सामना करना पड़ा लेकिन उस पर भी अधिकार कर लिया गया। थोड़े ही समय में गुजरात की सभी रियासतों ने अकबर के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। अकबर ने गुजरात को एक प्रांत के रूप में संगठित किया और उसको मिर्जा अजीज कोका के अधीन कर स्वयं राजधानी वापस लौट आया। छः माह के अंदर ही बहुत से विद्रोही गुट एकीकृत हो गये और उन्होंने मुगल शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह के नेता इख्त्यारुल मुल्क एवं मोहम्मद हुसैन मिर्जा थे। मुगल गवर्नर को अनेक क्षेत्रों का परित्याग करना पड़ा। आगरा में अकबर ने विद्रोह का समाचार पाकर पुनः अहमदाबाद की ओर प्रस्थान किया। अकबर के इस अभियान को सबसे अधिक द्रुत गति का माना गया है। वह प्रतिदिन 50 मील का मार्ग तय करता हुआ 10 दिन के अंदर गुजरात पहुंच गया और विद्रोह को कुचल दिया।

गुजरात में लगभग एक दशक तक शांति बनी रही। इसी बीच मुजफ्फर तृतीय नजरबंदी से भाग गया और उसने जूनागढ़ में शरण ली। 1583 ई० के बाद उसने कुछ विद्रोहों को संगठित करने का प्रयास किया।

6.3.3 पूर्वी भारत

शेरशाह के हाथों हुमायूं की पराजय के बाद से ही बिहार तथा बंगाल पर अफगानों ने शासन किया। सन् 1564 ई० में बिहार के गवर्नर सुलेमान करानी ने बंगाल को भी अपने अधीन कर लिया था। सुलेमान ने अकबर की बढ़ती शक्ति को रेखांकित करते हुए मुगलों

सूरत विजय : अकबर का सूरत शहर में प्रवेश

MAADHYAM IAS

की अधीनता को स्वीकार कर लिया। वह अकबर को कुछ उपहार भी भेजा करता। 1572 ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात कुछ संघर्ष के बाद उसके छोटे पुत्र दाऊद ने उसके सिहांसन पर अधिकार कर लिया। दाऊद ने मुगलों की अधीनता को मानने से इंकार कर दिया और जौनपुर के मुगल गवर्नर के साथ संघर्ष करने लगा।

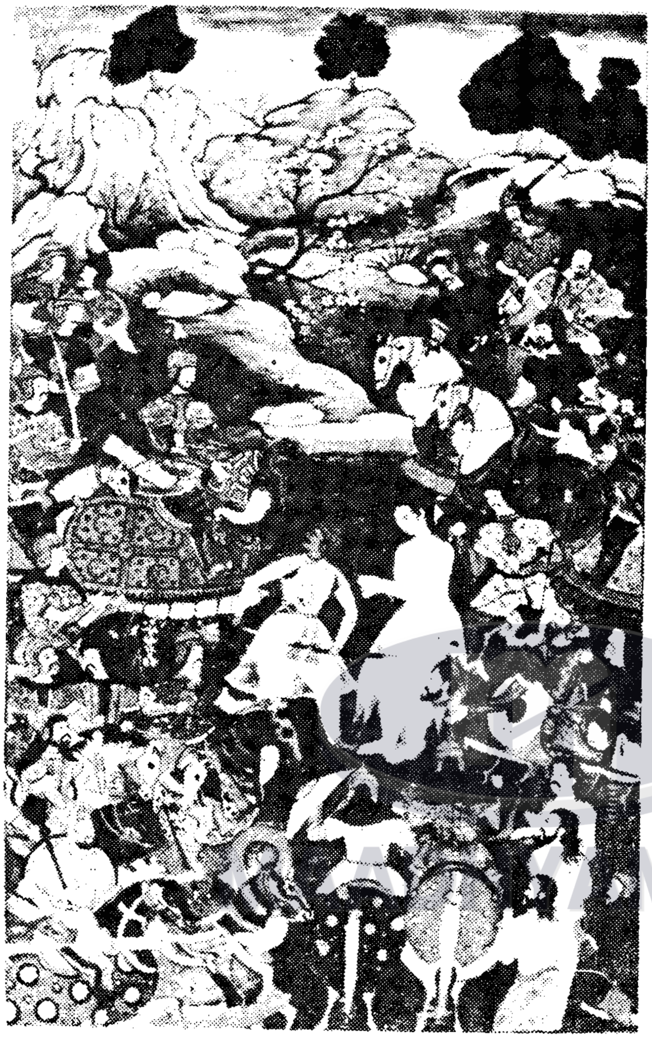

अकबर की बंगाल में सफलता : दाउद शाह को कैद कर मुगल खेमें में लाना

1574 ई० में अकबर ने मुनीम खां खान-ए-खाना के साथ बिहार की ओर प्रस्थान किया। थोड़े समय में ही हाजीपुर तथा पटना पर अधिकार कर लिया गया तथा दाऊद गढ़ी की ओर भाग गया। कुछ समय तक वहां पर ठहरने के बाद अकबर वापस लौट आया। मुनीम खां तथा टोडरमल ने दाऊद का पीछा किया और उसने मुगलों के सम्मुख समर्पण कर दिया। कुछ समय के बाद उसने पुन: विद्रोह किया। खान-ए जहां के अधीन मुगल सेनाओं ने उसका वध कर दिया और गौड़ (बंगाल) प्रदेश को भी मुगलों ने अपने अधीन कर लिया। इससे लगभग दो सौ साल (कुछ अपवादों को छोड़कर) से चले आ रहे बंगाल के स्वतंत्र शासन का अंत हो गया। उड़ीसा के कुछ भाग अब भी अफगान सरदारों के अधीन थे। 1592 ई० के आस-पास मान सिंह ने संपूर्ण उड़ीसा को भी मुगल साम्राज्य के अधीन कर लिया।

6.3.4 1581 ई० के विद्रोह

वी०ए० स्मिथ के अनुसार "यदि अकबर के अपनी शक्ति के सुदृढ़ करने वाले प्रारंभिक वर्षों पर ध्यान न दिया जाए तब अकबर के शासन काल में 1581 का वर्ष सबसे बड़े संकट का वर्ष था।"

कुलीन वर्ग के 1567 तक चलने वाले संघर्ष के बाद पुनः बंगाल, बिहार, गुजरात तथा उत्तर-पश्चिम में गंभीर संघर्ष उभर कर सामने आये। इन विद्रोहों की जड़ों में उन अफगानों का असंतोष था जिनको मुगलों द्वारा सभी स्थानों से हटाया जा चुका था। इसके अतिरिक्त अकबर के जागीर प्रशासन की कड़ी नीति भी इसके लिए उत्तरदायी थी। इस नयी नीति के द्वारा जागीरदारों को आदेश दिया गया कि वे अपनी-अपनी जागीरों का लेखा-जोखा जमा करें और सैनिक खर्चों में कटौती की गई थी। बंगाल के गवर्नर ने इन आदेशों को शक्ति के साथ लागू किया। इस नीति ने वहां विद्रोह को जन्म दिया। शीघ्र ही विद्रोह बिहार में फैल गया। मासूम खां काबुली, रोशन बेग, मिर्जा शर्फुद्दीन तथा अरब बहादुर इस विद्रोह के मुख्य नेता थे। मुजफ्फर खान तथा रायपुरुषोत्तम एवं अन्य अधिकारियों ने इन विद्रोहों का दमन करने का प्रयास किया किंतु वे असफल रहे। अकबर ने तुरंत राजा टोडरमल तथा शेख फरीद बक्शी के नेतृत्व में एक बड़ी सेना को भेजा। कुछ समय बाद टोडरमल की सहायता के लिए अजीज कोका तथा शाहबाज खां को भेजा गया। इसी बीच काबुल में विद्रोहियों ने अकबर के भाई हकीम मिर्जा को अपना राजा घोषित कर दिया। मुगल सेनाओं ने बिहार, बंगाल तथा आसपास के क्षेत्रों में विद्रोहों को कुचल दिया। कुछ विद्रोही नेताओं ने बचकर बंगाल के जंगल में शरण ली। ये नेता अपने अधिकांश समर्थकों को खो चुके थे फिर भी कुछ वर्षों तक बगैर किसी विशेष प्रभाव के मुगल अधिकारियों को अपने छोटे-मोटे हमलों द्वारा परेशान करते रहे।

मिर्जा हकीम ने अकबर पर दबाव बढ़ाने के लिए लाहौर पर आक्रमण किया। अकबर ने भी लाहौर की ओर प्रस्थान किया। हकीम मिर्जा ने जैसे ही अकबर के प्रस्थान का समाचार सुना वैसे ही वह पीछे हट गया। हकीम मिर्जा का अनुमान था कि अधिकतर मुगल अधिकारी उसके साथ शामिल हो जाएंगे किंतु उसका अनुमान गलत साबित हुआ। अकबर ने उत्तर-पश्चिम सीमा की सुरक्षा संगठित करने के बाद एक सेना को काबुल भेजा। अकबर ने भी काबुल की ओर प्रस्थान किया। समय रहते अकबर भी काबुल पहुंच गया। हकीम मिर्जा ने काबुल का परित्याग कर दिया तथा अकबर ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। अकबर ने काबुल को अपनी बहन बख्तुनिसा बेगम के अधीन कर दिया तथा आगरा वापस लौट आया। कुछ समय बाद हकीम मिर्ज़ा भी वापस लौट आया और उसने अपनी बहन के नाम से शासन चलाना जारी रखा। चार वर्ष बाद मिर्जा हकीम की मृत्यु हो गई तथा अकबर ने राजा मान सिंह को काबुल का गवर्नर नियुक्त किया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

जिस समय बिहार, बंगाल एवं उत्तर-पश्चिमी प्रांतों में विद्रोह हुए लगभग उसी समय गुजरात में भी विद्रोह हुआ। यहां पर मुजफ्फर शाह नजरबंदी से भाग गया और उसने विद्रोह का संगठन किया। उसने गुजरात के मुगल क्षेत्रों पर आक्रमण करने शुरू कर दिये।

इतिमाद खां को गुजरात का उप-गवर्नर (Section top) नियुक्त किया गया। विद्रोहियों के विरुद्ध इस अभियान में निजामुद्दीन अहमद ने **बक्शी** की हैसियत से सहायता की। 1584 ई० में मुजफ्फर शाह को अहमदाबाद तथा नानदेद में पराजित कर दिया गया। वह बचकर कच्छ क्षेत्र की ओर भाग गया। निजामुद्दीन अहमद ने उसका यहां पर भी पीछा किया। संपूर्ण कच्छ क्षेत्र में अनेकों किलों को उखाड़ फेंका गया तथा मुगल अधिकारियों को वहां पर नियुक्त कर दिया गया। मुजफ्फर कोई न कोई समस्या खड़ी करता रहा और उसे अंतिम रूप से 1591-92 तक गिरफ्तार कर लिया गया।

6.3.5 उत्तर-पश्चिम में विजय

हकीम मिर्जा की मृत्यु के बाद काबुल को मुगल साम्राज्य में शामिल कर राजा मान सिंह को उसे जागीर के रूप में सौंप दिया गया। ठीक उसी समय अकबर ने उत्तर-पश्चिम में हो रहे विद्रोहों को दबाने एवं नये क्षेत्रों को विजय करने का निर्णय किया।

रोशनयों का दमन

इस क्षेत्र में अकबर का सर्वप्रथम ध्यान रोशनाई आंदोलन की ओर आकर्षित हुआ। रोशनाई एक संप्रदाय था जिसका गठन सीमा क्षेत्र में पीर रोशनाई नाम के एक सिपाही ने किया था। उसको व्यापक समर्थन प्राप्त था। उसकी मृत्यु के बाद उस संप्रदाय का मुखिया उसका पुत्र जलाल बन गया। रोशनाइयों ने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और काबुल

तथा हिन्दुस्तान के बीच के मार्ग को काट दिया। अकबर ने रोशनाइयों के विद्रोह का दमन करने तथा इस क्षेत्र में मुगल सत्ता को स्थापित करने के लिए जैन खां को एक शक्तिशाली सेना का सेनापति नियुक्त किया। जैन खां की सहायता हेतु सैयद खां घक्खर तथा राजा बीरबल को अलग सेना के साथ भेजा गया। एक अभियान के दौरान राजा बीरबल लगभग अपने आठ हजार सैनिकों के साथ मारा गया। उसी के साथ जैन खां को भी पराजित कर दिया किंतु वह जीवित रहकर किसी प्रकार से अकबर के पास अटक के किले में पहुंचा। अकबर को राजा बीरबल की मृत्यु से बहुत बड़ा आघात लगा क्योंकि वह उसके अत्यंत प्रिय साथियों में से एक था। अकबर ने इस क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए एक शक्तिशाली सेना का सेनानायक राजा टोडरमल को नियुक्त किया। राजा मान सिंह से भी कार्यवाही करने को कहा गया। इन दोनों के संयुक्त अभियान के कारण रोशनयों को पराजित कर दिया गया।

कश्मीर की विजय

अकबर की दृष्टि बहुत दिन से कश्मीर को विजित करने पर लगी थी। वह जिस समय अटक में पड़ाव डाले हुए था तभी उसने राजा भगवान दास तथा शाह कुली महरम के नेतृत्व में कश्मीर की विजय के लिए सेना भेजी। कश्मीर के राजा यूसुफ खां को पराजित कर दिया गया और उसने मुगलों की अधीनता को स्वीकार कर लिया। किंतु अकबर इस संधि से बहुत प्रसन्न न था क्योंकि वह कश्मीर को अपने साम्राज्य में शामिल करना चाहता था। यूसुफ खां के पुत्र याकूब ने कश्मीर के अन्य अमीरों के साथ मिलकर मुगलों का विरोध करने का निर्णय किया और युद्ध का प्रारंभ कर दिया। किंतु कश्मीर की सेना में कुछ असंतोष उत्पन्न हो गया। अंततः मुगल सेनाओं ने विजय प्राप्त की और कश्मीर को सन् 1586 ई० में मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया गया।

थट्टा (सिंध) की विजय

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के सिंध प्रांत में थट्टा नाम का क्षेत्र भी अभी तक स्वतंत्र था। अकबर ने खान-ए-खानान को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया और 1590 में उसको सिंध विजय तथा बलूचियों का दमन करने का आदेश दिया। थट्टा को विजित कर लिया गया तथा इसे इस सूबे की एक सरकार के तौर पर मुल्तान के गवर्नर के अधीन कर दिया गया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

समीप के क्षेत्र में मुगल सेनाओं ने बलूचियों का दमन जारी रखा। सन् 1595 ई० में अंतिम तौर पर उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र पर मुगलों की सर्वोच्चता को स्थापित कर दिया गया।

6.3.6 दक्खन तथा दक्षिण

गुजरात तथा मालवा में विजय हासिल करने के बाद अकबर ने दक्खन के राज्यों अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुण्डा में रुचि लेना प्रारंभ कर दिया। प्रारंभिक संपर्क दूत भेजने तथा यदा-कदा भेंट तक ही सीमित था। 1590 ई० के बाद अकबर ने इन राज्यों को मुगल नियंत्रण के अधीन करने के लिए योजना बनाना शुरू कर दिया। इस समय के आस-पास दक्खन राज्यों में आंतरिक एवं आपसी कलह भी चल रहा था।

अकबर ने 1591 ई० में दक्खन के राज्यों को मुगल साम्राज्य की सर्वोच्चता स्वीकार करने के लिए दूतों को भेजा। फैजी को असीर तथा बुरहानपुर (खानदेश) ख्वाजा अमीनुद्दीन को अहमदनगर, मीर मौहम्मद अमीन मशदी को बीजापुर तथा मिर्जा मसूद को गोलकुण्डा भेजा गया। 1593 तक ये सभी मिशन बगैर किसी सफलता के वापस लौट आये। यह कहा गया कि केवल खानदेश के शासक अली खाँ ने मुगलों की इस नीति में रुचि दिखायी। अकबर ने सैन्य शक्ति का अनुसरण करने का निर्णय किया। यहां पर हम मुगलों की दक्खन नीति की कोई विस्तृत चर्चा न करके अपितु दक्खन में उनके क्षेत्रीय विस्तार का विवरण करेंगे। दक्खन नीति की विस्तृत चर्चा खण्ड-3 की इकाई-9 में की जाएगी।

प्रथम सैनिक अभियान शहजादा मुराद तथा अब्दुर रहीम खान खाना के नेतृत्व में खानदेश भेजा गया। 1595 ई० में मुगल सेनाओं ने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया। इसकी शासिका चांद बीबी ने एक विशाल सेना का नेतृत्व करते हुए मुगलों का सामना किया।

उसने बीजापुर के शासक इब्राहीम अली शाह तथा गोलकुण्डा के शासक कुतुब शाह से सहायता का आग्रह किया किंतु कोई सफलता न मिली। चांद बीवी ने मुगल सेनाओं का कड़ा प्रतिरोध किया। दोनों ओर से भारी नुकसान के बाद एक संधि का मसौदा तैयार किया गया। इस संधि के अनुसार चांद बीवी ने बरार का समर्पण मुगलों को कर दिया। कुछ समय बाद चांद बीवी ने बरार को वापस लेने के लिए उस पर आक्रमण किया। इस समय निजामशाही कुतुबशाही तथा आदिलशाही सेनाओं ने संयुक्त तौर पर मुगल सेना का मुकाबला किया। मुगलों को भारी नुकसान उठाना पड़ा किंतु वे किसी प्रकार से मैदान में डटे रहे। इसी बीच मुराद एवं खान खाना के बीच मतभेद हो जाने के कारण मुगल सेना की स्थिति कमजोर पड़ गयी। इसलिए अकबर ने अबुल फजल को दक्खन के अभियान पर भेजा और खान खाना को वापस बुला लिया। 1598 में शहजादा मुराद की मृत्यु के पश्चात शहजादा दानियाल तथा खान खाना को दक्खन भेजा गया। अकबर भी उनके साथ शामिल हो गया। प्रथम अहमदनगर पर अधिकार कर लिया गया। इसी बीच चांद बीवी की मृत्यु हो गई। 1600 ई० में असीरगढ़ तथा आस-पास के क्षेत्रों को मुगल सेनाओं ने विजित कर लिया। बीजापुर के शासक आदिल शाह ने मुगलों की सर्वोच्चता को स्वीकार कर लिया तथा शहजादा दानियाल के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने की पेशकेश की। दक्खन में मुगल साम्राज्य में असीरगढ़, बुरहानपुर,अहमदनगर तथा बरार को शामिल कर लिया गया।

बोध प्रश्न 2

1) गुजरात को कैसे मुगल शासन के अधीन किया गया?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2) 1581 के विद्रोह से कौन-कौन से क्षेत्र प्रभावित थे?

....

....

....

....

....

6.4 प्रशासनिक पुनर्गठन

अकबर की विजयों एवं क्षेत्रीय प्रसार की नीति मुगल प्रशासनिक ढांचे में नये क्षेत्रों को सुदृढ़ करने के साथ-साथ चली।

सूबों का निर्माण

1580 ई० में अकबर ने संपूर्ण साम्राज्य को मुगलों के अधीन 12 प्रांतों में विभाजित कर दिया और जिनको **सूबा** कहा गया। ये **सूबे** इलाहाबाद,आगरा, अवध, अजमेर, अहमदाबाद (गुजरात), बिहार, बंगाल (उड़ीसा सहित), दिल्ली, काबुल, लाहौर, मुल्तान तथा मालवा थे। दक्खन की विजय के बाद तीन नये सूबों को शामिल कर लिया गया तथा अब इनकी संख्या 15 हो गई। ये तीन सूबे थे बरार, खानदेश तथा अहमदनगर। इन प्रांतों पर सुनिश्चित नियमों के अनुसार तथा इनमें नियुक्त अधिकारियों द्वारा शासन किया जाता था। प्रांतीय प्रशासन की विस्तृत विवेचना खंड-4 की इकाई-14 में की जाएगी।

MAADHYAM IAS

सैन्य प्रशासन

अकबर ने सैन्य प्रशासन को भी एक नया स्वरूप प्रदान किया। उसने सेना को संगठित करने के लिए पूर्ववर्ती परंपराओं तथा नवीन उपायों का संयुक्त रूप से उपयोग किया और उसने एक केन्द्रीकृत सैन्य ढांचे को विकसित करने का प्रयास किया। उसने सैन्य एवं नागरिक अधिकारियों को उनकी योग्यता या राज्य की सेवा के आधार पर **मनसब** प्रदान किया। **मनसब** का शाब्दिक अर्थ है पद और **मनसबदार** का तात्पर्य है पद को धारण करने वाला। अकबर ने अपनी **मनसबदारी** व्यवस्था में 66 स्तरों की रचना की अर्थात दस सैनिकों के नेतृत्व (**दहबाशी**) से दस हजार सैनिको (**दहहजारी**) तक का नेतृत्व करना।

सभी **मनसबदारों** को नकद धन या जागीर के रूप में अदायगी की जाती थी। अकबर के शासन काल में जिस सैन्य प्रशासन को विकसित किया गया था उसके उत्तराधिकारियों के शासन के दौरान उसमें कई परिवर्तन किये गये। यहां पर हम **मनसब** व्यवस्था का विस्तृत विवरण नहीं करेंगे अपितु इसका विस्तृत विवरण खण्ड-4 की इकाई-15 में किया जाएगा।

6.5 अकबर के उत्तराधिकारियों के अधीन क्षेत्रीय प्रसार

अकबर के क्षेत्रीय प्रसार ने मुगल साम्राज्य को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया उसके उत्तराधिकारियों अर्थात जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगजेब के शासन काल में क्षेत्रीय प्रसार में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। हम देखते हैं कि औरंगजेब के बाद साम्राज्य का बिखरना प्रारंभ हो गया था। इस भाग में हम अकबर के उत्तराधिकारियों के शासन के दौरान हुए क्षेत्रीय प्रसार का उल्लेख करेंगे। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में रोशनियों पर 1625-26 में निर्णायक विजय प्राप्त कर ली गई थी। अब कन्धार ईरानियों तथा मुगलों के बीच संघर्ष का क्षेत्र बन गया। अकबर की मृत्यु के पश्चात सफ़वी वंश के शासक शाह अब्बास के अधीन ईरानियों ने कंधार पर अपना अधिकार करने का प्रयास किया किंतु वे असफल रहे। इसका अनुसरण करते हुए 1620 ई० में शाह अब्बास ने जहांगीर से कंधार देने का अनुरोध किया किंतु जहांगीर ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। 1622 ई० में एक अन्य आक्रमण द्वारा ईरानियों ने कंधार पर अधिकार कर लिया। कंधार पर अधिकार करने के लिए औरंगजेब के शासन काल तक संघर्ष चलता रहा किंतु मुगलों को बहुत कम सफलता प्राप्त हुई। इसका विस्तृत विवरण इकाई-7 में किया जाएगा।

राजपूताना में मेवाड़ एक ऐसा क्षेत्र था जो अकबर के शासन काल में मुगल साम्राज्य का अंग न बन सका था। इस पर अधिकार करने के लिए जहांगीर ने एक सुनिश्चित नीति का अनुसरण किया। अनेकों संघर्षों के बाद राणा अमर सिंह ने अंततः मुगलों की अधीनता को स्वीकार कर लिया। चित्तौड़ के किले सहित मेवाड़ से जितना भी क्षेत्र लिया गया था उसे अमर सिंह को वापस लौटा दिया गया और उसके पुत्र करण सिंह को एक बड़ी जागीर प्रदान की गई। अकबर के उत्तराधिकारियों के शासन के दौरान राजपूतों के मुगलों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध जारी रहे। मुगल शासकों द्वारा उन्हें ऊंचे-ऊंचे **मनसब** दिये गए।

अकबर के शासन के अंतिम वर्षों तथा जहांगीर के प्रारंभिक वर्षों में मलिक अंबर के नेतृत्व में अहमदनगर ने मुगल सत्ता को चुनौती देना प्रारंभ कर दिया। मलिक अंबर बीजापुर का समर्थन प्राप्त करने में भी सफल हो गया। जहांगीर ने अनेकों सैनिक अभियानों को वहां पर भेजा किंतु वे कोई सफलता प्राप्त करने में असमर्थ रहे। शाहजहां के शासनकाल में पुनः मुगलों का संघर्ष दक्खन के राज्यों अहमदनगर, बीजापुर एवं गोलकुण्डा के साथ प्रारंभ हो गया। अहमदनगर ऐसा प्रथम राज्य था जिसको पराजित कर उसके क्षेत्र को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया था। 1636 ई० तक बीजापुर तथा गोलकुण्डा को भी पराजित कर दिया गया किंतु इन राज्यों को मुगल साम्राज्य में शामिल नहीं किया गया। एक संधि के बाद पराजित राज्यों ने नजराना देना एवं मुगल प्रभुत्व को स्वीकार किया। लगभग 10 वर्षों तक शाहजहां ने अपने पुत्र औरंगजेब को दक्खन का गवर्नर बनाकर रखा। इस समय के दौरान इस क्षेत्र में मराठों का एक शक्तिशाली राजनीतिक शक्ति के रूप में उत्थान हो

रहा था। वास्तव में औरंगजेब ने अपने शासन काल के अंतिम 20 वर्ष दक्खन में युद्ध करने में व्यतीत किये। 1687 ई० तक दक्खन के बीजापुर तथा गोलकुण्डा राज्यों को मुगल साम्राज्य के अधीन कर लिया गया। दक्खन राज्यों के साथ मुगलों के संबंधों की विस्तृत विवेचना खंड-3 में की जाएगी।

उत्तरपूर्व विजय

औरंगजेब के काल में उत्तर-पूर्व के क्षेत्र में असम विजय मुगलों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। 1661 ई० में बंगाल के गवर्नर मीर जुमला ने इस राज्य पर आक्रमण किया। मीर जुमला के पास 12,000 घुड़सवार, 30,000 पैदल सैनिक और बड़ी संख्या में नावों पर तोपखाना था। अहोम (असम के शासक) प्रतिरोध बहुत कमजोर था। अहोम राज्य की राजधानी कामरूप पर मुगल अधिकार स्थापित हो गया। राजा राजधानी छोड़कर भाग गया। 1663 में राजा स्वर्गदेव ने समर्पण कर दिया और शांति स्थापित हुई। असम को मुगल साम्राज्य में मिलाया गया और मुगल अधिकारियों की नियुक्ति की गई। 1663 में मीर जुमला की मृत्यु हो गई। उत्तर-पूर्व में मुगलों को दूसरी बड़ी सफलता बंगाल के नये गवर्नर शाइस्ता खां के काल में मिली। 1664 में उसने सफलतापूर्वक चटगांव पर अधिकार कर लिया।

मुगल बहुत लंबे समय तक अहोम राज्य पर अपना नियंत्रण बनाए रखने में सफल न हो सके वहां नियुक्त मुगल फौजदारों को कई प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा। 1680 में अहोम कामरूप पर पुनः नियंत्रण स्थापित कर सके और प्रत्यक्ष मुगल नियंत्रण समाप्त हुआ।

6.6 स्वायत्त सरदारों के प्रति नीतियां

MAADHYAM IAS

मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ करने के प्रयासों में अकबर ने अपना ध्यान स्वायत्त सरदारों (chieftains) की ओर भी आकृष्ट किया। सरदार शब्द का प्रयोग उन शासक वंशों के लिए किया गया है जो संपूर्ण देश में फैले हुए छोटे-छोटे क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में शासन करते थे। (इतिहासकारों के बीच इस शब्द के प्रयोग पर आम सहमति है) इन शासकों को मुगलों के साथ संबंधों में एक विशिष्ट प्रकार का दर्जा प्राप्त था। जहां एक ओर वे अपने शासित क्षेत्र पर अपना प्रशासन चलाने के लिए स्वतंत्र थे वहीं पर वे मुगल साम्राज्य के परिप्रेक्ष्य में एक सहायक की स्थिति रखते थे।

अकबर की सफलता इस तथ्य में निहित थी कि वह अपने साम्राज्य के स्थायित्व के लिए इन सरदारों का समर्थन प्राप्त करने में सक्षम रहा और अकबर के उत्तराधिकारियों ने भी लगभग इसी नीति का अनुसरण किया।

सरदारों की सत्ता का चरित्र

समकालीन विवरणों में इन सरदारों का उल्लेख **राय, राणा, रावत, रावल, राजा, मराजबान, कलन्तरान** (अंतिम दो नाम फारसी के हैं) आदि के रूप में हुआ है। कभी-कभी जमींदार शब्द का प्रयोग साधारण भूमि स्वामी तथा सरदारों दोनों के लिए हुआ है। मुगल प्रभुत्व के अधीन जमींदार स्वतंत्र न थे जबकि सरदारों को अपने शासित क्षेत्रों में पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त थी तथा ये मुगल शासकों के साथ एक विभिन्न प्रकार का संबंध रखते थे।

सरदारों के साथ मुगलों का संघर्ष

लोदियों की पराजय के बाद बाबर के आधीन भारत की केन्द्रीय सत्ता को अफगानों तथा स्वायत्त सरदारों के संयुक्त विद्रोहों का सामना करना पड़ा। हुमायूं को भी उनकी शत्रुता का सामना करना पड़ा।

सरदारों के साथ अकबर का प्रारंभिक संपर्क संघर्षों तथा युद्धों के माध्यम से हुआ। कई मामलों में ये सरदार मुगल एवं अफगान विद्रोहियों के साथ मिल गये। मुगल सत्ता के

सुदृढ़ीकरण एवं विजयों की प्रक्रिया में अकबर ने सरदारों का समर्थन प्राप्त किया और कई ने मुगलों की अधीनता को भी स्वीकार किया। अकबर की इन सरदारों के प्रति कोई घोषित औपचारिक नीति न थी। समकालीन स्रोतों में उपलब्ध संदर्भों के आधार पर हमें मुगलों तथा सरदारों के बीच के संबंधों की जानकारी प्राप्त होती है। उनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है :

1) विजय के पश्चात या उनके द्वारा अधीनता स्वीकार करने के बाद उनको अपने क्षेत्रों का प्रशासन करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया। उनके पास राजस्व एकत्रित करने, व्यवसायिक कर तथा पारगमन कर (पथकर) आदि करों को लगाने के अधिकार थे। राजस्व एकत्रित करने में सरदार मुगल अधिनियमों की अपेक्षा स्थानीय परंपराओं का अनुसरण करते थे।

2) ये स्वायत्त सरदार मुगलों के लिए सैन्य सेवायें भी करते थे। उनको जागीरें एवं **मनसब** प्रदान किये जाते थे। ए०आर० खान के अनुसार अकबर के शासन के दौरान लगभग 61 राजाओं और सरदारों को **मनसब** प्रदान किये गये। इसी प्रकार की परंपरा का निर्वाह अन्य मुगल सम्राटों द्वारा भी किया गया।

3) जिन मामलों में सरदारों को **मनसबदार** नहीं बनाया गया वे भी अक्सर शत्रुओं के विरुद्ध चलाये गये सैनिक अभियानों एवं विद्रोहों का दमन करने में मुगल सेनाओं की मदद करते थे। संपूर्ण मुगल शासन के दौरान इन सरदारों ने न केवल विशाल क्षेत्रों को विजित करने में मदद की अपितु उन्होंने कई स्वायत्त शासकों के विरुद्ध भी मुगलों की सहायता की।

4) सैन्य मदद उपलब्ध कराने के अतिरिक्त अक्सर इन सरदारों को प्रशासन में **सूबेदार** (गवर्नर), **दीवान**, **बख्शी** आदि जैसे महत्वपूर्ण पदों पर भी नियुक्त किया जाता था।

अकबर को नज़राना पेश करते हुए एक स्वायत्त सरदार

5) अन्य जागीरों के अतिरिक्त उनको अक्सर जागीर के तौर पर उनके अपने क्षेत्रों को भी दिया जाता जिन्हें **वतन जागीर** कहा जाता। ये जागीरें पैतृक एवं अपरिवर्तनीय थीं।

6) उनके संबंधों की एक मुख्य विशेषता यह भी थी कि यदि परिवार के अंदर शासक को लेकर किसी प्रकार का विवाद उठ खड़ा होता तब सरदार के अधिकारों को मान्यता प्रदान करने का अधिकार मुगल सम्राटों को था। जिन सरदारों ने मुगलों की अधीनस्थता को स्वीकार किया उनको मुगल सम्राटों ने सैनिक सुरक्षा भी प्रदान की।

7) सरदारों से यह आशा की जाती थी कि वे मुगल सम्राट को लगातार नजराना देते रहे इसको **पेशकश** कहा गया। इस **पेशकश** के वास्तविक चरित्र को पहचान पाना कठिन है। उस समय इसको नकदी, तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं जैसे हीरे, सोना एवं हाथियों के रूप में अदा करना होता था।

8) मुगल शाही परिवार तथा सरदारों के बीच वैवाहिक संबंधों को भी कायम किया गया।

सरदारों के विद्रोह

सरदारों द्वारा किये गये बहुत से विद्रोहों के विवरण हमें मिलते हैं। इस प्रकार के विद्रोहों के कारणों के विषय में समकालीन ग्रंथों ने अक्सर राजस्व या नजराने की अदायगी न करना बताया है। विद्रोहों की स्थिति में अधिकांशतः सरदारों को उनके क्षेत्र से बेदखल नहीं किया गया अपितु फिर उन्हें या परिवार के किसी अन्य सदस्य को उस क्षेत्र को सौंप दिया जाता। अगर कुछ अन्य मामलों में किसी सरदार को उसके क्षेत्र से बेदखल कर दिया जाता तब यह केवल डांट फटकार के लिए होता था और कुछ समय बाद उसी को या उसके किसी परिवार के सदस्य को सत्ता में पुनः स्थापित कर दिया जाता।

सरदारों के प्रति जिस नीति का प्रारंभ अकबर ने किया था वह आगामी मुगल सम्राटों के शासन काल में भी जारी रही। इन सरदारों को मुगल कुलीनों या **मनसबदार** के रूप में शामिल करने की नीति साम्राज्य के लिए अति लाभप्रद साबित हुई। मुगल सम्राटों ने सरदारों का समर्थन तथा नवीन विजयों के लिए उनकी सेवायें प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। मुगल कुलीनों के रूप में इस विशाल साम्राज्य के प्रशासन का संचालन करने में इन सरदारों ने महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की। इन सरदारों के साथ मित्रतापूर्ण संबंधों ने साम्राज्य के लिए शांति को सुनिश्चित किया।

इस नीति से सरदारों को भी लाभ हुआ। अब वे अपने क्षेत्र को अपने पास बनाये रख सकते थे और अपनी इच्छानुसार अपने क्षेत्र का प्रशासन चला सकते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य **जागीरें** तथा **मनसब** भी प्राप्त किये। कई बार उनको प्रदान की गई जागीर उनके स्वयं के क्षेत्र की अपेक्षा बड़ी होती थी। साथ ही साथ उनको अपने शत्रुओं के तथा विद्रोहियों के विरुद्ध मुगल साम्राज्य की सुरक्षा भी प्राप्त हुई।

बोध प्रश्न 3

1) 1580 में निर्मित सूबों की सूची बताइये।

....

....

....

....

....

2) औरंगजेब के शासन के दौरान क्षेत्रीय प्रसार संबंधा उपलब्धियों को बताइये।

....

....

....

....

....

3) सरदारों के प्रति मुगल नीति कैसे पारस्परिक लाभ के लिए थी।

....

....

....

....

....

6.7 सारांश

MAADHYAM IAS

हमने इस इकाई में अध्ययन किया कि अकबर काफी कम आयु में सम्राट बन गया था। कम आयु के युवा सम्राट के लिए बैरम खां ने प्रथम चार वर्ष तक संरक्षक के रूप में कार्य किया। मुगल कुलीन वर्ग कई गुटों में विभाजित था और वे अपनी-अपनी सर्वोच्चता को स्थापित करना चाहते थे। अकबर ने धीरे-धीरे स्थिति को अपने नियंत्रण में कर लिया तथा ऐसे कुलीनों का एक गुट निर्मित किया जो उसके प्रति समर्पित था। इस समय मुगल साम्राज्य का नियंत्रण एक सीमित क्षेत्र तक ही था।

अकबर ने विजयों की नीति का प्रारंभ किया और पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण के विशाल क्षेत्रों को मुगल साम्राज्य के अधीन कर लिया गया।यद्यपि दक्षिण में सफलता केवल दक्खन के क्षेत्रों तक सीमित थी। विजयों के साथ सुदृढ़ीकरण की नीति का भी प्रारंभ किया गया। सुदृढ़ीकरण की नीति के परिणामस्वरूप विजित क्षेत्रों को एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत रखा गया। जिस सुदृढ़ीकृत साम्राज्य का गठन अकबर द्वारा किया गया था उसे सौ वर्षों से भी अधिक उसके उत्तराधिकारी मुगल सम्राटों द्वारा सुरक्षित रखा गया। औरंगजेब के शासन के दौरान दक्खन के बीजापुर, गोलकुण्डा आदि तथा उत्तर-पूर्व के नये क्षेत्रों को मुगल साम्राज्य में शामिल किया गया। साम्राज्य के प्रसार एवं सुदृढ़ीकरण के लिए स्वायत्त सरदारों की सहायता प्राप्त करना मुगल सम्राटों की महत्वपूर्ण सफलता थी।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) बैरम खां के संरक्षण के लिए भाग 6.2 को पढ़कर कृपया अपना उत्तर लिखें।
2) पानीपत की दूसरी लड़ाई में मुगल विजय ने बैरम खां की स्थिति को मजबूत किया। उसके संरक्षण के विषय में भाग 6.2 में पढ़ें।
3) 1557 के बाद बैरम खां ने कुलीन वर्ग के एक बड़े भाग को असंतुष्ट कर दिया था। ये कुलीन गुट आपस में मिल गये और उन्होंने बैरम खां का विरोध शुरू कर दिया। देखें भाग 6.2

बोध प्रश्न 2

1) अकबर ने गुजरात पर अधिकार करने के लिए कई बार प्रयास किये और उसे वह 1580 में अपने अधीन कर सका। पढ़े उपभाग 6.3.2

2) मुख्य तौर पर पूर्वी प्रांत एवं गुजरात प्रभावित थे। देखें उपभाग 6.3.4

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 6.4

2) औरंगजेब के शासन के दौरान मुख्य क्षेत्रीय प्रसार दक्खन एवं असम में किया गया। देखें भाग 6.5

3) मुगल नीति के अनुसार सरदारों का अपने क्षेत्र पर नियंत्रण करने एवं प्रशासन चलाने का अधिकार बनाए रखा गया। इस नीति के बदले मुगल सम्राटों को आवश्यकता पड़ने पर इन सरदारों का समर्थन एवं सहायता प्राप्त होती रही। विस्तृत जानकारी के लिए देखें भाग 6.6.

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 7 मध्य एशिया और ईरान के साथ संबंध

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 विश्व एवं क्षेत्रीय अवधारणा
7.3 उजबेगों के साथ संबंध
  7.3.1 बाबर और हुमायूं
  7.3.2 अकबर
  7.3.3 जहांगीर
  7.3.4 शाहजहां
7.4 ईरान के साथ संबंध
  7.4.1 बाबर तथा हुमायूं
  7.4.2 अकबर
  7.4.3 जहांगीर
  7.4.4 शाहजहां
7.5 दक्खनी राज्य एवं ईरानी-मुगल दुविधा
7.6 औरंगजेब तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में मुगलों, ईरानियों तथा उजबेगों के मध्य सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान विकसित हुए त्रिपक्षीय संबंधों की विवेचना की गई है। इस इकाई से आपको निम्नलिखित की जानकारी होगी :

- उत्तर-पश्चिम सीमा के भौगोलिक महत्व की,
- उस विश्व एवं क्षेत्रीय दृष्टिकोण की जिसने त्रिपक्षीय संबंधों को एक स्वरूप दिया एवं सुनिश्चित किया,
- मुगल उजबेग संबंधों के मुख्य चरणों की, और
- मुगल तथा सफवी संबंधों के विभिन्न चरणों की।

7.1 प्रस्तावना

हिमालय पर्वत, भारतीय समुद्र, अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी द्वारा घेरे-बंदी से भारत की तीन दिशाओं से प्राकृतिक सुरक्षा होने के साथ-साथ उत्तर-पश्चिमी सीमाओं की ओर से असुरक्षित होने के कारण इस दिशा से लगातार भारत को बाहय खतरों का सामना करना पड़ता था। हिन्दूकुश पर्वतों के पार के क्षेत्रों में ईरान, काबुल एवं ट्रांसऑक्सियाना स्थित थे। इसी मार्ग से होकर यूनानी, हूण, तुर्क, मुगल तथा अन्य आक्रमणकारी कुछ अंतराल के बाद लगातार आते रहे। अपनी सत्ता को स्थापित करने के बाद मुगलों ने अपनी उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के प्रति काफी गंभीरता से ध्यान दिया। अकबर ने

अपने सैनिक अभियानों का संचालन अपने साम्राज्य को मजबूत एवं सुदृढ़ करने के लिए भारत की सीमाओं के अंदर ही किया और वह हिन्दूकुश या होरमुज की सीमाओं से बाहर न गया। अपने शासन के प्रारंभ से ही अकबर काबुल एवं कंधार को इस कारण से अपने अधीन करना चाहता था जिससे कि किसी भी बाहय आक्रमण के विरुद्ध वह ढाल का काम करे। अबुल फजल ने इस वास्तविकता पर बल दिया कि काबुल एवं कंधार दोनों भारत के दोहरे प्रवेश द्वार थे। एक ईरान को तो दूसरा मध्य एशिया की ओर जाता था। इससे पूर्व बाबर ने भी इस वास्तविकता का विवरण अपनी पुस्तक **बाबरनामा** में किया था। बाद के सुजान राय भंडारी जैसे इतिहासकारों ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये। जहां एक ओर अकबर तथा उसके पूर्ववर्ती शासकों को अपनी मातृभूमि से अथाह प्रेम था वहीं उसके उत्तराधिकारी बिना किसी सोच-विचार के साम्राज्यवादी अभिलाषा को पूरा करने में उलझ गए तथा इस नीति के कारण शाहजहां के अधीन भेजे गए उत्तर-पश्चिमी सैनिक अभियान के कारण मुगल साम्राज्य को भारी मूल्य चुकाना पड़ा। ईरान तथा मध्य एशिया के साथ मुगलों के संबंधों को जहां एक आंतरिक राजनैतिक घटनाक्रम ने सुनिश्चित किया वहीं उनको उनकी अपनी त्रिपक्षीय आवश्यकताओं, विश्व तथा क्षेत्रीय अवधारणाओं एवं मान्यताओं ने भी प्रभावित किया।

7.2 विश्व एवं क्षेत्रीय अवधारणा

16वीं सदी के प्रथम दशक में जैसे ही तैमूर एवं तुर्की राज्यों का पतन हुआ वैसे ही पश्चिम एशिया एवं मध्य एशिया में दो नये राज्य अस्तित्व में आये (खंड 1 की इकाई 1)। इन दोनों राज्यों (उजबेग तथा सफवी) की सीमायें परस्पर मिलती थी। केवल अमु दरिया दोनों को अलग करता था। इसी कारण दोनों के बीच कभी समाप्त न होने वाला संघर्ष एवं युद्ध स्वाभाविक था। यही कारण था कि उन दोनों की साम्राज्य प्रसार की योजनाओं को एक-दूसरे के क्षेत्र पर अधिकार करके ही पूरा किया जा सकता था। यद्यपि नये राज्य एक बड़े साम्राज्य के प्रांत रह चुके थे और इसी कारण से उनमें कुछ समान विशेषतायें भी थी। इन नये राज्यों के पतन के फलस्वरूप 16वीं सदी के प्रारंभ में दो अलग एवं विशिष्ट पहचान वाले राज्यों का उद्‌भव हुआ। अब इनका जातीय तथा भाषाई, आधार तथा काफी हद तक सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराएं भी भिन्न थी। ''सफवी'' या ''धर्म योद्धा'' उनको कहा गया जिन्होंने अपने सह धर्मियों को एक राजनैतिक शक्ति के रूप में संगठित किया और उनके उद्‌भव से ईरानी राज्य की स्थापना ऑटोमन साम्राज्य तथा उजबेगों के एक प्रतिद्वन्द्वी के रूप में हुई। व्यापक स्तर पर हुए विस्थापन के कारण (स्वत: या जबरदस्ती) जनसंख्या के प्रारूप पर भी प्रभाव पड़ा। सफवियों के शिया ईरान राज्य से सुन्नी मुसलमानों का पलायन उजबेगों के सुन्नी ट्रांसऑक्सियाना को हुआ तथा शिया मुसलमानों का पलायन सुन्नी ट्रांसऑक्सियाना से शिया ईरान राज्य को हुआ।

इस क्षेत्र के तीनों राज्य अर्थात मध्य एशिया (ट्रांसऑक्सियाना), ऑटोमन टर्की एवं मुगल राज्य सुन्नी राज्य थे। इन तीनों राज्यों के बीच धर्म के आधार पर संबंधों में कटुता की संभावना न थी। जहां एक ओर उजबेग ऑटोमन जैसे अपने समकालीन साम्राज्य पर भरोसा रख सकते थे वहीं दूसरी ओर सफवियों के पास ऐसा कोई विश्वसनीय एवं स्थायी सहयोगी न था जिसके साथ समान धार्मिक विश्वास के आधार पर संबंध रखे जा सकते थे। धार्मिक मतभेदों के अलावा (जिनका राजनैतिक लक्ष्यों के लिए सोलहवीं शताब्दी में भरपूर उपयोग किया गया) ईरान के इन उपरोक्त राज्यों के साथ अन्य कई स्तरों पर मतभेद थे। भौगोलिक स्तर पर बहुत समीप होने के कारण उजबेगों का विस्तार ईरान राज्य की ओर ही संभव था और ईरान राज्य जहां एक ओर भौगोलिक तौर पर महत्वपूर्ण था वहीं वह व्यापारिक तौर पर संपन्न एवं उपजाऊ भी था। ऑटोमन साम्राज्य समुद्री व्यापार मार्गों पर अपना नियंत्रण बनाये रखने को उत्सुक था। क्योंकि इसके हितों की पूर्ति होर्मुज (एक विकसित बंदरगाह), लाल सागर तथा हिन्द महासागर पर नियंत्रण रखने में थी। इस कारण से न केवल ईरान के साथ संघर्ष संभावित था अपितु किसी समय पुर्तगालियों एवं रूसियों के साथ भी। हिन्द महासागर क्षेत्र में ऑटोमन साम्राज्य के लिए

पुर्तगाल लगातार एक खतरा बना हुआ था और इसी कारण ऑटोमन साम्राज्य पुर्तगालियों को समुद्र के क्षेत्र से बेदखल करना चाहता था। इसलिए ईरानियों एवं पुर्तगालियों के मध्य यदा-कदा होने वाली मित्रता कोई आश्चर्य की बात न थी।

ईरान की व्यापारिक एवं सामरिक महत्ता, इसके गलीचे एवं रेशम उद्योगों एवं इसकी भूमि की उर्वरकता ने सदैव ही इसके पड़ोसियों के लालच को और अधिक बढ़ाया। इस प्रकार ईरान को लगभग निरंतर रूप में कभी ऑटोमन एवं कभी उजबेगों के अभिलाषायुक्त तथा प्रसारवादी सैनिक अभियानों का सामना करना पड़ा। रूसी जारों की दृष्टि ट्रांसऑक्सियाना पर थी और उन्होंने न केवल कज्जाकों को उजबेगों पर आक्रमण करने के लिए उकसाया अपितु शिया ईरान के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध कायम करने के लिए आग्रह किया। इस प्रकार ईरान को पुर्तगालियों, रूसियों तथा आगे चलकर अंग्रेजों का अस्थायी समर्थन प्राप्त हुआ। ऐसा इस कारण से हुआ क्योंकि ये सभी अपने-अपने हितों को देखते हुए अपने विरोधियों के विरुद्ध ईरान को एक संतुलन बनाए रखने वाले राज्य के रूप में उपयोग करना चाहते थे।

भारत के साथ कंधार के क्षेत्र को लेकर ईरान कड़ा प्रतिरोधी था जिसके कारण ईरान की भारत के साथ शत्रुता से लेकर सशस्त्र संघर्ष की स्थिति बनी रहती थी। इसके बावजूद भी जब कभी भी मुगलों ने ईरानियों से मदद मांगी उन्होंने हमेशा दी। शाह इस्माइल ने बाबर की सहायता उजबेगों के विरुद्ध की और हुमायूं के साम्राज्य को पुनः स्थापित करने में ईरान के शासक तहमस्प ने निर्णायक सहायता प्रदान की। शाह अब्बास ने अकबर तथा जहांगीर के साथ मित्रतापूर्वक संबंध बनाकर रखे और गोलकुण्डा, बीजापुर जैसे दक्खन के राज्यों को भी सहायता दी और उनके मामले की अकबर के सम्मुख वकालत की।

उजबेगों का मानना था कि मुगल एक महत्वपूर्ण संतुलन प्रदान करने वाली शक्ति थी यदि उनका थोड़ा भी झुकाव ईरान की ओर हो गया तब क्षेत्र की शांति एवं प्रगति में विघ्न उत्पन्न हो जाएगा। ऑटोमनों की उजबेगों से कोई दुश्मनी नहीं थी तथा ईरान के प्रश्न पर उनके समान हित उन्हें नजदीक ले आए यद्यपि मुगलों का ऑटोमनों के प्रति झुकाव नहीं था।

इस प्रकार शक्ति के दो गुटों के बीच पारस्परिक सौहार्द विद्यमान था अर्थात एक ओर ऑटोमन साम्राज्य एवं उजबेगों के मध्य सौहार्दपूर्ण संबंध थे तथा दूसरी ओर मुगलों एवं ईरानियों के बीच परंपरागत सहमति थी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 1

1) मुगलों की उत्तर-पश्चिमी सीमा नीति के संदर्भ में काबुल तथा कंधार के महत्व पर प्रकाश डालिये।

....

....

....

....

....

2) उन भौगोलिक कारणों को बताइये जिससे भारत, ईरान तथा ट्रांसऑक्सियाना के बीच त्रिपक्षीय संबंधों का निर्धारण हुआ।

....

....

....

....

....

3) उस विश्व स्थिति का विवेचन कीजिए जिसने मुगलों की मध्य एशिया एवं ईरान के प्रति नीति को प्रभावित किया।

....

....

....

....

....

7.3 उजबेगों के साथ संबंध

जैसा कि इकाई 1 में वर्णित किया गया है कि बाबर को मध्य एशिया से बाहर निकाल दिया गया था और इसके बाद उसने काबुल में बड़ी मुश्किलों का सामना करते हुए किसी प्रकार 1526 ई० में भारत पर विजय प्राप्त की। अब हम निम्नलिखित उपभागों में उजबेगों के साथ मुगलों के संबंधों की विवेचना करेंगे।

7.3.1 बाबर और हुमायूं

बाबर के मध्य एशिया से बाहर निकल जाने के बाद (देखें इकाई 1) उजबेगों तथा मुगलों के बीच परंपरागत संघर्ष कुछ समय के लिए बंद हो गया था क्योंकि दोनों के बीच संघर्ष के लिए ऐसा कुछ शेष न रह गया था जैसा कि कंधार के मामले को लेकर ईरानियों के साथ था। 1528 ई० में कुचूम तथा अन्य उजबेग सुल्तानों ने भारत में अपने दूतों को बाबर की विजय पर उसको बधाई देने के लिए भेजा। उजबेगों की ओर से भेजे गये इस मित्रवत् संदेश को मुगलों ने कोई विशेष महत्व न दिया और अपने पूर्वजों की रियासत से बेदखल होने को वे कभी भी न भुला सके। ट्रांसऑक्सियाना को जीतने की इच्छा के बावजूद भी मुगलों को संभवतः यह भी प्रतीत होता था कि उनकी यह अभिलाषा पूर्णतः अव्यवहारिक थी क्योंकि उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा उनके लिए एक स्थायी समस्या बनी हुई थी और कंधार को भी जीतना उनके लिए एक स्वप्न मात्र था। फिर वे ट्रांसऑक्सियाना को विजयी करने की योजना कैसे बना सकते थे तथा कैसे इस दूरदराज की "पूर्वजों की भूमि" पर प्रभावशाली नियंत्रण को कार्यरूप दे सकते थे? इन सबके बावजूद भी बाबर ने हुमायूं को ट्रांसऑक्सियाना के कुछ भाग को जीतने के लिए प्रोत्साहित किया। हुमायूं ने असफलतापूर्वक या अस्थायी सफलता के साथ अपने प्रयासों को जारी रखा। इसके बावजूद ये प्रयास कोई स्थायी प्रभाव न छोड़ सकें क्योंकि भारत में मुगलों द्वारा अधीन किये गये क्षेत्रों का अभी विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण होना शेष था। आगामी वर्षों में उजबेगों तथा मुगलों दोनों को बहुत सी आंतरिक समस्याओं का सामना क़रना पड़ा जिसके कारण वे विस्तार अभियान को आगे न बढ़ा सके। अब्दुल्ला खां के उद्भव (1560-98) के साथ मुगल-उजबेग संबंधों के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात हुआ क्योंकि अब्दुल्ला खां ने अकबर के साथ व्यापक संपर्कों को स्थापित करने का प्रयास किया।

7.3.2 अकबर

अकबर के शासन के दौरान मुगल-उजबेग संबंधों का तीन चरणों में– (1) 1572-1577, (2) 1583-89, तथा (3) 1589-98, विवेचन किया जा सकता है।

प्रथम चरण (1572-1577)

अब्दुल्ला द्वारा 1572 ई० तथा 1577 ई० में दो दूत मण्डल भेजे गये। इन दूत मण्डलों का उद्देश्य न तो अकबर से सैनिक सहायता प्राप्त करना था और न ही ईरानी साम्राज्य के विरुद्ध किसी गठबंधन को बनाने की संभावना खोजना था। बदखशां तथा कंधार जैसे क्षेत्रों में रुचि रखने वाले अब्दुल्ला खां की योजनाओं को लेकर उसके लिए यह स्वाभाविक था कि

वह अकबर के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों को विकसित करने के लिए प्रयास करे और इस प्रकार वह इस ओर से खतरे को टाल सकता था।

जानकारी प्राप्त करने एवं सांत्वना देने वाले इन दो दूत मण्डलों को निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए भेजा गया–

अ) ईरान तथा कंधार के प्रति अकबर के दृष्टिकोण का आकलन करने हेतु,

ब) बदखशां के संदर्भ में अकबर की सामान्य नीति का पता लगाने, तथा यदि संभव हो तो

स) बदखशां के विषय में अकबर को अपनी स्वयं की योजनाओं के बारे में गलतफहमी में रखना।

उत्तर-पश्चिमी सीमा पर मिर्जा हकीम (काबुल का शासक) के विद्रोहों के कारण और मिर्जा हकीम की ईरान के शासक शाह इस्माइल द्वितीय के साथ मित्रता के कारण भी अकबर को यह भय हुआ कि कहीं अब्दुल्ला खां, मिर्जा हकीम तथा शाह इस्माइल द्वितीय के बीच त्रिपक्षीय गठबंधन न बन जाये। दूसरे, अकबर बाहय मामलों में स्वयं को उलझाना नहीं चाहता था और इन्हीं कारणों से अकबर ने भी अब्दुल्ला खां के प्रति मित्रतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। अब्दुल्ला ने 1578 ई० में पुनः अकबर के पास अपना एक दूत भेजा। ईरान पर संयुक्त तौर पर आक्रमण करने के प्रस्ताव को अकबर ने मानने से इंकार कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि अब्दुल्ला की इस पत्र के प्रति प्रतिक्रिया सकारात्मक न थी क्योंकि आगामी एक दशक तक उसने मुगल दरबार में अपना कोई दूत नहीं भेजा।

1577 ई० से अब्दुल्ला खां तथा अकबर की क्रमशः स्थितियों में हुए परिवर्तन को देखा जा सकता है जिसके कारणवश एक दूसरे के प्रति उनकी नीतियों में परिवर्तन हुआ। 1583 ई० तक अब्दुल्ला खां ने संपूर्ण ट्रांसऑक्सियाना को विजित कर लिया और उसने अपने परिवार के उन सभी सदस्यों, जो उसके विरोधी थे, की तरफ से खतरा टलवा दिया था। 1583 ई० में अपने पिता की मृत्यु के बाद वह खान भी बन गया और अब वह मुस्लिम जगत में अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों से प्रतियोगिता कर सकता था। अब्दुल्ला ने 1584 ई० में बदखशां को जीत लिया और दो मिर्जाओं अर्थात मिर्जा शाहरुख तथा मिर्जा हकीम को यह क्षेत्र छोड़ना पड़ा। अब अब्दुल्ला ने अपनी स्थिति को मजबूत करने के साथ ही अकबर के प्रति एक कड़ा एवं मांग करने वाला दृष्टिकोण अपनाना शुरू कर दिया और अकबर का स्वयं का दृष्टिकोण सुलह-समझौते वाला बनने लगा।

MAADHYAM IAS

इस समय तक अकबर की मुश्किलें और बढ़ीं। कश्मीर तथा गुजरात में विद्रोह हुए और काबुल, सवाद तथा बाजौर में आदिवासियों के विद्रोह हुए। मिर्जा हकीम (1585 ई०) की मृत्यु हो जाने के बाद उत्तर-पश्चिमी सीमा और भी असुरक्षित हो गई। ईरानी साम्राज्य भी असफल एवं अयोग्य तथा अर्ध-अंधे शासक खुदाबन्दा (1577-1588 ई०) के अधीन कमजोर पड़ गया और साम्राज्य ऑटोमनों के आक्रमणों तथा कुलीनों के आंतरिक कलहों के कारण बिखर गया था।

दूसरा चरण (1583-1589 ई०)

कई वर्षों बाद अब्दुल्ला ने पुनः अपनां एक दूत 1586 ई० में अकबर के पास भेजा। अकबर ने इसका प्रत्युत्तर हकीम हुमेम को 1586 ई० में अपने दूत के रूप में भेजकर दिया। इसकी व्याख्या करना बड़ा मुश्किल है कि अब्दुल्ला ने एक समय में ही दो अलग-अलग पत्रों को भेजने का निर्णय क्यों लिया। फिर भी इन पत्रों को मात्र कल्पित मानकर नहीं छोड़ा जा सकता क्योंकि अकबर ने अपने पत्र में उन सभी प्रश्नों का उत्तर दिया जिनको इन दोनों पत्रों में अलग-अलग उठाया गया था। अब्दुल्ला के लिखित एवं मौखिक संदेश के स्तर से यह स्पष्ट है कि इस दूत को भेजने का उद्देश्य ईरान के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए अकबर का सहयोग प्राप्त करना न था अपितु अकबर को ईरान के शासक को कोई भी सहायता भेजने से रोकना था। अब्दुल्ला का कहना था कि उसने 1578 से 1585 तक अकबर के सभी पत्र व्यवहार को इसलिए बंद कर दिया था क्योंकि "अकबर ने अधिमनोविज्ञानीय धर्म तथा जोगियों का व्यवहार धारण कर लिया था और वह पैगम्बर

के धर्म से भटक गया था।" अकबर ने अपने दूत हकीम हुमेम के माध्यम से भेजे गये उत्तर में यह कहा कि यह "कुछ निश्चित विरोधी लोगों की जालसाजी एवं आरोपण मात्र है।"

तीसरा चरण (1589-98)

अब्दुल्ला के दरबार से अहमद अली अतालिक का भेजा जाना उजबेग-मुगल संबंधों में तीसरे चरण का प्रारंभ था। अब्दुल्ला ने अपने दूत के माध्यम से जो पत्र भेजा था उसमें अब्दुल्ला ने मित्रता करने की पेशकश की और पारस्परिक एकता की नींव को मजबूत करने तथा दोनों के बीच हिन्दूकुश को सीमा बनाने के लिए प्रयत्न करने हेतु इस दूत को भेजा। अकबर ने 1598 ई० में कंधार की विजय के बाद ही शांति के इस प्रस्ताव को औपचारिक तौर पर स्वीकार किया। अकबर के प्रति अब्दुल्ला द्वारा अपनाये जाने वाले सुलह-समझौते के इस दृष्टिकोण के कुछ सम्भावित कारण थे—

1) बदखशां के शासक का पौत्र मिर्जा शाहरुख तथा मिर्जा हकीम के पुत्र भारत आए और अकबर स्वयं काबुल में रुका रहा।

2) 1589 ई० से ईरान की स्थिति में सुधार होना प्रारंभ हो गया था। शाह अब्बास ने ऑटोमन शासकों के साथ एक अपमानजनक संधि इसलिए की क्योंकि वह उजबेगों से निबटना चाहता था और उसने उजबेगों के विरुद्ध अकबर की सहायता के लिए एक पत्र भेजा।

3) कज्जाकों के साथ अब्दुल्ला के तनावपूर्ण संबंधों ने एक नया मोड़ लिया। इस समय कज्जाकों एवं रूस के जारों के बीच के कूटनीतिक संबंध 1550 से 1599 ई० तक सक्रिय रूप से जारी थे तथा इन कूटनीतिक संबंधों का प्रारंभ तैमूरी शासन के समय 15वीं सदी में हुआ था। उजबेग शासकों ने कज्जाकों तथा खानेत (khanate) को 25 दूत मंडल भेजे जिनमें से 6 वापसी दूत मंडल थे (जिनमें जेन किंगस्न का भी था) लेकिन कज्जाकों ने उनको कोई विशेष महत्व नहीं दिया। दोनों के बीच संबंध अच्छे नहीं थे और उनको आक्रामक कूटनीतिक आर्थिक संबंधों की संज्ञा दी जा सकती थी। रूस के द्वारा कजान, अस्तरखान तथा साइबेरिया को जीत लिए जाने के बाद कज्जाक तथा रूसियों के बीच वाणिज्य तथा व्यापार के वे केन्द्र नष्ट हो गये थे जिनकी स्थापना तैमूर के द्वारा की गई थी। इसी प्रकार कज्जाक क्षेत्र को लेकर रूस के जार एवं खान के बीच के संघर्ष ने कज्जाकों के पक्ष में संतुलन बना दिया क्योंकि उनके शासक तवक्कुल ने 1594 ई० में अपने दूत मौहम्मद को रूस भेजा जो वहाँ से न केवल सशस्त्र सेना साथ लेकर आया अपितु जार से कज्जाकों को पूर्ण कूटनीतिक सुरक्षा प्रदान करने का वचन भी प्राप्त किया।

4) अब्दुल्ला खां के पुत्र अब्दुल मोमिन के विद्रोह से उसकी स्थिति और बिगड़ गई। सन् 1592 ई० में उसने दीन मौहम्मद (अब्दुल्ला खां का भतीजा) को यह सलाह देते हुए **निशान** भेजे कि उसे कंधार को जीतने का विचार छोड़ देना चाहिए क्योंकि अकबर के साथ यह समझौता हो चुका है कि हिन्दूकुश एवं कंधार को दोनों राज्यों के बीच सीमा निर्धारण का आधार माना जाना चाहिए।

इन परिवर्तित परिस्थितियों में अकबर को प्रोत्साहन मिला और वह अब्दुल्ला खां के आक्रामक इरादों के प्रति भी पूर्णतः सजग था। इसी कारण से अकबर स्वयं पंजाब पहुंचा और 1589 ई० से कंधार पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा। अकबर ने कंधार जीत लिया और अंततः वह मिर्जाओं को भारत वापस लाने में सफल हो गया। कंधार की विजय के बाद अकबर ने अब्दुल्ला खां के साथ अपने संबंधों को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता को महसूस किया। कंधार पर अधिकार करने के बाद से ही मुगल सेनायें गर्मसीर तथा जमींदावर पर अधिकार करने के लिए उजबेगों के साथ सशस्त्र संघर्ष में अब्दुल्ला के साथ व्यस्त थीं इस कारण अब्दुल्ला के साथ सामान्य संबंध बनाना और भी आवश्यक हो गया था। सन् 1594 ई० में ऑटोमन सम्राट सुल्तान मुराद द्वितीय ने ईरानी क्षेत्र पर आक्रमण करने के लिए सहयोग करने हेतु अब्दुल्ला के पास एक पत्र भेजा। ऑटोमन उजबेग संभावित गठबंधन के भय ने भी अकबर को और सजग कर दिया किंतु

उजबेगों तथा ऑटोमन साम्राज्य के बीच कोई सैनिक गठबंधन इस कारण न हो सका क्योंकि उजबेग पत्रवाहक तब तक ऑटोमन दरबार नहीं पहुँच पाया था। इसी बीच ऑटोमन शासक सुल्तान मुराद तृतीय का 1595 ई० में देहांत हो गया।

लेकिन उजबेगों का भय निरंतर बना रहा क्योंकि अब्दुल्ला ने नये ऑटोमन शासक मौहम्मद के साथ पत्र व्यवहार प्रारंभ कर दिया था और ईरान पर संयुक्त आक्रमण करने का प्रस्ताव भी रखा। कंधार पर अधिकार करने के बाद ख्वाजा अशरफ नक्शबंदी के माध्यम से अकबर ने तुरंत एक दूत भेजने की आवश्यकता को महसूस किया और उसने दोनों राज्यों की सीमाओं के रूप में हिन्दूकुश को स्वीकार करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। इन संदेशों को साथ ले जाने वाले दूत की भेंट अब्दुल्ला से सितंबर 1597 ई० में करशी में हुई। अब्दुल्ला ने मुगल दूत के साथ अपने संदेश वाहक के रूप में मीर कुरैश को भेजा लेकिन उनके भारत पहुंचने से पूर्व ही उजबेग शासक अब्दुल्ला की 1598 ई० में मृत्यु हो गई। भारतीय राजदूत वापस भारत लौट गया किंतु मीर कुरैश भारत पहुंचने में असमर्थ रहा।

बदख्शां और दक्खनी राज्यों के दूत मुगल शासक अकबर को नज़राना भेंट करते हुए

7.3.3 जहांगीर

तूरान के साथ जहांगीर के संबंध मुख्यतः ईरान के साथ उसके संबंधों से सुनिश्चित होते थे। उसकी आत्मकथा से स्पष्ट होता है कि उसका लगाव तूरान के साथ था इसलिए उसकी योजनाओं में तूरान की विजय शामिल न थी। जहांगीर के उजबेगों के साथ संबंधों का अनुमान अंग्रेज यात्री थौमस कोरयाट के उस अनुरोध से जिसमें 1616 ई० में एक सिफारिशी पत्र के लिए कहा गया था, के प्रति जहांगीर के उत्तर से लगाया जा सकता है। "तातार राजकुमारों एवं उसके बीच कोई विशेष मित्रता नहीं है और उसकी सिफारिशें कोरयाट को समरकन्द में मदद नहीं कर सकेगी।"

जहांगीर ने अपने शासनकाल के प्रथम दशक में उजबेगों के साथ कोई सक्रिय संबंध नहीं बनाये। उसने केवल ऐसे प्रयासों पर ही ध्यान दिया जो उसकी सीमाओं पर प्रसारवादी योजनायें थी। जहांगीर की उजबेगों के प्रति इस उदासीनता में तब परिवर्तन हुआ जबकि शाह ने अपने दूत जैनुल बेग के द्वारा कंधार के प्रश्न को उठवाया। फरवरी 1621 ई० में मीर बारका को एक "अति गोपनीय उद्देश्य" से एक दूत के रूप में उजबेग शासक इमाम कुली के पास भेजा गया और इसके बदले उजबेग शासक ने अपने दूत को नूरजहां बेगम के पास भेजा। इमामी कुली के एक गोपनीय संदेश के साथ उजबेग संत अब्दुर रहमान ख्वाजा के अधीन दूतमंडल भेजा गया। इस प्रतिनिधि मंडल का जहांगीर ने उत्साह पूर्वक स्वागत किया क्योंकि इस संदेश में ईरान की आलोचना की गई थी और ईरानियों के विरुद्ध मुगलों के साथ गठबंधन करने की भी सिफारिश की गई। जहांगीर को पवित्र युद्ध (**जेहाद**) में शामिल होने का निमंत्रण दिया गया था और यह इमाम कुली के लिए जरूरी था क्योंकि न केवल इमाम कुली अपने पिता कीं मृत्यु का बदला लेना चाहता था अपितु वह मक्का को जाने वाले उस मार्ग को भी मुक्त करना चाहता था जिस पर ईरानियों का नियंत्रण था। यद्यपि जहांगीर ने टर्की के ऑटोमन सुल्तान के मित्रतापूर्ण प्रस्ताव की अवहेलना की थी लेकिन उजबेग-ऑटोमन संभावित गठबंधन को लेकर वह काफी चिंतित था। सन् 1624 ई० में बगदाद पर अधिकार करने के बाद सुल्तान मुराद ने इमाम कुली के पास ईरान के विरुद्ध गठबंधन बनाने के लिए सकारात्मक उत्तर भेजा और उसको अपने आधीन करने के लिए ईरान को उकसाया। ऑटोमन सुल्तान ने इसी प्रकार का संदेश जहांगीर के पास भेजा और ईरान के विरुद्ध त्रिपक्षीय गठबंधन बनाने पर बल दिया। 1625-26 ई० तक बहुत से पत्रों का आदान-प्रदान हुआ किंतु 1627 ई० में जहांगीर की मृत्यु हो जाने से इस योजना को कार्यान्वित न किया जा सका।

7.3.4 शाहजहां

शाहजहां के सत्तासीन होने के साथ ही उजबेग-मुगल संबंधों में एक नया मोड़ आया। शाहजहां की विदेशनीति के निम्नलिखित तीन लक्ष्य थे–

i) कंधार को पुनः प्राप्त करना,

ii) पूर्वजों की भूमि को पुनः विजित करना, और

iii) दक्खन पर अपने पूर्ण प्रभुत्व को स्थापित करना।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अपने उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वह ईरान तथा ट्रांसऑक्सियाना दोनों समकालीन शक्तियों की मित्रता को इस ढंग से सुनिश्चित करना चाहता था कि जब वह कंधार पर आक्रमण करे तब उसे ईरानियों के विरुद्ध ट्रांसऑक्सियाना की मित्रता का लाभ मिले और जब वह ट्रांसऑक्सियाना पर आक्रमण करे तब ईरान का सहयोग प्राप्त हो। शाहजहां ने शुद्ध कूटनीति का प्रयोग करते हुए नजर मौहम्मद के काबुल पर किये गये आक्रमण को अनदेखी कर अपने एक दूत को बुखारा में इमाम कुली के पास भेजा। इन दूतों के आदान-प्रदान द्वारा ईरान के विरुद्ध एकता पर बल दिया गया। शाहजहां का दूतमंडल सफदर खां के नेतृत्व में गया जो अप्रैल 1633 ई० में वापस लौटा। मीर हुसैन के रूप में दूसरा दूत मई 1637 ई० में गया। शाहजहां ने 1636 ई० में मुराद चतुर्थ को एक पत्र लिखा। इस पत्र में शाहजहां ने कंधार को विजित करने की अपनी इच्छा व्यक्त की और ईरान के विरुद्ध त्रिपक्षीय (मुगल-उजबेग तथा ऑटोमन) गठबंधन बनाने का प्रस्ताव किया। लेकिन इनमें से किसी भी शासक की सहायता के बगैर शाहजहां ने कंधार को विजित करने में सफलता प्राप्त की।

1638 ई० में कंधार पर विजय प्राप्त करने के बाद अब शाहजहां का एक मात्र लक्ष्य अपने पूर्वजों की भूमि ट्रांसऑक्सियाना को विजित करना था। ईरान की सीमाओं से लगे मारूचक पर उजबेगों के आक्रमण के बाद ईरान तथा मुगलों के मध्य मई 1640 ई० में मित्रतापूर्ण संबंध कायम हो गये। बलख पर एक संयुक्त आक्रमण का प्रस्ताव रखा गया किंतु, किसी कारणवश इसको कार्यान्वित न किया जा सका।

इस समय ईरानियों एवं मुगलों के बीच हुए पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है कि मुगलों ने ईरानियों

पर सीमित समर्थन देने के लिए दबाव डाला और इसमें सफलता प्राप्त की जबकि ईरानियों के पत्रों से उनका भय एवं चिंता प्रतिलक्षित होती है। इसी प्रकार की चिंतायें मुगलों के निरुत्साह सहयोगी उजबेगों को भी थी क्योंकि वे भी शाहजहां की प्रसारवादी अभिलाषा को समझ गए थे। शीघ्र ही मुगलों को इसका अवसर प्राप्त हुआ।

इस समय उजबेग साम्राज्य अराजकता के दौर से गुजर रहा था। उजबेगों के लोकप्रिय शासक इमाम कुली की दृष्टि चले जाने के कारण उसने नवम्बर 1641 ई० में अपने भाई नज्र मौहम्मद के पक्ष में पद त्याग दिया। नज्र मौहम्मद के निरंकुश एवं एकछत्र शासन ने कुलीनों को विरोधी बना दिया और वें उसके पुत्र अब्दुल अजीज का समर्थन करने लगे। निराशा के इन क्षणों में नज्र मौहम्मद ने शाहजहां की सहायता प्राप्त करने के लिए प्रयास किये किंतु शाहजहां ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए बल्ख को विद्रोह से बचाने के बहाने से बल्ख पर अधिकार कर लिया। 1646 ई० के प्रारंभ में मुगल सेनाओं ने सफलतापूर्वक बल्ख में प्रवेश किया। नज्र मौहम्मद को ईरान में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। शाहजहां ने इस समय दो पत्र लिखे। एक पत्र नज्र मौहम्मद को बल्ख की विजय की सूचना देते हुए किसी क्षमा याचना या कारण दिये बगैर लिखा और दूसरा पत्र ईरान के शासक शाह अब्बास द्वितीय को बल्ख पर अधिकार करने की सूचना देने के लिए लिखा और इस प्रकार बल्ख विजय मुगलों द्वारा समरकंद एवं बुखारा को विजित करने की पृष्ठभूमि थी। बल्ख विजय को बल्ख के सैयदों को आवश्यक सुरक्षा प्रदान करने के आधार पर उचित ठहराया गया। इस पत्र के द्वारा यह भी संदेश दिया गया कि नज्र मौहम्मद को मक्का भेजा जाये और उसे तूरान न लौटने दिया जाये। ईरानियों ने भी नज्र मौहम्मद के मामले का समर्थन करने में स्वयं ही संकोच किया क्योंकि उनको उसके सफल होने में संदेह था। वास्तव में शाहजहां ने तूरान के मामलों में ईरानियों की तटस्थता सुनिश्चित करने के लिए ईरान को तीन दूत भेजे। फिर भी नज्र मौहम्मद के प्रति ईरानियों का दृष्टिकोण तय करने में यह एक मात्र कारक न था। उसकी सहायता न करने की ईरानियों की अनिच्छा का कारण न केवल नज्र मौहम्मद का हठी चरित्र था अपितु उजबेगों-ईरानियों के मध्य परंपरागत शत्रुता भी थी। ईरान में एक योग्य नेतृत्व के अभाव में भी कोई सुनिश्चित नीति न तैयार हो सकी। ईरान में दूत के पहुंचने से पूर्व ही नज्र मौहम्मद तूरान की ओर चल पड़ा था।

MAADHYAM IAS

बल्ख तथा अन्य क्षेत्रों पर विजय उन पर अधिकार करने की अपेक्षा सहज प्रतीत हुई। कई कारणों से यह विजय कठिन परिस्थितियों में हुई। इन कारकों में जहां तक अपर्याप्त संचार साधन थे वहीं इनमें खराब मौसम, आदमियों पर धन तथा माल के रूप में भारी खर्च एवं स्थानीय जनता की शत्रुता भी शामिल थे। उसे खाली करवाना भी मुगलों के लिए मुश्किल था और यह समान रूप से खाली करना ईरानियों के लिए भी कठिन था। इस प्रकार अक्टूबर 1647 ई० में नज्र मौहम्मद के साथ एक समझौता किया गया।

1650 ई० में शाहजहां ने तूरान के उजबेग शासक अब्दुल अजीज के पास एक दूत भेजा। किंतु तूरान में हुए राजनैतिक पुनर्गठबंधन के कारण अब्दुल अजीज के लिए मुश्किल स्थिति पैदा हो गई थी। उसके भाई सुभान कुली का समर्थन उसके ससुर अबुल गाजी के द्वारा किया जा रहा था। अबुल गाजी ख्वारिज़्म का शासक और ईरान का पक्का समर्थक था। शाहजहां ने अब्दुल अजीज पर काबुल पर आक्रमण करने के लिए दबाव डाला। शाहजहां के द्वारा ऑटोमन शासकों मुराद तृतीय तथा मौहम्मद चतुर्थ के साथ गठबंधन करने के लिए किए गए प्रयास असफल रहे। ऑटोमन शासकों द्वारा शाहजहां को भेजे गये पत्रों का अभिप्राय शाहजहां को पसंद नहीं आया और न ही यह पारस्परिक समझ के लिए उत्साहवर्द्धक था। बल्ख पर मुगलों के अधिकार को भी ऑटोमन शासकों ने पसंद नहीं किया। इस तरह मुगल-ऑटोमन संबंध सुदृढ़ न हो सके।

बोध प्रश्न 2

1) तीसरे चरण में (1589-98 ई०) में उजबेग-मुगल संबंधों की क्या विशिष्ट विशेषतायें थीं।

....

....

....

....

....

2) उजबेगों के प्रति शाहजहां की नीति के क्या उद्देश्य थे?

....

....

....

....

....

7.4 ईरान के साथ संबंध

मुगल-उजबेग संबंधों से आपको भली-भांति परिचित कराने के पश्चात अब हम ईरान के साथ मुगल संबंधों की प्रकृति की विवेचना करेंगे।

7.4.1 बाबर तथा हुमायूं

शाह इस्माइल के साथ बाबर के संबंधों की विवेचना हम खंड 1 की इकाई 1 में कर चुके हैं। शाह इस्माइल की मृत्यु (1524 ई०) एवं उसके पुत्र शाह तहमस्प (1524-76 ई०) के सिंहासनारूढ़ होने के बाद में बाबर ने शाहइस्माइल की मृत्यु पर एक शोक संदेश तथा तहमस्प के सिंहासनारूढ़ होने पर बधाई संदेशों के साथ एक दूत मंडल को ख्वाजगी असद के नेतृत्व में नये शाह के पास भेजा और वह ईरानी दूत सुलेमान आगा के साथ वापस लौटा।

इसी बीच हसन चैलेबी तथा उसके छोटे भाई के अधीन दो ईरानी दूतमंडल एक के बाद एक मुगल दरबार पहुंचे। बाबर ने भी उत्तर में अपने दूत को भेजा। इन पत्रों के उद्देश्यों तथा मौखिक संदेशों के आदान-प्रदान के कोई भी लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

MAADHYAM IAS

बाबर की मृत्यु के बाद (1530 ई०) हुमायूं के भाई कामरान के पास काबुल का राज्य था तथा कंधार और लाहौर तक ईरानियों के विरुद्ध मजबूती से क्षेत्रीय प्रसार कर लिया गया था। 1534-35 ई० में ईरानी राजकुमार साम मिर्जा तथा उसका महत्वाकांक्षी कुलीन अघजीवर खां कामरान तथा कंधार के गवर्नर ख्वाजा कला के साथ संघर्ष में व्यस्त थे। किंतु अघजीवर खां एक मुठभेड़ में मारा गया तथा साम मिर्जा हिरात वापस लौट गया। इस घटना के कारण शाह तहमस्प ने मुगलों के विरुद्ध 1537 ई० में सात से आठ हजार सैनिकों के साथ एक सैनिक अभियान का नेतृत्व किया। एक समकालीन इतिहासकार का मानना है कि गवर्नर ख्वाजा कलां के द्वारा स्थिति का मूर्खतापूर्ण ढंग से संचालन करने से उसे कंधार के किले को शाह के सम्मुख समर्पण करना पड़ा जिसके कारण आसपास के क्षेत्र भी ईरानियों के अधीन हो गये। जिस समय शाह तहमस्प अजरबैजान में विद्रोह से घिरा था और उसकी पश्चिमी सीमाओं पर तनाव बढ़ रहा था तब कामरान ने सन् 1537-38 ई० में सरलता से कंधार को पुनः विजित कर लिया।

तेरह वर्ष (1530-43) हुमायूं ने ईरान के साथ सक्रिय संपर्क बना कर नहीं रखा था। जब उसको 1543 ई० के मध्य में भारत से खदेड़ दिया गया था तब हुमायूं ने जनवरी 1544 ई० में शाह को एक पत्र लिखा। हुमायूं तथा तहमस्प एवं उसके अधिकारियों के बीच जिन पत्रों का आदान-प्रदान हुआ व भारत-ईरानी संबंधों के विभिन्न चरणों पर प्रकाश डालने के लिए उपलब्ध हैं। सीस्तान के ईरानी गवर्नर अहमद सुल्तान शामलू ने शाही भगोड़े को आमंत्रित किया और हुमायूं ने ईरान में अपने पचास हताश वफादारों सहित शरण ली। ऐसा उसने बैरम खां की सलाह पर किया। तहमस्प को स्वयं अपने विद्रोही भाइयों के हाथों हार का सामना करना पड़ा था। उसने हुमायूं की मुश्किलों के प्रति सहानुभूति दिखायी।

हुमायूं ने सितंबर 1545 ई० में ईरानी सेनापति बुदग खां से कंधार छीन लिया। यद्यपि दोनों पक्षों के बीच संबंधों में अस्थायी तौर पर तनाव पैदा हो गया था जिससे यह अनुमान लगाया जाने लगा था कि शिया धर्म को धारण करने की मांग से दरार पैदा हुई लेकिन दोनों ओर से कुल मिलाकर सौहार्दपूर्ण संबंधों को बनाकर रखा गया। शाह तहमस्प ने वलंद बेग तक्कालूर की अधीनता में 1546 ई० में काबुल की विजय पर हुमायूं को बधाई देने के लिए दूतमंडल भेजा। वापस लौटते दूत के माध्यम से हुमायूं ने अपने पत्र में प्रसिद्ध ईरानी चित्रकार ख्वाजा अब्दुस समद तथा अन्य कुछ प्रतिभावान व्यक्तियों को अपनी सेवा में शामिल करने हेतु निमंत्रण भेजा। हुमायूं ने अपने दूत ख्वाजा जलालुद्दीन महमूद (1548 ई० में भेजा गया) को वापस बुला लिया। एक अन्य दूत काजी शेख अली को 1549 ई० में हुमायूं ने बहराम मिर्जा की मृत्यु पर शोक संदेश देने तथा हुमायूं के विरुद्ध उसके भाई कामरान मिर्जा के विद्रोह को वर्णित करने के लिए ईरान भेजा। शाह तहमस्प का दूत कमालुद्दीन उलुग बेग उसका संदेश लेकर आया। हुमायूं को सलाह दी गई कि कामरान के प्रति विनम्रता का रवैया अपनाये और जब भी आवश्यक होगा तब हुमायूं को सैनिक सहायता प्रदान करने का प्रस्ताव रखा गया। तहमस्प की ओर से अंतिम दूतमंडल 1553 ई० की प्रारंभिक गर्मियों में आया और इसके बाद हुमायूं भारत में अपने प्रभुत्व को स्थापित करने तथा सुदृढ़ करने में व्यस्त हो गया।

7.4.2 अकबर

1556 ई० में हुमायूं की मृत्यु से पुनः कंधार की समस्या पैदा हो गई। शाह द्वारा कंधार पर अधिकार कर लिये जाने से ईरान के साथ संबंधों में तनाव पैदा हो गया। यही कारण था कि तहमस्प ने 1562 ई० में अकबर के पास सईद बेग सफवी के नेतृत्व में जो दूत मंडल भेजा (इसको हुमायूं की मृत्यू पर शोक संदेश तथा अकबर के सत्तासीन होने पर बधाई देने के लिए भेजा गया था) उसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। शाह तहमस्प ने सुल्तान महमूद भक्करी को कुलीन वर्ग में शामिल करने के लिए दो सिफारिशी पत्र लिखे किंतु उनकी भी अवहेलना की गई। जैसा कि अबुल फजल ने लिखा है कि राज्य नियुक्तियां गुणों के आधार पर होती थीं न कि सिफारिशों के आधार पर। उस समय भी कोई उत्तर न दिया गया जबकि 1572 ई० में खुदाबंदा (ईरानी सिंहासन का दावेदार) ने यार अली बेग को अकबर के पास उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर होने वाले युद्ध में उसके समर्थन की आशा के साथ भेजा। तहमस्प की मृत्यु के बाद (मई, 1576 ई०) शाह इस्माइल द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने हकीम मिर्जा के साथ मधुर संबंध बनाकर रखे। नवम्बर 1577ई० में खुदाबंदा के सिंहासनारूढ़ होने पर ईरान विद्रोह की चपेट में आ गया। 1583 ई० में राजकुमार अब्बास ने मुर्शिद तवरीजी को अकबर के पास खुरासान प्रांत में उसकी स्थिति को मजबूती प्रदान करने हेतु भेजा। किंतु कंधार के हाथ से निकल जाने के कारण अकबर ईरानियों से नाराज था। अकबर ने याचिका की अवहेलना की तथा अबुल फजल ने इस याचिका को "एक विद्रोही पुत्र की अपने पिता के विरुद्ध याचिका" की संज्ञा दी। सन् 1591ई० में शाह अब्बास ने एक बार फिर यादगार रुमल के नेतृत्व में एक दूतमंडल को अकबर के पास उस समय भेजा जबकि उसको उजबेगों से एक बड़े खतरे का सामना करना पड़ा। नवंबर 1594 ई० में जियाउद्दीन नामक एक और दूत भेजा गया। पुनः मौन रखा गया तथा रिश्तों में रूखापन 1594 ई० तक बना रहा जब तक कि मुगल सेनाओं ने कंधार में प्रवेश नहीं किया तथा जमींदावर एवं गमसीर को विजित नहीं कर लिया।

1596 ई० में ख्वाजा अशरफ नक्शबंदी के माध्यम से अकबर ने प्रथम दूत को शाह अब्बास के पास भेजा। इस पत्र में अकबर ने अपनी कंधार विजय को यह कहकर उचित ठहराया कि शाह के प्रति मिर्जाओं की वफादारी संदिग्ध थी। पहले पत्रों की प्रति अपने मौन रहने की व्याख्या यह कह कर की कि वह उजबेग दूतों के रहते शाह की समय पर मदद करने में असफल रहा। 1598 में शाह अब्बास ने मनुचिहिर बेग को दूत के रूप में वापस लौटते भारतीय दूत के साथ भेजा। एक अन्य दूत मिर्जा अली बेग ने अकबर को कंधार किले के अलावा शेष सभी किलों को विजित करने की सूचना इस आशय के साथ दी कि अकबर उसको लौटा देगा। 1598 ई० में अब्दुल्ला खां की मृत्यू हो जाने के पश्चात अपनी

पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित समझ अकबर पंजाब से आगरा लौट आया। सन् 1602 ई० में मनुचिहिर बेग को अकबर द्वारा हटाये जाने के बाद शाह के पास मुगल दूत के रूप में मासूम भक्करी को भेजा गया। शाह ने दो पत्र भेजे एक अकबर को तथा दूसरा हमीदा बानू बेगम को। अकबर के अंतिम वर्षों में जहांगीर के विद्रोह के बादल छा गए। फराह, खुरासान तथा जमींदावर के सेनापतियों ने अवसर का लाभ उठाते हुए बुस्ट पर अधिकार कर लिया। यद्यपि कंधार के मुगल गवर्नर शाह बेग ने कड़ा प्रतिरोध किया था। शहजादा सलीम ने अकबर के जीवित रहते शाह अब्बास के साथ उपहारों के द्वारा स्वतंत्र मित्रतापूर्ण संबंध बनाकर रखे। इनके बावजूद अकबर के शासन काल के अंतिम दिनों में (22 अक्टूबर, 1605 ई०) ईरान के द्वारा कंधार क्षेत्र में आक्रमण तथा उसके बाद फरवरी, 1606 ई० में किये गये ईरानियों के संगठित आक्रमण के कारण दोनों शासकों के बीच शत्रुतापूर्ण रवैये की शुरुआत हुई। खसरों के विद्रोह के बावजूद भी ईरानी आक्रमण असफल साबित हुआ।

7.4.3 जहांगीर

बधाई एवं शोक संदेश देने वाला प्रथम ईरानी दूतमंडल मुगल दरबार में मार्च 1611 ई० में पहुंचा। यह दूतमंडल अगस्त 1613 ई० में मुगल दूत खान आलम के साथ ईरान वापस लौटा। शाह अब्बास ने कई बड़े एवं छोटे दूतमंडलों की मुगल दरबार में भेजा। इस प्रकार ऐसे अनेक राजनैतिक सौदेबाजियाँ करने वाले दूतमंडलों का आदान प्रदान हुआ। दोनों देशों के मध्य छुट-पुट वस्तुओं जैसे, पांडुलिपियों, कलाकृतियों, वैद्ययंत्रों तथा अन्य ऐसी अनोखी वस्तुओं का भी आदान प्रदान हुआ। कई बार शाह अब्बास ने जहाँगीर को कुछ विशिष्ट वस्तुएँ वेनिस एवं यूरोप से मंगवाकर भी भिजवाईं। शैरले भाइयों के नेतृत्व में एक दूतमंडल जून 1615 में पहुँचा। इससे पूर्व एवं बाद में भी इसी तरह के कई दूतमंडल मुगल दरबार में भेजे गये। किंतु जैनुल बेग के नेतृत्व में दूतमंडल के साथ पुनः कंधार समस्या को उठाया गया। लेकिन जहांगीर ने अपने सलाहकारों के साथ मशवरा करने के बाद ईरानियों को कंधार देने से इंकार कर दिया क्योंकि ऐसा करने पर इसे कमजोरी का प्रतीक माना जाता। जहांगीर का विश्वास जीत कर एवं मुगलों की थोड़ी लापरवाही का अनुमान कर शाह अब्बास ने 11 जून, 1622 ई० को कंधार पर अधिकार कर लिया। यद्यपि जहांगीर को अपनी सीमाओं पर होने वाले षड्यंत्रों की जानकारी थी किंतु बहुत से अन्य कारणों से वह कंधार को सुरक्षित न रख सका। दरबार की राजनीति, जहांगीर का गिरता स्वास्थ्य, नूरजहां एवं खुर्रम के बीच संबंधों में दरार, लाडली बेगम (नूरजहां के प्रथम पति से उसकी पुत्री) के जहांगीर के पुत्र शहर्यार के साथ विवाह को लेकर राजनैतिक शक्तियों का नया ध्रुवीकरण और खुर्रम (शाहजहां) का विद्रोह ऐसे कई कारण थे जिससे कंधार से हाथ धोना पडा।

MADHYAM IAS

शाह अब्बास ने कंधार को लेकर जहांगीर के क्रोध को दो दूतमंडल भेजकर शांत करने का प्रयास किया। एक अन्य दूतमंडल अक्टूबर 1625 ई० में मौहम्मद आगा के नेतृत्व में आया। जहांगीर ने इस पत्र का उत्तर कंधार के मामले पर कुटनीतिक मौन रखते हुए पुराने मित्रतापूर्ण संबंधों के लाभदायक स्वीकार्य के साथ दिया। अक्टूबर 1626 ई० में नूरजहां बेगम के पत्र सहित ईरान को जहांगीर द्वारा चार पत्र भेजे गये।

7.4.4 शाहजहां

चार दशक तक सफलतापूर्वक शासन करने के बाद शाह अब्बास की मृत्यु जनवरी, 1629 ई० में हो गई और नये एवं अनुभवहीन शासक शाह शफी मिर्जा ने अधीन ईरान अनिश्चिताओं के भंवर में फंस गया। शाहजहां कंधार पर पुनः अधिकार करने के लिए इस अवसर का लाभ उठाने के लिए उत्साहित था और शाहजहां ने न केवल ईरान के विद्रोही सरदार शेरखान का गर्मजोशी से स्वागत किया अपितु ईरान पर भारत, तुरान एवं टर्की की ओर से संयुक्त आक्रमण करने का प्रस्ताव मुराद चतुर्थ को लिखे पत्र में किया। शफी ने मौहम्मद अली बेग इस्फहानी के नेतृत्व में दूतमंडल, शाहजहां के द्वारा 20 अक्टूबर, 1629 ई० को मीर बरकी के नेतृत्व में भेजे गये दूतमंडल के उत्तर में भेजा।

शाहजहां की उत्तर पश्चिमी सीमा के प्रति नीति का मुगल संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। कंधार में तीन व्यर्थ के सैनिक अभियानों तथा बल्ख एवं बदख्शां के अभियान में न

केवल धन की बर्बादी हुई अपितु यह मुगल सम्मान के लिए भी हानिकारक साबित हुए। बंदरगाह से होने वाले व्यापार में ईरान के साथ शत्रुता से रुकावट से बहुत प्रकार के नुकसान हुए। कंधार की विजय सरल करने के लिए शाहजहां ने ईरानी गवर्नर अली मर्दान को यह वायदा करके लालच दिया कि भविष्य में वह कंधार उसे दे देगा किंतु इस प्रस्ताव को उसने मानने से इंकार कर दिया। फिर भी अली मर्दान ने मुगलों का सामना करने के लिए सुरक्षात्मक उपाय किए किंतु उसके शत्रुओं ने शाह सफी को उसके विरुद्ध यह कहकर उकसाया कि अली मर्दान विद्रोह कर सकता है। अली मर्दान पर शाह ने अपने दरबार में उपस्थित होने के लिए दबाव डाला और उसके सभी तर्कों को मानने से इंकार किया तब अली मर्दान शाह के प्रति वफादारी दिखाने की अपेक्षा अपना जीवन सुरक्षित करने के लिए मुगलों के साथ मिल गया।

26 फरवरी, 1638 ई० को मुगल सेनाओं ने कंधार में प्रवेश किया और किलिज खां को इसका गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। कंधार पर अधिकार करने के पश्चात् शाहजहां ने शाह सफी को सांत्वना देने का प्रयास किया और कंधार के सालाना राजस्व के बराबर धन की अदायगी करने की पेशकश की। दूसरे मोर्चे पर शाह सफी ने ऑटोमनों के साथ सितंबर 1639 ई० में शांति समझौता किया। इस समझौते से संतुष्ट हो शाह सफी ने मुगलों के साथ युद्ध करने की तैयारी प्रारंभ कर दी। लेकिन सैनिक अभियान प्रारंभ करने से पूर्व ही सन् 1642 ई० में शाह सफी की मृत्यु हो गई। शाह अब्बास द्वितीय को उसके उत्तराधिकारी के रूप में सिंहासन पर बैठाया गया और शाह अब्बास अभी 10 वर्ष का बालक मात्र था तथा शाहजहां ने तुरंत बधाई देने के लिए एक दूतमंडल को भेजा तथा अपनी दृष्टि तूरान पर लगा दी। दूसरी ओर ईरान कंधार पर अधिकार करने को उत्सुक था। ऑटोमनों के साथ हाल में की गई संधि तथा मुगल गवर्नर की निष्क्रियता के कारण कंधार में व्याप्त अराजकता ने कंधार पर ईरानियों की विजय योजना को और भी सुनिश्चित कर दिया। शाहजहां की सलाह के बावजूद भी मुगल कुलीन सर्दियों में ऊंची भूमि की ओर प्रस्थान करने पर आमादा थे और अधिक आयु वाला मुगल गवर्नर कंधार की रक्षा करने में असफल रहा। इस तरह शाह ने सरलता से दिसंबर, 1648 ई० में कंधार पर अधिकार कर लिया। मई 1649 ई० में औरंगजेब ने मुगल वजीर सादुल्लाह के साथ समीप के स्थानों पर अधिकार किया। ईरानी दूत शाहवर्दी जुलाई, 1649 ई० में मुगल दरबार में आया और उसने कंधार, जमींदावर तथा अन्य क्षेत्रों को विजित करने के कारणों को बताने का प्रस्ताव रखा और मुगल दरबार में उसकी व्याख्या को सुना गया। लेकिन शीघ्र ही कंधार पर अधिकार करने के लिए दाराशिकोह तथा औरंगजेब के नेतृत्व में दो सैनिक अभियानों को भेजा गया। दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों तथा आपूर्ति मार्ग में रुकावट पैदा करने के कारण उनका उस क्षेत्र में ठहरना मुश्किल हो गया। यदि बरनियर का विश्वास किया जाये तब यह माना जाता है कि मुगल सेना के ईरानी सैनिक भी अपने देश के सैनिकों के विरुद्ध पूर्ण उत्साह से नहीं लड़े। लुटेरे उजबेगों ने गजनी पर आक्रमण कर समस्या को और बढ़ाया। जबकि उनको भारी घूस दी गई थी। दारा एक सक्षम सेनानायक न था। इसलिए 1656 ई० में शाहजहां के द्वारा कंधार के लिए चतुर्थ सैनिक अभियान को त्याग दिया गया। एक समकालीन इतिहासकार ने ठीक ही कहा है कि कंधार अभियान का परिणाम तीस से चालीस हज़ार लोगों की मृत्यु एवं तीन करोड़ पांच लाख रुपयों के व्यय के रूप में हुआ।

कंधार के अतिरिक्त मुगलों एवं ईरानियों के बीच दक्खन भी संघर्ष का कारण बना रहा। दक्खन के शिया शासक वंश (गोलकुण्डा के कुतुबुल मुल्क तथा अहमदनगर के शिया निजाम) मुगल खतरे तथा अपनी "पारस्परिक सांप्रदायिक एकता" के कारण ईरानियों की तरफ हो गये। 1573 ई० से अकबर के द्वारा दक्खन के राज्यों के साथ कायम किये गये कूटनीतिक संबंधों तथा आगामी विजयों ने मुगल-दक्खन संबंधों की आधारशिला रखी। जहांगीर के अधीन अहमदनगर तथा बीजापुर पर किये गये आक्रमण का नेतृत्व शाहजहां एवं खान खानान ने किया तथा इस आक्रमण से बाध्य होकर दक्खनी राज्यों ने ईरानियों से मध्यस्थता का अनुरोध किया। कुली कुतबशाह (1590-1611 ई०) तथा निजामशाह के मुख्य सेनापति मलिक अम्बर के दूतों ने शाह अब्बास से सहानुभूति के लिए अनुरोध किया। शाह अब्बास इस सीमा तक गया कि उसने दक्खनी राज्यों की सुरक्षा के बदले ईरान के कछ भाग दे देने तक का प्रस्ताव रखा। लेकिन 1617 ई० तक दक्खनी राज्यों एवं मुगलों

के मध्य संबंध तनावपूर्ण हो गये जो कि शाह के अप्रशंसनीय हस्तक्षेप के कारण नहीं अपितु मुगलों की सुलह एवं बल प्रयोग की नीति के कारण संभव हुआ।

7.5 दक्खनी राज्य एवं ईरानी-मुगल दुविधा

मुगल-ईरान संबंधों में एक दशक तक कूटनीतिक ठहराव रहने के पश्चात उस समय एक बार फिर तीव्रता आ गई जबकि दक्खन समस्या परिपक्व हुई। 1633 ई० में मुगलों द्वारा अहमदनगर पर अधिकार कर लिये जाने पर गोलकुण्डा हताश हो गया। शाहजहां ने 1636 ई० में कुतुब शाह तथा आदिल शाह को सुन्नी तरीके से **खुतबा** पढ़ने तथा ईरान के शाह का नाम **खुतबे** में सम्मिलित न करने के लिए दबाव डाला। गोलकुण्डा का शासक दबाव में आ गया। 1637 ई० में शाह सफी ने अहमद बेग कुर्ची को आदिल शाह के पास दूत के रूप में जाने के लिए नियुक्त किया। लगातार दूतों के आदान-प्रदान सहित कुतुब शाह ने अपने भतीजे के उच्च पदों (तब वह ईरानी दरबार से संबंधित था) का प्रयोग किया और यदि आवश्यक हो तो उसने सुरक्षित पलायन करने तथा ईरान में शरण लेने का प्रस्ताव रखा। अब्दुल्ला कुतुब शाह ने हकीम-उल-मुल्क को 1641 ई० में ईरान के शासक के दरबार में दूत के रूप में भेजा। मुगल अधिकारियों ने इसका विरोध किया तथा पत्रों के आदान-प्रदान पर रोक लगाने के लिए दबाव डाला। 1650 ई० में एक ईरानी दूत अंग्रेजी जहाज से आया। कंधार को विजित करने के कारण ईरान का शाह लाभदायक स्थिति में था। ईरान-दक्खन संपर्क में इस कारण भी वृद्धि हुई कि ईरान से विस्थापित लोग दक्खनी राज्यों के दरबार में उच्च पदों पर थे। इस प्रकार का उदाहरण हीरों का सौदागर मौहम्मद सईद मीर जुमला था जिसने अपनी मातृभूमि के साथ संबंधों तथा शाह अब्बास द्वितीय के साथ पत्र व्यवहार का हवाला दिया और इस प्रकार के कई अन्य लोग भी थे। अब्दुल्लाह कुतुब मीर जुमला से ईर्ष्या करने लगा तथा मीर जुमला मुगल दरबार में चला गया और अंततः वह मुगल सेवाओं में शामिल हो गया। औरंगजेब दक्खन का गवर्नर था और उसने 1656 ई० में गोलकुण्डा पर इस कारण से आक्रमण किया कि कुतुब शाह ने मीर जुमला के पुत्र को कैद कर रखा था। यद्यपि शाहजहां के आदेश पर आक्रमण को रोक दिया गया किंतु हैदराबाद एवं गोलकुण्डा के दूसरे भागों में भारी तबाही की गई। जबकि कर्नाटक पर भारी तबाही ज़ारी रही तथा औरंगजेब के भयभीत करने वाले दबाव के कारण कुतुबशाह ने ईरानी सहायता प्राप्त करने की कोशिश की।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

ईरान का शाह पहले से ही राजकुमार मुराद बख्श तथा अन्य राजकुमारों एवं कुलीनों के साथ कूटनीतिक संबंध बनाये हुए था। शाहजहां के स्वास्थ्य की गिरती हालत तथा उत्तराधिकार के लिए संभावित युद्ध से उत्साहित होकर शाह ने मुराद के पास सेना भेज दी तथा मुराद ने 20 नवंबर 1656 ई० को स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और शाह अब्बास द्वितीय के पास दो दूतमंडलों को भेजा। शाह ने गोलकुण्डा तथा बीजापुर के शासकों से अपने मतभेदों को खत्म करने तथा मुगल साम्राज्य में व्याप्त अव्यवस्था एवं अराजकता से लाभ उठाने का आग्रह किया। किंतु औरंगजेब की विजय ने इन योजनाओं पर पानी फेर दिया। शाह अब दारा तक की सहायता करने में हिचकिचाने लगा।

औरंगजेब अपने अतीत के अनुभवों के कारण सावधान था और उसने अपनी उत्तर-पश्चिमी सीमाओं या कंधार पर शाह की लालसापूर्ण आक्रामक योजनाओं को कार्यान्वित नहीं होने दिया। फिर भी मुगलों एवं ईरानियों के बीच तनावपूर्ण संबंध जारी रहे।

बोध प्रश्न 3

1) शाह तहमस्प के साथ हुमायूं के संबंधों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

....

....

....

....

2) आप इस मत से कहां तक सहमत हैं कि ईरान के साथ मुगल संबंध कन्धार की समस्या के इर्द-गिर्द घूमते रहे?

....
....
....
....
....
....

3) जहांगीर के शासन काल में मुगल-ईरान संबंधों के मुख्य चरणों पर प्रकाश डालिये।

....
....
....
....
....
....

7.6 औरंगजेब तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा

औरंगजेब की दक्खन राज्यों के प्रति शत्रुता में और वृद्धि उसके भाइयों तथा ईरान के शाह के बीच गुप्त वार्ताओं के कारण हुई। औरंगजेब ने ईरानी गवर्नर जुल्फीकार खां के माध्यम से शाह की स्वीकृति प्राप्त करने की इच्छा की और जुल्फीकार ने 1660 ई० में शाह की आज्ञा के साथ तुरंत एक दूत भेजा। शाह के पत्र में प्राचीन मित्रतापूर्ण संबंधों तथा ईरान के शासकों ने मुगलों की जो सहायता की थी उसका विवरण किया गया था और कंधार विजय के कारणों को भी बताया गया था। यद्यपि दूत का भव्य स्वागत किया गया था किंतु पत्र का उत्तर उत्साहवर्धक न था। मुलतान के गवर्नर तरबियत खां के अधीन एक वापसी दूत मंडल को मित्रतापूर्ण पत्र के साथ भेजा गया जिसमें कंधार विषय को समाप्त पाठ के रूप में माना गया था। लेकिन दोनों शासकों के संबंधों में और गिरावट आयी और दूत की अशिष्टता (जिसने शाह के साथ माजन्दरान जाने से इंकार कर दिया) ने मुगल सम्राट के साथ शक्ति परीक्षण के लिए शाह को एक अवसर प्रदान कर दिया। शाह ने औरंगजेब को जो पत्र भेजा उसमें उसे भाई का हत्यारा तथा उसकी अप्रभावी सरकार के कारण उत्पन्न हुई अव्यवस्था को उद्धृत किया गया था। तरबियत खां के पहुंचने से पूर्व ही शाह के सैनिकों के आक्रमण के लिए प्रस्थान की इच्छा की सूचना औरंगजेब के पास पहुंच चुकी थी। युद्ध के लिए तैयारी प्रारंभ हो गई तथा ईरान के साथ सभी प्रकार के व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिए गए। सूरत के गवर्नर को आदेश भेजा गया कि ईरान को जाने वाले जहाजों को रोक लिया जाये। किंतु 1666 ई० में शाह की मृत्यु के समाचार के कारण खतरा टल गया। लेकिन तरबियत खाँ को शाह के अपमानपूर्ण विचार विनम्रता पूर्वक सुनने के कारण हटा दिया गया और उसकी बात को एक वर्ष तक न सुना गया।

अगला ईरानी शासक शाह सुलेमान (1666-1694 ई०) अपेक्षाकृत अयोग्य था तथा उसके धर्मपरायण पुत्र और उत्तराधिकारी सुल्तान हुसैन में कूटनीतिक एवं राजनैतिक मामलों की समझ कम थी। औरंगजेब कंधार अभियान में निहित समस्याओं से भली-भांति परिचित था। उसने 1688 ई० में हिरात के विद्रोही ईरानी गवर्नर की सहायता की। उसने राजकुमार मुअज्जम को कंधार जाने के लिए मनाया क्योंकि वह स्वयं जाट, सिक्खों तथा मराठों की समस्याओं एवं अपने पुत्र अकबर जिसने विद्रोह कर 1681 ई० में स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया था– जैसे मामलों में पहले से ही उलझा हुआ था। यद्यपि

औरंगजेब को शाह से सहायता प्राप्त होने का पूरा विश्वास था लेकिन शाह ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। तूरान के शासक अब्दुल अजीज तथा उसके भाई सुभान कुली के साथ कूटनीतिक संबंधों को मजबूत किया गया तथा सांप्रदायिक एकता पर बल दिया गया। 1685 ई० में बाला मुर्घब पर आक्रमण की योजना तथा ईरान विरोधी गठबंधन बनाने का प्रस्ताव एवं ईरान पर संयुक्त आक्रमण पर विचार-विमर्श हुआ। लगभग ठीक उसी समय उजबेग शासक अब्दुल अजीज ने शाह अब्बास द्वितीय से मित्रता करने की कोशिश की। लेकिन ईरान-उजबेग गठबंधन को कार्यरूप न दिया जा सका क्योंकि तूरान को उरगंज तथा ख्वारिज्म के द्वारा चुनौती दी गई थी तथा वह आंतरिक एवं बाह्य असंतोष से पीड़ित था और वहां अच्छे नेतृत्व का अभाव था। इस काल में सफवी साम्राज्य भी पतन की ओर अग्रसर था और निश्चित तौर पर विलीन होने वाला था। यह दक्खन राज्यों को समर्थन देने में असमर्थ था। 1687 ई० तक औरंगजेब ने शेष बचे दक्खन राज्यों बीजापुर एवं गोलकुण्डा को नष्ट कर उनके क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया। मध्य एशिया तथा ईरान की ओर से कोई खतरा विद्यमान न होने के कारण औरंगजेब की स्थिति और मजबूत हो गई।

इस प्रकार औरंगजेब ने मुगल साम्राज्य को "कूटनीतिक अलगाव की स्थिति" में छोड़ा और केवल 1698 ई० में बुखारा से एक महत्वहीन प्रतिनिधि मंडल आया। यद्यपि औरंगजेब ने कभी भी कंधार को वापस लेने का सपना नहीं देखा था फिर भी मुगल-ईरान संबंध क्रमशः बिगड़ते चले गये और ऑटोमन शासक से आये एक प्रतिनिधि मंडल का भी कोई उत्तर न दिया गया।

बोध प्रश्न 4

1) औरंगजेब की ईरान के प्रति क्या नीति थी?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

7.7 सारांश

हमने इस इकाई में मध्य एशिया एवं ईरान के साथ मुगल संबंधों की विवेचना की है। विश्व स्थिति के साथ-साथ उन भौगोलिक कारकों पर प्रकाश डाला गया जिन्होंने मुगल विदेश नीति के स्वरूप को निर्धारित किया। कई मुगल शासकों के मध्य एशिया के उजबेगों तथा ईरानी शासकों के साथ संबंधों की अलग-अलग विवेचना की गई। अंततः इस इकाई में किये गये विश्लेषण का लक्ष्य उत्तर-पश्चिमी सीमा के भौगोलिक, राजनैतिक एवं व्यापारिक महत्व को स्पष्ट करना था और इस पर नियंत्रण करने के लिए मुगलों, उजबेगों एवं सफवियों के बीच यह संघर्ष का केन्द्र बिन्दु बनी रही।

7.8 शब्दावली

खाकान : खानों का सरदार

निशान : राजकुमार द्वारा दिया गया आज्ञा-पत्र

कज्जाक : मध्य एशिया की एक आदिवासी जाति

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 7.1 आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: काबुल तथा कंधार को ऐसे दोहरे द्वारों के रूप में माना गया जो मध्य एशिया एवं ईरान की ओर जाते थे। अकबर काबुल एवं कंधार पर अधिकार बनाये रखकर उनको बाह्य आक्रमणों के विरुद्ध एक ढाल के रूप में प्रयोग करना चाहता था।

2) भाग 7.2 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: उजबेग तथा सफवी राज्यों की सीमायें आपस में मिलती थी। ईरान की व्यापारिक संपन्नता एवं उर्वरकता तथा वास्तव में उसके भौगोलिक राजनीतिक महत्व के कारण उसका उजबेगों से संघर्ष था। भारत तथा ईरान के बीच संघर्ष का मुख्य केन्द्र कंधार था क्योंकि यह भी भौगोलिक-राजनीतिक, वाणिज्यिकी एवं अन्य कारणों से महत्वपूर्ण था।

3) भाग 7.2 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: तैमूर तथा तुर्की राज्यों का दो राज्यों में विभाजन हो जाने के कारण मध्य तथा पश्चिम एशिया में उजबेग एवं सफवी दो राज्यों के रूप में अस्तित्व में आये। उन दोनों राज्यों में राजनीतिक एवं व्यापारिक लाभ के लिए इन क्षेत्रों पर अपनी-अपनी सर्वोच्चता कायम करने के लिए संघर्ष होता रहा।

बोध प्रश्न 2

1) उप-भाग 7.3.2 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: उजबेग-मुगल संबंधों के तृतीय चरण में उजबेगों ने मुगलों के प्रति सुलह-समझौते के दृष्टिकोण को अपनाया। इस समय के आस-पास मुगलों ने कंधार को विजित कर लिया था और वे उजबेगों का विरोध करने की नीति का अनुसरण कर रहे थे।

MAADHYAM IAS

2) उपभाग 7.3.4 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: कंधार पर पुनः अधिकार करना, पूर्वजों की भूमि को पुनः विजित करना तथा दक्खन में अपने संपूर्ण नेतृत्व को स्थापित करना आदि।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 7.4 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: हुमायूं का भारत से निष्कासन हो जाने पर उसने ईरान में शरण ली तथा शाह तहमस्प ने उसके प्रति सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। यद्यपि कंधार पर नियंत्रण तथा सांप्रदायिक मतभेदों के कारण उनके संबंधों में तनाव बना रहा फिर भी उन्होंने कुल मिलाकर अपने संबंधों को मधुर बनाकर रखा।

2) भाग 7.4 तथा उपभाग 7.4.2 और 7.4.3 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: हुमायूं ने कंधार को विजित किया। हुमायूं की मृत्यु के बाद कंधार पुनः ईरानियों के हाथों में चला गया। अकबर ने इसे पुनः प्राप्त कर लिया। ईरानियों ने इस पर पुनः नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास किये किंतु असफल रहे।

3) उपभाग 7.4.3 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: ईरानी राजदूतों को मुगल शासक के पास भेजा गया। कंधार पर पुनः ईरान का अधिकार हो गया। जहांगीर ने कूटनीतिक मौन को बनाये रखा।

बोध प्रश्न 4

1) भाग 7.4 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्न तथ्यों को शामिल करें: औरंगजेब ने शाह की ओर से मित्रवत प्रतिनिधि मंडल का स्वागत किया और कंधार समस्या को मृतप्राय माना गया। आगे चलकर दोनों के बीच संबंध बिगड़ गये। संबंधों में अस्थिरता मुख्य विशेषता थी।

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) रशब्रुक विलयम्स : **एन एम्पायर बिल्डर ऑफ दी सिक्सटींथ सेंचूरी**

2) राधेश्याम : **मुगल सम्राट बाबर**

3) वी.ए. स्मिथ : **महान् मुगल अकबर**

4) आर.पी. त्रिपाठी : **मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन**

5) एस.के. बनर्जी : **मुगल सम्राट हुमायूं**

6) बी.पी. सक्सेना : **मुगल सम्राट शाहजहां**

7) जे.एन. सरकार : **हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब्स रेन्-4 जिल्दों में**

8) डॉ. गोपी नाथ शर्मा : **मेवाड़ मुगल संबंध**

9) ए.आर. खान : **चीफटेन्स इन दी मुगल एम्पायर ड्यूरिंग दी रेन् आफ अकबर**

10) के.आर. कानूनगो : **शेरशाह**

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 8 अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 अहमदनगर
8.3 बीजापुर
8.4 गोलकुंडा
8.5 बाह्य संबंध
8.5.1 आपसी संबंध
8.5.2 विजयनगर से संबंध
8.5.3 मराठों से संबंध
8.5.4 यूरोपवासियों से संबंध
8.6 प्रशासनिक संरचना
8.6.1 शासक वर्ग
8.6.2 केंद्रीय प्रशासन
8.6.3 प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन
8.7 सारांश
8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम दक्खन के तीन प्रमुख राज्यों—अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा की चर्चा करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा की राजनीतिक गतिविधियों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- इनके आपसी और अन्य राज्यों के साथ संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे,
- इन राज्यों में शासक वर्ग की प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे, और
- इन तीन राज्यों के केंद्रीय और प्रांतीय प्रशासन की रूपरेखा बता सकेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

8.1 प्रस्तावना

बहमनी राज्य के पतन के बाद दक्खन में पांच राज्यों का उदय हुआ : अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर और बरार। कुछ समय पश्चात् बरार और बीदर पर उनके मजबूत पड़ोसियों का कब्जा हो गया। बाकी तीन मुगलों द्वारा अधिग्रहीत किए जाने तक (लगभग 100-150 सालों तक) फलते-फूलते रहे।

इस इकाई में मुख्य रूप से इन तीनों राज्यों की राजनीतिक गतिविधियों की चर्चा की जाएगी। आप पुर्तगालों और मराठों से उनके संबंधों को जान पाएंगे और इसके साथ ही साथ उनके आपसी संबंधों की जानकारी भी हासिल कर सकेंगे। आपको उनकी प्रशासनिक संरचना का ज्ञान भी हो पाएगा। इस काल में मुगलों के साथ भी इन राज्यों का संघर्ष हुआ। पर इसकी चर्चा हम अगली इकाई (इकाई 9) में करेंगे।

8.2 अहमदनगर

अहमदनगर के निजाम शाही राजवंश की स्थापना 1490 में मलिक अहमद निजामुल मुल्क बाहरी ने की थी। वह बहमनी साम्राज्य के प्रधानमंत्री मलिक हसन का बेटा था।

मलिक हसन ने अपने राज्य की शुरुआत कोंकण से की थी और 1510 ई. में उसकी मृत्यु के समय उसके राज्य की सीमा बीर से चौल तक और रावेडाण्डा के समुद्र तट तक और उत्तर में खानदेश के सीमांत से दक्षिण में पूना, चाकन और शोलापुर तक फैली हुई थी। दौलताबाद का किला भी उसके अधीन था। यह राज्य 1636 तक कायम रहा, बाद में मुगलों ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया।

इस पूरे काल में अहमदनगर के शासकों को भी बाहरी आक्रमण से अपने क्षेत्र को बचाने के लिए सतत संघर्ष करना पड़ा। इसके साथ-साथ नये इलाकों पर आधिपत्य जमाने की कोशिश भी जारी रही। बरार का अधिग्रहण इस दिशा में एक महत्वपूर्ण सफलता थी।

1511 ई. में अहमदनगर को सबसे पहला धक्का तब लगा जब बीजापुर ने उससे शोलापुर छीन लिया। अहमदनगर के हुसैन निजाम शाह को दूसरा धक्का तब लगा जब गोलकुंडा, बीजापुर और विजयनगर की संयुक्त सेना ने उसे पराजित किया, पर वह अपने राज्य को बचाने में सफल रहा। शीघ्र ही हुसैन निजाम शाह ने अपने बेटी चांद बीबी की शादी बीजापुर के अली आदिल शाह के साथ कर दी। थोड़े समय बाद "1565 ई. में" बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर और बीदर ने विजयनगर पर आक्रमण किया। इसके शासक रामराजा की हार हुई और इस युद्ध में वह मारा गया।

1565 ई. में हुसैन की मृत्यु हुई और उसके बाद 1588 ई. तक उसके पुत्र मुरतजा ने शासन किया। प्रथम छह वर्षों तक मुरतजा की मां खुनज़ा हुमायूँ ने शासन की बागडोर संभाली पर पड़ोसियों से बार-बार पराजित होने के बाद निजाम शाही सामंतों ने प्रशासन की बागडोर मुरतजा के हाथों में सौंप दी। मुरतजा ने 1588 में बरार को अपने राज्य में मिला लिया। वह अपने पुत्र हुसैन के हाथों मारा गया। पर हुसैन भी 1589 ई. में मारा गया।

1595 में चांद बीबी ने बहादुर को राज्य सिंहासन पर बैठाया और शासन की बागडोर खुद संभाल ली। उसे शक्तिशाली मुगलों का सामना करना पड़ा और अंततः उसे मुगलों को बरार सौंपना पड़ा। मुगलों के बढ़ते दबाव के कारण उसे अहमदनगर का किला समर्पित करना पड़ा। पर इसके परिणामस्वरूप उसके सरदारों ने उसकी हत्या कर दी और 1600 ई. में मुगलों ने अहमदनगर के किले पर कब्जा जमा लिया। बहादुर निजाम शाह को बंदी बनाकर ग्वालियर के किले में भेज दिया गया।

एक निजाम शाही सरदार मलिक अम्बर ने शाही परिवार के एक सदस्य को मुरतजा निजाम शाह-II के रूप में गद्दी पर बैठाकर राज्य की प्रतिष्ठा को फिर से स्थापित करने की कोशिश की। वह बराबर मुगलों का प्रतिरोध करता रहा। 1610 ई. में उसने षड्यंत्रकारी मुरतजा की हत्या कर डाली और उसके पुत्र को बुरहान निजाम शाह-III के नाम से स्थापित किया। उसके शासन काल में निजाम शाही फौजों और पुर्तगालियों के बीच छिटपुट लड़ाइयां हुईं। निजाम शाही फौजों पर मुगलों के दबाव के कारण बुरहान को पुर्तगालियों से संधि करनी पड़ी। 1616 ई. में मुगल सेनानायक शाह नवाज खाँ ने निजाम शाही राजधानी खिरकी को रौंद डाला लेकिन मलिक अम्बर ने पुनः इसे बसाया और मुगलों के प्रति आक्रामक रुख अपनाये रखा। बाद में, राजकुमार खुर्रम ने मलिक अम्बर को अहमदनगर किला और बालघाट के जिले समर्पित करने के लिए मजबूर कर दिया। हालांकि 1619-20 में मलिक अम्बर ने हारे हुए इलाके फिर से जीत लिए।

मलिक अम्बर न केवल एक सफल सेनानायक था बल्कि वह एक कुशल प्रशासक भी था। उसने राजस्व और सामान्य प्रशासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार किए। 1626 ई. में उसकी मृत्यु के बाद अहमदनगर का भविष्य अंधकारमय प्रतीत होता था।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

मराठों ने शाहजहां के अधीन मुगल साम्राज्य के खिलाफ अहमदनगर की सहायता करने की कोशिश की। शाह जी भोंसले ने मुरतजा निजाम शाह-III के नाम से शाही परिवार के एक सदस्य को गद्दी पर बैठाया। मुगलों का प्रतिरोध करते हुए उसने कई किलों पर कब्जा जमा लिया। पर शाहजहां ने 1636 ई. में मुहम्मद आदिल शाह को हार मानने पर मजबूर कर दिया। एक समझौते के तहत निजाम शाही राज्य का अंत कर दिया गया। इसके क्षेत्रों को मुगलों और बीजापुर राज्य के बीच बांट दिया गया। यह तय हुआ कि परेन्दा और शोलापुर के किले और उनसे जुड़े जिले, कल्याणी प्रांत और भीमा और नीरा नदी के बीच के निजाम शाही क्षेत्र पर बीजापुर के आदिल शाह का आधिपत्य रहेगा और इसके बदले में वह शाह जी को दबाने के लिए मुगलों की सहायता करेगा। गोलकुंडा के अब्दुल्ला कुतब शाह ने भी मुगलों से संधि की। राजकुमार औरंगजेब को दक्खन का राज्याध्यक्ष नियुक्त किया गया। उसने निजाम शाही किलों उदगीर और अउसा को अपने आधिपत्य में ले लिया। इसके साथ ही अहमदनगर राज्य लुप्त हो गया। शाह जी ने मुरतजा निजाम शाह-III को मुगलों को सौंप दिया और खुद बीजापुर भाग गया। मुरतजा को ग्वालियर के किले में बंदी बना लिया गया और इस प्रकार अहमदनगर राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया।

8.3 बीजापुर

1490 ई. में बहमनी साम्राज्य से ही टूट कर बीजापुर एक स्वतंत्र राज्य बना। बीजापुर 1686 तक स्वतंत्र रहा, इसके बाद औरंगजेब ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। 200 वर्षों के इस काल में यहां पर आदिल शाही राजाओं का शासन रहा। फारसी मूल का यूसूफ आदिल खां इसका संस्थापक था। वह बहमनी साम्राज्य के बीजापुर प्रांत का **तरफदार** (राज्याध्यक्ष) था। उसने 1490 ई. में अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। रायचूर, गोवा, दभोल, गुलबर्गा और कल्याणी को जीत कर, उसने अपने छोटे राज्य-क्षेत्र का विस्तार किया। पर 1510 में पुर्तगालियों ने उससे गोवा छीन लिया। उसके उत्तराधिकारियों ने अपने राज्य-क्षेत्र की रक्षा और विस्तार का सतत प्रयत्न किया।

इस्माईल शाह ने अहमदनगर से शोलापुर छीनने की कोशिश की पर वह असफल रहा। बीदर का अमीर बारिद हमेशा

बीजापुर के खिलाफ षड्यंत्र करता रहता था। अतः इस्माईल शाह ने खुद जाकर उसे जिंदा गिरफ्तार किया। अमीर बारिद से बीदर छीन लिया गया और उसे बीजापुरी सरदारों में शामिल कर लिया गया। 1530 ई. में इस्माईल ने अलाउद्दीन इमाद शाह के साथ मिलकर विजयनगर साम्राज्य से रायचूर, दोआब और मुग्दल छीन लिया। इस्माईल ने पुरस्कार स्वरूप अमीर बारिद को बीदर लौटा दिया और बदले में उसे कान्धार और कल्याणी मिला। पर बीदर लौटने के बाद बारिद ने बुरहान के साथ संधि कर ली और बीजापुर को कान्धार और कल्याणी देने से इंकार कर दिया। अंततः इस्माईल ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया और उसे हरा दिया।

1534 ई. में इस्माईल ने सुल्तान कुली कुतुब मुल्क से कोविलकोंडा और गोलकुंडा छीनने का असफल प्रयत्न किया। बीजापुर लौटने के बाद, उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी। उसका स्थान उसके बड़े युवराज मल्लू आदिल खां ने लिया, पर उसके व्याभिचारी व्यवहार के कारण उसकी दादी पुंजी खातून ने 1535 में उसे गिरफ्तार कर अंधा बना दिया। उसका स्थान उसके छोटे भाई इब्राहिम ने लिया। इब्राहिम पुर्तगालियों को सैलसिट और बारदेज का बंदरगाह देने के लिए बाध्य हुआ क्योंकि उन्होंने गोवा में शरण लेने वाले विद्रोही राजकुमार अब्दुल्ला पर नियंत्रण रखने के बदले में 1535 में यहां पर पहले ही अधिकार जमा लिया था।

नये सुल्तान अली आदिल शाह-I (1556-1580) ने विजयनगर के अदोनी, तोरगल, धारवाड़ और बंकापुर के किलों पर अधिकार जमा लिया पर विजयनगर की नयी राजधानी पेनूकोंडा पर वह कब्जा नहीं कर सका।

1580 ई. में अली आदिल शाह की हत्या हो गयी। उसके बाद उसके नाबालिग भतीजे इब्राहिम ने गद्दी संभाली, उसकी बुआ चांद बीबी उसकी संरक्षिका बनी। दरबारी राजनीति के कारण दस वर्षों के भीतर तीन संरक्षकों को उखाड़ फेंका गया। 1619 में बीदर राज्य पर कब्जा जमा कर इब्राहिम आदिल शाह ने महत्वपूर्ण सफलता हासिल की।

इब्राहिम का स्थान मुहम्मद आदिल शाह (1627-1656) ने लिया। उसने तीवी, बारदेर, सरजोर और कुल्तुली पुर्तगालियों से छीन लिये। उसके शासनकाल में यह राज्य अपनी प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा पर पहुंच गया। 1656 में उसकी मृत्यु के समय, इस राज्य की सीमा अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैल गयी और उसने मुगलों को किये गये भुगतान की भरपाई अधीनस्थ नायकों से नजराना लेकर की। मुहम्मद आदिल शाह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र अली आदिल शाह द्वितीय (1656-1672) ने गद्दी संभाली। उसके शासन काल में मुगलों और मराठों के आक्रमण (देखिए इकाई 9, 10) के कारण राज्य की स्थिति कमजोर हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद उसके चार वर्षीय पुत्र सिकन्दर (1672-1686) को सुल्तान घोषित किया गया। इस काल में विभिन्न धड़ों की लड़ाइयों, गोलकुंडा के हस्तक्षेप और मुगल और मराठा आक्रमणों के कारण यह राज्य बिखर गया। अंततः 1686 ई. में मुगल सम्राट औरंगजेब ने आदिल शाही फौजों को परास्त किया और उसे मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

8.4 गोलकुंडा

कुतुब शाही राजवंश का संस्थापक सुल्तान क्यूल था वह कारा-क्यूनलू के तुर्कमान कबीले का सदस्य था। बहमनी सुल्तान शिहाबुद्दीन महमूद (1482-1518) के शासन काल में वह शक्तिशाली बना। उसे तेलंगाना प्रांत का राज्याध्यक्ष नियुक्त किया गया, जिसकी राजधानी गोलकुंडा थी। उसने कभी अपने को स्वतंत्र घोषित नहीं किया पर बहमनी शासकों की कमजोरी के कारण वह स्वतंत्र शासक के रूप में कार्य करता रहा। वह अंतिम शासक कलिमुल्ला के 1538 में मरने तक नाममात्र के बहमनी सुल्तानों को बहुमूल्य उपहार भेजता रहा।

उत्तर में राजकोंडा और देवरकोंडा दक्षिण में पानांगल और पश्चिम में धनपुरा जैसे बड़े किलों को जीतकर उसने अपने छोटे से राज्य का विस्तार किया। अब गोलकुंडा की सीमा विजयनगर और बीजापुर की सीमा को छूने लगी। उसने उड़ीसा से कुछ इलाके छीन लिए और अपने राज्य की सीमा गोदावरी-कृष्णा दोआब में एल्लोर और राजामुंदरी तक बढ़ा ली। गोदावरी नदी दोनों राज्यों की सीमा मानी गयी। उसने विजयनगर साम्राज्य से कोंडाविडु हासिल किया। उसने बीजापुर और बीदर के उसके राज्य पर कब्जा जमाने के इरादे को विफल कर दिया। 1543 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसका स्थान उसके पुत्र जमशेद कुली खां ने लिया। उसने अहमदनगर और बीजापुर के शासकों के बीच समझौता करवाकर और अली बारिद को बीदर वापस दिलवा कर दक्खनी सुल्तानों के बीच अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा ली। यह उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। 1550 में उसकी मृत्यु हो गयी।

इब्राहिम (1550-1580) पहला कुतुब शाही सुल्तान था, जिसने औपचारिक रूप से एक स्वतंत्र शासक के रूप में राज्य किया और अपने नाम से सिक्के जारी किए। उसका उत्तराधिकारी मुहम्मद कुली कुतुब शाह (1580-1611) था। उसने 1591 में हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाया। उसके शासन काल में गोलकुंडा में अनेक यूरोपीय कारखाने स्थापित हुए। 1611 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी और उसके बाद उसका भतीजा मुहम्मद कुतुब शाह बना। नये शासक ने विस्तार के बजाय सुदृढ़ीकरण पर बल दिया। 1826 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी और उसके बाद उसका बड़ा पुत्र अब्दुल्ला कुतुब शाह शासक बना। यह कहा जा सकता है कि इसी के शासन काल से कुतुब शाही राज्य का पतन शुरू हुआ, क्योंकि इसी समय गोलकुंडा पर मुगलों का दबाव बढ़ने लगा। 1636 ई. में उसे "अधीनस्थता के मसौदे" और प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ा, जिसके अनुसार गोलकुंडा मुगल साम्राज्य के अधीनस्थ हो गया। बाद में, उसने कर्नाटक

के कुछ इलाकों को अपने राज्य में मिला लिया। 1672 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसके दामाद अब्दुल हसन (1672-1687) ने गद्दी संभाली। अंततः 1687 ई. में औरंगजेब ने गोलकुंडा को मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

बोध प्रश्न 1

1) स्वतंत्र राज्य के रूप में अहमदनगर के उदय का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) बीदर पर कब्जा जमाने में बीजापुर किस प्रकार सफल रहा?

....

....

....

....

....

3) गोलकुंडा राज्य की सीमा का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

8.5 बाह्य संबंध

अपने अस्तित्व-काल में इन दक्खनी राज्यों के आपसी संबंध और व्यवहार समय-समय पर बदलते रहे। उनका दक्षिण भारतीय राज्यों, मुगलों, मराठों और यूरोपीय शक्तियों से भी संपर्क हुआ। इस भाग में हम इस संपर्क के स्वरूप पर विचार-विमर्श करेंगे। मुगलों के साथ उनके संबंधों की चर्चा विस्तार से इकाई 9 में की जाएगी।

8.5.1 आपसी संबंध

इन तीन प्रमुख राज्यों का अपना संबंध उनके निजी स्वार्थों से तय हुआ करता था। उनके बीच ज्यादातर झगड़े राज्य-क्षेत्रों को लेकर हुआ करते थे। कभी-कभी दो मिलकर तीसरे का विरोध कर देते थे। कुछ ने बरार और बीदर जैसे छोटे राज्यों के साथ संधि की। यहां तक कि एक दूसरे का मुकाबला करने के लिए बाहरी शक्तियों से भी संधि की गयी।

अहमदनगर की बीजापुर के साथ पहली मुठभेड़ शोलापुर को लेकर हुई और वह हार गया। बुरहान के शासन काल में बीजापुर पर गुजरात ने खानदेश और बगलाना की सहायता से आक्रमण कर दिया। 1530 ई. में अहमदनगर और बीजापुर के बीच संधि हुई जिसके अनुसार अहमदनगर ने बरार पर और बीजापुर ने तेलंगाना पर अधिकार जमा लिया।

बीजापुर के इस्माईल ने अहमदनगर के बुरहान निजाम शाह प्रथम के साथ संधि की। उसने अपनी बहन की शादी बुरहान के साथ कर दी और दहेजस्वरूप शोलापुर देने का वादा किया। पर जब उसने शोलापुर बीजापुर के सुपुर्द नहीं किया तब उनके संबंधों में कटुता आ गई। बरार के अलाउद्दीन इमाद शाह की सहायता से बुरहान ने बलपूर्वक शोलापुर छीनना चाहा, पर वह असफल रहा। इसके बाद शोलापुर उनकी दुश्मनी का कारण बना रहा। 1526 ई. में एक बार फिर अमीर बारिद की सहायता से बुरहान ने शोलापुर पर कब्जा जमाना चाहा, पर वह असफल रहा।

शोलापुर के कारण अहमदनगर के साथ बीजापुर के संबंधों में कटुता आ गई, इस कटुता के लिए बुरहान का शिया और इब्राहिम का सुन्नी होना भी उत्तरदायी था। इसके अतिरिक्त अहमदनगर के विभाजन के लिए इब्राहिम का गुजरात और खानदेश के शासकों के साथ मिलकर षड्यंत्र करना भी अहमदनगर और बीजापुर के आपसी संबंधों के लिए घातक सिद्ध हुआ। 1542 ई. में अमीर बारिद की सहायता से बुरहान ने बीजापुर पर आक्रमण किया और शोलापुर पर कब्जा जमा लिया। पर बरार के शासक दरिया इमाद शाह की सहायता से इब्राहिम ने बुरहान को पीछे धकेल दिया। 1543 ई. में अमीर बारिद की मृत्यु के बाद बुरहान ने शांति की पहल की और उसने इब्राहिम को शोलापुर लौटा दिया।

1543 ई. में अहमदनगर, गोलकुंडा, बीदर, बरार और विजयनगर सभी ने बीजापुर के खिलाफ गठबंधन कर लिया। पर शीघ्र ही यह संधि टूट गयी और गोलकुंडा, विजयनगर तथा बीजापुर ने अहमदनगर का विरोध करना शुरू कर दिया। अंततः बीजापुर के हुसैन शाह ने विजयनगर के रामराजा के साथ संधि की। इस संधि के अनुसार, i) हुसैन द्वारा बीजापुर का कल्याणी पर अधिकार समाप्त, ii) हुसैन को इमाद शाही सेनानायक जहांगीर खां को मारना था जो युद्ध में बहुत सक्रिय रहा था, iii) हुसैन को रामराजा से पान ग्रहण करने के लिए विजयनगर जाना था। पर संधि शीघ्र ही टूट गयी। 1619 ई. में इब्राहिम आदिल शाह ने बीदर राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। इसके बाद अहमदनगर और बीजापुर में सतत संघर्ष होता रहा। अंततः 1625 में अहमदनगर शोलापुर पर कब्जा जमाने में सफल रहा।

बीजापुर के सरदारों के बीच की आपसी फूट तथा शिवाजी और मुगलों के आक्रमण के कारण बीजापुर का अस्तित्व संकट में पड़ गया। इसके अलावा राजकोष बिल्कुल खाली था। बीजापुर के शासक के निवेदन पर कुतब शाह ने कर्ज तो दिया पर इसके बदले में कुतुब शाही पेशवा मदन्ना के भाई अकन्ना को बीजापुर दरबार में सलाहकार नियुक्त करने की शर्त रख दी। इस दौरान बीजापुर पर कुतुब शाही प्रभाव अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया। 1597 में सोनीपत में बीजापुर, गोलकुंडा तथा अहमदनगर की संयुक्त सेना और मुगलों के बीच युद्ध हुआ पर इसमें संयुक्त सेना की हार हुई।

8.5.2 विजयनगर के साथ संबंध

दक्खनी राज्यों और विजयनगर के संबंध कटुतापूर्ण रहे। पर कई बार एक राज्य ने दूसरे राज्य के खिलाफ बीजापुर की सहायता की। पहली बार विजयनगर के साथ बीजापुर की मुठभेड़ हुई।

बीजापुर में व्याप्त नागरिक असंतोष तथा पुर्तगालियों और बीदर के अमीर बारिद द्वारा भड़काए जाने के कारण विजयनगर के कृष्णदेव राय ने 1512 में बीजापुर से रायचूर दोआब छीन लिया। 1520 ई. में इस्माईल ने दोआब पर पुनः कब्जा जमाना चाहा, पर उसकी बुरी तरह हार हुई।

1543 ई. में दक्खनी राज्यों ने बीजापुर के खिलाफ विजयनगर से संधि की। विजयनगर ने रायचूर दोआब पर कब्जा जमाया और शोलापुर अहमदनगर ने ले लिया। कुछ समय बाद विजयनगर, बीजापुर और गोलकुंडा ने अहमदनगर के खिलाफ गुटबंदी की। उन्होंने अहमदनगर पर घेरा डालकर उसे पराजित किया। दक्खनी सुल्तानों के आपसी मनमुटाव और युद्धों के कारण विजयनगर का रामराजा बहुत शक्तिशाली हो गया और दक्खनी राज्यों के प्रति उसका व्यवहार तानाशाहीपूर्ण रहा। इसके कारण उसके खिलाफ एक गठबंधन तैयार हुआ।

एकता के लिए संधि का प्रयत्न किया गया। हुसैन निजाम शाह ने अपनी बेटी चाँद बीबी की शादी अली आदिल शाह प्रथम के साथ कर दी और दहेजस्वरूप शोलापुर दे दिया। अली आदिल शाह प्रथम ने अपनी बहन की शादी हुसैन निजाम शाह के बेटे मुरतजा से कर दी। उसकी दूसरी बेटी की शादी इब्राहिम कुतुब शाह के साथ हुई। इसके बाद उन्होंने विजयनगर के खिलाफ युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए अली आदिल शाह प्रथम ने रामराजा के पास दूत भेजा और यादगीर, बागलकोट, रायचूर और मुद्गल के किलों को लौटाने की मांग की। पिछले कुछ वर्षों से इन पर विजयनगर का आधिपत्य था। रामराजा ने ऐसा करने से मना कर दिया तथा आदिल शाही दूत को दरबार से बाहर निकलवा दिया। इसके बाद हुसैन निजाम शाह, इब्राहिम कुतुब शाह, अली आदिल शाह और अली बारिद की संयुक्त सेना विजयनगर की ओर बढ़ी। 27 जनवरी 1565 को बस्ती हट्टी या तालीकोटा (राक्षस और तंगदी नामक गांवों के बीच स्थित) में दोनों सेनाओं के बीच युद्ध हुआ जिसमें विजयनगर की सेना बुरी तरह पराजित हुई और रामराजा मारा गया। इसके बाद विजयनगर साम्राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुंचा।

8.5.3 मराठों के साथ संबंध

तीनों दक्खनी राज्यों में, अहमदनगर का मराठों के साथ कभी कोई महत्वपूर्ण संघर्ष नहीं हुआ। पर बीजापुर और गोलकुंडा के साथ उनकी मुठभेड़ें हुईं। यहां हम संक्षेप में मुठभेड़ों और संघर्षों की चर्चा करेंगे। (विस्तार के लिए इकाई 10 देखिए।)

1650 ई. के बाद शिवाजी ने बीजापुरी क्षेत्रों में आक्रमण करना शुरू किया। 1650 और 1656 के बीच उसने पुरन्दर, कल्याणी, भिवंडी, माहूली, जावली, श्रीनगरपुर और रायरी पर कब्जा जमा लिया। अतः कोंकण बंदरगाह को छोड़कर वह आदिल शाही राज्य के उत्तरी-पश्चिमी कोने का एकछत्र बादशाह हो गया।

1659 ई. में शिवाजी ने बीजापुर के सरदार अफजल खां की हत्या कर दी, पश्चिमी तट के पन्हाला और अन्य किलों पर कब्जा जमा लिया और 1660 ई. में दभोल पर आधिपत्य कर लिया। कोल्हापुर पर भी उसका अधिकार हो गया पर इसी वर्ष बीजापुर ने उससे पनहाला हासिल कर लिया। इसके बाद आदिल शाह और शिवाजी के बीच संधि कायम

हुई जिसके तहत बीजापुर राज्य के उत्तरी-पश्चिमी भाग में हुई शिवाजी की सभी जीतों को मान्यता दे दी गई, इसके बदले में शिवाजी ने बीजापुर पर हमला न करने का वादा किया। पर शिवाजी ने अपना वादा पूरा नहीं किया।

1665 ई. में जयसिंह के नेतृत्व में मुगलों ने बीजापुर को जीतने असफल प्रयत्न किया। इसी समय मुगलों और शिवाजी के बीच हुई पुरन्दर की संधि के मुताबिक शिवाजी को बीजापुर पर आक्रमण करने की अनुमति मिल गयी। जब अली आदिल शाह द्वितीय ने देखा कि शिवाजी के साथ मुगलों की शक्ति है तो उसने संघर्ष करने का इरादा छोड़ दिया। एक संधि हुई जिसके अनुसार शोलापुर और उसके आसपास के इलाके मुगलों को दे दिए गए। शिवाजी का आक्रमण टल गया।

1672 ई. में अली आदिल शाह की मृत्यु के बाद उसका चार वर्षीय पुत्र सिकन्दर गद्दी पर बैठा। शिवाजी ने बीजापुर में व्याप्त अव्यवस्था का पूरा फायदा उठाया। 1673 ई. में उसने पनहाला, पाकूली तथा सतारा पर कब्जा जमा लिया और हुबली को लूट लिया।

बीजापुर के अफगान और दक्खनी सरदारों के आपसी मनमुटाव के कारण शिवाजी बीजापुर क्षेत्रों पर आक्रमण करने में सफल रहे। 1675 ई. में उन्होंने फोंडा, सुंडा, करवार, अंकोला और काढ़ा पर कब्जा कर लिया। इसके बाद शिवाजी ने कुतुब शाह के साथ संधि की जिसके अनुसार उसे बीजापुर के खिलाफ आक्रमण करते रहने के लिए प्रति महीने 4.5 लाख रुपये का अनुदान मिलते रहना था। कुतुब शाह ने शिवाजी को 5000 की फौज के रूप में सहायता देने का भी वचन दिया। शिवाजी ने वादा किया कि उसके पिता की जागीर के अलावा अन्य स्थानों पर किए गये आधिपत्य का आधा-आधा बंटवारा किया जाएगा। तब शिवाजी ने जिंजी और वेलोर पर कब्जा कर लिया कोलेरून नदी तक के इलाके पर आधिपत्य जमा लिया और तब बेलगाम लौट आया।

इसके साथ-साथ शिवाजी ने गोलकुंडा पर भी आक्रमण किया। 1677 ई. में वह अब्दुल हसन कुतुब शाह के पास गया और उसके साथ एक संधि की, जिसके अनुसार i) जब तक शिवाजी अपने पिता की जागीरें वापस नहीं ले लेता है तब तक अभियान के लिए कुतुब शाह द्वारा 3000 रु. प्रतिदिन के हिसाब से शिवाजी को भुगतान किया जाना था। ii) अभियान समाप्त होने के बाद कर्नाटक के उन इलाकों को, जो शिवाजी के पिता की जागीर के हिस्से न थे, कुतुब शाह के सुपुर्द किया जाना था।

8.5.4 यूरोपवासियों के साथ संबंध

यूरोपवासियों में सबसे पहले पुर्तगालियों का दक्खनी राज्यों के साथ संबंध स्थापित हुआ। इसके बाद डच और अंग्रेजों ने संबंध स्थापित किए। आपने खंड 1 में पढ़ा है कि किस प्रकार पुर्तगालियों ने गोवा और उसके आसपास के इलाकों में अपने को स्थापित किया। इस प्रक्रिया में दक्खनी राज्यों के साथ उनका संघर्ष हुआ।

अहमदनगर की स्थापना के तुरंत बाद इसके सुल्तान निजाम शाह को पुर्तगालियों के रूप में संकट का सामना करना पड़ा। उसने पश्चिमी तट से पुर्तगालियों को भगाना चाहा। अहमदनगर और पुर्तगालियों के बीच दो बार युद्ध हुए। निजाम शाह की इजाजत से मिस्र और गुजरात की नौसेना चौल आई और पुर्तगालियों को 1508 में पराजित कर दिया। पर अगले वर्ष पुर्तगालियों ने मिस्र और गुजरात के इस संयुक्त मोर्चे को पराजित कर दिया। पुर्तगालियों और निजाम शाह के बीच संधि पत्र पर हस्ताक्षर हुए, जिसके अनुसार i) निजाम शाह को युद्ध के हरजाने के रूप में 30,000 **क्रूज़ाडोज** का भुगतान करना था, ii) उसे प्रतिवर्ष 10,000 **क्रूज़ाडोज** का भुगतान करने का वादा करना पड़ा। पर निजाम शाह ने 2000 **क्रूज़ाडोज** का ही भुगतान किया।

उसके उत्तराधिकारी बुरहान खां ने भी पुर्तगालियों से अच्छे संबंध बनाए रखने की कोशिश की। गुजरात और खानदेश के शासकों को परास्त करने के लिए उसने पुर्तगालियों के साथ संधि की और रावेडांडा और चोल में किला बनाने की अनुमति पुर्तगालियों को दे दी।

बीजापुर तथा अहमदनगर के शासकों और कालीकाट के जमोरिन ने पुर्तगालियों के खिलाफ गठबंधन किया और उन्हें पश्चिमी तट से भगाने का असफल प्रयत्न किया। 1571 ई. में बीजापुर और अहमदनगर ने पुर्तगालियों के साथ संधि कर ली।

लेकिन कुछ समय बाद अहमदनगर की फिर से पुर्तगालियों के साथ मुठभेड़ हो गई। पुर्तगालियों ने मक्का से आते हुए तीर्थयात्रियों के जहाजों पर आक्रमण कर दिया था। बीजापुर का भी पुर्तगालियों से वैमनस्य था और उसे अवसर की प्रतीक्षा थी। जल्दी ही उन्हें यह अवसर मिल गया।

मुहम्मद आदिल शाह के शासन के दौरान भारत के पश्चिमी तट पर डच व्यापार के लिए आये। बीजापुर के शासकों ने पुर्तगालियों का सामना करने के लिए उनसे संधि कर ली। उसने उन्हें व्यापार करने के लिए कुछ रियायतें दी और वेनगुरला में कारखाने बनाने की इजाजत दे दी। उसने पुर्तगालियों के अधीन तीवी, बारडेस, सारजोरा और कलतूली इलाकों पर कब्जा जमा लिया। पर पुर्तगालियों ने वहां और सेना भेजी और बीजापुर को वापस खदेड़ दिया। गोलकुंडा भी यूरोपवासियों के संपर्क में आया।

डचों, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने भी भारत में अपनी व्यापारिक गतिविधियां शुरू कीं। गोलकुंडा ने डचों को मसूलीपट्टनम, निजामापट्टनम और पूलिकट में कारखाना स्थापित करने की इजाजत दे दी। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 1611 में मसूली पट्टनम और नागपट्टनम में तथा 1621 में पूलिकट में कारखाने स्थापित किये।

बोध प्रश्न 2

1) विजयनगर के साथ दक्खनी राज्यों के संबंधों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) बीजापुर के साथ शिवाजी के संबंधों पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

3) पुर्तगालियों के साथ अहमदनगर के संबंध पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

8.6 प्रशासनिक संरचना

जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं कि दक्खनी राज्य भूतपूर्व बहनी राज्य के टुकड़े थे। अतः उनके प्रशासनिक गठन में बहमनी प्रभाव दिखाई देता है। बहमनी काल की संस्थाएँ और प्रथाएँ कुछ बदलाव के साथ कायम रहीं।

इन तीनों राज्यों में लगभग एक प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था थी। जहां जरूरत होगी वहां हम इनके बीच के अंतर को भी बताएंगे। सबसे पहले इन राज्यों के शासक वर्ग के बारे में बातचीत की जाए।

8.6.1 शासक वर्ग

दक्खनी राज्यों के शासक वर्ग में विभिन्न पृष्ठभूमि और समुदाय के सरदार शामिल थे। मोटे तौर पर बहमनी साम्राज्य में सरदारों के दो दल थे—दक्खनी और **आफाकी** या परदेशी (विवरण के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03 की इकाई 28 पढ़िए)।

मूल रूप से दक्खनी भी बाहर से आये थे पर दक्खन में काफी पहले से आकर बस गये थे और इसमें हिन्दू धर्म परिवर्तित लोग भी शामिल थे। बरार में इमादशाही राजवंश का संस्थापक, फतहउल्ला इमाद शाह और अहमदनगर की सल्तनत का संस्थापक अहमद निजाम शाह इसके प्रमुख उदाहरण हैं। दोनों पहले ब्राह्मण थे, बाद में इन्होंने इस्लाम स्वीकार किया।

आफाकी या परदेसियों का आगमन काफी बाद में हुआ। वे 16वीं-17वीं शताब्दी के दौरान इन राज्यों में आकर बसते रहे। बीजापुर के आदिल शाही राज्य का संस्थापक युसूफ आदिल शाह भी **आफाकी** था।

अधिकांश **अफाकी** शिया थे जबकि ज्यादातर दक्खनी सुन्नी थे। इन दोनों वर्गों के भी कई उपवर्ग थे। इनमें ईरानी, तुर्क, अरब, ऐबीसीनियन (हब्शी), मिस्रवासी और भारतीय धर्मपरिवर्तित समुदाय प्रमुख हैं। कुछ मराठों को भी राज्य की सेवा में शमिल किया गया जो बाद में सामंत वर्ग में शामिल हो गये (मराठों के लिए इकाई 10 पढ़िए)।

ये शासक वर्ग सभी प्रकार के सैनिक, पुलिस, राजस्व और अन्य कार्य संभालता था। सुल्तान का कृपापात्र बने रहने तक ये सामंत केन्द्र या जिलों में शक्ति का उपभोग किया करते थे। अतः सुल्तान व्यकितगत निष्ठा की मांग करता था। सुल्तान या "प्रधानमंत्री" किसी भी पद को अवनत और स्थानांतरित कर सकता था उनका परिवेक्षण कर सकता था। सामंतों को अपने गुजारे और सेना के रख-रखाव के लिए वेतन के रूप में जागीरें दी जाती थीं।

सामंतों का यह बहुजातीय मिश्रित समुदाय विभिन्न दबावों और परिस्थितियों के कारण आपस में और कभी-कभी सुल्तान से टकराता रहता था। जब भी उन्हें मौका मिलता वे अपने मनपसंद व्यक्ति को सुल्तान के पद पर बैठाना चाहते थे। इसकी पुष्टि के लिए कुछ उदाहरण पेश करना उपयुक्त होगा।

1510 ई. में बुरहान शाह के राज्य सिहांसन पर बैठने के समय मतभेद उभर कर सामने आये। उसके बाद उसके नाबालिग पुत्र हुसैन ने गद्दी संभाली। मुकम्मल खां सरदारों के दक्खनी धड़े का प्रतिनिधित्व करता था और वह अहमद के शासन काल से ही वकील और पेशवा था। वह अपने पद पर बना रहा। बुरहान अभी बच्चा था। अतः मुकम्मल खां ने अपनी शक्ति का खुलकर उपयोग किया। इस बीच **अफाकियों** (मुख्यतः ईरानी और तुर्की) ने बुरहान निजाम शाह प्रथम को अपदस्थ करने और उनके भाई राजाजी को सिंहासन पर बैठाने की असफल कोशिश की।

शाह ताहीर (ईरान से आया एक शिया दार्शनिक) के समझाने पर बुरहान ने न केवल शिया धर्म स्वीकार कर लिया बल्कि इसे राज्य का धर्म भी घोषित कर दिया। सुन्नी सरदारों ने बुरहान को अपदस्थ कर उसके सुन्नी पुत्र अब्दुल कादिर को गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया। पड़ोसी शासकों ने भी अहमदनगर पर आक्रमण किया पर उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। पर 1589 ई. में सरदारों का एक समूह अपने मनपसंद व्यक्ति को गद्दी पर बैठाने में सफल रहा।

हुसैन निजाम शाह प्रथम के पोते और बुरहान के पुत्र इस्माईल को सुल्तान बनाने में मुख्य हाथ **अफाकियों** का था। लेकिन दक्खनी नेता जमाल खां, जो एक महदवी (एक मुस्लिम सम्प्रदाय) था, ने विद्रोह कर दिया और अफाकियों पर वर्चस्व कायम कर लिया। उसने महदवीवाद को राज्य धर्म भी घोषित करवा दिया। इब्राहिम निजाम शाह की मृत्यु (1595) के बाद एक बार फिर अहमदनगर दरबार में दक्खनियों और हब्शियों (ऐबीसीनियन) के बीच जोरदार संघर्ष हुआ।

दक्खनी दल के नेता और पेशवा मियां मंझू ने अहमद नामक एक ऐसे व्यक्ति को गद्दी पर बैठा दिया, जो सीधे तौर पर शाही खानदान से नहीं जुड़ा हुआ था। हब्शियों के नेता इखलास खां ने बाजार से एक बच्चे मोती शाह को उठाकर उसे गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया था। एक अन्य नेता अभंग खां ने बुरहान निजाम शाह के बेटे अली की वकालत की जबकि चांद बीबी (हुसैन निजाम शाह प्रथम की बेटी और अली आदिल शाह प्रथम की विधवा) ने इब्राहिम निजाम शाह के नाबालिग पुत्र बहादुर के दावे को सामने रखा। मियां मंझू ने राजकुमार मुराद और गुजरात के मुगल राज्याध्यक्ष अब्दुल रहीम खान खाना को सहायता के लिए बुलाया। अकबर ने इसके लिए स्वीकृति दे दी। वे इसके लिए तैयार बैठे थे। अकबर के निर्देश पर राजा अलीखां भी उनके साथ चल पड़ा। पर मुगल सेना के अहमदनगर पहुंचने के पहले मंझू ने ऐबीसीनियनों को काबू में कर लिया।

MAADHYAM IAS

अब उसने मुगलों को बुलाने की गलती स्वीकार की, चांद बीबी सहित अपने सभी विरोधियों से समझौता किया, मुगलों के खिलाफ गठबंधन बनाने के लिए बीजापुर और गोलकुंडा के शासकों को आमंत्रित किया और उनकी फौजों को जल्द से जल्द तैयार करने के लिए बीजापुर और गोलकुंडा की ओर रवाना हुआ। उसकी अनुपस्थिति में चांद बीबी ने बहादुर को गद्दी पर बैठा दिया और राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

मलिक अम्बर की मृत्यु के बाद एक बार फिर सरदारों में आपसी टकराव हुआ। उसके पुत्र फतह खां ने **वकील** और पेशवा का पद संभालने पर तथा उसके गर्म मिजाज और नकारात्मक रवैये के कारण दक्खनी और ऐबीसीनियनों के बीच ईर्ष्या भाव और तेज हो गया और बहुत से सरदार मुगलों की शरण में चले गये।

सुल्तान यूसुफ आदिल खां की मृत्यु (1510) के बाद बीजापुर में भी यही स्थिति हुई। उसका बेटा और उत्तराधिकारी इस्माईल अभी बच्चा था, अतः कमाल खां उसका संरक्षक बना। उसने दक्खिनयों को प्रोत्साहित किया, **अफाकियों** को दबाया और उन्हें पूरी तरह से अलग-अलग कर दिया, शिया धर्म को हटाकर उसके स्थान पर सुन्नी धर्म को राज्य का धर्म घोषित किया। इसके बाद खुद सुल्तान बनने की कोशिश की पर इस्माईल की मां और चाची ने एक षड्यंत्र रच कर महल में उसे मार डाला।

उसके बाद बीजापुर में दक्खनी सरदारों का वर्चस्व समाप्त हो गया। **अफाकियों** को गुजरात से बुलाया गया, जहां उन्होंने शरण ले रखी थी और शिया धर्म को पुनः राज्य का धर्म घोषित कर दिया गया।

बीजापुर में सुल्तान इब्राहिम शाह ने अपने सरदारों को दबाना चाहा। उसने सुन्नी धर्म को राज्य का धर्म घोषित कर दिया और काफी संख्या में **अफाकियों** को निलंबित कर दिया, जिन्होंने अहमदनगर और विजयनगर में शरण ली।

इब्राहिम की मौत के बाद उसके बेटे ने नीति बिल्कुल बदल दी। 1558 ई. में अली ने इब्राहिम आदिल शाह की जगह ली, शिया धर्म को राज्य धर्म घोषित किया तथा **अफाकियों** को प्रोत्साहित किया। कल्याणी और शोलापुर प्राप्त करने के लिए उसने अहमदनगर के खिलाफ विजयनगर से संधि की और इस उद्देश्य से उसने विजयनगर की यात्रा भी की।

इब्राहिम के बाद मुहम्मद आदिल शाह गद्दी पर बैठा। दक्खनी सरदारों ने गद्दी पर बैठने में उसकी मदद की थी, अतः वे उसके शासन काल में शक्तिशाली हो गये।

8.6.2 केन्द्रीय प्रशासन

राज्य की शक्ति और सत्ता पूर्ण रूप से सुल्तान के हाथों में केन्द्रित थी। सभी दक्खनी राज्यों में सुल्तान की सेना का सर्वोच्च अधिकारी और राज्य का सर्वोच्च कार्यकारी नायक माना जाता था। व्यावहारिक तौर पर सुल्तान का पद पैत्रिक था। अगर कोई सीधा उत्तराधिकारी नहीं होता था तो भी उसी परिवार के किसी सदस्य को उम्मीदवार बनाया जाता था। उत्तराधिकारी के नाबालिग होने की स्थिति में शासन प्रतिशासक चलाया करते थे। सुल्तान के हाथ में सारी शक्ति रहने के कारण प्रशासन काफी केन्द्रीकृत था। प्रशासन चलाने के लिए कई विभाग थे।

राज्य में दो प्रकार का प्रशासनिक गठन था : i) केंद्रीय प्रशासन, ii) प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन। यहां हम लोग संक्षेप में दक्खन के मुख्य प्रशासनिक निकायों पर विचार-विमर्श करेंगे।

परामर्श दाता समिति

सुल्तान की परामर्श दाता समिति या परिषद में सरदार, **उलेमा** (इस्लाम धर्म से संबंधित धार्मिक व्यक्ति), कुछ अन्य अधिकारी और सुल्तान के मित्र हुआ करते थे। बीजापुर और गोलकुंडा में इस समिति का अस्तित्व औपचारिक था। बीजापुर में इसे **मजलिस खलवत** और गोलकुंडा में **मजलिस दीवान दारी** या **मजलिस खास** कहते थे। परिषद् का कोई बना बनाया ढांचा नहीं था। सुल्तान के कृपापात्र बने रहने की स्थिति में प्रमुख व्यक्तियों को इसमें आमंत्रित किया जाता था। सुल्तान सभी महत्वपूर्ण मसलों पर परिषद् की राय लेता था।

केन्द्रीय मंत्री

प्रशासनिक दृष्टि से विभिन्न कार्यों को देखने के लिए विभिन्न विभाग थे। प्रत्येक बड़े विभाग का मुखिया एक मंत्री होता था। विभागों और मंत्रियों की संख्या निश्चित नहीं थी और इसमें हमेशा बदलाव आता रहता था। **काज़ी** (न्यायाधीश) के अलावा सभी मंत्रियों को सेनानायक का पद दिया जाता था। आमतौर पर सुल्तान नीति निर्धारण करता था, उसका पालन करना मंत्रियों का उत्तरदायित्व था।

पेशवा और वकील अल सल्तनत

यह दक्खन राज्यों का सर्वोच्च मंत्रालय था। कभी-कभी इन दोनों नामों को एक में मिला दिया जाता था। बीजापुर में आमतौर पर **वकील-अल-सल्तनत** का प्रयोग होता था। वहां केवल एक बार पेशवा पद का प्रयोग हुआ था जब इब्राहिम आदिल शाह ने अफजल खां को पेशवा नियुक्त किया था। हालांकि गोलकुंडा और अहमदनगर में पेशवा पद का प्रयोग होता था, पर अहमदनगर में पेशवा और **वकील** एक ही व्यक्ति होता था और वह राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था। गोलकुंडा में **वकील** पद का इस्तेमाल कभी-कभी ही होता था। सुल्तान के नीचे ये पद सर्वोच्च थे और इनके पास अपार शक्ति होती थी। राज्य के सभी मामले उनके पास कार्यान्वयन के लिए आते थे। बीजापुर के छह सुल्तान नाबालिग थे और **वकील-अल-सल्तनत** ने प्रतिशासक या संरक्षक की भूमिका निभाई। अहमदनगर में भी सुल्तान के नाबालिग होने की स्थिति में **वकील** ने प्रतिशासक या संरक्षक की भूमिका निभाई। वे प्रशासन के प्रमुख थे, कायदे और कानून बनाते थे और कभी-कभी राजस्व और सैनिक मामलों पर भी नियंत्रण रखते थे।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

मीर जुमला या जुमलातुल मुल्क

बीजापुर और गोलकुंडा में **वकील** के बाद **मीर** जुमला महत्वपूर्ण मंत्री था। बीजापुर में कभी-कभी एक ही आदमी **वकील** और मीर जुमला का कार्यभार संभालता था (उदाहरण के लिए इब्राहिम आदिल शाह के समय असद खां, आदिल शाह प्रथम के शासन काल में मुस्तफा खां और अफजल खां, इब्राहिम-द्वितीय के काल में इखलास खां और दिलावर खां)। इस पद को संभालने वाले व्यक्ति को वित्तीय और राजस्व संबंधी मामलों की देखरेख करनी पड़ती थी। बीजापुर में राजस्व के मामले में **मीर जुमला** की सहायता के लिए **मुस्तफी अल मुल्क** होता था। इनके साथ कई अधीनस्थ कर्मचारी होते थे, इनमें से अधिकांश हिंदू होते थे। अहमदनगर में वित्तीय और राजस्व के मामलों की देखभाल **वजीर** करता था। **दीवान** (कायदे-कानून के लिए) और **नाज़िर** (वसूली के लिए राजस्व अधीक्षक) उसकी सहायता करते थे।

गुप्तचर विभाग

इसका काम सूचनाएँ इकट्ठी कर उन्हें सुल्तान तक पहुंचाना था। युद्ध के समय दुश्मन की गतिविधियों की सूचना भी देनी होती थी।

सैनिक प्रशासन

जैसा कि पहले बताया जा चुका है राज्य सेना का सर्वोच्च नायक सुल्तान होता था। इस विभाग के देखरेख की जिम्मेदारी **वकील** या पेशवा पर थी। नियुक्ति, प्रशिक्षण, निरीक्षण और सेना को अस्त्र-शस्त्र की आपूर्ति इसके मुख्य कार्य थे। राज्य प्रत्यक्ष रूप में सेना का रखरखाव करता था। जैसा कि उपभाग 8.6.1 में जिक्र किया गया है, सरदार या जागीरदार

या प्रांतीय पदाधिकारी भी अपने पास फौज रखते थे। युद्ध के समय विशेष तौर पर सैनिकों की नियुक्ति होती थी पर युद्ध के बाद उन्हें मुक्त कर दिया जाता था। इस प्रकार के सैनिक दो प्रकार के होते थे : **बारगीर** ऐसे सैनिक होते थे जिन्हें घोड़े या अन्य सामान, औजार, हथियार राज्य की तरफ से दिए जाते थे और **सिलहदार** ऐसे सैनिक होते थे जिन्हें इस सबका इंतजाम खुद करना पड़ता था। उन्हें एक मुश्त अदायगी होती थी।

फौज में घुड़सवार, पैदल और तोपखाना तथा तटों की रक्षा के लिए नौसेना भी होती थी। पर इनकी नौसेना बहुत मजबूत नहीं थी और इनमें लड़ने की क्षमता नहीं थी। जागीरदारों के नियंत्रण वाली फौज का सेना विभाग निरीक्षण किया करता था। फौज में कई प्रजाति के सैनिक शामिल थे, जैसे ईरानी, तुर्की, अफगान, अबीसीनियन और भारतीय (हिन्दू और मुसलमान)।

कानून और न्याय

धार्मिक दान, अनुदान, कानून और न्याय के लिए एक पृथक् विभाग था। वरिष्ठ **काज़ी** इसका प्रमुख होता था। आमतौर पर विभिन्न धर्मों के लोगों के लिए अलग नागरिक कानून निर्धारित थे। सुल्तान भी मुकदमों का निपटारा किया करता था। आपराधिक मामलों में इस्लामी, स्थानीय और राज्य के कानून के मिलेजुले रूप का सहारा लिया जाता था।

अन्य महत्वपूर्ण अधिकारी

गोलकुंडा में पेशवा कार्यालय काफी बृहद् था और इसका केन्द्रीय कार्यालय **दबीर** या सचिव के अधीन था। इसके अलावा इस कार्यालय में दो मुख्य सचिव भी होते थे : i) **मुंशी उल मुमालिक** या प्रधान सचिव। वह **मजुमदार** या महा लेखापदाधिकारी के रूप में भी काम करता था। और ii) **दबीर** या **फरमान-ए-हिंदवी** का काम स्थानीय भाषाओं में पत्रव्यवहार करना था। इस पद पर कोई हिन्दू अधिकारी नियुक्त किया जाता था।

एक ऐसा विभाग भी था जो अन्य राज्यों के साथ के संबंधों की देख-रेख करता था। राजदूत के आदान-प्रदान का प्रचलन आमतौर पर था। यह विभाग अन्य राज्यों के साथ संबंधों तथा दूतों के आदान-प्रदान से संबंधित कार्यों की देख-रेख करता था।

8.6.3 प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन

इस इकाई के आरंभ में हमने आपको बताया था कि किस प्रकार बहमनी राज्य के प्रांत स्वतंत्र राज्यों के रूप में उदित हुए। बहमनियों के काल में इन प्रांतों को **तर्फ** और प्रांताध्यक्षों को **तर्फदार** कहा जाता था। पर इस स्तर पर प्रशासन का ढांचा नियमित नहीं था, न ही उपविभागों का स्पष्ट रूप में उल्लेख किया गया था। टीफेनथेलर (17वीं शताब्दी) ने बीजापुर के ग्यारह क्षेत्रों का उल्लेख किया है : बीजापुर, डेंघी, ओरसा, शोलापुर, धर, सिखर, लकमी, गडक, बहोर, बादाम, कोंकण (आठ परगना)। बीदर को राज्य में मिलाने के बाद इसकी संख्या बढ़कर 15 हो गयी। केवल गोवा के **आइनुल मुल्क** को प्रांतीय राज्याध्यक्ष माना गया। डी. सी. वर्मा (**बीजपुर का इतिहास**) के अनुसार बीजापुर में तीन प्रकार के स्थानीय प्रशासन प्रचलित थे : i) राजा की भूमि की देखरेख करने वाले अधिकारी जो **मीर जुमला** के अधीन थे, ii) जागीरदार अपनी जागीर संभालते थे वहाँ राजस्व वसूल करते थे, छोटी फौज की देखरेख करते थे और कानून व्यवस्था बनाए रखते थे और iii) कबीलाई मुखिया प्रशासन के मामले में स्वायत्त थे पर युद्ध के समय नियत नजराने और सैनिक भेजा करते थे।

शासकीय भूमि में कार्यरत अधिकारियों का स्थानांतरण किया जाता था। उनके पास नागरिक, सैनिक और न्यायिक शक्तियां होती थीं। प्रत्येक सरकार में चार प्रकार के अधिकारी होते थे : i) **सरहवलदार या सूबेदार** मुख्य प्रशासक थे, ii) राजस्व वसूल करने वाले अधिकारी, iii) लेखा की देखरेख करने वाले अधिकारी और iv) काजी।

सरकार परगनों में विभक्त थी। परगनों में राजस्व वसूली का काम देशमुख करता था जबकि देसाई लेखे की देखरेख करता था। सरकारों और परगनों में अधिकारियों को आमतौर पर **हुद्दीदार** (अधिकारी), **अमलदार** या **आमिल** कहा जाता था। गांव सबसे छोटी इकाई थी। यहां पटेल गांव का प्रधान होता था जो राजस्व वसूल करता था और पुलिस तथा न्यायिक प्रशासन भी उसके जिम्मे था। **कुलकर्णी** लेखा अधिकारी होता था। दोनों को **इनाम** (पुरस्कार) भूमि के रूप में वेतन दिया जाता था। चौकीदार को **महार** कहते थे, गांव के शिल्पकारों को **बलूतेदार** या **बारहबलूते** कहते थे। उदाहरण के लिए कुम्हार, मांग (छोटा कार्य), गुरोव (मंदिर और ग्रामीण देवता की देखभाल करने वाला), सुनार, बढ़ई और लुहार। गांव की जरूरत के मुताबिक प्रत्येक गांव में कारीगरों की संख्या अलग-अलग होती थी। वे ग्रामीणों की सेवा करते थे और इसके बदले उन्हें कटाई के समय अनाज से हिस्सा (**बलूता**) मिलता था।

अहमदनगर में प्रांतों की संख्या ठीक से नहीं बताई जा सकती है। इसके मुख्य भाग थे : बीर, बेरस, जूनार और चौल। प्रत्येक भाग एक प्रांतीय राज्याध्यक्ष या बहमनी राज्य के प्रांतीय प्रमुख **तरफ़दार** की भाँति के एक अधिकारी के अधीन था। इन सरदारों के पास कार्यकारी और न्यायिक अधिकार होते थे। वे फौज का रख-रखाव करते थे और कानून और व्यवस्था की देखरेख करते थे। प्रत्येक प्रांत **सरकारों**, परगनों और गांवों में विभाजित थे।

प्रत्येक **सरकार** में एक फौजदार, काजी, कोतवाल, कोषाध्यक्ष तथा राजस्व वसूलकर्ता होते थे। इसी प्रकार प्रत्येक सरकार परगनों या **महलों** या **कुरयात** में विभाजित थे। प्रत्येक परगना में कई गांव होते थे। ग्रामीण प्रशासन की देखभाल

पंचायत की सहायता से की जाती थी। राजस्व की वसूली देशपांडे नामक अधिकारी किया करता था।

गोलकुंडा में भी नियमित-निर्धारित प्रांतों का अभाव पाया जाता है। राज्य के प्रांत को **सिम्त** और इसके मुख्य प्रशासक को **सरसिम्त** कहा जाता था। एच. के. शेरवानी के अनुसार (**कुतुबशाही राजवंश का इतिहास**) सिम्त राज्य की अपेक्षा जिले के अधिक नजदीक थे। स्थानीय करों की वसूली हवलदार किया करता था। अपने क्षेत्रों में जागीरदार राजस्व की वसूली, कानून व्यवस्था और फौज का रखरखाव किया करता था।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित सरदारों पर दो-दो पंक्तियां लिखिए :

(क) दक्खनी

....

....

(ख) अफाकी

....

....

2) निम्नलिखित मंत्रियों के कार्यों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए :

(क) पेशवा

....

....

(ख) मीर जुमला

....

....

3) निम्नलिखित में से प्रत्येक के बारे में दो-दो पंक्तियां लिखिए :

(क) बलूतेदार

....

....

(ख) सरकार के प्रशासनिक अधिकारी

....

....

MAADHYAM IAS

8.7 सारांश

इस इकाई में हमने तीन राज्यों : अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा का अध्ययन किया है। अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए ये आपस में हमेशा लड़ते रहे। 16वीं शताब्दी के अंत में मुगलों ने इन राज्यों की ओर ध्यान दिया। कई लड़ाइयाँ लड़ी गयीं। मुगलों ने सबसे पहले अहमदनगर को अपने साम्राज्य में मिलाया। 17वीं शताब्दी के अंत में मुगलों ने बीजापुर और गोलकुंडा पर भी अधिकार जमा लिया। इस काल में दक्खन क्षेत्र में मराठा एक महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरे। इसी काल में इस क्षेत्र में पुर्तगालियों और यूरोपीय शक्तियों का भी आगमन हुआ।

हमने इन राज्यों के प्रशासनिक ढाँचे का भी अध्ययन किया। इस प्रशासन में दिल्ली सल्तनत और दक्खन के तत्व मौजूद थे। बाद में इन राज्यों में मुगल प्रथाओं का भी समावेश हुआ।

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इसमें आपको अहमदनगर राज्य के उदय के आरंभिक चरण के बारे में बात करनी है। देखिए भाग 8.2
2) कई लड़ाइयों के बाद बीजापुर ने बीदर को 1619 ई. में अपने राज्य में मिला लिया। देखिए भाग 8.3
3) गोलकुंडा दक्खन का प्रमुख राज्य था और इसकी सीमा विस्तृत थी। देखिए भाग 8.4

बोध प्रश्न 2

1) दक्खन राज्यों का विजयनगर के साथ सतत् संघर्ष चलता रहा। कभी उन्होंने अकेले युद्ध किया। कभी विजयनगर के खिलाफ मिलकर लड़े। देखिए उपभाग 8.5.2
2) शिवाजी ने बीजापुर से कई बार लड़ाई की। वह कुछ इलाकों पर आधिपत्य जमाने में भी सफल रहा। देखिए उपभाग 8.5.3
3) पश्चिमी तट पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए पुर्तगाली और अहमदनगर हमेशा आपस में लड़ते रहे। देखिए उपभाग 8.5.4

बोध प्रश्न 3

इन प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दीजिए। इसके लिए भाग 8.6 पढ़िए और खुद उत्तर लिखिए।

परिशिष्ट

अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा राज्यों में सुल्तानों की सूची

1) **अहमदनगर का निजाम शाही राज्य**

   i) अहमद निजाम शाह बाहरी (1496-1510)
   ii) बुरहान निजाम शाह-प्रथम (1510-1553)
   iii) हुसैन निजाम शाह-प्रथम (1553-1565)
   iv) मुरतज़ा निजाम शाह-द्वितीय (1565-1588)
   v) हुसैन निजाम शाह-द्वितीय (1588-1589)
   vi) इस्माइल निजाम शाह (1589-1591)
   vii) बुरहान निजाम शाह-द्वितीय (1591-1595)
   viii) इब्राहिम निजाम शाह (अप्रैल-अगस्त 1595)
   ix) अहमद निजाम शाह-द्वितीय (अगस्त-दिसम्बर 1595)
   x) बहादुर निजाम शाह-प्रथम (1595-1600)
   xi) मुरतज़ा निजाम शाह-द्वितीय (1600-1610)
   xii) बुरहान निजाम शाह-तृतीय (1610-1631)
   xiii) हुसैन निजाम शाह-तृतीय (1631-1633)
   xiv) मुरतजा निजाम शाह-तृतीय (1633-1636)

2) **बीजापुर का आदिल शाही राज्य**

   i) युसुफ आदिल खान (1489-1510)
   ii) इस्माइल आदिल खान (1510-1534)
   iii) मल्लू आदिल खान (1534-1551)
   iv) इब्राहिम आदिल शाह-प्रथम (1535-1558)
   v) अली आदिल शाह-प्रथम (1558-1580)
   vi) इब्राहिम आदिल शाह-द्वितीय (1580-1627)
   vii) मुहम्मद आदिल शाह (1627-1656)
   viii) अली आदिल शाह-द्वितीय (1656-1672)
   ix) सिकंदर आदिल शाह (1672-1686)

3) **गोलकुंडा का कुतुब शाही राज्यवंश**

   i) सुल्तान कुली कुतबुल मुल्क (मृत्यु 1543)
   ii) यार कुली जमशेद (1543-1550)
   iii) सुभान (1550)
   iv) इब्राहिम कुतुब शाह (1550-1580)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

v) मुहम्मद कुली कुतुब शाह (1580-1611)
vi) मुहम्मद कुतुबशाह (1611-1626)
vii) अब्दुल्ला कुतुब शाह (1626-1672)
viii) अबुल हुसैन कुतुब शाह (1672-1687)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 9 दक्खनी राज्य और मुगल

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 अकबर और दक्खन राज्य
9.3 जहांगीर और दक्खन राज्य
9.4 शाहजहां और दक्खन राज्य
9.5 औरंगजेब और दक्खन राज्य
9.6 मुगलों की दक्खनी नीति का मूल्यांकन
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में दक्खन राज्यों और मुगलों के संबंधों पर विचार-विमर्श किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- विभिन्न मुगल बादशाहों की दक्खन राज्यों के प्रति नीति का उल्लेख कर सकेंगे,
- मुगलों की दक्खन नीति को निर्देशित करने वाले कारकों को रेखांकित कर सकेंगे, और
- मुगलों और दक्खन राज्यों के बीच के संघर्ष के परिणाम पर प्रकाश डाल सकेंगे।

MAADHYAM IAS

9.1 प्रस्तावना

इस खंड की इकाई 8 में आपने दक्खन में अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, बरार और बीदर में स्वतंत्र सल्तनतों की स्थापना का विवरण पढ़ा। इकाई 8 में हम इन राज्यों के आपसी संबंध और इनकी गतिविधियों की चर्चा भी कर चुके हैं। यहां हम दक्खन राज्यों के साथ मुगलों के संबंधों पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। मुगलों की दक्खन नीति किसी एक कारक से निर्धारित व निर्देशित नहीं हुई थी। दक्खनी राज्यों के सामरिक महत्व और मुगल साम्राज्य की प्रशासनिक और आर्थिक जरूरतों से ही ज्यादातर दक्खनी राज्यों के प्रति मुगल बादशाहों की नीति निर्धारित होती थी।

प्रथम मुगल शासक बाबर उत्तर में व्यस्त रहने के कारण दक्खन से कोई संपर्क स्थापित नहीं कर सका। फिर भी, 1528 में चंदेरी पर विजय प्राप्त कर उसने मुगल साम्राज्य को मालवा की उत्तरी सीमा के नजदीक पहुंचा दिया। बुरहान निजाम शाह प्रथम के लगातार आग्रह के बावजूद हुमायूं दक्खनी मामले में दखलअंदाजी नहीं कर सका। गुजरात, बिहार और बंगाल की परिस्थितियों में वह इस कदर उलझ गया कि उसे दक्खन की ओर झांकने का मौका ही नहीं मिला। इस प्रकार अकबर पहला मुगल शासक था जिसने दक्खनी राज्यों पर मुगल प्रभुसत्ता की स्थापना की बात सोची।

9.2 अकबर और दक्खनी राज्य

अकबर चाहता था कि दक्खनी शासक उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर लें। 1572-73 में गुजरात के अभियान के दौरान, उत्तर को पूरी तरह सुरक्षित कर लेने के बाद अकबर ने दक्खन के राज्यों पर आधिपत्य जमाने का निश्चय किया क्योंकि गुजरात से भगाए गए विद्रोही खानदेश, अहमदनगर और बीजापुर में शरण ले लिया करते थे। गुजरात पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद अकबर की निगाह दक्खनी राज्यों पर गयी। अकबर चाहता था कि जिस प्रकार गुजरात के शासक दक्खनी राज्यों को अपने अधीनस्थ रखते थे, उसी प्रकार वह भी इन राज्यों को अपने अधीन कर ले। 1417 तक दक्खन के राज्यों ने गुजरात के सुल्तानों की सर्वोच्चता स्वीकार की थी, उनके नाम का खुतबा पढ़ा था और उन्हें नजराना पेश किया था। दक्खनी राज्यों के आपसी संघर्ष ने भी मुगल बादशाह को उनके मामले में दखल देने के लिए प्रेरित किया। अकबर गुजरात के बंदरगाहों को जाने वाले रास्तों को अपने कब्जे में लेना चाहता था। उसकी इस इच्छा ने भी उसकी दक्खनी नीति को काफी प्रभावित किया। इसके अलावा भारत के पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों ने अपने पैर अच्छी तरह जमा लिये थे और उनकी शक्ति को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था। इन पुर्तगालियों को भारत के पश्चिमी तट से भगाने के लिए भी अकबर दक्खन के राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था।

दखनी राज्यों के साथ अकबर का पहला संबंध मालवा को जीतने के बाद 1561 में स्थापित हुआ जब उसने अपने मालवा राज्याध्यक्ष (गवर्नर) पीर मुहम्मद को असीरगढ़ और बुरहानपुर का दमन करने के लिए भेजा। मालवा के पूर्व शासक बाज बहादुर ने यहां शरण ले रखी थी। बीजागढ़ पर कब्जा जमाने के बाद पीर मुहम्मद असीरगढ़ की ओर बढ़ा जहां खानदेश का राजा मीरान मुबारक शाह द्वितीय और मालवा का बाज बहादुर मुगलों से टक्कर लेने की तैयारी कर रहे थे। मुबारक शाह की प्रार्थना पर बरार के तूफाल खां ने भी उनका साथ देना स्वीकार कर लिया। इन तीनों ने मिलकर बीजागढ़ में पीर मुहम्मद के नेतृत्व वाली मुगल सेना को परास्त कर दिया। स्थिति पर काबू पाने के लिए अकबर खुद मांडू की ओर बढ़ा। इससे मीरान मुबारक शाह डर गया और उसने अपना दूत अकबर के पास भेजा। उसने अपनी करतूत के लिए माफी मांगी। उसने अकबर से अपनी एक बेटी की शादी की, अकबर की प्रभुसत्ता स्वीकार की, उसके नाम का खुतबा पढ़ा और अपनी बेटी को दहेजस्वरूप बीजागढ़ और हांडिया प्रदान किया।

1562 में अकबर ने मालवा पर कब्जा जमा लिया। इसके बाद दस वर्षों तक वह दक्खन के संघर्ष को ध्यानपूर्वक परखता रहा। 1574 में, मुरतजा निजाम शाह प्रथम ने बरार पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। तूफाल खां बुरहानपुर भाग गया और उसने अकबर की मदद मांगी। उसने बरार अकबर के हवाले करने की पेशकश की और आग्रह किया कि वह अपना प्रशासक वहां भेज दे। पर मीरान मुबारक शाह मुरतजा निजाम शाह प्रथम को नाराज नहीं करना चाहता था। अतः वह यह नहीं चाहता था कि तूफैल खां ज्यादा समय तक बुरहानपुर में टिके। तूफैल बरार भाग गया। अकबर ने अपना दूत मुरतजा के पास भेजा और उसे बरार पर कब्जा जमाने से मना किया पर उसके संदेश पर मुरतजा ने कोई ध्यान नहीं दिया और बरार को अपने कब्जे में ले लिया।

1586 में मुरतजा का छोटा भाई बुरहान भागकर अकबर के दरबार में गया और गद्दी प्राप्त करने में अकबर की सहायता मांगी, बदले में उसने अकबर की प्रभुसत्ता स्वीकार करने का वचन दिया। अकबर ने मालवा के राज्याध्यक्ष मिर्जा अजीज कोका और राजा अली खां को बुरहान की मदद करने का आदेश दिया। बरार की सीमा पर पहुंचने के बाद बुरहान ने अजीज कोका को वही रूकने का परामर्श दिया। उसने तर्क दिया कि इतनी बड़ी सेना देखकर दक्खनी उसके खिलाफ भड़क उठेंगे। अजीज कोका ने उसका निवेदन स्वीकार कर लिया। बुरहान ने 1591 में गद्दी पर कब्जा जमा लिया। उसने मुगलों की प्रत्यक्ष सहायता के बिना ही गद्दी हथिया ली, अतः उसने अकबर की प्रभुसत्ता मानने से इंकार कर दिया।

1591 में अकबर ने दक्खन के चारों शासकों के पास चार राजनयिक दल भेजे। इसके द्वारा उसने वहां की वास्तविक स्थिति भांपनी चाही और यह जानना चाहा कि ये राज्य उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार हैं या नहीं। केवल राजा अली खां ने अकबर की सर्वोच्चता स्वीकार की और युवराज सलीम के लिए बतौर उपहार अपनी बेटी विवाह के लिए पेश की। अन्य राजाओं का रवैया अनुकूल नहीं था। लगभग सभी दस्तावेजों से पता चलता है कि इस राजनयिक दौर की असफलता के बाद अकबर ने सैन्य आक्रमण करने का निश्चय कर लिया था।

1595 में बुरहान निजाम शाह के बाद उसका बड़ा बेटा इब्राहिम गद्दी पर बैठा पर इसी वर्ष बीजापुर के खिलाफ लड़ता हुआ वह मारा गया। उसकी मृत्यु के बाद अहमदनगर राज्य में अव्यवस्था फैल गयी। यहां चार दल अपने उम्मीदवारों को निजाम शाही गद्दी पर बैठाना चाहते थे। दरबार में दक्खनी दल के नेता और इब्राहिम निजाम शाह के पेशवा मियां मंझू ने एक संदिग्ध स्थित वाले अहमद को नया राजा घोषित कर दिया। अबीसीनियाई दल के नेता इखलास खां ने मोती शाह को निजाम शाही परिवार के सदस्य के रूप में खड़ा किया और उसे नया निजाम घोषित किया। बुरहान द्वितीय की बहन चांद बीबी ने इब्राहिम निजाम शाह के शिशु पुत्र बहादुर का पक्ष लिया। अबीसीनियाई दल के अन्य नेता अभंग खां हब्सी ने बुरहान निजाम शाह प्रथम के बेटे अली का समर्थन किया।

MAADHYAM IAS
achieve your dream

इखलास खां ने बड़ी सेना इकट्ठी कर ली और मियां मंझू को अहमदनगर के किले में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया। मंझू ने गुजरात के राज्याध्यक्ष युवराज मुराद से मदद मांगी। खानदेश से संचालन अच्छे तरीके से संभाला जा सकता था, अतः मुगलों ने वहां के राजा अली खां को गुजरात में नंदुरबर देकर अपने पक्ष में कर लिया। इसके अलावा खानदेश के निकट मुगल सेना की उपस्थिति ने भी उसे ऐसा करने को बाध्य किया। मुगलों ने 1595 में अहमदनगर किले पर घेरा डाल दिया। बाद में मियां मंझू को युवराज मुराद को बुलाने का पछतावा हुआ और वह बीजापुर और गोलकुंडा से मदद प्राप्त करने के लिए औसा चला गया। उसकी अनुपस्थिति में चांद बीबी ने अहमदनगर के किले की प्रतिरक्षा का भार अपने हाथों में ले लिया। बहादुर को नया राजा घोषित किया और उसके नाम का खुतबा पढ़वाया।

इखलास खां और अभंग खां ने चांद बीबी की मदद करने की कोशिश की पर मुगलों ने उन्हें हरा दिया और वे बीजापुर भाग गये। पर मुगल सेनापतियों के आपसी तालमेल के अभाव में घेराबंदी काफी दिनों तक चलती रही। एक तरफ बीजापुर ने अहमदनगर की सहायता के लिए सेना भेज दी और दूसरी तरफ मुगल सेना इस घेराबंदी से अब थक चुकी थी, अतः वे समझौता करने का प्रयास करने लगे। चांद बीबी और मुगलों के बीच एक संधि हुई। इसके तहत बरार पर मुगलों का कब्जा रहा, बहादुर को नये निजाम शाह के रूप में मान्यता मिली और उसे मुगल शासक के मातहत के रूप में मान्यता दी गई। पर इस संधि से शांति स्थापित न हो सकी और मुगल अहमदनगर पर आक्रमण करते रहे। अंततः 1600 में चांद बीबी ने इस किले को समर्पित करने का फैसला किया और बहादुर के साथ जुन्नार में शांति का जीवन बिताने लगी।

खानदेश का बहादुरशाह मुगलों से बहुत खुश नहीं था। 1600 में अकबर बुरहानपुर पहुंचा, उसकी आगवानी करने के बजाय बहादुर असीरगढ़ चला गया। अकबर ने अब्बुल फजल को बहादुर से संपर्क स्थापित करने और अपने व्यवहार

के लिए माफी मांगने के लिए उपस्थित होने का आदेश दिया। पर अब्बुल फजल इसमें कामयाब न हो सका। अकबर ने किले को घेर लिया और 1601 में इस पर कब्जा जमा लिया। बहादुर ने अकबर के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और खानदेश एक मुगल प्रांत बन गया।

अहमदनगर और असीरगढ़ के पतन से अन्य दक्खनी शासक डर गये। बीजापुर, गोलकुंडा और बीदर के शासकों ने अकबर के पास अपने-अपने दूत भेजे, जिनका उसने भरपूर स्वागत किया। अकबर ने अपने दूत भी उनके पास भेजे। अकबर ने अपने एक विश्वस्त व्यक्ति खान खाना को दक्खनी मामलों की देखरेख का भार सौंपा। 1601 में अकबर के दक्खन से आगरा की ओर कूच करते ही निजामशाही सरदार मलिक अम्बर के आसपास जमा होने लगे। अहमदनगर के पतन के बाद मलिक अम्बर ने बुरहान निजाम शाह प्रथम के पोते मुरतजा को गद्दी पर बैठाया और खुद उसका पेशवा बन गया उसने खिरकी को अपने राज्य की राजधानी बनाया और मुगल सेना पर गुरिल्ला ढंग से आक्रमण करने लगा। मलिक अम्बर और राजू दक्खनी की चुनौती, मुगल सरदारों की आपसी दुश्मनी तथा उत्तर भारत की स्थिति को देखते हुए अकबर ने दक्खन में मुगल सत्ता को मजबूत बनाने के लिए सैन्य शक्ति की अपेक्षा कूटनीतिक चालों का अधिक सहारा लेने का निश्चय किया।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़िए और सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए।
   i) अकबर दक्खनी राज्यों पर मुगल सत्ता स्थापित करने वाला पहला मुगल शासक था।
   ii) अहमदनगर के आंतरिक कलह के कारण मुगलों को हस्तक्षेप करने का मौका मिला।
   iii) अकबर अहमदनगर किले पर नियंत्रण स्थापित करने में असफल रहा।
   iv) अपने धार्मिक आग्रह के कारण अकबर दक्खन राज्यों पर मुगल प्रभुसत्ता स्थापित करना चाहता था।

2) अकबर दक्खन में हस्तक्षेप करने को क्यों प्रेरित हुआ? (पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।

....

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

9.3 जहांगीर और दक्खनी राज्य

जहांगीर ने भी दक्खन में अकबर की विस्तारवादी नीति का अनुसरण करने का प्रयास किया। पर निम्नलिखित कारणों से दक्खन में अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में वह असफल रहा,

- वह अपने को पूरी तरह इस कार्य के प्रति समर्पित नहीं कर सका.
- मुगल कुलीनों के दरबारी षडयंत्र और वैमनस्य को दक्खन में मूर्त रूप लेने का मौका मिला,
- मलिक अम्बर के श्रेष्ठ नेतृत्व के कारण भी जहांगीर अपने उद्देश्यों में सफल न हो सका।

पहले तीन वर्षों में दक्खनियों ने बालघाट के आधे हिस्से और अहमदनगर के कई जिलों पर अधिकार जमा लिया। 1608 में अबदुर्रहीम खान खाना को दक्खन भेजा गया पर उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा और दक्खनियों ने संपूर्ण बालघाट और कई साम्राज्यी चौकियों पर कब्जा कर लिया। 1610 में जहांगीर ने युवराज परवेज को नेतृत्व का भार सौंपा पर मुगल कोई सफलता हासिल करने के बजाय अहमदनगर के किले और अहमदनगर के आधे से अधिक हिस्से को खो बैठे। निजामशाहियों से घूस लेने का आरोप लगने के बाद आसफ खां ने जहांगीर से स्वयं नेतृत्व संभालने का आग्रह किया। जहांगीर को यह विचार अच्छा लगा परन्तु खान जहां लोदी की सलाह पर उसने उसे दक्खन जाने का आदेश दिया। खानखाना और खान जहां लोदी की आपसी दुश्मनी के कारण खान जहां लोदी के आग्रह पर खानखाना को राजशाही दरबार में बुला लिया गया।

मेवाड़ अभियान की सफलता ने जहांगीर को सम्बल प्रदान किया और वह दक्खन के मामलों में पड़ने के लिए अपेक्षाकृत स्वतंत्र हो गया। पर दक्खन में मुगलों के विस्तार का उसका हर प्रयास बुरी तरह विफल रहा। 1612 में एक बार फिर खानखाना को दक्खन भेजा गया। इस समय तक खानखाना के प्रतिद्वंद्वी या तो मर चुके थे या दक्खन से उनका स्थानांतरण कर दिया गया था। दूसरी तरफ मलिक अम्बर के दल में कई गुट हो गये थे। खानखाना ने इस परिस्थिति का फायदा

उठाया और कई दक्खनी और मराठा सरदारों को अपनी ओर मिला लिया। मलिक अम्बर के आग्रह पर बीजापुर और गोलकुंडा के शासकों ने उसकी मदद के लिए सेना भेजी। पर मलिक अम्बर बुरी तरह पराजित हुआ, मुगल खिरकी तक पहुंच गये और 1616 में इसे जला दिया।

मुगलों की यह विजय दिखावटी ही नहीं बल्कि अल्पजीवी भी सिद्ध हुई। मुगल किसी क्षेत्र पर भी कब्जा नहीं जमा सके। दूसरी तरफ मलिक अम्बर ने पुनः अपनी स्थिति मजबूत की और खिरकी पर पुनः कब्जा कर लिया। जहांगीर ने दक्खन से युवराज परवेज को वापस बुला लिया और 1616 में वहां खुर्रम को नियुक्त किया। स्थिति पर नजदीक से नजर रखने के लिए बादशाह खुद अजमेर से मांडू आ गया। खुर्रम ने अपना दूत बीजापुर और गोलकुंडा शासकों के पास भेजा, जिसका उन्होंने स्वागत किया। निजामशाह ने बीजापुर क्षेत्र पर कब्जा करने का प्रयास किया था, इस कारण से निजामशाह और बीजापुर के संबंधों में तनाव आ गया था। कुतुबशाह मुगलों का विरोध करने की ताकत नहीं रखता था। निजामशाह की शक्ति भी काफी खर्च हो चुकी थी और वे शत्रु का सामना करने में समर्थ नहीं था।

आदिल शाह ने खुर्रम को आश्वासन दिया कि वह मुगल साम्राज्य के क्षेत्रों को लौटा देगा और नजराना दिया करेगा। उसने मलिक अम्बर के पास अपना दूत भेजा और उसे साम्राज्य की शर्तें मानने के लिए मजबूर किया। मलिक अम्बर ने बालघाट समर्पित कर दिया और मुगलों को अहमदनगर का किला सौंप दिया। खुर्रम आदिलशाह से काफी खुश था। उसके अनुमोदन पर जहांगीर ने आदिलशाह को फरजंद (बेटा) की उपाधि से सम्मानित किया। दक्खन में प्रशासनिक व्यवस्था करने के बाद खुर्रम 1617 में मांडू गया। वहां बादशाह ने खुर्रम का ओहदा 20,000 **ज़ात** और 10,000 **सवार** से बढ़ाकर 30,000 **ज़ात** और 20,000 **सवार** कर दिया और उसे शाहजहां की उपाधि प्रदान की। जहांगीर ने खुर्रम की सफलता की भरपूर प्रशंसा की। पर खुर्रम की इस प्रशंसा और मुगल दरबार की खुशी अर्थहीन थी। खुर्रम ने दक्खन में मुगल साम्राज्य को न तो बढ़ाया था और न ही दक्खन में स्थाई शांति के लिए कोई व्यवस्था की थी। उसने केवल अस्थाई तौर पर मुगलों की स्थिति मजबूत की थी।

मलिक अम्बर जहांगीर से श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ था। उसने इस समय का उपयोग अपनी शक्ति मजबूत करने के लिए किया। यह शांति केवल तीन वर्षों तक कायम रह सकी। इस काल के दौरान आदिल शाह और कुतुब शाह के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए गये, उनसे सहायता की मांग की और एक गठबंधन तैयार किया।

जहांगीर और शाहजहां 1619 में कश्मीर गये और वहां कांगड़ा पर आक्रमण करने में व्यस्त हो गये। मलिक अम्बर ने इस अवसर का उपयोग किया और खानदेश, बरार तथा अहमदनगर के अधिकांश हिस्सों पर कब्जा जमा लिया और यहां तक कि मांडू पर घेरा डाल दिया। जहांगीर ने 1620 में शाहजहां को फिर से दक्खन भेजा। शाहजहां ने मलिक अम्बर को कई मौकों पर हराया और खिरकी को नष्ट कर दिया। मलिक अम्बर ने संधि की पेशकश की, जिसे शाहजहां ने स्वीकार कर लिया। एक संधि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार 1618 के बाद कब्जे में लिए गये सारे साम्राज्यी इलाके के अलावा चौदह कोस का क्षेत्र मुगलों को सौंपना था, कुतुब शाह, आदिल शाह और निजाम शाह को क्रमशः 20, 18 और 12 लाख रुपये बतौर युद्ध हरजाना देना था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

जब मुगल सरदार महाबत खां को दक्खन में शाहजहां के विद्रोह को दबाने के लिए भेजा गया तो उसने मलिक अम्बर के खिलाफ आदिल शाह से संधि कर ली पर मलिक अम्बर ने इस गठबंधन को 1625 में भाटवादी में हरा दिया। अब मलिक अम्बर ने अहमदनगर पर कब्जा जमाने का प्रयत्न किया, पर यहां असफल होकर उसने आदिल शाह से शोलापुर छीन लिया और शाहजहां की सहायता से बुरहानपुर पर कब्ज़ा जमाना चाहा पर इसमें सफलता नहीं मिली। जहांगीर के समक्ष शाहजहां के आत्मसमर्पण के बाद मलिक अम्बर ने भी दुश्मनी का रवैया छोड़ दिया। वह 1626 में मर गया और उसके पुत्र फतह खान को राज्य का वकील और पेशवा नियुक्त किया गया। पर उसकी उदण्डता के कारण दक्खनियों और हब्शियों के बीच की खाई चौड़ी हो गई। इसके परिणामस्वरूप उसके कई सरदारों ने मुगल सेवा स्वीकार कर ली।

जहांगीर के शासन काल में मुगल साम्राज्य के दक्खन क्षेत्र में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई। मुगल दरबार की राजनीति, दक्खन में सेवरत मुगल सरदारों के आपसी मनमुटाव और उनके द्वारा दक्खनी शासकों से घूस लिए जाने के कारण दक्खनी राज्यों में मुगलों की सत्ता कमजोर हो गयी। जहां तक दक्खनी राज्यों का सवाल है, मलिक अम्बर की अति महत्वाकांक्षा ने दक्खन राज्यों को संगठित नहीं होने दिया।

9.4 शाहजहां और दक्खनी राज्य

जहांगीर की मृत्यु और शाहजहां के गद्दी पर बैठने के बीच के काल में दक्खन के मुगल राज्याध्यक्ष खान जहां लोदी ने निजाम शाह से जरूरत के वक्त सहायता प्राप्त करने के ध्येय से बालघाट निजाम शाह को सौंप दिया। गद्दी पर बैठने के बाद शाहजहां ने खान जहां लोदी को बालघाट वापस लेने का आदेश दिया, पर उसे सफलता न मिलने पर शाहजहां ने उसे दरबार में बुलाया। खान जहां दक्खन भाग गया और उसने निजाम शाह की शरण ले ली। उसकी बगावत, निजाम शाह द्वारा उसे शरण देना, तथा बालघाट के नुक्सान के कारण शाहजहां ने दक्खन राज्यों के प्रति आक्रामक नीति अपनायी। इसी समय निजाम शाही पेशवा हमीद खां की पत्नी ने बुरहान तृतीय को उसके भाई फतह खान को छोड़ देने का सुझाव दिया। राजा ने उसे छोड़ दिया पर थोड़े समय बाद उसे मार दिया और 1632 में उसके बेटे हुसैन को गद्दी

पर बैठा दिया और तब शाहजहां के नाम का खुतबा पढ़ा और सिक्कों पर उसका नाम खुदवाया। शाहजहां ने खान जहां लोदी की बगावत को दबा दिया, बालघाट और बरार पर पुनः कब्जा जमा लिया, दक्खन पर मुगल आधिपत्य स्थापित कर लिया और फिर उत्तर की ओर लौट आया। बीजापुर के सरदार रंदौला खां के समझाने-बुझाने पर फतह खां मुगलों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार हो गया। इसके परिणामस्वरूप 1633 में महावत खां ने निजाम शाही शासकों से दौलतावाद का किला छीन लिया। उसने फतह खां और हुसैन निजाम शाह को कैद कर लिया। निजाम शाह को ग्वालियर किले में कैद कर लिया गया और फतह खां को जागीर प्रदान की गयी।

एक निजामशाही सरदार शाह जी भौंसले राज्य की रक्षा के लिए आगे आया। उसने कई किलों पर कब्जा जमाया और शाही परिवार के एक युवराज को मुरतजा निजाम शाह तृतीय की उपाधि के साथ गद्दी पर बैठा दिया। उसकी इन गतिविधियों के कारण शाहजहां को 1630 में दक्खन आना पड़ा और युद्ध का एक नया दौर शुरू हुआ। शाहजी पराजित हुए और मुगलों ने कई किले जीत लिए। इसके बाद उन्होंने बीजापुर के कई इलाकों को तहस-नहस कर दिया और काफी क्षेत्र पर कब्जा जमा लिया। मुहम्मद आदिल शाह ने संधि की प्रार्थना की। 1636 में एक संधि हुई जिसके अनुसार निजामशाही राज्य का अस्तित्व समाप्त कर दिया गया। इसे मुगलों और बीजापुर के बीच बांट दिया गया। भीम नदी के उत्तर का इलाका मुगलों के अधीन रहा और दक्षिण का इलाका आदिल शाह के कब्जे में रहा। संक्षेप में संधि की शर्तें इस प्रकार थीं:

1) निजामशाही राज्य बीजापुर और मुगल साम्राज्य के बीच विभक्त कर दिया गया। बीजापुर को पूरा कोंकण, धाकन, और सिना के उस पार के परेंदा और शोलापुर के परगने, भीम और सिना के बीच वेंगी जिला और कल्याणी के उत्तर-पूर्व मनजीरा नदी के किनारे भाल्की जिला प्राप्त हुआ।
2) आदिल शाह को उदगिर और आउसा किले पर अपनी दावेदारी छोड़नी थी और निजामशाही के अधिकारियों से किला छीनने में किए गये मुगल प्रयासों में कोई बाधा नहीं डालनी थी।
3) कोई भी दल इस संधि द्वारा निर्धारित सीमा का उल्लंघन नहीं करेगा।
4) आदिल शाह को मुगल सम्राट को बतौर नजराना बीस लाख रुपये देने थे
5) आदिल शाह को कुतुबशाह के साथ अच्छा संबंध बनाए रखना था, क्योंकि कुतुबशाह ने प्रतिवर्ष मुगलों को 2 लाख रुपये बतौर नजराना देना कबूल किया था तथा उसने मुगल सम्राट का मातहत बनना स्वीकार किया था।
6) दोनों दल न तो एक-दूसरे के अधिकारियों और सैनिकों को घूस देंगे न उन्हें नौकरी या शरण देंगे।
7) अगर शिवाजी भोंसले आदिल खां की नौकरी करना चाहे तो उसे मुगल अधिकारियों को जुन्नार, त्रिम्बक और प्रेमगढ़ के किले सौंपने होंगे।

इस प्रकार बीजापुर मुगल साम्राज्य का एक अधीनस्थ दोस्त बन गया, हालांकि इसकी स्वतंत्रता कायम रही। बीजापुर के शासक ने 1636 की संधि शर्तों को ध्यान में रखते हुए दक्षिण में अपने क्षेत्र का विस्तार किया। लेकिन डच रिकार्ड के अनुसार शाहजहां के निर्देश पर आदिलशाह और कुतुबशाह ने कर्नाटक पर कब्जा जमाया था।

MAADHYAM IAS

1936 की संधि ने मुगल-बीजापुर संबंधों को बिल्कुल उलट दिया। 1636 तक मुगल आदिलशाही शासकों को अपने पक्ष में करने की कोशिश कर रहे थे क्योंकि दक्खनी राज्यों में यह सबसे मजबूत था। मुगलों ने हमेशा अन्य दक्खनी राज्यों से बीजापुर का गठबंधन न होने देने का प्रयास किया ताकि मुगलों के खिलाफ वे शक्तिशाली न बन जाएं और इस प्रकार एक के बाद एक दक्खनी राज्यों पर कब्जा जमाते चले गये। अहमदनगर राज्य के अस्तित्व की समाप्ति के बाद मुगल बीजापुर की सीमा तक पहुंच गये और इससे बीजापुर पर मुगल आधिपत्य स्थापित होने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

बीस वर्षों (1636-56) तक मुगल-बीजापुर संबंध सौहार्दपूर्ण और शांतिपूर्ण बने रहे। केवल दो अवसरों पर सम्राट आदिलशाह से अप्रसन्न हुए। 1642-43 में आदिलशाह ने अपने सरदार मुस्तफा खां को गिरफ्तार कर लिया जो मुगलों का हमदर्द था। शाहजहां के हस्तक्षेप के बाद आदिलशाह ने उसे पुनः पद पर प्रतिष्ठित किया। आदिलशाह ने कुछ दुःसाहसपूर्ण तौर-तरीके अपना रखे थे। शाहजहां इस प्रकार की धृष्टता को पसंद नहीं करता था अतः उसने इन तरीकों को बंद करने का आदेश दिया। वह लगातार मुगल सम्राट को पेशकश (नजराना) भेजता रहा। 1648 में शाहजहां ने मुहम्मद अली शाह को "शाह" की उपाधि से सम्मानित किया।

1656 में आदिल शाह की मृत्यु हो गयी और इसके बाद बीजापुर के प्रति मुगल दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण बदलाव आया। युवराज औरंगजेब ने इस मौके का फायदा उठाकर बीजापुर पर आक्रमण करने का मन बना लिया। उसने सम्राट को पत्र लिखा कि मुहम्मद आदिल शाह का उत्तराधिकारी अली आदिलशाह द्वितीय उसका अपना पुत्र नहीं है बल्कि उसे गोद लिया गया है। औरंगजेब ने बीजापुर के कई सरदारों को भी अपने पक्ष में कर लिया था। यह भी माना जाता है कि मुगल साम्राज्य की आर्थिक स्थिति के कारण भी शाहजहां ने अपनी दक्खनी नीति में परिवर्तन किया। शाहजहां ने औरंगजेब को आदेश दिया कि अगर संभव हो तो पूरे बीजापुर पर कब्जा जमा लो, अगर यह न हो सके तो पुराने अहमदनगर राज्य के उस हिस्से पर कब्जा जमा लो जो 1636 की संधि के अनुरूप बीजापुर के पास था और युद्ध का हरजाना देने तथा मुगल संप्रभुता स्वीकार कर लेने की शर्त पर राज्य को छोड़ दो। इस प्रकार शाहजहां ने 1636 की संधि तोड़ डाली। सम्राट को बीजापुर के उत्तराधिकार के प्रश्न पर हस्तक्षेप करने या उस पर मुहर लगाने का कोई कानूनी अधिकार नहीं प्राप्त था। औरंगजेब ने बीदर और कल्याणी पर भी कब्जा जमा लिया। बीजापुर तक का रास्ता बिल्कुल साफ था। पर दारा शिकोह की सलाह पर शाहजहां ने औरंगजेब को यह अभियान बंद करने की सलाह दी। बीजापुर का शासक बीदर, कल्याणी और युद्ध के हरजाने के तौर पर एक करोड़ रुपये देने को राजी हो गया। लेकिन इस समय मुगलों की कमजोरी को महसूस करते हुए आदिलशाह ने राशि अदा नहीं की।

शाहजहां के गद्दी पर बैठने के पहले तक गोलकुंडा के साथ मुगल साम्राज्य का संबंध केवल राजनयिक आदान-प्रदान तक सीमित था। वह मुगलों के खिलाफ निजामशाही और आदिलशाही राज्यों तथा मराठों को सैनिक और वित्तीय सहायता दिया करता था। आपने आदिलशाह के साथ 1636 की मुगल संधि का अध्ययन ऊपर किया है। इसी वर्ष अब्दुला कुतुबशाह ने अधीनता और शिष्टाचार के संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इसकी प्रमुख शर्तें इस प्रकार थी :

1) शुक्रवार की नमाज में बारह इमामों के स्थान पर चार खलीफाओं का तथा ईरानी शासक के स्थान पर मुगल सम्राट का नाम लिया जाएगा।
2) मुगल सम्राट के नाम से सिक्के ढाले जाएंगे।
3) शाहजहां के नौवें शासकीय वर्ष से प्रतिवर्ष 2 लाख **हून** सम्राट को भेजे जाएंगे।
4) सम्राट के दोस्त और दुश्मन अब्दुल्ला के दोस्त और दुश्मन होंगे।
5) अगर आदिल खां गोलकुंडा पर चढ़ाई करने की कोशिश करता है, तो अब्दुल्ला उसे भगाने में सम्राट की सहायता लेगा, लेकिन अगर दक्खन का मुगल राजाध्यक्ष उसकी याचिका को अग्रसारित करने से इन्कार करता है और उसे आदिलशाह को हरजाना देने को बाध्य होना पड़ता है तो इस राशि को मुगल सम्राट को दिए जाने वाले पेशकश से घटा दिया जाएगा।

इस संधि ने कुतुबशाह को मुगल सम्राट का अधीनस्थ बना दिया। इस संधि के बाद अब्दुल्ला कुतुबशाह मुगलों की तरफ से निश्चिंत हो गया और कर्नाटक के बड़े हिस्से पर कब्जा जमा लिया। अब्दुल्ला ने अपने सरदार मुहम्मद सैयद मीर जुमला को कर्नाटक पर कब्जा जमाने का आदेश दिया। इन अभियानों के दौरान मीर जुमला के पास अच्छी-खासी रकम इकट्ठी हो गयी। उसने हीरों का व्यापार शुरू कर दिया, जिससे उसे काफी आमदनी हुई। शाही सेना के अतिरिक्त वह अपनी निजी सेना भी रखता था। वह गांडिकोटा से इस क्षेत्र में एक सम्राट के रूप में शासन करता था। इस प्रकार उसे और उसके परिवार के सदस्यों को काफी घमंड हो गया। यहां तक कि उसका बेटा मुहम्मद अमीन नशे की हालत में महल में घुस गया और कालीन पर उल्टी कर दी। अब्दुल्ला ने मीर जुमला को दरबार में आने का आदेश दिया पर इसके बजाय वह युवराज औरंगजेब से पत्र-व्यवहार करता रहा। अब्दुल्ला ने अमीन को कोविलकोंडा किले में बंदी बना लिया और उसकी संपत्ति जब्त कर ली। जल्द ही शाहजहां ने मीर जुमला को 5000 **ज़ात** और उसके पुत्र को 2000 **ज़ात** का ओहदा प्रदान किया।

1656 में शाहजहां ने **पेशकश** (नजराना) की बकाया राशि और गोलकुंडा **हून** और मुगल रुपया के आदान-प्रदान को लेकर अब्दुल्ला से झगड़ा करना शुरू कर दिया। 1936 की संधि के समय एक गोलकुंडा **हून** चार मुगल रुपए के बराबर था। अब 1656 में यह पांच रुपए के बराबर हो गया। शाहजहां ने नये दर पर बकाया राशि की अदायगी के लिए दबाव डालना शुरू किया जबकि कुतुबशाह पुराने दर पर अड़ा रहा। शाहजहां ने उदंड मीर जुमला को भी अपने पक्ष में मिला लिया।

मुगलों और अब्दुल्ला का संबंध इस हद तक तनावपुर्ण हो गया कि मुगलों ने गोलकुंडा किले पर घेराबंदी डाल दी। पर कुछ समय बाद युवराज दारा की सलाह पर सम्राट ने औरंगजेब को घेरा उठा लेने का आदेश दिया। औरंगजेब और अब्दुल्ला के बीच हड़बड़ी में एक संधि हुई जिसके अनुसार अन्य शर्तों के अलावा रामगीर पर मुगलों का आधिपत्य हो गया।

MAADHYAM IAS

हालांकि इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं है, फिर भी कुछ इतिहासकारों का मानना है कि साम्राज्य के वित्तीय संकट, जागीर व्यवस्था के संकट और कोरोमंडल तट के वाणिज्य पर मुगलों का नियंत्रण स्थापित करने के ध्येय के कारण शाहजहां ने 1636 की संधि को तोड़ा और 1656-57 में गोलकुंडा और बीजापुर में हस्तक्षेप किया। कुछ भी कारण हो, इतना स्पष्ट है कि 1656-57 में मुगल नीति में बदलाव के कारण मुगल साम्राज्य को कोई साकारात्मक फायदा नहीं हुआ। इसके बदले दक्खनी राज्य मुगल साम्राज्य को शक की निगाह से देखने लगे। दक्खन की समस्याओं को सुलझाने के बजाय, शाहजहां की नीति से दक्खन की स्थिति अंततः काफी उलझ गयी।

बोध प्रश्न 2

1) दस पंक्तियों में जहांगीर की दक्खन नीति का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) शाहजहां और निजामशाही राज्य के बीच हुई 1636 की संधि की 5 प्रमुख शर्तों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

9.5 औरंगजेब और दक्खनी राज्य

औरंगजेब दक्खन राज्यों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण का समर्थक था। सिंहासन हासिल करने के बाद उसे दक्खन में बड़ी जटिल परिस्थिति का सामना करना पड़ा। मराठों की बढ़ती शक्ति और मुगलों के प्रति संदेहपुर्ण दृष्टि ने दक्खन में औरंगजेब की आक्रामक नीति को काफी संयमित कर दिया। औरंगजेब का सबसे पहला काम बीजापुर और गोलकुंडा को 1657 की संधि से बांधे रखना तथा संधि के तहत प्राप्त इलाकों पर आधिपत्य जमाना था। पर मुगल सरदार जय सिंह मराठों की सहायता लेकर दक्खन में एक आक्रामक नीति अपनाना चाहता था। इस क्रम में उसने शिवाजी के साथ पुरन्दर की संधि (1664) की। इसके बाद जयसिंह ने बीजापुर पर कब्जा जमाने के दो असफल प्रयत्न किए। 1672 में आदिलशाह की मृत्यु, एक बच्चे सिकंदर आदिलशाह का गद्दी पर बैठने और बीजापुर दरबार के षडयंत्र का लाभ उठाकर औरंगजेब ने बीजापुर में हस्तक्षेप किया। औरंगजेब ने एक बहादुर सेनानायक बहादुर खां को दक्खन का राज्याध्यक्ष नियुक्त किया। बहादुर खां ने बीजापुर के सरदारों को अपने पक्ष में मिलाना शुरू कर दिया। ख्वास खां उन सरदारों में से था जो मुगल-बीजापुर गठबंधन का उपयोग शिवाजी के खिलाफ करना चाहते थे। लेकिन इसे कार्यान्वित होने से पहले ही वह पदच्युत कर दिया गया। अपने इस प्रयास में असफल होकर मुगल 1676 में बीजापुर में दक्खनी दल को अफगानी सरदार बहलोल खां के खिलाफ भड़काने लगे। पर बहलोल खां बहादुर को लगातार पराजित करता रहा। इसके बाद बहादुर खां ने एक बृहद् सेना का निर्माण शुरू किया जिससे बहलोल घबड़ा गया। बहलोल खां ने बहादुर खां के साथ संधि कर ली और 1677 में मुगलों द्वारा नालदुर्ग और गुलबर्गा पर कब्जा जमाए जाने पर चुपचाप बैठा रहा। इसके बाद उसने मुगल सेनानायक दिलेर खां से संधि कर ली और बहादुर खां के खिलाफ औरंगजेब को पत्र लिखा कि वह दक्खन में मुगल हित में बाधक बन रहा है। औरंगजेब ने बहादुर खां को वापस बुला लिया और दिलेर खां को दक्खन के सूबेदर के रूप में काम करने का आदेश दिया।

बीजापुर के प्रतिशासक (रीजेन्ट) सिद्दी मसूद ने गुलबर्गा में मुगलों के साथ एक समझौता किया। इन शर्तों के अनुसार (1) सिद्दी मसूद को बीजापुर का वजीर बनाया गया, पर उसे औरंगजेब के आदेशों का पालन करना था। (2) उसे शिवाजी से कोई संधि नहीं करनी थी और उसके खिलाफ मुगलों को मदद करनी थी। (3) आदिलशाह की बहन की शादी औरंगजेब के एक लड़के से होनी थी, पर बीजापुर लौटने के बाद सिद्दी मसूद ने समझौते की किसी भी शर्त का पालन नहीं किया। उसने शिवाजी से दोस्ती करनी चाही। दिलेर खां ने सिद्दी मसूद से संधि की शर्तें मनवाने का प्रयत्न किया पर वह असफल रहा। औरंगजेब ने बीजापुर पर आक्रमण करने का आदेश दिया क्योंकि बहलोल खां मर चुका था. अफगान सैनिक बिखर गये थे और बीजापुर दरबार विभिन्न धड़ों के आपसी संघर्ष का अखाड़ा बन गया था। दिलेर खां ने बीजापुर के सामंतों को घूस दिया, उन्हें अपने पक्ष में मिलाया और मुगलों के मातहत काम करने वाले बीजापुरी सैनिकों का एक दल निर्मित किया। पर मसूद दोहरी राजनीति खेलता रहा। एक तरफ वह मुगलों के खिलाफ शिवाजी के साथ संधि करता रहा और दूसरी तरफ दिलेर खां से शिवाजी के खिलाफ संबंध जोड़ता रहा। एक मुगल सैनिक दस्ते को बीजापुर में आमंत्रित किया गया, उनका शाही स्वागत किया गया और फिर उन्हें बीजापुर की फौज के साथ मराठों के खिलाफ अभियान में भेज दिया गया। इसी समय दिलेर खां ने शिवाजी के कई ठिकानों पर कब्जा कर लिया और कई ठिकानों को बरबाद कर दिया। सिद्दी मसूद की स्थिति काफी कमजोर हो गयी क्योंकि उसके अधिकांश सिपाही दिलेर खां के दल में शामिल हो गये। अतः 1679 में आदिलशाह की बहन को युवराज आजम के साथ शादी करने के लिए मुगल दरबार में भेजा गया। दक्खन के मुगल राज्याध्यक्ष शाह आलम और दिलेर खां की दुश्मनी के कारण शाह आलम को 1680 के आरंभ में बीजापुर के साथ संधि करनी पड़ी। बीजापुर में औरंगजेब के नाम का खुतबा पढ़ा गया और उसके नाम का सिक्का ढाला गया।

दक्खन के राजदूत के रूप में यह शाह आलम की सबसे बड़ी सफलता थी। शाहजहां और औरंगजेब जिस लक्ष्य को सैनिक कुशलता से हासिल न कर सके उस लक्ष्य को उसने शांतिपूर्वक कूटनीतिक सफलता से पा लिया। उसने बीजापुर पर मुगल आधिपत्य स्थापित कर दिया। आदिलशाह कमजोर था अतः उसने मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लिया। दरबारी गुटबंदी के कारण उसका प्रशासन कमजोर था और उसके सरदार उसका साथ छोड़कर मुगलों के साथ मिल गये थे।

मुग़लों और बीजापुर का यह मधुर संबंध सम्भाजी को लेकर समाप्त हो गया। मुगल सम्भाजी के खिलाफ बीजापुर की मदद चाहते थे जबकि बीजापुर अंदर ही अंदर मराठों को सहयता पहुंचा रहा था। 1682-83 के दौरान मुगलों ने बीजापुर के इलाकों को रौंद डाला और बीजापुर पर भी कब्जा जमाने की कोशिश की, पर वे असफल रहे। 1684 में औरंगजेब ने आदिलशाह के समक्ष निम्नलिखित मांगें रखीं :

(i) मुगल सेना को खाने-पीने का सामान प्रदान करना, (ii) सम्भाजी के खिलाफ बढ़ती सेना का मार्ग प्रशस्त करना, (iii) मराठों के विरुद्ध मुगल अभियान के लिए पांच से छः हजार घुड़सवार देना, (iv) सम्भाजी के साथ कोई संबंध नहीं रखना, और (v) शारज़ा खां नामक सरदार को बीजापुर से निकाल बाहर करना।

इन मांगों को पूरा करने की बात तो दूर रही, आदिल शाह ने अपनी तरफ से मांगें रख दीं : (i) दिलेर खां द्वारा ली गयी रकम को लौटाना, (ii) मुगलों द्वारा शारज़ा खां की जागीर पर दखल छोड़ना, और (iii) मुगलों द्वारा बीजापुर के क्षेत्र पर किए कब्जे को छोड़ना।

उसने शारज़ा खां को इस तर्क पर बाहर निकालना नामंजूर कर दिया कि अगर उसे निकाला गया तो वह मराठों से जाकर मिल जाएगा। इस परिस्थिति में मुगलों और बीजापुर के बीच की खाई चौड़ी हो गयी। सम्राट के आदेश पर मुगलों ने 1685 में बीजापुर के खिलाफ अभियान शुरू कर दिया और 1686 में सिकंदर आलिशाह ने आत्मसमर्पण कर दिया। उसे बंदी बना लिया गया और बीजापुर राज्य मुगल साम्राज्य का एक अंश बन गया।

औरंगजेब गोलकुंडा की गतिविधियों खासकर मदन्ना और अकन्ना की भूमिका से प्रसन्न नहीं था, जिन्होंने मुगलों के खिलाफ मराठों से हाथ मिला लिया था। वह जानता था कि अब्दुल्ला कुतुब शाह शिवाजी के पुत्र सम्भाजी की वित्तीय सहायता कर रहा है। 1685 में मुगल आक्रमण के दौरान उसने सिकन्दर आदिल शाह को बड़ी सैन्य मदद देने का वादा किया था। यह बात सम्राट को मालूम थी। उसने युवराज मुअज्जम को कुतुबशाही क्षेत्र पर आक्रमण करने का आदेश दिया।

1686 में मलखेर के द्वितीय युद्ध में कुतुबशाही सेना ध्वस्त हो गई। इसके परिणामस्वरूप कई कुतुबशाही सरदार मुगल सेना में मिल गये जिसके कारण अब्दुल्ला को हैदराबाद छोड़ना पड़ा और उसने अपने आप को गोलकुंडा किले में बंद कर लिया। 1687 में सम्राट ने गोलकुंडा किले के काफी नजदीक पहुंचकर उस पर घेरा डाल दिया। आठ महीने की घेराबंदी के बाद अब्दुल्ला ने मुगलों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उसे दौलताबाद किले में कैद कर दिया गया और गोलकुंडा मुगल साम्राज्य का अंग बन गया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

9.6 मुगलों की दक्खनी नीति का मूल्यांकन

ऊपर किए गये सर्वेक्षण से यह स्पष्ट है कि मुगलों की दक्खनी नीति में मुगलों की व्यक्तिगत आकांक्षा या धार्मिक तत्व की कोई भूमिका नहीं थी। हमने आरंभिक भागों में देखा कि अकबर के समय से ही मुगलों और दक्खनी राज्यों के संबंधों में बदलाव आते रहे। इन बदलावों को मुगल साम्राज्य के सामाजिक-आर्थिक और प्रशासनिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में देखना उपयुक्त होगा। अकबर का मुख्य उद्देश्य दक्खन में मुगल सत्ता की स्थापना और "सूरत भीतरी प्रदेश" की रक्षा करना था। वह जानता था कि केवल सैनिक अभियान की सहायता से इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं की जा सकती है। अतः उसने कूटनीतिक चालों का भी सहारा लिया।

जहांगीर चाहता था कि 1600 की संधि के तहत अकबर ने मुगल साम्राज्य का आधिपत्य दक्खन में जहां तक स्थापित किया था, वह बना रहे। दक्खन की स्थिति को भांपते हुए और साम्राज्य की अंदरूनी समस्याओं को देखते हुए उसने यथास्थिति की यह नीति अपनाई। अहमदनगर द्वारा 1600 ई. की संधि का उल्लंघन किए जाने पर शाहजहां ने अहमदनगर के खिलाफ आक्रामक रुख अपनाया और 1636 ई. की संधि लागू कर दक्खनी समस्या को अगले 20 वर्षों तक के लिए सुलझा दिया। एक बार फिर कर्नाटक प्रदेश में बीजापुर और गोलकुंडा के बढ़ते प्रभाव और साम्राज्य के वित्तीय संकट के कारण शाहजहां को अपनी नीति बदलनी पड़ी। यहां तक कि औरंगजेब, जो अपने राज्यारोहण के पूर्व दक्खन में आक्रामक नीति का पक्षधर था, भी बीजापुर और गोलकुंडा पर एकदम कब्जा जमाने के पक्ष में नहीं था। मराठों की बढ़ती शक्ति, मराठों और बीजापुर-गोलकुंडा के आपसी गठबंधन के खतरे और साम्राज्य के आंतरिक संकट ने औरंगजेब को 1680 के दशक में बीजापुर और गोलकुंडा पर कब्जा करने को बाध्य किया। इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि मुगलों की दक्खनी नीति मुगल शासकों की व्यक्तिगत इच्छा की अपेक्षा समकालीन परिस्थिति से पनपी जरूरतों से निर्देशित हुई।

कुछ इतिहासकार मुगलों की दक्खन नीति की यह कहकर आलोचना करते हैं कि इसे गलत ढंग से संचालित किया गया और इसका परिणाम मुगल साम्राज्य को अंततः भोगना पड़ा। इस प्रकार की टिप्पणी ऐतिहासिक तौर पर गलत है।

दक्खन में मराठों के बढ़ते प्रभाव और दक्खनी राज्यों के आपसी झगड़े को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि दक्खन में मुगलों का हस्तक्षेप अवश्यंभावी था। अगर हम मुगलों की दक्खनी नीति के विभिन्न चरणों को ध्यान से देखें तो पाएंगे कि मुगल दक्खनी राज्यों की तरफ एक कदम रखने से पहले समकालीन परिस्थितियों को भांप लिया करते थे। जैसा हमने देखा उनकी दक्खनी नीति को प्रभावित करने वाले कई कारक क्रियाशील थे। दक्खन में उन्हें कभी-कभी असफलताओं का सामना करना पड़ा। इसका कारण केवल यह नहीं था कि उन्हें दक्खनी समस्या का ज्ञान नहीं था। इन असफलताओं का एक और प्रमुख कारण मुगल सरदारों का आपसी संघर्ष और उनकी ढुलमुल स्वामी भक्ति थी। इस कारण भी मुगलों को दक्खन में कई बार असफलताओं का सामना करना पड़ा। अतः मुगलों की दक्खनी नीति पर विचार करते समय किसी एक तत्व पर अपने को सीमित कर लेना सही नहीं है बल्कि इसके लिए खुले और व्यापक दृष्टिकोण को अपनाना संगत होगा।

बोध प्रश्न 3

1) औरंगजेब ने अंततः गोलकुंडा और बीजापुर पर कब्जा क्यों जमा लिया?

....

....

....

....

....

2) दक्खनी राज्यों के प्रति मुगलों के नीति-निर्धारण में प्रमुखता किस बात की रही?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

9.7 सारांश

हम आशा करते हैं कि इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान गए होंगे कि मुगलों की दक्खनी नीति को रूपायित करने में अनेक कारक क्रियाशील थे। मुगल शासकों में सबसे पहले अकबर ने दक्खनी राज्यों पर मुगल आधिपत्य स्थापित करने की कोशिश की। अकबर खानदेश, बरार और अहमदनगर के कुछ हिस्सों पर कब्जा जमाकर संतुष्ट था। जहांगीर के शासनकाल में मुगल साम्राज्य के दक्खनी इलाकों में कोई वृद्धि नहीं हुई। शाहजहां ने 1636 ई. में बीजापुर के साथ मिलकर अहमदनगर को आपस में बांट लिया और 1656-57 तक दक्खन में उसने आक्रामक नीति नहीं अपनाई। आरंभ में औरंगजेब बीजापुर और गोलकुंडा पर कब्जा जमाना नहीं चाहता था, पर अंततः ये दोनों राज्य मुगल साम्राज्य में मिला लिए गए। इसके बावजूद दक्खन समस्या समाप्त नहीं हुई, बल्कि 17वीं शताब्दी के अंत और 18वीं शताब्दी के आरंभ में यह समस्या तेजी से उभरी और मराठों ने साम्राज्य को गंभीर चुनौती दी। दक्खन की पूरी स्थिति को अच्छे ढंग से समझने के लिए हम इकाई 10 में मराठों के बारे में विचार-विमर्श करेंगे।

9.8 शब्दावली

हून : दक्खनी सोने का सिक्का जिसे पगोडा भी कहा जाता था। नया पगोडा = 3-1/2 मुगल रुपया; पुराना पगोडा = 4-5 मुगल रुपया

जागीर : नगद वेतन के स्थान पर दिया जाने वाला भू-क्षेत्र जिसके राजस्व का उपभोग प्राप्तकर्ता करता था। (विवरण के लिए देखिए इकाई 15)

कोस : 2 मील, 4 फर्लांग और 158 गज के बराबर

खुतबा : शुक्रवार की नमाज के वक्त शासक के नाम पढ़ा जाने वाला प्रवचन

पेशवा : प्रधानमंत्री

सवार : एक मुगल पद जिसके द्वारा यह तय होता था कि एक मुगल मनसबदार/सरदार को कितने घोड़े और घुड़सवार रखने हैं

ज़ात : एक मुगल पद जिसके द्वारा यह तय होता था कि एक मुगल मनसबदार का पदानुक्रम में क्या स्थान है और इससे उसका व्यक्तिगत वेतन भी निर्धारित होता था।

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i) √ (ii) √ (iii) × (iv) ×

2) उत्तर के लिए भाग 9.2 पढ़िए।

बोध प्रश्न 2

1) जहाँगीर भी राज्य विस्तार में विश्वास रखता था परन्तु कुछ कठिनाइयों के कारण वह दक्खन में अधिक विस्तार नहीं कर पाया। (देखें भाग 9.3)

2) भाग 9.4 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) अपने उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल कर सकते हैं :
मराठों का बीजापुर के शासक का समर्थन, मुगल मांगों को पूरा करने में बीजापुर का शासक असमर्थ, गोलकुंडा की गतिविधियां आदि।

2) इस प्रश्न का उत्तर देते समय अपने तर्कों का इस्तेमाल कीजिए। (देखिए भाग 9.6)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 10 सत्रहवीं शताब्दी में मराठा राज्य का उदय

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 स्रोत और भूगोल
10.3 मराठा शक्ति का उदय : सैद्धांतिक ढाँचा
10.4 मराठा शक्ति का उदय : राजनैतिक व्यवस्था
- 10.4.1 शाहजी
- 10.4.2 शिवाजी : आरंभिक जीवन

10.5 मुगल-मराठा संबंध : एक विश्लेषण
- 10.5.1 प्रथम चरण : 1615-1664
- 10.5.2 द्वितीय चरण : 1664-1667
- 10.5.3 तृतीय चरण : 1667-1680
- 10.5.4 चतुर्थ चरण : 1680-1707

10.6 मराठा और जंजीरा के सिद्दी
10.7 मराठा, अंग्रेज और पुर्तगाली
10.8 मराठों की प्रशासनिक संरचना
- 10.8.1 केन्द्रीय प्रशासन
- 10.8.2 प्रांतीय प्रशासन
- 10.8.3 सैनिक प्रशासन
- 10.8.4 नौ सेना
- 10.8.5 न्याय प्रणाली

10.9 सारांश
10.10 शब्दावली
10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित के बारे में जानकारी प्राप्त होगी :

- मराठों के उदय के लिए उत्तरदायी कारकों,
- मराठा शक्ति के उदय के कारण,
- मुगल-मराठा संघर्ष,
- यूरोपीय शक्तियों के साथ मराठों के संबंध,
- शिवाजी की प्रशासनिक संरचना तथा किस हद तक यह दक्खन के प्रशासन तंत्र से प्रभावित थी, और
- पेशवाओं के अधीन मराठा शक्ति का पतन।

10.1 प्रस्तावना

मराठा शक्ति के उदय के साथ दक्खनी राजनीति को एक नया आयाम मिला। इसके कारण न केवल दक्खनी राज्यों का समीकरण बदल गया बल्कि इससे मुगल-दक्खनी संबंध भी प्रभावित हुए। इस इकाई में हम उन कारकों की चर्चा करेंगे जिन्होंने अंततः मराठा शक्ति के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आप पढ़ेंगे कि किस प्रकार मराठा एक छोटे **"भूमिया"** की हैसियत से उठकर बादशाहत की ऊंचाई तक पहुंच गये। इस इकाई में मुगल-मराठा संघर्ष की विस्तार से चर्चा की गयी है। यहां इस बात की चर्चा की गयी है कि किस प्रकार 17वीं शताब्दी के अंत तक मराठा मुगलों को चुनौती देते रहे और मुगल कभी भी पूर्ण रूप से उनकी शक्ति का दमन नहीं कर सके। यहां मराठा प्रशासन की विशेषताओं की भी चर्चा की गयी है। इस इकाई में अरब सागर में नयी उभरती यूरोपीय शक्तियों के साथ मराठों के संबंध की भी चर्चा की गयी है।

10.2 स्रोत और भूगोल

मराठा शक्ति के उदय पर बातचीत करने से पहले, आइए आपको मराठा इतिहास के स्रोत और मराठों द्वारा शासित प्रदेश के भूगोल से परिचित करा दें।

स्रोत

इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण मराठी ग्रंथ 1694 ई० में सभासद द्वारा लिखित शिवाजी की जीवनी (**बखर**) है। चित्रगुप्त ने इसे और विस्तृत किया। रामचंद्र पंत आमात्य द्वारा लिखित शम्भाजी का **अदनापात्र** या **मराठशाहितिल राजनीति** (1716) अन्य ऐसे प्रमुख मराठी ग्रंथ हैं जिनमें शिवाजी से लेकर शम्भाजी तक की घटनाओं का जिक्र किया गया है। जयराम पिण्डे के **राधामाधव विलास चम्पू** (संस्कृत) भी एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें मुख्य रूप से शिवाजी के जीवन का वर्णन किया गया है। भीमसेन की **नुस्खा-ए दिलकुशा** (फारसी) में भी मुगल-मराठा संबंधों की जानकारी दी गयी है।

भूगोल

महाराष्ट्र प्रदेश में सहयाद्री पहाड़ी शृंखला (जिसे पश्चिमी घाट के नाम से भी जाना जाता है) और पश्चिमी समुद्र तट के बीच स्थित कोंकण प्रदेश शामिल है, सहयाद्री शृंखला के शीर्ष पर घटमाथा है, और निचली घाटी का **देस** क्षेत्र शामिल है। इसके उत्तर में पश्चिम की ओर सहयाद्री पर्वत शृंखला है जबकि पूर्व से पश्चिम तक सतपुड़ा और विंध्य पहाड़ी शृंखलाएं हैं। इसके पहाड़ी-किले प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करते थे। सामरिक रूप से यह भारत का सर्वश्रेष्ठ किलाबंद क्षेत्र है। इसकी पर्वत शृंखला और अभेद्य दुर्ग व्यावहारिक रूप से आक्रमणकारियों के लिए अभेद्य थे। इस इलाके की भूमि कृषि की दृष्टि से कम उपजाऊ है। परंतु इसकी प्राकृतिक संरचना ने यहां के लोगों को मेहनती और कठोर बना दिया। दक्खनी पठार की जमीन काली और उपजाऊ है। हालांकि यहां वर्षा कम होती है, परंतु इस क्षेत्र में फसल अच्छी होती है।

10.3 मराठा शक्ति का उदय : सैद्धांतिक ढाँचा

मराठा शक्ति के उदय के संदर्भ में विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण और राय प्रस्तुत की है। ग्रांट डफ इसे सहयाद्री के जंगलों में विद्रोही गतिविधियों के परिणाम के रूप में देखते हैं। परन्तु एम. जी. रानाडे का मानना है कि यह एक आकस्मिक घटनाक्रम से कहीं कुछ ज्यादा था। वे इसे विदेशी शासन के खिलाफ "राष्ट्रीय संघर्ष" के रूप में देखते हैं। यह विचार इस आधार पर विवादग्रस्त हो जाता है कि अगर मुगल विदेशी थे तो उतने ही विदेशी बीजापुर और अहमदनगर के शासक भी थे। अगर मराठा एक शक्ति का आधिपत्य स्वीकार कर सकते थे तो मुगलों का क्यों नहीं?

MAADHYAM IAS 'to achieve your dream'

जदुनाथ सरकार और जी. एस. सरदेसाई मराठा शक्ति के उदय को औरंगजेब की "साम्प्रदायिक" नीतियों के खिलाफ "हिंदू" प्रतिक्रिया के रूप में देखते हैं। किंतु सतीश चन्द्र का मानना है कि शिवाजी ने अकबर की "सुलह कुल" की नीति की प्रशंसा की। उनके अनुसार हिंदू प्रतिक्रिया के तर्क का आधार भी बहुत ठोस नहीं है। यहां तक कि उनके आरंभिक संरक्षक मुसलमान ही थे, जैसे कि बीजापुर और अहमदनगर के शासक। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र के बाहर शिवाजी ने कभी भी हिंदुओं के हित या कल्याण के लिए लड़ाई नहीं लड़ी। यहां तक कि महाराष्ट्र के भीतर भी वे सामाजिक सुधारों की ओर ध्यान न दे सके। दूसरी ओर महाराष्ट्र के बाहर वे हिंदू किसानों से कठोरता से पेश आये और उन्हें निर्ममता से लूटा। यह भी तर्क दिया जाता है कि अपने राज्यारोहण के समय उन्होंने **हिन्दू धर्मोद्धारक** की पदवी धारण की थी वह इस काल के लिए कोई नयी चीज नहीं थी।

आन्द्रे विंक का मानना है कि दक्खन के सुल्तानों पर पड़ते मुगल दबाव के परिणामस्वरूप मराठों का उदय हुआ। यहां तक कि ग्रांट डफ भी उनके उदय में मुगल तत्व को स्वीकार करते हैं। परन्तु उनके उदय में यही तत्व शामिल नहीं था अन्य तत्व भी इसमें क्रियाशील थे।

सतीश चन्द्र मराठों के उदय में सामाजिक-आर्थिक तत्वों की भूमिका पर बल देते हैं। शिवाजी की सफलता का राज अपने इलाके के किसानों को संगठित करना था। आम मान्यता यह है कि उसने **जागीरदारी** और **जमींदारी** प्रथा समाप्त कर किसानों के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित कर उन्हें शोषण से मुक्त किया था। परंतु सतीश चन्द्र का मानना है कि वह इस प्रथा को पूरी तरह समाप्त नहीं कर सका। उसने बड़े **देशमुखों** की ताकत कम कर दी, गलत प्रथाओं को सुधारा और आवश्यक निरीक्षण की व्यवस्था की। इस प्रकार उसने पुरानी व्यवस्था में ही सुधार किया और उसे अच्छा बनाया। (विवरण के लिए खंड 5, इकाई 19 पढ़िए)। इसके अलावा उसने **देशमुखों** की सैनिक संख्या कम करके उनकी सैनिक जिम्मेदारी भी कम कर दी। यही मुख्य कारण था कि शिवाजी की सैन्य शक्ति बड़े **देशमुखों** की "सामंती सेनाओं" पर आधारित नहीं थी। बड़े **देशमुखों** पर निर्भर छोटे भूमिपतियों को शिवाजी की इस नीति से लाभ हुआ। वस्तुतः ये छोटे भूमिपति ही उसकी शक्ति थे। उदाहरण के लिए, शिवाजी का सबसे पहले पक्ष लेने वाले मावले के **देशमुख** मूलतः छोटे भूमिपति ही थे। जावली के मोरे, उतरौली के खोपड़े और फल्टन के निम्बालकर भी छोटे भूमिपति

ही थे। इसके अलावा शिवाजी ने कृषि के विस्तार और विकास पर बल दिया। इससे किसानों के साथ-साथ खास तौर पर इन छोटे भूमिपतियों को भी फायदा हुआ।

जमीन पर हक हासिल करने के लिए बड़े, मंझोले और छोटे **देशमुखों**, **मिरासियों** (खेतिहर मालिक) और **उपरासियों** (बाहरी किसान) के बीच संघर्ष हुआ करता था। अपने **वतन** को बढ़ाना उनका एक जुनून था। उस समय जमीन पर नियंत्रण के आधार पर ही राजनैतिक सत्ता निर्धारित होती थी।

इरफान हबीब मराठा शक्ति के उदय और शोषित किसानों की विद्रोह चेतना के बीच एक प्रकार का संबंध देखते हैं।

मराठा आंदोलन के उदय में सामाजिक तत्व भी निहित हैं। शिवाजी ने शिर्के, मोरे, निम्बालकर जैसे प्रमुख **देशमुख** परिवारों से वैवाहिक संबंध स्थापित कर अपने परिवार का सामाजिक दृष्टिकोण से स्तर ऊपर उठाने की कोशिश की। इस प्रकार उसने दोहरी नीति अपनायी, एक तरफ उसने बड़े **देशमुखों** की राजनैतिक शक्ति में कटौती की और दूसरी तरफ उनके सामाजिक स्तर तक पहुंचने के लिए उनसे वैवाहिक संबंध भी स्थापित किये। राज्यारोहण (1674 ई.) द्वारा उसने न केवल अन्य मराठा जातियों से अपने परिवार को ऊँचा दर्जा दिलवाया बल्कि अपने को दक्खनी शासकों के समकक्ष पहुंचा दिया। बनारस के ब्राह्मण गागा भट्ट की सहायता से अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय का सर्वोच्च सामाजिक स्तर हासिल करना इस दिशा में एक सोचा-समझा हुआ प्रयास था। शिवाजी ने अपने परिवार के लिए न केवल सूर्यवंशी क्षत्रिय की वंशावली तैयार करवायी जिसमें अपने परिवार को उसने इंद्र से जोड़ा। बल्कि उसने **क्षत्रिय कुलवतम्सा** (क्षत्रिय परिवारों का आभूषण) की उपाधि भी ग्रहण की। इस प्रकार मराठा परिवारों के बीच अपना सामाजिक स्तर ऊँचा करके उसने **सरदेशमुखी** वसूल करने का एकाधिकार हासिल कर लिया। अब तक शिर्के, घोरपडे आदि के संरक्षण में अन्य मराठा परिवार इस अधिकार का उपयोग किया करते थे।

इन सबसे यह स्पष्ट होता है कि उस समय मराठा समाज में सामाजिक तनाव व्याप्त था। वे मुख्य रूप से किसान और लड़ाकू जाति के लोग थे। परंतु उन्हें क्षत्रिय स्तर प्राप्त नहीं था। अतः शिवाजी के सामाजिक आंदोलन से एक महत्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि इसके कारण मराठा और कुनबी (खेतिहर वर्ग) आपस में जुड़ गये। शिवाजी के इर्द-गिर्द इकट्ठा होने वाले कुनबी कृषक, कोली और मावल प्रदेश के अन्य कबीले सामाजिक पदानुक्रम में अपना स्तर उठाने की इच्छा रखते थे। अतः मराठों का उदय विदेशी शासन के जुए को उतार फेंकने की इच्छा का परिणाम मात्र ही नहीं था बल्कि इसकी जड़ें गहरे सामाजिक-आर्थिक कारणों में समाई हुई थीं।

उनके उदय के लिए बौद्धिक और वैचारिक ढाँचा भक्ति आंदोलन से प्राप्त हुआ जो "महाराष्ट्र धर्म" के रूप में रूपायित हुआ। इससे मराठों को एक सांस्कृतिक पहचान बनाने में भी मदद मिली। भक्ति संतों के समतावादी सिद्धांत से इन्हें बल मिला। इसके बल पर ये व्यक्तिगत या सामूहिक तौर पर वर्णानुक्रम में अपने स्तर को बढ़ाने की गतिशीलता को न्यायोचित ठहरा सकते थे। सिंधिया जैसे साधारण मूल के मराठों का सामाजिक स्तर पर आगे बढ़ना इस आंदोलन की सफलता का प्रमाण है। इस समय अनेक समूहों ने वर्णानुक्रम में अपनी स्थिति बेहतर कर ली और राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के अपने अधिकार को वैधता प्रदान करने की कोशिश की। एम. जी. रानाडे (बाद में वी. के. राजवडे द्वारा समर्थित) के विचार में मराठों की राजनैतिक स्वतंत्रता "महाराष्ट्र धर्म" का ही परिणाम थी। इसे उन्होंने **सहिष्णु** (उदारवादी) हिंदुत्व के खिलाफ **जयष्णु** (आक्रामक) हिंदुत्व के रूप में व्याख्यायित किया है। "महाराष्ट्र धर्म" की सर्वप्रथम चर्चा 15वीं शताब्दी की रचना **गुरूचरित** में मिलती है किंतु यहां इसे एक महान् प्रबुद्ध राज्य की एक नैतिक नीति के संदर्भ में उल्लेखित किया गया है। इसे राजनैतिक मोड़ देने का श्रेय 17वीं शताब्दी के संत-कवि रामदास को जाता है जिन्होंने तुर्की अफगान-मुगल शासन के खिलाफ विचार व्यक्त किए थे। शिवाजी ने इसका लाभ उठाया। उन्होंने "महाराष्ट्र धर्म" के वैचारिक वक्तव्य का उपयोग दक्खनियों और मुगलों के खिलाफ किया। मराठों की धार्मिक निष्ठा तुलाजा भवानी, विठोबा और महादेव के प्रति थी। "हर-हर महादेव" का युद्धनाद मराठा किसानों के हृदय को छूता था। परंतु जैसा कि पी.वी. रानाडे ने सही कहा है कि "मुस्लिम प्रभुत्व के खिलाफ हिंदू शत्रुता मध्यकालीन भारतीय राजनैतिक दृश्य का न तो प्रमुख प्रेरक कारक था न ही यह कोई उल्लेखनीय तत्व था।" इस विचारधारा का खोखलापन इस तथ्य से सिद्ध होता है कि शिवाजी और अन्य मराठा सरदार **चौथ** और **सरदेशमुखी** (एक वैध लूट) अपनी सीमा के बाहर के क्षेत्रों से इकट्ठा करते थे। वस्तुतः इसने मराठा विस्तार के आरंभिक चरण में किसानों को इकट्ठा करने में "मनोवैज्ञानिक संबल" की भूमिका निभाई।

यह मानना भी कठिन प्रतीत होता है कि शिवाजी "हिंदू स्वराज्य" की स्थापना करना चाहते थे। वस्तुतः यह केन्द्रीकृत मुगल साम्राज्य के विरुद्ध एक क्षेत्रीय प्रतिक्रिया थी। मराठा अपने लिए एक बड़ा राज्य स्थापित करना चाहते थे। अहमदनगर के निजाम शाही शासन के पतन और मुगलों के आगमन ने इसके लिए आदर्श पृष्ठभूमि प्रदान की। सामान्यतया इसके सामाजिक-आर्थिक अंतर्विरोध से स्थानीय भूमिपतियों को इकट्ठा करने में मदद मिली।

बोध प्रश्न 1

1) मराठा इतिहास जानने के किन्हीं दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख कीजिए।

....

....

MAADHYAM IAS

....

....

2) सही और गलत वक्तव्यों के सामने √ और ✕ का निशान लगाइए :

1. सहयाद्री पर्वत शृंखला और पश्चिमी घाट दो अलग भौगोलिक इकाई हैं।

2. पहाड़ी भूमि की मिट्टी खेती के उपयुक्त थी।

3. दक्खनी पठार की मिट्टी काली और उपजाऊ थी।

4. दक्खन की भौगोलिक स्थिति ने वहां के निवासियों को कर्मठ और मजबूत बनाने में प्रमुख भूमिका अदा की।

3) क्या मराठा आंदोलन के उदय को "हिंदू प्रतिक्रिया" के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है?

....

....

....

....

....

10.4 मराठा शक्ति का उदय : राजनैतिक व्यवस्था

इस भाग में हम अपना अध्ययन आमतौर पर दक्खनी राज्यों के तहत मराठा सरदारों के उदय और खासतौर पर भोंसले परिवार के उदय की प्रक्रिया तक सीमित रखेंगे।

17वीं शताब्दी से ही बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुंडा राज्यों के तहत दक्खन में मराठों का उदय हो रहा था। वे बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुंडा राज्यों की सेना में कार्यरत थे। दक्खनी राज्यों के पहाड़ी किलों को मराठा नियंत्रित करते थे। हालांकि महत्वपूर्ण समझे जाने वाले किलों पर मुसलमान किलेदारों को तैनात किया जाता था। उन्हें अक्सर राजा, **नायक** और **राव** की उपाधि से सम्मानित किया जाता था। बीजापुर के शासक इब्राहिम आदिल शाह ने मराठों को **बारगीर** के रूप में नियुक्त किया तथा उनका उपयोग वह अक्सर अहमदनगर के निजाम शाही शासकों के खिलाफ किया करता था। यहां तक कि उसने लेखा विभाग में भी मराठा ब्राह्मणों की नियुक्ति की थी। कर्नाटक के **नायक** मराठा सरदार चन्दर राव मोरे ने बीजापुर के यूसुफ आदिल शाह के समय में विशेष स्थान प्राप्त किया। उसके पुत्र यशवन्त राव ने अहमदनगर के निजाम शाही शासकों के खिलाफ खूब नाम कमाया और उसे जावली का राजा बनाया गया। 17वीं शताब्दी के मध्य में राव नाइक निम्बालकर या फुल्टन राव भी बीजापुर शासकों के साथ जुड़ गये। मुल्लौरी के **देशमुख** जुझार राव घटगे भी बीजापुर शासक इब्राहिम आदिल शाह के तहत कार्यरत रहा। इसी प्रकार मनय भी बीजापुर के सिद्धहस्त **सिलहदार** थे। 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में घोरपड़े, झट्ट के डफ्ले और वारी के सावंतों ने भी बीजापुर की सेवा की। निजाम शाही शासकों के अधीन सिन्दखेर का **देशमुख** जादव राव काफी शक्तिशाली था। निजाम शाही शासकों के अधीन लोखजी जादव राव के पास 10,000 घोड़े थे।

10.4.1 शाहजी

भोंसले परिवार, जिससे शिवाजी संबंधित थे, के कुछ सदस्य अहमदनगर शासकों के अधीन **पटेल** थे। शिवाजी के दादा मालोजी का वैवाहिक संबंध फुल्टन के **देशमुख** जगपाल राव नाइक निम्बालकर के साथ था (उनकी बहन दीपा बाई की शादी मालोजी के साथ हुई थी)। सिन्दखेर के लोखजी जादव राव की पहल पर 1577 ई. में मालोजी ने **बारगीर** के रूप में मुर्तजा निजाम शाह की नौकरी कर ली। लेकिन 1599 ई. में शाह जी और जीजा बाई की शादी के प्रश्न पर उन दोनों में मनमुटाव हो गया और मालोजी को नौकरी छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा। लेकिन जल्द ही (17वीं शताब्दी के आरंभ में) मालोजी अपनी पहुंच का उपयोग कर निम्बालकरों की सहायता से एक बार फिर निजाम शाही शासकों की सेवा में हाजिर हुए और मालोजी राजा भोंसले की उपाधि प्राप्त की। उन्हें शिवनेरी और चाकुन के किलों का जिम्मा सौंपा गया और बदले में पूना और सोपा की जागीर प्रदान की गयी। 1604 ई. में जादव राव सिंदखेर से संबंध स्थापित होने से उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। जादव राव ने अपनी पुत्री जीजा बाई की शादी उसके पुत्र शाहजी से कर दी। इसी समय मुगलों के आक्रमणों ने अहमदनगर के स्थायित्व को पूर्णतया नष्ट कर दिया। अकबर के समय में (देखिए इकाई 9) आंतरिक कलह भी आरंभ हो गयी जिससे पूरी तरह अव्यवस्था और गड़बड़ी की स्थिति हो गई। जहांगीर ने इस स्थिति का लाभ उठाकर 1621 ई. में कई मराठा सरदारों को अपनी ओर मिला लिया। इसमें सबसे प्रमुख थे शाहजी के श्वसुर और सिंदखेर के **देशमुख** लोखजी जादव राव। मुर्तजा निजाम शाह द्वितीय (1629 ई.) के गद्दी पर बैठने

के बाद लोखजी जादव राव निजाम शाही शासक के पक्ष में चले गये, परन्तु विश्वासघाती ढंग से उनकी हत्या (1630 ई.) कर दी गयी। इसी समय जगदेव राव 5000 **ज़ात** की **मनसब** के साथ मुगल सेना में शामिल हो गया।

आरंभ में शाहजी भोंसले खान जहां लोदी के विद्रोह से पहले उसके समर्थक थे। बाद में उन्होंने आजम खां के जरिए मुगलों की सेवा में जाने का निवेदन किया और 1630 ई० में उसे 6000 **ज़ात** और 5000 **सवार** का ओहदा मिला। मालोजी के छोटे भाई वेटोजी का बेटा और शाहजी का चचेरा भाई खेलोजी भी मुगल खेमे में शामिल हो गये। परंतु 1632 ई. में शाहजी बीजापुर के पक्ष में चले गये और आदिल शाह की नौकरी कर ली। 1634 ई. तक शाहजी का निजाम शाही राज्य के एक-चौथाई हिस्से पर नियंत्रण स्थापित हो गया। परंतु 1636 ई. में मुगलों के आक्रमण से उन्हें सब कुछ खोना पड़ा और वे बीजापुर के सरदार के रूप में कोंकण की तरफ चले गये। इसी समय शाहजी को मोरार पंत (मुरारी पंडित) को प्रभावित करने का मौका मिला। उसने कर्नाटक अभियान में रन्दौला खां का साथ दिया और असीम बहादुरी का परिचय दिया। इससे खुश होकर मौहम्मद अली शाह ने उन्हें कुरार (सतारा जिला) में बतौर **जागीर** 24 गाँव दिए।

(शाहजी के जीवन-वर्णन को यहीं छोड़ कर अब हम शिवाजी के आरंभिक जीवन का वर्णन करेंगे। शाहजी के जीवन से संबंधित शेष बातें हम शिवाजी के उदय के साथ-साथ ही वर्णित करेंगे)।

10.4.2 शिवाजी : आरंभिक जीवन

शिवाजी का जन्म 10 अप्रैल, 1627 ई. को शिवनेरी में हुआ था। वह शाहजी और जीजा बाई का सबसे छोटा बेटा था। शिवाजी के बचपन के आरंभिक दिनों में उनके और शाहजी के बीच कोई संबंध कायम नहीं हो पाया था क्योंकि शाहजी बीजापुर के सरदार के रूप में कर्नाटक अभियान में व्यस्त रहे (1630-36 ई.)। 1636 ई. में शाहजी को सात किले समर्पित करने पड़े, उनमें एक शिवनेर का किला भी था। अतः शिवाजी को अपनी माँ के साथ दादाजी कोंणदेव के संरक्षण में पूना जाना पड़ा। 1640-41 ई. में शिवाजी की शादी सई बाई निम्बालकर के साथ हो गयी और दादाजी कोंणदेव के संरक्षण में शाहजी ने शिवाजी को पूना की **जागीर** सौंप दी। दादाजी कोंणदेव की मृत्यु के बाद शाहजी के प्रतिनिधि के रूप में शिवाजी पूना **जागीर** के सर्वेसर्वा बन गये। शिवाजी ने सबसे पहले पूना जिले के पश्चिम के मावल सरदारों के साथ दोस्ती की। आने वाले वर्षों में ये सरदार शिवाजी की सेना के आधार स्तम्भ सिद्ध हुए। मावल सरदारों में कारी के जेथे नायक और बन्दल नायक ने सर्वप्रथम शिवाजी के साथ गठबंधन किया।

शिवाजी अपने वैध अधिकार के रूप में शाहजी के सभी क्षेत्रों (जो इलाके 1634 ई. में शाहजी के पास थे, परंतु 1636 ई. में उन्हें समर्पित करना पड़ा था) को अपने अधीन करना चाहते थे। दादाजी कोंणदेव की मृत्यु के बाद, उन क्षेत्रों को प्राप्त करने के लिए, शिवाजी ने एक निश्चित योजना के साथ उन पर अधिकार करने का निश्चय किया। परंतु इसी समय (1648 ई.) बीजापुर के सेनापति मुस्तफा खां ने शाहजी को बंदी बना लिया, इस कारण शिवाजी को अपनी गतिविधियों को नियंत्रित करना पड़ा। शिवाजी ने अपने पिता को आदिल शाही शासक से छुड़ाने के लिए मुगलों से संधि करने की कोशिश की (1649 ई.), परंतु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। अंततः (16 मई, 1649) बीजापुर को बंगलौर और कोंडन देने के बाद शाहजी को मुक्त कर दिया गया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इसी बीच (1648 ई.) शिवाजी ने धोखाधड़ी से पुरंदर का किला हथिया लिया। आने वाले वर्षों में यह किला मराठों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। इसके बाद जावली का किला (1656 ई.) उनके कब्जे में आ गया। यह प्रमुख मावली सरदार चन्द्र राव मोरे का मजबूत गढ़ था। इसके बाद उसने रायरी (रायगढ़) पर अधिकार कर लिया जो जल्द ही मराठों की राजधानी बना। जावली पर आधिपत्य स्थापित हो जाने से न केवल दक्षिण और पश्चिम कोंकण की ओर विस्तार का मार्ग प्रशस्त हो गया बल्कि मोरे क्षेत्र के मावल सरदारों के शामिल होने से शिवाजी की सैन्य शक्ति भी मजबूत हो गयी।

(शिवाजी के उत्थान के इस लघु मूल्यांकन के बाद अब हम मुगल-मराठा संघर्ष की चर्चा करने जा रहे हैं। मुगल-मराठा संबंधों की चर्चा करने के साथ-साथ हम शिवाजी और शम्भाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति के विस्तार पर भी विचार-विमर्श करेंगे।)

10.5 मुगल-मराठा संबंध : एक विश्लेषण

मुगल-मराठा संबंधों को चार चरणों में विभक्त किया जा सकता है :

(i) 1615-1664 ई., (ii) 1664-1667 ई., (iii) 1667-1680 ई., और (iv) 1680-1707 ई.।

10.5.1 प्रथम चरण : 1615-1664 ई.

जहांगीर के समय से ही मुगलों ने दक्खन की राजनीति में मराठा सरदारों के महत्व को समझ लिया था। 1615 ई. में जहांगीर कुछ मराठा सरदारों को अपनी ओर मिलाने में सफल रहा था। इसके परिणामस्वरूप मुगल संयुक्त दक्खनी सेना

को हरा सके (1616 ई.)। शाहजहां ने भी 1629 ई. में ही मराठा सरदारों को अपनी ओर मिलाने की कोशिश की थी। शिवाजी के पिता शाहजी इस समय मुगलों से मिल गये परंतु बाद में उनसे अलग हो गये। उन्होंने मुरारी पंडित और बीजापुर दरबार के मुगल-विरोधी पक्ष के साथ मिलकर मुगलों के खिलाफ षड्यंत्र रचा। मराठों की ओर से आने वाली गंभीर चुनौती को देखते हुए शाहजहां ने मराठों के खिलाफ मुगल-बीजापुर संधि का विकल्प चुना। उसने बीजापुर के शासक को शाहजी की सेवा लेने से मना नहीं किया, परंतु उसे कर्नाटक में मुगल क्षेत्र से दूर रखने की मांग की (1636 ई. की संधि)। यहां तक कि औरंगजेब ने भी यही नीति अपनाई। उत्तराधिकार के युद्ध के समय उत्तर की ओर कूच करने से पहले उसने अपने **निशान** में आदिल शाह को ऐसा ही करने की सलाह दी। लेकिन शिवाजी के खिलाफ बीजापुर-मुगल संधि औरंगजेब के लिए एक दुखद स्वप्न साबित हुआ। जब 1636 ई. में शाहजहां ने ऐसी संधि की थी तो उसके पास बदले में उसे देने के लिए दो-तिहाई हिस्सा निजाम शाही क्षेत्र था, परंतु औरंगजेब के पास देने के लिए कुछ भी नहीं था। सतीश चन्द्र के अनुसार 1687 ई. में औरंगजेब द्वारा बीजापुर हासिल करने के पूर्व तक अंतर्विरोध की यही स्थिति बनी रही।

1657 ई. में औरंगजेब ने शिवाजी के साथ संधि करने की कोशिश की, परंतु उसे सफलता नहीं मिली क्योंकि बदले में शिवाजी दाभोल और आदिल शाही कोंकण चाहता था, जो एक उपजाऊ और समुद्र क्षेत्र होने के साथ-साथ विदेशी व्यापार की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। जल्द ही शिवाजी बीजापुर के पक्ष में चले गये और मुगल दक्खन (अहमदनगर और जुन्नार सब डिवीजन) पर धावा बोल दिया। उत्तराधिकार के युद्ध और औरंगजेब के दक्खन से चले जाने के कारण शिवाजी को रोकने वाला कोई नहीं था। जल्द ही उसने कल्याण और भिवण्डी (अक्तूबर 1657 ई.) और माहूली (जनवरी 1658 ई.) पर कब्जा जमा लिया। इस प्रकार शिवाजी ने कोलाबा जिले के समस्त पूर्वी भाग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया जो जंजीरा के हब्शियों (सिद्दियों) के अधीन था।

औरंगजेब के उत्तर भारत की तरफ कूच कर जाने के बाद बीजापुर ने मराठों की ओर ध्यान दिया। आदिल शाही शासक ने अब्दुल्ला भटारी अफजल खां को इसका भार सौंपा परंतु शिवाजी के सामने अफजल खां की सेना टिक न सकी। इस स्थिति में कूटनीति और समझ-बूझ का ही सहारा लिया जा सकता था। समझौते के लिए दोनों के बीच मेल-मिलाप का आयोजन किया गया परंतु शिवाजी ने उसकी हत्या कर दी (10 नवंबर, 1659 ई.)। अफजल खां की हत्या के बाद मराठों के लिए बीजापुर की सेना को हराने में जरा भी समय नहीं लगा। जल्द ही पनहाला और दक्षिण कोंकण पर मराठों का आधिपत्य हो गया। परंतु मराठा पनहाला पर ज्यादा समय तक आधिपत्य नहीं रख सके और यह पुनः बीजापुर के अधिकार में चला गया (2 मार्च, 1660 ई.)।

इस स्थिति में औरंगजेब ने युवराज मुअज्जम के स्थान पर शाइस्ता खां को दक्खन का वायसराय नियुक्त किया (जुलाई, 1659 ई.)। शाइस्ता खां ने चाकन (15 अगस्त, 1660 ई.) और उत्तरी कोंकण (1661 ई.) पर अधिकार कर लिया। 1662-63 ई. तक उसने मराठों पर काफी दबाव डाला परंतु उनसे दक्षिण कोंकण (रत्नगिरि) हासिल करने में असफल रहा। 5 अप्रैल, 1663 ई. को पूना में आधी रात को मुगल खेमे पर शिवाजी ने अचानक हमला बोल दिया और मुगल वायसराय को बुरी तरह घायल कर दिया। इससे मुगल प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुंचा। इसके बाद मराठों ने सूरत पर आक्रमण किया और उसे खूब लूटा (सूरत की प्रथम लूट 6-10 जनवरी, 1664 ई.)।

MAADHYAM IAS

10.5.2 द्वितीय चरण : 1664-1667 ई.

शिवाजी की बढ़ती शक्ति, अफजल खां की हत्या, पनहाला और कोंकण पर शिवाजी का कब्जा, शिवाजी को संभालने में बीजापुर की सेना की असमर्थता और अंततः शाइस्ता खां की असफलता (1600-1664 ई.) ने मुगलों को स्थिति पर पुनः विचार करने के लिए मजबूर किया। इसके बाद औरंगजेब ने मिर्जा राजा जय सिंह को दक्खन का नया वायसराय नियुक्त किया। सावधानी से आगे बढ़ने की मुगल नीति से अलग हटकर जय सिंह ने दक्खन पर पूरा नियंत्रण स्थापित करने की बृहद् योजना बनाई। इस बृहद् योजना के तहत सबसे पहले शिवाजी को कुछ रियायतें देकर और उसके साथ संधि करके बीजापुर को धमकाया जाना था और शिवाजी की **जागीर** को मुगल दक्खन से दूर अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण इलाके में स्थानांतरित करना था। जय सिंह का विचार था कि एक बार बीजापुर के पतन के बाद शिवाजी को दबाना बहुत मुश्किल कार्य नहीं होगा।

दक्खन में मुगल वायसराय का पदभार संभालने के साथ ही उसने शिवाजी पर लगातार दबाव डालना शुरू किया। उसने पुरन्दर (1665 ई.) में शिवाजी को पराजित कर दिया। इसके बाद जय सिंह ने मुगल-मराठा संधि की बात चलाई। पुरन्दर की संधि (1665 ई.) के तहत शिवाजी ने 35 में से 23 किले समर्पित कर दिए। ये किले निजाम शाही राज्यक्षेत्र में पड़ते थे और इनकी वार्षिक आमदनी 4 लाख **हून** थी। इसके अतिरिक्त उसे 1 लाख **हून** प्रति वर्ष आमदनी वाले रायगढ़ सहित 12 अन्य किले भी समर्पित करने पड़े। इस घाटे की भरपाई बीजापुरी तालकोंकण और बालाघाट से की जानी थी। इसके अतिरिक्त शिवाजी के पुत्र को मुगल सेना में 5000 **ज़ात** का ओहदा प्रदान किया गया। यह जय सिंह की योजना के बिल्कुल अनुकूल था क्योंकि वह शिवाजी को मुगल सीमा से सटे महत्वपूर्ण इलाकों से हटाना चाहता था। इसी के साथ-साथ इससे शिवाजी और बीजापुर के शासकों के बीच संघर्ष के बीज भी बो गये क्योंकि शिवाजी को तालकोंकण और बालघाट के लिए बीजापुर से सीधे भिड़ना पड़ता।

हालांकि औरंगजेब इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार करने से थोड़ा हिचक रहा था। उसके लिए बीजापुर और मराठा दो अलग-अलग समस्याएं थीं और वह प्रत्येक के साथ अलग से निपटना चाहता था। औरंगजेब सैद्धांतिक तौर पर

बीजापुर पर आक्रमण करने के लिए तो सहमत हो गया परन्तु उसने इसके लिए मुगल फौज को अतिरिक्त सहायता देने से इंकार कर दिया। इसके अलावा उसने शिवाजी को केवल बीजापुरी बालाघाट देने की बात सामने रखी उसकी प्राप्ति भी बीजापुर अभियान की सफलता पर निर्भर थी। अतः इस स्थिति में जबकि बीजापुर और गोलकुंडा ने संधि कर ली थी और औरंगजेब किसी भी प्रकार की अतिरिक्त सहायता के लिए तैयार न था तथा दक्खन में मुगल खेमे में दिलेर खां के नेतृत्व में शिवाजी-विरोधी तत्वों की उपस्थिति के कारण जय सिंह के लिए सफलता की उम्मीद करना असंभव था।

बीजापुर-गोलकुंडा संधि (1666 ई.) को देखते हुए और मराठों का विश्वास जीतने के लिए उसने शिवाजी को औरंगजेब के पास आगरा जाने का निमंत्रण दिया। परन्तु मुगल दरबार में शिवाजी के तथाकथित अपमान (उसे 5000 **ज़ात** के ओहदे वाले अधिकारियों के समकक्ष रखा गया और उसका स्वागत एक निचले दर्जे के अधिकारी ने किया) के कारण शिवाजी का मुगल दरबार में भड़क उठने के फलस्वरूप उन्हें आगरा में बंदी बना लिया गया।

औरंगजेब की अनिच्छा और आगरा में शिवाजी की कैद ने जय सिंह की योजना को गहरा धक्का पहुंचाया। इस स्थिति में जय सिंह ने सम्राट से आग्रह किया कि दक्खन में मुगल सरदारों के आपसी मतभेद को मिटाने के लिए वे खुद दक्खन आएं। परंतु उत्तर-पश्चिम, फारस तथा यूसुफज़इयों के विद्रोहों में उलझे रहने के कारण औरंगजेब इस सुझाव को कार्यात्मक परिणति न प्रदान कर सका। अंततः आगरा के जेलखाने से शिवाजी के पलायन (1666 ई.) ने जय सिंह की रही-सही उम्मीदों पर भी पानी फेर दिया। जय सिंह को काबुल जाने का आदेश मिला और उसके स्थान पर युवराज मुअज्जम को दक्खन का मुगल वायसराय (मई, 1667 ई.) नियुक्त किया गया।

जय सिंह की योजना की असफलता दुर्भाग्यपूर्ण थी क्योंकि मुगल शिवाजी को समाप्त करने के लिए न तो बीजापुर की सहायता ले सकने में सफल हुए (1672-76 ई.) और न ही मराठों की सहायता से दक्खनी राज्यों पर ही कब्जा जमा सके (1676-79 ई.)।

10.5.3 तृतीय चरण : 1667-1680 ई.

आगरा से भागने के पश्चात् शिवाजी तुरंत मुगलों से मुठभेड़ करने के पक्ष में नहीं थे। इसके विपरीत वह उनसे मैत्रीपूर्ण संबंध (अप्रैल और नवम्बर, 1667 ई.) रखना चाहते थे। युवराज मुअज्जम ने खुशी-खुशी शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को 5000 **ज़ात** का **मनसब** और बरार में **जागीर** दे दी (अगस्त, 1668 ई.)। औरंगजेब शिवाजी के साथ अपने बेटे की दोस्ती से सतर्क हो गया और उसे इसमें विद्रोह की गंध आने लगी। औरंगजेब ने औरंगाबाद स्थित मराठा प्रतिनिधियों प्रताप राव और नीराजी पंत को बंदी बनाने का आदेश दिया। इसी समय मुगलों ने शिवाजी को आगरा यात्रा के लिए दिए गये 2 लाख रुपये वसूलने के लिए बरार स्थित शिवाजी की **जागीर** पर हमला बोल दिया। इन घटनाओं से शिवाजी सतर्क हो गये और उसने अपने प्रतिनिधियों नीराजी पंत और प्रताप राव को औरंगाबाद छोड़ देने का हुक्म दिया। शिवाजी ने पुरन्दर की संधि (1665 ई.) के तहत मुगलों को दिए गये कई किलों पर आक्रमण किया। उसने 1670 ई. में कान्डना, पुरन्दर, माहुली और नानदेर पर कब्ज़ा जमा लिया। इसी समय युवराज मुअज्जम और दिलेर खां के बीच संघर्ष आरंभ हो गया। दिलेर खां ने युवराज पर शिवाजी से मिले होने का आरोप लगाया। आंतरिक कलह से मुगल सेना कमजोर हो गयी। औरंगजेब ने युवराज मुअज्जम के विश्वस्त आदमी जसवंत सिंह को वापस बुलाकर उसे बुरहानपुर भेज दिया। इस स्थिति का फायदा उठाकर शिवाजी ने दूसरी बार (30 अक्तूबर, 1670 ई.) सूरत को लूटा। इसके बाद मराठों को बरार और बगलाना में सफलता मिली (1670-71 ई.)। बगलाना में अहिवंत, मारकंड, रावल और जावल तथा कारिंज, औसा, नंदुरबार, सलहिर, मुलहिर, चौरागढ़ और हुलगढ़ के किले मराठों के कब्जे में आ गये।

मराठों की सफलता से मुगल सतर्क हो उठे। महाबत खां को दक्खन का सर्वेसर्वा बनाकर भेजा गया (नवंबर, 1670 ई.)। परन्तु उसे भी कोई खास सफलता नहीं मिली, परिणामस्वरूप उसे और युवराज मुअज्जम को 1672 ई. में वहां से हटा लिया गया। इस बार दक्खन की बागडोर बहादुर खां को सौंपी गयी (1673 ई.)।

इस बीच मराठों का सफलता अभियान जारी रहा। उन्होंने कोइल (जून, 1672 ई.) पर अधिकार जमा लिया। परंतु खानदेश और बरार (दिसंबर, 1672 ई.) में मुगलों ने उन्हें सफल नहीं होने दिया। 1673 ई. में बहादुर खां ने शिवनेर पर कब्जा जमा लिया। परंतु मुगलों की ये सफलताएं शिवाजी का रास्ता न रोक पायीं। आदिल शाह की मृत्यु (24 नवंबर, 1672 ई.) के बाद बीजापुर में फैली अव्यवस्था का उसने पूरा फायदा उठाया। उसका बेटा बहुत छोटा था (चार वर्ष का) और स्थायित्व कायम करना उसके वश की बात नहीं थी। शिवाजी ने बीजापुर से पनहाला (6 मार्च, 1673 ई.०), पारली (1 अप्रैल, 1673 ई.) और सतारा (27 जुलाई, 1673 ई.) के किलों पर अधिकार कर लिया। बीजापुर दरबार में कई गुट थे। बहलोल खां के नेतृत्व वाले गुट ने बीजापुर के पतन की सारी जिम्मेदारी खवास खां के गुट पर डाल दी। 1674 ई. में बहलोल खां ने सफलतापूर्वक मराठों को कनारा से पीछे धकेल दिया।

इसी समय उत्तर-पश्चिम में होनेवाली गड़बड़ियों के कारण दक्खन से फौज वापस बुलानी पड़ी और बहादुर खां के पास एक कमजोर सेना रह गयी। शिवाजी ने इस स्थिति का भरपूर फायदा उठाया। उसने 6 जून, 1674 ई. को अपने को राजा घोषित किया और इसके बाद तत्काल मई, 1674 ई. में बहादुर खां के खेमे को लूट लिया। 1675 ई. के आरंभ में मुगल-मराठा शांति वार्ता असफल रही।

बहादुर खां ने शिवाजी के खिलाफ बीजापुर से संधि करनी चाही (अक्टूबर, 1675 ई.) परन्तु इसी समय खवास खां ने बहलोल खां को उखाड फेंका (11 नवंबर, 1675 ई.)। इस प्रकार बहादुर खां की योजना फलीभूत न हो सकी।

इसी बीच औरंगजेब ने बहादुर खां पर कड़े प्रतिबंध लगा दिये। दूसरी तरफ मराठों का सितारा दिन पर दिन बुलंद होता जा रहा था। दिलेर खां गोलकुंडा और शिवाजी के खिलाफ मुगल-बीजापुर गठबंधन करना चाहता था। परन्तु गोलकुंडा के वजीर मदन्ना और अकन्ना की कूटनीति (1677 ई.) के कारण उसे इसमें सफलता नहीं मिली। इसके बदले मदन्ना ने शिवाजी से संधि कर ली और मुगलों से सुरक्षा के बदले शिवाजी को 1 लाख **हून** देने को राजी हो गया। उसने कोल्हापुर जिले सहित कृष्णा नदी के पूर्व में शिवाजी के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। शिवाजी के कर्नाटक अभियान (1677-78 ई.) को गोलकुंडा का भी समर्थन प्राप्त हुआ।

परंतु बाद में गोलकुंडा शासक को जिंजी और अन्य क्षेत्र देने के अपने वादे से शिवाजी मुकर गये। अतः दोनों के बीच मतभेद पैदा हो गये और गोलकुंडा शासक ने शिवाजी को वार्षिक भुगतान देना बंद कर दिया। शिवाजी ने घूस का सहारा लेकर बीजापुर के किले पर कब्जा करना चाहा। शिवाजी के इस व्यवहार ने बीजापुर शासक को और भी नाराज कर दिया।

इसी समय मराठा दरबार में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर कुछ मतभेद पैदा हो गये। शिवाजी ने अपने छोटे बेटे राजाराम को **देस** और कोंकण प्रदान किया, जबकि बड़े लड़के शम्भाजी को नये क्षेत्र कर्नाटक का भार सौंपा। शिवाजी ने राजाराम की नाबालिग उम्र को देखते हुए ऐसा कदम उठया था क्योंकि नये हासिल किए गये क्षेत्र कर्नाटक को संभालना उसके वश की बात नहीं थी। परंतु शम्भाजी **देस** जैसे लाभप्रद इलाके को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। दिलेर खां (1678 ई.) ने इस स्थिति का फायदा उठाकर शम्भाजी की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया और वचन दिया कि **वह देस** और कोंकण हासिल करने में उसकी मदद करेगा। शम्भाजी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मुगलों द्वारा उसे 7000 **ज़ात** का **मनसब** प्रदान किया गया (दिसम्बर, 1678 ई.)।

इसी समय (1678 ई.) गोलकुंडा, बीजापुर और मुगलों के गठबंधन का विचार सामने आया ताकि मराठों की शक्ति को नष्ट किया जा सके, परंतु सिद्दी मसूद (बीजापुर दरबार में दक्खनी दल का नेता) और शिवाजी की संधि ने इस योजना पर पानी फेर दिया। दिलेर खां बीजापुर पर कब्जा जमाने के लिए आगे बढ़ा, परंतु ठीक समय पर मराठों के हस्तक्षेप से उसकी यह योजना भी असफल रही (अगस्त, 1679 ई.)।

अतः जय सिंह की वापसी (1666 ई.) से लेकर औरंगजेब द्वारा आक्रामक नीति अपनाए जाने तक (1680 ई.) इस तृतीय चरण में पूरी तरह अव्यवस्था और गड़बड़ी का माहौल बना रहा। मुगल किसी एक नीति पर टिक न सके और इसके बदले वे दिशाहीन और लक्ष्यहीन ढंग से काम करते रहे। न तो उन्हें मराठों को दोस्त बनाने में सफलता मिली न ही दक्खनी राज्यों को ही वे अपने विश्वास में ले सके तथा न ही इन दक्खनी राज्यों और शिवाजी का दमन कर सके।

10.5.4 चौथा चरण : 1680-1707 ई.

MAADHYAMIAS
way to achieve your dream

दक्खनी इतिहास की दृष्टि से 1680 ई. का वर्ष बहुत महत्वपूर्ण है। इसी वर्ष शिवाजी की मृत्यु हुई (23 मार्च) और इसी वर्ष औरंगजेब ने खुद दक्खनी मसले को हल करने का निश्चय किया। अब मुगलों ने पूर्ण आधिपत्य की आक्रामक नीति अपनाई।

आगे आने वाला समय मराठों के लिए सुगम नहीं था। शिवाजी के राज्य के बंटवारे को लेकर उसके बेटों में मतभेद पैदा हो गये और परिणामस्वरूप मराठा सरदारों को अपनी शक्ति दिखाने का मौका मिल गया। पश्चिमी प्रांत के **सचिव** और वायसराय अन्नाजी दात्तो तथा **पेशवा** मोरोपंत के बीच की आपसी ईर्ष्या से स्थिति और भी बिगड़ गयी। मराठा सरदारों ने शम्भाजी के स्थान पर राजाराम को राजा घोषित कर दिया। शम्भाजी ने तेजी से साथ कार्यवाई की और राजाराम तथा अन्नाजी दात्तो को कैद कर लिया (जुलाई, 1680 ई.)। अन्नाजी दात्तो ने विद्रोही मुगल युवराज अकबर की सहायता से एक बार फिर सफलता प्राप्त करने की कोशिश की। जैसे ही शम्भाजी को इस तथ्य का पता चला उसने दमनात्मक नीति का सहारा लेना शुरू कर दिया। शिवाजी के शासन के प्रति वफादार व्यक्तियों को इस दमन का सामना करना पड़ा। इस दमन से घबराकर बहुत से शिर्के परिवार के सदस्यों ने मुगलों की शरण ली। इससे मराठा राज्य में पूर्ण अव्यवस्था और अराजकता फैल गयी। स्थिति को ठीक करने के बजाय शम्भाजी शराब और वैभव की गहरी खाई में गिरता चला गया। जल्द ही शिवाजी की सेना का अनुशासन समाप्त हो गया। पहले सेना के साथ स्त्रियों को ले जाना वर्जित था परंतु अब यह नियम टूट गया। इसका एक निश्चित प्रभाव पड़ा। इसके कारण अभी-अभी जन्मा मराठा राज्य कमजोर हो गया जिसमें शक्तिशाली मुगलों का सामना करने की शक्ति नहीं थी।

दूसरी तरफ दक्खन में अपने प्रवास के पहले चार वर्षों में औरंगजेब ने दक्खनी राज्यों की सहायता से मराठों को दबाने का काम किया जिन्होंने विद्रोही युवराज अकबर को शरण दे रखी थी। लगातार दबाव बनाए रखने के बावजूद 1680-84 ई. तक मुगलों को ज्यादा सफलता हासिल नहीं हो सकी। 1684 ई. में औरंगजेब ने यह महसूस किया कि उसे पहले गोलकुंडा और बीजापुर से निपटना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप मुगलों ने बीजापुर (1686 ई.) और गोलकुंडा (1687 ई.) पर कब्जा कर लिया। लेकिन इस निर्णय (ऐसी ही योजना जय सिंह ने 1665 ई. में मराठों के साथ मिलकर बनाई थी) में शायद देर हो चुकी थी। इस समय तक मराठा न केवल मजबूत हो गये थे बल्कि उन्होंने कर्नाटक में प्रतिरक्षा की दूसरी पंक्ति भी निर्मित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। अब वे भी एक छोटे-मोटे सरदार नहीं थे बल्कि अब यहां एक राजा था जो दक्खनी शासकों के समकक्ष था।

जब औरंगजेब बीजापुर और गोलकुंडा (1686-87 ई.) का मामला हल करने में व्यस्त था तब मराठा औरंगाबाद से

लेकर बुरहानपुर तक के मुगल इलाके को रौंद रहे थे। परंतु इस समय बीजापुर और गोलकुंडा पर मुगल विजय से मुगल सेना की शक्ति और स्रोत में अपार वृद्धि हुई थी। युवराज अकबर भी ईरान भाग गया था (1688 ई.)। शम्भाजी के व्यवहार से बहुत से मराठा सरदार नाराज होकर मुगलों से जा मिले थे। इन परिस्थितियों में मुगलों ने शम्भाजी को कैद कर (फरवरी, 1689 ई.) अंततः मृत्यु दंड (11 मार्च, 1689 ई.) दे दिया।

शम्भाजी की मृत्यु (1689 ई.) के बाद मराठा राजनीति में कई नये आयाम उभरे। बीजापुर और गोलकुंडा को हराने के बाद मुगलों को कई स्थानीय तत्वों जैसे **नायकों, देलमों, देशमुखों** आदि के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। मुगल प्रशासन व्यवस्था लागू किये जाने से दक्खन में कृषीय तनाव पैदा हुए। स्थानीय भूमिपति कुलीन वर्ग के स्थान पर नया वर्ग सामने आया—मुगल **जागीरदार** और राजस्व के ठेकेदार। **जागीरदार** राजस्व वसूल न कर पाने की स्थिति में अपनी **जागीर** को एक मोटी आमदनी के रूप में भुगतान लेकर ठेकेदारों को राजस्व वसूल करने की छूट देने लगे। इससे जिन लोगों का भू-राजस्व एकत्रित करने का अधिकार छीना गया वे विद्रोही हो गये। किसानों को दोनों तरफ से दमन का सामना करना पड़ा। (विवरण के लिए खंड 5, इकाई 18, 19 देखिए)। इसके अलावा इसी बीच ज्यादातर **मनसबदार** दक्षिण से भर्ती किये गये। केवल 1000 **ज़ात** के ऊपर के मराठा **मनसबदारों** की संख्या ही 13 (शाहजहां) से बढ़कर 96 (औरंगजेब) हो गयी, जबकि औरंगजेब के समय में दक्खनी **मनसबदारों** की संख्या 575 तक पहुंच गयी। इससे **जागीरों** पर दबाव पड़ा और **जागीर** व्यवस्था संकटग्रस्त हो गयी। दक्खनी और **खानजाद** कुलीनों के बीच संघर्ष आरंभ हो गये। इसके अलावा लगातार होने वाले युद्धों का भी मुगल खजाने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा था। मुगल सीमा के विस्तार से नई समस्याएं सामने आयीं। यह नया क्षेत्र मराठों के हमले का लगातार शिकार होता रहता था। इसके अलावा शम्भाजी की मृत्यु के बाद मराठा तेजी से उभरे जिसके फलस्वरूप 1693 ई. के बाद मुगलों को कई बार हार का सामना करना पड़ा।

मराठा तेजी से राजाराम, जो कि प्रतापगढ़ भाग गया था (5 अप्रैल, 1689 ई.) के इर्द-गिर्द इकट्ठा होने लगे। परन्तु मुगलों के दबाव में आकर राजाराम को पनहाला में शरण लेनी पड़ी जहां वह मुगलों से अपनी रक्षा कर सका। लेकिन मुगलों ने जल्द ही रायगढ़ और पनहाला पर कब्जा जमा लिया (नवंबर, 1689 ई.) और (सितम्बर, 1689 ई.)। राजाराम को भागकर जिंजी जाना पड़ा। 1700 ई. में सतारा और सिंहगढ़ मुगलों के कब्जे में चला गया। परन्तु इन सबके बावजूद मुगल न तो राजाराम को पकड़ सके न ही मराठों की शक्ति को कुचल सके। मराठों ने लगातार अपना संघर्ष जारी रखा। उन्होंने जल्द ही अपने खोये हुए इलाके वापस ले लिए। मुगलों को न केवल जीते हुए इलाकों से हाथ धोना पड़ा बल्कि इसे पाने के लिए उन्हें अत्यधिक कष्टों और परेशानियों का सामना करना पड़ा। इससे मुगल सेना का नैतिक बल टूट गया, उसमें एक प्रकार का बिखराव और शिथिलता आ गयी। अब जाकर औरंगजेब को इस प्रकार के लंबे अभियान की असार्थकता महसूस हुई और वह अहमदाबाद की ओर लौट पड़ा। किन्तु इससे पहले कि वह मैत्रीपूर्ण नीति अपनाता 1707 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी।

MAADHYAM IAS

संक्षेप में सतीश चंद्र ने सही ही लिखा है कि औरंगजेब की असफलता का मुख्य कारण यह था कि वह मराठा आंदोलन के स्वरूप को ठीक से पहचान न सका। शिवाजी को मात्र एक **भूमिया** समझना उसकी भूल थी। मराठों के पास एक लोकप्रिय आधार था और उन्हें स्थानीय भूमिपतियों (**वतनदारों**) का समर्थन प्राप्त था। मुगल प्रशासनिक व्यवस्था लादे जान के उसके प्रयत्न के कारण स्थानीय तत्वों के बीच अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो गयी और किसानों का शोषण हुआ। मुगल **मनसबदारों** के लिए उनके दक्खनी **जागीरों** से कुछ भी वसूल करना, लगभग असंभव हो गया। शम्भाजी को मृत्यु-दंड दिया जाना एक और भारी भूल थी। औरंगजेब मराठों के बीच आतंक फैलाना चाहता था, परन्तु उसे इसमें सफलता नहीं मिली। वह न तो मराठों को दबा सका न ही शाहू को अपने पास रखकर कोई शर्त मनवा सका।

हम यहां 1707 ई. तक ही मराठा शक्ति के उदय पर चर्चा कर रहे हैं। शाहू और 18वीं शताब्दी के आरंभ में पेशवा शक्ति के उदय की प्रक्रिया की चर्चा खंड 9 की इकाई 36 में की जायेगी।

बोध प्रश्न 2

1) बीजापुर शासकों के अधीन मराठा शक्ति के उदय पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित का मिलान कीजिए :

(i)	शिवाजी	सिंदखेर
(ii)	यशवंत राव	मोरे

(iii) चन्द्र राव — भोंसले

(iv) जादव राव — मावल

(v) जेद्धे नायक — जावली

3) जय सिंह की दक्खन नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

....

....

....

....

....

10.6 मराठा और जंजीरा के सिद्दी

कल्याण और भिवण्डी पर कब्जा (1658 ई.) करने के तुरंत बाद शिवाजी ने वहां नौ सैनिक अड्डा बनाया। दक्षिण कोंकण तट पर कब्जा करने के पश्चात् (1661 ई.) शिवाजी की नौ सैनिक शक्ति और भी मजबूत हो गयी। इस विस्तार से मराठों की सीधी मुठभेड़ जंजीरा (बंबई से 45 मील दक्षिण में स्थित पहाड़ी द्वीप) के सिद्दियों की नौ सैनिक शक्ति से हुई।

सिद्दी अबीसीनिया के निवासी थे जो 15वीं शताब्दी में जंजीरा में आकर बस गये थे। उन्हें अहमदनगर के शासकों से दांडा-राजपुरी का क्षेत्र प्राप्त हुआ था। लेकिन निजाम शाही राज्य के समाप्त हो जाने पर उन्हें स्वतंत्र रूप से कार्य करने का मौका मिला था। 1636 ई. की संधि के बाद जब पश्चिमी तट पर बीजापुर का अधिकार हो गया, तब सिद्दियों और बीजापुर शासकों के मध्य लंबे संघर्ष का प्रारंभ हुआ और अन्त में उन्होंने आत्मसमर्पण कर बीजापुर की अधीनता स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् वे नगोथना से लेकर बानकोट तक के क्षेत्र में बीजापुर के **वज़ीर** के रूप में कार्य करने लगे। उन्होंने बीजापुर के शासकों से समुद्र के रास्ते होकर मक्का जाने वाले तीर्थयात्रियों की रक्षा का वादा किया। सिद्दियों के पास मजबूत नौ सैनिक बेड़ा था।

सर्वप्रथम मराठों की मुठभेड़ सिद्दियों से अफजल खां का पीछा करते समय, कोंकण अभियान के दौरान हुई (1659 ई.)। बीजापुर के प्रतिनिधि के रूप में सिद्दियों ने अफजल खां का समर्थन किया था। रघुनाथ बल्लाल के नेतृत्व में शिवाजी ने सिद्दियों को दबाने के लिए एक मजबूत सेना भेजी। मराठों ने सिद्दियों से ताल, घोनसाल और दांडा तक का बृहद् समुद्रतट छीन लिया। परन्तु सिद्दियों ने अपना संघर्ष जारी रखा। पुरन्दर की संधि (1665 ई.) के तहत मुगल जंजीरा को मराठों को सौंपने के लिए तैयार हो गये थे अगर वे जंजीरा पर कब्जा करने में सफल हो सकें तो। मराठों ने फिर से 1669-70 ई. में आक्रमण शुरू किया परंतु बीजापुर-मुगल संयुक्त सेना के आक्रमण के कारण वे इसमें सफल नहीं हो पाये। इसके बाद (1671 ई.) सिद्दियों की पूरी नौ सेना मुगलों को हस्तांतरित कर दी गयी और सिद्दी नौ सैनिक अधिकारियों (सिद्दी कासिम और सिद्दी खैरियत) को मुगल **मनसबदार** बना दिया गया और बीजापुर की शर्तों के अनुरूप मुगलों ने सिद्दी जहाजी बेड़े पर अधिकार कर लिया। मुगलों ने सिद्दी सेनानायकों को याकूत खां की उपाधि प्रदान की। जल्द ही सिद्दियों ने मराठों से दांडा वापस ले लिया (1671 ई.)। शिवाजी ने अंग्रेजों की सहायता लेनी चाही परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद दोनों के बीच समय-समय पर लम्बा संघर्ष चला (1672-80 ई.)। शम्भाजी के बाद यह दुश्मनी ज्यादा तीक्ष्ण हो गयी। प्रारंभ से ही (1681 ई.) सिद्दियों ने मराठा राज्य क्षेत्र में रायगढ़ तक आक्रमण किये। 1682 ई. में रघुनाथ प्रभु उनके आक्रमण को रोकने में सफल रहा।

10.7 मराठा, अंग्रेज और पुर्तगाली

दाभोल बंदरगाह पर कब्जा करने (जनवरी, 1660 ई.) के बाद मराठा अंग्रेजों के सम्पर्क में आये। आरंभ से ही दोनों के संबंध तनावपूर्ण रहे। फरवरी, 1660 ई. में मराठों ने अफजल खां के युद्ध पोतों की मांग की। मार्च, 1661 ई. में मराठों ने राजापूर के अंग्रेज कारखाने (factory) पर हमला बोल दिया क्योंकि यहीं से बीजापुर के शासक को ग्रेनेडों की आपूर्ति हो रही थी और वह इसका उपयोग मराठों के पनहाला किले पर आक्रमण के लिए कर रहा था। मराठों को अस्त्र न देने के कारण शिवाजी ने फिर से अंग्रेजों को परेशान किया। मई, 1672 ई. में अंग्रेजों ने समझौता करना चाहा परंतु वे सफल नहीं हुए क्योंकि वे एक लाख रुपये का हरजाना नहीं दे सके। 1673 ई. में अंग्रेजों ने थामस निकोलस के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल भेजा परन्तु इसका भी कोई नतीजा नहीं निकला। लेकिन 1674 ई. में हेनरी ऑक्सिनडेन के नेतृत्व में आये प्रतिनिधिमंडल का शिवाजी ने स्वागत किया और 50 तोपखाने और बंदूकें खरीदने की इच्छा प्रकट

की। इसके बाद (1675 ई.) राजापुर में अंग्रेजों का कारखाना फिर से खुल गया। 1675 ई. में अंग्रेजों ने मराठों से खानदेश में धरनगांव स्थित कारखाने के नुकसान पहुंचाये जाने की एवज में हरजाना मांगा। लंबे वाद-विवाद के बाद भी शिवाजी इसके लिए राजी नहीं हुए। अंततः दिसम्बर, 1682 ई. में शम्भाजी ने राजापुर के कारखाने को बंद करवा दिया।

मराठों और पुर्तगालियों का संबंध भी आरंभ से ही सौहार्दपूर्ण नहीं रहा। पुर्तगालियों ने शिवाजी के विरुद्ध जंजीरा के सिद्धियों का समर्थन किया। उन्होंने शिवाजी द्वारा निष्कासित दक्षिण रत्नागिरि के **देसाइयों** को गोवा में शरण दे रखी थी। शिवाजी ने दमन क्षेत्र से **चौथ** की भी मांग की। पश्चिमी तट पर शिवाजी की सेना की उपस्थिति से भी पुर्तगालियों के व्यापार में बाधा उत्पन्न होती थी। इन मतभेदों के बावजूद पुर्तगालियों ने मराठों के साथ कभी भी संघर्ष का रास्ता नहीं अपनाया बल्कि उनसे दोस्ताना व्यवहार बनाये रखा। पुर्तगाली गवर्नर ने भी कभी खुलकर शिवाजी के विरोधियों का समर्थन नहीं किया। जून, 1659 ई. में जब शिवाजी ने पुर्तगालियों को अबीसीनियों और दांडा के सिद्दियों की सहायता न करने को कहा तब उसने अपने अधिकारियों को इसका कड़ाई से पालन करने का निर्देश दिया। दिसंबर, 1667 ई. में दोनों के बीच संधि हुई और शिवाजी ने पुर्तगाली व्यापार में व्यवधान न डालने का आश्वासन दिया। पुर्तगालियों ने दक्षिण रत्नागिरि के **देसाइयों** को भी निकाल बाहर किया। यह संधि पुनः 10 फरवरी, 1670 ई० को नवीकृत की गयी। उस समय शिवाजी ने पुर्तगाली सीमा से लगे अपने इलाकों में किला न बनाने का भी आश्वासन दिया। परंतु शिवाजी के शासन काल के अंतिम समय (1676-77 ई०) में **चौथ** के भुगतान को लेकर दोनों के संबंध तनावपूर्ण हो गये। परंतु शिवाजी की असमय मृत्यु से सीधी टक्कर टल गयी। 1683 ई० में शिवाजी के पुत्र शम्भाजी ने खुद चौल और गोवा पर आक्रमण किया परंतु मुगल दबाव के कारण उसे पीछे हटना पड़ा।

बोध प्रश्न 3

1) सिद्दी कौन थे?

....

....

....

....

....

2) मराठा-पुर्तगाली संबंधों पर प्रकाश डालिए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

....

....

....

....

....

10.8 मराठों की प्रशासनिक संरचना

इस भाग में हम मराठों के केन्द्रीय और प्रांतीय प्रशासनिक व्यवस्था तथा सैनिक प्रबंध की चर्चा करेंगे। मराठों की राजस्व व्यवस्था, वित्त, कृषीय संबंधों तथा ग्रामीण समुदायों की चर्चा खंड 5 की इकाई 18 और 19 में की जाएगी।

मराठा प्रशासन मूलतः दक्खनी संरचना पर आधारित था, परंतु इसमें कुछ तत्व मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के भी शामिल थे।

10.8.1 केन्द्रीय प्रशासन

मराठा राजनैतिक व्यवस्था मूलतः एक परिष्कृत केन्द्रीकृत निरंकुश राजतंत्र था। राजा की स्थिति सर्वोच्च थी। राजा का मुख्य उद्देश्य अपनी प्रजा को खुशहाल और समृद्ध बनाना था **(राजा कलस्य करणम्)**।

राजा की सहायता के लिए एक मंत्रिपरिषद् थी, जो **अष्टप्रधान** के नाम से जानी जाती थी :

(i) **पेशवा** (प्रधानमंत्री) : वह नागरिक और सैनिक मामलों का सर्वोच्च अधिकारी था।

(ii) **मजूमदार** (लेखा परीक्षक) : वह राज्य की आय और व्यय का लेखा-जोखा रखता था।

(iii) **वकीन** : वह राजा के व्यक्तिगत मामलों की देखरेख करता था।

(iv) **दाबिर** : विदेश सचिव

(v) **सुरनिस** (अधीक्षक) : वह सभी प्रकार के राजकीय पत्र-व्यवहारों की देखरेख करता था।

(vi) **पंडित राव** : धार्मिक प्रधान

(vii) **सेनापति** : सेना का प्रधान

(viii) **न्यायाधीश** : मुख्य न्यायाधीश

अष्टप्रधान न तो शिवाजी की देन थे न ही उसने अपने राज्यारोहण के समय इसे पहली बार संगठित किया था। **पेशवा, मजूमदार, वकीन, दाबिर, सुरनिस** (और **सरनौबत**) आदि पद दक्खन शासन व्यवस्था में भी मौजूद थे।

पंडित राव और **न्यायाधीश** के अतिरिक्त सभी अधिकारियों को सैनिक अभियान में भाग लेना पड़ता था। शिवाजी के अधीन ये पद न तो आनुवांशिक थे न ही स्थाई। वे राजा के कृपापात्र बने रहने तक पद पर बने रहते थे और अक्सर उनका स्थानांतरण किया जाता था। उन्हें सीधे राजकोष से वेतन प्राप्त होता था और किसी भी नागरिक या सैनिक अधिकारी को **जागीर** नहीं दी जाती थी। बाद में पेशवा के अधीन ये पद आनुवांशिक और स्थाई प्रकृति के हो गये। मंत्रिपरिषद राजा को सलाह दे सकती थी परंतु उनकी सलाह मानने के लिए राजा बाध्य नहीं था।

प्रत्येक **अष्टप्रधान** की सहायता के लिए आठ सहायक होते थे : **दीवान, मजूमदार, फड़निस, सबनिस, कारखानीस, चिटनिस, जमादार** और **पोटनिस**।

अष्टप्रधान के बाद **चिटनिस (सचिव)** का स्थान आता था जो सभी राजनैतिक पत्र-व्यवहार को देखता था और शाही पत्र लिखता था। प्रांतीय और जिला अधिकारियों से भी वही पत्र-व्यवहार करता था। परंतु किलेदारों के पत्रों का जवाब **फड़निस** दिया करता था। **फड़निस** शिवाजी के अधीनस्थ सचिवालय का अधिकारी था। यह पद पेशवा के काल में प्रमुख हो गया। **पोटनिस** राजकोष की आय और व्यय की देखभाल करता था जबकि **पोतदार** एक जांच अधिकारी था।

10.8.2 प्रांतीय प्रशासन

राज्य **मौजा, तरफ** और **प्रांतों** में विभक्त था। ये सभी इकाइयां दक्खनी शासकों के अधीन मौजूद थीं और यह शिवाजी की देन नहीं थी। परंतु उन्होंने इसे संगठित किया और नया नामकरण किया। **मौजा** सबसे छोटी इकाई थी। इसके बाद **तरफ** का स्थान आता था, जिसमें **हवलदार, कारकुन** और **परिपत्याकर** नियुक्त होते थे। राज्यों को **प्रांत** के नाम से जाना जाता था : यहां **सूबेदार, कारकुन** (या मुख्य **देशाधिकारी**) कार्य संभालते थे। विभिन्न प्रांतों में **सूबेदारों** पर एक **सर सूबेदार** होता था जो **सूबेदारों** के कार्यों का निरीक्षण करता था और उन पर नियंत्रण रखता था। प्रत्येक **सूबेदार** के अधीन आठ अधिकारी थे : **दीवान, मजूमदार, फड़निस, सबनिस, कारखानिस, चिटनिस, जमादार** और **पोटनिस**। बाद में पेशवाओं के अधीन **तरफ, परगना, सरकार** और **सूबा** शब्दों का प्रयोग एक दूसरे के पूरक के रूप में किया जाने लगा।

MAADHYAM IAS

शिवाजी के अधीन कोई भी अधिकारी आनुवांशिक और स्थाई नहीं था। अक्सर सभी अधिकारियों का स्थानांतरण होता रहता था। परंतु पेशवाओं के अधीन **कमविसदार** और **ममलतदार** के पद स्थाई हो गये। **ममलतदारों** पर नियंत्रण रखने के लिए **दरखदार** (वसूली अधिकारी) होते थे। ये आनुवांशिक प्रांतीय पदाधिकारी थे। ये **ममलतदारों** और अन्य नौ सैनिक और सैनिक अधिकारियों पर नियंत्रण रखने का कार्य करते थे। **ममलतदार** न तो उन्हें अपदस्थ कर सकते थे न ही उन्हें पहले से ही निर्देशित कार्य के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य को करने का निर्देश दे सकते थे। प्रांतीय स्तर के आठों अधिकारी **ममलतदार** के प्रति जिम्मेदार नहीं थे। बल्कि वे उनकी शक्ति पर नियंत्रण रखने का कार्य करते थे।

10.8.3 सैनिक प्रशासन

शिवाजी के सैनिक संगठन में किलों को सबसे अधिक महत्व दिया गया। शिवाजी ने अपने राज्य में किलों का जाल-सा बिछा दिया। कोई भी **तालुक** अथवा **परगना** बिना किले के नहीं था। अपने जीवन-काल में शिवाजी ने लगभग 250 किलों का निर्माण कराया। किसी भी एक अधिकारी को किले का पूरा भार नहीं सौंपा जाता था। प्रत्येक किले में एक **हवलदार**, एक **सबनिस** और एक **सरनौबत** होता था। बड़े किलों में पांच से लेकर दस तक **सरनौबत** हुआ करते थे। ये सभी अधिकारी समान पद और स्तर के थे और उनका अक्सर स्थानांतरण हुआ करता था। इस व्यवस्था से प्रत्येक अधिकारी पर नियंत्रण रखा जा सकता था। **हवलदार** के पास किले की चाबियां होती थीं। **सबनिस** सभी लोगों की हाजिरी लिया करता था और सभी प्रकार के सरकारी पत्र-व्यवहार किया करता था। वह **प्रांत** (किले के अधिकार क्षेत्र में) के राजस्व आकलन की भी देखरेख करता था। **सरनौबत** अस्त्र भण्डार की देखरेख किया करता था। इसके अतिरिक्त **कारखानिस** अनाज भंडार और इससे सम्बद्ध अन्य जरूरतों की देखरेख किया करता था। **कारखानिस** प्रतिदिन के आय और व्यय का भी हिसाब रखता था। किसी के पास असीम शक्तियां नहीं थी। हालांकि **सबनिस** लेखा अधिकारी था, परंतु सभी आदेशों पर **हवलदार** और **कारखानिस** की मुहर लगानी आवश्यक होती थी। दूसरे अधिकारियों की भी ऐसी ही स्थिति थी। कोई एक अधिकारी शत्रु के सामने किले को समर्पित नहीं कर सकता था। इस

प्रकार नियंत्रण और संतुलन की व्यवस्था कायम कर शिवाजी ने सभी अधिकारियों को अपने नियंत्रण में रखा। किसी भी अधिकारी को जाति संगठन बनाने की इजाजत नहीं थी। यह भी स्पष्ट रूप से निर्धारित था कि **हवलदार** और **सरनौबत** मराठा होंगे जबकि **सबनिस** ब्राह्मण और **कारखानिस** प्रभु (कायस्थ) जाति से लिया जाता था।

शिवाजी का सैन्य संगठन कोई नवीन प्रयोग नहीं था। बीजापुर के मौहम्मद आदिल शाह के अधीन भी किले का भार तीन अधिकारियों के ऊपर रहता था। उनका स्थानांतरण भी किया जाता था। पेशवा के शासन काल में भी शिवाजी द्वारा स्थापित सैन्य संगठन ही कार्यरत रहा।

शिवाजी की सेना में छापामार युद्ध और पहाड़ी युद्ध में निपुण घुड़सवारों और सशस्त्र सेना के साथ हल्के हथियार और अन्य हल्की युद्ध सामग्री होती थी। मेवाली और हेतकारी सबसे अच्छे सैनिक थे।

शिवाजी की थल सेना की सबसे छोटी इकाई में 9 सदस्य होते थे जिसका प्रधान **नायक** होता था। इस प्रकार की पांच इकाइयों का प्रधान एक **हवलदार** होता था। दो से लेकर तीन **हवलदारों** के ऊपर एक **जुमलेदार** होता था। दस **जुमलेदारों** के ऊपर एक **हजारी** और सात **हजारियों** के ऊपर एक **सरनौबत** हुआ करता था।

शिवाजी की घुड़सवार सेना में **बारगीर** और **सिलेदार** हुआ करते थे। **बारगीर** सैनिकों को घोड़े और अस्त्र राज्य की तरफ से दिये जाते थे जबकि **सिलेदार** को खुद इसका इंतजाम करना होता था। 25 **बारगीरों** के एक दल पर एक मराठा **हवलदार** नियुक्त होता था : पांच ऐसे **हवलदारों** को मिलाकर एक **जुमला** बनता था। 10 **जुमलों** पर एक **हजारी** और पांच **हजारी** पर एक **पंच हजारी** होता था। **पंच हजारी सरनौबत** के नियंत्रण मे रहते थे। **सिलेदार सरनौबत** के अधीन कार्य करते थे। प्रत्येक 25 घोड़ों के एक दल के साथ एक पानी ढोने वाला और एक नाल लगाने वाला हुआ करता था। बाद में पेशवाओं के अधीन पिंडारियों (ये डाकू और लुटेरे थे) को भी सेना के साथ चलने की अनुमति मिल गयी। अपनी सेवा के बदले उन्हें **पलपट्टी** (जो युद्ध लूट का 25 प्रतिशत था) वसूल करने का अधिकार था। वे न तो दुश्मन को बख्शते थे न दोस्त को, न ही साधारण जनता को और न ही मंदिरों को। वे अपनी इच्छा से लूट-मार करते थे। शिवाजी की सेना में एक कार्यकुशल जासूस विभाग भी था। बहीरजी नायक जादव इस विभाग का प्रमुख था।

शिवाजी की सेना में अंगरक्षक भी थे। ये 20, 30, 40, 60 और 100 की संख्या में लामबंद होते थे। जरूरत पड़ने पर **वतनदारों** को भी सैन्य सहायता देने के लिए कहा जाता था। परंतु शिवाजी **वतनदारों** और **सिलेदारों** की सैन्य शक्ति पर कम ही विश्वास रखते थे। शिवाजी अपने सैनिकों को नकद भुगतान करते थे। घायल सैनिकों को अतिरिक्त भत्ता और विधवाओं को राज्य की तरफ से पेंशन मिलती थी। पेशवाओं के अधीन पूरे देश को सैनिक इलाकों में विभक्त कर दिया गया। वे सामंती सेनाओं पर अधिक निर्भर थे। ये सामंती सरदार किसानों से अपने हक से ज्यादा रकम वसूल किया करते थे।

MAADHYAM IAS

पेशवाओं ने अलग से तोपखाना विभाग बनाया। यहां तक कि तोप और गोला-बारूद बनाने का कारखाना भी उन्होंने स्थापित किया।

बाद में, पेशवाओं के अधीन घुड़सवार सेना की शक्ति में वृद्धि हुई। वे अपने सैन्य दल—**खासगी पगा**—की देखभाल खुद करते थे। पेशवाओं ने यूरोपीय प्रारूप पर अनुशासित सैन्य दल बनाने की कोशिश की। इसे **कम्पूस** के नाम से जाना गया। पर वे भी जल्द ही भ्रष्ट हो गये और अपने अन्य साथियों के समान वे भी राज्य-क्षेत्रों को लूटने लगे।

शिवाजी की सैन्य शक्ति तेज गति में निहित थी, परन्तु पेशवा के खेमे विभिन्न दिशाओं में मीलों तक फैले होते थे। शिवाजी ने कड़े अनुशासन पर विशेष बल दिया। पेशवाओं के अधीन यह अनुशासन कायम न रह सका। मराठा सेना आराम तलब हो गयी। उनके पास बहुमूल्य तंबू और कई तरह के साजो-सामान हुआ करते थे। शराब और औरत का प्रचलन हो गया। शिवाजी के शासनकाल में इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। शिवाजी ने कभी भी कोई स्त्री—महिला दास या नर्तकी—को सेना के साथ नहीं जाने दिया। पेशवा के शासनकाल में यहां तक कि एक साधारण घुड़सवार भी अपने साथ महिलाओं का एक दल, नर्तकी, बाजीगर और फकीरों को लेकर चलता था। पेशवा सेना को अमूमन **जागीर (सरअन्जम)** के रूप में भुगतान किया जाता था। इन सभी से पेशवाओं के अधीन मराठों की सैन्य शक्ति में आयी गिरावट का साफ पता चलता है।

शिवाजी अपनी प्रजाति के लोगों को सेना में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहन देते थे, परन्तु नौ सेना में अनेक मुसलमान भी थे। लेकिन पेशवाओं ने सभी धर्म और जाति के लोगों को सेना में भर्ती किया, जैसे राजपूत, सिक्ख, रोहिला, सिंधी, गोसाई, कन्नड, अरब, तेलुगु, बीदर वासी और ईसाई (यूरोपवासी)।

10.8.4 नौ सेना

कोंकण पर कब्जा जमाने के बाद शिवाजी ने एक मजबूत नौ सेना का भी गठन किया। उनके जहाजी बेड़े में **घुराब** (बंदूक से लैस नाव) और **गल्लिवत** (खेने वाली नावें जिसमें 2 मूल और 40-50 पतवार होते थे) शामिल रहते थे। उनके बेड़े में अधिकांशतः मालाबार तट की समुद्री कबीलाई जाति कोली के सदस्य शामिल थे। उसने 200 जहाजों के दो समूह बना रखे थे। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि जहाजों की संख्या बढ़ा चढ़ाकर बताई गयी है। राबर्ट ओरमे के

अनुसार सेनानायक दरिया सारंग और मइ नायक भंडारी के नेतृत्व में शिवाजी के पास कुल 57 बेड़े थे। दौलत खां शिवाजी की नौ सेना का एक अन्य सेनानायक था।

शिवाजी ने अपनी नौ सेना का उपयोग देशी और विदेशी दोनों ताकतों को परेशान करने के लिए किया। परंतु शिवाजी सिद्दियों के आक्रमण को मुश्किल से ही रोक पाये। पेशवाओं ने भी मजबूत नौ सेना की जरूरत महसूस की। पश्चिमी तट की रक्षा करने के लिए उन्होंने मजबूत नौ सेना बना रखी थी। लेकिन मराठों की नौ शक्ति अंगीरों के अधीन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी। अंगीरों ने पेशवाओं से स्वतंत्र रहकर कार्य किया।

10.8.5 न्याय प्रणाली

मराठा कोई व्यवस्थित न्यायिक विभाग का विकास करने में असफल रहे। ग्राम स्तर पर नागरिक मामलों की सुनवाई **पाटिल** के कार्यालय में अथवा गांव के मंदिर में गांव के बड़े-बूढ़े **(पंचायत)** किया करते थे। अपराध से संबंधित मामलों की सुनवाई **पाटिल** किया करता था। नागरिक और अपराध के मामलों का सर्वोच्च न्यायालय **हाजिर मजलिस** था। **सभानायक** (अध्यक्ष न्यायाधीश) और **महाप्रशनिक** (मुख्य पूछताछ अधिकारी) का कार्य अपराधी को जांचने और उसे परखने का था। पेशवाओं के अधीन ये पद समाप्त हो गये।

बोध प्रश्न 6

1) **अष्टप्रधान** क्या है?

....

....

....

....

....

2) शिवाजी के प्रशासन के स्वरूप का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

3) पेशवाओं के अधीन होने वाले प्रशासनिक परिवर्तनों पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

10.9 सारांश

मराठा आंदोलन न तो 'हिन्दू प्रतिक्रिया' था न ही यह स्वतंत्रता युद्ध था, इसकी जड़े इस काल के सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में निहित है। भूमि पर नियंत्रण बड़े भूमिपतियों के शोषण के खिलाफ प्रतिक्रिया और समाज में उच्च स्तर प्राप्त करने की आकांक्षा आदि कारणों से इस आंदोलन का जन्म हुआ। भक्ति संतों ने इसे एक बौद्धिक पृष्ठभूमि प्रदान की। हालांकि 17वीं शताब्दी से ही मराठा अहमदनगर और बीजापुर शासकों के अधीन कार्यरत थे, परंतु अहमदनगर के शासन के पतन और मुगलों के लगातार दबाव ने उन्हें शक्ति अर्जित करने का मौका दिया। दक्खनी राज्यों के पतन से

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

क्षेत्रीय अखंडता भी समाप्त हो गयी। मुगल उन्हें **भूमिया** से ज्यादा कुछ नहीं समझते थे। मुगल इसी भ्रम में पड़े रहे और मराठा आंदोलन के सही स्वरूप को पहचान नहीं पाये। उन्हें लुटेरे समझकर मुगलों ने भारी भूल की। उनका एक लोकप्रिय आधार था जिसे मुगल समझ नहीं पाये। अपनी इस सोच के कारण औरंगजेब ने जय सिंह की बात नहीं मानी और मराठों से संधि नहीं की। मुगल सम्राट हमेशा मराठा और दक्खन समस्या को अलग-अलग करके देखते थे परंतु दोनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई थी। औरंगजेब ने सही स्थिति पहचानने में बहुत देर की। आतंक फैलाने के लिए शम्भाजी की हत्या एक और भूल थी। दक्खन में मुगलों द्वारा मुगल प्रशासन के थोपे जाने के फलस्वरूप एक नये संघर्ष का जन्म हुआ—अधिकार छिनने के बाद स्थानीय भूमिपति प्रतिशोध की भावना से धधक रहे थे और संघर्ष कर रहे थे। यहां तक कि मुगल **जागीरदारों** के लिए कुछ भी वसूल करना असंभव सा हो गया था। इसके कारण चारों ओर अव्यवस्था और अराजकता फैल गयी और औरंगजेब इस स्थिति को संभाल न सका। आप आगे पढ़ेंगे (देखिए खंड 9, इकाई 35) कि मुगलों के पतन में दक्खन समस्या ने विशेष भूमिका निभाई।

शिवाजी की प्रशासनिक व्यवस्था में कोई नयी बात नहीं थी, परंतु उसने इसे ज्यादा से ज्यादा केंद्रीकृत कर नये रंग में रंग दिया। उसने इस बात का खास ख्याल रखा कि राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए कोई भी दल ज्यादा शक्तिशाली न हो जाए। परंतु एक योग्य व्यक्ति ही इस व्यवस्था को सुचारु रूप से चला सकता था। शिवाजी के देहांत के बाद पतन का दौर शुरू हुआ। पेशवाओं के शासनकाल में न केवल केंन्द्रीय और प्रांतीय प्रशासन में बल्कि सेना में भी भ्रष्टाचार और आलस्य का बोलबाला हो गया। खंड 9, इकाई 36 में आप पढ़ेंगे कि किस प्रकार राजा की शक्ति क्रमशः समाप्त होती चली गयी और 18वीं शताब्दी में यह शक्ति पेशवाओं के हाथ में चली गयी।

10.10 शब्दावली

बखर : जीवनी के लिए प्रयुक्त मराठी शब्द

भूमिया : एक भूमिपति वर्ग

बारगीर : ऐसे सैनिक जिन्हें राज्य द्वारा घोड़े और हथियार प्रदान किये जाते थे

चिटनिस : पत्रव्यवहार करने वाला लिपिक

देशमुख : वे उत्तर भारत के **चौधरी** (ग्राम प्रधान) और गुजरात के **देसाई** के समकक्ष थे

देस : पूर्व से पश्चिमी घाट तक फैला हुआ दक्खनी पठार

फड़निस : उप-लेखा परीक्षक

घटमाथा : ऊँचाई पर स्थित पश्चिमी घाट की ऊपरी भूमि

जमादार : कोषाध्यक्ष

कारखानिस : रसद विभाग / कारखाने की देखरेख करने वाला

कोंकण : पश्चिमी तटीय प्रदेश; पश्चिमी घाट का निचला इलाका

कमाविस्दार : पेशवाओं के अधीन वह छोटे प्रांत का **सूबेदार** हुआ करता था

खानज़ाद : कुलीन वर्ग के पुत्र

ममलतदार : पेशवा के अधीन ये बड़े प्रांतों के **सूबेदार** (राज्याध्यक्ष) हुआ करते थे। खानदेश, गुजरात और **कर्नाटक में वे सरसूबेदार** के अधीन थे, परंतु अन्य जगहों पर वे केन्द्रीय सरकार के सीधे **नियंत्रण में थे**

मजूमदार : लेखा परीक्षक और लेखा अधिकारी

पोटनिस : खजांची

किलेदार : किले का अधिकारी

सबनिस : **दफ्तरदार**

सिलहदार : भाड़े के सैनिक। उन्हें अपने घोड़े और हथियार लाने पड़ते थे

वतन : आनुवांशिक भूमि

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. देखिए भाग 10.2
2. (i) × (ii) × (iii) √ (iv) √
3. इस बात का जिक्र कीजिए कि किस प्रकार कुछ इतिहासकार मानते हैं कि मराठा आंदोलन एक हिन्दू प्रतिक्रिया थी। इसके बाद तर्क दीजिए कि किस प्रकार यह हिंदू प्रतिक्रिया नहीं थी बल्कि उनके उत्थान के लिए दूसरे कारण भी उत्तरदायी थे। देखिए भाग 10.3

बोध प्रश्न 2

1. देखिए भाग 10.4

   (i) भोंसले (ii) जावली (iii) मोरे (iv) सिंदखेर (v) मावल
3. देखिए उपभाग 10.5.2 बताइए कि किस प्रकार उसने बीजापुर और गोलकुंडा के खिलाफ मुगल-मराठा गठबंधन की योजना बनाई थी। परंतु औरंगजेब ने मन से इस योजना का साथ नहीं दिया और यह योजना असफल हो गयी।

बोध प्रश्न 3

1. देखिए भाग 10.6
2. देखिए भाग 10.7

बोध प्रश्न 4

1. बताइए कि वे कौन थे। उनकी शक्ति और कार्यों का उल्लेख कीजिए। देखिए भाग 10.8.1
2. देखिए भाग 10.8 और इसके उपभाग। इस तथ्य का विश्लेषण कीजिए कि क्या शिवाजी ने नयी प्रशासनिक व्यवस्था कायम की या पुरानी व्यवस्था को ही नये रंग में रंगा और बेहतर निगरानी व्यवस्था की स्थापना की।
3. देखिए भाग 10.8 और इसके उपभाग। बताइए कि पेशवा के अधीन किस प्रकार प्रशासन में अवनीति हुई जिसके कारण अंततः उनका पतन हुआ।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 11 राजपूत राज्य

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 पृष्ठभूमि : बाबर, हुमायूँ और राजपूत
11.3 राजपूतों के साथ अकबर का संबंध
- 11.3.1 प्रथम चरण
- 11.3.2 द्वितीय चरण
- 11.3.3 तृतीय चरण

11.4 राजपूत राज्य (राजस्थान)
- 11.4.1 आमेर (जयपुर)
- 11.4.2 मारवाड़ (जोधपुर)
- 11.4.3 बीकानेर
- 11.4.4 मेवाड़
- 11.4.5 जैसलमेर
- 11.4.6 बूंदी और कोटा

11.5 मध्य भारत में राजपूत राज्य
11.6 अन्य राजपूत राज्य
- 11.6.1 बगलाना और इदार
- 11.6.2 पहाड़ी राजपूत राज्य

11.7 सत्रहवीं शताब्दी में मुगल-राजपूत संबंध
11.8 सारांश
11.9 शब्दावली
11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- राजपूतों के प्रति बाबर और हुमायूँ की नीति को समझ सकेंगे,
- राजपूतों के साथ अकबर के संबंध के तीन चरणों को पहचान सकेंगे,
- मध्य भारत और राजस्थान में शक्तिशाली राजपूत राज्यों और अन्य छोटे राजपूत राज्यों के उदय और मुगलों के साथ उनके राजनीतिक संबंध का संक्षेप में उल्लेख कर सकेंगे, और
- 17वीं शताब्दी में मुगल/राजपूत संबंधों के स्वरूप का विश्लेषण कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

राजपूतों के प्रति मुगलों की नीति के कारण अकबर और उसके उत्तराधिकारियों के नेतृत्व में मुगल साम्राज्य का विस्तार और सुदृढ़ीकरण हुआ। काफी दिनों तक इस विचार पर बल दिया जाता रहा कि एक खास शासक के व्यक्तिगत धार्मिक विचारों के कारण मुगल-राजपूत संबंध निर्धारित हुए। इस आधार पर अकबर के उदारवाद और औरंगजेब के कट्टरपंथ पर विशेष बल दिया जाता है और इसका प्रभाव राजनीतिक परिदृश्य पर दिखाया जाता है। इधर मुगल-राजपूत संबंधों के अध्ययन का एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ है जिसके अनुसार इसे मुगल कुलीन वर्ग और इन कुलीनों के विभिन्न वर्गों के आपसी तनाव के सांचे में रखकर देखा जा रहा है।

मुगलों का साम्राज्य केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य था। विभिन्न इकाइयों के बीच शक्ति का बंटवारा इसकी एक प्रमुख समस्या थी। काफी हद तक मुगल साम्राज्य का राजनीतिक उलटफेर अभिजातवर्गीय तत्वों (मुगल नौकरशाही और स्वायत्त राजाओं और जमींदारों) द्वारा सर्वोच्चिता या स्वायत्तता के लिए संघर्ष से संचालित होता था। इसी प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों और देश की भौगोलिक पृष्ठभूमि का भी समान योगदान रहा। राजस्थान (यह गांगेय प्रदेश और पश्चिमी भारत के तटीय प्रदेश के बीच का सम्पर्क स्थल था) और मध्य भारत में मालवा की उत्तर भारत की

राजनीतिक घटनाओं के आरंभिक दौर को नियत करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मुगल-राजपूत संघर्ष को अलग करके नहीं देखा जा सकता है बल्कि इसका अवलोकन बीते इतिहास की पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए। इसका विकास दिल्ली सल्तनत के पतन और राजस्थान, मालवा तथा गुजरात में एक नयी राज्य व्यवस्था के उदय की पृष्ठभूमि में हुआ।

11.2 पृष्ठभूमि : बाबर, हुमायूँ और राजपूत

15वीं शताब्दी के अंत में जौनपुर के पतन और मालवा के कमजोर होने से उत्तर भारत में एक नयी स्थिति पैदा हुई। पूर्वी राजस्थान और मालवा पर आधिपत्य जमाने के लिए मेवाड़ के राणा सांगा और लोदियों के बीच संघर्ष हुआ। सांगा ने लोदी सत्ता की शक्ति से डरकर लोदियों के खिलाफ बाबर से संधि कर ली। संधि के मुताबिक बाबर जैसे आगे बढ़ने लगा सांगा ने अपने कदम पीछे हटा लिये। वह बाबर को गांगेय प्रदेश में नहीं आने देना चाहता था। उसकी योजना बाबर को पंजाब तक रोक रखने तथा खुद गांगेय प्रदेश में लोदियों से भिड़ने की थी। गांगेय प्रदेश में बाबर के बढ़ते प्रभुत्व को देखकर सांगा आश्चर्यचकित रह गया। इस परिवर्तन के कारण अफगान, राणा सांगा और अन्य राजपूत राजा एक साथ मिल गये। इनका उद्देश्य बाबर की सेना को दिल्ली और उसके आसपास के इलाकों में बढ़ने से रोकना था। अभी तक कोई भी राजपूत राजा राजपूत और अफगानों जैसे असमान प्रकृति वाले समूह को इकट्ठा करने में सफल नहीं रहा था। खनवा में सांगा की संयुक्त सेना और बाबर की लड़ाई हिंदू और मुसलमानों के बीच की लड़ाई नहीं थी। यह सांगा की संयुक्त सेना के स्वरूप को देखने से ही स्पष्ट हो जाता है। बाबर ने उन अफगान सरदारों की निंदा की जिन्होंने **काफिर** और **मुलहिदों** के रूप में सांगा की मदद की और सांगा के खिलाफ युद्ध को **जेहाद** का नाम दिया। ये सब बातें धार्मिक उन्माद से प्रेरित नहीं थीं बल्कि इनका उद्देष्य सैनिकों की धार्मिक भावनाओं को उभारना था ताकि वे युद्ध में जी-जान से लड़ सकें। बाद में बाबर ने राजपूतों की अपेक्षा अफगानों से निपटना ज्यादा जरूरी समझा। वह दिल्ली-आगरा क्षेत्र और उसके आसपास के इलाके पर अपना नियंत्रण मजबूत करना चाहता था। बयाना, धौलपुर, ग्वालियर जैसी सीमा चौकियों पर भी नियंत्रण स्थापित कर लिया गया। मालवा में मेवात और चन्देरी पर अधिकार कर लिया गया। राणा सांगा की मृत्यु के बाद राजस्थान की समस्या सुलझ गयी।

बाबर मेवाड़ और मालवा के प्रति आक्रामक रुख अपनाना चाहता था पर व्यावहारिक रूप में उसने पूर्व में पहले अफगान समस्या पर ध्यान दिया। बाबर के समय में मुगलों और राजपूतों का संबंध किसी निश्चित और सकारात्मक दिशा में आगे नहीं बढ़ा बल्कि यह राजनीतिक जरूरतों के मुताबिक नियत होता रहा।

जब हुमायूँ गद्दी पर बैठा तब मालवा और राजस्थान में राजनीतिक परिदृश्य बिल्कुल बदल गया था। गुजरात के शासक बहादुरशाह ने मालवा के राजा महमूद खिलजी द्वितीय को हराकर मालवा पर कब्जा कर लिया था। मेवाड़ के राणा रतन सिंह ने मालवा के खिलाफ बहादुरशाह का साथ दिया था, जिसके लिए उसे सम्मानित किया गया। यह राजनीतिक स्वार्थ का एक उदाहरण था। इसी बीच मेवाड़ के राणा विक्रमजीत और बहादुरशाह के बीच अनबन हो गयी और बहादुरशाह ने चित्तौड़ को घेर लिया। हालांकि हुमायूँ मालवा और राजस्थान में बहादुरशाह की बढ़ती शक्ति से उत्पन्न खतरे को भांप रहा था, पर अफगान समस्या सुलझाने से पहले वह बहादुरशाह के साथ भिड़ने में हिचक रहा था। हुमायूँ ने राजस्थान के प्रति प्रतिरक्षात्मक नीति अपनायी, आक्रामक नीति बाद के समय के लिए छोड़ दी गयी। उसने यह भी महसूस किया कि लगातार आपसी युद्ध में फंसे रहने के कारण मेवाड़ की शक्ति क्षीण होती जा रही है। अतः हुमायूँ को उसके साथ सैनिक संधि की कोई उपयोगिता नजर नहीं आयी।

हुमायूँ ने चित्तौड़ का पक्ष तो लिया परन्तु उसे गुजरात के तोपखाने की शक्ति का अंदाज नहीं था और उसने घेराबंदी के दौरान चित्तौड़ की सैनिक शक्ति को जरूरत से ज्यादा बलवान मान लिया। दूसरी तरफ बहादुरशाह यह आशा नहीं कर रहा था कि एक हिंदू राजा का पक्ष लेने के लिए हुमायूँ खुद पहुंच जाएगा। अंततः बहादुरशाह चित्तौड़ को नष्ट करने में सफल हो गया परन्तु उसकी सफलता ज्यादा दिन टिक नहीं पायी।

बाबर और हुमायूँ की राजपूतों के प्रति नीति को अफगान समस्या के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए जिसके कारण वे हमेशा राजपूत राजाओं से दोस्ताना रुख अपनाने में हिचकिचाते रहे।

11.3 राजपूतों के साथ अकबर का संबंध

अकबर की राजपूत नीति को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है। 1569-70 तक पहला चरण माना जाता है जिसमें अकबर ने दिल्ली सुल्तानों की नीति का अनुगमन किया, दूसरे चरण में अकबर ने राजपूतों के साथ दोस्ती बढ़ाने का प्रयत्न किया पर पुरानी नीति के कुछ तत्वों को भी जारी रखा गया, तीसरे चरण में अकबर ने मुस्लिम कट्टरपंथ से अपने को अलग कर लिया।

11.3.1 प्रथम चरण

राजपूतों के साथ अकबर के संबंध को लेकर कई प्रकार के विवाद हुए हैं। कुछ लोग तर्क देते हैं कि अकबर ने एक ऐसी व्यवस्था शुरू की जिसमें धर्म के आधार पर सार्वजनिक नियुक्तियों में कोई भेदभाव नहीं रखा जाता था। दूसरे यह तर्क देते हैं कि साम्राज्य के विस्तार के लिए अकबर ने राजपूत शक्ति का उपयोग किया और उन्हें एक-दूसरे के खिलाफ लड़ाया ताकि एकजुट होकर वे साम्राज्य के लिए खतरा न पैदा कर सकें। यह भी कहा जाता है कि अकबर की राजपूत नीति जमींदारों और लड़ाकू जातियों को अपनी ओर मिलाने की नीति का अंग था। इसमें राजपूत और अफगान दोनों शामिल थे। अधिकांश जमींदार हिंदू और खासकर राजपूत थे। यह भी कहा जाता है कि उजबेगों और अन्य असंतुष्ट सरदारों की शक्ति का सामना करने के लिए राजपूतों का उपयोग किया गया, अकबर की राजपूत नीति का यह भी एक उद्देश्य था। राजपूतों की स्वामिभक्ति जगप्रसिद्ध थी। वे दरबार के अंदर और बाहर एक महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ साबित हो सकते थे।

1557 ई० में ही अकबर के मन पर राजपूतों की स्वामिभक्ति की छाप पड़ गयी थी जब अम्बेर के राजा भारमल के नेतृत्व में राजपूत सेना ने अकबर के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की थी। इसके परिणामस्वरूप 1562 ई० में भारमल की पुत्री का विवाह अकबर से हुआ। पर इस वैवाहिक संधि में कोई नयापन नहीं था और अकबर के पहले भी वैवाहिक संधियां हुआ करती थीं। ये शादियां राजनीतिक समझौते की उपज थीं और न तो इनमें इस्लाम धर्म अपनाने को मजबूर किया जाता था न हिंदू परम्पराओं से नाता तोड़ा जाता था। भारमल ने 1562 ई० में अकबर के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर मुगल सम्राट के प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया। इस प्रथा को बढ़ावा देकर अकबर उन राजाओं के साथ अपना आत्मीय संबंध स्थापित कर रहा था जो उसके सामने व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर सम्मान प्रकट करते थे। यह महसूस किया गया कि व्यक्तिगत संबंध से राजनीतिक गठबंधन मजबूत होगा। इस प्रकार अकबर का शासनकाल व्यक्तिगत निष्ठाओं का काल रहा। राजपूतों और मुगलों के बीच हुई वैवाहिक संधियों में कोई विशेष शर्त नहीं रखी जाती थी। इन संधियों के पीछे मुगलों द्वारा राजपूतों को विद्रोही तत्वों का मुकाबला करने या सैनिक लाभों के लिए उनका उपयोग करने जैसी मंशा नही रहती थी। यह सही है कि राजपूतों ने अपने साथी राजपूतों के खिलाफ मुगलों की मदद की पर यह कोई अपूर्व घटना नहीं थी। अकबर ने 1562-64 ई० के बीच जजिया समाप्त कर दिया, तीर्थ कर आदि हटा दिया। इन उदारवादी कदमों के कारण अकबर के प्रति लोगों का विश्वास बढ़ा और वह उदारवादी राजा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। पर इन कदमों से भी राजपूतों और मुगलों के बीच पूर्ण शांति स्थापित नहीं हो सकी। चित्तौड़ का युद्ध इसका ज्वलंत उदाहरण है। अकबर के साथ भगवंत सिंह के रहने के बावजूद राजपूतों ने मुगलों का जमकर प्रतिरोध किया। दूसरी तरफ अकबर ने इस युद्ध को जेहाद और शहीदों को गाजी कहकर पूरे मामले को धार्मिक रंग दे दिया। उसने इस विजय को ईश्वर की कृपा मानी और इस प्रकार पूरे संघर्ष को एक धार्मिक मोड़ दे दिया।

पहले चरण में अकबर राजपूतों के प्रति उदार हुआ और रणथम्भोर के राज्याध्यक्ष (हाकीम) राव दलपत राय को शाही सेवा में स्वीकार कर लिया गया और उसे जागीर दी गयी। अकबर ने भगवंत सिंह (कच्छवाह राजा) की बहन से शादी की। भारमल अकबर का विश्वस्त और घनिष्ठ था। यह बात इस तथ्य से सिद्ध होती है कि जब अकबर गुजरात अभियान के लिए निकला था तो आगरे की सारी जिम्मेदारी उसी पर सौंपी गयी थी। किसी भी हिंदू राजा को इस प्रकार का सम्मान पहली बार मिला था। हालांकि अकबर के धार्मिक विचार, उसकी सार्वजनिक नीतियां और राजपूतों के प्रति उसकी नीति अलग-अलग विकसित हुए, पर बाद में वे एक-दूसरे में समाहित हो गए।

11.3.2 द्वितीय चरण

1570 के अंत तक राजपूतों के साथ संबंध और भी प्रगाढ़ हुए। बीकानेर के राय कल्याणमल ने अकबर के समक्ष अपने पुत्र सहित खुद उपस्थित होकर आत्मसमर्पण किया। जैसलमेर के रावल हर राय और कल्याणमल की बेटियों की शादी अकबर के साथ की गयी। दोनों राजाओं ने अपने इलाके में अच्छी तरह पैर जमा लिए और उन्हें शाही सेवा में शामिल कर लिया गया। मुगल-राजपूत संबंध के विकास में अकबर का गुजरात अभियान एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। व्यक्तिगत रूप से राजपूतों को सैनिकों के रूप में शामिल किया गया और पहली बार उनका वेतन निश्चित हुआ। इस प्रकार पहली बार राजपूतों को राजस्थान के बाहर नियुक्त किया गया और उन्हें महत्वपूर्ण कार्य और पद सौंपे गये। गुजरात में मिर्जाओं की बगावत के समय अकबर ने मानसिंह और भगवंत सिंह जैसे कच्छवाह राजपूतों पर ही भरोसा किया। अकबर को मेवाड़ की समस्या का भी सामना करना पड़ा। मेवाड़ का राणा व्यक्तिगत समर्पण के लिए तैयार नहीं था वह चित्तौड़ पर पुनः कब्जा जमाना चाहता था। अकबर व्यक्तिगत उपस्थिति के सिद्धांत पर अडिग रहा। इसी समय अकबर ने मारवाड़ पर अधिकार जमा लिया।

मेवाड़ के राणा और अकबर के बीच हुआ हल्दीघाटी का युद्ध हिंदुओं और मुसलमानों के बीच का युद्ध नहीं था। इसके अलावा इसे विदेशी शासन के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती क्योंकि अनेक राजपूत राजा अकबर की ओर से युद्ध कर रहे थे। इसे कुछ हद तक क्षेत्रीय स्वतंत्रता के आदर्श की स्थापना के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। 16वीं शताब्दी के भारत में स्थानीय और क्षेत्रीय निष्ठा की भावना बहुत प्रबल थी और परम्परा और रीतिरिवाज को महत्व प्रदान करने से ये निष्ठाएं और प्रबल हो जाती थीं। पर यह नारा भी बहुत प्रभावशाली नहीं था क्योंकि राजपूत राज्यों में कोई भी क्षेत्रीय शक्ति सर्वोच्च नहीं थी। वे आपस में युद्ध करते रहते थे, जिसके विनाशकारी परिणाम होते थे। मेवाड़ की सीमा से लगे राज्यों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर उससे वैवाहिक संधियां स्थापित

की थीं। इन राज्यों का मेवाड़ के साथ नजदीकी संबंध था, पर इन्होंने हमेशा इलाके के सर्वोच्च शक्तिशाली राज्य का ही साथ देने की नीति अपनाई थी। राणा के समर्थकों बूंदी और मारवाड़ के शासकों को दबा दिया गया। इससे राणा की शक्ति काफी कमजोर हो गयी और राजपूत अब मात्र सहायक नहीं रह गये बल्कि उनके मुगलों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध हो गए।

दूसरे चरण के अंत तक अकबर की राजपूत नीति इस हद तक उदार नहीं हुई थी जिसे मुस्लिम कट्टरपंथी धार्मिक वर्ग अस्वीकृत कर सके या जो राज्य के मुस्लिम स्वरूप के लिए खतरा बन जाए। अगर ऐसा नहीं होता तो बदायूँनी जैसा कट्टरपंथी मेवाड़ अभियान की क्यों प्रशंसा करता।

11.3.3 तृतीय चरण

मेवाड़ के साथ युद्ध की तैयारी करने के क्रम में अकबर द्वारा 1575 ई० में जज़िया पुनः लगाया जाना इस बात का द्योतक है कि राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अकबर को धर्म पर निर्भर होना पड़ा था। बाद में **मुख्य सदर** अब्दुल नबी के हाथ से सत्ता छिन जाना और **महजर** की उद्घोषणा कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं हैं, जिन्हें अकबर की कट्टरपंथ से मुक्ति का प्रथम चरण माना जा सकता है।

1580 ई० में अकबर के भाई मिर्जा हकीम (काबुल का राज्याध्यक्ष) द्वारा पंजाब पर हमला किए जाने पर अकबर को मान सिंह और भगवंत सिंह जैसे राजपूतों पर निर्भर होना पड़ा था जिन्होंने अभूतपूर्व शौर्य का परिचय देते हुए घेराबंदी का सफलतापूर्वक मुकाबला किया। इनामस्वरूप अकबर ने भगवंत दास को लाहौर का राज्याध्यक्ष और मान सिंह को सिंधु क्षेत्र का सेनानायक बना दिया। मिर्जा हकीम के आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि अब वे राजपूत साम्राज्य के प्रमुख रक्षक बन गये और उनकी मुगल प्रशासन में सक्रिय हिस्सेदारी हो गई।

राजपूतों के इस बढ़ते प्रभाव पर मुगल अभिजात वर्ग के एक दल ने शंका प्रकट की। पर अकबर ने इस प्रकार के विचारों को महत्व नहीं दिया और वह राजपूतों पर भरोसा करता रहा।

अकबर ने राजपूत शासकीय परिवारों से निकट का संबंध स्थापित करने की कोशिश की। मुगल-राजपूत संबंधों में कच्छवाहा परिवार को विशेष सम्मान प्राप्त था। 1580 ई० में भगवंत दास की बेटी रानी बाई की शादी युवराज सलीम के साथ हुई। 1583 ई० में जोधपुर, जो कि खालसा भूमि थी, मोटा राजा उदय सिंह (मारवाड़) को दे दी गयी और उसकी बेटी की शादी सलीम के साथ हुई। राय कल्याण सिंह (बीकानेर) और रावल भीम (जैसलमेर) की बेटियों की शादी भी सलीम के साथ हुई। राजकुमार दनियाल की शादी जोधपुर के रायमल की बेटी के साथ हुई।

इन विवाहों के जरिए अकबर ने अपने उत्तराधिकारियों को राजपूतों से निकटता का संबंध बनाये रखने की नीति का पालन करने को बाध्य कर दिया। 1583-84 में अकबर ने प्रशासनिक कार्यों के लिए निष्ठावान मुसलमान और हिंदू कुलीनों के चुनाव की नयी नीति का आरंभ किया। अतः भारमल और राय लोंकरण शेखावत के बेटों को अस्त्र-शस्त्र और सड़कों की देखरेख का जिम्मा सौंपा गया। घरेलू प्रबंधन का जिम्मा रायमल दरबारी (कच्छवाहा) को सौंपा गया, नरवान के राजा अस्करन कच्छवाहा को नाबालिगों की सम्पत्ति का निरीक्षण करने का भार सौंपा गया, जगमल पंवार जिसका संबंध राजा भगवंत सिंह और मान सिंह के साथ था, पर आभूषणों और अन्य खनिजों के विभाग के देखरेख की जिम्मेवारी थी, रामपुरा के राय दुर्गा सिसोदिया और राजा टोडरमल को राजस्व विभाग में प्रशासनिक कार्य सौंपा गया और राजा सुरजन हाड़ा को धर्म और विश्वास के मामलों को राजकुमार दनियाल तक पहुंचाने का काम सौंपा गया। राजा बीरबल अकबर का करीबी सहयोगी था और न्याय भी उसके जिम्मे था। यह बहुत निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि राजपूतों को प्रशासनिक कार्यों को सौंपने की नीति किस हद तक सफल हुई। अबुल फजल बताता है कि यह सही तरह से लागू नहीं की गयी।

प्रशासनिक क्षेत्र में 1585-86 का वर्ष एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इसी वर्ष सूबों को एक नया प्रशासनिक स्वरूप प्रदान किया गया था। प्रत्येक सूबे में दो अमीर या सिपहसलार और एक दीवान तथा एक बख्शी की नियुक्ति होनी थी। राजपूतों में से कच्छवाहों को सबसे ज्यादा पद दिए गए। लाहौर राजा भगवंत दास और बीकानेर के राय रायसिंह को, काबुल मान सिंह को, आगरा राजा अस्करन शेखावत को, अजमेर जगन्नाथ (भारमल का बेटा) को सौंप दिया गया। राठौर और सिसोदियों को भी प्रशासनिक कार्यों के लिए नियुक्त किया गया, पर बड़े पैमाने पर नहीं।

1585-86 तक अकबर की राजपूत नीति पूरी तरह विकसित हो गई थी। राजपूतों के साथ संबंध संतुलित और स्थिर हुए। राजपूत केवल दोस्त नहीं थे बल्कि साम्राज्य में भागीदार भी थे। मेवाड़ के राणा के साथ युद्ध होने के बावजूद राजस्थान के अन्य राजपूत राज्यों से मुगलों के साथ संबंधों में कड़वाहट नहीं आई। अंततः राणा के साथ विवाद सुलझ गया और बाकी जिंदगी उसने दक्षिण मेवाड़ में छावंद (उसकी राजधानी) में गुजार दी।

अकबर के शासनकाल में राजपूतों के साथ संबंध का विश्लेषण करने के लिए 1585-86 का वर्ष चुना जा सकता है। शाही सेवा में शामिल राजपूतों में कच्छवाहों की स्थिति सर्वोच्च थी। **मनसबदारी** व्यवस्था में कच्छवाहों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। *आइने-अकबरी* में **मनसबदारों** की सूची में जिन 24 राजपूतों का नाम शामिल है, उनमें से 13 कच्छवाहा थे। कच्छवाहों में भी केवल भारमल के परिवार के सदस्यों को 1500 ज़त या उससे ऊपर का ओहदा मिला हुआ था। गैर-कच्छवाहा राजपूतों में केवल बीकानेर के राय सिंह को महत्वपूर्ण पद और ऊंचा ओहदा प्राप्त था।

MAADHYAM IAS "way to achieve your dream"

मुगलों के साथ राजपूतों के संबंध के विश्लेषण के लिए राजपूतों की राज्य संरचना को समझना बहुत आवश्यक है। मुगल आक्रमण के पहले उनकी प्रशासनिक संरचना भाईबंत व्यवस्था पर आधारित थी। यह एक प्रकार का ढीला गठबंधन था जिसमें एक प्रांत पर एक कुल या खप का अधिकार होता था, या एक या एक से अधिक परिवार, जिनका अपने कुल के साथ गहरा कुटुम्बीय संबंध था का अधिकार होता था। इन प्रमुख परिवारों के सदस्यों को राव/राय/राना के नाम से जाना जाता था। उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। ज्येष्ठाधिकार और राजा की इच्छा दोनों का प्रचलन था। पर राजपूत सरदारों का सहयोग और सैनिक शक्ति ही निर्णायक तत्व थे। राजपूत सैनिकों की सहायता से कुल के लोग किसी इलाके पर अधिकार जमाकर रखते थे। एक कुल के विशिष्ट परिवार के सीधे नियंत्रण में इलाके के कुछ परगने या महल होते थे और बाकी इलाके पट्टे के रूप में परिवार के सदस्यों को व्यक्तिगत तौर पर दे दिए जाते थे जहां वे अपनी गढ़ी या रहने का स्थान बनाते थे, जिन्हें बसी या कोठरी के नाम से जाना जाता था। इन गढ़ियों के मालिक को धनी या ठाकुर कहा जाता था। इन इलाकों पर अधिकार पैत्रिक होता था। इन परिस्थितियों में राणा ठिकानेदारों (कुल भाइयों) की जमीन पर कब्जा करके अपना क्षेत्र विस्तृत करना चाहते थे जबकि एक कुल अपने पड़ोसी कुल का इलाका हथियाना चाहता था।

जब एक राजपूत राजा को शाही सेवा में नियुक्त किया जाता था तो उसे **मनसब** के साथ एक **जागीर** भी मिलती थी जिसमें महल या टप्पा भी शामिल होता था, जहां कुल के सदस्य रहते थे। महल एक या एक से अधिक परगनों का एक हिस्सा था, जहां एक गढ़ी होती थी। इसमें राजा अपने परिवार के साथ रहता था। यह इलाका राजा का असली वतन होता था, कभी-कभी इस शब्द का इस्तेमाल राजा और उसके कुल के सदस्यों द्वारा अधिगृहीत पूरे इलाके के लिए किया जाता था।

जहांगीर इसे रियासत कहा करता था। **वतन जागीर** शब्द का प्रयोग अकबर के शासनकाल के अंत में लोकप्रिय हुआ। वतन के समीप की जागीर को वतन का अंग माना जाता था और विद्रोह आदि जैसी परिस्थितियों को छोड़कर इसका हस्तांतरण नहीं होता था। राजस्थान के भीतर **वतन जागीर** पूरे जीवन के लिए प्रदान की जाती थी। राजस्थान के बाहर जागीरों का हस्तांतरण होता था। अबुल फज़ल या अन्य समकालीन इतिहासकारों ने **वतन जागीर** का जिक्र नहीं किया है। इसका पहला जिक्र बीकानेर के राजा राय सिंह को अकबर द्वारा दिए गये फरमान में मिलता है। राजपूत स्रोतों, मसलन नैनसी में एक शब्द **उतन** का प्रयोग मिलता है जो **वतन** का अपभ्रंश हो सकता है।

राजस्थान की राज्य संरचना में परिवर्तन और भाईबंत के स्थान पर **वतन जागीर** की अवधारणा का उद्‌भव एक रोचक घटना है। जहांगीर के समय तक **वतन जागीर** की अवधारणा पूरी तरह जड़ जमा चुकी थी। कुल सदस्यों और अन्य सदस्यों के अधिकार वाले क्षेत्र सीधे राजा के नियंत्रण में कर दिए गए। वतन जागीर के जरिए राजाओं ने पट्टायतों पर वर्चस्व कायम कर स्थाई और केन्द्रीकृत राज्य संरचना की स्थापना की ओर एक कदम बढ़ाया। कभी-कभी **वतन** रियासत का हिस्सा होता था।

MAADHYAM IAS

जब कोई राजा मरता था तो **वतन जागीर** के तहत उसे प्राप्त परगने अनिवार्यतः उसके उत्तराधिकारी को नहीं मिल जाते थे। उसके उत्तराधिकारी को उसके **मनसब** के अनुरूप कुछ परगने दिए जाते थे जो उसके पूर्वज की अपेक्षा कम होता था। अतः एक परगना में जागीर अधिकारों का विभाजन कर दिया जाता था। इसका उपयोग राजपूत राजाओं पर नियंत्रण रखने के लिए किया जाता था।

एक खास क्षेत्र पर अधिकार जमाने के लिए राजपूत राजाओं में अक्सर मुठभेड़ हो जाती थी, जिसमें अकबर को भी उलझना पड़ता था। उदाहरण के लिए पोखरन पर अधिकार को लेकर जैसलमेर के भाटियों और बीकानेर तथा जोधपुर के शासकों के बीच मतभेद था। अकबर ने पहले इसे मोटा राजा को दिया और बाद में इसे सूरज सिंह के हवाले कर दिया, लेकिन भाटियों ने प्रतिरोध जारी रखा और अकबर के समय में यह समस्या सुलझ नहीं पायी।

मुगलों ने राजपूतों के बीच फूट पैदा करने की कोशिश नहीं की पर उन्हें राजपूतों के आपसी मतभेदों का पता था और वे जानते थे कि अपने कुल और इलाके को लेकर इनमें अक्सर झगड़े हुआ करते थे। अपने स्वार्थ के लिए उन्होंने इस मतभेद का फायदा जरूर उठाया। उदाहरण के लिए वे विवादग्रस्त परगनों को एक से लेकर दूसरे को देते रहे। एक स्वायत्त राजा पर मुगल नियंत्रण मुगलों की परमसत्ता संबंधी अवधारणा, परम्परागत शासक कुलीन वर्ग के दृष्टिकोणों और राजनीतिक जरूरत द्वारा निर्धारित होता था। अकबर के समय में चित्तौड़ और रणथम्भोर किले मुगलों द्वारा नियुक्त अधिकारियों के अधीन थे। राजपूत राजा अपने रीति-रिवाज और कायदे के अनुसार भूराजस्व का निर्धारण और वसूली करते थे। पर वे कुछ कर नहीं लगा सकते थे। पर इन प्रतिबंधों को रोकने के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी और छोटे राजा अक्सर इसका उल्लंघन किया करते थे। 1563 से 1583 तक मारवाड़ सीधा मुगल शासन के अधीन रहा। 1568 से लेकर जहांगीर के शासन के आरंभिक वर्षों तक मेवाड़ के कुछ हिस्से मुगलों के सीधे नियंत्रण में थे।

अपने **वतन** के बाहर राजपूत राजाओं को पड़ोसी सूबों या जिस सूबे में वे कार्यरत होते थे में जगीरें प्रदान की जाती थीं। जागीरें उपजाऊ क्षेत्रों में होती थीं या **जोरतलब** इलाकों में। राजस्थान और उसके बाहर दी जाने वाली जागीरों का अनुपात अलग-अलग मामलों में अलग-अलग होता था। परम्परागत अधिकार से बाहर की जागीरों से प्राप्त अतिरिक्त आय महत्वपूर्ण थी। राजपूतों के लिए राजस्थान में जागीरें प्राप्त करना एक सम्मान की बात थी क्योंकि इसके जरिए वे अपने कुल से नाता जोड़े रहते थे। यही उनकी शक्ति का आधार स्तम्भ था।

अपने **वतन** से दूर रहकर उसकी चिंता किए बगैर राजपूत राजा साम्राज्य के विभिन्न भागों में कार्यरत रह सकें इसके लिए मुगल साम्राज्य का अखिल भारतीय स्वरूप तथा शांति जरूरी थी। इसका मतलब था कि अन्तर्राज्यीय विवादों और राजपूतों राजाओं और सरदारों के झगड़ों को निपटाने के लिए केंद्र को हस्तक्षेप करना पड़ता था। मुगल नीति के तहत कुलीन तंत्र को कमजोर बनाये रखने की कोशिश की गयी और इसके लिए मध्य और छोटे स्तर के सरदारों को कुलीन तंत्र से अपने को स्वतंत्र करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता रहा। इसीलिए मुगलों ने राजपूत राजाओं के कई छोटे सामंतों को शाही सेवा में जगह दी।

राजपूत राज्यों में उत्तराधिकार के सवाल को लेकर भयंकर गृह युद्ध छिड़ जाता था। मुगल सर्वोच्चता की अवधारणा के तहत इन राज्यों के उत्तराधिकार के प्रश्न को हल किया जाता था। यह कोई आसान काम नहीं था, यह मुगल शासक की ताकत पर निर्भर करता था। अकबर ने घोषणा कर रखी थी कि टीका देने का विशेषाधिकार केवल मुगल साम्राज्य का है। मुगल सम्राट टीका दिवंगत राजा के बेटों या उसके भाई या भाई के लड़कों को दे सकता था और यही संघर्ष का कारण होता था। पर अंततः गृह युद्ध हुए बिना मुगल हस्तक्षेप से मामले सुलझा लिए जाते थे।

मनसब व्यवस्था के विकास के साथ-साथ अकबर ने अपने कुलीनों को विभिन्न जाति समूहों (मुगल, राजपूत आदि) के सैनिकों की मिश्रित फौज गठित करने के लिए प्रोत्साहित किया। पर कइयों को यह मंजूर नहीं था और राजपूतों और मुगलों की अलग-अलग फौजें अभी भी कायम थीं। राजपूत सैनिकों को मुगल सैनिकों से कम वेतन मिलता था, पर इससे कुलीनों द्वारा राजपूत सैनिकों को नियुक्त करने में कितना बढ़ावा मिला, यह कहा नहीं जा सकता है। जातीय-धार्मिक विभेद को मिटाने के लिए अकबर ने बहुजातीय फौजों के गठन को प्रोत्साहित करने की कोशिश की। पर हम देखते हैं कि अकबर और उसके उत्तराधिकारियों के काल में जातीय-धार्मिक बंधन कमजोर नहीं हो सके। शाही सेवा में राजपूतों को महत्व दिए जाने से बहुत से कुलीन नाखुश थे। पहले-पहल मुगल सेवा के अनुशासन के अनुरूप अपने को ढ़ालने में राजपूतों को भी काफी दिक्कत हुई।

आरंभ में राजपूतों के साथ अकबर का संबंध एक राजनीतिक समझौते के रूप में विकसित हुआ पर धीरे-धीरे यह हिंदू-मुसलमानों में समीपता और उदारवादी नीति के प्रारूप में परिणत होता चला गया, जिसमें धर्म का भेदभाव किए बिना सहिष्णुता की नीति को प्रधानता दी गयी। इस समय तक न्याय की अवधारणा काफी विस्तृत हो चुकी थी। यह बात की जाने लगी थी कि धर्म, निष्ठा, जाति और प्रजाति के भेदभाव के बिना सबको समान स्तर पर न्याय दिया जाएगा। अतः मुगल-राजपूत संबंध को धर्मनिरपेक्ष, गैर-कट्टरपंथी राज्य की शुरुआत के रूप में देखा जा सकता है जिसमें प्रत्येक नागरिक को राज्य के कायम रहने की चिंता हो। पर सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ इससे कहीं अलग था। आमतौर पर अपने सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोणों में राजपूत कट्टरपंथी थे। उन्होंने अकबर के **तौहिद इलाही** में शामिल होने से इंकार कर दिया और अकबर द्वारा सती प्रथा के विरोध का भी समर्थन नहीं किया। राजपूतों की तरह मुगल अभिजात्य वर्ग भी आमतौर पर कट्टरपंथी था। मुगल अभिजात्य वर्ग और **उलेमा** डरते थे कि बृहद् उदारवादी नीति अपनाने से उनका महत्व कम हो जाएगा। उनके विरोध को मुगल-राजपूत गठबंधन द्वारा दबाया जा सकता था। इसके अतिरिक्त दोनों धर्मों की समानताओं को स्थापित करने वाले शक्तिशाली उदारवादी आंदोलनों से भी उलेमा वर्ग को दबाने में बल मिला। इन आंदोलनों का प्रभाव सीमित था और मुगल-राजपूत गठबंधन को कोई ठोस आधार प्राप्त नहीं था, अतः यह हमेशा तनावग्रस्त रहा और अंततः ढह गया।

11.4 राजपूत राज्य (राजस्थान)

अम्बेर, मेवाड़, मारवाड़, जैसलमेर, बीकानेर, बूंदी और कोटा राजस्थान के कुछ प्रमुख राजपूत राज्य थे। यहाँ हम संक्षेप में इनके शक्तिशाली राजपूत राज्यों के रूप में उदय और मुगलों के साथ राजनीतिक संबंधों की चर्चा करेंगे।

11.4.1 आमेर (जयपुर)

पूर्वी राजस्थान में स्थित आज का जयपुर ही आमेर राज्य था, इसके शासक कच्छवाह थे। अकबर के शासनकाल के आरंभ में राजा भारमल आमेर के राजा थे। हम आमेर के साथ अकबर के संबंधों की चर्चा पहले कर चुके हैं।

अकबर की मृत्यु के समय राजा मानसिंह और युवराज सलीम के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गया था। मानसिंह ने अजीज कोका (एक मुगल कुलीन) के साथ मिलकर सलीम के बजाय राजकुमार खुसरो की गद्दी पर दावेदारी का समर्थन किया था। खुसरो मानसिंह का भान्जा (बहन का लड़का) और अजीज कोका का दामाद था। इस मुद्दे पर कच्छवाह भी विभाजित हो गये। रामदास और रायसल दरबारी ने सलीम का पक्ष लिया। उस समय दोनों खजान-ए-अमीरा (शाही राजकोष) के अधिकारी थे। मानसिंह और अजीज कोका ने राजकोष पर अधिकार जमाना चाहा पर दोनों अधिकारियों ने इसका विरोध किया और राजकोष को बचाने में सफल रहे। जब सलीम सम्राट बना तो स्वाभाविक रूप से वह उन लोगों से नाराज था जिन्होंने उसका विरोध किया था। मानसिंह को बंगाल भेज दिया गया और जहांगीर के पूरे शासनकाल में कभी भी कच्छवाहों को कोई विभाग नहीं सौंपा गया। रामदास और रायसल दरबारी को प्रोत्साहन मिला और उनका ओहदा बढाकर 5000 **ज़ात** कर दिया गया। हालांकि जहांगीर मानसिंह से नाराज था, पर राजनीतिक माहौल और जरूरत

MAADHYAM IAS

के कारण वह शक्तिशाली कच्छवाह राजाओं के साथ अपने संबंध नहीं तोड़ सका। इसलिए उसने मानसिंह के बड़े बेटे स्वर्गीय जगत सिंह की पुत्री से 1608 ई० में विवाह किया। अपनी मृत्यु तक (1614-15) राजा मानसिंह के पास 7000 **ज़ात** और 7000 **सवार** का ओहदा रहा।

1614 ई० में जहांगीर ने आमेर की गद्दी महा सिंह को देने के बदले टीका भाओ सिंह को दिया और उसे मिर्जा राजा की उपाधि और 4000 **ज़ात** का ओहदा दिया गया, जिसे बढ़ाकर 5000 **ज़ात** कर दिया गया। कच्छवाह कुल में उत्तराधिकार बड़े लड़के को सौंपने का नियम था, इसके अनुसार गद्दी महा सिंह को मिलनी चाहिए थी, जो मानसिंह के बड़े मृत भाई का बड़ा लड़का था। खुर्रम के विद्रोह के समय कच्छवाह सरदार मिर्जा राजा जय सिंह सावधान **था** और पूरे मामले में वह चुप्पी साधे रहा। उसकी तटस्थता से युवराज खुर्रम खुश हुआ। जब वह बादशाह बना तो उसने जय सिंह की पदोन्नति कर दी और उसे कुछ पद सौंपे। **मिर्जा राजा जय सिंह को** 4,000 **जात** और 2,500 **सवार** का **मनसब** प्राप्त था। दक्खन के सैनिक अभियानों के दौरान उसने खूब नाम कमाया और उसकी पदोन्नति होती गयी। 1637 ई० तक उसका ओहदा 7000 **जात** और 7000 **सवार** का था। बल्ख और कन्धार के खिलाफ औरंगजेब के अभियान का वह सेना प्रमुख था। मिर्जा के अतिरिक्त अन्य कच्छवाह सरदारों को भी महत्वपूर्ण पद दिए गये। **फौजदार** और **किलेदार** के महत्वपूर्ण पद उन्हें सौंपे गये। 1650 (लगभग) में मिर्जा जय सिंह दिल्ली का **फौजदार** बना। उसी वर्ष उसका पुत्र कीरत सिंह मेवात का **फौजदार** बना। इसके पहले मिर्जा जय सिंह को आगरा का **सूबेदार** और मथुरा का **फौजदार** नियुक्त किया गया था।

युवराज दारा शिकोह और औरंगजेब के बीच होने वाले उत्तराधिकार के युद्ध में मिर्जा राजा जय सिंह ने शाही सरकार का पक्ष लिया और पदोन्नति पाई। शाहजहां के चहेते दारा के सहयोग के कारण पदानुक्रम में जसवंत सिंह जय सिंह से पहले था। जय सिंह के भतीजे की लड़की से दारा के लड़के की शादी हुई। भारत के पूर्वी प्रदेश में राजकुमार शुजा का विरोध करके मिर्जा जय सिंह ने नाम कमाया और उसे 7000 **जात** और 7000 **सवार** का **मनसब** (5000 **दु असपा, सिहअसपा**) प्रदान किया गया। सामूगढ़ के युद्ध के बाद औरंगजेब की स्थिति मजबूत हो गयी, राजा और उसका बेटा राम सिंह दारा के दल से अलग होकर औरंगजेब से जा मिले। औरंगजेब ने उसे एक करोड़ **दाम** की जागीर पुरस्कार स्वरूप प्रदान की। वह औरंगजेब का विश्वासपात्र बन गया। औरंगजेब को राजा का सैन्य समर्थन मिलता रहा। वह दक्खन में मराठों, बीजापुर और गोलकुंडा के खिलाफ लड़ता रहा। शिवाजी के आगरा से भाग जाने के बाद उसे दक्खन क्षेत्र से हटा दिया गया। शिवाजी उसके पुत्र की निगरानी में था और उसे भगाने का आरोप उस पर लगा। उसके बाद आमेर राज्य पर उसके पुत्र राम सिंह और प्रपौत्र बिशन सिंह का अधिकार रहा। सवाई जय सिंह (1700-1743) के शासनकाल में आमेर एक शक्तिशाली राज्य बन गया। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार की समस्या सामने आयी। सवाई जय सिंह उत्तराधिकार के युद्ध में उलझ गया। नया सम्राट बहादुरशाह उसे नापसंद करता था, उसने पहले जय सिंह के भाई विजय सिंह को आमेर सौंपा और बाद में सम्राट ने आमेर राज्य को शाही नियंत्रण में ले लिया। लेकिन कुछ समय बाद सवाई जय सिंह ने आमेर पर अधिकार कर लिया। आपसी संघर्ष और शाही दरबार की **दलबंदी** का फायदा उठाकर उसने आमेर की सीमा का विस्तार किया और अपनी प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी की। उसने जयनगर नामक नये शहर की स्थापना की, जिसे आज जयपुर के नाम से जाना जाता है। जिस समय वह गद्दी पर बैठा उस समय उसके पास आमेर के आसपास का छोटा इलाका ही था, पर वह आमेर क्षेत्र से लगे कई परगनों का राजस्व वसूल किया करता था और कई परगनों का राजस्व ठेका (**इजारा**) ले रखा था। इस प्रकार वह शक्तिशाली जयपुर राज्य की स्थापना करने में सफल रहा।

MAADHYAM IAS

11.4.2 मारवाड़ (जोधपुर)

जोधपुर के राठौर सरदार कन्नौज क्षेत्र से आये थे और उन्होंने राज्यतंत्र की स्थापना की। राव जोधा (1446-53) ने जोधपुर शहर की स्थापना की और यह एक प्रमुख शक्ति-केंद्र बन गया। धीरे-धीरे राठौरों ने उत्तर-पश्चिम राजस्थान के विशाल मरुभूमि क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। मेरता, बीकानेर, किशनगढ़ और नागौर जैसे कई राठौर राज्यों की स्थापना हुई। इन राज्यों के शासक परिवारों का जोधपुर के राठौर परिवार के साथ पारिवारिक संबंध था। 1563-64 में चंद्रसेन के शासनकाल में जोधपुर को अकबर ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। 1583 ई० में इसे मोटा राजा को सौंप दिया गया। मारवाड़ के राजा के साथ वैवाहिक संधियां की गयीं और उसके पुत्रों को **मनसब** प्रदान किए गये।

जहांगीर के शासनकाल में दक्खन और चित्तौड़ अभियानों में वीरतापूर्वक कार्य करने के कारण सूरज सिंह को 5000 **जात** का ओहदा प्रदान किया गया। 1619 में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र गज सिंह को जोधपुर की गद्दी सौंपी गयी और 3000 **जात** और 2000 **सवार** का ओहदा प्रदान किया गया। गज सिंह ने दक्खन में कार्य किया और उसका ओहदा बढ़ाकर 5000 **जात** और 5000 **सवार** कर दिया गया।

जहांगीर के खिलाफ शाहजहां ने बगावत की पर गज सिंह ने शाहजहां के खिलाफ सक्रिय रूप से भाग नहीं लिया। जब शाहजहां सम्राट बना तो गज सिंह को उसके पुराने ओहदे पर रहने दिया गया। उसे विद्रोही मुगल सरदार खां जहां लोदी और उसके बाद बीजापुर के आदिल शाह के खिलाफ अभियान का जिम्मा सौंपा गया।

1638 में उसकी मृत्यु के बाद उसकी इच्छा के अनुसार उसके बड़े बेटे अमर सिंह की जगह छोटे बेटे जसवंत सिंह को जोधपुर की गद्दी सौंपी गयी। जसवंत को राजा की उपाधि दी गयी और 4000 **जाट** और 4000 **सवार** का **मनसब** भी प्रदान किया गया। शाहजहां ने अमर सिंह को (जो काबुल में था) भी 3000 **जात** और 3000 **सवार** का ओहदा

तथा राव की उपाधि दी। उसे नागौर में एक नई **वतन जागीर** दी गई। जसवंत सिंह और अमर सिंह का सम्राट की मां जगत गोसाई के साथ खून का रिश्ता था, इसी कारण शाहजहां उन पर कृपालु था।

राजा जसवंत सिंह ने कांधार में पहले राजकुमार दारा शिकोह के नेतृत्व में और फिर राजकुमार औरंगजेब के नेतृत्व में काम किया। इसके पहले वह आगरा का कार्यवाहक राज्याध्यक्ष था। अब तक राजा को 6000 **जात** और 6000 **सवार** (5000 **दु असपा सिह असपा**) का ओहदा मिल चुका था। महाराजा की उपाधि देकर उसका ओहदा और भी बढ़ा दिया गया और उसने धारमात और समूगढ़ के युद्ध में औरंगजेब के खिलाफ शाही सेना की तरफ से लड़ाई की, जिसमें उसकी पराजय हुई। जसवंत सिंह का मनसब बढ़ाकर 7000 **जात** और 7000 **सवार** (6000 **दु असपा सिह असपा**) कर दिया गया। शाहजहां और दारा शिकोह के साथ सहानुभूति दिखाने और बार-बार दल बदलने के कारण औरंगजेब उस पर क्षुब्ध था अतः उसने उसकी जोधपुर की गद्दी जब्त कर ली और नागौर के अमर सिंह के बेटे और उसके भतीजे राव राय सिंह को सौंप दी। दारा के प्रति राजपूतों की कोई विशेष सहानुभूति न थी न ही औरंगजेब को राजपूतों से कोई परहेज था। पर अंततः जब औरंगजेब उत्तराधिकार के युद्ध में सफल रहा तो उसने जसवंत सिंह को उसकी गद्दी और **मनसब** लौटा दिया। उसे गुजरात का राज्याध्यक्ष भी नियुक्त किया गया। शक्तिशाली राजपूत राजाओं के पास एक विशाल स्थानीय समर्थन था, अतः उन्हें नाराज करना औरंगजेब के लिए उपयुक्त नहीं था। औरंगजेब ने भी राजपूतों को अपनी ओर मिलाने की नीति अपनाई। इसके बाद जसवंत सिंह दक्खन और अफगानिस्तान में कार्यरत रहा। पर 1662 में शाइस्ता खां के खेमे पर शिवाजी के अचानक आक्रमण से उसकी लापरवाही सामने आयी और औरंगजेब चिंतित हो उठा। जसवंत सिंह पर शिवाजी का पक्ष लेने का आरोप लगा, पर औरंगजेब जसवंत सिंह पर भरोसा करता रहा। अपने अंतिम दिनों में उसने अफगानिस्तान में जामरूद के थानेदार के रूप में काम किया। यह एक निम्न पद तथा पदावनति थी और मुगल दरबार से दूर भेजे जाने के समकक्ष था। यह एक प्रकार देश निकाले का दंड था। उसकी मृत्यु के बाद औरंगजेब के दक्खन अभियान में राजपूतों को शामिल नहीं किया गया। 1676 के बाद औरंगजेब ने दक्खन में एक बार फिर आक्रामक नीति अपनायी। यह औरंगजेब की मेवाड़ और मारवाड़ से संबंध विच्छेद की पृष्ठभूमि थी।

हालांकि अपने शासनकाल के आरंभिक दिनों में औरंगजेब अपने धार्मिक दृष्टिकोण में कट्टरपंथी था पर राजपूत उसके साम्राज्य में साझेदार बने रहे। धीरे-धीरे दोनों का संबंध तनावपूर्ण होता चला गया। मुगल सम्राट की अनुमति के बिना राजपूतों द्वारा अपने इलाकों को बढ़ाये जाने और वैवाहिक संधियों का औरंगजेब ने विरोध किया।

इस समय राठौर विद्रोह के रूप में एक बड़ा संकट उत्पन्न हो गया। जसवंत सिंह का एक पुत्र पृथ्वी सिंह उसके जीवनकाल में ही मर गया। उसकी मृत्यु के समय उसकी दोनों पत्नियां गर्भवती थीं, पर पुत्र होने की कोई निश्चितता नहीं थी। जोधपुर की गद्दी भी बहुत समय तक खाली नहीं रखी जा सकती थी। राजपूत परम्परा के अनुसार रानी हाड़ी (प्रधान रानी) को भी गद्दी नहीं सौंपी जा सकती थी। ज्येष्ठाधिकार का नियम राठौर नहीं मानते थे और पिता की चहेती स्त्री के पुत्र को गद्दी मिलती थी। उत्तराधिकारी के नाबालिग होने की स्थिति में राज्य पर शाही प्रत्याशी शासन करता था। मारवाड़ में गद्दी के दो दावेदार थे — बीकानेर के राव अनूप सिंह (अमरसिंह की पुत्री का बेटा) और नागौर का इन्द्र सिंह (उसके दादा अमर सिंह के मारवाड़ की गद्दी पर दावे को नामंजूर कर उसके छोटे भाई जसवंत सिंह को मारवाड़ की गद्दी दे दी गई थी)। दोनों ने **पेशकश** के रूप में अपार धनराशि देने का वादा किया और अनूप सिंह जसवंत सिंह पर सरकार के बकाए को चुकाने के लिए जसवंत सिंह की लावारिस संपत्ति भी अर्पित करने को तैयार हो गया। लेकिन औरंगजेब ने आदेश जारी कर जोधपुर सहित मारवाड़ राज्य को **खालिसा** के अधीन ले लिया। हालांकि यह मुगल साम्राज्य का हिस्सा था पर अपने आंतरिक मामलों में वह स्वायत्त था। विवादास्पद उत्तराधिकार बहुत से कारकों में से एक था, जिसके कारण मारवाड़ को **खालिसा** में मिला लिया गया और इस प्रकार की घटना अभूतपूर्व नहीं थी। इसका एक और कारण यह था कि महाराजा के अधीनस्थ राजस्व अपने पास रखकर समस्याएँ पैदा करते थे। जसवंत सिंह ने अपने अधिकांश गांव सरदारों को पट्टे पर दे दी थी और वह उनसे अपना बकाया नहीं वसूल कर पाता था। इस प्रकार महाराजा पर राज्य का कर्ज था। जसवंत सिंह के कुछ परगनों पर पड़ोसी राज्य भी अधिकार का दावा करते थे। जोधपुर को **खालिसा** में मिला देने के बाद जसवंत सिंह के परिवार के गुजारे के लिए सोजत और जैतरां के परगने निर्धारित कर दिए गये। रानी हाड़ी जोधपुर समर्पित करने को तैयार नहीं थी पर बाकी मेवाड़ को **खालिसा** में मिलाए जाने का उसने विरोध नहीं किया। वह चाहती थी कि यह मुद्दा थोड़े समय के लिए टल जाए और जसवंत के पुत्र होने की संभावना तक इंतजार किया जाए। मेवाड़ के राणा राज सिंह और राठौरों ने रानी हाड़ी का समर्थन किया। औरंगजेब ने जसवंत सिंह के अनुयाइयों के इस भय को दूर करने के लिए कि जोधपुर के **खालिसा** में मिलते ही उनकी स्थिति असुरक्षित हो जाएगी, पट्टे को शाही पट्टे में बदलने का प्रस्ताव रखा। रानी हाड़ी ने जोधपुर समर्पित करने से इंकार कर दिया। औरंगजेब ने आक्रमण करने का निश्चय किया। मारवाड़ पर कब्जा कर लिया गया और जोधपुर में **काजी** और **मुहतासिब** आदि मुगल पदाधिकारियों की नियुक्ति कर दी गयी पर किले पर रानी हाड़ी का कब्जा रहा। इसी समय जसवंत सिंह की दोनों रानियों को पुत्रों की प्राप्ति हुई। बीकानेर के शासक राव अनूप सिंह और शाही बख्शी खां जहां ने दोनों पुत्रों के दावे का समर्थन किया। अंततः औरंगजेब ने 36 लाख रुपये की पेशकश लेकर मारवाड़ की गद्दी इन्द्र सिंह को सौंप दी। इसके पहले रानी हाड़ी ने एक गुप्त पेशकश की थी कि अगर जसवंत सिंह के किसी एक पुत्र को टीका दिया गया तो राठौर मारवाड़ के सभी मंदिरों को तोड़ देंगे। रानी चाहती थी कि इन्द्र सिंह के पक्ष में होने वाला निर्णय किसी तरह टलता रहे। उसने जोधपुर के फौजदार ताहिर खां के कहने पर यह प्रस्ताव रखा था। आश्चर्य से परिपूर्ण इस प्रस्ताव को औरंगजेब ने ठुकरा दिया। इससे पता चलता है कि मारवाड़ में मंदिरों को ध्वस्त करने के लिए पदाधिकारियों और पत्थर काटने वाले कारीगरों की नियुक्ति और **जज़िया** के पुनः लागू करने जैसे औरंगजेब द्वारा लिए

MAADHYAM IAS

गए निर्णयों का राजपूतों और उसके अधिकारियों ने गलत अर्थ लगाया। अंततः रानी ने सुझाव दिया कि इंद्र सिंह को जोधपुर सौंपने के बजाए जोधपुर **खालिसा** के अधीन ही रहे।

अगर औरंगजेब हिन्दुओं का बलपूर्वक धर्म परिवर्तित कराने की नीति लागू करता तो वह अवश्य ही मारवाड़ को **खालिसा** के अधीन रखता। वह जसवंत सिंह के पुत्रों के बालिग होने तक शाही प्रत्याशी के द्वारा शासन करता। हालांकि इन्द्र सिंह के राज्यारोहण से राजपूतों को एक गलत परम्परा की शुरुआत होने का खतरा दीख रहा था, वह यह कि मुगल सम्राट जब चाहे राजा के उत्तराधिकारी के दावे को अस्वीकार कर सकता था। औरंगजेब के कहने पर मारवाड़ में मंदिरों के गिराए जाने से राजपूतों के मन में शंका उत्पन्न हुई।

जसवंत सिंह के नाबालिग पुत्रों को दिल्ली लाया गया और उनके दावे का मीर बख्शी आदि ने समर्थन किया। इंद्र सिंह और अजित सिंह (जसवंत सिंह का पुत्र) दोनों को संतुष्ट करने के लिए औरंगजेब ने राज्य को दो हिस्सों में बांटने का निर्णय लिया। टीका इन्द्र सिंह को दिया जाना था जबकि सोजत और जैतरां अजित सिंह को दिया गया था। जोधपुर को कमजोर बनाने के लिए राज्य का विभाजन किया गया था। यह औरंगजेब की राजपूतों के प्रति नीति का एक हिस्सा था, जिसके तहत राजपूतों की शक्ति को धीरे-धीरे कम करना था। इन हालात में राठौरों ने मुगलों के विरुद्ध बगावत कर दी। औरंगजेब ने आगरे में जसवंत सिंह के एक पुत्र का धर्म परिवर्तन करा दिया ताकि वह गद्दी पर अपना हक खो दे। वह अब इन्द्र सिंह का भी समर्थन नहीं कर रहा था। पर औरंगजेब दूसरे पुत्र को भी सही उत्तराधिकारी मानने को तैयार नहीं था। अंततः जोधपुर औरंगजेब के कब्जे में आ गया। दुर्गा दास जसवंत सिंह के बच्चे के साथ मेवाड़ भाग गया।

11.4.3 बीकानेर

बीकानेर का शासकीय परिवार भी जोधपुर के राठौर शासकीय परिवार के कुल से ही संबंध रखता था। राव बीका (1472-1504) ने जोधपुर परिवार से अपना संबंध विच्छेद कर लिया था और उसने थार मरुभूमि के क्षेत्र में अपने नाम पर बीकानेर राज्य की स्थापना की थी। उसने और उसके समर्थकों ने स्थानीय जाट सरदारों को दबा कर उन्हें अपने नियंत्रण में कर लिया था। जैतसी (1526-1542) सम्राट हुमायुँ की सेवा में कार्यरत था। लेकिन जब जोधपुर का राव मालदेव शक्तिशाली सरदार के रूप में उभरा तो उसने जैतसी को अपने अधीन कर लिया। जैतसी के पुत्र और उत्तराधिकारी कल्याण मल ने शेरशाह की सेवा में कार्य किया और शेरशाह से कई परगनों का अधिकार प्राप्त कर अपने अधिकार क्षेत्र का विस्तार किया।

जब अकबर के संरक्षक बैरम खां ने 1560-61 में विद्रोह किया तो उसने बीकानेर में शरण ली। इस घटना के बाद कल्याण मल के संबंधी राजा भगवंत दास उसे 1570 में अकबर की सेवा में ले आए। बीकानेर की एक राठौर राजकुमारी की शादी भी अकबर के साथ की गयी। राव कल्याण मल और उसके पुत्र राय सिंह को क्रमशः 2000 **जात** और 4000 **जात** का **मनसब** प्रदान किया गया। राय सिंह के पुत्र दलपत को भी 500 **जात** का **मनसब** प्रदान किया गया।

MAADHYAM IAS

साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में हुए मुगल अभियानों में राव राय सिंह के अलावा उसके बेटे दलपत ने भी अपनी सैनिक सेवाएं प्रदान कीं। उन्होंने सिंध, पंजाब, बंगाल के अभियानों में हिस्सा लिया और सिरोही तथा आबू के सरदारों को परास्त किया।

राजकुमार सलीम के साथ राव की बेटी की शादी होने से राव राय सिंह और मुगल शासकीय परिवार के बीच रिश्ता और भी प्रगाढ़ हो गया। 1586-87 में राव को लाहौर सूबे का सूबेदार नियुक्त किया गया। अकबर द्वारा उसे राजा की उपाधि प्रदान करने से राव का सामाजिक स्तर ऊँचा हो गया।

1605 ई. में गद्दी पर बैठने के बाद राव राय सिंह का मनसब 5000 **जात** कर दिया गया। जहांगीर ने राजा को हरम का रक्षक नियुक्त किया जबकि उसने खुद विद्रोही राजकुमार खुर्रम का पीछा करने का निश्चय किया। राय सिंह ने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया और वह बीकानेर चला गया। अमीर उल उमरा शरीफ खां के बीच-बचाव करने पर बाद में जहांगीर ने उसे माफ कर दिया। 1612 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा दलपत उसका उत्तराधिकारी बना। राय सिंह ने अपने पुत्र सूर सिंह को उत्तराधिकारी घोषित किया क्योंकि उसकी मां राय सिंह की प्रिय रानी थी। लेकिन जहांगीर को जब इस बात का पता चला तो उसने राय सिंह के चुनाव को रद्द करके व्यक्तिगत रूप से दलपत सिंह को टीका प्रदान किया। अपनी इस कार्यवाही से उसने स्पष्ट कर दिया कि उत्तराधिकार संबंधी निर्णय लेने का अधिकार सिर्फ केन्द्र सरकार अर्थात् मुगल सम्राट को है। बाद में, दलपत ने सम्राट के खिलाफ बगावत कर दी और सूर सिंह को, जिसने दलपत को बंदी बनाने में सम्राट की मदद की, बीकानेर का शासक बना दिया। अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण जहांगीर के शासन काल में सूर सिंह 3000 **ज़ात** और 2000 **सवार** के ओहदे तक पहुंच गया। सत्ता हासिल करने के बाद शाहजहां ने राव को 4000 **जात** और 3000 **सवार** का ओहदा प्रदान किया। राव ने कई अभियानों में हिस्सा लिया। 1630-31 में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र कर्ण को राव की उपाधि के साथ गद्दी प्राप्त हुई और 2000 **ज़ात** और 1000 **सवार** का **मनसब** प्राप्त हुआ। राव कर्ण दक्खन में कार्यरत रहा और उसने इस इलाके के जमींदारों को दबाने में अहम् भूमिका निभाई। उत्तराधिकार के युद्ध में राव ने निष्पक्ष रहने का फैसला किया और मुगल सिंहासन के लिए लड़ रहे राजकुमारों में से किसी का पक्ष न लेते हुए बीकानेर चला गया। गद्दी पर बैठने के बाद औरंगजेब ने राव को पुनः मुगल सेवा में शामिल होने के लिए दबाव डाला। उसे 3000 **ज़ात** और 2000 **सवार** का **मनसब** प्रदान कर दक्खन में तैनात कर दिया गया। **चांदा** के जमींदार के खिलाफ अभियान में उसने सन्दिग्ध भूमिका अदा की जिसकी

कीमत उसे चुकानी पड़ी। उसके पुत्र अनूप सिंह को 2500 **ज़ात** और 2000 **सवार** के **मनसब** के साथ बीकानेर दे दिया गया। अपदस्थ राव औरंगाबाद चला गया जहां 1666-67 में उसकी मृत्यु हो गई। दक्खन में अनूप सिंह के कार्य को देखते हुए राजा की उपाधि दी गई। उसने मराठों के खिलाफ युद्ध किया और उसे नुसरताबाद का **किलेदार** नियुक्त किया गया। 1699 में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र सरूप सिंह को टीका और 1000 **जात** तथा 500 **सवार** का **मनसब** प्रदान किया गया।

11.4.4 मेवाड़

मेवाड़ राजस्थान का एक बड़ा राजपूत राज्य था। इसके पास तीन मजबूत किले थे : चित्तौड़, कुम्भलमेर और मण्डल। यहां सिसोदिया सरदारों का शासन था। आगरा से गुजरात की ओर जाने वाला व्यापार मार्ग सिसोदिया क्षेत्र से होकर जाता था। अतः मुगल सम्राट के लिए इसका विशेष महत्व था। सिसोदिया सरदारों ने कई स्थानीय सरदारों को अपने अधीनस्थ कर लिया था। राणा सांगा और बाबर के युद्ध की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। मेवाड़ की पराजय के बाद कई बाहरी आक्रमण हुए। गुजरात के बहादुरशाह ने मेवाड़ पर आक्रमण किया और राणा को अपनी सर्वोच्चता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

राणा विक्रमजीत के उत्तराधिकारी राणा उदय सिंह ने मालवा के शासक बाज बहादुर को शरण दी। अकबर ने 1567 में चित्तौड़ पर आक्रमण किया और उस पर कब्जा जमा लिया। उदयसिंह के बाद राणा प्रताप ने गद्दी संभाली। उसने व्यक्तिगत रूप से अकबर के सामने उपस्थित होने से इंकार किया पर उसने दरबार में **पेशकश** के साथ अपने पुत्र अमर सिंह को भेजा। इसके बाद हल्दीघाटी का युद्ध हुआ जो राजपूतों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। अपने आकार, भू-भाग और भौगोलिक अवस्थिति के कारण मेवाड़ ने हमेशा मुगलों को महत्व नहीं दिया। अकबर मेवाड़ पर कृपालु नहीं रहा। 1614 में राजकुमार खुर्रम ने अभियान छेड़ा और राणा अमर सिंह को समर्पण करने के लिए मजबूर कर दिया। राणा ने अपने पुत्र कुंवर कर्ण को दरबार में भेजा जहां उसका स्वागत हुआ। उसे पांच हजार (5000 **जात**) का **मनसब** प्रदान किया गया। राणा और मुगलों के बीच जो संधि हुई उससे राणा को कई विशेषाधिकार प्राप्त हुए। यह निर्णय हुआ कि राणा व्यक्तिगत रूप से मुगलों के लिए लड़ने के लिए नहीं जाएगा लेकिन किसी व्यक्ति के अधीन 1500 सैनिकों को भेजेगा। यह भी निर्णय हुआ कि राणा चित्तौड़ के किले की मरम्मत नहीं कराएगा। मुगल **मनसब** पदानुक्रम में राणा को 5000 **जात** का ओहदा दिया गया। 1619 में राणा अमर सिंह की मृत्यु के बाद कुंवर कर्ण राणा की उपाधि और 5000 **जात** के **मनसब** के साथ गद्दी पर बैठा। उसकी मृत्यु के बाद शाहजहां ने 1628 में उसके बेटे जगत सिंह को 5000 **जात** और 5000 **सवार** का **मनसब** प्रदान किया।

1614 की संधि का उल्लंघन करते हुए 1654 में जब जगत सिंह ने किले की मरम्मत शुरू की तो शाहजहां ने सादुल्ला खां को राणा के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए भेजा। संधि की शर्त का उल्लंघन करने के दंड स्वरूप कुछ परगने छीन लिए गये और उन्हें **खालसा** में मिला दिया गया। राणा जगत सिंह के उत्तराधिकारी राणा राज सिंह ने राजकुमार दारा शिकोह से सम्पर्क किया और उसके हस्तक्षेप करने से राणा के राज्य का काफी हिस्सा बच गया। इसके बावजूद राणा मुगल सम्राट को एक व्यक्ति के अधीन एक निश्चित संख्या में सैनिक सहायता प्रदान करता रहा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

उत्तराधिकार के युद्ध में राणा राज सिंह मूक दर्शक बना रहा, पर अजमेर के निकट देवराय में जब निर्णायक युद्ध लड़ा जा रहा था, तब दारा शिकोह और औरंगजेब दोनों राणा की सहायता की आकांक्षा रखते थे। दारा शिकोह ने देवराय पहाड़ी पर मोर्चा लगा रखा था जो सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था। अगर जसवंत सिंह और राणा राज सिंह ने दारा का साथ दिया होता तो यह औरंगजेब के लिए घातक सिद्ध होता। इस परिस्थिति को भाँपते हुए औरंगज़ेब ने राणा से वादा किया कि उसे राणा संग्राम सिंह के दर्जे का सम्मान किया जाएगा। लेकिन उसने अपना वादा पूरा नहीं किया। हालांकि औरंगजेब ने उसे 6000 **जात** और 6000 **सवार**का **मनसब** प्रदान किया। राणा से छीने गये परगने उसे लौटा दिए गए। औरंगजेब के खिलाफ लड़ने वाले डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देओलिया के सरदारों के इलाके भी राणा को **गैर अमली** जागीर के रूप में दे दिए गये। इसके अतिरिक्त इनाम के रूप में उसे दो करोड़ **दाम** भी दिये गये। राणा मारवाड़ के उत्तराधिकार विवाद में रुचि केवल इसलिए दिखा रहा था ताकि राजपूत राजनीति में मेवाड़ का महत्व स्थापित हो सके। जब राणा जयसिंह राजा बना तो **जज़िया** और राठौरों को समर्थन न देने के एवज में वह मंडल, बीदुर आदि के परगने देने के लिए बाध्य हुआ। लेकिन सिसोदियों और राठौरों की एकता में पहले ही दरार पड़ चुकी थी। राठौरों द्वारा मेवाड़ के क्षेत्रों के कारण राणा जय सिंह ने अजित सिंह को गद्दी पर बैठाने के लिए पूर्ण रूप से समर्थन नहीं दिया। इसके बावजूद 1696 में मेवाड़ के राणा ने अपनी भतीजी की शादी अजित सिंह से की। अंततः अजित सिंह को टीका दिया गया, पर जोधपुर औरंगजेब के पास रहा।

11.4.5 जैसलमेर

राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में थार मरुभूमि में अनेक भाटी सरदार थे जो एक दूसरे से बिल्कुल स्वतंत्र थे। **ख्यात** के लेखक मुहता नैनसी ने इस बात का जिक्र किया है कि सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उनमें से कई पुगल, बीकानपुर, देरावर, मोत्सर, हप्सर और जैसलमेर में शासन करते थे। उनके पास कोई केंद्रीकृत राजनीतिक संगठन नहीं था पर जैसलमेर इन सबमें सर्वशक्तिशाली भाटी राज्य था। राव लून कर्ण (1528-50) ने देरावर के सरदार को हरा कर उसे अपने इलाके में मिला लिया था। 1570 में जैसलमेर के रावल हर राज को, जिसका कच्छवाह परिवार के साथ वैवाहिक

संबंध था, भगवंत दास अकबर की सेवा में ले आया। उसने मुगल संप्रभुता स्वीकार की और अपनी बेटी की शादी सम्राट के साथ कर दी। हर राज के बेटे रावल भीम की पुत्री की शादी सलीम के साथ करवाकर इस बंधन को और भी मजबूत बना दिया। उसे मलिका ए जहां की उपाधि दी गयी। रावल भीम (1578-1614) ने सिंध प्रदेश में मुगलों को अपनी सैन्य सेवा दी और अकबर के शासनकाल के अंतिम दिनों में उसे 3000 **जात** का **मनसब** प्रदान किया गया।

1614 में रावलभीम (कच्छवाह परिवार का संबंधी) की मृत्यु के बाद, पुत्र के अभाव में, गद्दी उसके छोटे भाई कल्याण को सौंपी गयी। उसे 2000 **जात** और 1000 **सवार** का **मनसब** और रावल की पैतृक उपाधि प्राप्त हुई। 1674 में उसकी मृत्यु के बाद, उसका पुत्र मनोहर दास जैसलमेर का रावल बना। 1649 में मनोहर दास की मृत्यु से उत्तराधिकार में थोड़ा-सा बदलाव आया। उत्तराधिकारी रामचंद जैसलमेर का शासक बना पर शाहजहां ने उसके उत्तराधिकार को नामंजूर कर दिया और टीका जैसलमेर के शासक रावल मालदेव (1550-1561) के एक संबंधी सबल सिंह को दे दिया। जैसलमेर के भाटी सरदारों की आपसी फूट के कारण शाहजहां को उत्तराधिकार के मामले में हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। सबल सिंह मिर्जा राजा जय सिंह की बहन का बेटा था और उसने पेशावर में विद्रोही अफगानों से शाही खजाना सफलतापूर्वक बचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया था।

इन परिस्थितियों में शाहजहां ने सबल सिंह को टीका देने का निर्णय किया। सम्राट ने जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह को निर्देश दिया कि वह सबल सिंह को जैसलमेर की गद्दी सौंपे। सबल सिंह की मृत्यु के बाद 1659 में उसका पुत्र अमर सिंह रावल बना। अमर सिंह के अधिकांश प्रयत्न स्थानीय राजपूत सरदारों और पड़ोसी बीकानेर के राठौर सरदार अनूप सिंह से संघर्ष में व्यर्थ हुए। औरंगजेब ने अमर सिंह को जागीर के रूप में पोखरन, फलौदी और मलानी के परगने प्रदान किए, पर उसकी मृत्यु के बाद उसके पड़ोसियों—राठौर और शिकारपुर के दाउद खां — ने 1701 में उसकी जागीर पर कब्जा जमा लिया।

11.4.6 बूंदी और कोटा

हम राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र को हदौती के नाम से भी जानते हैं। यहां के राजपूत शासकों को हाड़ा के नाम से जाना जाता था। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के पहले हाड़ा महत्वपूर्ण नहीं थे। वे मेवाड़ के राणा के अधीनस्थ थे। राव सुरजन हाड़ा ने, जो मेवाड़ के राणा का प्रतिनिधि बन कर रणथम्भोर के अभेद्य किले का रखवाला था, 1561-62 में अकबर के सम्मुख आत्मसमर्पण किया। राव और उसके पुत्रों दुआ और भोज ने शाही सेवा स्वीकार कर ली और बिहार, उड़ीसा और दक्खन में मुगलों की सेवा में कार्यरत थे। राव सुरजन को 2000 **जात** और भोज को 900 **जात** का **मनसब** प्राप्त हुआ।

राजा सुरजन ने अपने राज्य को अपने पुत्रों दुआ और भोज के बीच बांट दिया। जब ज्येष्ठ पुत्र दुआ ने अपने पिता के खिलाफ बगावत की तो उसने छोटे बेटे भोज को बूंदी दे दिया। हाड़ा सरदार लगातार मुगल सम्राट को अपनी सैन्य सेवाएं प्रदान करते रहे। रतन हाड़ा जहांगीर का प्रिय पात्र बन गया और उसने बुरहानपुर में राजकुमार खुर्रम के विद्रोह को दबाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसे 5000 **जात** और 5000 **सवार** का **मनसब** तथा सरबुलंद राय और राम राय की उपाधि मिली। राम राय दक्खन का सर्वोच्च सम्मान था। उसके पुत्र माधो सिंह और भाई हृदय नारायण को भी **मनसब** दिए गए।

गद्दी पर बैठने के बाद शाहजहां ने बूंदी के हाड़ा सरदारों की शक्ति कुचलने का निर्णय लिया। 1631 में राव रतन की मृत्यु के बाद बूंदी राज्य को दो भागों — बूंदी और कोटा — में बांट दिया गया। सम्राट ने बूंदी के उत्तराधिकारी छत्रसाल को बूंदी का टीका प्रदान किया और कोटा रतन सिंह के पुत्र माधो सिंह को दिया गया। उसके बाद से बूंदी और कोटा पृथक स्वतंत्र राज्य बने रहे। बूंदी और कोटा के हाड़ा सरदार लगातार मुगलों के सैनिक अभियानों में हिस्सा लेते रहे। उत्तराधिकार के युद्ध में छत्रसाल ने औरंगजेब के खिलाफ शाही सेना के पक्ष में युद्ध किया और समूगढ़ के युद्ध में मारा गया। मुगल केंद्रीय शक्ति कमजोर होने पर उस क्षेत्र में सर्वोच्चता प्राप्त करने के लिए कोटा और बूंदी के सरदार आपस में लड़ते रहे।

बोध प्रश्न 1

1) राजपूतों के प्रति बाबर और हुमायूँ की नीति की आधारभूत विशेषताएँ क्या थीं?

....

....

....

....

....

2) **अकबर की राजपूत नीति के तीन चरणों** को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

11.5 मध्य भारत में राजपूत राज्य

मध्य भारत में धानडेरा, रीवा और ओरछा प्रमुख राजपूत राज्य थे।

धानडेरा

मालवा सूबे में यह एक राजपूत प्रदेश था। धानडेरा के सरदार बुंदेलों और पंवारों से जुड़े हुए थे।

ओरछा

मध्य भारत में ओरछा नाम से जाने जाने वाले विशाल क्षेत्र पर बुंदेल राजपूतों का कब्जा था। यह उत्तर-दक्खन को जोड़ने वाले सामरिक रूप से महत्वपूर्ण मार्ग पर स्थित था। उनके आपसी झगड़े का फायदा मुगलों ने उठाया और उनके राज्य-क्षेत्र को विभिन्न परिवारों में बांटकर बुंदेलों की शक्ति कम कर दी।

बंधोगढ़ या रीवां

बंधोगढ़ के सरदारों को बघेलों के नाम से जाना जाता था। उनका क्षेत्र काफी बड़ा था और इलाहाबाद सूबे का एक हिस्सा था।

11.6 अन्य राजपूत राज्य

बगलाना, इदार और पहाड़ी राजपूत राज्य बहुत महत्वपूर्ण राजपूत राज्य नहीं थे।

11.6.1 बगलाना और इदार

बगलाना के सरदार अपना संबंध कन्नौज के राठौरों से जोड़ते थे। यह बताया जाता है कि तीन राठौर सरदार कन्नौज से पाली (राजस्थान) आये और उन्होंने जोधपुर, बगलाना और इदार नामक तीन स्वतंत्र राज्यों की स्थापना की। बगलाना के राठौर सरदारों ने भीलों को हटाकर अपने राज्य की स्थापना की। बगलाना के सरदारों को बीरजी कहा जाता था। बगलाना राज्य-क्षेत्र गुजरात और दक्खन के बीच में था और यह बहुत समृद्ध क्षेत्र था। साल्हेर और माल्हेर सहित इनके पास सात मजबूत दुर्ग थे। बगलाना कभी खानदेश का तो कभी गुजरात का अधीनस्थ रहा। बगलाना के समान इदार के राठौर सरदार भी गुजरात या मेवाड़ के मातहत रहे।

11.6.2 पहाड़ी राजपूत राज्य

उत्तर-पश्चिमी भारत में कई पहाड़ी राजपूत राज्य भी थे। उनमें से कुछ 16वीं शताब्दी में शक्तिशाली हुए। ये राज्य पहाड़ियों और दुर्गम रास्तों के बीच स्थित थे, अतः केन्द्र के लिए उन पर नियंत्रण रख पाना आसान काम नहीं था। अकबर ने जम्मू, नागरकोट (कांगड़ा), मउ-नूरपूर, गुलार (कांगड़ा परिवार की एक शाखा), चम्बा और कुमायूँ को अपने अधीन कर लिया था, पर ये समय-समय पर मुगल सत्ता की अवहेलना करते रहते थे। वे पहाड़ी क्षेत्रों में युद्ध करने में निपुण थे और मुगलों ने उन्हें उत्तर-पश्चिमी सीमांत पर तैनात कर रखा था। इन राज्यों के उत्तराधिकार के मामलों में मुगलों ने हस्तक्षेप किया था। उन्होंने पहाड़ी राज्यों के साथ वैवाहिक संधियां कीं, पहाड़ी सरदारों को मनसब दिए और उनके राज्य-क्षेत्रों पर आधिपत्य बनाकर रखा। इन पहाड़ी राज्यों में केवल कुमायूँ ही केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने में सफल रहा।

11.7 सत्रहवीं शताब्दी में मुगल-राजपूत संबंध

सोलहवीं शताब्दी के दौरान मुगल-राजपूत संबंधों का निर्धारण उत्तर भारत के इन दो महत्वपूर्ण शासक वर्गों की राजनीतिक जरूरत के मुताबिक हुआ। साम्राज्य के बढ़ते प्रभाव, राजपूतों के आंतरिक झगड़ों और विभिन्न दलों द्वारा क्षेत्रीय स्वायत्तता के सिद्धांत की उद्घोषणा की पृष्ठभूमि में मुगल-राजपूत संबंधों को धक्का पहुँचा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

जहांगीर और शाहजहां

इन शासकों के काल में अनेक बाधाओं के बावजूद अकबर द्वारा राजपूतों के साथ स्थापित संबंध और मजबूत हुए। इसमें मेवाड़ के साथ युद्ध की समाप्ति जहांगीर की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। उसने राणा की व्यक्तिगत उपस्थिति पर विशेष बल नहीं दिया और पुत्र की उपस्थिति को स्वीकार कर लिया। अकबर और जहांगीर के शासनकाल में लिए गये सारे क्षेत्र राणा को लौटा दिये गये। राणा के बेटे को भी **मनसब** और जागीर दी गयी। जहांगीर ने एक परम्परा शुरू की कि राणा का बेटा या भाई सम्राट की सेवा में उपस्थित होगा। राणा पर मुगलों से वैवाहिक संबंध स्थापित करने के लिए जोर नहीं डाला गया। चित्तौड़ का किला एक शक्तिशाली गढ़ था जिसने हमेशा मुगल सत्ता की अवमानना की और जहांगीर इसकी मरम्मत नहीं होने देना चाहता था। अकबर के समान जहांगीर ने भी राजपूत राजाओं से वैवाहिक संबंध स्थापित किए। हालांकि मेवाड़ के समर्पण के बाद विवाहों की संख्या में कमी आई। ज्यादातर शादियां उस समय हुईं जब मेवाड़ मुगलों का विरोध कर रहा था। एक बार मेवाड़ के झुकने के बाद राजपूतों के साथ संबंध स्थिर हो गए। अतः, कुछ हद तक, इन शादियों से निश्चित राजनीतिक लक्ष्यों की ही प्राप्ति हुई। शादियों से मुगलों और राजपूतों के बीच एक सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित हुआ। ये वैवाहिक संबंध मुख्य रूप से सत्ता के लिए संभावित संघर्ष की पृष्ठभूमि में स्थापित किए गए।

जहांगीर के शासनकाल में चार महत्वपूर्ण राज्यों मेवाड़, मारवाड़, अम्बेर और बीकानेर के शासकों को 5000 **जात** या उससे ऊँचा **मनसब** प्रदान किया गया। कुलीन वर्ग में कच्छवाहों की स्थिति कमजोर हुई। अकबर के शासनकाल की अपेक्षा राजपूत राज्यों के शासकों को ऊँचे मनसब प्रदान किए गए। जहांगीर के शासनकाल के प्रथम दशक में खुसरो की बगावत के कारण राजपूतों को दिए जाने वाले मनसब में तेजी से गिरावट आयी। जहांगीर के शासनकाल के मनसब और पदों का विश्लेषण करने से एक बात स्पष्ट होती है कि इस समय मूल, जाति, प्रजाति आदि के आधार पर ओहदे एवं मनसब दिए जाते थे। राजपूतों को ज्यादातर किलों का **किलेदार या फौजदार** बनाया गया। पर इस आधार में लचीलापन था और पदों के मामले में जहांगीर साम्प्रदायिक भेदभाव नहीं अपनाता था क्योंकि वह धर्म के मामले में उदार था।

शाहजहां के शासनकाल में उन्हें महत्वपूर्ण पद और बड़े **मनसब** मिले। इससे साबित होता है कि उसने राजपूतों पर विश्वास किया और उन्हें महत्वपूर्ण काम सौंपे। शाहजहां ने बड़े घराने के राजपूत राजाओं को **सूबेदारी** न दिए जाने की जहांगीर की नीति को समाप्त कर दिया। पर इस प्रकार के पद कम थे। राजपूतों को किलेदार और फौजदार का पद मिलता रहा। अभी भी गैर सेना और सेना के बीच जाति और प्रजातिगत मूल के आधार पर ही अंतर स्थापित किया जाता था। जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में राजपूत मित्र बने रहे पर प्रशासन में उनकी भूमिका नगण्य थी।

शाहजहां के शासनकाल में बुंदेलों और मेवाड़ के साथ दो मुठभेड़ें हुईं और दोनों मुठभेड़ें संप्रभुत्ता और अधीनस्थता की परस्पर विरोधी समझ के कारण हुईं। एक संप्रभु शक्ति के रूप में अपने पड़ोसियों के इलाके पर कब्जा करने के लिए राजपूत सैन्य आक्रमण करते थे, इस प्रकार वे सैद्धांतिक रूप में अपने अधीनस्थों से पैसा भी वसूलते थे, जो मौका मिलते ही विद्रोह कर देते थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

मुगल, जिनके पास असीम ताकत थी, अपने हित के लिए इन मुठभेड़ों को रोकना चाहते थे क्योंकि ये अधीनस्थ सरदार अपनी रक्षा के लिए सीधे मुगलों से सम्पर्क स्थापित करते थे और जरूरत पड़ने पर उनकी सहायता लेते थे। अतः जहां तक भू-राजस्व की वसूली और कानून व्यवस्था की स्थापना का सवाल है, इनके हित आपस में मिलते-जुलते थे, पर अधिकार और विशेषाधिकार को लेकर उनमें मतभेद थे। इसे आदान-प्रदान की प्रक्रिया से ही सुलझाया जा सकता था। अन्यथा तनाव की स्थिति पैदा हो सकती थी। मुगलों ने यह स्पष्ट करने की कोशिश की कि कोई भी अधीनस्थ राजा मुगल सम्राट की अनुमति के बिना अपने क्षेत्र का विस्तार नहीं कर सकता था। युद्ध में होने वाले मुनाफे में हिस्सेदारी करने की शर्त पर उसे आज्ञा दी जा सकती थी। इससे मुगलों और राजपूतों के संघर्ष का वर्ग चरित्र प्रतिबिंबित होता है।

मेवाड़ के साथ मुठभेड़ों को मुगल सर्वोच्चता को अवधारणा के आलोक में जांचा जाना चाहिए। अकबर के समय में मेवाड़ के कुछ अधीनस्थ प्रदेशों ने अपनी स्वतंत्रता का प्रयास किया था। पर 1615 में इन छोटे-छोटे राज्यों पर मेवाड़ की प्रभुसत्ता कायम हो गयी।

बाद में फिर इन अधीनस्थ सरदारों ने अपने को स्वतंत्र करने और अपने क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न किया। मुगलों ने उनकी सहायता की। मुगलों और मेवाड़ के बीच इन क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए मुठभेड़ें होने लगीं। राणा द्वारा चित्तौड़ के किले की मरम्मत तो चित्तौड़ के साथ युद्ध करने का एक बहाना था। शाहजहां ने किले को ध्वस्त कर दिया और चित्तौड़ के बहुत से परगनों को अपने अधिकार में ले लिया।

औरंगजेब

1680 के बाद राजपूतों के प्रति औरंगजेब की नीति ने राजपूतों के साथ-साथ मुगल कुलीन वर्ग के एक वर्ग को भी चिंतित कर दिया। मेवाड़ और मारवाड़ के शासक औरंगजेब से नाराज थे और वे औरंगजेब द्वारा अपने छीने गये इलाके को वापस लेना चाहते थे। मुगल दरबार के एक वर्ग, खासकर राजकुमार आजम ने औरंगजेब की राजपूत नीति को गलत माना और उसने मेवाड़ के राणा के साथ मिलकर षड्यंत्र करना चाहा ताकि उत्तराधिकार के युद्ध में उसे राणा का समर्थन मिल सके। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औरंगजेब राजपूतों के प्रति उत्साहहीन रहा। राजपूतों को कोई महत्वपूर्ण

कार्य नहीं सौंपा गया। उसने राजपूतों के आपसी वैवाहिक समझौतों में हस्तक्षेप किया। पर मेवाड़ और मारवाड़ से औरंगजेब का संबंध विच्छेद होने का यह मतलब नहीं था कि आमतौर पर उसका राजपूतों से संबंध विच्छेद हो गया था। आम्बेर, बीकानेर, बूंदी और कोटा के शासकों को **मनसब** मिले हुए थे। पर अकबर, जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल की तरह औरंगजेब के शासन काल में उन्हें ऊँचे ओहदे और पद नहीं प्राप्त हुए।

यह नहीं कहा जा सकता है कि मेवाड़ और मारवाड़ के साथ हुआ युद्ध अकबर की राजपूतों से मित्रता की नीति की समाप्ति का संकेत था। वस्तुतः ये युद्ध स्थानीय शासकीय कुलीन वर्ग अर्थात् जमींदारों को अपनी ओर मिलाने की बृहद नीति और राजपूतों के साथ संधि की नीति के विरोधाभास को दर्शाते हैं। हम यह नहीं कह सकते हैं कि उसकी राजपूत नीति में उसकी कट्टरपंथी नीति का सबसे बड़ा योगदान था। इसके अतिरिक्त और भी अन्य तत्व मौजूद थे। मुगल साम्राज्य उत्तर में अपने पैर जमा चुका था, अतः उसे अब दक्षिण की ओर बढ़ना था और उसे वहां के स्थानीय शासक वर्ग अर्थात् मराठों से संधि करनी थी। इस प्रकार मुगल व्यवस्था में राजपूतों की जरूरत समाप्त हो गयी थी। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मराठों का महत्व बढ़ा। अब राजपूतों को मुगलों की दोस्ती की जरूरत थी।

मेवाड़ और मारवाड़ के साथ होने वाले युद्ध में राजकोष पर काफी भार पड़ा। यह भार गंभीर नहीं था और इससे खम्भात के बंदरगाह तक जाने वाला मार्ग बहुत ज्यादा प्रभावित नहीं हुआ। हालांकि औरंगजेब की राजपूत नीति उसके द्वारा मुद्दों को संभालने की अक्षमता को प्रतिबिंबित करती है, जिससे साम्राज्य की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। इससे राजनीतिक और धार्मिक कटुता फैली, जो राजनीतिक अक्षमता का परिचायक है। इन सब परिस्थितियों में मुगल राजकुमार राजपूतों के साथ गठबंधन कर विद्रोह करने पर उतारू हो गये।

बोध प्रश्न 2

1) इस काल के प्रमुख पहाड़ी राजपूत राज्य कौन-कौन से थे?

....

....

....

....

....

2) सत्रहवीं शताब्दी के दौरान राजपूतों के प्रति मुगल नीति की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं?

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

....

....

....

....

....

11.8 सारांश

राजपूतों के साथ मुगलों के मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित होने से हिन्दू और मुस्लिम सीमित रूप से ही सही पर एक दूसरे के करीब आये। मूलतः इन संबंधों का स्वरूप राजनीतिक ही रहा और साम्राज्य के सामाजिक आधार को यह व्यापक नहीं बना सका, जिसकी उस समय जरूरत थी। कुल मिलाकर धर्म का सहारा लेना भी राजनीतिक चाल का एक हिस्सा था।

11.9 शब्दावली

पेशकश : नजराना

गैर अमली जागीर : वे जागीरें जो पेशकशी ज़मीनदारों को दी जाती थीं

किलेदार : किले का प्रमुख अधिकारी

दाम : तांबे का सिक्का, 40 **दाम** = 1 रुपया

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. देखिए भाग 11.2
2. देखिए भाग 11.3 और उपभाग 11.3.1, 11.3.2 और 11.3.3

बोध प्रश्न 2

1. देखिए उपभाग 11.6.2
2. देखिए भाग 11.7

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ. एच.सी. वर्मा — *मध्य कालीन भारत*

विंसेंट ए. स्मिथ — *महान मुगल अकबर*

बी.एस. भार्गव — *मारवाड़ से मुगलों का संबंध*

डॉ. आर.पी. त्रिपाठी — *मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन*

सतीश चंद्र — *मिडिएवल इंडिया* (अंग्रेज़ी)

एच.के. शेरवानी और पी.एम. जोशी — *हिस्ट्री आफ मिडिएवल डेकन खंड*-2 (अंग्रेजी)

जदुनाथ सरकार — *शिवाजी एन्ड हिज टाइम्स* (अंग्रेज़ी)

जी.एस. सरदेसाई — *न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज़ खंड*-1 (अंग्रेज़ी)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 12 मुगल संप्रभुता की संकल्पना

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 पृष्ठभूमि

12.3 मध्य एशियाई राज्य व्यवस्था की प्रकृति: तुर्क-मंगोल प्रभाव
- 12.3.1 तुरा का प्रभाव
- 12.3.2 संप्रभुता संबंधी तुर्क-मंगोल अवधारणा
- 12.3.3 राजनैतिक ढांचे की प्रकृति
- 12.3.4 उत्तराधिकार नियम
- 12.3.5 केन्द्र-राज्य संबंध
- 12.3.6 कुलीन वर्ग

12.4 राज्य संबंधी मुगल सिद्धांत: विकास
- 12.4.1 बाबर और हुमायूं
- 12.4.2 अकबर

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस इकाई में मुगलों के संप्रभुता के सिद्धांत के विकास और प्रकृति पर विचार-विमर्श किया गया है। कोई भी राज्य व्यवस्था या संगठन विभिन्न कारकों से प्रभावित हुए बिना विकसित नहीं हो सकती। इस इकाई को पढ़ते समय आप भारत में मुगल संप्रभुता के विभिन्न पक्षों और उस पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों को जान सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- निर्माणकारी कारकों और ईरानी तथा तुर्क-मंगोल परंपरा के प्रभाव को रेखांकित कर सकेंगे,
- मुगलों के पूर्वज राज्य में राजनैतिक ढांचे की प्रकृति और संप्रभुता की अवधारणा पर प्रकाश डाल सकेंगे, और
- मुगलों के राजत्व संबंधी राजा की दैवीय शक्ति के सिद्धांत की अवधारणा और तुर्क-मंगोल प्रशासन संबंधी परम्पराओं का वर्णन कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

भारतीय राजनैतिक धारणा के साथ-साथ ईरानी और तुर्क-मंगोल परंपरा में भी समाज में व्यवस्था और स्थिरता कायम करने और अव्यवस्था तथा अराजकता को समाप्त करने के लिए संप्रभुता की अवधारणा को विशेष महत्व दिया गया। राजतंत्र को मध्ययुगीन राज्य व्यवस्था का आधार तत्व समझा गया। अबुल फजल के अनुसार, "अगर राजतंत्र न रहा तो कलह की आंधी कभी दब नहीं पाएगी, न ही स्वार्थपूर्ण महत्वाकांक्षा समाप्त हो पाएगी। लालसा और अव्यवस्था के भार से दबा मनुष्य विध्वंस की खाई में गिरता चला जाएगा..." किसी साम्राज्य के प्रशासनिक ढांचे का आकार-प्रकार और राज्य की प्रकृति मुख्य रूप से संप्रभुता के सिद्धांत और राजा की अपनी नीतियों द्वारा निर्धारित होती है। इसलिए मुगल राज्य व्यवस्था को सही ढंग से समझने के लिए मध्य एशिया के राज्य संबंधी सिद्धांत और इसके विभिन्न पक्षों को जानना अनिवार्य है।

12.2 पृष्ठभूमि

भारत के मुगल सम्राट शासन की कला से अनभिज्ञ नहीं थे। उनके पास मध्य एशिया में लगभग दो शताब्दियों के राजवंशीय शासन का अनुभव था। वे अपने साथ अच्छी तरह जांचा परखा और नियमित प्रशासन का सिद्धांत लेकर आये थे। नयी जगह की आवश्यकताओं के अनुरूप इन्होंने इसमें परिवर्तन भी किया और आस-पास की परंपराओं को आत्मसात कर लिया। इस प्रकार भारत में मुगलों का आम प्रशासनिक ढांचा और नीतियां भारतीय-इस्लामी परंपराओं का मिला-जुला रूप प्रतीत होती है। प्रथाओं, संस्थाओं, भाषा और पदों के रूप में समृद्ध मध्य एशियाई विरासत और तुर्क-मंगोल परंपरा भी जगह-जगह पर अभिव्यक्त होती थी। भारत में मुगल ढांचे में अक्सर चंगेज और तैमूरी राज्य व्यवस्था के अवशेष देखने को मिल जाते हैं।

हालांकि बाबर तुर्क-मंगोल था परन्तु वह अपने को तुर्क कहने में गौरव महसूस करता था। बाबर अपनी मां के रिश्ते से चंगेज से और पिता के संबंध से तैमूर से जुड़ा हुआ था। बाबर ने मंगोलों के खिलाफ कभी-कभी अपना आक्रोश भी व्यक्त किया, इसके बावजूद उसने चंगेज खां और उसके परिवार का मान बनाए रखा। अपने "पूर्वजों" के प्रति अकबर का दृष्टिकोण सही-सही अबुल फजल की टिप्पणी से झलकता है, जिसमें उसने चंगेज को एक "महान् व्यक्ति" कहा है। वस्तुतः इस प्रकार मंगोलों को गौरवान्वित कर और प्रतिष्ठा प्रदान कर भारत में मुगल अपने राजवंश का ही सम्मान बढ़ा रहे थे। मुगलों का चंगेज खां और तैमूर के साथ अपने रक्त संबंधों का हवाला देना तर्कसंगत और युक्तिसंगत लगता है। वंशानुक्रम संबंधों के सिद्धांत को नजरअंदाज कर तथा इस बात की परवाह किए बिना कि चंगेज के साथ उनका (मुगलों का) संबंध उस वंश की महिलाओं के माध्यम से था भारत में बाबर के राजवंश को "चगताई", "मुगल" और "कारवानाह" जैसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, इस संबंध की महत्ता को केवल पूर्णतः महसूस ही नहीं किया गया बल्कि मुगल शासकों और उनके दरबारी इतिहासकारों और लेखकों द्वारा लिखे गये जीवन चरितों, ऐतिहासिक अभिलेखों, राजकीय पत्रों और अन्य दस्तावेजों में भी समान रूप से इसका उपयोग किया गया और इस पर बल दिया गया। उनका चंगेज और तैमूर के पारिवारिक संबंधों पर इतना जोर देना वस्तुतः मुगल शासकों की इस व्यग्रता का द्योतक है कि वे कैसे चंगेजी शासकीय परिवार से वास्तविक अथवा काल्पनिक वंशावली के आधार पर अपनी समता तथा निकट संबंध स्थापित करें। भारत जैसे नवीन और कुछ हद तक पृथक क्षेत्र पर राज्य करते हुए भी उन्होंने काफी हद तक अपनी समृद्ध परंपरा को बचाकर रखा। नई राजनैतिक व्यवस्था में बहुत सी प्रथाओं और संस्थाओं के नाम समान थे परन्तु उनके व्यावहारिक अर्थ में अंतर था। अपनी आवश्यकताओं और आस-पास के माहौल को ध्यान में रखकर अपनाई गई एशियाई शब्दावलियों और संस्थाओं का विशद् प्रयोग स्पष्ट दिखाई देता है।

MAADHYAM IAS

12.3 मध्य एशियाई राज्य व्यवस्था की प्रकृति : तुर्क-मंगोल प्रभाव

जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं मुगलों ने कई रूपों में तुर्की और मंगोल अवशेषों से युक्त मध्य एशियाई राज्य व्यवस्था को अपनाया। परंतु तुर्की और मंगोल प्रभाव की व्यापकता को लेकर विवाद है। कुछ विद्वानों का मानना है कि मंगोल प्रभाव अधिक व्यापक था जबकि अन्य विद्वानों का मानना है कि तुर्की प्रभाव इतना मजबूत था कि वस्तुतः मंगोल व्यवस्था तुर्क-मंगोल व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी।

चंगेज खां जब मध्य एशिया क्षेत्र में आया था तो कुछ बड़े मंगोल अधिकारियों को छोड़कर उसकी सेना में अधिकांश तुर्क थ। बहुत से स्रोतों से इस बात की पुष्टि की जाती है कि मुगलों के रीति-रिवाजों, प्रथाओं आदि में काफी हद तक चंगेज खां की नकल की जाती थी। तैमूर का साम्राज्य भी "तुर्क-मंगोल राजनैतिक और सैन्य व्यवस्था का अद्भुत मिला-जुला रूप था। तैमूर का जिस बरलास कबीले में जन्म हुआ था वह वस्तुतः तुर्क-मंगोल कबीला ही था।

12.3.1 तुरा का प्रभाव

मध्य एशियाई प्रशासन पर तुर्की प्रभावों के अतिरिक्त **तुरा** का भी काफी प्रभाव था।

शासन संभालने के बाद चंगेज ने जो कानून बनाए उसे **तुरा** के नाम से जाना जाता है। इसके लिए **यासा, यूसून, यसाक** जैसे नाम भी प्रयुक्त किये जाते हैं। **तुरा** में किसी प्रकार के धार्मिक तत्व नहीं थे और मुख्य रूप से इसका संबंध राजनैतिक सिद्धांतों, सरकार के संगठन और नागरिक तथा सैनिक प्रशासन से था। **तुरा** एक अपरिवर्तनीय संहिता मानी जाती है। अकबर मध्य एशियाई संबंधों और परंपराओं पर गर्व करता था। अतः अकबर के शासनकाल की राज्य व्यवस्थाओं और प्रशासन में मध्य एशियाई और भारतीय परंपराओं के साथ-साथ ईरानी-इस्लामी सिद्धांतों की भी झलक दिखलाई पड़ती है। जहांगीर की आत्मकथा में **तुरा** की चर्चा हुई है और उसके कार्यों में भी इसकी झलक मिलती है। हालांकि शाहजहां के शासनकाल में **तुरा** का प्रभाव धूमिल पड़ता गया और अंततः औरंगजेब के शासनकाल के ''धार्मिक पुनरूत्थान'' के युग में इसका अंत हो गया। इसके बावजूद भारतीय परिप्रेक्ष्य में **तुरा** के सिद्धांतों और चगताई परंपराओं की उपयोगिता सीमित थी। मुगल स्रोतों के सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि मुगल शासकों ने राजनैतिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर **तुरा** को इतना महत्व दिया था। वे भारत पर आक्रमण करने वाले दो भूतपूर्व आक्रमणकारियों चंगेज और तैमूर से अपना संबंध सिद्ध करना चाहते थे। परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि मुगलों ने समारोहों और शिष्टाचारों से संबद्ध कानूनों तक ही **तुरा** और उसकी परंपराओं को सीमित रखा। आरंभिक मुगल स्रोतों में तो कहीं-कहीं ''चगताई परंपराओं'' का जिक्र आता है परन्तु बाद के काल में यह गायब है।

12.3.2 संप्रभुत्ता संबंधी तुर्क-मंगोल अवधारणा

हालांकि यह कहा जाता है कि चंगेज ने अपनी संप्रभुता का दैवीय सिद्धांत उइघलूरों से प्राप्त किया था, मंगोल स्वयं **खान** की असीम सत्ता में विश्वास रखते थे। एक मंगोल खान के कथन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। वह कहता है: ''आकाश में केवल एक सूर्य या एक चांद रह सकते हैं, फिर पृथ्वी पर दो स्वामी कैसे हो सकते हैं।'' फिर भी संप्रभुता संबंधी मंगोल अवधारणा के प्रधान सिद्धांत के अनुसार साम्राज्य का विभाजन राजा के लड़कों के बीच होता था। प्रशासन को पूरी कड़ाई से चलाने और राजकुमारों की शासन चलाने की इच्छा को संतुष्ट करने के लिए ऐसा किया जाता था। परन्तु तैमूर ने असीम संप्रभुता की अवधारणा का अनुसरण किया। उसके अनुसार ''विश्व के इन विस्तृत भूभागों पर दो राजाओं के लिए जगह नहीं हैं, ईश्वर एक है, अतः पृथ्वी पर ईश्वर का उपशासक भी एक ही होना चाहिए''। बाबर भी इसकी पुष्टि करता है: ''शासन में साझेदारी जैसी बात कभी सुनी नहीं गयी''।

MAADHYAM IAS

इन दावों के बावजूद तैमूर के असीम राजतंत्र की परंपरा को लेकर इतिहासकारों के बीच एक विवाद पैदा हो गया। तैमूर ने चंगेज खां के एक पूर्वज की नाममात्र की सत्ता स्वीकार कर रखी था। तैमूर ने अपने लिए कभी भी **अमीर** से बड़ी पदवी का उपयोग नहीं किया। हालांकि तैमूर के उत्तराधिकारी शाहरूख ने **पादशाह** और **सुल्तान-उल आजम** की पदवी ग्रहण की परन्तु **खान** की नाममात्र कीं प्रभुसत्ता अबु सईद मिर्जा के काल तक स्वीकार की जाती रही। वस्तुतः कठपुतली या नाममात्र के **खानों** के अस्तित्व का बने रहना तैमूर की राजनैतिक आवश्यकता थी। तैमूर चंगेज खां के राजकीय परिवार से संबद्ध नहीं था और ऐसी स्थिति में चंगेज के कबीले का ही कोई व्यक्ति **खान** की पदवी प्राप्त कर सकता था। अगर तैमूर ऐसा करता तो उसे मंगोलों की चुनौती का सामना करना पड़ता।

इन **खानों** को किसी एक खास जगह तक सीमित रखा जाता था और उन्हें केवल **मंशूर** (आदेश) जारी करने का एकमात्र राजकीय विशेषाधिकार प्राप्त था। तैमूर के कुछ सिक्कों पर भी इन ''बंदियों'' का नाम अंकित है। इसके बावजूद तैमूर ने **खान** पर अपनी सर्वोच्चता बनाये रखी। आवश्यक शक्ति और चंगताई सरदारों का सहयोग प्राप्त होते ही उसने 1370 ई. में **साहिब-ए किरान** (ऐसा शासक जिसने 40 साल तक राज्य किया हो) **की पदवी ग्रहण कर ली। राज्यारोहण समारोह शाही शान-शौकत के साथ केवल तैमूर के** लिए किया जाता था। औपचारिक सभाओं और सेना की उपस्थिति में तैमूर कभी भी **खान** को सम्मान नहीं दिया करता था। राजा को दिया जाने वाला सम्मान तैमूर हमेशा स्वयं ग्रहण करता था। वह असीम सत्ता में दृढ़ता से विश्वास रखता था, अतः उसने कभी भी सलाहकार परिषद् (**कुरूलताई**) को हद से ज्यादा महत्व नहीं दिया। इसके अलावा वह अपने को सांसारिक के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रमुख मानता था। उसने संप्रभुता के सिद्धांत को एक तार्किक परिणति प्रदान की। उसने घोषणा की कि ''उसे सर्वशक्तिमान ईश्वर से सीधा संदेश प्राप्त हुआ है'' अतः उसके कार्यों को दैवीय अनुमति प्राप्त है। अतः **खान** को कठपुतली शासक के रूप में गद्दी पर बैठाना तैमूर और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा खेला गया राजनैतिक खेल था। इसके द्वारा उन्होंने मंगोल सेनाओं का समर्थन प्राप्त किया। साथ

ही मंगोलों से छीने गए क्षेत्र और उनकी राज-शक्ति पर अपनी सत्ता की वैधता स्थापित करने के लिए भी इस नीति का उपयोग किया गया। 1402 ई. में महमूद की मृत्यु के बाद तैमूर ने किसी अन्य **खान** को नियुक्त नहीं किया।

बोध प्रश्न 1

1. सही कथनों पर चिह्न (√) लगाइए।
   i) बाबर अपने पिता की ओर से चंगेज से और मां की ओर से तैमूर से संबंधित था।
   ii) मुगलों के राज्य संबंधी सिद्धांत पर संप्रभुता संबंधी तुर्क-मंगोल अवधारणाओं का महत्वपूर्ण प्रभाव था।
   iii) मुगलों ने भारत में तैमूर की विरासत पर वैध दावा किया।
   iv) अबुल फजल ने टिप्पणी की है कि यदि राजत्व समाप्त होता है, तो स्वार्थपूर्ण आकांक्षाएं लुप्त हो जाएंगी।

2. **तुरा** पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

3. संप्रभुता की तुर्क-मंगोल अवधारणा पर विचार-विमर्श कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

12.3.3 राजनैतिक ढांचे की प्रकृति

क्या मध्य एशिया के तैमूरी शासकों का राजनैतिक ढांचा अधिक से अधिक केन्द्रीकरण की ओर प्रवृत्त था? कुछ विद्वान केन्द्रीकरण की इस प्रवृत्ति को स्वीकार करते हैं। परन्तु कुछ इस विचार से सहमत नहीं हैं। इनका मानना है कि मंगोल राज्य व्यवस्था में कबीलाई प्रवृत्ति के कारण इसमें तुर्की राजतंत्र की तरह की सत्ता के पनपने की गुंजाइश कम थी। चंगेज खां का साम्राज्य एक शासक का नहीं बल्कि एक राजकीय परिवार का प्रतिनिधित्व करता था। लेकिन दूसरे मत के विद्वानों का मानना है कि तैमूरी राज्य के पतन और बिखराव के बावजूद निरंकुश और असीमित राजतंत्र की परंपराएं कायम रहीं। अतः यह निष्कर्ष स्थापित करना युक्तिसंगत लगता है कि छोटे-मोटे अपवादों के बावजूद तैमूरी राज्य व्यवस्था में निरंकुश सत्ता की प्रधानता रही।

12.3.4 उत्तराधिकार का नियम

हालांकि चंगेज खां ने अपना उत्तराधिकारी स्वयं नियुक्त किया था, परन्तु उसने इस बात पर बल दिया था कि सम्राट के पुत्रों और पौत्रों में से कोई भी योग्यतम व्यक्ति इस पद का हकदार हो सकता है। योग्यता के आधार पर **खान** द्वारा मनोनीत करने की यह प्रथा तैमूर के काल तक चलती रही। **खान** द्वारा किए गए मनोनयन को हमेशा स्वीकार नहीं किया जाता था, बल्कि नया शासक भी अपनी योग्यता से ही अपने उत्तराधिकार को स्थापित करता था। उत्तराधिकार में योग्यता को विशेष महत्व दिए जाने के कारण कई उद्यमी और सक्रिय राजकुमारों के अन्दर सिंहासन पाने की इच्छा बलवती हो जाती थी। परिणामतः मध्य एशिया और मुगलकालीन भारत में गृह युद्ध, विद्रोह और संबंधियों की हत्या आम बात हो गयी थी। प्राचीन तुर्क-मंगोल परंपरा के अनुरूप सिंहासन केवल राजा के पुत्रों के लिए सुरक्षित नहीं रह गया था। पुत्रों के अतिरिक्त राजा (**खान**) के पोतों और चाचाओं

तक के इस पद के दावेदार हो जाने से आकांक्षी उम्मीदवारों का क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया था। उत्तराधिकार का फैसला कभी तो योग्यता के आधार पर और कभी प्रमुख लोगों के समर्थन से हो जाता था। सभी तीनों स्थितियों (मनोनयन, षड्यंत्र और चयन) में उत्तराधिकार के फैसले को **कुरुलताई** (राजकुमारों और सामंतों की परिषद) से औपचारिक रूप से स्वीकृत कराना पड़ता था। वस्तुतः यह सभी कुलीनों द्वारा अधीनता स्वीकार किए जाने की प्रतीकात्मक स्वीकृति थी।

12.3.5 केन्द्र-राज्य संबंध

समस्त प्रशासनिक शक्ति का केन्द्र राजा था। पूरे साम्राज्य में राजा के नाम से **खुतबा** पढ़ा जाता था और सिक्के ढाले जाते थे। प्रांतीय शासकों की नियुक्ति राजा करता था। उन्हें राजा के बनाये नियम और कानून के अनुसार कार्य करना पड़ता था। उनका अपने पद पर बने रहना राजा की इच्छा पर निर्भर करता था। प्रांतीय प्रशासन तंत्र और भू-अनुदानों से प्राप्त धन राजकीय परिवार के सदस्यों की आय का साधन था। सम्राट के पास साम्राज्य की अंतिम और सर्वोच्च शक्ति थी। प्रांतीय प्रशासकों को राजा के हिस्से के राजस्व को वसूलने का अधिकार प्राप्त नहीं था। राजस्व वसूली और अन्य प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने के लिए प्रत्येक **खानेत** के **खान** द्वारा विशेष अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। अगर कोई प्रांतीय शासक (सुल्तान) **खान** के आदेशों का पालन करने या सैनिक या वित्तीय सहायता देने में कभी भी चूक जाता था तो उसे इसके भयंकर परिणाम भुगतने पड़ते थे। हालांकि प्रांतीय राज्यों को बाह्य शक्तियों से कूटनीतिक संबंध स्थापित करने की छूट थी, परन्तु युद्ध की घोषणा और संधि पत्र पर हस्ताक्षर करने जैसे महत्वपूर्ण निर्णय राजा स्वयं लेता था। सम्राट को अंतः राज्यीय झगड़ों में हस्तक्षेप करने का अधिकार था और वह अवज्ञा करने वाले सुल्तान का स्थानान्तरण कर सकता था अथवा उसे हटा भी सकता था।

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि साम्राज्य का विभाजन दो कारणों से जरूरी था। एक तरफ तो इससे बड़े साम्राज्य के प्रशासन में सुविधा होती थी और दूसरी तरफ राजकुमारों को शासन की बागडोर देकर संतुष्ट भी किया जाता था। परंतु इससे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि चंगेजी या तैमूरी साम्राज्य में सम्राट का पद बहुत से समान स्तरीय सुल्तानों में से किसी एक के समकक्ष था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

12.3.6 कुलीन वर्ग

कुलीन वर्ग का निर्माण सम्राट स्वयं करता था और उन्हें राजा की शक्ति का प्रमुख स्रोत माना जाता था। नये **खान** के सिंहासन पर बैठने के समय कुलीन वर्ग को राजा के प्रति निष्ठावान और आज्ञाकारी होने की शपथ लेनी पड़ती थी। परवर्ती शासकों (मध्य एशिया में तैमूर शासन के अंतिम दशकों में) के शासनकाल में अनेक सामन्त चरित्रहीन और भ्रष्ट थे। इससे तैमूरी कुलीन वर्ग का एक निषेधात्मक चारित्रिक पक्ष सामने आता है। परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि व्यवस्था के अंदर ही कुछ कमी थी जिससे कुलीनों में इस प्रकार का भाव पैदा होता था और वे केन्द्रीय सत्ता को चुनौती देते रहते थे। तुर्क-मंगोल राजनैतिक ढांचा इस प्रकार बनाया गया था कि अपने विशेषाधिकारों के बावजूद कुलीन **खान** के आज्ञाकारी अधीनस्थ बने रहे। फिर भी कुछ विद्वानों का मत है कि कुलीन वर्ग के एक बड़े हिस्से के पास पैतृक विशेषाधिकार रहने से मंगोल साम्राज्य में निरंकुश सत्ता के विकास में बाधा पहुंची। हालांकि इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि समय-समय पर ट्रांसऑक्सियाना के शासकों ने अपने चहेते अमीरों को विशेष दर्जा प्रदान किया और कुछ मामलों में ये विशेषाधिकार आनुवंशिक भी थे, परन्तु दूसरी तरफ यह भी सत्य है कि ये विशेषाधिकार शासक की इच्छा पर निर्भर थे। अवज्ञा या अवमानना की स्थिति में ये विशेषाधिकार कभी भी वापस लिए जा सकते थे। प्रत्येक नया राजा अपने पूर्ववर्ती राजा द्वारा दिए गए विशेषाधिकार को आगे जारी भी रख सकता था अथवा उसे वापस भी ले सकता था। चंगेज खां ने अपनी संहिता की एक धारा में लिखा है कि विशेष दर्जा प्राप्त कुलीनों के नौ अपराध माफ किए जा सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कुलीनों पर भी राजा अपनी असीम सत्ता का उपयोग करता था। कई ऐसे उदाहरण है जिसमें ऊंचे पद वाले और वंशानुगत विशेषाधिकार प्राप्त कुलीनों को पद से हटाया गया, फांसी दी गयी, दंडित किया गया या देश निकाला दिया गया था।

बोध प्रश्न 2

1. मध्य एशिया में केन्द्र-राज्य संबंधों की प्रकृति पर संक्षेप में विचार कीजिए। उत्तर 50 शब्दों में दीजिए।

....

....

....

....

....

2. तैमूर साम्राज्य में कुलीन वर्ग की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए। अपना उत्तर 60 शब्दों में लिखिए।

....

....

....

....

....

12.4 राज्य संबंधी मुगल सिद्धांत: विकास

इस भाग में हम बाबर और हुमायूं के अधीन संप्रभुता की मुगल अवधारणा के विकास पर प्रकाश डालेंगे और यह भी बताएंगे कि किस प्रकार अकबर के शासन काल में यह अपने उत्कर्ष पर पहुंचा।

MAADHYAM IAS

12.4.1 बाबर और हुमायूं

कुछ इतिहासकारों का मानना है कि तैमूर राज्य व्यवस्था तुर्क-मंगोल राज्य व्यवस्था से प्रभावित थी और यह अपनी प्रवृति में निरंकुश था और अनिवार्य रूप से केन्द्रीभूत राजकीय ढांचे की ओर उन्मुख था। वे इसे अफगान शक्ति के ढांचे से श्रेष्ठ मानते हैं, जिसने सल्तनत को कबीलों के ऐसे संघ के रूप में परिणत कर दिया, जिनका अलग-अलग क्षेत्रों पर अधिकार था। परन्तु अन्य विद्वानों का मानना है कि केवल आरंभ में मंगोल प्रभाव अधिक था, बाद में मंगोल राज्य व्यवस्था की केन्द्रीकृत और निरंकुश सत्ता की प्रवृति लुप्त होने लगी।

आइए, अब हम मुगल राज्य व्यवस्था पर विचार करें। हमने विस्तार से (12.3 भाग) तैमूर और मंगोल राज्य व्यवस्था की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की और यह पाया कि तैमूर राज्य व्यवस्था तुर्की और मंगोल दोनों ढाचों से प्रभावित थी। अब हम यह देखते हैं कि बाबर भारत में कौन सी विरासत लेकर आया।

मुगल राज्य व्यवस्था की निरंकुश प्रकृति पर विचार करते हुए यह कहा जाता है कि बाबर तक तैमूरी शासकों ने परिस्थितियों के दबाव के बावजूद **खाकान** की पदवी ग्रहण करना उचित नहीं समझा। इससे पता चलता है कि वे **खान** को विशेष दर्जा देते थे। परन्तु यह एक जटिल समस्या का अतिसरलीकरण प्रतीत होता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है राजत्व संबंधी मंगोल सिद्धांत में शासक द्वारा अपने पुत्रों के बीच साम्राज्य का बंटवारा करना प्रधान मुद्दा था। परन्तु बाबर ने कभी इस अवधारणा को स्वीकार नहीं किया। हुसैन मुर्तजा की मृत्यु के बाद जब उसके दो बेटों के बीच साम्राज्य का बंटवारा हुआ तो उसने आश्चर्य व्यक्त किया। इसी प्रकार उसने अपने **बेगों** (कुलीनों) के साथ सत्ता की भागीदारी के विचार को नकार दिया। परन्तु ऐसा लगता है कि आरंभिक चरणों में मुगल मंगोल प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाये थे। बाबर की मृत्यु के तुरंत बाद मंगोलों के साम्राज्य विभाजन के सिद्धांत के कार्यान्वयन का प्रयास किया गया। हुमायूं द्वारा अपने

साम्राज्य को अपने भाइयों के बीच बांटने का प्रयास असफल रहा। 1556 ई. में उश्तरग्राम के युद्ध में अकबर और कामरान (हुमायूं का भाई) की बेटी को संयुक्त रूप से सिंहासन पर बैठाया गया था परन्तु यह एक अल्प जीवी आपातकालीन प्रयास मात्र था। इसके अतिरिक्त स्वयं बाबर ने "पादशाह" की पदवी (जो एक तुर्की पदवी थी) ग्रहण की। हुमायूं की जान एक भिश्ती ने बचाई और हुमायूं ने उसे एक दिन के लिए अपनी संप्रभुता देने का निर्णय लिया। इससे पता चलता है कि मुगल संप्रभुता को "पादशाह" की निजी संपत्ति समझते थे। यहां तक कि कुलीनों के तथाकथित वंशानुगत विशेषाधिकारों को भी शासक की अनुशंसा प्राप्त करनी होती थी। नया शासक इन विशेषाधिकारों को नये सिरे से अनुशंसित करता था। अतः यह कहना बहुत सही नहीं है कि अधिकांश कुलीन समुदाय को प्राप्त विशेषाधिकारों के कारण आरंभिक तर्क-मंगोल राज्य व्यवस्था में निरंकुशता के विकास को धक्का पहुंचा। बाद में बाबर और हुमायूं दोनों ने चगताई कानून की संहिता (**तुरा**) का सम्मान किया जहां एक साथ दो शासकों की अवधारणा के लिए कोई जगह नहीं थी।

12.4.2 अकबर

अबुल फजल के अनुसार, "ईश्वर की नजरों में राजत्व से बढ़कर गौरवपूर्ण दूसरी कोई चीज नहीं है। विद्रोही चेतना का उपचार राजत्व में निहित है····"यहां तक कि 'पादशाह' शब्द का अर्थ भी इसके अनुकूल है। **पाद** का अर्थ स्थायित्व और आधिपत्य तथा **शाह** का मतलब मूल और सर्वशक्तिमान है। इस प्रकार एक शासक "स्थायित्व और आधिपत्य का मूल" है। वह आगे कहता है कि "राजत्व ईश्वर से निकलता प्रकाश है, सूर्य से निकली किरण है—आधुनिक भाषा में इस प्रकाश को **फर्र-ए इजदी** (आध्यात्मिक प्रकाश) कहते हैं और पुरानी भाषा में इसे **कियां ख्वारा** (उदात्त प्रभामंडल) कहते हैं। बिना किसी मध्यस्थता के ईश्वर राजा तक यह संदेश पहुंचाता है··· पुनः इस आलोक की प्राप्ति के बाद कई उदात्त गुणों की प्राप्ति होती है, जैसे अपनी प्रजा के प्रति पितृत्व भाव, विशाल हृदय, ईश्वर, प्रार्थना और भक्ति में आस्था।" एक अन्य स्थान पर अबुल फजल कहता है "राजत्व का सूर्य (**शमसा**) एक **ईश्वरीय प्रकाश है, जो राजा को सीधे ईश्वर से प्राप्त होता है**, इसमें किसी व्यक्ति का **हस्तक्षेप नहीं होता**····" अतः **राजा ईश्वर** द्वारा नियुक्त माना जाता था, जिसे ईश्वर से ही निर्देश प्राप्त होते थे और जिसकी रक्षा भी ईश्वर करता था।

अकबर के दायित्व पर अबुल फजल ने प्रभुसत्ता के जिस सिद्धांत को **महजर** और "**आइने रहनमूनी**" में अभिव्यक्त किया है वह मध्य एशियाई और ईरानी-इस्लामी अवधारणाओं के साथ-साथ संप्रभुत्ता की चंगेज परंपरा के भी नजदीक था। यह महत्वपूर्ण बात है कि संप्रभुता की निरंकुश परंपराओं और आध्यात्मिक और सांसारिक शासकत्व के मिले जुले रूप का उपयोग कई दरबारों में प्रतिरक्षा के रूप में किया गया ताकि कुछ स्वार्थी और महत्वाकांक्षी लोग राज्य की शक्ति पर अधिकार न जमा बैठें। **फर्र-ए इजदी, कियां ख्वारा** आदि दर्शन, विचार और अवधारणाएं इसी कोटि में आती हैं, जिनका एक मात्र उद्देश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से राजा की सत्ता को सुरक्षित रखना था। अलाउद्दीन खलजी ने "कार्य साधकता के कानून" का पालन करने की कोशिश की, अकबर उससे भी एक कदम आगे बढ़ गया। **महजर** (इसे शेखमुबारक और उसके दो पुत्रों ने तैयार किया था) के अनुसार सम्राट को न्यायी शासक (**इमाम आदिल**) घोषित किया गया और इसी क्रम में उसे **मुज़तहिद** अर्थात् "अपरिहार्य सत्ता" का ओहदा प्रदान किया गया, हालांकि **मुज़तहिद** के ओहदे को **इमाम आदिल** से उत्कृष्ट माना गया। अतः "न्यायी शासक की बुद्धिमता" विधान का प्रमुख स्रोत बन गयी।

एक स्थान पर अबुल फजल कहता है "जब चिंतन का समय आता है और लोग अपनी शिक्षा के पूर्वाग्रहों को भूल जाते हैं, उस समय धार्मिक मतांधता का पूरा जाल टूट जाता है और आंखें सौहार्दता की कीर्ति का दर्शन करतीं हैं—हालांकि कुछ लोग इससे उद्बद्ध होते हैं, परन्तु अधिकांश खून के प्यासे धर्मांधों के डर से चुप रहते हैं, स्वभावतः लोग अपने राजा की ओर **देखते हैं**···· **और उससे उनका आध्यात्मिक नेता होने की भी आशा करते हैं क्योंकि राजा** आम आदमी से अलग होता है, उसमें दैविक बुद्धिमता की किरण होती है, जो उसके हृदय से सभी प्रकार के अंतर्विरोध को दूर हटा देती है। इस प्रकार राजा कभी-कभी विभिन्न वस्तुओं के **बीच सौहार्द के तत्व भी खोज लेगा**···· वर्तमान युग के शासक **की यही स्थिति है वह अब** राष्ट्र का आध्यात्मिक दिग्दर्शक भी है।"

बोध प्रश्न 3

1. बाबर और हुमायूं ने किस सीमा तक तुर्क-मंगोल परंपराओं का पालन किया?

....

....

....

....

....

2. अबुल फजल द्वारा प्रतिपादित संप्रभुता के सिद्धांत पर टिप्पणी कीजिए। अपना उत्तर 60 शब्दों में दीजिए।

....

....

....

....

....

12.5 सारांश

आरंभ में मुगलों के संप्रभुता संबंधी दृष्टिकोण पर मध्य एशिया में विकसित तुर्क-मंगोल परंपराओं खासकर चंगेज खां की तुरा का प्रभाव था। महत्वपूर्ण प्रश्न राजा की स्थिति और हैसियत को लेकर था। क्या वह निरंकुश प्रभुसत्ता का आकांक्षी था? क्या वह दूसरों के साथ अपनी शक्ति और सत्ता का बंटवारा करने को तैयार था? इन दोनों प्रश्नों का जवाब संप्रभुता की भागीदारी और सत्ता में हिस्सेदारी के अंतर में निहित है। अब तक के अध्ययन से हम जान चुके हैं कि इस राज्य व्यवस्था में सत्ता और शक्ति पर दूसरों की हिस्सेदारी संभव थी, परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस सत्ता और शक्ति की मंजूरी वस्तुतः राजा के हाथ में थी (उदाहरण स्वरूप, राजकुमारों को विभिन्न प्रांतों का शासक या सुल्तान नियुक्त किया जाना)। इस प्रथा को "संप्रभुता की भागेदारी" से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। वह इससे बिल्कुल भिन्न चीज थी। छुटपुट और क्षणिक घटनाओं से कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः तुर्क-मंगोल और मुगल शासकों द्वारा निरंकुश राजतंत्र के आधारभूत सिद्धांत से समझौता करने का सवाल ही नहीं उठता था, इस सिद्धांत में समवर्ती संप्रभुता के लिए कोई स्थान नहीं था।

इसके अतिरिक्त प्राचीनकाल से ही संप्रभुता की अवधारणा में दैवीय तत्व का समावेश होता रहा है। इस्लामी सांस्कृतिक क्षेत्र में इसके लिए **जिल-उल अल्लाह फिल अर्ज** (पृथ्वी पर ईश्वर की छाया) विचार का उपयोग होता था, जिसे बाबर ने भी अपनाया। परन्तु अकबर ने और आगे ईश्वरीय प्रकाश की विचारधारा का उपयोग शुरू कर दिया। इससे काफी अंतर पैदा हो गया: "ईश्वर की छाया" स्वभावतः "ईश्वर की रोशनी" से कम प्रभावशाली थी। बाद वाली अवधारणा ने राजा को सीधे ईश्वर से जोड़ दिया, अब वह ईश्वर का एक अंश मात्र नहीं रह गया। अतः संप्रभुता के संबंध में अकबर का दृष्टिकोण मुसलमान मानस की पराकाष्ठा थी। यह एक मुसलमान शासक के लिए सीमा थी: इससे आगे बढ़ना मुसलमानों में ईश्वर की धारणा के खिलाफ जाने का दुस्साहस था। निश्चित रूप से, कोई व्यक्ति अपने को ईश्वर घोषित नहीं कर सकता था।

12.6 शब्दावली

आईन : शाब्दिक अर्थ नियम। अबुल फजल ने अपनी पुस्तक **आइने अकबरी** में अकबर के साम्राज्य के नियमों को प्रस्तुत किया है। इसमें राजकीय घरेलू जीवन, **मनसबदार**, राजकीय सेना, भोज्य

आईन-ए रहनमुनी : **आईन-ए अकबरी** का एक अध्याय (नं. 77) जिसमें अबुल फजल ने अकबर के राजत्व संबंधी सिद्धांतों का विश्लेषण किया है।

खुतबा : शुक्रवार को मस्जिदों में पढ़ा जाने वाला संदेश जिसमें राजा का नाम शामिल किया जाता था।

महजर : शाब्दिक अर्थ एक आदेश। अकबर ने **महज़र** का प्रसिद्ध आदेश 180 ई. में जारी किया। इसे शेख मुबारक ने तैयार किया था। इसके द्वारा सम्राट की **मुज़तहिदों** (धार्मिक कानून के व्याख्याता) पर सर्वोच्चता स्थापित हो गई।

साहिब-ए किरान : शाब्दिक अर्थ भाग्यशाली और अजेय योद्धा। तैमूर को दी गयी एक उपाधि। यह उपाधि उस शासक को दी जाती थी, जिसने 40 वर्षों तक शासन किया हो।

स्टेप्स : चीन के उत्तर और बैकल झील के पूर्व का क्षेत्र। मंगोल मूलतः इसी क्षेत्र के निवासी थे।

उइघलूर : एक मध्य एशियाई कबीला।

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(i) × (ii) ✓ (iii) ✓ (iv) ×

2) 12.3.1 उपभाग पढ़िए। **तुरा** की परिभाषा देकर इसके महत्व को समझाइए। साथ ही साथ इसके प्रति मुगल शासकों का रवैया भी स्पष्ट कीजिए।
3) देखिए उपभाग 12.3.2 तुर्क और मंगोलों की संप्रभुता संबंधी अवधारणाओं को स्पष्ट कीजिए और बताइए कि इन परंपराओं/अवधारणाओं से मध्य एशियाई शासक किस हद तक प्रभावित थे।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 12.3.5 इस भाग को सावधानी से पढ़िए और निरंकुश सत्ता संबंधी तुर्क और मंगोलों के विचारों का विश्लेषण कीजिए। यह भी बताइए कि किन परिस्थितियों/सीमाओं के कारण तैमूर **खान** की नाममात्र की प्रभुसत्ता स्वीकार करने को बाध्य थे।
2) देखिए उपभाग 12.3.5

बोध प्रश्न 3

1) 12.4.1 उपभाग ध्यान से पढ़िए। विश्लेषण कीजिए कि किस सीमा तक बाबर और हुमायूं तुर्कों और मंगोलों की संप्रभुता की अवधारणाओं से प्रभावित थे। इस तथ्य पर भी विचार कीजिए कि उनके कार्यों को प्रभावित करने वाली परिस्थितियां क्या थीं।
2) 12.4.2 उपभाग पढ़िए। अबुल फजल की संप्रभुता संबंधी अवधारणा पर विचार कीजिए। अकबर किस प्रकार प्रचलित नियमों को बदल सका। इससे मुगलों को **उलेमा/मुजतहिदों** से श्रेष्ठता प्राप्त करने में किस हद तक मदद मिली?

इकाई 13 मुगल शासक वर्ग

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 बाबर और हुमायूं के अधीन शासक वर्ग

13.3 अकबर के अधीन विकास

13.4 मुगल शासक वर्ग का संघटन
- 13.4.1 प्रजातीय और धार्मिक समुदाय
- 13.4.2 विदेशी तत्व–तुरानी और ईरानी
- 13.4.3 अफगान
- 13.4.4 भारतीय मुसलमान
- 13.4.5 राजपूत और अन्य हिंदू
- 13.4.6 मराठे और अन्य दक्खनी

13.5 शासक वर्ग का संगठन

13.6 शासक वर्ग के बीच राजस्व स्रोतों का बंटवारा

13.7 शासक वर्ग की जीवन-पद्धति

13.8 सारांश

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS

इकाई 12 में हमने राज्य संबंधी मुगल सिद्धांत के विकास और कार्य पद्धति पर विचार किया। इस इकाई में हम औरंगजेब के काल तक के मुगल शासकीय वर्ग के ढांचे और कार्य पद्धति की प्रमुख विशेषताओं पर विचार करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- शासकीय वर्ग के उद्भव और विकास के बारे में बता सकेंगे,
- शासक वर्ग के प्रजातीय संघटन को समझ सकेंगे,
- इसके संगठन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- शासक वर्ग के बीच साम्राज्य के राजस्व स्रोतों के बंटवारे के बारे में जान सकेंगे, और
- शासकीय वर्ग की जीवन पद्धति से अवगत हो सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

मुगल शासक वर्ग बहु-प्रजातीय, बहु-धार्मिक और बहु-प्रांतीय था। सिद्धांततः सम्राट इस वर्ग का गठन करता था। मुगल शासक वर्ग को आम तौर पर कुलीन वर्ग के रूप में जाना जाता था और इसमें नागरिक और सैनिक अधिकारी दोनों शामिल होते थे। उन्हें मनसब या पद प्राप्त होता था और उन्हें नगद धन या विभिन्न क्षेत्रों (जागीर) से प्राप्त राजस्व के माध्यम से वेतन मिलता था। इस प्रकार मनसबदारों (कुलीनों) की कुल संख्या से राजनीति और प्रशासन के साथ-साथ साम्राज्य की अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ता था।

13.2 बाबर और हुमायूं के अधीन शासक वर्ग

बाबर के साथ हिंदुस्तान आने वाले शासकीय वर्ग में तुरानी (मध्य एशियाई "बेग") और कुछ ईरानी शामिल थे। पानीपत के युद्ध (1526) के बाद सिकंदर लोदी के कुछ अफगान और भारतीय कुलीनों को भी शासनतंत्र में ऊंचा स्थान दिया गया। उन्हें जल्द ही विश्वास में ले लिया गया और उन्हें महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गये। कई स्थानीय सरदारों ने भी बाबर

की अधीनता स्वीकार कर ली और आगे होने वाले युद्धों में उसके मित्र बने रहे। इस प्रकार पानीपत के युद्ध के बाद बाबर के अधीन शासक वर्ग शुद्ध रूप से तुरानी नहीं रह गया। बाबरनामा से पता चलता है कि कुल 116 कुलीनों में से 31 भारतीय थे, जिसमें अफगान और शेखजादा भी शामिल थे।

हुमायूं के शासनकाल के आरंभिक वर्षों में भारतीय कुलीन (अफगान) मुगलों का साथ छोड़ गये और गुजरात के बहादुर के साथ मिल गये। हालांकि 1540-55 के बीच हुमायूं के कुलीन वर्ग में महत्वपूर्ण बदलाव उस समय आया जब अधिकांश तुरानी कुलीनों ने उसका साथ छोड़ दिया और मिर्जा कामरान के साथ जा मिले। ईरान जाते समय केवल छब्बीस व्यक्तियों ने उसका साथ दिया जिनमें से सात ईरानी थे। लेकिन ईरान में उसके प्रवास के दौरान कई और ईरानी उसके साथ मिल गये। उन्होंने ईरान से लेकर कांधार और काबुल प्राप्त करने में हुमायूं का साथ दिया। काबुल में कई ईरानियों ने हुमायूं का साथ दिया। हुमायूं के काबुल प्रवास के दौरान 1545-55 में अनेक ईरानी उसकी सेवा में आये और इस काल में ईरानी अमीरों की संख्या काफी बढ़ गई।

कुलीन वर्ग में ईरानियों के बढ़ने के साथ-साथ हुमायूं ने नये तुरानी कुलीनों को भी शामिल किया। पुराने कुलीनों की शक्ति में संतुलन पैदा करने के लिए उसने निम्न पदों पर आसीन तुरानी कुलीनों को संरक्षण देना शुरू किया और इस प्रकार अपनी स्थिति मजबूत करने का प्रयत्न किया। भारत लौटते समय हुमायूं के साथ 57 कुलीन व्यक्ति आये थे जिसमें 27 तुरानी और 21 ईरानी थे। 1545 और 1555 के बीच मिर्जा कामरान के साथ हुए युद्ध और भारत के अभियान में इन लोगों ने निष्ठापूर्वक हुमायूं का साथ दिया। उनकी इस निष्ठा के बदले इन कुलीनों को आम तौर पर महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां सौंपी गयीं।

ईरानियों तथा निम्नपदीय तुरानियों को उच्च पद देकर हुमायूं को एक निष्ठावान शासक वर्ग निर्मित करने में मदद मिली जिसने उसे भारत को पुनः जीतने में सहायता की। उसके शासक वर्ग का प्रभावशाली वर्ग अब भी वर्ग और परिवार पर आधारित छोटे-छोटे समूहों तक सीमित था जिसकी जड़ें अभी भी मध्य एशियाई परंपराओं में निहित थीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाबर और हुमायूं के अधीन शासक वर्ग विकास की अवस्था में ही था और अभी यह एक ऐसे अनुशासित और प्रभावकारी संगठन के रूप में विकसित नहीं हो सका था, जो भारत में साम्राज्य निर्माण के लिए आवश्यक था। बाबर और हुमायूं ने इसके संघटन में कुछ परिवर्तन किए पर वे उन्हें पूरी तरह से अपने प्रति निष्ठावान और अधीनस्थ न बना सके।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

13.3 अकबर के अधीन विकास

अकबर के शासन काल के आरंभिक वर्षों में भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। तुरानी और ईरानी दोनों विदेशी तत्वों का वर्चस्व बना रहा। बैरम खां के निष्कासन के बाद दरबार में संकट उत्पन्न हुआ और तुरानी कुलीन वर्ग ने विद्रोह कर दिया। उनके दबाव को संतुलित करने के लिए अकबर ने दो नये समुदायों—भारतीय मुसलमानों और राजपूतों—को अपने कुलीन वर्ग में जगह दी। संकट के दौरान निष्ठावान रहने के कारण उसने ईरानियों को भी ऊंचे पद देकर सम्मानित किया। हुमायूं और बैरम खां के अधीन पहले से ही ईरानी मुगलों की सेवा कर रहे थे। इस काल में नए ईरानी नौकरी की खोज में भारत आये उनके ईरान से भारत आने के पीछे कई कारक कार्य कर रहे था। सबसे महत्वपूर्ण कारक यह था कि सोलहवीं शताब्दी के दौरान सफवी ईरान का धार्मिक माहौल सुन्नियों के अनुकूल नहीं था। सफवी शासकों द्वारा दंड दिए जाने के भय से काफी लोग सुरक्षा की खोज में भारत आये। इनमें से कई प्रशासनिक मामलों में दक्ष थे और ईरान के जाने माने परिवारों से संबद्ध थे। भारत में उनका स्वागत किया गया और अकबर ने उन्हें अपनी सेवा में रखा और उपयुक्त पद दिए। इनमें से कुछ लोगों के संबंधी पहले से मुगल दरबार में मौजूद थे तथा कार्य कर रहे थे। इसके अलावा कुछ लोग यह जानकर कि मुगल दरबार में योग्यता का सम्मान होता है, बेहतर मौके की तलाश में चले आये थे। इस प्रकार मुगल शासकीय वर्ग में ईरानियों की स्थिति न केवल स्थिर और मजबूत हो गयी बल्कि वह अपने हितों को सुरक्षित रखने की स्थिति में बने रहे।

1561 में बैरम के निष्कासन के बाद से अकबर ने अपनी सेवा में राजपूतों और शेखजादों कुलीनों के संबंधियों को नियुक्त करना शुरू कर दिया। इन समुदायों को अपनी सेवा में लेने

के लिए उसने उन्हें प्रसन्न करने और विश्वासपात्र बनाने के लिए कुछ कदम उठाये। उदाहरणस्वरूप उसने राजपूत सरदारों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किये, तीर्थ कर (1562) और जजिया (1564) समाप्त कर दिया, जिसे पहले हिंदुओं पर लाद दिया गया था। उजबेक विद्रोह को कुचलने के बाद और उनकी संख्या काफी हद तक कम करने की दृष्टि से राजपूतों के प्रति अकबर के रवैये में अभूतपूर्व परिवर्तन आया और उनको अधिक संख्या में अमीर वर्ग में अपनाया गया।

1575-80 के बीच अकबर ने साम्राज्य के लिए भारत के मुसलमान समुदायों का व्यापक समर्थन प्राप्त करने की दृष्टि से उन्हें आगे बढ़ाना और दोस्त बनाना शुरू किया। इसके लिए उसने बहुत से मित्रतापूर्ण कदम उठाये।

बोध प्रश्न 1

1. बाबर और हुमायूं के काल में मुगल शासक वर्ग के विकास की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2. अकबर के काल में मुगल शासक वर्ग की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

13.4 मुगल शासक वर्ग का संघटन

बाबर, हुमायूं और अकबर के आरंभिक वर्षों के शासन काल के साथ विकास का पहला चरण पूरा हुआ और मुगल शासक वर्ग में कुछ खास प्रजातीय समुदाय उभर कर सामने आये। इनमें तुरानी, ईरानी, अफगान, शेखजादा और राजपूतों के साथ-साथ दक्खनी (बीजापुरी, हैदराबादी और मराठी) भी महत्वपूर्ण थे। अतः यह एक "अंतर्राष्ट्रीय" शासक वर्ग था, नियुक्ति के लिए "राष्ट्रीयता" का कोई बंधन नहीं था। इसके बावजूद केवल योग्यता और दक्षता के बल पर ही कोई इस वर्ग का सदस्य नहीं बन सकता था, नियुक्ति के लिए कुल और पारिवारिक संबंधों पर खास ध्यान दिया जाता था और आम तौर पर साधारण व्यक्ति के लिए, चाहे वह कितना भी योग्य क्यों न हो, समाज के इस अभिजात्य वर्ग में शामिल होना आसान नहीं था।

खानजादा उन अधिकारियों (मनसबदारों) के बेटे और संबंधी थे जो पहले से मुगल सेवा में थे यही लोग मनसबदारी के सबसे प्रमुख दावेदार थे। पूरे मुगल काल के दौरान शासक वर्ग में लगभग आधी नियुक्तियां इस वर्ग में से होती थीं। बचे हुए आधे में ऐसे लोग थे जिनका परिवार पहले से मुगलों की सेवा में नहीं था। जमींदार या स्वायत्तराजा इनमें से एक थे। हालांकि दिल्ली सल्तनत के समय से ही वे राज्य सेवा में नियुक्त किये जाते रहे थे पर अकबर के शासनकाल में उन्हें अधिक महत्व प्राप्त हुआ और उन्हें साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में मनसब और जागीरें प्राप्त हुईं। ये जागीरें उनके पैतृक राज्य या जमींदारी क्षेत्रों से भिन्न थीं, जिन्हें अब वतन जागीर (देखिए इकाई 15) कहा गया।

दूसरे राज्यों के कुलीनों और वरिष्ठ पदाधिकारियों को भी उनके अनुभव, स्तर और प्रभाव के अनुरूप मुगल शासक वर्ग में शामिल किया गया। खासकर, दुश्मन राज्य के सेनानायकों को बड़े पद का प्रलोभन देकर अपने स्वामियों को छोड़कर मुगल शासक वर्ग में शामिल

होने के लिए उकसाया गया। मुगल शासक वर्ग में एक छोटा-सा समूह खत्रियों, कायस्थों आदि जैसी जातियों का भी था, जो लेखा विभाग से संबद्ध होते थे। आम तौर पर उनकी नियुक्ति वित्त विभाग के निचले पदों पर होती थी, पर उनकी पदोन्नति भी हो सकती थी। अकबर के अधीन टोडरमल और औरंगजेब के अधीन राजा रघुनाथ इसी कोटि में आते थे। उन्होंने दीवान के रूप में काम किया और ऊंचे मनसब प्राप्त किये।

मुगल सेवा में विद्वान, संतों/सुफियों, दार्शनिकों आदि को भी बड़े ओहदे और पद दिए जाते थे। अकबर के अधीन अबुल फजल, शाहजहां के शासन काल में सैदुल्लाह खां और दनिशमंद खां और औरंगजेब के काल में हकीम अबुल मुल्क तुनी, फाजिल खां आदि इस वर्ग के उल्लेखनीय व्यक्ति थे।

13.4.1 प्रजातीय और धार्मिक समुदाय

जैसा कि पहले बताया जा चुका है मुगल शासकीय वर्ग में स्पष्ट रूप से कुछ प्रजातीय समुदाय थे, जैसे तुरानी, ईरानी, अफगान, शेखजादे, राजपूत और मराठे। इन्हीं के बीच से नयी नियुक्तियां हुईं। मुगल सेवा में मुख्य रूप से इन्हें ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण नियुक्त किया गया पर अंशतः (खासकर राजपूतों के मामले में) एकीकृत साम्राज्यी सेवा में इन सभी तत्वों को एकबद्ध करने की यह एक सुनियोजित साम्राज्यी नीति का एक परिणाम था। इस उद्देश्य से अक्सर विभिन्न समुदायों के अधिकारियों को एक वरिष्ठ पदाधिकारी के निरीक्षण में काम करना पड़ता था। अकबर की सुलह कुल की नीति का एक उद्देश्य विभिन्न धार्मिक मतों के लोगों जैसे सुन्नियों (तुरानी और शेखजादा), शियाओं (बहुत से ईरानी) और हिन्दुओं (राजपूतों) को साथ लेकर चलना था और इन संप्रदायों के बीच के मतभेदों को कम से कम करना था ताकि राज्य के प्रति इनकी निष्ठा में कमी न आये।

13.4.2 विदेशी तत्व: तूरानी और ईरानी

मुगल शासकीय वर्ग में तुरानी (या मध्य एशियाई) और ईरानी (इन्हें खुरासानी और ईराकी भी कहा जाता था) दो प्रमुख विदेशी समुदाय थे। आइने अकबरी के अनुसार मूलतः अकबर के 70% कुलीन सदस्य विदेशी थे। अकबर के उत्तराधिकारियों के शासन काल में भी विदेशियों का प्रतिशत काफी ज्यादा रहा और ईरानियों का वर्चस्व बना रहा। जहांगीर के शासन काल के आरंभिक वर्षों में मिर्जा अजीज कोका ने आरोप लगाया कि सम्राट ईरानियों और शेखजादों को जरूरत से ज्यादा महत्व दे रहे हैं जबकि तूरानियों और राजपूतों को अनदेखा किया जा रहा है। हालांकि शाहजहां ने मुगल वंश के मध्य एशियाई संपर्क पर जोर देने की भरपूर कोशिश की, पर इसका ईरानियों की स्थिति पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा। बर्नियर का कहना है कि औरंगजेब के कुलीन वर्ग में अधिकांश ईरानी लोग थे, टेवर्नियर का कहना है कि इन लोगों ने मुगल साम्राज्य में सर्वोच्च पद प्राप्त कर रखे थे। अतहर अली का मानना है कि अकबर के काल से ही विदेशों से सीधे आने वाले कुलीनों की संख्या में कमी आने लगी। उनके अनुसार औरंगजेब के लंबे शासन काल में यह कमी और भी स्पष्ट हो गयी। उजबेक और सफवी साम्राज्यों का पतन और लंबे समय तक औरंगजेब का दक्खन मामलों में उलझे रहना तथा उत्तर-पश्चिम की ओर आक्रामक सैनिक नीति न अपनाना आदि कुछ महत्वपूर्ण कारण कहे जा सकते हैं, जिनके चलते प्रत्यक्ष विदेशी नियुक्तियों में गिरावट आई। पर दक्खन सल्तनतों से ईरानियों का आना जारी रहा और इस प्रकार कुलीन समुदाय में उनका वर्चस्व बना रहा। दक्खन के ईरानी कुलीनों में मुकर्रब खां, किजिलबाश खां और मीर जुमला (शाहजहां के अधीन), अली मर्दान खां हैदराबादी, अब्दुर रज्जाक लारी और महाबत खां हैदराबादी (औरंगजेब के अधीन) प्रमुख थे। सम्राट के सुन्नी कट्टरपंथ का भी ईरानियों की स्थिति पर प्रभाव नहीं पड़ा।

13.4.3 अफगान

मुगल अफगानों पर विश्वास नहीं करते थे, खासकर हुमायूं की पुनःस्थापना के बाद से उन्हें संदेह की निगाहों से देखा जाने लगा था। अकबर ने हमेशा उनसे दूरी बनाये रखी। हालांकि उनकी स्थिति जहांगीर के जमाने में थोड़ी सुधरी, इस काल में खानजहां लोदी को उच्च पद प्राप्त हुआ। शाहजहां के शासनकाल में अफगानों का महत्व फिर कम हो गया और खान जहां लोदी के विद्रोह से इसे और धक्का लगा। हालांकि औरंगजेब के शासन काल के अंतिम दिनों में अफगान कुलीनों की संख्या तेजी से बढ़ी। इसका कारण बीजापुर राज्य से इनकी बड़ी संख्या में आना था।

13.4.4 भारतीय मुसलमान

भारतीय मुसलमान शेखजादा के नाम से जाने जाते थे, इनमें बरहा और कम्बुस के सैयूयदों के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण कुल भी शामिल थे।

अकबर के समय से महत्वपूर्ण स्थान पा रहे बरहा और कम्बुस के सैयूयदों का महत्व औरंगजेब के शासनकाल में समाप्त हो गया। खासकर, बारहा के सैयदों की स्थिति ज्यादा खराब हुई। अपनी लड़ाकू योग्यता के कारण उन्हें एक समय मुगल सेना के उग्रगामी दस्तों में रहने का सम्मान प्राप्त हुआ था, उन्हीं पर औरंगजेब ने अविश्वास किया। इसका कारण शायद यह था कि उत्तराधिकार के युद्ध में वे दारा शिकोह के निष्ठावान समर्थक थे।

औरंगजेब के शासन काल के अंतिम वर्षों के कुछ कश्मीरियों को भी महत्वपूर्ण पद प्राप्त हुए, इनायतुल्हा कश्मीरी सम्राट का एक प्रमुख प्रियपात्र कुलीन था।

13.4.5 राजपूत और अन्य हिंदू

जैसा कि पहले बताया जा चुका है अकबर के शासनकाल के दौरान राजपूतों और हिंदुओं को मुगल शासक वर्ग में शामिल किया गया। इनके प्रति अकबर का व्यवहार उदार और मित्रतापूर्ण था। समकालीन स्रोतों से पता चलता है कि आम तौर से राजपूतों को अकबर से लेकर औरंगजेब तक के शासनकाल में सम्मान और प्रतिष्ठा मिलती रही। शाहजहां कट्टर मुसलमान था और अपना कट्टरपंथ दर्शाने के लिए उसने कई कदम उठाए। पर उसके शासनकाल में राजपूत मनसबदारों की संख्या में अपार वृद्धि हुई। औरंगजेब भी एक कट्टर मुसलमान था और अक्सर उस पर हिंदु-विरोधी नीतियों का आरोप लगाया जाता है। पर एक तथ्य यह है कि उसके शासनकाल के आरंभिक वर्षों में शाहजहां के शासनकाल से भी ज्यादा राजपूत कुलीन नियुक्त किये गये। शाहजहां के शासनकाल में किसी राजपूत कुलीन को 7000 जात का पद प्राप्त नहीं था पर औरंगजेब के शासनकाल में मिर्जा राजा जय सिंह और जसबंत सिंह को 7000 जात/7000 सवार के पद पर पदोन्नति दी गयी। इसी प्रकार 1606 में मानसिंह को बंगाल से वापस बुलाये जाने के बाद से किसी राजपूत कुलीन को किसी महत्वपूर्ण प्रांत की जिम्मेदारी नहीं सौंपी गयी थी। 1665 में जय सिंह को दक्खन का वायसरॉय नियुक्त किया गया। इस प्रकार का प्रतिष्ठित और महत्वपूर्ण पद आमतौर पर केवल राजकुमारों को ही दिया जाता था। जसबंत सिंह को भी दो बार (1659-61 और 1670-72) गुजरात का राज्यपाल नियुक्त किया गया। यह ध्यान रखने की बात है कि औरंगजेब के शासनकाल के आरंभिक चरण (1658-78) में थोड़ी गिरावट (21.6%) आने के बावजूद हिंदु मनसबदारों का प्रतिशत अकबर (22.5%) और शाहजहां (22.4%) के शासनकाल के आसपास बना रहा। इसे निम्नलिखित तालिका से और अच्छी तरह समझा जा सकता है।

MADHYAM IAS

तालिका-I

कुल मनसबदार	अकबर (1595)	शाहजहां (1628-50)	औरंगजेब (1658-78)	(1679-1707)
क) कुल मनसबदार	98	437	486	575
ख) हिंदु	22	98	105	182
क और ख का %	22.5	22.4	21.6	31.6

औरंगजेव के शासन काल के अंतिम चरण (1679-1707) में हिंदु कुलीनों का प्रतिशत 31.6 तक पहुंच गया थो। दूसरे शब्दों में विगत वर्षों की तुलना में अब ज्यादा हिंदुओं को मुगल सेवा में शामिल किया गया। इस काल में हिंदुओं का प्रतिशत मराठें के आगमन से बढ़ा और कुलीन वर्ग में वे राजपूतों से आगे बढ़े गये।

13.4.6 मराठे और अन्य दक्खनी

मराठों की नियुक्ति शाहजहां के अहमदनगर अभियान के समय से शुरू हुई। दक्खनी मामलों में मराठों की महत्वपूर्ण भूमिका के कारण मुगल शासकीय वर्ग में उन्हें तत्परता से नियुक्त किया गया। औरंगजेब ने भी काफी संख्या में मराठें को नियुक्त किया और उनमें से कुछ को ऊंचे पद भी प्रदान किए। मराठा सरदारों को बड़े मनसब देकर अपनी तरफ मिलाने के मुगलों के प्रयास असफल रहे। औरंगजेब के अधीन मराठा कुलीनों की निष्ठा हमेशा अस्थिर रही और मुगल शासक वर्ग में उन्हें कभी महत्व का कोई पद प्राप्त नहीं

हुआ। अन्य दक्खनियों में वे कुलीन शामिल थे जो मुगल सेवा स्वीकार करने से पहले बीजापुर या गोलकुंडा के दक्खनी राज्यों में काम करते थे। उनमें से कुछ भारतीय मूल के थे, जैसे अफगान, शेखजादा या भारतीय मुसलमान। कुछ विदेशी थे जैसे ईरानी और तुरानी। ऐसा लगता है कि प्रथम चरण में औरंगजेब के कुलीन वर्ग में ज्यादा दक्खनियों को नियुक्त नहीं किया गया था। उन्हें निचले दर्जे का कुलीन माना जाता था, दक्खन की प्रथा के अनुसार उनके पूरे वेतन से एक-चौथाई हिस्सा काट लिया जाता था।

हालांकि दूसरे चरण में दक्खनी कुलीनों (बीजापुरियों, हैदराबादियों और मराठों) को बड़ी संख्या में नियुत किया गया। औरंगजेब के शासन के अंतिम वर्षों में दक्खनियों का समावेश इतना ज्यादा हुआ कि पुराने कुलीन वर्ग खानजादों ने अपना असंतोष भी व्यक्त कर दिया

बोध प्रश्न 2

1) मुगल कुलीन वर्ग में राजपूतों की क्या स्थिति थी?

....

....

....

....

....

2) मुगल शासक वर्ग के प्रमुख समूहों के नाम लिखिए?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

13.5 शासक वर्ग का संगठन

मुगल शासकीय वर्ग दो महत्वपूर्ण व्यवस्थाओं मनसब और जागीर के ढांचे के अंतर्गत संगठित था, जिसने लगभग दो सौ सालों तक मुगल साम्राज्य को संभाले रखा। मनसब व्यवस्था प्रत्यक्ष आदेश के सिद्धांत पर आधारित अर्थात सभी मनसबदार, चाहे उनका ओहदा कुछ भी हो, सीधे मुगल सम्राट के अधीन थे। तकनीकी रूप में मनसब व्यवस्था में मनसब का तात्पर्य पद या ओहदा था। मुगल के अधीन मनसब का कार्यरूप तिहरा था:

मुगल के अधीन मनसब का कार्यरूप तिहरा था:

i) इससे इसके प्राप्तकर्ता (मनसबदार) का पदानुक्रम में स्थान तय होता था,
ii) इसके आधार पर मनसबदार का वेतन निश्चित किया जाता था, और
iii) इसके अंतर्गत मनसबदार को एक निश्चित संख्या में घोड़ों और सेना का रख-रखाव करना होता था। प्रत्येक पदाधिकारी को दोहरा ओहदा जात और सवार प्रदान किया जाता था। जात एक व्यक्तिगत ओहदा होता था जिसके आधार पर मनसबदार का पदानुक्रम तय होता था और इससे उसका व्यक्तिगत वेतन भी निर्धारित होता था। सवार एक सैनिक ओहदा होता था और जिससे मनसबदार द्वारा रखी जाने वाली सेवा की संख्या तय होती थी और इसके आधार पर सेना के रख-रखाव के लिए धन निर्धारित किया जाता था। (विस्तार के लिए इकाई 15 देखिए)।

मुगल मनसबदारों को उनके जात और सवार पद के आधार पर नगद धन या जागीर के रूप में भुगतान किया जाता था।

मनसबदारों की नियुक्ति में राष्ट्रीयता की कोई बाधा नहीं थी। इस पद पर नियुक्ति के लिए खानजादों (पहले से कार्य कर रहे मनसबदारों के पुत्र और वंशज) का पहला दावा होता था। ईरान और मध्य एशिया से आये लोगों की भी इस पद पर नियुक्ति की जाती थी।

अनुशंसा (तजवीज) के आधार पर भी नियुक्तियां होती थीं। दुश्मन के खेमे को छोड़कर आये सेनानायकों की भी इस पद पर नियुक्ति की जाती थी।

केन्द्रीय मंत्रियों, राजकीय परिवार के राजकुमारों, प्रांतीय राज्यपालों और महत्वपूर्ण सेनानायकों की अनुशंसा पर भी नियुक्ति और पदोन्नति होती थी। (विस्तार के लिए इकाई 15 देखिए)।

13.6 शासक वर्ग के बीच राजस्व स्रोतों का बंटवारा

ए. जान कैसर और शिरीन मूसवी ने दिखाया है कि साम्राज्य के कुल राजस्व स्रोत का 80% 1571 मनसबदारों द्वारा प्राप्त किया जाता था। उच्चस्थ 12 मनसबदारों का साम्राज्य की कुल आय के 18.52% पर नियंत्रण था जबकि बचे हुए 1,149 मनसबदार केवल राजस्व का 30%नियंत्रित करते थे। इस प्रकार अकबर के शासनकाल में राजस्व स्रोत कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित थे। यह केन्द्रीकरण उसके उत्तराधिकारियों के समय भी कायम रहा। ए. जान. कैसर के अध्ययन के अनुसार शाहजहां के अधीन कार्यरत 445 मनसबदार राजस्व के 61.5% पर नियंत्रण रखते थे और इनमें से उच्चस्थ 25 मनसबदारों का 24.5% राजस्व स्रोतों पर नियंत्रण था।

अधिकांशतः कुलीन भू-राजस्व से अपनी आय ग्रहण करते थे। मुगल शासक वर्ग के कुछ महत्वपूर्ण लोगों (जिनकी संख्या काफी कम थी) के पास धन का अत्यधिक संकेंद्रण हो गया था। सवार ओहदे के आधार पर उन्हें जो राशि दी जाती थी उसे वे अपनी सेना के रख-रखाव पर पूरी तरह खर्च नहीं करते थे। इससे कुलीनों के हाथों में धन का और भी सकेंद्रण हो गया।

13.7 शासक वर्ग की जीवन पद्धति

शासकीय वर्ग के पास अपार संपत्ति रहने के कारण वे ठाठ और रईसी का जीवन बिताते थे। उनकी कई पत्नियां होती थीं, उनके पास नौकरों, ऊंटों और घोड़ों का एक पूरा दल होता था। उनके घरेलू मामलों और हरम के रख-रखाव पर काफी धन खर्च किया जाता था। इसके बावजूद उनके पास काफी धन बचा रहता था जिसे वे भव्य भवन और जन सुविधा के कार्य से संबंधित इमारतें बनवाने पर खर्च करते थे। यहां हम कुलीनों द्वारा करवाये गये निर्माण कार्यों की संक्षिप्त जानकारी देने जा रहे हैं।

शेख फरीद भक्करी की जीवनी संबंधित रचना जखीरत-उल ख्वानीन (1642) को पढ़ने से पता चलता है कि मुगल पदाधिकारी और कुलीन अपने निवास के लिए भव्य और आकर्षक भवन बनवाया करते थे। मुरतजा खां शेख फरीद बुखारी अकबर के समय का एक महान भवन निर्माता था। अहमदाबाद में उसने एक सराय, मस्जिद और अन्य इमारतें बनवाई थी। जहांगीर के शासनकाल में अब्दुर रहीम खान खाना, आजम खां, ख्वाजा जहां काबुली आदि महान भवन निर्माता थे।

जहां तक जन सुविधाओं संबंधी निर्माण कार्य का संबंध है हमारे स्रोत बताते हैं कि पूरे साम्राज्य में कुलीनों ने अनेकों सरायें, हम्माम (जन स्नान सुविधा), कुएं, सीढ़ी नुमा कुंआ (बावली), जलाशय, बाजार, सड़कें और बागान निर्मित किए। अकबर के शासनकाल में मुरतजा खान शेख फरीद बुखारी ने लहौर, आगरा आदि कई जगहों पर मस्जिदों, सरायों, खानकाहों और जलाशयों का निर्माण कराया। कुलीनों की पत्नियों और कर्मचारी भी जनसुविधा के निर्माण कार्य में बराबर की रुचि लेते थे। मुगल कुलीनों द्वारा निर्मित धार्मिक और शैक्षिक भवनों, जैसे मस्जिद, मदरसे, खानकाह, मकबरा और मंदिरों (देवराह) का अक्सर जिक्र मिलता है। कुछ हिंदु कुलीनों और पदाधिकारियों ने भी मस्जिदें बनवाई। मुगल काल के दौरान अपने लिए और अपने मृत पूर्वजों के लिए मकबरा बनवाने का आम प्रचलन था। इन भवनों के चारों ओर सुन्दर बागान लगाये जाते थे। इन मकबरों के निर्माण में कभी-कभी कुलीन आपस में होड़ लगा लेते थे। सुफियों के लिए उनके शिष्यों ने भी मकबरे निर्मित किए। मुगल कुलीनों और पदाधिकारियों ने भारत से बाहर भी जन-कल्याण से संबंधित इमारतें निर्मित कीं।

MAADHYAM IAS

जब भी कोई नया शहर या नगर बसाया गया उसमें शहरी जीवन से संबद्ध सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराई गयीं ताकि वहां लोगों को बसाने के लिए प्रेरित किया जा सके। बागानों का निर्माण कुलीन सांस्कृतिक गतिविधियों का एक अंग था।

ए. जान कैसर ने मुगल आभिजात्य वर्ग के सामाजिक मूल्यों और निर्माण गतिविधि में एक प्रकार का संबंध दिखलाया है। उनका कहना है कि ये मूल्य स्थापित भारतीय परंपराओं की ही निरंतरता थी। इतने व्यापक स्तर पर निर्माण कार्य क्यों किया गया? ऐसा लगता है कि यह एक सम्मान का सवाल था। इन सांस्कृतिक गतिविधियों के पीछे अपने हमवतनों के साथ प्रतियोगिता का भाव भी निहित था। लोग अनन्त काल तक अपने नाम को जीवित रखना चाहते थे। उनकी यह इच्छा उनकी निजी और सार्वजनिक गतिविधियों से स्पष्ट होती हैं। यह सम्भ्रान्त लोग धार्मिक समर्थन के लिए भी निर्माण कार्य में रुचि लेते थे, उदाहरणस्वरूप मस्जिदों का बड़ी संख्या में निर्माण। इसके अतिरिक्त आम लोगों की आशाओं से प्रेरित होकर भी ये निर्माण कार्य करवाते थे। आम जनता इन संपन्न लोगों से यह अपेक्षा रखती थी कि वे सांस्कृतिक पक्ष से जुड़ी जनसुविधाएं उपलब्ध कराएं। उदाहरणस्वरूप अस्पताल, मस्जिद, सराय आदि। जनता यह अपेक्षा रखती थी कि साधन संपन्न और अमीर लोग अपने धन का एक भाग उनकी भलाई के लिए खर्च करें। मुगल कुलीनों ने अपनी यह भूमिका अच्छी तरह निभाई। इसके कारण कुछ मात्रा में ही सही समाज के भौतिक संसाधनों का बंटवारा समाज के लिए हुआ।

अपने उपभोग की आरामदायक वस्तुओं के निर्माण के लिए ये कुलीन अपने कारखाने चलाते थे। इनमें कालीन, सोने से जड़े रेशमी वस्त्र और उच्च कोटि के स्वर्णाभूषण आदि व्यक्तिगत प्रयोग के लिए बनाये जाते थे। इसके अतिरिक्त ये विभिन्न देशों से काफी मात्रा में आरामदायक वस्तुओं का आयात भी करते थे। ब्रिटिश और डच स्रोतों से अनेकों विवरण यह दर्शाते हैं कि यह शासक वर्ग विलासिता की मूल्यवान वस्तुओं की मांग करता था और इसके लिए बड़ी राशि खर्च करता था।

शिकार मनोरंजन और खेलकूद संबंधी गतिविधियों के अतिरिक्त पर्व-त्योहारों, घरेलू शादियों आदि में अपार राशि खर्च की जाती थी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 3

1) मुगल शासक वर्ग के संगठन का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) मुगल शासक वर्ग राजस्व स्रोतों से प्राप्त अपार धन का प्रयोग किस प्रकार करता था?

....

....

....

....

....

13.8 सारांश

इस इकाई में हमने मुगल शासक वर्ग के विकास के विभिन्न चरणों की जानकारी प्राप्त की। आरंभ में इसमें तुरानी बाहुल्य वर्ग का वर्चस्व रहा, पर राजनीतिक जरूरतों के कारण ईरानी, भारतीय मुसलमान, राजपूत, मराठा और अफगानों की भी नियुक्ति इस वर्ग में हुई। इस प्रकार यह शासक वर्ग एक मिले-जुले बहुजातीय व बहुराष्ट्रीय वर्ग के रूप में विकसित हुआ। यह मुगल शासक वर्ग दो महत्वपूर्ण संस्थाओं मनसबदारी और जागीरदारी के

माध्यम से संगठित हुआ। मनसबदारी और जागीरदारी दो ऐसी संस्थाएं थीं जिनके आधार पर मुगल साम्राज्य 200 वर्षों की लंबी अवधि तक कायम रह सका। मनसबदार एक ऐसा शासक वर्ग था जो न केवल धनवान था बल्कि समाज का एक संभ्रान्त वर्ग था। अपने कार्यकाल में ये लोग काफी धन जमा कर लेते थे और अपने परिवार के लिए बड़ी संपदा छोड़ जाते थे।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 13.2
2) देखिए भाग 13.3

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 13.4.5
2) देखिए उपभाग 13.4.1 से 13.4.6 तक

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 13.5
2) देखिए भाग 13.6 तथा 13.7

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 14 मुगल प्रशासन: केन्द्रीय, प्रांतीय और स्थानीय

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 शेरशाह के अधीन प्रशासन

14.3 केन्द्रीय प्रशासन का विकास
- 14.3.1 सम्राट
- 14.3.2 वकील और वजीर
- 14.3.3 दीवाने कुल
- 14.3.4 मीर बख्शी
- 14.3.5 मीर सामां या खान सामां
- 14.3.6 सद्र-उस सुदूर

14.4 प्रांतीय प्रशासन
- 14.4.1 प्रांतीय गर्वनर
- 14.4.2 दीवान
- 14.4.3 बख्शी
- 14.4.4 दरोगा-ए डाक और गुप्तचर सेवा

14.5 स्थानीय प्रशासन
- 14.5.1 सरकार
- 14.5.2 परगना प्रशासन
- 14.5.3 थानेदार

14.6 नगर, किला और बन्दरगाह प्रशासन
- 14.6.1 कोतवाल
- 14.6.2 किलेदार
- 14.6.3 बन्दरगाह प्रशासन

14.7 मुगल प्रशासन की प्रकृति

14.8 सारांश

14.9 शब्दावली

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

14.0 उद्देश्य

इस इकाई से आप मुगल राज्य व्यवस्था की समग्र कार्यपद्धति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप:

- मुगल प्रशासनिक ढांचे के विकास की प्रक्रिया समझ सकेंगे,
- केन्द्रीय स्तर पर प्रमुख प्रशासनिक विभागों का उल्लेख कर सकेंगे,
- मुख्य प्रांतीय पदों, उनके कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- स्थानीय स्तर की प्रशासनिक व्यवस्था और केन्द्रीय सत्ता के साथ उनके संबंधों को रेखांकित कर सकेंगे, और
- नगर, किला, और बंदरगाह प्रशासन की कुछ आधारभूत विशेषताओं को जान सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का आधारभूत उद्देश्य साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों पर नियंत्रण

स्थापित रखना था ताकि मुगल संप्रभुता को चुनौती देने वाले विरोधी तत्वों को रोका जा सके। मुगल प्रशासन के सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि मुगल साम्राज्य के प्रत्येक हिस्से में विभिन्न क्षेत्रों के लोग निवास करते थे जिनपर उनके स्थानीय शासकों या स्वायत्त प्रमुखों का काफी प्रभाव था। मुगल राज्य व्यवस्था की यह विशेषता थी कि इसने विद्रोही राजाओं और सरदारों को न केवल प्रशासनिक व्यवस्था में शामिल किया बल्कि उनसे सैन्य सेवाएं भी प्राप्त की गयीं। इस विशाल प्रशासन को बनाए रखने के लिए भू-राजस्व के रूप में ग्रामीण अधिशेष का अधिकतम भाग प्राप्त होना आवश्यक था। मुगल राज्य व्यवस्था में इसे वसूलने पर बहुत ध्यान दिया गया था।

14.2 शेरशाह के अधीन प्रशासन

मुगल प्रशासनिक ढांचे की विकास प्रक्रिया में अफगान अंतराल (1540-55) का विशेष महत्व है। शेरशाह के काल में एक ऐसी नौकरशाही के निर्माण का प्रयोग किया गया जो केन्द्रीकृत, निरंकुश राज्य व्यवस्था के अधीन कार्य करती थी। अकबर ने इस व्यवस्था को निश्चित रूप प्रदान किया। वास्तव में शेरशाह के कार्यों ने अकबर के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। आइए, पहले हम शेरशाह के प्रशासनिक कार्यों का अध्ययन करें। (शेरशाह के राजस्व प्रशासन का अध्ययन खंड 5 इकाई 17 में किया जाएगा)।

शेरशाह के केन्द्रीय प्रशासन की कार्यपद्धति के बारे में हमारे स्रोतों में सीमित जानकारी मिलती है। परन्तु वह एक निरंकुश शासक था और राज्य के सभी कार्य अपने प्रत्यक्ष निरीक्षण और नियंत्रण में रखता था। अपनी योग्यता के कारण वह स्वयं तो इस प्रकार की निरंकुश व्यवस्था को ठीक ढंग से चला सका। परंतु उसके उत्तराधिकारी उसके समान योग्य सिद्ध न हो सके।

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई **गांव** थे। कई गांवों को मिलाकर एक **परगना** और कुछ **परगनों** को मिलाकर **शिक** बनता था, जो मुगल प्रशासनिक इकाई **सरकार** के बराबर था। कुछ इलाकों जैसे पंजाब, बंगाल, मालवा आदि में कई **शिकों** को मिलाकर एक पदाधिकारी के अधीन रखा जाता था। इस पदाधिकारी की तुलना मुगल **सूबेदार** के साथ की जा सकती है। **मुकद्दम** गांव का मुखिया होता था, जो राज्य और गांव के बीच कड़ी का काम करता था। हालांकि वह सरकारी नौकर नहीं था, फिर भी अपने गांव की कानून और व्यवस्था की देखभाल के लिए वही उत्तरदायी था। **पटवारी** गांव के सभी ब्यौरों का लेखा-जोखा रखता था। **मुकद्दम** की तरह वह भी राज्य का नहीं बल्कि गांव का सेवक होता था।

परगना का प्रभारी **शिकदार** कहलाता था। **परगना** स्तर पर राजस्व वसूल करना उसकी मुख्य जिम्मेदारी थी। शेरशाह के काल में उसका हमेशा स्थानांतरण होता रहता था। उसकी सहायता के लिए दो **कारकुन्** (क्लर्क) होते थे, जो हिंदी और फारसी दोनों में लेखा-जोखा रखते थे। जमीन आदि नापने का काम **मुंसिफ** के जिम्मे था। **शिकदार** और **मुंसिफ** दोनों की नियुक्ति सीधे सम्राट द्वारा होती थी। **परगना** स्तर के राजस्व ब्यौरों का रख-रखाव **कानूनगो** करता था। वह अनुवांशिक अर्द्ध-सरकारी पदाधिकारी था। **परगना** के खजाने का जिम्मा **फोतेदार** के पास होता था।

कई **परगनों** को मिलाकर प्रशासनिक इकाई **सरकार (शिक)** बनती थी, जिसका प्रमुख अधिकारी **शिकदार-ए शिकदारान** होता था। वह एक **सरकार** के सभी **शिकदारों** का प्रमुख पर्यवेक्षक तथा प्रशासनिक अधिकारी था। **मुंसिफ-ए मुंसिफान सरकार (शिक)** स्तर का अधिकारी था। इसका कार्यक्षेत्र मुगल शासन के **अमीन** की भांति था। शेरशाह के साम्राज्य में 66 **सरकारें (शिक)** थीं।

शेरशाह के न्याय प्रशासन को विशेष महत्व दिया। मुसलमानों के दीवानी मामलों का निपटारा **काजी** तथा फौजदारी मामलों का निपटारा **शिकदार** करता था। अपराधों का पता लगाने की प्रमुख जिम्मेदारी **मुकद्दम** पर होती थी। जिस गांव में अपराध होता था, उसका **मुकद्दम** अगर अपराधी को पकड़ने में सफल नहीं होता था तो स्वयं दंड का पात्र हो सकता था।

14.3 केन्द्रीय प्रशासन का विकास

मुगल साम्राज्य की प्रकृति अखिल भारतीय थी। बाबर और हुमायूं अपने छोटे से शासन काल में सैन्य मामलों में उलझे रहने के कारण प्रशासन को व्यवस्थित करने की ओर ध्यान न दे सके।

अकबर के काल में प्रशासनिक व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उसके शासनकाल के अंत तक समुचित और व्यापक विभाग स्थापित हो गये, और उनके शीर्ष अधिकारियों का कार्य भी नियत कर दिया गया। प्रशासनिक अधिकारियों के सार्वजनिक और निजी जीवन से संबंधित आचार संहिता भी स्थापित कर दी गयी ताकि वे साम्राज्य के मजबूत स्तंभों के रूप में काम कर सकें।

14.3.1 सम्राट

प्राचीन भारतीय परंपराओं में हमेशा शक्तिशाली राजा की बात की गयी है। मुसलमान न्यायविदों और लेखकों का भी यही मानना था। अतः भारतीय जन समुदाय में राजतंत्र की दैवीय उत्पत्ति के सिद्धांत को आसानी से स्थापित किया जा सकता था। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मुगलों ने पूरी तड़क-भड़क के साथ 'झरोखा दर्शन' को प्रचारित किया, जिसमें सम्राट एक खास समय पर आम जनता को दर्शन देता था। एक किंवदंती थी कि महामहिम् सम्राट के दर्शन मात्र से ही उनकी इच्छाएं पूरी हो जाएंगी।

शासक की ऐसी लोकप्रिय अवधारणा को देखते हुए यह स्वाभाविक था कि मुगल प्रशासन के सभी अधिकारियों की स्थिति और शक्ति सम्राट पर निर्भर होती थी। शासक की व्यक्तिगत पसंद और विचार पर ही उनकी नियुक्ति, पदोन्नति,,अवनति और बर्खास्तगी निर्भर करती थी।

14.3.2 वकील और वजीर

कुछ उद्धरणों के अनुसार **वजारत** की संस्था (इसे **वकालत** भी कहा जाता है, दोनों शब्दों का पर्याय के रूप में इस्तेमाल होता था) का अस्तित्व अब्बासी खलीफाओं के समय से माना जाता है। दिल्ली सल्तनत में **वजीर** के पास नागरिक और सैनिक दोनों शक्तियां थीं। लेकिन बलवन के समय में उसकी शक्ति कम कर दी गयी और सुल्तान ने सैन्य अधिकार **दीवान-ए अर्ज** को सौंप दिये। अफगानों के काल में इस पद को स्थगित कर दिया गया।

मुगलों के आरंभिक काल में **वजीर** की स्थिति पुनः स्थापित हुई। बाबर के **वजीर** निजामुद्दीन मौहम्मद खलीफा के पास नागरिक के साथ-साथ सैनिक अधिकार भी थे। हुमायूं के **वजीर** हिंदू बेग के पास भी वस्तुतः काफी अधिकार थे।

बैरम खां के संरक्षण के काल (1556-60 ई.) में **वकील-वजीर** का पद अपने उत्कर्ष पर पहुंच गया। बैरम खां ने इस पद पर रहते हुए असीम अधिकार प्राप्त किए। अपने शासन काल के आठवें वर्ष (1564-65 ई.) में अकबर ने **वकील** से वित्तीय अधिकार ले लिए और इन्हें **दीवान-ए कुल** (वित्त मंत्री) नामक नये पदाधिकारी को सौंप दिया। वित्तीय अधिकार छीन लिए जाने के कारण **वकील** की शक्ति को गहरा धक्का पहुँचा। **वकील** की शक्ति में कमी आने के बावजूद मुगल अधिकारी तंत्र के पदानुक्रम में उसका स्थान सर्वोच्च रहा।

14.3.3 दीवाने कुल

हमने अभी पढ़ा कि कैसे अकबर ने **दीवान** का पद पुनर्स्थापित किया। मुख्य **दीवान** **(दीवाने कुल)** पर राजस्व और वित्त का भार सौंपा गया। राजकीय कोष का निरीक्षण और लेखा संबंधी जांच करना उसका प्राथमिक कार्य था। वह प्रत्येक विभाग में होने वाले सभी लेन-देन और भुगतानों का व्यक्तिगत तौर पर निरीक्षण करता था। वह प्रांतीय **दीवानों** से प्रत्यक्ष संपर्क रखता था और वे उसकी निगरानी में कार्य करते थे। राजस्व संबंधी सभी सरकारी कागजातों पर उसकी मुहर तथा हस्ताक्षरों का होना अनिवार्य था। साम्राज्य का राजस्व संबंधी (वसूली और व्यय संबंधी) समस्त प्रशासन उसके जिम्मे था। उसकी मुहर के बिना नियुक्ति या पदोन्नति संबंधी कोई नया आदेश जारी नहीं किया जा सकता था। **दीवान** की शक्ति पर नियंत्रण रखने के लिए मुगल सम्राट ने **दीवान** को राज्य की वित्तीय स्थिति का ब्यौरा प्रतिदिन प्रस्तुत करने का आदेश दिया।

साम्राज्य की विभिन्न जरुरतों को ध्यान में रखकर केन्द्रीय राजस्व मंत्रालय को कई विभागों में विभक्त कर दिया गया। उदाहरणस्वरूप, **दीवाने खालिसा, दीवाने तन** (नगद वेतन के लिए), **दीवाने जागीर, दीवाने बयुतात** (महल के मामले), आदि।

उपरोक्त प्रत्येक विभाग पुनः कई भागों में विभाजित थे। प्रत्येक विभाग में **सचिव, निरीक्षक** और **क्लर्क** होते थे। **मुस्तौफी** लेखा परीक्षक होता था और मुख्य लेखा अधिकारी को **मुशरिफ** कहते थे। **खजानादार** राजकीय कोष की देखभाल करता था।

14.3.4 मीर बख्शी

दिल्ली सल्तनत के **मीर अर्ज** का नाम बदलकर मुगलकाल में **मीर बख्शी** हो गया। **मनसबदारों** की नियुक्ति और वेतन संबंधी कागजात उसी के द्वारा अनुसंशित और अग्रसारित किए जाते थे। वह व्यक्तिगत तौर पर घोड़ों की निशानदेही **(दाग)** का निरीक्षण करता था और सैनिकों की उपस्थिति **(चेहरा)** की जांच करता था। निरीक्षण के आधार पर ही वेतन का निर्धारण किया जाता था। इसके बाद ही **दीवान** अपने दूसरे कागजात में इसे दर्ज करता था और फिर इसे सम्राट के सामने प्रस्तुत किया जाता था। **मीर बख्शी** सम्राट के समक्ष सैन्य विभाग संबंधी सभी मामले रखता था। **मीर बख्शी** नौकरी पाने के प्रत्याशियों को सम्राट के समक्ष प्रस्तुत करता था। वह प्रांतीय **बख्शियों** और **वकाया नवीसों** से सीधा संपर्क रखता था। वह यात्रा, सैर-सपाटे, शिकार और युद्ध क्षेत्र आदि में सम्राट के साथ रहता था। दरबार में **मनसबदारों** के ओहदों के अनुसार उनका स्थान निर्धारित करना भी उसी का काम था। दरबार की उसकी इस जिम्मेदारी के कारण उसका सम्मान और प्रभाव काफी बढ़ गया था।

केन्द्रीय स्तर पर **मीर बख्शी** की सहायता के लिए अनेक **बख्शी थे**। प्रथम तीन को पहला दूसरा और तीसरा **बख्शी** कहा जाता था। जबकि **अहदियों** (सम्राट के विशेष सैनिक) के लिए अलग **बख्शी** और महल के कर्मचारियों के लिए अलग **बख्शी (बख्शी-ए शागिर्द पेशा)** नियुक्त था।

14.3.5 मीर सामां या खान-ए सामां

मीर सामां राजकीय **कारखानों** का अधिकारी होता था। उसे **खान-ए सामां** के नाम से भी जाना जाता था। राजकीय महल के सामानों की खरीद और उनके भंडारण की जिम्मेदारी भी उसी की थी और वह इन मामलों का मुख्य कार्यकारी अधिकारी था। इसके अतिरिक्त युद्ध के अस्त्र से लेकर विलास की वस्तुओं तक के उत्पादन का निरीक्षण करना भी उसका उत्तरदायित्व था। वह सीधे सम्राट के अधीन था परन्तु धनराशि आवंटित करवाने और लेखा के परीक्षण के लिए उसे **दीवान** से संपर्क करना पड़ता था।

मीर सामान के अधीन कई अधिकारी कार्य करते थे, इसमें **दीवाने बयुतात** और **तहवीलदार** (कोषाधिकारी) प्रमुख थे।

14.3.6 सद्र-उस सुदूर

सद्र-उस सुदूर धार्मिक मामलों से संबंधित विभाग अध्यक्ष था। उसका मुख्य कार्य **शरियत** के कानून का संरक्षण था। नगद दान **(वजीफा)** और भूमि अनुदान **(सुयुर्गाल, इनाम, मदद-ए माश)** का वितरण करना भी उसके जिम्मे था।

आरंभ में न्यायिक विभाग के अध्यक्ष के रूप में वह **काजियों** और **मुफ्तियों** की नियुक्ति का पर्यवेक्षण किया करता था। शाहजहां के शासनकाल से पहले **काजी** और **सद्र-उस सुदूर** का पद एक में मिला हुआ था और एक ही व्यक्ति दोनों विभागों का प्रभारी होता था। परन्तु औरंगजेब के शासनकाल में मुख्य **काजी (काजी-उल कुज्जात)** और **सद्र-उस सुदूर** का पद अलग कर दिया गया। इससे **सद्र** की शक्ति में भारी कमी आई। अब वह **सद्र** के रूप में **भत्तों** की निगरानी और दान तथा अनुदानों की देखभाल करता था। वह यह भी देखता था कि अनुदान सही व्यक्ति को दिए गए हैं और उनका उपयोग सही तरीके से हो रहा है या नहीं। वह अनुदान के लिए प्राप्त आवेदनों (नये और नवीनीकरण के लिए प्राप्त) की जांच करता था और स्वीकृति के लिए सम्राट के सामने प्रस्तुत करता था। दान-पुण्य को वितरित कराने का कार्य भी उसके माध्यम से होता था।

काजी-उल कुज्जात

मुख्य **काजी** को **काजी-उल कुज्जात** के नाम से जाना जाता था। वह न्यायिक विभाग का प्रमुख होता था (हमने पहले ही बता दिया है कि औरंगजेब के शासनकाल के पहले **सद्र-उस सुदूर** इस कार्य को करता था)। दीवानी और फौजदारी दोनों मामलों में **शरियत** को लागू करना उसकी प्रमुख जिम्मेदारी थी।

मुख्य **काजी** होने के नाते **सूबा**, **सरकार**, **परगना** और शहरों के स्तर पर **काजियों** की नियुक्ति का कार्य उसके जिम्मे था। सेना के लिए भी एक अलग **काजी** होता था।

काजी-उल कुज्जात के अतिरिक्त **मीर अदूल** दूसरा महत्वपूर्ण न्यायिक पदाधिकारी था। अबुल फजल जोर देकर कहता है कि **काजी** के साथ-साथ **मीर अदूल** का होना जरूरी था, क्योंकि **काजी** फैसला सुनाता था और **मीर अदूल** इन फैसलों को लागू करता है।

मुहतसिब (जन नैतिकता का निरीक्षक) का मुख्य कार्य आम जनता के बीच नैतिकता के नियमों का पालन कराना था। उसका कार्य शराब पीने, भांग खाने और अन्य नशीली वस्तुओं के उपयोग, जुआ आदि को रोकना और नियंत्रित करना था। इसके अतिरिक्त वह माप-तौल के परीक्षण, मूल्य नियंत्रण आदि की भी देख-रेख करता था।

बोध प्रश्न 1

1. **शिक** से क्या तात्पर्य है? इसके प्रमुख अधिकारियों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2. मुगलों के अधीन **वकील** की स्थिति पर विचार-विमर्श कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

3. निम्नलिखित का मिलान कीजिए:

(i)	**तहवीलदार**	क.	खजांची
(ii)	**मुहतसिब**	ख.	राजस्व विभाग का प्रभारी
(iii)	**मीर अदल**	ग.	कारीगरों को कच्चा माल उपलब्ध करता था
(iv)	**फोतेदार**	घ.	जन नैतिकता का निरीक्षक न्यायलय के आदेश को कार्यरूप
(v)	**दीवान-ए कुल**	ड.	देने वाला

14.4 प्रांतीय प्रशासन

1580 में अकबर ने अपने साम्राज्य को बारह **सूबों** (प्रांतों) में विभक्त किया। बाद में तीन **सूबे** और बनाये। प्रत्येक **सूबा** कई **सरकारों** में विभक्त किया गया और उन्हें **परगने** और **महल** में पुनः विभक्त किया गया। शाहजहां के शासनकाल में **चकला** नाम से एक अन्य प्रशासनिक इकाई सामने आयी। यह कई **परगनों** को मिलाकर बनता था।

14.4.1 प्रांतीय गर्वनर

सूबे के गर्वनर (**सूबेदार**) की नियुक्ति खुद सम्राट किया करता था। आमतौर पर **सूबेदार** का कार्यकाल तीन वर्षों का होता था। जनता और सेना के कल्याण की देखरेख का कार्य

सूबेदार का एक महत्वपूर्ण दायित्व था। **सूबे** की आम कानून व्यवस्था की देखरेख करना भी उसके जिम्मे था। कृषि, व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहित करने वाला **सूबेदार** सफल माना जाता था। उससे यह उम्मीद की जाती थी कि वह **सरायों, कुंओं, जलाशयों** आदि के निर्माण और बाग लगाने जैसे जनकल्याण कार्य करे ताकि राज्य के राजस्व में वृद्धि हो सके।

14.4.2 दीवान

प्रांतीय दीवान की नियुक्ति सम्राट करता था। वह एक स्वतंत्र अधिकारी था और सीधे केन्द्र के प्रति जवाबदेह था। वह **सूबे** के राजस्व विभाग का प्रमुख था।

प्रांतीय **दीवान सूबे** में की गयी राजस्व वसूली का निरीक्षण करता था। **सूबे** के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन आदि का पूरा हिसाब-किताब और अन्य व्यय संबंधी विवरण भी रखता था।

अपने **सूबों** में कृषि-क्षेत्र में बढ़ोत्तरी के लिए प्रयास करना **दीवान** का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। आवश्यकता पड़ने पर उसका कार्यालय कृषकों को अग्रिम कर्ज **(तकावी)** दिया करता था। **दीवान** के पास एक **रोजनामचा** (प्रतिदिन की बही पुस्तिका) होता था जिसमें राजस्व अधिका**रियों और जमींदारों** द्वारा राजकीय खजाने में जमा की गयी रकम दर्ज की जाती थी। उसके अधीन कई क्लर्क कार्य करते थे। इस प्रकार **दीवान** को **सूबेदार** से अलग करके और **दीवान** के हाथों में वित्तीय मामले को देकर मुगल शासक **सूबेदारों** की शक्ति पर अंकुश लगाने में सक्षम हुए।

14.4.3 बख्शी

सम्राट द्वारा **मीर बख्शी** की अनुशंसा पर **बख्शी** की नियुक्ति की जाती थी। वह केन्द्र में कार्य कर रहे **मीर बख्शी** के समान प्रांतों में सेना की देखरेख करता था। वह **सूबे** में **मनसबदारों** द्वारा रखे गये घोड़ों और सैनिकों की जांच और निरीक्षण करता था। वह **मनसबदारों** और सैनिकों का वेतन-पत्र जारी करता था। मृत **मनसबदारों** की सूची तैयार करना भी उसका काम था। परन्तु **परगना** का **वकाया नवीस** (सूचनाएं भेजने वाला) सीधे प्रांतीय **दीवान** तक सूचना पहुंचा देता था। अक्सर उसका पद **वकाया निगार** के साथ मिला दिया जाता था। इस रूप में प्रांत की घटनाओं की सूचना केंद्र तक पहुंचाने की जिम्मेदारी भी उसी की हो जाती थी। अपने कार्य को सुचारू रूप से करने के लिए वह अपने प्रतिनिधियों को **परगने** और अन्य महत्वपूर्ण कार्यालयों में नियुक्त करता था।

14.4.4 दरोगा-ए डाक और गुप्तचर सेवा

एक विशाल साम्राज्य को शासित करने के लिए संचार सेवा का विकास आवश्यक होता है। यह कार्य-भार एक अलग विभाग को सौंपा गया था। साम्राज्य के दर-दराज इलाकों में निर्देश भेजने के लिए राजकीय डाक सेवा स्थापित की गयी थी। इसी के माध्यम से सूचनाएं भी प्राप्त होती थी। इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक **सूबा** मुख्यालय में **दारोगा डाक** की नियुक्ति की गयी। पत्रों को पहुंचाने के लिए तेज गति के धावकों **(मेवरा)** और विशेष घुड़सवारों की व्यवस्था की जाती थी। यह इन पत्रों को विभिन्न स्थानों तक पहुंचाने का कार्य करते थे। इस कार्य के लिए पूरे साम्राज्य में **डाक चौकियों** की स्थापना की गयी, जहां धावक रहा करते हैं, जो एक चौकी से दूसरी चौकी तक डाक ले जाते थे। तीव्र संचार के लिए घोड़ों और नौकाओं का भी उपयोग किया जाता था।

सम्राट तक सीधी सूचना पहुंचाने के लिए प्रांतीय स्तरों पर **वकाया नवीस** और **वकाया निगारों** की नियुक्ति की जाती थी। इसके अलावा सम्राट तक गुप्त सूचनाएं पहुंचाने के लिए **सवाने निगार** की नियुक्ति होती थी। इन गुप्तचरों के कई दस्तावेज उपलब्ध हैं। ये दस्तावेज इस काल के इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

इस प्रकार मुगलों ने प्रत्येक विभाग और संस्था को एक दूसरे से पृथक और स्वतंत्र रखकर अपने प्रांतीय पदाधिकारों पर नियंत्रण रखने में सफलता पाई। इसके अतिरिक्त सम्राट द्वारा प्रत्येक **सूबे** में बार-बार जाने, लगभग तीन साल की अवधि में पदाधिकारियों के स्थानांतरण, आदि से मुगल शासक पदाधिकारियों पर नियंत्रण रख सके। परन्तु विद्रोह की संभावना बराबर बनी रहती थी, अतः बराबर चौकसी के लिए संगठित गुप्तचर सेवा स्थापित की गई।

14.5 स्थानीय प्रशासन

इस भाग में हम **सरकार, परगना** और **मौजा** (गांव) स्तर के प्रशासन की कार्य-पद्धति की जानकारी प्राप्त करेंगे।

14.5.1 सरकार

सरकार स्तर पर **फौजदार** और **अमलगुजार** दो प्रमुख अधिकारी थे।

फौजदार

वह **सरकार** का कार्यकारी प्रधान होता था। परन्तु उसका प्रभाव क्षेत्र जरा जटिल लगता है। उसे केवल **सरकार** स्तर पर ही नियुक्त नहीं किया जाता था बल्कि कभी-कभी एक **सरकार** के भीतर कई **फौजदार** होते थे। कभी-कभी दो **सरकारों में** एक ही **फौजदार** की नियुक्ति होती थी। इसके साथ-साथ **चकलों में** भी विभिन्न **फौजदारों** की नियुक्ति का हवाला मिलता है। ऐसा लगता है कि उसका मुख्य कार्य विद्रोहों का दमन और कानून व्यवस्था की देखरेख करना था। क्षेत्र की जरूरत के अनुसार उसके कार्य-क्षेत्र का निर्धारण होता था।

उसका मुख्य कार्य अपने कार्य-क्षेत्र में रह रहे लोगों की जान और माल की सुरक्षा करना था। उसे अपने क्षेत्र में आने-जाने वाले व्यापारियों को सुरक्षा भी प्रदान करनी पड़ती थी। क्षेत्र के मुख्य कार्यकारी की हैसियत से **फौजदार** को विद्रोही **जमींदारों** पर भी नजर रखनी पड़ती थी। कुछ विशेष परिस्थितियों में उसे राजस्व वसूली में **अमलगुजार** की भी सहायता करनी पड़ती थी।

अमलगुजार

आमिल या **अमलगुजार** सर्वप्रमुख राजस्व समाहर्ता था। उसका मुख्य कार्य अपने मातहत पदाधिकारियों के माध्यम से राजस्व वसूली का निर्धारण और निरीक्षण करना था। एक अच्छे **आमिल** से यह आशा की जाती थी कि वह अपने क्षेत्र में कृषि का विस्तार करें और किसानों को बिना जोर-जबरदस्ती के राजस्व देने के लिए प्रेरित करे। सभी प्रकार के लेखा की देखरेख भी उसके जिम्मे थी। वह प्रतिदिन की वसूली और व्यय का ब्यौरा प्रांतीय **दीवान** को भेजता था।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

14.5.2 परगना प्रशासन

सरकार के नीचे की प्रशासनिक इकाई **परगना** थी। **परगना** का कार्यकारी अधिकारी **शिकदार** था और राजस्व वसूली में **आमिल** की सहायता करता था। **परगना** स्तर पर **आमिल** राजस्व की देखरेख करता था। उसकी जिम्मेदारी **सरकार** स्तर के **अमलगुजार** के समकक्ष थी। अपने क्षेत्र से संबंधित भूमि का लेखा-जोखा **कानूनगो** अपने पास रखता था। वह **परगना** में होने वाले विभिन्न फसलों का भी ब्यौरा रखता था।

गांव प्रशासन सबसे निचली इकाई था। **मुकद्दम** गांव का मुखिया था जबकि **पटवारी** ग्राम स्तर पर राजस्व का लेखाजोखा रखता था। मुगलों के शासनकाल में ग्रामीण प्रशासन का स्वरूप शेरशाह के शासन के समान ही रहा।

14.5.3 थानेदार

थाना एक ऐसी जगह थी जहां कानून और व्यवस्था की देखरेख के लिए सेना रहती थी। उन्हें सेना के लिए खान-पान की वस्तुओं का भी इंतजाम करना पड़ता था। ये **थाने** मुख्य रूप से अशांत इलाकों और शहर के आसपास स्थापित किए गए थे। इसके प्रमुख को **थानेदार** कहते थे। उसे **सूबेदार** और **दीवान** की अनुशंसा पर नियुक्त किया जाता था। वह आमतौर पर उस क्षेत्र के **फौजदार** के अधीन कार्य करता था।

बोध प्रश्न 2

1. मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के क्षेत्रीय उपविभाजन का विवरण दीजिए।

....

....

....

2. मुगल **फौजदार** की भूमिका और कार्यों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

3. निम्नलिखित में से प्रत्येक पर दो पंक्तियां लिखिए:

आमिल ....

....

बख्शी ....

....

वकाया नवीस ....

....

14.6 नगर, किला और बन्दरगाह प्रशासन

नगरों, **किलों** और बंदरगाहों की देखभाल करने के लिए मुगल शासनकाल में अलग से प्रशासनिक व्यवस्था थी।

14.6.1 कोतवाल

शहरी केंद्रों के लिए सम्राट **कोतवाल** की नियुक्ति करता था जिसका मुख्य कार्य शहर में रहने वाले लोगों के जान और माल की रक्षा करना था। उसकी तुलना आज के शहरों और नगरों के पुलिस अधिकारियों से की जा सकती है। **कोतवाल** शहर के बाहर जाने और अंदर आने वाले लोगों का ब्यौरा भी रखता था। बाहरी व्यक्तियों को शहर के अंदर आने और बाहर जाने के लिए उससे अनुमति लेनी पड़ती थी। **कोतवाल** को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता था कि उसके इलाके में अवैध शराब न बन रही हो। वह व्यापारियों और दुकानदारों द्वारा प्रयुक्त माप और तौल के निरीक्षक के रुप में भी कार्य करता था।

14.6.2 किलेदार

देश के विभिन्न क्षेत्रों में मुगल साम्राज्य के पास बड़ी संख्या में **किले** थे। इनमें से कई सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों में बने हुए थे। प्रत्येक **किला** एक छोटा शहर होता था, जिसमें सेना रहती थी। प्रत्येक **किले** का एक प्रधान अधिकारी होता था, जिसे **किलेदार** कहा जाता था। **किलेदार** के रूप में नियुक्त व्यक्तियों पर सरसरी तौर पर निगाह डालने से यह स्पष्ट होता है कि आमतौर पर बड़े ओहदे वाले **मनसबदारों** को ही यह पद दिया जाता था। वह **किले** के आम प्रशासन और **किलेदार** को दी गयी **जागीर** में पड़ने वाले क्षेत्र का प्रभारी होता था। कभी-कभी **किलेदारों** को उस क्षेत्र के **फौजदार** की भूमिका भी निभानी पड़ती थी।

14.6.3 बंदरगाह प्रशासन

मुगल शासक बंदरगाहों के आर्थिक महत्व को समझते थे क्योंकि ये गहन वाणिज्यिक गतिविधियों के केंद्र थे। बंदरगाह प्रशासन प्रांतीय प्राधिकार से स्वतंत्र होता था। बंदरगाह के गर्वनरों को **मुतसद्दी** कहते थे। इनकी नियुक्ति सीधे सम्राट करता था। कभी-कभी **मुतसद्दी** के पद की नीलामी होती थी और सबसे अधिक बोली लगाने वाले को यह पद दिया जाता था। **मुतसद्दी** व्यापारियों से कर वसूल करता था और सीमा शुल्क कार्यालय की देखरेख करता था। वह बंदरगाह की टकसाल का भी निरीक्षण करता था। **शाहबंदर** उसका मातहत था जो मुख्य रुप से सीमा शुल्क कार्यालय की देख-रेख करता था।

14.7 मुगल प्रशासन की प्रकृति

कुछ इतिहासकारों (इरफान हबीब, अथर अली आदि) का मानना है कि मुगल प्रशासनिक ढांचा अति केन्द्रीकृत था। यह केन्द्रीकरण भू-राजस्व व्यवस्था की निपुण कार्य-पद्धति **मनसब** और **जागीर** व्यवस्था तथा समान मुद्रा प्रचलन, आदि के रूप में परिलक्षित होता है। स्टेफन पी. ब्लेक और जे.एफ. रिचर्ड्स यह मानते हैं कि मुगल शासन में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति थी, परन्तु उनका विचार है कि मुगल साम्राज्य 'कुटुंबीय नौकरशाही' थी। उनके अनुसार सब कुछ शाही घराने और विशाल नौकरशाही के आसपास केंद्रित था। स्ट्रॉसैंड के अनुसार केन्द्रीकृत होने के बावजूद मुगल प्रशासनिक ढांचा अपने सीमावर्ती क्षेत्रों में कम केंद्रीकृत था। चेतन सिंह भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि 17वीं शताब्दी तक में भी मुगल साम्राज्य बहुत केंद्रीकृत नहीं था। उनके अनुसार **जागीरदारी** व्यवस्था की कुशल कार्यपद्धति के माध्यम से केंद्रीकृत ढांचे को बनाये रखना बहुत कारगर साबित नहीं हुआ। उनके अनुसार **जागीरों** के स्थानांतरण उतने प्रभावी नहीं थे, जितने परिलक्षित होते हैं बल्कि सीमांत प्रदेशों के प्रभावी तत्वों को केंद्र की नीतियों को प्रभावित करने में सफलता मिल जाती थी।

मुगल साम्राज्य व्यवहार में किस सीमा तक केंद्रीकृत था, यह एक विवाद का विषय है। सैद्धांतिक रूप से मुगल प्रशासनिक ढांचा अति केंद्रीकृत अधिकारीय तंत्र था। सम्राट सभी शक्तियों का स्रोत था और अधिकारी तंत्र **बंदा-ए दरगाह** (दरबार के दास) से ज्यादा कुछ नहीं था। केन्द्रीय विभागों के प्रमुखों के पास अपार शक्ति होने के बावजूद वे न तो एक दूसरे के कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप और अनाधिकार प्रवेश कर सकते थे और न ही निरंकुश शक्ति ग्रहण कर सकते थे। निरीक्षण और संतुलन के जरिए मुगल शासक किसी भी मंत्री या पदाधिकारी को असीमित शक्ति प्राप्त करने का अवसर नहीं देते थे।

बोध प्रश्न 3

1. सही/गलत कथन का पता लगाइए।

   i) **परगना** स्तर पर **कोतवाल** मुख्य पुलिस अधिकारी था।
   ii) **मुतसद्दी** का पद कभी-कभी नीलाम भी किया जाता था।
   iii) मुगलों के अधीन बंदरगाह प्रशासन की अलग इकाई थी।
   iv) टकसाल **शाहबंदर** के अधीन थी।

2. निम्नलिखित अधिकारियों के कार्यों की व्याख्या कीजिए।

   कोतवाल ....

   ....

   मुतसद्दी ....

   ....

   किलादार ....

   ....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

14.8 सारांश

मुगलों ने एक 'अतिकेन्द्रीकृत नौकरशाही' व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की जो "प्रत्यक्ष नियंत्रण पर आधारित थी। सम्राट में सभी शक्तियां निहित थी। अपनी सहायता के लिए उसने केंद्रीय मंत्रियों का एक विशाल तंत्र निर्मित किया जिन्हें सम्राट स्वयं नियुक्त करता था। इसी प्रकार उन्हें नियंत्रण में रखने के लिए उसने निरीक्षण और संतुलन का सिद्धांत अपनाया। प्रभावी प्रशासन के लिए साम्राज्य को **सूबों** (प्रांतों), **सरकारों**, **परगनों** और **गांवों** में विभक्त किया गया था। केन्द्र की भांति ही प्रांतीय प्रशासन की व्यवस्था की जाती थी, जिसके लिए अलग से अधिकारियों को नियुक्त किया जाता था। यहां भी किसी अधिकारी को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त नहीं थे। **सूबेदार** और **दीवान** दोनों स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे और वे केवल केन्द्र के प्रति जिम्मेदार थे। नगरों और बंदरगाह शहरों का

अलग प्रशासन-तंत्र था। नगरों में **कोतवाल** और बंदरगाह शहरों में **मुतसद्दी** आमतौर पर कानून और व्यवस्था की देख-रेख करते थे। मुगल प्रशासन में **किलों** का बहुत महत्व था जहां **किलेदारों** को नियुक्ति की जाती थी। स्थानीय स्तर पर **परगना** सर्वप्रमुख प्रशासनिक इकाई था जबकि **गांव** प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी।

14.9 शब्दावली

अमीन : राजस्व निर्धारणकर्त्ता

अफगान अंतराल : 1540 से 1555 का वह काल जब मुगल शासकों को हराकर एक बार फिर से अफगान सत्ता की स्थापना हुई। 1555 में पुनः मुगल शासक हुमायूं अफगान (सूर) शासक को हटाकर मुगल सत्ता कायम करने में सफल हुआ।

शरीयत : इस्लामी कानून।

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. भाग 14.2 पढ़िए। क्षेत्रीय विभाजन **शिक** और प्रशासनिक अधिकारी **शिकदार**, **मुसिफ** आदि के कार्यों पर विचार कीजिए।
2. उपभाग 14.3.2 देखिए। उनके कार्यों और शक्तियों का विवरण देते हुए उनके अधिकारों में आई कमी के कारणों का उल्लेख कीजिए।
3. (i) ग (ii) घ (iii) ङ (iv) क (v) ख

बोध प्रश्न 2

1. पढ़िए उपभाग 14.4.1 केवल क्षेत्रीय उपविभाजनों प्रांत, **सरकार**, **परगने** आदि की चर्चा कीजिए।
2. पढ़िए उपभाग 14.5.1 **फौजदार** के पद, उसके कार्य क्षेत्र और विभिन्न कार्यों का उल्लेख कीजिए।
3. पढ़िए उपभाग 14.4.3, 14.4.4, 14.5.1

बोध प्रश्न 3

1. (i) × (ii) √ (iii) √ (iv) ×
2. देखिए उपभाग 14.6.1 14.6.2 और 14.6.3

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 15 मुगल प्रशासन: मनसब और जागीर

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 मनसब व्यवस्था
- 15.2.1 दोहरा पद: जात और सवार
- 15.2.2 मनसबदारों की तीन श्रेणियां
- 15.2.3 मनसबदारों की नियुक्ति और पदोन्नति
- 15.2.4 सेना का रख-रखाव और भुगतान
- 15.2.5 अधिग्रहण व्यवस्था

15.3 मनसबदारों का संघटन

15.4 जागीर व्यवस्था
- 15.4.1 आरंभिक चरण
- 15.4.2 जागीर व्यवस्था का संगठन
- 15.4.3 जागीरों के विभिन्न प्रकार
- 15.4.4 जागीरों का प्रबंधन

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम मुगल प्रशासन के दो मुख्य अवयवों **मनसब** और **जागीर** व्यवस्थाओं पर विचार-विमर्श करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- अकबर के अधीन मनसब व्यवस्था की आधारभूत विशेषताओं को जान सकेंगे,
- सत्रहवीं शताब्दी के दौरान मनसबदारी में हुए परिवर्तनों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- **जागीरदारी** की कार्यपद्धति और मुख्य विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे, और
- **जागीर** के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

भारत में मुगलों के अधीन मनसब और जागीर व्यवस्था अचानक सामने नहीं आ गयी, समय के साथ-साथ उनका धीरे-धीरे विकास हुआ। ये संस्थाएं पश्चिम एशिया से ग्रहीत की गयीं और भारत की तत्कालीन आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में उनमें बदलाव लाया गया।

मनसबदार मुगल नौकरशाही का अंगभूत हिस्सा था और जैसा पर्सिवेल स्पेयर का कहना है यह "संभ्रांत के भीतर एक संभ्रांत" के रुप में विकसित हुआ। न्यायालय को छोड़कर सभी सरकारी विभागों में उनकी नियुक्ति हुई। **वजीर, बख्शी, फौजदार, सूबेदार** आदि महत्वपूर्ण पद उन्हें दिए जाते थे। हम लोग जागीर व्यवस्था पर भी विचार-विमर्श करेंगे।

15.2 मनसब व्यवस्था

मनसब शब्द का अर्थ स्थान या पद है और इस प्रकार यह मुगलों की मनसब व्यवस्था में ओहदा या पद को इंगित करता है।

MAADHYAM IAS

बाबर के समय में पदाधिकारियों के लिए मनसबदार पदावली का उपयोग नहीं होता था, इसके स्थान पर एक दूसरी पदावली **वजहदार** का उपयोग होता था। यह **बाबर के बाद** मुगलों के अधीन विकसित मनसब व्यवस्था से कुछ मामलों में अलग था।

अकबर अपने सैनिक और नागरिक अधिकारियों को उनकी योग्यता या राज्य के लिए की गयी सेवाओं के आधार पर मनसब प्रदान किया करता था। अधिकारियों का स्तर निर्धारित करने और अपने सैनिकों को वर्गीकृत करने के लिए वह मोटे तौर पर चंगेज खां के सिद्धांतों से प्रेरित था। चंगेज खां की सेना दशमलव व्यवस्था के आधार पर संगठित थी। सबसे छोटी इकाई में दस घुड़सवार शामिल होते थे, उसके बाद एक सौ, एक हजार और इसी प्रकार संख्या बढ़ती जाती थी। अबुल फजल बताते हैं कि अकबर ने मनसबदारों की 66 श्रेणियां बनाई थीं जिसमें 10 घुड़सवारों से लेकर 10,000 घुड़सवारों तक के नायक शामिल थे। पर अबुल फजल ने केवल 33 श्रेणियों का ही नामोल्लेख किया है।

मनसब तीन चीजों पर संकेत करता था:
i) इससे इसके धारक (मनसबदार) की पदानुक्रम में अवस्थिति निर्धारित होती थी।
ii) इससे धारक का वेतन निश्चित होता था।
iii) इससे धारक द्वारा एक खास संख्या में सेना, घोड़े और हथियार रखे जाने का भी निर्धारण होता था।

15.2.1 दोहरा पद: जात और सवार

आरंभ में मनसबदार का पद व्यक्तिगत वेतन, और उसकी सेना का आकार एक संख्या द्वारा ही घोषित होता था। इस स्थिति में अगर कोई व्यक्ति 500 की मनसब प्राप्त करता था तो उसे 500 सैनिक रखने पड़ते थे और उसे इस सेना के रख-रखाव के लिए भत्ता दिया जाता था। इसके अतिरिक्त अनुसूची के अनुसार उन्हें व्यक्तिगत वेतन प्राप्त होता था और अपने पद के अनुरूप उन्हें कुछ खास जिम्मेदारियां भी निभानी पड़ती थीं। कुछ समय बाद मनसबदार का पद एक की जगह दो संख्याओं **जात** और **सवार** द्वारा घोषित किया जाने लगा। यह शुरुआत संभवत: 1595-96 में हुई। पहली संख्या **(जात)** से मनसबदार का व्यक्तिगत वेतन **(तलब-खास)** और पदानुक्रम में उसकी हैसियत और स्थान निर्धारित होता था। दूसरी संख्या **(सवार)** से मनसबदार द्वारा रखे जाने वाले घोड़ों और घुड़सवारों की संख्या तय होती थी और इस सेना **(ताबीनान)** के रख-रखाव के लिए देय राशि तय की जाती थी।

MAADHYAM IAS

इस दोहरे पद की भूमिका को लेकर कुछ विवाद है। विलियम इरविन का मानना है कि दोहरे पद का अर्थ यह है कि मनसबदारों को अपने व्यक्तिगत वेतन से सेना के दो दलों का रख-रखाव करना पड़ता था। अब्दुल अजीज के विचार आधुनिक विचार से मेल खाते हैं, उनका मानना है कि **जात** वेतन शुद्धत: व्यक्तिगत वेतन था और सेना के रख-रखाव से इसका कोई वास्ता नहीं था। उन्होंने इरविन के सिद्धांत का खंडन करते हुए कहा है कि इसमें केवल एक सैन्य दल का रख-रखाव करना होता था, दो का नहीं। अतहर अली ने स्थिति को पूरी तरह सही परिप्रेक्ष्य में रखा, उनका कहना है कि पहली संख्या **(जात)** से राज्य के पदाधिकारियों के पदानुक्रम में मनसबदारों की अवस्थिति और मनसबदारों का वेतन तय होता था। दूसरे पद **(सवार)** से मनसबदार द्वारा रखे जाने वाले घोडों और घुड़सवारों की संख्या तय होती थी।

15.2.2 मनसबदारों की तीन श्रेणियां

1595-96 में मनसबदारों को तीन समूहों में वर्गीकृत किया गया:

(क) जिनके घुड़सवारों **(सवार)** की संख्या **जात** के बराबर होती थी प्रथम श्रेणी के मनसबदार माने जाते थे।
(ख) जिनके पास **जात** की संख्या के आधे या आधे से अधिक घुड़सवार होते थे। वे द्वितीय श्रेणी के—तथा
(ग) जिनके घुड़सवारों की संख्या उनकी **जात** संख्या के आधे से कम होती थी तीसरी श्रेणी के **मनसबदार** होते थे।

सवार पद **जात** के बराबर या उससे कम होता था। यहां तक कि अगर **सवार** पद बड़ा भी होता था तो पदानुक्रम में मनसबदार की स्थिति पर फर्क नहीं पड़ता था। उदाहरण के लिए, 4000 **जात** और 2000 **सवार** (संक्षेप में 4000/2000) ओहदे का मनसबदार 3000/3000 के मनसबदार से पद में वरिष्ठ होगा, बाद वाले **मनसबदार** के पास

घुड़सवारों की संख्या अधिक है पर इससे पहले वाले मनसबदार के पदानुक्रम पर फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि उसका जात पद बड़ा है।

पर मनसबदार जब कठिन क्षेत्र में विद्रोहियों के बीच काम कर रहा होता था तो कई बार इस नियम का पालन नहीं भी किया जाता था। इन मामलों में राज्य **जात** पद को बिना बदले हुए **सवार** पद बढ़ा देता था। निश्चित रूप से यह एक लचीली व्यवस्था थी और इसमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता था। इस प्रकार आधारभूत ढांचे को बदले बिना इसमें सुधार व परिवर्तन होते रहते थे। सर्शत पद (**मशरूत**) का चलन इसी प्रकार का सुधार था, जिसमें कुछ समय के लिए सवार पद बढ़ा दिया जाता था। यह कार्य संकटकालीन स्थिति में किया जाता था। जिसके तहत राज्य के खर्च पर अधिक घुड़सवारों को भर्ती करने की अनुमति प्रदान की जाती थी।

जहांगीर ने अपने शासनक में **दो-अस्पा सिह-अस्पा** व्यवस्था लागू कर एक नया परिवर्तन किया। जहांगीर के शासन के दसवें वर्ष में यह पद सबसे पहले महाबत खां को प्राप्त हुआ। इसके अनुसार, मनसबदार का आधा या पूरा **सवार** पद **दो-अस्पा सिह-अस्पा** बना दिया गया। उदाहरण के लिए, यदि एक मनसबदार के पास 5000/4000 **सवार** का मनसब हो तो उसे **हुमा दो-अस्पा सिह-अस्पा** (सभी-दो घोड़ों) प्रदान किया जा सकता था। इस मामले में मूल **सवार** पद को नजरअंदाज कर मनसबदार को **दो-अस्पा सिह-अस्पा** या दोगनी संख्या (यहां 4000 + 4000 = 8000) में सैनिक और घोड़े रखने की अनुमति दी जा सकती थी। फिर यदि 4000 जात 4000 सवार का पद हो जिसमें से 2000 **दो-अस्पा सिह-अस्पा** हो, इसका मतलब यह होता था कि मूल 4000 **सवार** पद में से केवल 2000 साधारण या **बरावर्दी** सैनिक होंगे और 2000 **दो-अस्पा सिह-अस्पा** के जरिए इस संख्या का दोगुना अर्थात् 4000 सैनिक प्राप्त होंगे। इस प्रकार कुल घुड़सवारों की संख्या 6000 होगी।

दो-अस्पा सिह-अस्पा व्यवस्था अपनाने के पीछे क्या कारण हो सकते थे? इस मामले में हमारे स्रोत कोई मदद नहीं करते, पर इस संदर्भ में हम कुछ अनुमान लगा सकते हैं। सम्राट बनने के बाद जहांगीर अपने विश्वासपात्र कुलीनों की पदोन्नति करना चाहता था और उन्हें सैनिक दृष्टि से मजबूत करना चाहता था, पर इसमें कुछ व्यावहारिक समस्याएं थीं। 15.2.2 उपभाग में हमने यह पढ़ा था कि आमतौर पर **सवार** पद **जात** पद से बड़ा नहीं हो सकता था। इस स्थिति में, **सवार** पद बढ़ाने के लिए **जात** पद को भी बढ़ाना पड़ता। **जात** पद में बढ़ोत्तरी करने से व्यक्तिगत वेतन के रूप में अतिरिक्त भुगतान करना पड़ता और इससे राजकोष पर बोझ बढ़ता। इसके अलावा पदानुक्रम में कुछ कुलीनों को आगे बढ़ाना पड़ता जिससे अन्य कुलीनों में इर्ष्या का भाव पैदा होता।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

वस्तुतः **दो-अस्पा सिह-अस्पा** ऐसा तरीका था जिसके माध्यम से **जात** पद या मनसब पदानुक्रम को छेड़े बिना अतिरिक्त **सवार** पद प्रदान किया जा सकता था। इसके माध्यम से **जात** पद में बढ़ोत्तरी न करने से राज्य के खर्च में भी बचत होती थी।

15.2.3 मनसबदारों की नियुक्ति और पदोन्नति

आमतौर पर **मीर बख्शी** सम्राट के सामने उन प्रत्याशियों को उपस्थित करता था जिन्हें सम्राट स्वयं नियुक्त करता था। नियुक्ति के लिए आमतौर पर प्रतिष्ठित कुलीनों और प्रांतों के राज्यपालों की अनुशंसाओं को स्वीकार किया जा सकता था। नियुक्ति के लिए बृहत प्रक्रिया अपनायी जाती थी जिसमें **दीवान, बख्शी** और अन्य लोग शामिल होते थे, इसके बाद सम्राट के पास नियुक्ति के लिए नाम भेजा जाता था। नियुक्ति के बाद **वजीर** की मुहर लगा फरमान जारी किया जाता था। पदोन्नति के मामले में भी यही प्रक्रिया अपनायी जाती थी।

मनसब प्रदान करना सम्राट का विशेषाधिकार था। वह किसी भी व्यक्ति को मनसबदार के रूप में नियुक्त कर सकता था। चीन के समान यहां किसी लिखित परीक्षा की व्यवस्था नहीं थी। आमतौर पर कुछ नियमों का पालन किया जाता था। मुगल सम्राटों के शासन कालों में नियुक्त मनसबदारों का सर्वेक्षण करने पर पता चलता है कि अन्य की तुलना में कुछ समूहों को वरीयता दी जाती थी।

पहले से मनसबदार के रूप में कार्य कर रहे व्यक्तियों के पुत्रों और नजदीकी रिश्तेदारों को प्राथमिकता दी जाती थी। इस समूह को **खानजादा** के नाम से जाना जाता था। इसके बाद

दूसरे राज्यों में बड़े पदों पर कार्यरत लोगों को वरीयता दी जाती थी। ऐसे लोगों में उजबेक और सफवी साम्राज्यों और दक्खन राज्यों से आने वाले प्रमुख थे। इसमें ईरानी, तूरानी, इराकी और खुरासानी शामिल थे। मुगल मनसब का आकर्षण इतना जबरदस्त था कि 1636 में बीजापुर के आदिल शाह ने मुगल सम्राट से अनुरोध किया था कि उसके कुलीनों के बीच से मनसबदार न नियुक्त किए जाएं।

नियुक्ति और पदोन्नति में स्वायत्त राज्यों के राजाओं को भी प्राथमिकता दी गयी। इस श्रेणी में लाभ मुख्य रूप से राजपूत राजाओं को मिला। आमतौर पर कार्यकुशलता और वंश के आधार पर पदोन्नति की जाती थी। औरंगजेब के शासनकाल के अंतिम वर्षों में मनूकी ने लिखा है कि "हज़ारी या एक हजार का वेतन पाने के लिए काफी इंतजार और काफी मेहनत करनी पड़ती थी। सम्राट इसे प्रदान करने में काफी मितव्ययिता से काम करता था और यह पद उन्हीं को दिया जाता था जो अपनी सेवा और कार्यकुशलता के बल पर इसे प्राप्त करने की योग्यता रखते थे। अगर किसी को इस पद के समकक्ष वेतन दिया जाता तो वे उसे **उमरा** या **अमीर** की पदवी भी देते, जिसका अर्थ कुलीन होता था"। हालांकि व्यावहारिक तौर पर पदोन्नति में प्रजातीय आधार की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। अटल निष्ठा को भी विशेष महत्व दिया जाता था।

बोध प्रश्न 1

1. **जात** और **सवार** पद को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

....

....

2. मनसबदारों की तीन श्रेणियां क्या थीं?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

15.2.4 सेना का रख-रखाव और भुगतान

मनसबदारों को अपनी सेना का नियमित निरीक्षण और शरीरिक सत्यापन कराना पड़ता था। यह कार्य **मीर बख्शी** का विभाग संपन्न करता था। इसके लिए विशेष कार्य प्रणाली अपनायी जाती थी। इसे **दाग-ओ चेहरा** के नाम से जाना जाता था। जब कोई एक कुलीन अपने घोड़ों को प्रस्तुत करता था तो उन घोड़ों को एक **मुहर** (दाग) द्वारा खास तरीके से चिन्हित कर दिया जाता था ताकि दूसरे कुलीनों के घोड़ों से उन्हे अलग किया जा सके। सैनिकों का शारीरिक ब्यौरा और पहचान चिह्न (चेहरा) भी दर्ज किया जाता था। इस प्रकार एक ही घोड़े या सैनिक को दोबारा निरीक्षण के लिए प्रस्तुत करने की संभावना काफी कम हो जाती थी। इसका सख्ती से पालन होता था। कई ऐसे मामलों की भी जानकारी मिलती है जिसमें निश्चित संख्या में सेना न रखने के कारण पदावनति भी कर दी गयी थी। अब्दुल हमीद लाहौरी ने अपनी पुस्तक **बादशाहनामा** में लिखा है कि शाहजहां के शासनकाल में अगर एक मनसबदार अपनी **जागीर** में ही कार्यभार संभाल रहा होता था तो उसे अपने **सवार** पद की एक तिहाई सेना खुद जुटानी पड़ती थी। **जागीर** से बाहर कार्यरत रहने की स्थिति में उसे एक चौथाई सेना जुटानी पड़ती थी। बल्ख और समरकंद में रहने पर यह अनुपात 1/5 हो जाता था।

जात पद के आधार पर वेतन निश्चित होता था, पर इनके बीच कोई गणितीय या आनुपातिक संबध नहीं था। दूसरे शब्दों में, वेतन एक ही अनुपात में ज्यादा या कम नहीं होता था।

नीचे दी गयी तालिका में अंकबर के शासनकाल में **जात** पद के लिए प्रति महीने वेतन का नमूना प्रस्तुत किया गया है। (कृपया ध्यान रखिए कि अकबर के शासनकाल में 5000 से ऊपर का **जात** पद केवल राजकुमारों को दिया जाता था। अकबर के शासनकाल के अंतिम वर्षों में राजा मान सिंह अकेला कुलीन था जिसे 7000 **जात** का पद प्राप्त था)।

जात पद का वेतन

जात पद	श्रेणी I (रुपये)	श्रेणी II (रुपये)	श्रेणी III (रुपये)
7000	45,000	—	—
5000	30,000	29,000	28,000
4000	22,000	21,800	21,600
3000	17,000	16,800	16,700
2000	12,000	11,900	11,800
1000	8,200	8,100	8,000

सवार पद की संख्या कुछ भी हो प्रत्येक सैनिक के वेतन का कुल योग ही सवार पद का वेतन होता था। सैनिकों को दिया जाने वाला वेतन निश्चित और सभी जगह एक प्रकार का था। अकबर के शासनकाल में कई बातों से वेतन की दर निश्चित होती थी, जैसे प्रति घुड़सवार घोड़ों की संख्या (दाग के लिए प्रस्तुत), घोड़ों की नस्ल आदि। यह दर 25 रुपये से लेकर 15 रुपये प्रतिमाह के बीच निर्धारित की जाती थी।

मासिक वेतन

आमतौर पर मनसबदारों को राजस्व आवंटन (जागीर) के जरिए भुगतान किया जाता था। इसमें सबसे बड़ी समस्या यह थी कि एक वर्ष में **जागीर** की अनुमानित आय (**जमा**) के आधार पर आकलन किया जाता था। यह पाया जाता था कि वास्तविक राजस्व वसूली (**हासिल**) अनुमानित आय से हमेशा कम होती थी। इस स्थिति में मासिक वेतन की पद्धति से मनसबदारों का वेतन तय किया जाता था। उदाहरण के लिए, अगर जागीर की वास्तविक आय जमा की आधी होती थी तो इसे **शशमाहा** (छमाही) कहते थे। अगर आय एक चौथाई होती थी तो इसे **सिमाहा** (तिमाही) माना जाता था। नगद भुगतान में भी मासिक वेतन पद्धति लागू होती थी।

निर्धारित वेतन से कटौती का भी प्रावधान था। सबसे ज्यादा कटौती दक्खनियों से की जाती थी जिनके वेतन का एक चौथाई (चौथाई) हिस्सा काट लिया जाता था। इसके अतिरिक्त सम्राट के मवेशियों के चारे के खर्च के लिए **खुराक दव्वाब** नामक कटौती भी की जाती थी। नकद वेतन प्राप्त करने वाले से एक रुपये में दो **दाम (दोदामी)** काट लिया जाता था। इसके अलावा विभिन्न कारणों से जुर्माना भी वसूला जाता था। वेतन में इस प्रकार की कटौतियों से कुलीनों का वेतन निश्चित रूप से कम हो जाता था।

इकाई 12 में आप पढ़ चुके है कि किस प्रकार साम्राज्य के राजस्व स्रोतों का शासकीय वर्ग के बीच बंटवारा होता था। ऐसा अनुमान है कि सम्राज्य के कुल राज्स्व स्रोत का 80 प्रतिशत 1,571 मनसबदारों द्वारा उपयोग में लाया जाता था। इससे पता चलता है कि मनसबदार कितने शक्तिशाली थे।

15.2.5 अधिग्रहण व्यवस्था

कई समकालीन विवरणों में (खासकर यूरोपीय यात्रियों के) इस प्रथा का जिक्र मिलता है कि कुलीन की मृत्यु के बाद सम्राट उसकी संपदा अधिगृहीत कर लेता था। इसे अधिग्रहण के नाम से जाना जाता था। इसका कारण था कि अक्सर कुलीन राज्य से कर्ज लिया करते थे जिनका उनकी मृत्यु तक भुगतान नहीं हो पाता था। कुलीनों की संपत्ति के अधिग्रहण और राज्य की मांग (**मुतालबा**) में समायोजन तथा बची हुई संपत्ति का उसके उत्तराधिकारियों में बंटवारे का काम **खान-ए सामां** (देखिए इकाई 14) किया करता था। कभी-कभी सम्राट स्वयं, इस्लामी उत्तराधिकार कानून की परवाह न करते हुए संपत्ति का बंटवारा अपनी इच्छानुसार उत्तराधिकारियों के बीच कर देता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश मामलों में सम्राट की इच्छा ही सर्वोपरि होती थी। कभी-कभी राज्य पूरी संपत्ति की जब्ती पर जोर देता था। 1666 में औरंगजेब ने फरमान जारी किया कि उत्तराधिकारीहीन कुलीन की मृत्यु के बाद उसकी सारी संपत्ति राज्य कोष में जमा करवानी होगी। 1691 के फरमान द्वारा इसकी पुष्टि की गयी जिसमें अधिकारियों को उन कुलीनों की संपत्ति जब्त न करने का

MAADHYAM IAS

आदेश दिया गया जिनके उत्तराधिकारी राज्य सेवा में कार्यरत थे क्योंकि उनसे **मुतालबा** के भुगतान के लिए कहा जा सकता था।

15.3 मनसबदारों का संघटन

इकाई 12 में आप शासकीय वर्ग के प्रजातीय संघटन के बारे में पढ़ चुके हैं। यहां हम काफी संक्षेप में उसे पुनः स्मरण करेंगे।

सैद्धांतिक रूप में मनसबदारी का द्वार सबके लिए खुला हुआ था, पर व्यावहारिक तौर पर मुगल सम्राट व्यक्ति के वंश को काफी महत्व देते थे। ऐसा लगता है कि **खानाजादों** (मनसबदारों के सेवारत संबंधी या उत्तराधिकारी) को प्राथमिकता मिलती थी। औरंगजेब के शासनकाल में 1000 और उसके ऊपर वाले 575 मनसबदारों में से 272 (लगभग 47 प्रतिशत) **खानाज़ाद** थे। **खानाज़ादों** के अतिरिक्त **ज़मींदारों** को भी मनसबदार नियुक्त किया जाता था। 1707 में 575 मनसबदारों में 8 प्रतिशत **जमींदार** थे। मुगलों ने मनसबदारी में ईरानी, चगताई, उजबेकों के साथ-साथ दक्खनियों का भी स्वागत किया। कुछ प्रजातीय समूहों की स्थिति काफी मजबूत थी। इनमें तूरानी (मध्य एशियाई), ईरानी, अफगान, भारतीय मुसलमान (**शेखजादे**), राजपूत, मराठा और दक्खनी प्रमुख हैं। इनमें से अंतिम दो समूहों की नियुक्ति औरंगजेब के शासनकाल में बड़े पैमाने पर हुई थी। ये नियुक्तियां फौजी कारणों से प्रेरित थीं।

बोध प्रश्न 2

1. मासिक वेतन का क्या मतलब था?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2. दो-अस्पा सिह-अस्पा व्यवस्था क्यों अपनायी गयी?

....

....

....

....

....

3. अधिग्रहण व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

15.4 जागीर व्यवस्था

दिल्ली सल्तनत में प्रदान किए गए राजस्व आवंटन को **इक्ता** और इसके प्राप्तकर्त्ता को **इक्तादार** के नाम से जाना जाता था (देखिए पाठ्यक्रम इ. एच. आई 3 खंड 5 और 6) कृषकों से अधिशेष वसलने और कुलीनों के बीच इसे वितरित करने के लिए यह व्यवस्था

बनाई गयी थी। इसके अंतर्गत प्राप्तकर्त्ता को अपने क्षेत्र के प्रशासन की भी देखरेख करनी पड़ती थी। मुगल सम्राटों ने भी यही व्यवस्था अपनाई। नगद वेतन के स्थान पर ये भू-राजस्व आवंटन प्रदान किये जाते थे। आमतौर पर आवंटित क्षेत्र को **जागीर** और इसके प्राप्तकर्ता को **जागीरदार** कहा जाता था। कभी-कभी **इक्ता/इक्तादार** और **तयुल/तयुलदार** जैसी पदावलियों का भी उपयोग किया जाता था। लेकिन इस पदावली का प्रयोग काफी कम किया जाता था। यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि जागीर व्यवस्था में भूमि का आवंटन नहीं होता था, बल्कि भूमि/क्षेत्र से प्राप्त आय/राजस्व जागीरदारों को दी जाती थी। समयानुसार इस व्यवस्था का विकास हुआ और पूरी तरह स्थापित होने के पहले इसमें कई परिवर्तन किये गये। हालांकि आधारभूत ढांचा अकबर के शासनकाल में विकसित हुआ था। आइए, पहले हम जागीर व्यवस्था के आरंभिक रूप की चर्चा करें।

15.4.1 आरंभिक चरण

अपनी जीत के बाद बाबर ने भूतपूर्व अफगान सरदारों को पुनः स्थापित किया तथा जीते गए क्षेत्र का लगभग एक तिहाई से ज्यादा हिस्सा उन्हें आवंटित किया। इस प्रकार के कार्यभार को **वजह** (**वजह** का अर्थ पुरस्कार होता है) और प्राप्तकर्त्ता को **वजहदार** के रूप में जाना गया। क्षेत्र के कुल राजस्व का एक हिस्सा वजह के रूप में आवंटित किया गया। शेष राजस्व को **खालसा** का हिस्सा माना गया। **जमींदारों** को अपने ही इलाके में पुनस्थापित किया गया पर जीते गये अन्य इलाकों में बाबर ने हाकिमों (राज्यपालों) को नियुक्त किया। हुमायूं के शासनकाल में यह प्रथा कायम रही।

15.4.2 जागीर व्यवस्था का संगठन

अकबर के शासनकाल में सभी क्षेत्रों को मोटेतौर पर **खालसा** और **जागीर** में विभक्त किया गया। पहले का राजस्व राजकीय कोष को जाता था जबकि **जागीरदारों** को उनके पद के अनुसार नकद वेतन के बदले **जागीर** प्रदान की जाती थी। कुछ मनसबदारों को नकद वेतन मिलता था और उन्हें नकदी के रूप में जाना जाता था। कुछ को **जागीर**, और नकद दोनों रूपों में भुगतान किया जाता था। राज्य का अधिकांश क्षेत्र मनसबदारों को उनके पद के अनुसार आवंटित किया जाता था। विभिन्न क्षेत्रों से अनुमानित राजस्व को **जमा** या **जमादामी** कहते थे, क्योंकि इसका **दाम** के रूप में आकलन होता था (एक **दाम**—एक छोटा तांबे का सिक्का, आनुपातिक तौर पर चांदी के एक रुपये का 1/40वां भाग)। **जमा** में भू-राजस्व, अंतर्देशीय पारगमन शुल्क, बंदरगाह सीमा शुल्क और **सायर जिहात** नामक अन्य कर शामिल होते थे। वास्तविक राजस्व वसूली के लिए राजस्व अधिकारी **हासिल** शब्द का इस्तेमाल करते थे। **जमा** और **हासिल** दो शब्दों को आप ठीक तरह से समझ लें क्योंकि इसका बार-बार जिक्र आएगा। राजस्व अधिकारी **पैबाकी** नामक एक अन्य शब्द का भी इस्तेमाल करते थे। यह उन इलाकों के लिए प्रयुक्त किया जाता था जिन्हें आवंटन के लिए सुरक्षित रखा जाता था, जब वह किसी मनसबदार को प्रदान नहीं किये जाते थे उन्हें **पैबाकी** कहा जाता था। अकबर के शासनकाल के 31वें वर्ष में दिल्ली, अवध और इलाहाबाद में **खालसा** का जमा कुल राजस्व का 5 प्रतिशत था। जहांगीर के शासनकाल में कुल क्षेत्र का 9/10 हिस्सा **जागीर** के रूप में आवंटित था और केवल 1/10 **खालसा** के लिए उपलब्ध था। शाहजहां के शासनकाल में यह बढ़कर 1/11 हो गया और उसके शासनकाल के बीसवें वर्ष में यह लगभग 1/7वां हिस्सा था। यही प्रवृत्ति आगे के शासनकाल में भी कायम रही, औरंगजेब के शासनकाल के दसवें वर्ष में **खालसा** का **जमा** (अनुमानित आय) कुल राजस्व का लगभग 1/5वां हिस्सा था। हालांकि औरंगजेब के शासन काल के उत्तरार्द्ध में और **जागीरों** की संख्या में वृद्धि होने से **खालसा** पर दबाव ज्यादा बढ़ गया।

प्रशासनिक कारणों से **जागीरदारों** का एक **जागीर** से दूसरे **जागीर** में स्थानांतरण **जागीर** व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता थी। इन स्थानांतरणों से **जागीरदारों** के स्थानीय स्तर पर अपना प्रभाव बढ़ाने और जड़ें जमाने के प्रयास पर नियंत्रण रखा जा सका। इसके साथ-साथ इस प्रथा से एक घाटा यह हुआ कि अपने इलाके के विकास के लिए **जागीरदार** कोई दीर्घकालीन योजना बनाने में रुचि नहीं रखते थे। कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा राजस्व वसूल करना ही उनका उद्देश्य रह गया।

15.4.3 जागीरों के विभिन्न प्रकार

आमतौर पर चार प्रकार के राजस्व आवंटन किए जाते थे:

क) वेतन के रूप में दी गयी **जागीर** को **जागीर-ए तनखा** के रूप में जाना जाता था।
ख) किसी व्यक्ति को दी गयी सशर्त **जागीर** को **मशरूत जागीर** कहा जाता था।
ग) पद और कार्य से रहित **जागीरों** को **इनाम जागीर** कहा जाता था, और
घ) **जमींदारों** और स्वायत्त शासकों को जब उनके अपने क्षेत्र **जागीर** के रूप में दिए जाते थे तो उनको **वतन जागीर** कहते थे।

जहांगीर के शासनकाल में मुसलमान कुलीनों को वतन जागीर से मिलती-जुलती जागीरें दी गयीं, इन्हें **अल-तमगा** के नाम से जाना जाता था।

तनखा जागीर का हर तीन चार साल पर स्थानांतरण होता था। **वतन जागीर** अनुवांशिक और अस्थानांतरणीय होती थी। कभी-कभी **वतन जागीर** को कुछ समय के लिए **खालसा** में भी परिवर्तित किया जा सकता था। 1679 में औरंगजेब ने जोधपुर के मामले में ऐसा ही किया था। जब किसी **जमींदार** या स्थानीय सरदार को मनसबदार बनाया जाता था तो उसे **वतन जागीर** के अतिरिक्त **तनखा** भी दी जाती थी। यह उस स्थिति में होता था जब उसका वेतन उसकी **वतन जागीर** की आय से कम होता था। महाराजा जसवंत सिंह को मारवाड़ में **वतन जागीर** और हिसार में **जागीर-ए तनखा** प्रदान की गई थी।

15.4.4 जागीरों का प्रबंधन

जागीर को राजकीय नियमों के अनुरूप केवल प्राधिकृत राजस्व (**माल वाजिब**) वसूलने का ही अधिकार था। वह अपने **आमिल (अमलगुजार)**, **फोतेदार** (कोषाध्यक्ष) जैसे पदाधिकारियों (**कारकूनों**) की नियुक्ति करता था, जो उसके लिए काम करते थे।

राजकीय पदाधिकारी **जागीरदारों** पर नजर रखा करते थे। **सूबा** के **दीवान** से यह आशा की जाती थी कि वह **जागीरदारों** के शोषण से किसानों की रक्षा करें। अकबर के शासनकाल के बीसवें वर्ष से प्रत्येक प्रांत में **अमीन** नामक अधिकारी की नियुक्ति की गयी। उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह इस पर नजर रखे कि **जागीरदार** नियमों के अनुरूप राजस्व वसूल करें, संकट की स्थिति में अक्सर **फौजदार** राजस्व वसूल करने में **जागीरदारों** की मदद करते थे। ऐसा लगता है कि औरंगजेब के शासनकाल में बड़े **जागीरदारों** को **फौजदारी** अधिकार भी सौंप दिए गए।

MAADHYAM IAS

बोध प्रश्न 3

1. **जागीर के विभिन्न प्रकारों में से प्रत्येक पर दो पंक्तियां लिखिए।**

....

....

....

....

....

....

2. **जागीरदारों का स्थानांतरण क्यों किया जाता था?**

....

....

....

....

....

15.5 सारांश

मनसबदारी और **जागीरदारी** मुगल साम्राज्य की दो प्रमुख संस्थाएं थीं। नागरिक और सैनिक दोनों तरह के प्रशासन में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। केन्द्रीकृत प्रशासनिक

व्यवस्था के साथ-साथ बड़ी फौज खड़ी करने के लिए यह व्यवस्था विकसित की गयी। और उनकी बड़ी फौज की सहायता से साम्राज्य का विस्तार किया जाता था और कार्यकुशलता से इसे संचालित किया जाता था। मनसब व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:

- मनसबदारों को **जात** और **सवार** का दोहरा पद प्राप्त होता था। **जात** से प्रशासनिक पदानुक्रम में अधिकारी की हैसियत का पता चलता था और इससे उनका व्यक्तिगत वेतन भी निर्धारित होता था। **सवार** उनके द्वारा रखी जाने वाली सेना को घोषित करता था।
- **जात** और **सवार** संख्या के अनुपात के आधार पर मनसबदारों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया था।
- मनसबदारों के वेतन और उनके द्वारा सेना के रख-रखाव के लिए निश्चित नियम निर्धारित किए गए थे। इन नियमों में आवश्यकतानुसार समय-समय पर परिवर्तन होते रहे।

भू-राजस्व व्यवस्था के प्रबंध के लिए सारी भूमि को **जागीर** और **खालसा** में विभक्त कर दिया गया था। **खालसा** से प्राप्त राजस्व राजकीय कोष तथा **जागीर** से प्राप्त राजस्व मनसबदारों को प्राप्त होता था।

मनसबदारों को **जागीरों** के आवंटन द्वारा भुगतान किया जाता था। एक संस्था के रूप में **जागीर** व्यवस्था का उपयोग किसानों से अधिशेष वसूल करने के लिए किया गया। इसके साथ-साथ इस व्यवस्था से कुलीन शासकीय वर्ग के बीच राजस्व स्रोतों का बंटवारा भी किया गया। चार प्रकार की **जागीरों** में **वतन जागीर** इस दृष्टि से काफी प्रभावी सिद्ध हुआ कि इसके माध्यम से भारतीय राजाओं का मुगल शासकीय वर्ग से सम्मिलित किया जा सका।

MAADHYAM IAS

15.6 शब्दावली

बरावर्दी : अकबर के शासनकाल में सेना के रख-रखाव के लिए मनसबदारों को दिए जाने वाले अग्रिम वेतन को बरावर्दी कहते थे। जहांगीर के शासनकाल से सेना के रख-रखाव के लिए कुलीनों को दिए जाने वाले नियमित भुगतान के लिए इसका उपयोग किया जाने लगा।

खानाजाद : कुलीन के पद पर पहले से कार्य कर रहे व्यक्तियों के पुत्र और नजदीकी संबंधी।

खुराक-दव्वाब : मवेशियों के लिए चारा भत्ता।

मशरूत : कुलीनों को दिया जाने वाला सशर्त पद।

तबीनान : कुलीनों द्वारा रखी गयी सेना।

उमरा : **अमीर** अर्थात् कुलीन का बहुवचन।

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. **जात** से मनसबदार के व्यक्तिगत वेतन का द्योतन होता था जबकि **सवार** उनके द्वारा रखी गयी सेना की ओर इशारा करता था, देखिए उपभाग 15.2.1
2. **जात** और **सवार** पद के आधार पर मनसबदारों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया था। देखें उपभाग 15.2.2।

बोध प्रश्न 2

1. मनसबदार की अनुमानित आय और वास्तविक आय (मनसबदार द्वारा वसूला गया राजस्व) के अंतर को पाटने के लिए मासिक वेतन की व्यवस्था की गयी थी। देखें उपभाग 15.2.4।

2. **जात** पद में परिवर्तन किए बिना मनसबदारों के **सवार** पद में वृद्धि करने के लिए यह व्यवस्था की गयी थी। देखिए उपभाग 15.2.4।
3. अधिग्रहण के सिद्धांत के द्वारा मुगल शासक मृत कुलीनों की संपदा जब्त कर लेते थे। विस्तार के लिए देखिए उपभाग 15.2.5 ।

बोध प्रश्न 3

1. उपभाग 15.4.3 देखिए, जहां **जागीरों** के चार प्रकारों पर विचार-विमर्श किया गया है।
2. जागीरदारों के पद और वेतनों को समायोजित करने के लिए इनका स्थानांतरण किया जाता था। इसके अलावा इन्हें इसके जरिए अपने क्षेत्रों में जड़ जमाने से भी इन्हें रोका जाता था।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पी. सरन : मुगलों का प्रांतीय शासन
2. अतहर अली : औरंगज़ेब कालीन मुगल अमीर वर्ग
3. इरफान हबीब : मुगल कालीन भारत की कृषि व्यवस्था
4. घनश्याम दत्त शर्मा : मध्यकालीन भारतीय सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थायें

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 16 मुगल भू-राजस्व व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 भू-राजस्व निर्धारण प्रणाली
16.3 भू-राजस्व मांग का परिमाण
16.4 भुगतान का माध्यम
16.5 भू-राजस्व वसूली
16.6 राजस्व में रियायतें
16.7 भू-राजस्व प्रशासन
16.8 सारांश
16.9 शब्दावली
16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस इकाई में हम मुगल कालीन भू-राजस्व व्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण आयामों पर विचार करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- राजस्व निर्धारण की विधि का उल्लेख कर सकेंगे;
- भू-राजस्व मांग के परिमाण पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- भू-राजस्व वसूल करने के माध्यम का उल्लेख कर सकेंगे;
- भू-राजस्व वसूल करने के विभिन्न तरीकों के बारे में बता सकेंगे;
- संकट की स्थिति में किसानों को दी जाने वाली रियायतों को रेखांकित कर सकेंगे; और
- भू-राजस्व व्यवस्था में संलग्न विभिन्न पदाधिकारियों के अधिकारों और कर्तव्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

मुगलों के अधीन भू-राजस्व व्यवस्था की मूल विशेषता यह थी कि कृषकों से उनका अधिशेष उत्पादन (जीवन यापन के लिए जरूरी मात्रा के अतिरिक्त उत्पादन) भू-राजस्व के रूप में ले लिया जाता था, जो राज्य की आय का प्रधान स्रोत था। मुगलों के बाद ब्रिटिश प्रशासकों ने भू-राजस्व को जमीन के लगान के रूप में ग्रहण किया, क्योंकि उनकी समझ में राजा भूमि का मालिक होता था। मुगल कालीन इतिहास के अध्ययन से यह पता चलता है कि उस काल में यह कर फसल (उत्पादन) पर लगता था और इस प्रकार मुगल व्यवस्था अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई भू-राजस्व प्रणाली से भिन्न थी। अबुल फज़ल **आइन-ए अकबरी** में राज्य द्वारा करारोपण को न्यायोचित ठहराते हुए कहता है कि "यह राज्य द्वारा दिए जाने वाले संरक्षण और न्याय व्यवस्था के बदले लिया जाने वाला संप्रभुता शुल्क है।"

मुगल शासन के दौरान भू-राजस्व के लिए फारसी शब्द **माल** और **माल वाजिब** का उपयोग होता था। **खराज** शब्द का उपयोग नियमित रूप से नहीं होता था।

भू-राजस्व वसूली की प्रक्रिया दो चरणों में सम्पन्न होती थी क) कर निर्धारण (**तशखीस जमा**), और ख) वास्तविक वसूली (**हासिल**)।

राज्य की मांग को निर्धारित करने के लिए कर निर्धारण और मूल्यांकन किया जाता था। इस मांग के आधार पर **खरीफ** और **रबी** फसलों के लिए अलग-अलग वास्तविक वसूली की जाती थी।

16.2 भू-राजस्व निर्धारण प्रणाली

मुगलों के अधीन **खरीफ** और **रबी** फसलों का राजस्व निर्धारण अलग-अलग किया जाता था। मूल्यांकन और निर्धारण प्रक्रिया समाप्त होने पर एक **पट्टा, कौल या कौल करार** जारी किया जाता था जिसमें किसानों द्वारा देय कर राशि या राजस्व मांग की दर का उल्लेख होता था। इसके साथ-साथ जिस पर कर लगाया जाता था उसे **कबूलियत** अर्थात् ''स्वीकृति'' देनी पड़ती थी कि उसे यह निर्धारण मंजूर है और वह कब और कैसे ''भुगतान'' करेगा।

यहां हम आम तौर पर प्रचलित कुछ प्रणालियों का उल्लेख करेंगे :

1) **गल्ला बख्शी अथवा फसल-बंटवारा विधि** : कुछ क्षेत्रों में इसे **भाओली** और **बटाई** भी कहते थे। **आईन-ए अकबरी** में फसल के बंटवारे के लिये तीन तरह की पद्धतियों का उल्लेख मिलता है।

   क) **खलिहान में अनाज को अलग करने के तुरन्त बाद ही राजस्व का बंटवारा** : यह बंटवारा निर्धारित समझौते के आधार पर दोनों पक्षों के समक्ष होता था।

   ख) **खेत बटाई** : फसल के खेत में लगे रहने के वक्त ही खेत में निशान लगा कर खेत को हिस्सों में बांट लिया जाता था।

   ग) **लांग बटाई** : फसल काटकर (उसे अनाज से अलग किए बिना) खलिहान में गट्ठर बनाकर रख दिया जाता था और इसके बाद फसल के इन गट्ठरों का बंटवारा होता था।

MAADHYAM IAS

मलिकजादा कृत **निगारनामा-ए-मुंशी** (17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखित) में फसल बंटवारे को सर्वोत्तम प्रणाली कहा गया है। इस प्रणाली के अन्तर्गत राज्य और किसान दोनों को एक बराबर मौसम की मार झेलनी पड़ती थी। (प्राकृतिक विपदा द्वारा फसल का नुकसान होने की स्थिति में) परन्तु, अबुल फजल के अनुसार यह प्रणाली राज्य को महंगी पड़ती थी क्योंकि उसे बड़ी मात्रा में निगरानी के लिये कर्मचारियों को रखना पड़ता था, जो फसल की निगरानी करते थे ताकि कटाई के पहले कोई गड़बड़ी न कर सके। जब औरंगजेब ने दक्खन में यह प्रणाली लागू की तो केवल फसल की निगरानी की व्यवस्था करने के कारण राजस्व वसूली की लागत दोगुनी हो गई।

2) **कनकूत (दानाबंदी)** : **कनकूत** शब्द **कन** और **कूत** के मिलने से बना है। ''**कन**'' का अर्थ अनाज और ''**कूत**'' का मतलब मूल्यांकन या आंकलन होता है। इसी प्रकार **दाना** का अर्थ अनाज है और **बंदी** का मतलब निर्धारण करना या निश्चित करना होता है। इस प्रणाली में अनाज उत्पादन (उत्पादकता) का आंकलन किया जाता था। **कनकूत** में सर्वप्रथम रस्सी या चलकर, कदमों द्वारा, खेत को नापा जाता था।

   इसके बाद उत्तम, मध्यम और खराब तीनों प्रकार की जमीनों की प्रति बीघा उत्पादकता का आंकलन किया जाता था और तद्नुरूप कुल भूमि पर राजस्व मांग तय की जाती थी।

3) **जब्ती :** यह मुगल कालीन राजस्व निर्धारण की महत्वपूर्ण प्रणाली थी। इसकी शुरूआत शेरशाह के काल से मानी जाती है। अकबर के जमाने में कई बदलावों के बाद इसने अंतिम रूप ग्रहण किया।

शेरशाह ने राज्य की ओर से **पोलज** (वह भूमि जिस पर लगातार बुआई की जाती थी) तथा **परौती** (वह भूमि जिसे यदा-कदा ही खाली छोड़ा जाता था) भूमि के लिए **रे** (प्रति बीघा उपज) निर्धारित किया। **रे** निर्धारण के लिए तीन दरों को विचार में रखा जाता था। यह दरें उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणी की भूमि की उत्पादकता पर आधारित थीं। इन तीन श्रेणी की भूमियों की औसत उत्पादकता का एक तिहाई कर के रूप में निर्धारित किया जाता था। अकबर ने **करोड़ी** नाम से जाना जाने वाला प्रयोग भी लागू किया। इस प्रयोग के अन्तर्गत 1574-1575 ई. में पूरे उत्तर भारत में **करोड़ियों** को नियुक्त किया गया। सम्पूर्ण **जागीर** भूमि को खालिसा भूमि में परिवर्तित कर दिया गया। **करोड़ियों** द्वारा अपने क्षेत्रों की उत्पादकता, वास्तविक उपज और स्थानीय मूल्यों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराई गई। इस जानकारी के आधार पर 1580 ई. में अकबर ने **आइन-ए दहसाला** नामक नयी व्यवस्था शुरू की। इसके लिए विभिन्न फसलों के औसत उत्पादन और पिछले दस साल (अकबर के 15वें से 24वें शासकीय वर्ष) के औसत मूल्य की गणना की गई। औसत उत्पादन के कम से कम एक तिहाई हिस्से पर राज्य का अधिकार निश्चित किया गया। **करोड़ी** प्रयोग के तहत सभी प्रांतों में भूमि नापी गई। नाप के लिए जूट की रस्सियों के स्थान पर **तनाब** (लोहे की कड़ी लगी बांस की छड़ों) का उपयोग किया गया। विभिन्न क्षेत्रों को उनकी उत्पादकता और मूल्यों के आधार पर राजस्व की दृष्टि से "**दस्तूर**" प्रखंडों अथवा राजस्व क्षेत्रों में विभक्त किया गया। प्रत्येक "**दस्तूर**" में हर फसल का प्रति बीघा कर निर्धारण नगद धन के रूप में होता था और उसी के अनुरूप राज्य की मांग निर्धारित की जाती थी। अकबर के अधीन अपनाई गई **ज़ब्ती** व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :

i) भूमि की नाप अनिवार्य थी;

ii) प्रत्येक फसल के लिए **दस्तूर उल अमल** या **दस्तूर** के नाम से जाना जाने वाला नगद राजस्व निर्धारित किया गया; तथा

iii) सभी वसूली नगद में की गई।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

प्रशासनिक दृष्टि से **ज़ब्ती** व्यवस्था के कुछ लाभ इस प्रकार थे :

i) भूमि के नाप को कभी भी जांचा जा सकता था;

ii) निर्धारित "**दस्तूरों**" के कारण पदाधिकारी अपनी मनमानी नहीं कर सकते थे; और

iii) स्थाई **दस्तूरों** के निर्धारण के बाद भू-राजस्व मांग की अनिश्चितता और उतार-चढ़ाव में काफी कमी आ गई।

इस व्यवस्था की कुछ सीमाएं भी थीं :

i) भूमि की उर्वरता समान न होने पर इसे लागू नहीं किया जा सकता था;

ii) उत्पादकता की अनिश्चितता का दंड केवल किसानों को ही भुगतना पड़ता था और यह किसानों के लिए हानिकारक था। अबुल फज़ल कहता है "अगर किसानों में जब्त को वहन करने की क्षमता नहीं होती है तब राजस्व के रूप में उत्पादन का एक तिहाई हिस्सा लिया जाता है"।

iii) यह एक खर्चीली प्रणाली थी क्योंकि इसमें माप करने वाले दल को पारिश्रमिक के रूप में प्रति **बीघा** एक दाम की दर से **ज़ाबिताना** देना पड़ता था;

iv) माप करते समय कर्मचारियों द्वारा गड़बड़ी और धोखाधड़ी की संभावना बनी रहती थी।

ज़ब्ती व्यवस्था केवल साम्राज्य के मुख्य क्षेत्रों में लागू की गई। जब्ती के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में दिल्ली, इलाहाबाद, अवध, आगरा, लाहौर और मुल्तान मुगल सूबे प्रमुख हैं। यहां तक कि इन जब्ती प्रांतों में भी क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों के अनुरूप कर निर्धारण की अन्य प्रणालियां भी प्रचलित थीं।

नस्क़ कर निर्धारण की एक स्वतंत्र प्रणाली थी। यह दूसरी प्रणालियों पर आधारित थी। किसी भी प्रकार के राजस्व निर्धारण और वसूली प्रणाली में इसे अपनाया जा सकता था। उत्तर भारत में **नस्क़ ज़ब्ती** जबकि कश्मीर में यह **नस्क़-ए गल्ला बख्शी** के रूप में उपस्थित थी। जब इसे **ज़ब्ती** व्यवस्था में लागू किया जाता था तो वार्षिक माप न करके पुराने आंकड़ों को कुछ फेर बदल के साथ अपना लिया जाता था। **ज़ब्ती** व्यवस्था में प्रत्येक वर्ष माप किया जाता था। अतः प्रशासक और राजस्वदाता दोनों इससे मुक्त होना चाहते थे। इस प्रकार कुछ बदलावों के साथ **ज़ब्ती-ए हरसाला** या वार्षिक माप की प्रथा समाप्त कर दी गयी।

राजस्व ठेके की प्रथा (इजारा)

इजारा व्यवस्था या राजस्व ठेके की प्रथा इस युग की राजस्व व्यवस्था की एक अन्य विशेषता है। हालांकि नियमतः मुगलों ने इस प्रथा को स्वीकार नहीं किया परंतु व्यवहार में कभी-कभी गांवों को **इजारे** या ठेके पर दे दिया जाता था। आम तौर पर उन गांवों में यह व्यवस्था लागू होती थी, जहां के किसानों के पास खेती करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं होते थे या फिर किसी दुर्भिक्ष के कारण खेती नहीं हो पाती थी। राजस्व अधिकारी या उनके संबंधी **इजारे** पर भूमि लेने के अधिकार से वंचित थे। यह उम्मीद की जाती थी कि राजस्व ठेकेदार किसानों से निर्धारित भू-राजस्व से ज्यादा राशि वसूल नहीं करेगा। परन्तु व्यवहार में ऐसा शायद ही होता था।

ज़ब्ती प्रांतों, गुजरात और मुगल दक्खन में **इजारा** प्रथा आमतौर पर प्रचलित नहीं थी। **खालिसा** भूमि में भी यह अपवाद ही था। परन्तु **जागीर** भूमियों में यह सामान्य बात थी। राजस्व प्राप्तकर्ता **जागीरदार** अपना अधिकार एक बड़ी राशि लेकर बेच दिया करते थे। अक्सर वे इसकी नीलामी कर दिया करते थे। ये ठेकेदार, जो **इजारे** पर भूमि लेते थे, किसानों से राजस्व वसूल करते थे। कभी-कभी **जागीरदार** अपने मातहतों/सैनिकों को भी अपनी **जागीर** का एक हिस्सा राजस्व वसूली के लिए दे दिया करते थे। 18वीं शताब्दी तक **इजारा** व्यवस्था राजस्व निर्धारण और वसूली के लिए सामान्य तौर पर प्रचलित हो गई थी।

16.3 भू-राजस्व मांग का परिमाण

आइए पहले हम इस बात का परीक्षण करें कि राज्य भू-राजस्व के रूप में उपज का कितना अंश ग्रहण करता था। अबुल फज़ल कहता है कि राजा के अपनी प्रजा से वसूली करने के अधिकार पर कोई नैतिक सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। "प्रजा के जीवन और सम्मान के संरक्षक द्वारा अगर उसका सब कुछ हरण कर लिया जाता है तो भी उन्हें अपने संरक्षक के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए"। आगे वह कहता है कि "न्यायप्रिय शासक" प्रजा से अपनी आवश्यकता से ज्यादा वसूल नहीं करता है। परन्तु यह सीमा उसी के द्वारा निर्धारित की जाती है।

औरंगजेब ने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि भू-राजस्व **शरीअत** के अनुसार अर्थात् कुल उत्पादन के आधे से ज्यादा नहीं लिया जाना चाहिए।

एक यूरोपीय यात्री पेलसर्ट, जो 17वीं शताब्दी में भारत आया था, उसने लिखा है कि "किसानों से इतना ज्यादा ले लिया जाता था कि अपना पेट भरने के लिए उन्हें सूखी रोटी तक नहीं मिलती है।" इरफान हबीब लिखते हैं "किसानों पर राजस्व मांग के अलावा अन्य करों और पदाधिकारियों की नियमित और अनियमित वसूली का अपार बोझ था।"

शेरशाह ने भूमि की उर्वरता के आधार पर तीन प्रकार की फसल दरें अपनाई थी और प्रत्येक फसल के लिए इन तीन दरों के अनुपात का 1/3 अंश राजस्व मांग के रूप में निर्धारित किया गया। अकबर के अधीन 1/3 अंश राजस्व मांग निर्धारण की न्यूनतम दर थी। मुगल कालीन राजस्व के विषय में नवीन अध्ययनों से पता चलता है कि मुगलों के शासन काल में भू-राजस्व कुल उत्पादन का 1/3 से 1/2 के बीच में था। और कुछ इलाकों में 3/4 भी था। सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने पर पता चलता है कि विभिन्न प्रांतों में राजस्व मांग भिन्न-भिन्न थी। कश्मीर में सिद्धांततः यह मांग 1/3 थी परंतु वास्तविकता में 2/3 भाग वसूला जाता था। अकबर ने यहां कुल उपज के आधे भाग की मांग का आदेश दिया था।

थट्टा (सिंध) प्रांत में भू-राजस्व एक तिहाई की दर से लिया जाता था।
मज़हर-ए-शाहजहानी (1634 ई. में सिंध के प्रशासन पर लिखा गया संस्मरण) के लेखक यूसुफ मिराक ने लिखा है कि जब **आइन-ए अकबरी** लिखा गया था, तब थट्टा की **जागीर** तरखानों के पास थी, जो किसानों से कुल उत्पाद के आधे से ज्यादा राजस्व नहीं वसूल करते थे। कभी-कभी वे कुल उत्पाद का एक तिहाई या एक चौथाई हिस्सा ही वसूल करते थे।

अजमेर सूबे में पूर्वी राजस्थान के उत्तर क्षेत्र में राजस्व मांग कुल उत्पाद का एक तिहाई से लेकर आधे तक होती थी। **आइन-ए अकबरी** के आधार पर इरफान हबीब कहते हैं कि मरूभूमि प्रदेशों में यह राजस्व मांग कुल उत्पाद का सातवां या आठवां हिस्सा होती थी। लेकिन सुनीता बुधवार जैदी के अनुसार राजस्थान के किसी भी क्षेत्र में इतने कम दर का उल्लेख अन्य स्रोतों में नहीं है। यहां तक कि जैसलमेर में भी कुल उत्पाद का पांचवां (**रबी** की फसल में) और **खरीफ** फसल का चौथाई हिस्सा वसूल किया जाता था।

मध्य भारत में यह दर 1/2, 1/3 और 2/3 के बीच थी दक्खन में राजस्व की दर 1/4 (साधारण भूमि पर) 1/3 (कुओं द्वारा सिंचित भूमि पर), तथा 1/2 (उच्च किस्म की फसलों पर) थी।

औरंगजेब रसिकदास करोड़ी को लिखे गए अपने **फरमान** (आदेश) में कहता है कि जब किसान परेशान या संकट में हो और बटाई व्यवस्था से वसूली हो तो राज्य द्वारा कर के रूप में 1/2, 1/3 या 2/5 भाग राजस्व के रूप में वसूल किया जाना चाहिए।

राजस्थान के बारे में यह पता चलता है कि वहां वर्ग तथा जाति के आधार पर राजस्व दरें अलग-अलग होती थीं। सतीश चन्द्र और दिलबाग सिंह के अध्ययनों से पता चलता है कि पूर्वी राजस्थान के कुछ **परगनों** में ब्राह्मणों और बनियों को रियायती दर पर राजस्व देना होता था।

यह कहा जा सकता है कि राजस्व मांग की दर कुल उत्पादन के आधे से लेकर एक तिहाई हिस्से तक थी। यह राजस्व भूमि की प्रत्येक इकाई पर "समरूप" ढंग से आरोपित किया जाता था, चाहे खेत का आकार और प्रकृति जैसी भी हो। यह '**प्रतिगामी**' प्रकृति का द्योतक है—छोटे खेतों वाले किसानों पर यह बोझ बड़े किसानों की तुलना में काफी भारी पड़ता था, क्योंकि छोटे किसानों को कम भूमि के आधार पर कोई रियायत नहीं थी।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए :

गल्ला बख्शी :

....

....

....

कनकूत :

....

....

....

नस्क :

....

....

....

पोलज :

....

....

....

रे :

....

....

....

2) **ज़ब्ती** व्यवस्था की विशेषताओं और सीमाओं को विश्लेषित कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

3) मुगल कालीन भारत में राजस्व मांग की पद्धति पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

16.4 भुगतान का माध्यम

कुछ क्षेत्रों में नगद धन के रूप में भू-राजस्व वसूलने की प्रथा 13वीं शताब्दी से ही प्रचलित पाई जाती है। मुगल काल में **ज़ब्ती** व्यवस्था के अंतर्गत किसानों को नगद रूप में राजस्व का भुगतान करना होता था। किसी भी परिस्थिति में नगदी व्यवस्था को वस्तु के रूप में परिवर्तित करने का कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। हालांकि फसल बंटवारे और **कनकूत** व्यवस्था में वस्तु के रूप में वसूली को नगदी में परिवर्तित करने की व्यवस्था थी। नगद राशि का परिवर्तन वस्तु के बाजार मूल्य पर आधारित होता था। साम्राज्य के प्रत्येक भाग में नगदी व्यवस्था पूर्ण रूप से स्थापित थी।

16.5 भू-राजस्व वसूली

गल्ला बख्शी के अधीन राज्य का हिस्सा सीधे खेत से वसूल कर लिया जाता था। अन्य व्यवस्थाओं में कटाई के समय राज्य अपना हिस्सा वसूल करता था।

अबुल फज़ल का मानना है कि "**रबी** की वसूली होली और **खरीफ** की दशहरा से शुरू हो जानी चाहिए। पदाधिकारियों को दूसरी फसल के तैयार होने के लिए विलंब नहीं करना चाहिए।"

खरीफ के मौसम में विभिन्न फसलों की कटाई विभिन्न समयों में होती है और तद्नुरूप फसलों के प्रकार के आधार पर राजस्व की वसूली तीन चरणों में की जाती थी। अतः **खरीफ** फसल का राजस्व किश्तों में वसूल किया जा सकता था।

रबी फसलों की कटाई कम अवधि में हो जाती है। अधिकारी फसल की कटाई और उसे खेतों से हटाए जाने से पहले राजस्व वसूल करने का प्रयत्न करते थे। 17वीं शताब्दी के अंत तक अधिकारी अपने उतावलेपन में फसल कटने के पूर्व ही राजस्व की मांग करने लगे और यहां तक कि राजस्व न मिलने पर फसल काटने से भी रोकने लगे। इरफान हबीब टिप्पणी करते हैं: "कटाई से पहले किसानों से राजस्व की मांग करना दमनात्मक कार्यवाई थी, क्योंकि उनके पास कुछ बचा नहीं होता था। साथ ही साथ यह प्रथा एंक सुचारू रूप से विकसित मुद्रा अर्थव्यवस्था का परिणाम थी क्योंकि इसके बिना इसका कार्यान्वयन संभव ही नहीं था। पदाधिकारी शायद यह उम्मीद करते थे कि किसान व्यापारियों और महाजनों के पास अपनी फसल बंधक रखकर ऋण ले सकते हैं।"

आम तौर पर **आमिल** या राजस्व संग्रहक राजकोष में राजस्व जमा किया करता था। अकबर ने किसानों को सीधे राजकोष में राजस्व जमा करने के लिए प्रोत्साहित किया। टोडरमल ने अनुमोदित किया था कि विश्वस्त गांवों के किसान एक समय सीमा के भीतर राजकोष में अपना राजस्व जमा कर सकते थे और रसीद ले सकते थे। ग्रामीण लेखपाल, **पटवारी**, अपने खातों में भुगतान की गई राशि को लिख लेते थे। इरफान हबीब का मानना है कि संभवतः धोखाधड़ी और गबन को रोकने के लिए प्रशासन द्वारा ये कदम उठाए जाते थे।

MAADHYAM IAS

16.6 राजस्व में रियायतें

अब्बास खां ने अपनी पुस्तक **तारीख-ए शेरशाही** में लिखा है "शेरशाह ने घोषणा की थी कि रियायत की अनुमति कर निर्धारण के समय दी जा सकती थी वसूली के समय नहीं"। औरंगजेब ने मौहम्मद हाशिम करोड़ी को **फरमान** जारी करते हुए निर्देश दिया था कि फसल कट जाने के बाद कोई रियायत नहीं दी जा सकती थी।

राजस्व निर्धारण का तरीका कुछ भी हो, खराब फसल होने पर सबमें रियायत का प्रावधान था। **गल्ला बख्शी** और **कनकूत** पर विचार करते हुए हम जान चुके हैं कि उपज के अनुरूप ही राज्य के अंश में भी बढ़ोत्तरी और कमी होती थी। **ज़ब्ती** व्यवस्था में निर्धारण करते समय **नाबुद** क्षेत्र (जिस में फसल न हुई हो) को घटा कर बचे हुए क्षेत्र पर कर निर्धारण किया जाता था।

व्यवहारतः हर फसल पर पूरी राशि वसूल करना संभव नहीं था और हमेशा शेष राशि अगले साल की वसूली के लिए छोड़ दी जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मृत या खेत छोड़कर भागे हुए किसानों की बकाया राजस्व राशि उनके पड़ोसियों से वसूलने की आम प्रथा प्रचलित थी। औरंगजेब ने **खालिसा** और **जागीर** भूमियों में इस प्रथा को रोकने के

लिए 1674-75 ई. में **हस्ब-उल हुक्म** (राजकीय आदेश) जारी किया। उसका तर्क था कि किसी की बकाया राशि का जिम्मेदार किसी भी दूसरे किसान को नहीं ठहराया जा सकता था।

बीज और पशु खरीदने के लिए किसानों को **तकावी** (शाब्दिक अर्थ : ताकत देने वाला) ऋण उपलब्ध कराया जाता था। अबुल फज़ल लिखता है, "**अमलगुजार** को साधनहीन किसानों को ऋण देकर सहायता पहुंचानी चाहिए।" टोडरमल ने सलाह दी थी कि असहाय परिस्थितियों से घिरे और बीज और पशुधन से रहित किसानों को **तकावी** ऋण दिया जाना चाहिए। ये ऋण ब्याजमुक्त होते थे और इन्हें फसल की कटाई के समय चुकाना होता था। यह अग्रिम राशि **चौधरियों** और **मुकद्दमों** के माध्यम से मिलती थी। अबुल फज़ल कहता है कि ऋण धीरे-धीरे वसूल करना चाहिए। उपरोक्त राहत कार्यों के अतिरिक्त राज्य द्वारा खेती के विकास और विस्तार के लिए नए कुंए खोदे गए और पुराने कुंओं की मरम्मत की गयी।

बोध प्रश्न 2

1) भू-राजस्व के भुगतान का माध्यम क्या था?

....

....

....

....

....

2) प्राकृतिक विपदा के समय किसानों को किस प्रकार रियायतें दी जाती थी?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

16.7 भू-राजस्व प्रशासन

खालिसा भूमि से संबद्ध राजस्व प्रशासन व्यवस्था के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। परन्तु **जागीर** प्रशासन के विषय में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। जैसा कि हम पहले अध्ययन कर चुके हैं **जागीरदारों** का स्थानांतरण दो या तीन वर्षों में हो जाता था, अतः उन्हें स्थानीय लोगों की राजस्व प्रदान करने की सामर्थ्य और स्थानीय प्रथाओं का कोई ज्ञान नहीं होता था। इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्हें स्थानीय अधिकारियों की सहायता लेनी पड़ती थी। राजस्व के क्षेत्र में हमें तीन प्रकार के पदाधिकारियों का पता चलता है:

क) **जागीरदारों** के कर्मचारी और प्रतिनिधि;

ख) स्थाई स्थानीय पदाधिकारी जो अधिकांशतः अनुवांशिक होते थे। **जागीरदारों** के स्थानांतरण से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता था; और

ग) **जागीरदारों** की सहायता करने और उन्हें नियंत्रण में रखने के लिए केन्द्रीय पदाधिकारी।

ग्रामीण स्तर पर अनेक राजस्व पदाधिकारी थे :

i) **करोड़ी** : 1574-75 ई. में **करोड़ी** के पद का निर्माण किया गया। उसके कर्तव्यों का वर्णन करते हुए अबुल फज़ल कहते हैं कि वह राजस्व के निर्धारण और वसूली दोनों का प्रभारी था। शाहजहां के शासनकाल में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। अब प्रत्येक **महाल** (राजस्व क्षेत्र) में **अमीनों** की नियुक्ति की गई और उन्हें कर निर्धारण का कार्य सौंपा गया। इस परिवर्तन से अब **करोड़ी** (या **आमिल**) का दायित्व **अमीन** द्वारा निर्धारित राजस्व को वसूल करने तक सीमित रह गया।

प्रांत का **दीवान करोड़ी** को नियुक्त करता था। यह आशा की जाती थी कि वह किसानों के हितों का ख्याल रखेगा। **करोड़ी** और उनके कर्मचारियों द्वारा वसूली गयी वास्तविक राशि की जांच गांव के **पटवारी** के कागजों की सहायंता से की जाती थी।

ii) **अमीन** : **अमीन** दूसरा प्रमुख राजस्व पदाधिकारी था। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं **अमीन** का पद शाहजहां के शासन काल में निर्मित किया गया था। उसका मुख्य कार्य राजस्व निर्धारण करना था। उसकी भी नियुक्ति **दीवान** करता था। **करोड़ी** और **फौजदार** के साथ-साथ वसूले गये राजस्व को सुरक्षित पहुंचाने की जिम्मेदारी उसकी भी थी। प्रांत का **फौजदार अमीन** और **करोड़ी** की गतिविधियों पर निगरानी रखता था ।

वह उनकी पदोन्नति की अनुशंसा भी किया करता था।

iii) **कानूनगो** : यह **परगने** का स्थानीय राजस्व पदाधिकारी था और आम तौर से वह लेखपाल या लेखा-जोखा करने वाले वर्गों या जातियों में से नियुक्त किया जाता था। यह अनुवांशिक पद था, परन्तु प्रत्येक नये व्यक्ति की नियुक्ति के लिए पृथक राजकीय आदेश आवश्यक था।

निगारनामा-ए-मुंशी का लेखक **कानूनगो** को भ्रष्टाचार के लिए दोषी ठहराता है क्योंकि "उन्हें स्थानांतरित या पदच्युत होने का कोई भय नहीं था"। लेकिन भ्रष्टाचार या कर्तव्य विमुखता का आरोप सिद्ध होने पर राजकीय आदेश से उन्हें हटाया भी जा सकता था। राजस्व रसीदों, भूमि के माप संबंधी आंकड़ों, स्थानीय राजस्व दरों और परगने के रीति रिवाजों से संबद्ध कागज़ात को व्यवस्थित करके रखना **कानूनगो** का मुख्य कार्य था। आम तौर पर यह माना जाता था कि **कानूनगो** को अगर पिछले सौ वर्षों का राजस्व आंकड़ा प्रस्तुत करने को कहा जाए, तो उसे ऐसा करने में सक्षम होना चाहिए। **जागीरदारों** के प्रतिनिधि या कर्मचारी आमतौर पर स्थानीय परिस्थितियों से परिचित नहीं होते थे, वे आमतौर पर **कानूनगो** द्वारा दी गई जानकारी पर ही भरोसा करते थे। **कानूनगो** को पारिश्रमिक के रूप में कुल राजस्व का 1% दिया जाता था, लेकिन अकबर ने उन्हें अलग वेतन देना आरंभ कर दिया था।

iv) **चौधरी** : यह भी **कानूनगो** के समान एक महत्वपूर्ण राजस्व पदाधिकारी था। अधिकांश मामलों में वह उस क्षेत्र का सर्वप्रमुख **जमींदार** होता था। उसका काम केवल कर वसूली में सहायता करना था। वह छोटे **जमींदारो** की जमानत भी दिया करता था। **चौधरी तकावी** ऋण का बंटवारा करता था और उसके भुगतान की जिम्मेदारी भी लेता था। वह **कानूनगो** पर नियंत्रण रखने का कार्य भी करता था।

दस्तूर-उल-अमल आलमगीरी से पता चलता है कि **चौधरी** को कोई बहुत ज्यादा भत्ता नहीं दिया जाता था। परन्तु यह संभव है कि उसे काफी मात्रा में राजस्व मुक्त अनुदान (**इनाम**) मिलते थे।

v) **शिकदार** : शेरशाह के अधीन यह राजस्व प्रभारी था और कानून एवं व्यवस्था की देख-रेख करता था। ऐसा लगता है कि अकबर के शासन काल के उत्तरार्द्ध में वह **करोड़ी** का अधीनस्थ अधिकारी हो गया। अबुल फज़ल लिखता है कि आपात स्थिति में **शिकदार** भुगतान का आवश्यक अनुमोदन दे सकता था। बाद में उसे अपना

MAADHYAM IAS

अनुमोदन दरबार में प्रस्तुत करना होता था। अपने अधिकार-क्षेत्र में हुई चोरियों के लिए उसे ही जिम्मेदार ठहराया जाता था।

vi) **मुकद्दम और पटवारी : मुकद्दम** और **पटवारी** ग्रामीण स्तर के अधिकारी थे। **मुकद्दम** गांव का मुखिया होता था। अपनी सेवा के बदले में उसके द्वारा वसूले गये राजस्व में से 2.5 प्रतिशत हिस्सा उसे प्राप्त होता था। **पटवारी** गांव की जमीन, प्रत्येक किसान द्वारा जोते जाने वाले खेतों, फसल के प्रकारों और बंजर भूमि का हिसाब-किताब रखता था। उसके बहीखाते में किसानों के नाम लिखे होते थे। **बितिकची** जरूरी कागज और आंकड़े तैयार करता था जिसके आधार पर कर निर्धारण और वसूली होती थी।

प्रत्येक **परगने** में दो अन्य अधिकारी होते थे—**फोतेदार** या **खज़ानादार** (कोषपाल) और **कारकुन** या **बितिकची** (लेखपाल)। शेरशाह के शासन काल में दो कारकुन (लिपिक) नियुक्त किये जाते थे, एक हिंदी में और एक फ़ारसी में इनका प्रमुख कार्य आंकड़े तैयार करना था। लेकिन 1583-84 ई. से लेखा के लिए केवल फ़ारसी भाषा का उपयोग होने लगा।

फौजदार केन्द्रीय शासन की सैन्य और पुलिस शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था। उसका एक मुख्य कार्य **ज़ोरतलब** (जिनके विरुद्ध राजस्व वसूल करने के लिए शक्ति का प्रयोग करना पड़े) **जमींदारों** और किसानों से राजस्व वसूल करने में **जागीरदार** या **आमिल** की सहायता करना था।

वकाया नवीस और **सवानिह निगार** (समाचार लेखक) का कार्य अनियमितताओं और दमनात्मक कार्यवाइयों से संबंधित मामलों को केन्द्र तक पहुंचाना था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 3

1) करोड़ी के कार्यों और कर्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए :

i) **जोरतलब जमींदार :**

....

....

....

ii) **फोतेदार :**

....

....

....

iii) **वकाया नवीस :**

....

....

....

16.8 सारांश

इस इकाई में हमने मुगलों की भू-राजस्व व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की। भू-राजस्व राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। अंग्रेज प्रशासक इसे जमीन का लगान समझते थे और मानते थे कि भूमि का मालिक राजा हुआ करता था। परन्तु बाद के अध्ययनों से पता चलता है कि कर फसल पर लगाया जाता था न कि भूमि पर।

मुगल भू-राजस्व व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

क) प्रत्येक क्षेत्र में भू-राजस्व की मात्रा अलग अलग थी।

ख) भू-राजस्व के निर्धारण के लिए कई प्रकार की प्रणालियां अपनाई जाती थीं। हालांकि **ज़ब्ती** राजस्व निर्धारण की सर्वप्रमुख प्रणाली थीं, परन्तु **गल्ला बख्शी** और **कनकूत** जैसी प्रणालियां भी प्रचलित थीं।

ग) इस संदर्भ में महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि अधिकांश मामलों में (कम से कम **ज़ब्ती** प्रांतों में) राजस्व नगद में वसूल किया जाता था इस प्रकार मुद्रा पद्धति और बाजार अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिला।

घ) प्राकृतिक विपदा के समय रियायतें दी जाती थीं। राज्य **नाबूद** भूमि पर छूट और **तकावी** नामक अग्रिम ऋण के रूप में रियायतें दिया करता था।

ङ) भू-राजस्व प्रशासन से कई पदाधिकारी जुड़े हुए थे। इनमें **करोड़ी**, **अमीन**, **कानूनगो**, **चौधरी**, **शिकदार**, **फोतेदार**, **बितिकची**, **दीवान**, **फौजदार**, **वकाया नवीस**, **सवानिह निगार** आदि उल्लेखनीय हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

16.9 शब्दावली

बही : आंकड़ा-पुस्तक, लेखा पुस्तिका, पंजी

मौरूसी : अनुवांशिक

रैयुयत : किसान

जमा : अनुमानित राजस्व

हासिल : वास्तविक वसूला गया राजस्व

कबूलियत : स्वीकृति

नाबूद : अस्तित्वहीन (वह भूमि जिस पर उस वर्ष खेती नहीं हुई हो)

पट्टा : राजस्व विभाग द्वारा किसानों को प्रदान किया जाने वाला लिखित दस्तावेज जिसमें राजस्व मांग की दर आदि का उल्लेख होता था।

तकावी : कृषि ऋण

जोरतलब : विद्रोही (क्षेत्र अथवा पदाधिकारी)

16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 16.2
2) देखिए भाग 16.2 पहले **ज़ब्ती** व्यवस्था को परिभाषित कीजिए। इसका उद्गम बताइए और फिर इसकी विशेषताओं और कमियों का उल्लेख कीजिए।
3) देखिए भाग 16.3 विश्लेषण कीजिए कि मुगल कालीन भारत में राजस्व मांग एक समान नहीं थी। बताइए कि यह विभिन्न क्षेत्रों में कैसे भिन्न थी।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 16.4
2) देखिए भाग 16.6 राहत उपायों की प्रकृति का उल्लेख कीजिए। किस प्रकार के ऋण दिए जाते थे? **तकावी** ऋण क्या था? यह क्यों और किन शर्तों पर दिया जाता था। इन ऋणों के वितरण में कौन से अधिकारी संलग्न होते थे, आदि।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 16.7(i) विश्लेषण कीजिए कि अकबर ने **करोड़ी** का पद क्यों निर्मित किया था? उस समय उसे क्या-क्या अधिकार दिए गए थे? बाद के शासन कालों में उसके अधिकारों और कार्यों में क्या परिवर्तन आया?
2) देखिए भाग 16.7(vi)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 17 कृषि सम्बन्ध : मुगलकालीन

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 राजस्व अधिन्यासी और अनुदान प्राप्तकर्ता
17.3 जमींदार
- 17.3.1 जमींदारों के अधिकार
- 17.3.2 जमींदारों की सैन्य शक्ति
- 17.3.3 चौधरी
- 17.3.4 अन्य मध्यस्थ

17.4 कृषक वर्ग
- 17.4.1 कृषक वर्ग के भूमि संबंधी अधिकार
- 17.4.2 कृषक वर्ग का स्तरीकरण
- 17.4.3 ग्रामीण समुदाय

17.5 कृषक वर्गों के अन्तर्सम्बन्ध
17.6 सारांश
17.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

इस इकाई में हम मुगल कालीन भारत के कृषि संबंधों की चर्चा करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भू-उत्पादन में हिस्सा पाने वाले विभिन्न वर्गों का उल्लेख कर सकेंगे;
- **जमींदार** और उनके अधिकारों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- विभिन्न प्रकार की श्रेणियों और ग्रामीण समुदाय का अवलोकन कर सकेंगे;
- अधिशेष उत्पादन में हिस्सा पाने वाले अन्य बिचौलियों का वर्णन कर सकेंगे; और
- विभिन्न कृषक वर्गों के आपसी सम्बन्धों को रेखांकित कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

कृषि अधिशेष का बड़ा हिस्सा भू-राजस्व के रूप में वसूल लिया जाता था। जैसा कि इकाई 16 में चर्चा की जा चुकी है सैद्धांतिक रूप में सम्राट भू-राजस्व का एकमात्र दावेदार माना जाता था। हालांकि व्यवहार में राज्य और इसके प्रतिनिधियों के अलावा अनेक प्रकार के बिचौलिए कई तरीकों से बड़ी राशि पर अधिकार जमा लेते थे।

इस इकाई में हम भूमि और उसके उत्पादन पर विभिन्न वर्गों के अधिकारों पर विचार-विमर्श करेंगे। इन वर्गों के अंतर्संबंधों की भी चर्चा की जाएगी।

17.2 राजस्व अधिन्यासी और अनुदान प्राप्तकर्त्ता

किसानों से भू-राजस्व वसूलने के लिए राज्य ने दो तरीके अपनाए। पहली व्यवस्था के तहत

जागीरदारों को राजस्व इकट्ठा करने के लिए कुछ इलाके दे दिए गए। इस राजस्व को **जागीरदार** अपनी तनख्वाह के रूप में और सेना के रखरखाव के लिए उपयोग करते थे। दूसरी तरफ **खालिसा** भूमि का राजस्व शाही पदाधिकारी वसूल किया करते थे। **जागीरदारों** का अक्सर स्थानान्तरण होता रहता था और आवंटित इलाके पर उनका कोई स्थाई अधिकार नहीं होता था। उसका अधिकार भू-राजस्व और अन्य करों तक ही सीमित था।

अनुदान प्राप्तकर्ता

एक तरफ **जागीरदारों** को उनके नगद वेतन के रूप में राजस्व अनुदान प्रदान किए जाते थे दूसरी तरफ एक और समुदाय था जिसे जीवन यापन के लिए राजस्व अनुदान दिया जाता था। इस प्रकार का अनुदान राज्य के संरक्षण में रहने वाले धार्मिक व्यक्तियों, विद्वानों और साधन विहीनों को दिया जाता था।

इन अनुदानों को **सुयुरग़ाल** या **मदद-ए माश** (जीवन यापन के लिए सहायता) के नाम से जाना जाता था। इन अनुदानों की देखभाल **सद्र-उस सुदूर** के नेतृत्व में एक विभाग करता था। नगद सहायता को **वज़ीफा** कहा जाता था। **मदद-ए माश** अनुदान कुछ खास श्रेणी के लोगों के लिए बनाया गया था। इस अनुदान को पाने वाले व्यक्ति का भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता था। वह केवल नियत दर पर कुल उत्पादन में से राजस्व ले सकता था। अकबर ने इस प्रकार के अनुदान पर 100 **बीघा** प्रति व्यक्ति की सीमा लगा रखी थी। अकबर ने कृषि को बढ़ावा देने के लिए आधी खेती योग्य भूमि और आधी अनजुती या **बंजर** जमीन देने की प्रथा चलाई थी।

अनुदान प्राप्तकर्ता को पूरे जीवन के लिए अनुदान मिलता था और उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी अनुदान के नवीनीकरण के लिए आवेदन कर सकते थे। आमतौर पर उत्तराधिकारियों को अनुदान का एक अंश प्रदान किया जाता था। जहांगीर ने अकबर द्वारा दिए गये सभी अनुदानों का अनुमोदन करके नवीनीकरण कर दिया परन्तु शाहजहां ने सभी अनुदानों का परीक्षण आरम्भ किया। उसने उत्तराधिकारियों को मिलने वाले अनुदान की सीमा 30 कर दी और औरंगजेब ने उसे घटाकर 20 **बीघा** कर दिया। अपने शासनकाल के तीसवें वर्ष में उसने सारे अनुदानों को अनुवांशिक कर दिया। इन अनुदानों को उसने एक प्रकार का ऋण (**अरियत**) माना न कि सम्पत्ति। उसके शासनकाल के उत्तरार्द्ध में और उसकी मृत्यु के बाद अनुदान प्राप्तकर्ता जमीन को खरीदने, बेचने या हस्तांतरित करने लगे। इस कारण धीरे-धीरे इन अनुदानों का अधिकार क्षेत्र **जमींदारी** अधिकारों के समकक्ष हो गया।

अकबर के शासनकाल में इस प्रकार के अनुदानों का राजस्व कुल जमा के 5.84 प्रतिशत से ऊपर नहीं होता था। उन अनुदानों की भौगोलिक अवस्थिति को देखने से पता चलता है कि ये अधिकांशतः ऊपरी गांगेय प्रदेशों (दिल्ली और इलाहाबाद में अधिकतम) में केन्द्रित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मौहम्मद शाह के शासन काल के आरंभिक वर्षों तक कुल राजस्व में भूमि अनुदानों का हिस्सा लगभग अपरिवर्तनीय रहा। इस भौगोलिक अवस्थिति से पता चलता है कि ये अनुदान मुख्यतः शहरी क्षेत्रों में केन्द्रित थे। हमें इससे यह भी पता चलता है कि लगभग 70 प्रतिशत सुयुरग़ाल अनुदान उन **परगनों** में केन्द्रित थे जो गैर मुसलमान **जमींदारों** के अधिकार में थे।

एक दूसरे प्रकार का अनुदान (**वक्फ**) संस्थानों आदि को दिया जाता था। धार्मिक मकबरों, समाधियों, मदरसों आदि के रख-रखाव के लिए कुछ जमीन का राजस्व स्थाई रूप से निश्चित कर दिया जाता था। इस प्रकार के अनुदान **जागीरदार** भी दे सकता था जो उस **जागीरदार** के उस इलाके में रहने तक कायम रहता था।

मदद-ए माश अनुदान की सहायता से प्रभाव-क्षेत्र कायम किया जाता था और इससे बंजर भूमि को विकसित करने में भी मदद मिलती थी। आमतौर पर इस प्रकार का अनुदान शेखों, सैयदों और अन्य विद्वानों को दिया जाता था। आपातकाल में स्थानीय अशांति को

दबाने के लिए वे सरकारी सेना में शामिल हो जाते थे। ये अनुदान राजस्व का बहुत बड़ा हिस्सा नहीं थे। अनुदान प्राप्तकर्त्ता उस इलाके के और अन्य इलाकों के **जमींदारी** अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयत्न लगातार करते रहते थे। अतः इनमें से कुछ **जमींदार** बन गये। 18वीं शताब्दी के आरंभ तक ये अनुदान सभी प्रकार के लेन-देन में जमींदारी भूमि के रूप में जाने लगे।

बोध प्रश्न 1

1) **जागीर** प्रदान करने से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

2) भूमि अनुदान क्या थे? ये अनुदान किन्हें प्राप्त होते थे?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

17.3 जमींदार

वस्तुतः मुगल साम्राज्य के प्रत्येक हिस्से में **जमींदार** उपस्थित थे और मुगल कालीन भारत की कृषि संरचना में उन्हें सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। **जमींदार** शब्द फ़ारसी के दो शब्दों—**जमीन** (भूमि) और **दार** (ग्रहणकर्त्ता) से मिलकर बना है। मुगल काल से पहले **जमींदार** शब्द का उपयोग इलाके के प्रधान के लिए किया जाता था। इस तथ्य का, कि प्रधान सर्वोच्च संप्रभुसत्ता की सर्वोच्चता को स्वीकार करता था, इससे उसके अपने क्षेत्र में उसके अधिकारों पर कोई फर्क नहीं पड़ता था। अकबर के समय से यह पद किसी भी व्यक्ति के उत्पादन से सीधे हिस्सा ग्रहण करने के अनुवांशिक दावों के लिए जाना जाता था। **जमींदार** शब्द ने कई स्थानीय शब्दों जैसे दोआब में **खोत** और **मुकद्दम**, अवध में **सत्रही** और **बिस्वी**, राजस्थान और गुजरात में **बंठ** या **वंठ** की जगह ले ली। हालांकि समकालीन उल्लेखों में **जमींदार** के पर्याय के रूप में इन शब्दों का उपयोग होता रहा है। जिन क्षेत्रों में **जमींदार** नहीं थे उन क्षेत्रों को **"रैयती"** (किसानों के अधिकार-क्षेत्र) कहा गया।

17.3.1 जमींदारों के अधिकार

जमींदारी का मतलब भूमि पर सम्पत्ति अधिकार नहीं था। यह भूमि उत्पादन पर **जमींदारों** का एक दावा था जो राज्य की भू-राजस्व की मांग के साथ-साथ चलता था। लेकिन निजी सम्पत्ति की भांति किसी भी वस्तु की तरह इसे बेचा या खरीदा जा सकता था। यह अनुवांशिक और विभाज्य था अर्थात् **जमींदार** के उत्तराधिकारी इसके वित्तीय लाभों को आपस में बांट सकते थे और इलाके के कानून के अनुसार **जमींदारी** के विशेषाधिकारों को ग्रहण कर सकते थे।

जमींदारों को ऐतिहासिक विरासत के रूप में अधिकार प्राप्त होते थे जिनका उपयोग उनके पूर्वज और वंशज किसी खास गांव के निवासियों पर पहले से करते आ रहे थे। कभी **जमींदारों** ने गांवों को बसाया होगा और उसकी जमीनों को किसान वर्ग में बांट दिया होगा। पूर्वी राजस्थान में, अपनी व्यक्तिगत जमीन पर खेती कराने के लिए **भूमिया (जमींदार)** ने **वसीदारों** (कृषकों की एक कोटि) को बसाया था। इस प्रकार शासकीय वर्गों ने **जमींदारी** अधिकारों को जन्म नहीं दिया बल्कि वे उनसे पहले से ही कायम थे। हालांकि जहां **जमींदारी** नहीं थी वहां राजा गांवों में **जमींदारी** निर्मित कर सकता था। वह किसी **जमींदार** को पदच्युत भी कर सकता था। परन्तु यह कदम वह राजद्रोह करने या राजस्व के भुगतान न किए जाने पर ही उठाया करता था।

मध्यकालीन शासकों ने **जमींदारों** के अधिकारों को वैधता प्रदान की परन्तु उन्होंने बराबर यह प्रयत्न किया कि वे सरकार के प्रतिनिधि के रूप में राजस्व वसूल करें।

जमींदारों ने जब से सरकार को राजस्व वसूल करने में मदद करने का काम शुरू कर दिया तबसे उसे इस सेवा (**खिदमत**) के लिए कुल राजस्व का एक खास प्रतिशत मिलने लगा। सरकारी आंकड़ों में इसे 10 प्रतिशत बताया गया है और इसे **नानकार** (भत्ता) कहा गया है। जब प्रशासन **जमींदारों** से नहीं बल्कि अपने प्रतिनिधियों से राजस्व वसूल करवाती थी तो उसे कुल राजस्व में से कुछ हिस्सा **जमींदार** को देना पड़ता था जिसे **मालिकाना** (सम्पतिगत अधिकार) कहते थे और **नानकार** की तरह यह भी कुल वसूली राशि का 10 प्रतिशत हिस्सा होता था। गुजरात में **जमींदार** के इस दावे को बंठ या **वंठ** कहते थे। परन्तु, उत्तर भारत के **मालिकाना** की अपेक्षा इसकी दर ऊंची थी। **मालिकाना** की तरह इसका भुगतान भी नगद होता था। दक्खन में इसे **चौथ** (एक चौथाई) कहते थे। जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह वसूले गये राजस्व का एक चौथाई हिस्सा होता था। दक्खन के **जमींदारों** का एक अन्य वित्तीय दावा **सरदेशमुखी** के नाम से जाना जाता था जो कुल राजस्व का 10 प्रतिशत होता था। मराठों ने **चौथ** और **सरदेशमुखी** जैसे करों की वसूली किसी वास्तविक **जमींदारी** अधिकार के तहत नहीं बल्कि बल प्रयोग से की। शिवाजी के शासनकाल में **चौथ** के एक चौथाई हिस्से और पूरी **सरदेशमुखी** पर शासक का अधिकार होता था जबकि **चौथ** का तीन चौथाई हिस्सा मराठा सरदारों में वितरित कर दिया जाता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अपने मुख्य वित्तीय दावों के अलावा ये **जमींदार** किसानों से कई प्रकार के **उपकर** और **नजराने** वसूल किया करते थे। इनमें से कुछ हैं; **वस्तर शुमारी** (पगड़ी कर), गृह कर **(खाना शुमारी)**, विवाह और जन्म आदि पर कर, आदि। **जमींदार** अपने इलाके के साप्ताहिक बाजारों से भी कर वसूला करता था। कई बार अपने क्षेत्र से गुजरने वाले व्यापारियों से भी वे कर वसूला करते थे। **जमींदारों** द्वारा वसूली गयी इन राशियों का अनुमान लगाना बहुत कठिन है। ऐसा माना जा सकता है कि उनकी भू-राजस्व से प्राप्त वितीय दावे की तुलना में यह (उपकरों से प्राप्त राशि) काफी कम था। अभी तक हम सीधे प्रशासन वाले क्षेत्र के प्रारंभिक और मध्यस्थ **जमींदारों** की बात कर रहे थे। प्रत्येक शासन की यह कोशिश रहती थी कि इन **जमींदारों** को मात्र कर वसूलकर्ता बनाकर रख दिया जाये। इनके अलावा **राजा, राव, राणा** और **रावत** जैसे कुछ सरदार या **सामंत** होते थे जो अपने क्षेत्र में कमोबेश स्वायत्त हुआ करते थे और साम्राज्य प्रशासन के बिना किसी हस्तक्षेप के शासन किया करते थे (देखिए इकाई 6)। उन्हें केवल राजा को **नज़राना (पेशकश)** के रूप में निश्चित राशि देनी होती थी। वे किसानों से जितना वसूल करते थे उसका एक खास हिस्सा शासक को दे दिया करते थे और शेष राजस्व पर उनका अधिकार होता था। साम्रांज्य प्रशासन उन्हें अर्द्धस्वायत्तता का दर्जा प्रदान करता था और एक बार **पेशकश** दे देने के बाद उनके आंतरिक प्रशासन में कोई हस्तक्षेप नहीं करता था। इरफान हबीब के अनुसार, ''जमींदारों और स्वायत्त सरदारों के बीच का अन्तर केंद्रीय शक्ति से उनके संबंधों पर आधारित था जिनके द्वारा सरदारों को तो स्वायत्तता प्रदान की गई थी, किन्तु साधारण जमींदार राजा की विशेषाधिकार प्राप्त (**मालिकाना**) प्रजा के समतुल्य थे।

17.3.2 जमींदारों की सैन्य शक्ति

जमींदारों के पास अपनी पैदल और घुड़सवार सेना होती थी। सेना की सहायता से वे किसानों से राजस्व वसूला करते थे और उन्हें दबाया करते थे। लगभग सभी **जमींदारों** के पास अपने छोटे या बड़े किलाचे, गढ़ी या किले होते थे। **आइन-ए अकबरी** के अनुसार मुगल साम्राज्य में **जमींदारों** की सेना में चौवालीस लाख से ज्यादा सिपाही थे। बंगाल में उनके पास हजारों नावें थी।

17.3.3 चौधरी

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, **जमींदार** भू-राजस्व वसूल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इनमें से कुछ को राजस्व वसूल करने की दृष्टि से **चौधरी** की उपाधि दे दी जाती थी। **परगना** के एक प्रमुख **जमींदार** को **चौधरी** नियुक्त किया जाता था। आमतौर पर एक **परगना** में एक **चौधरी** होता था।

चौधरी को **परगने** के अन्य **जमींदारों** से कर वसूलना होता था। अपने परंपरागत **नानकार** के अतिरिक्त **चौधरियों** को वसूले गये इस राजस्व में से भी अलग से हिस्सा मिलता था। इसे **चौधराई** कहते थे और यह कुल वसूले गये राजस्व का ढ़ाई प्रतिशत होता था। **जमींदारों** के विपरीत **चौधरी** की नियुक्ति राज्य करता था और उसे ठीक ढंग से काम न करने पर किसी भी समय हटाया जा सकता था।

17.3.4 अन्य मध्यस्थ

प्रत्येक गांव में कई अनुवांशिक पदाधिकारी होते थे। उनमें सर्वप्रमुख गांव का मुखिया (उत्तर भारत में **मुकद्दम** और दक्खन में **पटेल**) होता था। उसके जिम्में राजस्व वसूलना और गांव में कानून व्यवस्था की देख-रेख करना होता था। अपनी सेवाओं के बदले में उसे गांव में राजस्व मुक्त भूमि प्रदान की जाती थी। हालांकि कुछ मामलों में उसे भी वसूले गये राजस्व में से नगद हिस्सा मिला करता था। इसके अलावा उसे किसानों से भी उपज में से कुछ हिस्सा लेने का अधिकार था। राजस्व वसूल करने में ग्रामीण लेखपाल (उत्तर भारत में **पटवारी** और दक्खन में **कुलकर्णी**) **मुकद्दम** की सहायता किया करता था। **पटवारी** किसानों से वसूले गये राजस्व और राज्य को दिये गये राजस्व का लेखा-जोखा (बही) तैयार करता था। उसके आंकड़ों से सरकार को किसानों के राजस्व चुकाने के सायर्थ्य का पता लगाने और गांव पर कुल भू-राजस्व निर्धारित करने में सहायता मिलती थी। **मुकद्दम** के समान उसे भी राजस्व मुक्त भूमि मिलती थी अथवा राजस्व में से नगद हिस्सा मिलता था। गांव के मुखिया की अपेक्षा उसका भत्ता काफी कम था। **मुकद्दम** और **पटवारी** का पद और उससे जुड़े विशेषाधिकार अनुवांशिक थे।

MADHYAM IAS

बोध प्रश्न 2

1) **जमींदारी** अधिकारों की प्रकृति पर संक्षेप में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर तीन पंक्तियां लिखिये :

i) **चौधरी :**

....

....

....

....

....

ii) **मुकद्दम :**

....

....

....

....

....

17.4 कृषक वर्ग

अभी तक हमने भूमि से होने वाली उपज पर सर्वोच्च अधिकार रखने वाले वर्गों का अध्ययन किया। इस भाग में हम उत्पादन करने वाले वर्ग का अध्ययन करने जा रहे हैं।

कृषक वर्ग में किसान मुख्य रूप से सीधे खेती से जुड़ा हुआ था। हालांकि किसानों के भी कई स्तर थे परन्तु अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से सभी को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत रखा जा रहा है।

किसान ग्रामीण समाज का मुख्य वर्ग था और उससे वसूले गये राजस्व पर ही पूरा शासन और राज्य-तंत्र आधारित था। इकाई 16 पढ़ते समय हमने देखा था कि किसानों को अपनी उपज का अधिकांश हिस्सा राजस्व के रूप में दे देना होता था। ऐसा लगता है कि अधिकांश किसान मुश्किल से अपना (दरिद्रता में) जीवन यापन करते थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

17.4.1 कृषक वर्ग के भूमि संबंधी अधिकार

किसानों के भूमि संबंधी अधिकार को लेकर इतिहासकारों के बीच लम्बी बहस चली है। हालांकि राज्य ने कभी भी भूमि पर किसानों के अधिकारों को नकारा नहीं परन्तु उन्हें कभी भी अपनी इच्छानुसार भूमि खरीदने और बेचने का अधिकार भी नहीं दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक किसान खेती करता था तब तक भूमि पर उसका अधिकार होता था। किसान खेती करता रहे और राजस्व देता रहे तो **जमींदारों** और राज्य को किसानों को बेदखल करने का कोई अधिकार नहीं था। ऐसा लगता है कि मुगल काल में भूमि संबंधी सम्पतिगत अधिकार का स्वरूप कुछ स्थिर और निश्चित नहीं हुआ था। हां, इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इस दौरान भूमि के उत्पादन पर तरह-तरह के दावे प्रस्तुत किए गये।

कई समकालीन आलेखों में शोषण से पीड़ित होकर या अन्य समस्याओं के कारण किसानों के गांव छोड़कर भाग जाने का उल्लेख मिलता है। ऐसी अनेक घटनाओं का पता चलता है जिसमें किसान व्यक्तिगत रूप में या सामूहिक रूप में कहीं जाकर बस गये हों। मुगल कालीन भारत में किसानों का एक जगह से दूसरी जगह जाना एक स्थापित तथ्य है। इस प्रकार का स्थान परिवर्तन और पलायन शोषण या बाढ़ अथवा अकाल जैसे प्राकृतिक प्रकोपो के कारण हुआ करता था।

17.4.2 कृषक वर्ग का स्तरीकरण

कृषक वर्ग कोई समरूप समुदाय नहीं है। इनका स्तरीकरण सम्पति और सामाजिक हैसियत में भिन्नता के कारण था। बड़े किसानों के पास ज्यादा संसाधन होते थे, उनके पास ज्यादा

खेत थे और वे अपने खेतों में मजदूरों की भी सहायता लेते थे। वे गांव के मुखिया (**मुकद्दम** या **पटेल**) के रूप में अन्य किसानों के उत्पादन से हिस्सा ग्रहण कर सकते थे। यह विभाजन इतना स्पष्ट था और सरकारी आंकड़ों और लेखों में इनका अलग से उल्लेख किया जाता था। धनी किसानों को उत्तर भारत में **खुदकाश्त** (स्वयं खेती करने वाले कृषक), राजस्थान में **घरूहल** और महाराष्ट्र में **मिरासदार** कहते थे। गरीब किसानों को उत्तर भारत में **रेजा रियाया** (छोटे किसान), राजस्थान में **पालती** और महाराष्ट्र में **कुनबी** कहते थे।

इसका एक प्रमुख कारण चारों तरफ फैली नगदी व्यवस्था में ढूंढा जा सकता है। भारत के अधिकांश हिस्सों में भू-राजस्व का भुगतान नगद के रूप में होता था, अतः किसानों और खेतिहरों को बाध्य होकर अपनी फसल बाजार जाकर व्यापारियों को बेचनी पड़ती थी या फसल कटाई के समय महाजन से उधार लेना पड़ता था। ऐसी स्थिति में नगदी फसल उगाने वाले किसान फायदे में रहते थे क्योंकि वे ऊंचे दामों में अपनी फसल बेचते थे। परंतु संसाधनों के अभाव में जो किसान खाद्य फसलें उगाते थे उनका भाव बाजार में अपेक्षाकृत कम होता था और उन्हें कम पैसा मिलता था। सभी किसान नगदी फसल की खेती नहीं कर सकते थे क्योंकि इसमें लागत ज्यादा आती थी; अच्छी किस्म का बीज, बेहतर उर्वरक, सिंचाई या नहर सुविधा और उर्वर भूमि की जरूरत पड़ती थी। भू-राजस्व की नगद मांग के कारण सम्पन्न किसान और निर्धन किसान के बीच की खाई बढ़ती चली गयी। सम्पन्न किसान अपने संसाधनों का उपयोग कर नगदी फसल उगा सकता था जबकि निर्धन किसानों के लिए खाद्यान्न फसल उगाना भी महंगा और कष्टकर कार्य होता था। भू-राजस्व मांग की दमनात्मक प्रवृत्ति के कारण भी किसान वर्ग में भेद पैदा हो गये। अमीर और गरीब दोनों प्रकार के किसानों से एक ही प्रकार की राजस्व मांग की जाती थी परंतु गरीब किसानों को अमीरों की अपेक्षा ज्यादा बोझ झेलना पड़ता था। ग्रामीण संगठन या आम बोलचाल की भाषा में ग्रामीण समुदाय ने **खुदकाश्त** किसानों के राजस्व की दर कम करके और इस घाटे को **रेजा रियाया** द्वारा पूरा करवाकर इस विभाजन को और गहरा बना दिया।

किसान वर्ग के विभाजन का आधार केवल आर्थिक ही नहीं था। गांव के स्थाई निवासी (उत्तर भारत में **खुदकाश्त**, महाराष्ट्र में **मिरासदार** और दक्खन में **थालवैक या थालकर**) और अस्थाई निवासियों (उत्तर भारत में **पाई काश्त** महाराष्ट्र में **उपरी**) में भी भेद था। जातिगत बंधन और गोत्रीय संबंध (**भाई चारा**) भी विभाजन के आधार थे।

MADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

भारत के गांवों में किसानों से भी नीचे एक सामाजिक दृष्टि से भी निम्न श्रमिक वर्ग था, जिन्हें दास समझा जाता था। कृषक जाति के अनुपात में उनकी संख्या का अनुमान लगाना लगभग असंभव है। परन्तु संभवतः भारत की ग्रामीण जनसंख्या में उनकी संख्या काफी थी। समकालीन साहित्य में उन्हें **चमार**, **बलाहार**, **थोरी** और **धानुक**, आदि कहा गया है। वे किसानों और **जमींदारों** के लिए सस्ती दरों पर मजदूरी करते थे। बुआई और कटाई के समय ये किसानों और **जमींदारों** के खेतों में काम करते थे इसलिए उन्हें दबाकर रखना उन दोनों (किसान और **जमींदार**) के हित में था। सस्ती दर पर मजदूर उपलब्ध होने के कारण कृषि लागत में कमी आई और "अधिशेष" उत्पादन में वृद्धि हो गई। इससे शासक और ज्यादा राजस्व वसूलने के लिए प्रवृत्त हुआ। इन निम्न जाति के मजदूरों का शोषण राज्य, **जमींदार** और किसान एक साथ मिलकर करते थे।

17.4.3 ग्रामीण समुदाय

आमतौर पर एक गांव के किसान अधिकांशतः एक ही जाति के होते थे। ऐतिहासिक रूप से इन गांवों को एक परिवार या कुल द्वारा बसाया जाता था। प्रभावशाली जाति के किसानों के अलावा एक गांव में निम्न जाति के मजदूर भी रहा करते थे। समकालीन आलेखों को देखने से लगता है कि कई मामलों में ये गांव समुदाय के रूप में कार्य करते थे। इससे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि यहां किसी प्रकार की सामुदायिक भूमि की व्यवस्था थी। खेतों का मालिक निश्चित रूप से कोई कृषक होता था। राजस्व निर्धारण और वसूली की सुविधा को ध्यान में रखते हुए राजस्व पदाधिकारी गांव को एक इकाई मान लिया करते थे। **पटवारी**

द्वारा ग्रामीण पदाधिकारी के रूप में कार्य करना इसका प्रमाण है। यह माना जाता है कि **पटवारी** को व्यक्तिगत किसानों के उत्पादन और राजस्व अदायगी का हिसाब-किताब रखना पड़ता था। लेकिन गांव एक इकाई के रूप में राज्य को भुगतान करता था। व्यक्तिगत किसानों के राजस्व को एक सामूहिक निधि-कोष में डाल दिया जाता था जो **पटवारी** के जिम्मे होता था। इस कोष से कुछ पदाधिकारियों के भू-राजस्व, शुल्क और अन्य राशियों और गांव के सामूहिक खर्च का भुगतान किया जाता था। यहां तक कि महाजन से लिया गया ऋण भी इसी कोष से चुकाया जाता था।

गांव के प्रभावशाली लोगों को मिलाकर एक ग्रामीण पंचायत बनती थी। ग्राम पंचायत भूमि से सम्बद्ध विवादों को निपटाता था, बंजर भूमि की देखभाल, आदि का कार्य करता था। अपराधियों को गिरफ्तार करना, चोरी हुई वस्तु का मूल्य चुकाना या उन्हें खोज निकाला पंचायत की राज्य के प्रति जिम्मेदारी थी। ये पंचायतें राज्य से ऊपर नहीं थीं। राज्य इसे ग्रामीण समाज में भूमिका निभाने से तब तक नहीं रोकता था जब तक कि राज्य के आधारभूत सिद्धांतों पर ही कुठाराघात न किया जा रहा हो।

गांव में कुछ सामाजिक समुदाय ऐसे भी होते थे जो सीधे कृषि उत्पादन से सम्बद्ध नहीं थे परन्तु कृषि गतिविधियों में उनकी कुछ न कुछ भूमिका होती थी। महाजन राज्य और किसानों के बीच मध्यस्थ का कार्य करता था और उसका ग्रामीण समाज और अर्थव्यवस्था पर काफी नियंत्रण होता था। वे किसानों को व्यक्तिगत तौर पर ऋण प्रदान करते थे और गांव को सामूहिक तौर पर बीज और औजार के लिए कर्जे देते थे। वे राजस्व अदा करने और सामाजिक जरूरतों को पूरा करने के लिए भी कृषकों को ऋण दिया करते थे।

गांवों में कारीगर भी रहा करते थे। उन्हें अपनी सेवाओं के बदले कटाई के समय फसल दी जाती थी। दक्खन और महाराष्ट्र में यह व्यवस्था अच्छे ढंग से व्यवस्थित थी। इन्हें **बलूतेदार** कहा जाता था। हम इनके बारे में इकाई 19 में अध्ययन करेंगे।

ग्रामीण समुदाय, **पंचायत** या **बलूतेदार** की व्यवस्था मुगल साम्राज्य के सभी गांवों में एक समान नहीं थी। विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की संरचनाएं थी। सभी गांवों में किसी न किसी रूप में सामुदायिक संरचना विद्यमान थी। परन्तु, उनका अपने सदस्यों पर नियंत्रण का स्तर और प्रभाव अलग-अलग था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

17.5 कृषक वर्गों के अन्तर्संबंध

इस इकाई के आरंभिक भाग में हमने कई कृषि वर्गों का उल्लेख किया है। हमने देखा कि **जागीरदार**, धार्मिक अनुदान प्राप्तकर्ता, **जमींदार** और ग्रामीण स्तर पर अनेक बिचौलिए उत्पादन के अधिशेष से अपना हिस्सा लिया करते थे। हमने उत्पादक वर्ग अथवा किसान वर्ग का भी अध्ययन किया। इस भाग में हम इन वर्गों के संबंधों का अध्ययन करेंगे।

ज़मींदारों और **ज़ागीरदारों** का भरण-पोषण किसानों द्वारा उपजाए गये अनाज के अधिशेष से होता था अतः किसानों के शोषण के मामले में ये एक दूसरे की सहायता किया करते थे। **ज़मींदार** गांव में स्थाई रूप से रहता था। अतः वह किसानों पर इतना ज्यादा अत्याचार और शोषण नहीं करना चाहता था कि किसान अपना खेत छोड़ कर भाग जाए जिसके फलस्वरूप कृषि कार्य के बंद हो जाने का भय था। इससे आने वाले वर्ष में उसी की वित्तीय आमदनी पर प्रभाव पड़ता। बर्नियर, जो 17वीं शताब्दी के मध्य में भारत आया था, उसने **ज़ागीरदारों** के दृष्टिकोण पर विशेष टिप्पणी की है। **ज़ागीरों** के जल्दी-जल्दी स्थानान्तरण के कारण **ज़ागीरदार**, राज्यपाल और राजस्व के ठेकेदार किसान की दयनीय स्थिति की बिल्कुल चिंता नहीं करते थे। वे केवल किसानों को ज्यादा से ज्यादा चूसना जानते थे। उनके शोषण से तंग आकर किसान अपने खेत छोड़कर भाग जाते थे और खेती नहीं हो पाती थी।

18वीं शताब्दी का एक लेखक जवाहर मल बेकस लिखता है कि एक दिन का **हाकिम** (**ज़ागीरदार**) एक क्षण में पांच सौ वर्षों के **जमींदार** को हटा कर उसके स्थान पर किसी भी व्यक्ति को बैठा सकता है। इरफान हबीब उसकी शक्तियों पर विस्तार से चर्चा करते हुए लिखते हैं, "**ज़ागीरदार** किसानों को एक अर्ध-दास की तरह भूमि से बांध कर रखने की ताकत रखता था और अगर वे भाग जाएं तो पुनः पकड़ कर वापस बुला सकता था।" 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में **ज़ागीरों** की अस्थिरता और अनिश्चितता के कारण **ज़ागीरदार** किसानों का दमन करने लगे। उन्हें उनके कल्याण की तनिक भी चिंता नहीं थी। इरफान हबीब के अनुसार "हालांकि निःसन्देह मुगल प्रशासन ने **ज़ागीरदारों** की अवैध मांग को नियंत्रित और कम करने की कोशिश की, फिर भी यह निश्चियपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि **ज़मींदारों** द्वारा निजी तौर पर थोड़े समय के लिए बढ़ाए गए राजस्व के दबाव को इसके द्वारा कम किया जा सका था। इन दबाबों के कारण न केवल खेती के प्रसार में बाधा पड़ी बल्कि इससे मुगल शासकीय वर्ग दो प्रमुख कृषि वर्गों, **जमींदारों** और कृषक वर्ग से गहरे रूप में उलझ गया।

कृषक वर्ग अंदर से विभाजित था और खेतिहर मजदूरों से उनके अंतर्विरोधों के कारण यह वर्ग सशक्त और संगठित वर्ग के रूप में न उठ सका और इस वर्ग की क्षमता में कमजोरियां पैदा हो गई। इस विभाजित और विखंडित वर्ग में मध्यकालीन निरंकुश राजतंत्र से लड़ने की क्षमता नहीं थी। इसके बावजूद इन्होंने दो कारणों से विद्रोह किया पहला जब राजस्व मांग किसानों के अधिशेष उत्पादन से ज्यादा हो गयी और इस प्रकार उनके अस्तित्व पर ही संकट आ गया। इन विद्रोहों में किसानों ने राजस्व घटाने की मांग के अलावा और कोई मांग नहीं की। किसानों ने **ज़मींदारों** के अनुयायियों के रूप में भी विद्रोह किया जो राज्य या **ज़ागीरदार** के खिलाफ विद्रोह कर रहे थे (ये विद्रोह केवल उत्पादन में हिस्सा लेने के लिए हुए थे)। किसान इस आशा में उनका साथ दे रहे थे कि विद्रोह के बाद उनकी स्थिति सुधरेगी या फिर अपनी मालिक की सेवा मात्र के उद्देश्य से कर रहे होते थे। इस प्रकार के किसान विद्रोह मूलतः **ज़मींदारी** विद्रोह ही थे : **ज़मींदार** उनका नेतृत्व करते थे और किसान **ज़मींदारों** के उद्देश्य पूर्ति में सहायक का काम करते थे। इन **ज़मींदारों** के नेतृत्व में हुए किसान आन्दोलनों की चर्चा हम अलग इकाइ में करेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 3

1) किसानों की विभिन्न श्रेणियों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) ग्रामीण समुदाय किस प्रकार कार्य करता था।

....

....

....

....

....

3) **जागीरदारों** और **जमींदारों** के हितों में क्या टकराव थे?

....

....

....

....

....

....

....

....

17.6 सारांश

इस इकाई में हमने निम्नलिखित बातों का अध्ययन किया :

- **ज़ागीरदार** राज्य के लिए कृषि अधिशेष का बड़ा हिस्सा वसूल करता था;
- राजस्व प्राप्तकर्ताओं को राज्य की तरफ से राजस्व-मुक्त भूमि अनुदान में दी जाती थी;
- **जमींदार** जमीन का मालिक हुआ करता था लेकिन उपज पर उसका अनुवांशिक अधिकार होता था। इन अधिकारों को बेचा जा सकता था;
- जब **ज़मींदार** राज्य के लिए राजस्व इकट्ठा करता था तब उसे **नानकार** मिलता था। लेकिन जब राज्य सीधे अपने कर्मचारियों द्वारा राजस्व इकट्ठा करता था तो **जमींदार** को **मालिकाना** हिस्सा दिया करता था। **जमींदार** अन्य उपकार भी वसूल किया करते थे;
- **जमींदार** सेना रखते थे;
- **जमींदार** हमेशा जाति और गोत्र में बंटे रहे और भारत के शासकीय वर्ग के रूप में नहीं उभर सके;
- गांव का मुखिया और अन्य पदाधिकारी भी कृषि अधिशेष से अपना हिस्सा ग्रहण करते थे;
- किसान को अपनी उपज का अधिकांश हिस्सा राज्य, **जमींदार** और अन्य बिचौलियों को दे देना पड़ता था;
- कृषक वर्ग एक समजाति समुदाय नहीं था। ये भूमि और आय के आधार पर विभाजित थे। जाति और गोत्र के आधार पर भी वे विभाजित थे;
- भूमिहीन किसान या निम्न जाति से संबद्ध समझे जाने वाले मजदूर ग्रामीण समाज के सबसे सताए हुए लोग थे; और
- **जागीरदारों** और जमींदारों के बीच हितों का टकराव जबरदस्त था। दोनों के बीच के संघर्ष में किसान आमतौर पर **जमींदारों** का पक्ष लेते थे और ऐसे झगड़ों में उनका ही सबसे ज्यादा नुकसान होता था।

17.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 17.2

2) देखिए भाग 17.2

बोध प्रश्न 2

1) **जमींदारों** का भूमि के उत्पादन पर अधिकार था। विस्तार के लिए उपभाग 17.3.1 देखिए।

2) देखिए उपभाग 17.3.3 और 17.3.4

बोध प्रश्न 3

1) खेती, संसाधनों और भूमि संबंधी अधिकारों की प्रकृति के आधार पर किसानों को कई श्रेणियां में विभाजित किया जा सकता है। देखिए उपभाग 17.4.2

2) गांव के लोगों की प्रतिनिधि सभा ग्रामीण समुदाय के रूप में कार्य करती थी। देखिए उपभाग 17.4.2

3) **जमींदारों** का अपने इलाके के साथ स्थाई हित जुड़ा हुआ था जबकि **जागीरदारों** का स्थानान्तरण होता रहता था। **जागीरदारों** का उद्देश्य केवल किसानों का शोषण करना होता था जबकि **जमींदारों** को भय होता था कि किसान खेत छोड़कर भाग जाएंगे और उनकी आमदनी कम हो जाएगी। देखिए भाग 17.5

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 18 भू-राजस्व व्यवस्था : मराठा, दक्खन और दक्षिण भारत

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 भू-राजस्व व्यवस्था : मराठा और दक्खनी राज्य
- 18.2.1 कर निर्धारण विधि
- 18.2.2 भू-राजस्व मांग निर्धारण
- 18.2.3 भू-राजस्व वसूली के तरीके
- 18.2.4 राजस्व की ठेकेदारी
- 18.2.5 स्वायत्त शासक
- 18.2.6 राज्य और किसान

18.3 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कर
18.4 दक्षिण भारत में भू-राजस्व व्यवस्था
- 18.4.1 नायक राज्य
- 18.4.2 मालाबार राज्य
- 18.4.3 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कर

18.5 सारांश
18.6 शब्दावली
18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- दक्खन और दक्षिण भारत के राजस्व मूल्यांकन की व्यवस्था को जान सकेंगे;
- कृषि उत्पादन में राज्य के हिस्से और इसे वसूल करने के तरीके का उल्लेख कर सकेंगे;
- राजस्व वसूली की प्रक्रिया में राजस्व के ठेकेदारों की भूमिका पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- राजा के साथ स्वायत्त शासकों के सम्बन्धों का वर्णन कर सकेंगे;
- भूमि कर के अतिरिक्त दक्खन और दक्षिण भारतीय राज्यों के अन्य राजस्व स्रोतों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- भू-राजस्व की प्रकृति और किसानों के साथ राज्य के सम्बन्धों पर प्रकाश डाल सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की इकाई 3, 9 और 12 में आप दक्खन और दक्षिण भारतीय राज्यों की राजनैतिक प्रक्रिया के निर्माण की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इकाई 10 में मराठा शक्ति के उदय और मुगलों के साथ उनके संबंधों की भी चर्चा की जा चुकी है। दक्खन और दक्षिण भारतीय राज्यों की भू-राजस्व व्यवस्था पर विचार करने के पूर्व आइये हम पहले आपको दक्खन और दक्षिण भारतीय राज्यों की भू संरचना और प्रशासनिक विभाजनों की जानकारी दे दें। (इस खंड की इकाई 19 में दक्खन तथा दक्षिण भारत में कृषीय संबंधों का विस्तार से सर्वेक्षण किया जाएगा।) पूरी भूमि तीन भागों में विभक्त थी (1) राज्य भूमि जो

कि **भण्डारवडा** या **मुआमला** के नाम से जानी जाती थी, (2) सेनानायकों का सेना के रखरखाव के लिए दी जाने वाली भूमि को **असरा, मोकासा** और वेतन के रूप में दी जाने वाली भूमि को **जागीर** और **सरंजाम** कहते थे, तथा (3) राजस्व-मुक्त भू-अनुदान (**मान्य, इनाम**)। किसानों के अधिकार वाली भूमि **मिरास** कहलाती थी। किसानों के भूमि पर अधिकार को **मिरासी** अधिकार कहते थे।

राज्य के सीधे प्रबंधन वाली भूमि की देखरेख का भार **मोकासादारों** पर रहता था जिन्हें राजा अपनी इच्छा से स्थानान्तरित कर सकता था। परन्तु आमतौर पर ये लंबे समय तक एक स्थान पर बने रहते थे और कभी-कभी उनके पुत्र उनका स्थान ग्रहण करते थे। किसान का भूमि पर स्वामित्व था। सामुदायिक स्वामित्व के उदाहरण भी मिल जाते हैं। कुछ जमीन (अधिकांशतः बंजर) पर पूरे गांव का अधिकार होता था और पंचायत द्वारा इसकी देख-रेख की जाती थी। **मौजा** कर निर्धारण और मूल्यांकन की सबसे छोटी इकाई थी। कई गांव मिलकर एक राजस्व इकाई **महाल** बनती थी। कई गांव को मिलाकर **तरफ, टप्पा करयात, सिम्त** बनते थे। कई परगनों को मिलाकर **सूबा** प्रांत, प्रदेश बनता था। शिवाजी का साम्राज्य तीन प्रांतों में विभाजित था जिसके मुखिया **सरसूबेदार** होते थे।

इस पृष्ठभूमि की जानकारी के बाद आइये हम दक्खन और दक्षिणी भारत की भू-राजस्व व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करें।

18.2 भू-राजस्व व्यवस्था : मराठा और दक्खनी राज्य

दक्खनी राज्यों की भू-राजस्व व्यवस्था के निर्माण में निजामशाही प्रधानमंत्री मलिक अम्बर का महत्वपूर्ण योगदान है। उसने पहली बार राजस्व निर्धारण और वसूली का सर्वोत्तम वैज्ञानिक तरीका विकसित किया। उस पर टोडरमल के नियमों का प्रभाव था। कुछ फेर बदल के साथ सभी दक्खनी राज्यों (बीजापुर गोलकुंडा और अहमदनगर) और मराठों ने अपनी राजस्व व्यवस्था उसी के बनाये अधिनियमों पर निर्धारित की।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

18.2.1 कर निर्धारण विधि

मलिक अम्बर के अधीन कर निर्धारण वास्तविक जमीन पर की गयी खेती और उत्पादित फसल के नगद मूल्य के आधार पर किया जाता था। लेकिन उसने कभी भी भूमि का सर्वेक्षण नहीं कराया। कर निर्धारण और मूल्यांकन वास्तविक माप के आधार पर नहीं बल्कि अनुमान पर आधारित था। कर का निर्धारण वंशानुगत ग्रामीण पदाधिकारियों, **देशमुखों** और **पाटिलों** की सहायता से किया जाता था।

परन्तु शिवाजी ने जमीन को मापने पर सबसे ज्यादा ध्यान दिया। रस्सी की कमियों (बदलते मौसम के साथ इसमें परिवर्तन होता रहता है) को देखते हुए शिवाजी ने इसके स्थान पर **काठी** (मापने की छड़) का प्रयोग आरंभ करवाया। बीस **काठी** मिलकर एक **बीघा** और 120 **बीघे** मिलकर एक **चवर** बनता था। लेकिन **बीघे** के आकार में स्थानीय अंतर मौजूद थे।

1678 ई. में अन्नाजी दात्तो को व्यवस्थित कर निर्धारण का जिम्मा सौंपा गया। इस सर्वेक्षण कार्य के लिए अन्नाजी दात्तों ने **परगना** और ग्रामीण पदाधिकारियों की सहायता ली। परन्तु उन्होंने पूर्णरूपेण इन पदाधिकारियों पर ही भरोसा नहीं कर लिया। उनके मूल्यांकन और कर निर्धारण को जांचने और परखने के लिए उन्होंने एक **टप्पे** के अधीन एक पहाड़ी, एक दलदली और एक काली मिट्टी वाले क्षेत्र का खुद मूल्यांकन किया। कई मामलों में उन्होंने स्थानीय पदाधिकारियों द्वारा किए गए कर निर्धारण में 25 से 100 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी की। इसके अलावा किसानों की भूमि पर कर निर्धारण करते समय उनसे भी विचार-विमर्श किया गया।

मलिक अम्बर ने मोटे रूप से भूमि को दो कोटियों में विभक्त किया : **बागयत** (बागीचा भूमि) और **जिरायत** (खेती की भूमि)। **जिरायत** भूमि को प्रारंभिक काल में चार श्रेणियों में विभक्त किया गया। शिवाजी के शासनकाल में **जिरायत** भूमि कुल मिलाकर बारह कोटियों में विभक्त थी। आमतौर पर बंजर भूमि का कर निर्धारण नहीं किया जाता था। लेकिन जैसे-जैसे जमीन पर दबाव बढ़ता गया वैसे-वैसे खेती योग्य बंजर जमीन पर खेती की जाने लगी और इन नयी जमीनों का कर निर्धारण किया गया। मलिक अम्बर ने "**प्रगतिशील कर निर्धारण**" की व्यवस्था विकसित की। संभवतः निजामशाही राज्य में इस प्रकार की भूमियों पर पहले दो साल तक कर नहीं लगाया गया लेकिन तीसरे साल से राज्य द्वारा कुल उत्पादन का एक छोटा हिस्सा वसूला जाता था, आठवें साल में पूर्ण दर पर राजस्व की वसूली की जाती थी। लेकिन मराठों के शासन काल में खेती योग्य खाली पड़ी भूमि पर कृषि के पहले ही साल से कर की वसूली शुरू कर दी जाती थी। प्रत्येक वर्ष धीरे-धीरे इसकी दर में वृद्धि की जाती थी और आठवें साल पूर्ण दर पर कर वसूल किया जाता था। मराठों के अधीन कभी-कभी **बीघा** के स्थान पर हलों की संख्या के आधार पर भी कर निर्धारण किया जाता था। कभी-कभी राजस्व के उद्देश्य से 6-7 **बीघाओं** का मूल्यांकन एक **बीघा** के रूप में किया जाता था। मिट्टी की उर्वरा शक्ति के आधार पर भी राजस्व निर्धारण का मानदंड बदलता रहता था। फसलों के आधार पर भी, जैसे गन्ना, दालें, कपास, आदि पर करों का निर्धारण अलग-अलग किया जाता था। यहां तक कि जब दूसरी फसल (मुख्य फसल से अलग) उगाई जाती थी तो द्वितीय फसल का निर्धारण कम दर पर किया जाता था। मिट्टी की उर्वरा शक्ति और अनुमानित उत्पादन के आधार पर भी कर निर्धारण की दर स्थायी रूप से तय कर दी जाती थी। सभी किसानों के लिए कर निर्धारण अलग-अलग होता था, परन्तु वसूली के लिए पूरे गांव को एक इकाई माना जाता था।

बीजापुर के आदिलशाही शासकों ने भी मलिक अम्बर के कर निर्धारण के तरीकों को ही अपनाया। उनके यहां **तनाब** या मापने की छडी के उपयोग का उल्लेख मिलता है। लेकिन गोलकुंडा के बारे में हम बहुत आश्वस्त नहीं हैं कि कर निर्धारण वास्तविक माप पर आधारित होता था या अनुमान पर।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 1

1) **निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए :**

   क) **काठी :**

   ....

   ....

   ....

   ख) "प्रगतिशील कर निर्धारण" :

   ....

   ....

   ....

2) राजस्व व्यवस्था में अन्नाजी दात्तो के योगदान पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

18.2.2 भू-राजस्व मांग निर्धारण

मलिक अम्बर के अधीन राजस्व मांग कुल उत्पादन का 2/5 हिस्सा थी। फसल के कुल उत्पाद को नगदी में परिवर्तित कर राजस्व मांग निर्धारित की जाती थी तो यह कुल उत्पाद मूल्य का 1/3 हिस्सा होती थी। मराठों द्वारा भी इतनी ही राजस्व मांग निर्धारित की गयी। लेकिन जब शिवाजी ने अन्य करों को समाप्त कर दिया तो राज्य द्वारा राजस्व मांग समेकित रूप में 40 प्रतिशत कर दी गयी।

कुछ मराठी इलाकों पौमावल और रोहिदखोर (1676 ई.) में बटाई द्वारा कर निर्धारण किया जाता था। इन क्षेत्रों में राजस्व मांग कुल उत्पादन का आधा हिस्सा थी। मराठों ने अपने इलाकों की कम उर्वर भूमि का कर निर्धारण करने के लिए मलिक अम्बर की अनुमान पर आधारित विधि का भी पालन किया।

गोलकुंडा और बीजापुर राज्यों में राजस्व मांग बहुत ज्यादा थी। यहां कुल उत्पादन का आधा हिस्सा राजस्व के रूप में वसूल किया जाता था। आमतौर पर राजस्व का निर्धारण और वसूली नगद और वस्तु दोनों में की जाती थी। परन्तु **बागान** भूमि का कर निर्धारण हमेशा नगद में होता था। गोलकुंडा में आमतौर पर करों की वसूली नगद रूप में की जाती थी।

18.2.3 भू-राजस्व वसूली के तरीके

एक बार राजस्व की मांग निश्चित हो जाने के बाद वार्षिक राजस्व का आकलन कर लिया जाता था। जिसे **जमाबंदी** कहा जाता था। इसके बाद राज्य की कुल अनुमानित आय से राजस्व मुक्त भूमि (**इनाम**, आदि) के राजस्व को घटा लिया जाता था। कुल राजस्व मांग से राज्य पदाधिकारियों को वितरित की गयी भूमि से प्राप्त राजस्व को भी घटा दिया जाता था। शेष राजस्व राज्य द्वारा वसूल किया जाता था। वर्ष में दो बार **रबी** (मई महीने में) और **खरीफ** (अक्तूबर) की कटाई के समय राजस्व वसूल किया जाता था।

भू-राजस्व की वसूली के लिए राज्य द्वारा कई पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। यहां हम संक्षेप में इन पदाधिकारियों की शक्तियों और कार्यों की चर्चा करने जा रहे हैं। इस खंड की इकाई 19 में इनकी विस्तार से चर्चा की जाएगी।

ग्रामीण स्तर के पदाधिकारी : राजस्व वसूली की जिम्मेदारी गांव के मुखिया (**मुकद्दम, पाटिल**) पर होता था। उसकी सहायता के लिए एक लेखाकार (**कुलकर्णी**) होता था।

टप्पा और परगना स्तर के पदाधिकारी

टप्पा स्तर पर **देशमुख** या **देसाई** राजस्व वसूल किया करते थे। उनकी सहायता **कारकुन** (लिपिक) करते थे। राजस्व वसूली के लिए वह एक सशस्त्र दल साथ रखता था। अपनी इस सेवा के बदले में उसे कुल प्राप्त राजस्व का पांच प्रतिशत प्राप्त होता था। इसके अलावा वह राजस्व मुक्त वंशानुगत भूमियों पर भी नियंत्रण रखता था। लेखा-जोखा रखने के लिए **देशपाण्डे** या **देशकुलकर्णी** उसकी सहायता के लिए होते थे। ये लेखाकार विभिन्न करों, खेती की गयी भूमि, बोई गयी फसल आदि का लेखा-जोखा रखते थे। इसके बदले में उन्हें राजस्व में से निश्चित हिस्सा मिलता था। परन्तु **देशमुखों** की अपेक्षा उसका हिस्सा काफी कम होता था। वह राजस्व मुक्त भूमि का भी हकदार था। उसका पद वंशानुगत था। अधिकांश मामलों में यह पद ब्राह्मणों को दिया जाता था।

गोलकुंडा में **परगना** स्तर पर राजस्व वसूलने का कार्य **हवलदार** किया करता था। इस **पद** की सार्वजनिक तौर पर बोली लगाई जाती थी और सबसे ज्यादा बोली लगाने वाले को यह पद प्रदान किया जाता था। हालांकि **सरसिम्त** (**सिम्त/तर्फ** का प्रभारी) उसके कार्यों पर निगरानी रखता था, परन्तु व्यावहारिक तौर पर वह अपनी मर्जी का मालिक होता था। उसका मुख्य कार्य राजस्व वसूल करना और उपयुक्त समय पर उपयुक्त राशि केन्द्र को प्रदान करना था। अधिकांशतः **यह** पदाधिकारी बनिया या ब्राह्मण होता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

निजामशाही राज्य में ये राजस्व पदाधिकारी मुख्य रूप से ब्राह्मण थे। उन पर नियंत्रण रखने के लिए उन्हें मुसलमान पदाधिकारियों की निगरानी में रखा जाता था।

आदिलशाही राज्य में **अमीर जुमला** विभाग राजस्व प्रशासन की देख-रेख करता था, जिसका प्रमुख अधिकारी **वकील** होता था। **सरकार** स्तर पर भू-राजस्व वसूली की जिम्मेदारी **सूबेदार** की होती थी।

जदुनाथ सरकार का मानना है कि शिवाजी ने **जमीदारों, देशमुखों, देसाइयों, पाटिलों,** आदि जैसे बिचौलियों को बिल्कुल हटा दिया था। परन्तु सतीश चन्द्र का मानना है कि शिवाजी ने केवल इन बिचौलियों की असीमित शक्ति को कम किया था। उसने राजस्व वसूली की निगरानी और निरीक्षण के लिए सीधे अपने राज्य अधिकारियों को नियुक्त किया था। राजस्व अधिकारियों को अपने हिस्से से ज्यादा अंश लेने की मनाही थी। ऐसा करने वाले को कड़ा दंड दिया जाता था।

पेशवाओं के अधीन **सरसूबेदारों** के पास राजस्व संबंधी असीम शक्ति आ गयी। वह **कमाविसदारों** आदि का वेतन निश्चित करता था, उसे **रसद** (**कमाविसदारों** द्वारा अग्रिम भुगतान) को घटाने या बढ़ाने का अधिकार प्राप्त था। उसे राजस्व में छूट देने और यहां तक कि **फड़निस** को नियुक्त करने या पदच्युत करने का भी अधिकार था। पेशवाओं के अधीन राजस्व वसूल करने में **ममलतदारों** और **कमाविसदारों** ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। **परगनों** में वह पेशवा का प्रतिनिधि था (गोलकुंडा राज्य में ये अधिकार **हवलदार** के पास थे)। उसका कार्य **परगनों** और **परगने** के अधिकार क्षेत्र में पड़ने वाले गांवों से राजस्व वसूल करना और उसे केंद्र तक पहुंचाना था। सामान्य तौर पर उन्हें कुछ **परगनों** का जिम्मा दे दिया जाता था। राज्य उनसे एक निश्चित अग्रिम राशि, **रसद** (अग्रिम भुगतान) प्राप्त करता था। ऐसी स्थिति में गांवों में और **सिम्तों** के **देशमुखों** और **मुकद्दमों**/पाटिल को **कमाविसदारों** को राजस्व वसूली पहुंचाने का निर्देश था।

कुछ मामलों में केन्द्र की अनुशंसा पर **सरसूबेदार ममलतदारों** की नियुक्ति कर सकता था। इन मामलों में **ममलतदार सरसूबेदार** को राजस्व का भुगतान करता था, सीधे केन्द्र को नहीं। उनको अपने निश्चित हिस्से से ज्यादा अंश लेने की मनाही थी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

एक रोचक तथ्य यह है कि कभी-कभी उन्हें राज्य के बाहर के खास क्षेत्रों के **कमाविस** का कार्य-भार भी सौंपा जाता था। उनसे स्वयं उस क्षेत्र को जीतने का आदेश दिया जाता था। इन मामलों में उन्हें सेना रखने का भी निर्देश होता था। उन सेनाओं को उस क्षेत्र के राजस्व से वेतन दिया जाता था न कि केन्द्र द्वारा। उनका वेतनमान आकर्षक था। वेतन के अलावा उन्हें पालकी, मशालची, रोशनी ढोने वाले और एक **अफ्तागीर** के रखरखाव के लिए भत्ता भी दिया जाता था। उनकी शक्तियों पर अंकुश लगाने के लिए राज्य सीधे **मजूमदारों** (प्रतिदिन के लेखे की जांच के लिए) और **फड़नीस** की नियुक्ति करता था जो **रोजनामचा** लिखता था। वे सीधे राज्य के प्रति जिम्मेदार होते थे। भ्रष्ट पदाधिकारियों को दंड देने के लिए **अमीन** की नियुक्ति की जाती थी। एक दूसरा पदाधिकारी-**दफ्तरदार-महालों** की आय और व्यय का वार्षिक प्राक्कलन तैयार करता था। **कमाविसदारों** के लेखे की नियमित जांच करने के लिए केन्द्र खासतौर पर पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था।

18.2.4 राजस्व की ठेकेदारी

मलिक अम्बर की व्यवस्था में ठेके पर राजस्व वसूलने की कोई व्यवस्था नहीं थी। उसने वंशानुगत ग्रामीण पदाधिकारियों की सहायता से सीधे किसानों से संबंध स्थापित करने की कोशिश की। शिवाजी ने भी मलिक अम्बर का अनुसरण किया। उसने न केवल राजस्व की नीलामी की प्रथा समाप्त कर दी बल्कि **देशमुखों** जैसे स्थानीय वंशानुगत राजस्व पदाधिकारियों की शक्ति भी काफी कम कर दी। हालांकि बाद में पेशवाओं के अधीन अग्रिम भुगतान के बदले में **कमाविसदारों** को भी ठेके पर वसूली करने के लिए दी जाने लगी। परन्तु सभी दक्खनी सल्तनतों में राजस्व वसूल करने के लिए आमतौर पर राजस्व

की नीलामी की प्रथा प्रचलित थी। राज्य सीधे अपने पदाधिकारियों से राजस्व नहीं वसूल करवाता था बल्कि सबसे ज्यादा बोली लगाने वाले को राजस्व वसूल करने का अधिकार दे दिया जाता था जो राज्य को एक निश्चित रकम देने का वादा करता था। ये राजस्व ठेकेदार अपने अधिकार दूसरों को दे दिया करते थे और यह आगे की ओर उप-हस्तांतरित होता जाता था।

राजस्व को नीलाम करने और इसे क्रमशः दूसरों को हस्तांरित और उपहस्तांतरित करने के कारण कृषकों पर राज्य का प्रत्यक्ष नियंत्रण अवश्य कम हुआ होगा।

कृष्णा नदी के उत्तर में गोलकुंडा के तटीय क्षेत्रों के गर्वनर राज्य के अन्य हिस्सों में कार्यरत **हवलदारों** के समान ही राजस्व वसूलने की शर्तों पर पद प्राप्त करते थे। वे भी सट्टेबाजों की तरह व्यवहार करते थे और अन्य दक्खनी राज्यों की तरह ही अपने अधिकारों को दूसरों को उपहस्तांरित कर देते थे। केन्द्र सरकार **आमिलों** के माध्यम से उन पर नियंत्रण स्थापित करती थी परन्तु वे भी किसानों के कल्याण की अपेक्षा इस बात पर अधिक ध्यान देते थे कि राज्य को नियमित भुगतान मिलता रहे। बीजापुर में भी युसुफ आदिलशाह के शासनकाल से ही राजस्व नीलामी की प्रथा प्रचलन में थी।

18.2.5 स्वायत्त शासक

गोलकुंडा में गोदावरी पार के क्षेत्र और खम्मामेट्ट और मुस्तफानगर जिले स्वायत सरदारों/**राजाओं** के अधीन थे जो कुतुबशाही शासकों को नियमित रूप से कर दिया करते थे, परन्तु आन्तरिक मामलों में वे गोलकुंडा राज्य के नियंत्रण से स्वतंत्र थे। विजयनगर शासन के पतन के बाद कई सरदार आदिलशाही राज्य के अधीन आ गये। आदिलशाही शासक कर मात्र से ही संतुष्ट थे, वे इन सरदारों/अधीनस्थ राजाओं के आन्तरिक मामलों में शायद ही कभी हस्तक्षेप करते थे। आदिलशाह ने हिंदु सरदारों से वार्षिक कर के रूप में तीन करोड़ रुपये प्राप्त किए। परन्तु ये कर नियमित नहीं थे। मौका मिलते ही ये सरदार/शासक कर देने से मुकर जाते थे।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

18.2.6 राज्य और किसान

राजस्व अधिकारियों के अत्याचार से किसानों को बचाने के लिए शिवाजी ने कुछ विशेष कदम उठाए। हम पढ़ चुके हैं कि उन्होंने **देशमुखों**, **देशपाण्डे**, **पाटिलों**, आदि की ताकत काफी कम कर दी। किसानों की भलाई के लिए उन्होंने सभी प्रकार के उपकरों **अबवाब** को भी समाप्त कर दिया। यहां तक कि उन्होंने अपने राज्य पदाधिकारियों की नियुक्ति की जो व्यक्तिगत रूप से जाकर वसूली का निरीक्षण करते थे। पदाधिकारियों को निर्धारित राशि से ज्य. कर वसूल करने की मनाही थी। पलायन करने वाले कृषकों को प्रोत्साहित करने के लिए (जो अपनी ज़मीन छोड़ चुके होते थे) और उन्हें वापस बुलाने और बसने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए कभी-कभी राजस्व पदाधिकारियों को आदेश दिया जाता था कि वे बकाया राशि की मांग न करें। बकाया राशि वसूलने के लिए किसानों के औजारों और खेती के सामानों को जब्त न करने के भी आदेश थे। राजस्व की वसूली उचित समय पर करने पर जोर दिया गया उन्हें बुआई तथा जुताई के समय अथवा जब फसल खेत में खड़ी हो तब राजस्व वसूली की मनाही थी। अकाल, बाढ़ और फसलों के नष्ट होने पर किसानों को विशेष रियायतें दी जाती थी। जरूरत के समय किसानों को नगद, बीज और हलों के रूप में **तकावी** ऋण दिये जाते थे, जिसे वे आसान किश्तों में अदा करते थे।

परन्तु जल्द ही पेशवा शासकों के समय शिवाजी की व्यवस्था में बुराईयां आ गयी। **कमाविसदार** करीब-करीब राजस्व-ठेकेदारों के रूप में कार्य करते थे और पेशवाओं को **रसद** के रूप में अग्रिम राशि देते थे। उनकी शक्ति में वृद्धि होने से शिवाजी के उपायों से प्राप्त होने वाले लाभ समाप्त हो गये।

अपने नये राजस्व प्रयोग से मलिक अम्बर को कृषकों के हितों की रक्षा करने, कृषि को बढ़ावा देने और जितना संभव था उतना बिचौलियों को हटाने में सफलता तो मिली परन्तु उसकी व्यवस्था में कुछ दोष थे जिन्हें बाद में शिवाजी ने ठीक किया। अनुमानित आकलन करने की प्रथा काफी दोषपूर्ण थी क्योंकि यह न तो वास्तविक उत्पादन पर और न ही सही मूल्यांकन पर आधारित थी।

बीजापुर और गोलकुंडा शासक भी पूरे राजस्व की नीलामी कर दिया करते थे जिसके कारण राजस्व पदाधिकारियों की शक्ति बढ़ी। ये सभी राजस्व पदाधिकारी आमतौर पर शोषक थे और किसानों से ज्यादा से ज्यादा रकम उगाहने के प्रयास में रहते थे। राज्य और उनके द्वारा नियुक्त पदाधिकारी तब तक कोई चिंता नहीं करते थे जब तक कि उन्हें उनका तथा राज्य का हिस्सा नियमित रूप से मिलता रहता था। वे किसानों के कल्याण की परवाह नहीं करते थे।

आपको याद होगा कि मुगलों ने दक्खन पर अधिकार स्थापित करने के बाद यहां राजस्व प्रशासन की अपनी व्यवस्था कायम की। आप अब तक यह जान गये होंगे कि मुगलों ने 1636 ई. में अहमदनगर और क्रमशः 1686 ई. और 1687 ई. में बीजापुर और गोलकुंडा को अपने अधिकार में ले लिया था। इस खंड की इकाई 16 में मुगलों के राजस्व प्रशासन की विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। यह रोचक तथ्य है कि जिस समय मुगल दक्खन में अपनी व्यवस्था आरोपित करने की कोशिश कर रहे थे उस समय **देशमुख** और **देशपाण्डे** की उपस्थिति भी कायम थी जिनके स्वार्थ जमीन के साथ गहरे रूप में जुड़े हुए थे। जब मुगलों ने **जागीरदारों** के रूप में एक नवीन वर्ग (**सरअंजम से भिन्न**) को लादने की कोशिश की तो हितों का आपसी टकराव उत्पन्न हुआ। सभी वर्ग किसानों से ज्यादा से ज्यादा वसूलने के प्रयत्न में जुट गये, जिसका किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार का माहौल बनने से ग्रामीण स्तर पर तनाव पैदा हो गया। आपने इस खंड की इकाई 17 में पढ़ा होगा कि कैसे दक्खन में कृषक वर्ग और उच्च अधिकार प्राप्त वर्ग के बीच के तनाव के कारण मुगल साम्राज्य के स्थायित्व को गहरा धक्का पहुंचा। बाद में यह मुगल साम्राज्य के पतन के लिए महत्वपूर्ण तत्व साबित हुआ।

MAADHYAM IAS

18.3 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कर

भू-राजस्व के अतिरिक्त एक किसान को अन्य प्रकार के अवैध उपकर और **अबवाब** भी देने पड़ते थे। मराठा और बीजापुर राज्य के अधीन इनकी संख्या पचास थी। इसके अतिरिक्त उनसे बलपूर्वक मजदूरी (बेगार) भी कराई जाती थी। शिवाजी ने सभी अवैध उपकरों को समाप्त कर दिया था।

सीमा शुल्क भी राज्य की आय का महत्वपूर्ण स्त्रोत था। परन्तु आयात और निर्यात पर लगाया गया शुल्क काफी कम था। यूरोपीय कम्पनियों को इसमें कुछ छूट भी दी जाती थी। गोलकुंडा (कुरनूल) और बीजापुर (रायचूर दोआब) राज्यों की हीरों की खानें भी राज्य की आय के प्रमुख स्त्रोत थे। इसके अतिरिक्त नमक, तम्बाकू सब्जियों, ताड़ी (ताड़ का सड़ाया हुआ रस), आदि पर कई प्रकार के कर लगाये गये थे। आदिलशाही राज्य को **जजिया** से भी आय होती थी। इसके अलावा मुद्रा (टकसाल) टंकण से प्राप्त आय, **पेशकश** (नजराना) और युद्ध की लूट, आदि भी राज्य की आय के महत्वपूर्ण स्त्रोत थे।

चौथ और सरदेशमुखी

ये दोनों कर मराठा राज्य की आय के प्रमुख स्त्रोत थे। कुछ लोग इसे मात्र लूट मानते हैं। मराठा शासकों द्वारा समग्र मराठा राज्य के राजस्व पर 10 प्रतिशत लगाये जाने वाले कर को **सरदेशमुखी** के नाम से जाना जाता था। शिवाजी ने इस पर देश के सर्वोच्च प्रधान होने की हैसियत से अपना दावा पेश किया। (**सरदेश मुख** अर्थात् **देशमुखों** का प्रधान)

मराठा शासक अपने पड़ोसी सरदारों और राजाओं से, जो उनके राज्य में शामिल नहीं थे और उनकी मातृभूमि/**स्वराज्य** का हिस्सा नहीं थे, चौथ (कुल राजस्व का 1/4 हिस्सा) वसूल करते थे।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित का आपस में मिलान करें :

i)	**जमाबंदी**	क)	परगना स्तर पर राजस्व वसूली का प्रभारी
ii)	**कुलकर्णी**	ख)	गांव का मुखिया
iii)	**कारकुन**	ग)	ग्रामीण लेखाकार
iv)	**देसाई**	घ)	अनुमानित राजस्व
v)	**पाटिल**	ड)	लिपिक

2) पेशवाओं के अधीन **कमाविसदारों** के उदय का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

3) राजस्व के ठेकेदारों की भूमिका का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

18.4 दक्षिण भारत में राजस्व व्यवस्था

इस पाठ्यक्रम की इकाई 3 में हम पहले ही बता चुके हैं कि कृष्णदेव राय (1530 ई. से) के समय में ही **नायक** राज्यों के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। 16वीं शताब्दी का अंत होते-होते पांच **नायक** राज्य-इक्केरी, मैसूर, सेन्जी, तंजावूर और मुदरई—उभर कर सामने आये। 1565 ई. में दक्खन राज्यों की मिली-जुली सेना द्वारा तालिकोटा के युद्ध में विजयनगर शासक की हार का फायदा उठाकर बीजापुर और गोलकुंडा शासकों ने विजयनगर के क्षेत्रों पर आधिपत्य जमा लिया। मुगल दबाव के कारण भी दक्खनी सुल्तान दक्षिण की ओर विस्तार के लिए बाध्य थे। मालाबार क्षेत्र में कोई ज्यादा बड़े राज्य नहीं थे। इस क्षेत्र में कन्नानूर, कालिकट और कोचीन राज्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। इस पृष्ठभूमि में आइए इन दक्षिण भारतीय राज्यों की भू-राजस्व व्यवस्था का विश्लेषण करें।

18.4.1 नायक राज्य

इन राज्यो की भू-राजस्व व्यवस्था पर विचार करने से पूर्व हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि ये **नायक** राज्य विजयनगर के ही अवशेष थे और इनकी आधारभूत भू-व्यवस्था भी समान थी। हम इकाई 3 में पहले ही बता चुके हैं कि विजयनगर शासन में राजा सर्वप्रमुख था। उसके बाद **नायकों** का और फिर **पोलिगरों** का स्थान आता था जिनका

पलयमों पर अधिकार था। गांव सबसे छोटी इकाई थी। हालांकि 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विजयनगर शासक की शक्ति कमजोर हो गयी थी फिर भी केन्द्र तक राजस्व का एक भाग अभी भी पहुंच रहा था। 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक सेन्जी और मदुरई **नायक** कुछ राशि भेजते रहे। हालांकि ओडियार (मैसूर) और इक्केरी **नायकों** ने **नजराना** देना पूरी तरह से बंद कर दिया था। अंततः 1610 ई. में मैसूर के राजा ओडियार ने विजयनगर के स्थानीय प्रतिनिधि से औपचारिक रूप से श्रीरंगपट्टम प्राप्त कर लिया और विजयनगर के शासक से अपने संबंध पूर्ण रूप से विच्छेद कर स्वतंत्र शासक के रूप में कार्य करने लगा। हमें **नायकों** की भू-राजस्व व्यवस्था का पूरा विवरण प्राप्त नहीं है। हालांकि भू-राजस्व उनके राज्य की आय का प्रधान स्त्रोत था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि मदुरा के **नायक** कुल उत्पादन का आधा भाग राज्य के हिस्से के रूप में वसूल करते थे। ऐसा लगता है कि वे राजस्व नगद रूप में वसूल किया करते थे। राज्य की संपूर्ण भूमि **पोलिगरों** को नहीं दी जाती थी। शासकीय भूमि (**भंडारवडा**) हालांकि **पलयमों** की अपेक्षा कम थी परन्तु यह भूमि सर्वोत्तम होती थी। कर निर्धारण और वसूली के लिए मदुरा के **नायकों** ने वृहद राजस्व तंत्र स्थापित कर रखा था। परंतु **पोलिगर** नजराने के रूप में एक मुश्त भुगतान किया करते थे जो कुल उत्पाद का 1/3 हिस्सा होता था। परंतु कभी-कभी सार्वजनिक कार्य करने के लिए **पोलिगरों** को नजराने देने से पूरी छूट मिल जाती थी। इसी प्रकार कमजोर **नायक** को **पोलिगर** पूरा भुगतान नहीं करने का प्रयास करते थे। इकाई 3 में आप पढ़ चुके हैं कि 16वीं शताब्दी तक आते आते "**आनुवांशिकता**" अपने उत्कर्ष पर थी। इन **पोलिगरों** ने अपनी भूमि अपने पैतृक अधिकार प्राप्त क्षेत्रों के निकट ही प्राप्त करने का प्रयास किया। (विशेषतः मारवार सरदार इस आधार पर तेजी से फैले)। इन इलाकों में **पोलिगर** लगभग स्वतंत्र हो गये। यहां तक कि इन **पोलिगरों** ने अपनी सैन्य और प्रशासनिक संरचना खड़ी कर ली थी। उन्होंने अपने संबंधियों तथा अधीनस्थ सरदारों, जो **सर्वइक्करार** के नाम से जाने जाते थे, के बीच क्षेत्रों का बंटवारा कर दिया था। ये **पोलिगरों** को सैनिक सहायता देते थे और नजराना प्रदान करते थे। ये अधीनस्थ सरदार ग्रामीण मुखिया से नजराना प्राप्त करते थे।

वसूली की इस प्रक्रिया में इतने मध्यस्थ शामिल होते थे कि **नायकों** के पास काफी कम राशि पहुंच पाती थी। सी. हयवदन राव के अनुसार दक्षिण भारत में भू-राजस्व कुल उत्पादन का 1/4 अंश होता था और **मालिक** (अगर किसान से अलग कोई दूसरा व्यक्ति हो) को अलग से 1/4 हिस्सा मिलता था। पहले वर्ष में नयी खेती की गई भूमि पर राजस्व नहीं लगाया जाता था (गोदावरी डेल्टा में) और दूसरे वर्ष 1/4 हिस्सा लिया जाता था।

इस तथ्य का उल्लेख मिलता है कि मैसूर में ओडियार शासक चिक्कदेवराजा ओडियार (1673-1704) ने भूमि कर को व्यवस्थित करने की कोशिश की थी। वह अपने पदाधिकारियों को वेतन आधा नगद और आधा फसल (वस्तु) के रूप में दिया करता था। उसने आदेश दिया था कि कोई भी पदाधिकारी अपनी आय से अधिक व्यय नहीं करेगा। कुशल राजस्व नीति के फलस्वरूप उसके कोष में 9 करोड़ **पगोडा** जमा हो गए थे। उसकी जनता उसकी राजस्व संबंधी इन सफलताओं के कारण उसे '**नौकोटि नारायण**' कहती थी।

इक्केरी के **नायकों** (केलादी नायक) के शासन काल में भूमि को चारों ओर से पड़ोसी गांव के लोगों की उपस्थिति में पत्थरों से, जिस पर लिंग की आकृति चिन्हित होती थी, सीमाबद्ध कर दिया जाता था ताकि जमीन को लेकर कोई विवाद न हो। गांवों की कुल राजस्व आय का आकलन किया जाता था और व्यय की मदों को लिखा जाता था। बाढ़ आदि आने पर कर में छूट दी जाती थी। परंतु करों की चोरी से सख्ती से निपटा जाता था। ग्रामीण स्तर पर **पुरुपत्यागार** सभी स्थानीय करों को वसूल करता था। वह राजा द्वारा दिए गए भू-अनुदानों का संरक्षक भी होता था। **गांविके** राजस्व की वसूली किया करता था। लेखाकारों (**कर्णिक**) और कोषाधिकारियों—**भंडारा**, **परिपत्यगार**, **सेनाबोवा** और **नवाधिकारी** की चर्चा मिलती है जिन्हें कुछ महत्वपूर्ण शहरों और गांवों में नियुक्त किया जाता था।

शिवप्पा नायक (1645-60 ई०) के पहले भू-राजस्व व्यवस्था अविकसित थी। उसने पहली बार राजस्व व्यवस्था को नियमित किया। उसकी भूमि व्यवस्था और कर निर्धारण आदेश को **'शिवप्पा नायक शिस्त'** के नाम से जाना जाता था। उसने भूमि का वर्गीकरण किया: मिट्टी की उर्वरा शक्ति निश्चित की; और औसत उत्पादन के आधार पर लगान तय किया। भूमि को पांच श्रेणियों में विभक्त किया गया। i) **उत्तमम्** : काली मिट्टी ii) **मध्यमम्** : लाल और मिश्रित मिट्टी iii) **कामोष्ठम** : कम पानी मिली मिश्रित काली मिट्टी iv) **अधम्** : नमी रहित अर्थात कड़ी मिट्टी, और v) **अधमाधमम्** : गर्म बालुई सुखी मिट्टी-बंजर भूमि। इनमें से प्रत्येक श्रेणी के एक टुकड़े पर लगातार बारह साल तक राजा के लिए खेती होती थी। बोये गये बीज और उत्पादन के मूल्य का सही-सही हिसाब रखा जाता था। पांच वर्षों के कुल उत्पादन और उसके बाजार मूल्य का आकलन किया जाता था। तब प्रत्येक वर्ष का औसत निकाला जाता था। इस औसत का 1/3 हिस्सा राज्य के कोष में जाता था। इसके अलावा अधिकतम और न्यूनतम कर निर्धारण की दरें भी निर्धारित की गयी थीं।

सुपारी के बागानों के मामले में उसने 1000 सुपारी के पेड़ों की एक इकाई बनाई थी। कर निर्धारण के उद्देश्य से इनमें से प्रत्येक पेड़ की ऊंचाई 18 फीट से कम नहीं होनी चाहिए थी।

17वीं शताब्दी के दौरान दक्षिण भारत में भूमि कर की प्रकृति दक्खन राज्यों के समान ही शोषण पर आधारित थीं। **नायकों** ने राजस्व वसूली की परंपरागत व्यवस्था को बदलने की शायद ही कोशिश की (जैसा कि विजयनगर शासकों के अधीन मौजूद था)। **नायक** इन मध्यस्थों (**पोलीगर**) पर नियंत्रण स्थापित करने में बहुत सफल नहीं रहे और ये राजस्व वसूली का अधिकांश हिस्सा अपने लिए रख लिया करते थे। आर. सत्यनाथ अय्यर ने मदुरई **नायकों** के अधीन किसानों के शोषण की जमकर आलोचना की है। उनके अनुसार, ''अव्यवस्था और अन्याय पर आधारित राज्य ज्यादा दिनों तक स्वयं को अपने शत्रुओं से बचाकर नहीं रख सकता है और न ही राष्ट्र की प्रगति में भी इसकी कोई भूमिका होती है''। हालांकि संजय सुब्रहमण्यम का मानना है कि इन **पोलिगरों** (उन्होंने इन्हें पोर्टफोलियों कैपिटलिस्ट अर्थात् ''निवेश पूंजीपति'' की संज्ञा दी है।) ने व्यापार और वाणिज्य, व्यवसायिक शहरों, सिंचाई व्यवस्था, जिससे किसानों को फायदा हुआ, आदि के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अतः उनके अनुसार इस समय दक्षिण भारतीय अर्थव्यवस्था में कोई गिरावट नहीं आई थी। उन्होंने इस तर्क का खंडन किया है कि तालिकोटा के युद्ध के बाद दक्षिण भारतीय राजनैतिक व्यवस्था युद्ध में उलझ कर रह गयी और परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में गिरावट आनी शुरू हो गई।

18.4.2 मालाबार राज्य

मालाबार के राज्य वे अपवाद थे जहां कोई भूमि कर नहीं लगाया जाता था। (हालांकि कुछ इतिहासकारों ने इस अनुमान पर प्रश्नचिहन लगाया है)। यहां राज्य की आय का मुख्य स्रोत सीमाकर, सरदारों/राजाओं की व्यापार में व्यक्तिगत हिस्सेदारी और राजा/शासक के सीधे नियंत्रण वाले क्षेत्रों से प्राप्त आमदनी थी।

वस्तुतः मालिक कृषक अपनी जमीन मन्दिरों को भेंट दे देते थे और उनके काश्तकार के रूप में खेती करते थे। इसके बदले में वे मन्दिरों को कुल उपज का 1/8 से 1/6 अंश देते थे। मन्दिरों को कर देना किसानों के लिए लाभप्रद था क्योंकि राज्य की मांग की तुलना में यह कम होता था। इसके अलावा मन्दिरों को दान दी गयी सारी जमीनें राजस्व मुत्त थी। अतः राज्य को कोई भूमि कर प्राप्त नहीं होता था। मन्दिर के हाथों में इतना अधिक धन संग्रहीत होने के कारण अक्सर शासक और मन्दिर में टकराव उत्पन्न हो जाता था।

18.4.3 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कर

सीमा कर (मालाबार में इसे **चुकन** के नाम से जाना जाता था) राजस्व का एक महत्वपूर्ण और बड़ा स्त्रोत था। मालाबार राज्य में किसी व्यक्ति के मरणोपरांत उसकी सम्पत्ति के

MAADHYAM IAS

हस्तांतरण पर उत्तराधिकार शुल्क (**पुरुषांतरम्**) लगाया जाता था। यह कर कृषकों पर नहीं बल्कि व्यापारियों पर लगाया जाता था। विभिन्न प्रकार के दण्ड (**पिजहा**) भी नाडु की आय के मुख्य स्त्रोत थे। एक प्रकार का "राज्य अधिग्रहण" का प्रचलन भी मौजूद था। जो सरदार बिना किसी वैध उत्तराधिकारी के मर जाते थे उनकी सम्पत्ति राज्य अधिगृहीत कर लेता था। सरदार, शासक जहाजों को लूट कर भी अपनी आय बढ़ाते थे। वंश आगे बढ़ाने के लिए अगर कोई व्यक्ति बच्चा गोद लेता था तो उसे एक प्रकार का कर देना होता था। इससे भी राज्य को आय होती थी।

मदुरई **नायकों** के राजस्व का एक प्रमुख स्त्रोत मोती और शंख का व्यापार थे। परन्तु इसकी वसूली को लेकर अक्सर मारवा राजाओं से उनकी लड़ाई हो जाया करती थी क्योंकि मारवा शासक इसे वसूल करने का अधिकार अपना मानते थे। डच मामूली दामों पर मोती खरीद कर एक बड़ी राशि पर कब्जा करने में सफल हुए। अभिलेखों में हथकरघों और बुनकरों, आयात और निर्यात, भू और जल परिवहन और चुंगी कर, आदि का उल्लेख मिलता है।

इक्केरी **नायक बागान** खेती (**बिरद**) पर अतिरिक्त कर लगाते थे, त्यौहारों पर उपहार (**ट्रेब्बकनिके**) लेते थे, मछुआरों (**बेस्तगरके**), जंगल के उत्पादन (**बनडा सोगे**), धोबियों (**मदिहादिके**) पर भी कर लगाया जाता था। ग्रामीण लेखपालों के रखरखाव के लिए (**सेनाबोवाना वर्तने**), ग्राम या शहर में कार्यरत सेवकों की सेवाओं पर (**वर्तने**) भी कर लगाया जाता था। इसके अलावा मजदूरों पर, तथा शहर के बाज़ारों (**मुलविस**) पर भी कर लगाया जाता था। **पट्टी** मराठों की चौथ की तरह का कर था। मेलों, विवाहों, जुलूसों और मन्दिर में आयोजित त्योहारों पर भी कर लगता था।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित का मिलान कीजिए :

1)	**भण्डारवडा**	क)	दक्षिण भारतीय स्वर्ण मुद्रा
2)	**पोलिगर**	ख)	सीमा शुल्क
3)	**पगोडा**	ग)	ग्रामीण स्तर पर राजस्व संग्रहक
4)	**चुकन**	घ)	राजकीय भूमि
5)	**पुरुपत्यगार**	ङ)	**पलयम** का प्रभारी

2) "**शिवप्पा नायक शिस्त**" पर 50 शब्दों में एक टिप्पणी लिखिये।

....

....

....

....

18.5 सारांश

लगभग सभी दक्खनी राज्यों की राजस्व व्यवस्था कुछ स्थानीय विभिन्नताओं के साथ मलिक अम्बर के प्रारूप पर आधारित थी। मलिक अम्बर ने वास्तविक खेती की गयी भूमि को अपने कर निर्धारण का आधार बनाया। हालांकि उसका राजस्व निर्धारण वास्तविक माप के स्थान पर अनुमानित आकलन पर आधारित था। बाद में मराठा वित्त मंत्री अन्नाजी दात्तों ने अपने कर निर्धारण में वास्तविक माप को आधार बनाया और इस प्रकार मलिक अम्बर की व्यवस्था के दोष में सुधार किया। दक्खनी राज्यों का कर निर्धारण **'प्रगतिशील'** था अर्थात् यहां मिट्टी की उर्वरा शक्ति, बोई जाने वाली फसल, आदि को देखते हुए कर निर्धारण किया जाता था। राजस्व मांग कुल उपज का 1/3 से लेकर 1/2

MAADHYAM IAS

हिस्से तक थी। शिवाजी ने सभी अवैध उपकरों को समाप्त कर राजस्व मांग को बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया था। राजस्व के निर्धारण और वसूलों के लिए राज्य के पास राजस्व अधिकारियों का एक पूरा तंत्र होता था। उनमें से अधिकांश को राजस्व मुक्त भूमि अनुदान के जरिए वेतन मिलता था या फिर वसूले गये राजस्व में से उनकी राशि निर्धारित होती थी। आमतौर पर यह माना जाता है कि शिवाजी ने **जमींदारों**, **देशमुखों**, **देसाइयों**, **पटेलों**, आदि मध्यस्थों को बीच से हटा दिया था। परन्तु वास्तव में शिवाजी ने राज्य और किसानों की भलाई के लिए इन वर्गों के विशेषाधिकारों और शक्तियों को केवल कम किया था।

लेकिन पेशवायों के अधीन **कमाविसदारों** के उदय के साथ इस वर्ग को पुनः कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हुआ और यहां तक कि राजा को प्राप्त कुछ विशेषाधिकारों को भी मंजूरी दी गयी। राजस्व को ठेके पर देना दक्खनी राज्यों की राजस्व संरचना की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। हालांकि राज्य **तकावी** के रूप में किसानों को कुछ रियायतें देता था परन्तु आमतौर पर राज्य राजस्व की वसूली मात्र से संतुष्ट रहता था और किसानों के कल्याण की उसे परवाह नहीं होती थी। मराठा **चौथ** और **सरदेशमुखी** भी वसूल किया करते थे। **चौथ** "वैध" लूट से ज्यादा कुछ नहीं थी।

दक्षिण भारत में, इस काल में **नायक** राज्यों का उदय हुआ। हालांकि भू-राजस्व का कुछ अंश केन्द्र (विजयनगर के राजाओं) तक भी पहुंचता था परन्तु **नायक** शासक लगभग स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे। **नायकों** के अधीन अधिकांश भूमि **पोलिगरों** के बीच वितरित थी जो **पलयमो** के प्रभारी थे। ये एक मुश्त रकम, राजस्व के रूप भुगतान कर देते थे जो कुल उत्पादन के 1/3 अंश के बराबर होता था। "**आनुवांशिकता**" के उदय के साथ इन **पोलिगरों** ने, खासकर कमजोर **नायकों** को, नियमित रूप से भुगतान करना बंद कर दिया। मैसूर के ओडियार शासक चिक्कदेव राजा ओडियार और शिवप्पा नायक ने दक्षिण भारत के राजस्व प्रशासन को निश्चित स्वरूप प्रदान करने का कार्य किया। परन्तु आमतौर पर **नायक** शासकों ने कभी भी राजस्व निर्धारण और वसूली की परम्परागत व्यवस्था को छेड़ने की कोशिश नहीं की। **पोलिगरों** के बढ़ते दबाव के कारण **नायक** राज्यों में किसी को भी किसानों के कल्याण को चिंता नहीं रह गई थी। हालांकि इस बात को लेकर मतभेद है कि दक्षिण भारत की राजस्व व्यवस्था को किस हद तक शोषण पर आधारित व्यवस्था कहा जा सकता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

मालाबार राज्यों में भूमि कर राज्य की आय का मुख्य स्त्रोत नहीं था। यहां सीमा शुल्क राज्य की आय का मुख्य स्त्रोत था।

18.6 शब्दावली

चौथ : पड़ोसी राजाओं से वसूले गये कुल उत्पादन का 1/4 हिस्सा।

कमाविसदार : राज्य का राजस्व वसूल करने वाला एक मध्यम श्रेणी का अधिकारी।

काठी : 5 हाथ और 5 मुट्ठी लंबी मापने की एक छड़।

पगोड़ा : दक्खनी स्वर्ण मुद्रा।

रुक्का : मराठा तांबे की मुद्रा जिसका वजन 1/4 **तोला** होता था, 40 रुक्का-1 टका।

टका : एक रुपये का 1/4 अंश।

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) देखिए उपभाग 18.2.1

2) मराठा अधिकारी तंत्र में अन्नाजी दात्तों के पद का उल्लेख कीजिए। राजस्व व्यवस्था में उनके द्वारा किए गए नये प्रयोगों का उल्लेख कीजिए। यह बताइए कि उन्होंने वास्तविक माप के आधार पर एक व्यवस्थित कर निर्धारण प्रणाली विकसित की और मलिक अम्बर की कर निर्धारण प्रणाली की कमियों को सुधारा।

बोध प्रश्न 2

1) 1) घ 2) ग 3) ङ 4) क 5) ख

2) देखिए उपभाग 18.2.3 बताइए कि किस प्रकार **कमाविसदार** एक शक्तिशाली राजस्व अधिकारी के रूप में उभरे। उनके कर्तव्यों और विशेषाधिकारों का उल्लेख कीजिए।

3) देखिए उपभाग 18.2.4 राजस्व वसूलकर्ता के रूप में राजस्व ठेकेदारों के महत्व को और उनके विशेषाधिकारों को विश्लेषित कीजिए। इसके अलावा राज्य और किसानों के सम्बन्धों की भी चर्चा कीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) 1) घ 2) ङ 3) क 4) ख 5) ग

2) देखिए उपभाग 18.4.1 बताइए कि यह शिवप्पा **नायक** की राजस्व कर निर्धारण व्यवस्था थी। उन्होंने अपने राज्य की राजस्व व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिया था। इसके साथ-साथ उनके द्वारा लाये गये परिवर्तनों का भी उल्लेख कीजिए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 19 कृषि संबंध : दक्खन और दक्षिणी भारत

इकाई की रूपरेखा

19.1 उद्देश्य
19.2 प्रस्तावना
19.3 मध्यकालीन दक्खनी गांव : विशेषताएं
19.4 भू-स्वामित्व
19.5 भूमि स्म्बन्धी अधिकारों के प्रकार
 19.5.1 **मिरासी** अधिकार
 19.5.2 **इनाम** अधिकार
 19.5.3 राज्य की भूमि (राजा की भूमि)
 19.5.4 बंजर भूमि या लुप्त परिवारों की भूमि
19.6 ग्रामीण समुदाय
 19.6.1 सिद्धांत
 19.6.2 किसान
 19.6.3 **गोत** सभा या **मजलिस**
19.7 **वतन** व्यवस्था
 19.7.1 **बलूतेदार**
 19.7.2 सामंतवाद
19.8 दक्षिण भारत : कृषि संरचना
19.9 भूमि सम्बन्धी अधिकारों की प्रकृति
19.10 सारांश
19.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

19.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मध्यकालीन दक्खनी गांवों की मूलभूत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे,
- दक्खन में भू-स्वामित्व संबंधी बहस का विश्लेषण कर सकेंगे,
- वहां मौजूद भूमि सम्बन्धी अधिकारों के प्रकारों का उल्लेख कर सकेंगे,
- ग्रामीण समुदाय की प्रकृति पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- कृषि समाज के विभिन्न वर्गों के आपसी सम्बन्धों की व्याख्या कर सकेंगे,
- दक्षिण भारत की कृषि संरचना का वर्णन कर सकेंगे और
- दक्षिण भारत में भूमि संबंधी अधिकारों की प्रकृति का उल्लेख कर सकेंगे।

19.2 प्रस्तावना

इस इकाई में हम मध्यकालीन दक्खन और दक्षिण भारत में कृषि संरचना की प्रकृति और वहां मौजूद विभिन्न प्रकार के भूमि अधिकारों पर विचार करेंगे। सबसे पहले हम मध्यकालीन दक्खन की कृषि संरचना की विशेषताओं पर बातचीत करेंगे।

कृषि संरचना और भूमि अधिकारों के अध्ययन का अर्थ किसी व्यक्ति द्वारा अपनी जमीन के उपयोग करने तथा बेचने के अधिकार का वर्णन करना है। यह अधिकार भूमिधारियों को

आर्थिक प्रशासनिक तथा न्यायिक अधिकार प्रदान करता था। भूमि संबंधी अधिकार लघु कृषि समाजों के या ग्रामीण समुदायों के जीवन को नियंत्रित करते हैं। वे भूमिधारियों के ग्रामीण समुदाय के अन्य सदस्यों, भूमि पर सर्वोच्च अधिकार का दावा करने वाले व्यक्तियों, राजा और उसके राजस्व वसूल करने वाले पदाधिकारी आदि के साथ सम्बन्धों को नियंत्रित करते हैं। भूमि अधिकारों की विभिन्न कोटियों का उदय, चाहे वे हस्तांतरणीय हों या अनुवांशिक हों, भूमि के आर्थिक लाभों के कारण हुआ है जो मध्यकालीन युग में अधिकांश लोगों की आय का मुख्य माध्यम था।

19.3 मध्यकालीन दक्खनी गांव : विशेषताएं

विभिन्न भूमि अधिकारों का विश्लेषण करने के पहले हम उन मध्यकालीन दक्खनी गांवों का वर्णन करेंगे जहां यह कृषि भूमि अवस्थित थी। बाद वाले अंश में हम मध्यकालीन दक्खन में भूमि के स्वामित्व और ग्रामीण समुदाय से संबंधित अधिक जटिल समस्याओं पर भी विचार करेंगे। दक्खन की स्थानीय भाषा में **गांव** को **उरु** कहा गया है। इसे **मौजे** (अरबी शब्द **मौजा** का अपभ्रष्ट रूप) और **वेह** (फारसी) भी कहा जाता है। बड़े गांव को, जिसमें **बाजार** भी होता था **कस्बे** (अरबी **कस्बाह**) कहा जाता था। **गांव** शब्द संस्कृत शब्द **ग्राम** से बना है। ग्रामीण खेतों के विशाल फैलाव को **गांव सिवान** कहा जाता था। इसमें जोती हुई (**काली**), बिना जोती हुई या बंजर भूमि भी शामिल होती थी। खेती योग्य भूमि को टुकड़ों में बांटा जाता था। एक परिवार के खेतों को **थल** (संस्कृत **स्थल**) कहते थे। (इसमें 20-24 खंड होते थे)। प्रत्येक खंड के इलाके को **शेत या क्षेत्र** (संस्कृत) या जमीन (फारसी **जमीन**) कहते थे। प्रत्येक क्षेत्र और परिवार के मूल स्वामी की उपाधि ग्रामीण बही में लिखी होती थी जिसे **थलजादा** कहते थे। वास्तविक खेती की गई भूमि और निर्धारित राजस्व की राशि एक बही में दर्ज की जाती थी जिसे **कुल घदनी** कहते थे।

गांव की सीमा का सुस्पष्ट निर्धारण किया जाता था और अगर कोई इस पर अवैध अतिक्रमण करने की कोशिश करता था तो उसका विरोध किया जाता था। गांव की खेती योग्य जमीन को **काली** (एक देशी शब्द जिसका तात्पर्य ऐसी काला मिट्टी है जो खेती के लायक होती है) और गांव के निवास स्थल को **गांव स्थान** या **पनढ़ारी** (देशी शब्द, ऐसी मिट्टी जिस पर खेती न की जा सके) कहते थे। जब **पनढ़ारी** दीवार से घिरा और संरक्षित होता था तब इसे **गांव कुन्सू** कहते थे। यह निवास स्थानों में विभक्त होता था जिसे **घर, ठिकाने** या **घरथना** कहते थे। प्रत्येक परिवार अपने आबंटित टुकड़े पर घर (**घर या बड़ा**) बनाता था। गांव छोड़ कर चले गए या लुप्त हो गए किसी परिवार (**गटकुल**) द्वारा छोड़े गए घर या गृह स्थान को क्रमशः **गटकुल, घरथना** और **गटकुल बड़ा** कहते थे। इन जमीनों पर या तो ग्रामीण समुदाय का कब्जा हो जाता था या यहां नया परिवार बस जाता था पर **थलजादा** में मूल मालिक का नाम नहीं बदलता था। **थल** और सम्पदा के मूल परिवार को **जत्था** कहा जाता था। **जत्था** परिवार **थलकारी** या **थलवाही** का पर्याय था और परिवार के नामों के साथ विभाजन की सूची को **जमीनजादा जत्थावार** कहा जाता था। **मुण्डा** इसी प्रकार का एक विभाजन था। मिट्टी की उर्वरता, उत्पाद और जनसंख्या के अनुरूप गांवों का आकार भिन्न-भिन्न होता था।

19.4 भू-स्वामित्व

भूमि के स्वामित्व के प्रश्न पर काफी समय से विद्वान बहस करते रहे हैं और कर रहे हैं। **मनुस्मृति** के अनुसार जो व्यक्ति (या परिवार) जंगल काटकर उसे खेती के योग्य बनाता था जमीन उसी की होती थी। बुरहन निजाम शाह के संरक्षण में रहने वाले साबाजी प्रताप राजा द्वारा संकलित समकालीन न्यायिक कृति **परशुरामप्रताप** में भूमि के स्वामित्व पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मिट्टी से उपजी वस्तु पर ही राजा का अधिकार बताया गया

है और किसानों के स्वामित्व अधिकार की बात की गई है। निजाम शाही राज्य में मलिक अम्बर ने **थलकारी** के अनुवांशिक **मालिकाना** अधिकार को वैधता प्रदान करते हुए प्राचीन संयुक्त अधिकार ग्रामीण संस्थाओं को पुनर्जीवित किया।

भू-स्वामित्व के प्रश्न को सुलझाने के लिए मराठों ने स्मृतियों में वर्णित प्राचीन परम्पराओं का सहारा लिया। 17वी.–18वी. शताब्दी में मराठा राज्य में ग्रामीण संयुक्त अधिकार और गोत संस्थाओं का हवाला मिलता है। जमीन बेचने के **इकरारनामा** से यह पता चलता है कि जमीन बेची जाती थी और पेश्वा को **मिरासी** अधिकार हस्तांतरित किए जाते थे। एक अवसर पर ग्रामीण समुदाय ने कुछ राशि लेकर पेशवा को जमीन दे दी थी और उसका स्वामित्व भी दे दिया था। **व्यवहारमयुख** (17वी शताब्दी का एक ग्रंथ) प्रबंध के लेखक ने कहा है कि राज्य सम्पूर्ण भूमि का स्वामी नहीं है बल्कि वह भूमिधारियों से केवल कर वसूल कर सकता है।

मराठों के कई अनुदानों में जमीन पर राजा के कतिपय अधिकारों की चर्चा की गई है। **व्यवहारमयुख वृति या वतन** (भूमि और गृह से युक्त) को निजी सम्पति मानता है। इसमें विभाजन, बिक्री, बंधक और उत्तराधिकार सम्बन्धी अधिकारों की चर्चा की गई है जो पुनः **गोत मजलिस** (ग्रामीण सभा) के कार्य और अस्तित्व को संपुष्ट करता है।

मुसलमान शासित राज्यों में कई कारणों से भूमि अधिकारों और भू-स्वामित्व के प्रश्न के नये आयाम सामने आए। विजित प्रजातियों या राज्यों के अधिकारों के सम्बन्ध में मुसलमानों के वैधानिक सिद्धांतो से भू-स्वामित्व की समस्या को सुलझाने में मदद मिलती है। उन सिद्धांतों के अनुसार गैर मुसलमान द्वारा शासित भूमि (**दारुल हर्ब**) के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर देना एक मुसलमान शासक का प्रमुख कर्तव्य है। इस प्रक्रिया में विजित क्षेत्रों के लोगों से नजराना प्राप्त कर उन्हें संरक्षण प्रदान किया गया। इन लोगों को **जिम्मी** कहा जाता था। परम्परागत इस्लामी **फिक्ह हिदय** का लेखक विजित क्षेत्रों के बारे में कहता है कि उन्हें पैगम्बर द्वारा सुझाए गए तरीके से सैनिकों के बीच बांट दिया जाना चाहिए या जजिया और **खराज** (भूमि पर) देने की शर्त पर उन्हें उनके मूल निवासियों को लौटा दिया जाना चाहिए। बाद वाली स्थिति में मालिकाना अधिकार मूल निवासियों के पास रहता था। **जिम्मियों** को भूमिकर के रूप में उपज का आधा भाग भुगतान करना पड़ता था जबकि मुसलमानों को उपज का दसवां हिस्सा देना पड़ता था जिसे **उश्र** कहते थे। मुसलमान सिद्धांतकार किसानों को काश्तकार मानते थे और दस्तावेजों में उन्हें **"रइयत"** कहा गया है। उनके मालिकाना अधिकार और इस प्रकार भू-स्वामित्व को मुसलमान शासकों ने मान्यता नहीं दी, केवल मलिक अम्बर ने **मिरासी** अधिकारों को स्वीकार किया।

मध्यकालीन दक्खन में भू-स्वामित्व सम्बन्धी आधुनिक सिद्धांतों पर भी ध्यानपूर्वक विचार किया जाना चाहिए। बी.एच. बेदेनपावेल ने अपनी पुस्तक **"द इण्डियन विलेज कम्युनिटी 1896"** में पहले पहल यह सिद्धांत सामने रखा कि लगभग सभी भूमि (**इनाम** और **वतन** को छोड़कर जिसमें व्यक्तिगत या संस्थागत स्वामित्व था) पर राज्य का अधिकार था। उनके अनुसार राज्य द्वारा प्रदान की गई राजस्व मुक्त भूमि और वतन (किसी गांव या जिले में प्राप्त पद के बदले में मिली भूमि) या विशेषाधिकारी वाली भूमि में ही स्वामित्व को स्वीकार किया गया। ए.एस. आल्टेकर इस मत को काटते हुए सभी कृषि भूमि पर किसानों के स्वामित्व के सिद्धांत की वकालत करते हैं। अपनी पुस्तक **"ए हिस्ट्री ऑफ विलेज कम्युनिटीज इन वेस्टर्न इंडिया 1927"** में न तो वे भूमि के सामुदायिक स्वामित्व (जैसा मार्क्स और एच.जे.एस. मइने ने प्रतिपादित किया था) को स्वीकार करते हैं और न हीं राज्य स्वामित्व को बल्कि वे किसान स्वामित्व को स्थापित करते हैं। वे यहां तक कहते हैं कि इनामदारों का भूमि पर कोई मालिकाना अधिकार नहीं था, उनका अधिकार केवल राजस्व **वसूलने तक सीमित था**। एस.एन. सेन ने अपने **एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ द मराठाज़ (1923)"** में तीन प्रकार की जमीन–**इनाम, मिरास** और **राज्य की भूमि–और किसानों के दो प्रकारों–मिरासदारों** और **उपारियों**–का उल्लेख किया है। **मिरासदारों** का भूमि पर मालिकाना अधिकार होता था, और जब तक वे लगान भुगतान करते रहते थे तब तक उनकी जमीन कोई छीन नहीं सकता था। **मिरासदार** द्वारा गृहित भूमि अनुवांशिक होती थी

और वह उसे बेच सकता था और यदि लगान न देने के कारण उससे जमीन छीन ली जाती थी तो उसे पुनः अपनी पैतृक भूमि को वापस लेने का अधिकार था। **उपारी** काश्तकार थे जो मामलातदारों की निगरानी में सरकारी जमीन पर काम करते थे। ये सिद्धांत आरंभिक अंग्रेज प्रशासकों की रिपोर्टों पर आधारित है और इनमें दो मुद्दों पर ध्यान दिया गया है 1) किसानों के दो वर्ग थे, और 2) व्यक्तिगत **मिरासदारों** के पास **मिरास** भूमि होती थी जिस पर कर लगाया जाता था।

इन रिपोर्टों में समाप्त या लुप्त हो गए परिवारों की भूमि या बंजर भूमि के अधिकारों के प्रश्न पर असहमति व्यक्त की गई है। वे **वतन** और **इनाम** अधिकार को स्पष्ट नहीं करती है और सरकारी भूमि के सम्बन्ध में भी उनमें अस्पष्टता बनी हुई है।

19.5 भूमि सम्बन्धी अधिकारों के प्रकार

ग्रामीण समुदाय में रहने वाले खेतीहर परिवारों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का निर्धारण भूमि पर उनके स्वायित्व के अधिकारों की प्रकृत्ति से होता था। गांव के खेती योग्य क्षेत्र को 1) मिरास भूमि, 2) इनाम भूमि, 3) राज्य भूमि और 4) समाप्त हो गए परिवारों की भूमि में विभाजित किया गया था। इन विभिन्न भूमि सम्बन्धी अधिकारों पर विचार करने से विवेच्य काल की कृषि व्यवस्था के कुछ पहलू सामने आ सकेंगे।

19.5.1 मिरासी अधिकार

मिरास अरबी मूल का शब्द है। मराठी दस्तावेजों में इसे अनुवांशिक या हस्तांतरणीय अधिकार या वंश परम्परा से या इनाम आदि के रूप में पैतृक प्राप्त सम्पति (**बाप रोटी**) कहा गया है। **मिरासी** अधिकार के तहत **मिरासदार** का जमीन पर कब्जा होता था। वे ग्रामीण जमीन के मालिक होते थे और अपनी जमीन पर रहने वाले लोगों से धन या सेवा वसूल कर सकते थे। **मिरासदारों** की दो कोटियां थीं। 1) **मिरास** भूमि के अनुवांशिक स्वामी और 2) वे जिन्होंने गांव की **गटकुल** भूमि पुनः प्राप्त की हो। अनुवांशिक **मिरासदारों** को गांव की पुरानी सूची **थालजादा** में रखा जाता था और भूमि पर उनके पास कोई अधिकार पत्र नहीं होता था। दूसरी श्रेणी को **मिरास पत्र** (**मिरास** अधिकार पत्र) प्राप्त होता था जिसे ग्रामीण समुदाय प्रमाणित करता था और इस अधिकार पत्र को पड़ोसी इलाकों के ग्रामीण समुदायों और जिले के **देशमुखों** और **देशपाण्डे** से अनुमोदित करवाना पड़ता था।

मिरास पत्र देने की प्रथा **स्मृतियों** में दी गई व्यवस्था से मेल खाती है। **मिरासदारों** के परिवारों को ग्रामीण सभा या **गोत सभा** में मत डालने का अधिकार था। हिंदू सामूहिक अधिकार पारिवारिक व्यवस्था के अनुरूप परिवार का सबसे बड़ा सदस्य इस अधिकार का प्रयोग करता था। शिवाजी के शासन काल के दौरान मराठा राज्य में **मिरासदार** के अधिकारों और विशेषाधिकारों में काफी कटौती की गई। **मिरासी** अधिकार में भूमि के अनुवांशिक स्वामित्व की अवधारणा निहित थी। अगर कोई सरकार को लगान नहीं चुका पाता और इस कारण उसको जमीन से बेदखल कर दिया जाता था तो भी **थालजादा** में उसका नाम बना रहता था और उसके वंशज सरकार का बकाया चुका कर सौ वर्ष बाद भी अपनी जमीन वापस ले सकते थे।

मिरासदारों के पास दो आधारों पर ग्रामीण भूमि रहती थी। 1) पहला आधार संयुक्त अधिकार की शर्त थी जिसके अनुसार गांव की जमीन के कई हिस्से किए जाते थे, और 2) गांव का एकल मालिकाना स्वामित्व का दूसरा आधार होता था।

ग्रामीण संयुक्त अधिकार या प्राचीन थल व्यवस्था जो मिरासी अधिकार का आधार थी:

इस प्रकार की भूमि पर गांव के विभिन्न परिवारों का संयुक्त रूप से अधिकार होता था। उसका हिस्सा, अधिकार और विशेषाधिकार सुस्पष्ट रूप से विभाजित होता था। मूल **थल** पर विभिन्न हिस्सों के रूप में **जत्था** का अधिकार होता था। **जत्था** में सामूहिक तौर पर **थल** के पहले स्वामी के वंशज शामिल होते थे। एक सामूहिक इकाई के रूप में **जत्था** पर खेती करने, सरकार को भुगतान करने और अन्य कार्य करने का दायित्व था। अगर **जत्था** का कोई उत्तराधिकारी नहीं बचता था तो हिंदू विधान के स्वामित्व सम्बन्धी नियमों के अनुसार जमीन उसके सम्बन्धियों के बीच वितरित कर दी जाती थी। सरकार के देय के भुगतान करने का उत्तरदायित्व **जत्था** के प्रत्येक व्यक्तिगत सदस्य पर होता था हालांकि सरकार को यह भुगतान **जत्था** द्वारा सामूहिक रूप से किया जाता था। अपने पैतृक अधिकार को बेचना आसान काम नहीं था और बहुत आवश्यक होने पर ही इसकी अनुमति मिलती थी। ग्रामीण समुदाय के अनुमोदन के बिना बिक्री संभव नहीं थी। **जत्था** के सदस्य एक दूसरे से सम्बन्धित होते थे और उन्हें **घर भाऊ** (गृह भाई) कहा जाता था। जमीन के खरीददार या **जत्था** के नये सदस्य को **बिरादर भाऊ** (गांव के भाई) कहते थे। उन्हें मूल मालिक की जिम्मेदारियों को पूरा करना पड़ता था। **मिरासदार** सरकार को **स्वास्तिधारा** नामक स्थाई लगान दिया करते थे पर इसके साथ समय-समय पर **मिरसपाती** जैसे अन्य उपकर भी लगाए जाते थे। अगर किसी परिवार का कोई व्यक्ति बचा न होता था तो यह हिस्सा सामूहिक ग्रामीण अधिकार में चला जाता था। **गटकुल** या गांव की खाली जमीन ग्रामीण समुदाय या **पाटिल** (गांव का मुखिया) के पास रहती थी।

मिरास अधिकार की मुख्य विशेषताएं :

मिरासदार जरूरत पड़ने पर कभी भी अपनी जमीन बेच सकता था। खरीददार बाहरी व्यक्ति भी हो सकता था और उसके लिए खरीदे हुए स्थान पर बसने का कोई प्रतिबंध नहीं था। खरीदी गई भूमि पर वह अपने परिवार के किसी भी सदस्य के रहने की व्यवस्था कर सकता था। **मिरास** भूमि को खरीदने और बेचने के लिए ग्रामीण अधिकारियों और पड़ोसियों का अनुमोदन या मंजूरी लेनी पड़ती थी। राज्य की पूर्व अनुमति के बिना भी जमीन बेची जा सकती थी यह इस तथ्य को पुष्ट करता है कि **मिरास** भूमि पर राज्य का मालिकाना अधिकार नहीं था। राज्य को राजस्व का भुगतान कर खरीददार भूमि का उपयोग कर सकता था। राज्य एक दस्तावेज जारी कर विक्रय को अनुमोदित कर देता था, इसके लिए वह विक्रय मूल्य का एक चौथाई शुल्क के रूप में वसूल करता था।

MAADHYAM IAS

मिरास भूमि पर **मिरासदार** का पूर्ण निजी मालिकाना अधिकार होता था। राज्य **मिरासी** अधिकार का अधिग्रहण नहीं कर सकता था। इसके अलावा मुखिया या गांव के अन्य लोग भी **मिरासी** अधिकारों में दखल नहीं दे सकते थे। हालांकि अगर राज्य चाहता था तो इस **मिरासी भूमि को गृह स्थान में परिवर्तित कर सकता था, इसके लिए उसे मिरासदारों को गटकुल** भूमि के रूप में मुआवजा देना पड़ता था।

मिरासी अधिकार के अस्तित्व के कारण गांव और **देश** की सामूहिक कार्य प्रणाली सुनिश्चित होती थी।

19.5.2 इनाम अधिकार

इनाम मूलतः एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ उपहार या पुरस्कार होता है। समग्रता में इसका तात्पर्य केवल **इनाम, इनाम** गांव या **इनाम** भूमि से होता था। मात्र **इनाम** का अर्थ होता था कि एक व्यक्ति को किसी गांव के राजस्व का खास हिस्सा प्राप्त होगा। किसी व्यक्ति या पदाधिकारी को **इनाम गांव** अनुवांशिक आधार पर प्रदान किया जाता था।

यहां हम **इनाम** पर भूमि अधिकार के एक प्रकार के रूप में विचार करेंगे। **इनाम** भूमि या तो पूरी तरह राजस्व मुक्त होती थी या इस पर कम दर पर **इनाम पट्टी** कर लगाया जाता था। यह भूमि अधिकार का एक विशेषाधिकार रूप था। **इनाम** विभिन्न प्रकार के लोगों को दिया जाता था. मसलन अनुवांशिक ग्रामीण पदाधिकारी, राज्य के पदाधिकारी, मन्दिर और

बलूतेदार (पुजारी)। इसे प्राप्त करने वाले को **इनामदार** कहा जाता था। **इनामदार** दो प्रकार के होते थे: निवासी और आनिवासी। इस तथ्य के प्रर्याप्त प्रमाण हैं कि ये आवंटन अनुवांशिक हुआ करते थे। **वतनदारों** (अनुवांशिक ग्रामीण पदाधिकारी) द्वारा गृहीत **इनाम** भूमि को पद या **वतन** के साथ बेचा या हस्तांतरित भी किया जा सकता था। हालांकि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि **इनाम** भूमि और **वतन** को अलग-अलग बेचा या स्थानान्तरित किया जा सकता था। यह भी स्थापित तथ्य नहीं है कि मन्दिरों, मठों आदि संस्थाओं द्वारा गृहीत इनाम भूमि को बिना किसी असुविधा के बेचा जा सकता था या नहीं।

19.5.3 राज्य की भूमि (राजा की भूमि)

सरकार द्वारा सामूहिक इकाई के रूप में या पेशवा शासक द्वारा गृहीत भूमि को राज्य भूमि का दर्जा दिया जाता था। हालांकि इनके बीच भी कुछ अंतर होता था। दक्खन के कई गांवों में भी राज्य भूमि होती थी जिसका प्रबंधन स्थानीय नौकरशाही किया करती थी। केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेकर वे इसे बेच भी सकते थे। यह भूमि **इनाम** के रूप में अनुदानित की जाती थी या गृह स्थानों के रूप में इन्हें विकसित किया जाता था।

19.5.4 बंजर भूमि या लुप्त परिवारों की भूमि

मिरासी और **इनाम** अधिकार में एक स्पष्टता है, हालांकि नष्ट या समाप्त हुए परिवारों की भूमि या बंजर भूमि के संबंध में काफी अस्पष्टता बनी हुई है। इस भूमि को गांव का मुखिया या ग्रामीण सभा या राज्य बेच सकता था। समाप्त हो गए परिवारों की भूमि को **गटकुल जमीन** कहते थे। जिन जमीनों पर बहुत समय से खेती नहीं हुई होती थी उन्हें **पाद जमीन** कहते थे। यहां तक कि **मिरासी** भूमि में भी **पाद जमीन** होती थी। हम उन जमीनों पर भी विचार करेंगे जिसके मालिक के न रहने के कारण वह बंजर हो गई हो। **गटकुल जमीन** और **पाद जमीन** दोनों का तात्पर्य बंजर जमीन से है। राज्य की बंजर भूमि को **खालिसा पाद जमीन** कहते थे।

MAADHYAM IAS

बंजर भूमि को गांव का मुखिया, स्थानी ग्रामीण सभा और सरकार अधिग्रहीत कर सकती थी और बेच सकती थी। गांव के मुखिया द्वारा अधिग्रहित जमीन को **मिरास** भूमि माना जाता था और उस पर राजस्व लगाया जाता था। स्थानीय ग्रामीण सभा की अनुमति लेकर गांव का मुखिया समाप्त हुए परिवार का घर और गृह स्थान अधिग्रहित कर सकता था हालांकि आमतौर पर इसमें बहुत लाभ नहीं होता था। इस प्रकार की अधिग्रहित भूमि पर बटाई के आधार पर **उपारि** द्वारा खेती की जाती थी और इन पर ऊंचा और निर्धारित भू-राजस्व लगाया जाता था, केवल फसल नष्ट होने पर ही इसमें छूट दी जाती थी। हालांकि इस प्रकार के अधिग्रहण से मुखिया की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती थी पर यह बहुत लाभप्रद नहीं होता था। इसके अलावा मुखिया अपनी इच्छानुसार इस जमीन को बेच भी नहीं सकता था।

स्थानीय सभा बंजर भूमि को **मिरास** या **इनाम** भूमि के रूप में बेच देती थी। **इनाम** के रूप में खरीदी गई बंजर भूमि पर खरीददार (**इनामदार**) को भूमि कर नहीं देना पड़ता था। हालांकि बेची गई बड़ी **इनाम** भूमि पर एक समूह के रूप में गांव को भूमि कर देना पड़ता था। **मिरास** भूमि के रूप में बेची गई बंजर भूमि पर नये खरीददार को भारी भूमि कर देना पड़ता था।

मुखिया के निवेदन पर सरकार मुआवजे के रूप में **मिरासदारों** को बंजर भूमि प्रदान करती थी। गांव के रिहाइशी इलाके के नजदीक की अधिग्रहित **मिरासी** भूमि पर घर बनाये जाते थे। खेती को बढ़ावा देने के लिए अधिकारियों और अनुवांशिक पदाधिकारियों को बंजर भूमि प्रदान की जाती थी। राजा या पेशवा को भी अनुदान के रूप में बंजर भूमि दी जाती थी। ऐसी बंजर भूमि जिसे न तो मुखिया अधिग्रहित करता था और न ही स्थानीय सभा इसमें रुचि लेती थी इसे सरकार अपने अधिकार में ले लेती थी। सरकार यह जमीन

पुजारियों, राज्य पदाधिकारियों, मंदिरों, मस्जिदों, अनुवांशिक पदाधिकारियों आदि को इनाम भूमि के रूप में अनुदान दे देती थी। इस प्रकार सरकार राज्य के खर्चे में भी कटौती करती थी और राज्य के प्रति प्राप्तकर्ताओं की निष्ठा भी हासिल करती थी।

बोध प्रश्न 1

1) मध्यकालीन दक्खनी गांवों की मुख्य विशेषताएं क्या थी?

....

....

....

....

....

2) **दक्खन में भूमि अधिकारों के चार प्रकारों की सूची बनाइए।**

....

....

....

....

....

3) **दक्खन में भूमि स्वामित्व संबंधी आधुनिक सिद्धांतों पर संक्षेप में विचार कीजिए।**

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

19.6 ग्रामीण समुदाय

ग्रामीण समुदाय भूमि अनुवांशिकता के सिद्धांत पर आधारित थी। यह सिद्धांत संयुक्त संपत्ति सम्बन्धी प्राचीन हिन्दू व्यवस्था से गृहीत है। गांव के मुखिया, लेखापाल, कारीगर, भूमिधारियों आदि से मिलकर ग्रामीण समुदाय बनता था। कुछ स्वायत्त ग्रामीण इकाइयों को मिलाकर बड़ी क्षेत्रीय इकाइयां बनती थी, इन्हें **नायकवाड़ी** या **स्थल** (मुसलमान पूर्व काल में) कहते थे। यह **नायक** नामक एक पदाधिकारी के जिम्मे होता था जिसका काम राजस्व वसूल करने में गांव के मुखिया की सहायता करना और स्थानीय सैन्य थल को नेतृत्व प्रदान करना होता था। लगभग 84 या उससे अधिक गांवों को मिलाकर एक प्रशासनिक इकाई **परगना** या **देश** बनता था जिसका सर्वोच्च अधिकारी **देशमुख** होता था। ये बड़ी क्षेत्रीय इकाइयां गांवों और शासक के बीच कड़ी का काम करती थीं। **सरदेसाई** और **सरदेशमुख** (**देशमुख** और **देसाइयों** से ऊपर) गांवों और शासक के बीच की एक और कड़ी थे। व्यापारिक केंद्र से युक्त गांव को **कस्बा** कहते थे। गांव और देश की सामूहिक इकाई को **गोत** कहते थे। इसका सम्बन्ध संस्कृत शब्द **गोत्र** से है जिसका अर्थ परिवार होता है। क्षेत्रीय इकाइयों के रूप में गांवों और **परगनों** का संघटन ग्रामीण समुदायों के प्राचीन रीति रिवाजों पर आधारित था। यह इकाईयां राजनैतिक परिवर्तनों से **अप्रभावित** रही।

19.6.1 सिद्धांत

भारतीय ग्रामीण समुदाय की प्रकृति से सम्बन्धित 19वी शताब्दी के सामाजिक आर्थिक लेखन से दो सिद्धांत सामने आते हैं। पहला सिद्धांत कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित है। यह अंग्रेज प्रशासकों की दो पुस्तकों पर आधारित (मसलन भारत के प्रभारी गवर्नर जनरल, सी.टी. मेटकाफ़ जो कि भारतीय ग्रामीण समुदाय को गतिहीन मानते हैं) है। मार्क्स ग्रामीण समुदाय को "आत्म निर्भर" और अपरिवर्तनीय मानता था जिसका श्रम विभाजन मुख्य आधार था। बेदेन पावेल और अन्य लोगों ने पुजारी, नाई, मुखिया आदि व्यक्तियों को ग्रामीण सेवक के रूप में माना है। कार्ल मार्क्स के अनुसार पूरा समुदाय इन सेवकों का भरण पोषण करता था। बेदेन पावेल की कृति "**भारतीय ग्रामीण समुदाय (1896)**" को आधार बनाकर मैक्स बेबर कहता है कि ग्रामीण सेवकों को ग्रामीण समुदाय को प्रदान की गई सेवा के बदले भूमि या फसल में हिस्सा मिलता था या नगद राशि मिलती थी। मार्क्स और वेबर भारतीय समाज की इस "अपरिवर्तनीयता" का कारण "आर्थिक आत्मनिर्भरता" और "जाति व्यवस्था" और "चमत्कारिक परम्परावाद" में ढूंढते हैं।

एस.एन.सेन. और ए.एस. अलटेकर जैसे इतिहासकारों के दृष्टिकोण भी मार्क्स और वेबर से मेल खाते हैं। दोनों इस बात पर सहमत हैं कि पूरा गांव एक इकाई के रूप में ग्रामीण सेवकों से काम लेता था। एस.एन. सेन स्पष्ट रूप से ग्रामीण सेवकों के रोजगार को अनुवांशिक प्रकृति का मानते हैं।

इस सिद्धांत को नकारते हुए ग्रामीण भारत और **छोटे समुदायों** पर लिखते हुए समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने **जजमानी** सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। इसके पहले प्रवर्तक एक अमेरिकी इसाई मिशनरी डब्ल्यू.एच. विसर थे। उनके अनुसार परा-ग्रामीण स्तर पर प्रभावशाली जाति के कुछ परिवार (संरक्षक) अनुवांशिक आधार पर ग्रामीण सेवकों की सेवा ग्रहण करते थे। टी.ओ. बेडलमैन **जजमानी** व्यवस्था को सामन्ती व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित करते हैं जिमसें उसी क्षेत्र की विभिन्न जातियों के दो या उससे अधिक परिवारों के बीच सेवा प्रदान करने और भुगतान का अनुवांशिक सम्बन्ध होता था। एक प्रमुख समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास इस **जजमानी** अवधारणा को स्वीकार नहीं करते हैं। वे अनुवांशिक सेवा के तत्व और खास परिवारों के बीच संबंध के विचारों को उदाहरण देकर.अस्वीकृत करते हैं।

MAADHYAM IAS

19.6.2 किसान

अंग्रेज प्रशासकों की रिपोर्ट के साथ-साथ देश.. मराठी दस्तावेज भी दक्खन में मौजूद किसानों की कोटियों और भूमि अधिकारों की प्रकृति पर प्रकाश डालते हैं। इन दस्तावेजों में किसानों के लिए **रययत, लोक प्रजा, कुल** या **कुनबी** जैसे अनेक शब्द उपयोग में लाए गए हैं। गांव की भूमि किसानों या खेतीहरों के पास होती थी। उन्हें मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है क) **मिरासदार** और ख) **उपरि।**

मिरासदार (मिरास या थलकारी) आमतौर पर भूमिधर तथा मालिक खेतीहार (मुक्त अधिग्रही) होता था। **उपरि** भूमि धारी की स्वीकृति से कृषि करने के लिए उसकी इच्छा का काश्तकार होता था। उसका गांव में कोई स्थाई आधार नहीं होता था और वह या तो **मिरासदार** का या फिर सरकार (18वी. शताब्दी के उतरार्द्ध के बाद) के खेत जोतता था। ये खेत **उपरि** या भूमि पर उक्ति अधिकर वाले काश्तकारों के पास होते थे। यह एक प्रकार से भूमि को पटटे पर देने जैसे था जिसमें एक साल के लिए मौखिक समझौता होता था जिसमें किराए की दर निर्धारित नहीं होती थी।

असामी कृषक **कौल** (समझौता)—**इस्तवा** (भूमि) अधिकार पर भी जमीन अपने पास रखता था। यह एक प्रकार का ठेके पर आधारित समझौता (5,7 या 9 वर्षों के लिए) होता था जिसकी सहायता से कृषकों को बंजर भूमि पर खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। **देशमुख कौल इस्तवा** जारी करता था, उसे बंजर भूमि पर कमीशन मिलती थी। बड़ी

इनाम भूमि पर **उपरि** बटाई के आधार पर खेती करते थे। कभी-कभी **मिरासदार** इनाम भूमि के असामी भी होते थे। अनुपस्थित **इनामदार** अपने एजेन्ट या गांव के प्रधान के माध्यम से अपना हिस्सा नगद में ग्रहण कर लेता था। निवासी **इनामदार** को वस्तु या अनाज के रूप में लगान दिया जाता था। यह आमतौर पर कुल उत्पादन का आधा हिस्सा होता था।

व्यक्तिगत तौर पर किसान और अनुवांशिक ग्रामीण पदाधिकारियों को **मिरास** भूमि दी जाती थी जिस पर भूमि कर लगाया जाता था। यहां तक फसल नष्ट होने पर भी उन्हें सरकार को अंतिम भूमि कर देना पड़ता था, इसके कारण **मिरासदार** ओर गांव के मुखिया गांव छोड़ने की ओर प्रवृत हुए। **उपरि मिरासदारों** के असामी हुआ करते थे जो बटाई पर **मिरास** भूमि पर खेती करते थे। अगर उनका मालिक भाग गया होता था तो भी उन्हें सरकार को लगान देना पड़ता था यह आमतौर पर कुल उत्पाद का 2/3 हिस्सा होता था। 18वी. शताब्दी के उतरार्द्ध में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि **मिरासदार** खेतीहर बन गए और **उपरि** को सरकार ने राज्य और बंजर भूमि पर खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया। यह स्पष्ट है कि दक्खन में असामीवार (किराये पर भूमि लेना) बड़े पैमाने पर प्रचलित नहीं थी, जमीन कि बिक्री बहुत कम होती थी और **उपरियों** ने जल्दी ही भूमि पर बने रहने के अधिकार प्राप्त कर लिए।

19.6.3 गोत सभा या मजलिस

गोत सभा एक स्वतंत्र निकाय थी जो गांव या **परगना** के प्रशासनिक, वित्तीय और न्यायिक मामलों की देखरेख करती थी। **परगना** के स्थानीय पदाधिकारियों से मिलकर बनी प्रशासनिक निकाय को **दीवान** कहते थे। **गोत** और **दीवान** दोनों ग्रामीण समुदाय द्वारा लाए गए झगड़ों में मध्यस्थ की भूमिका अदा करते थे। **वतनदार** और **बलूतदार—वतनदार गोत सभा** की बैठक में शामिल होते थे। दक्खन में मुसलमान शासन ने **मजलिस** व्यवस्था के विकास को बढ़ावा दिया। इसमें **काजी, गोत** और **दीवान** के बीच कड़ी का काम करता था। मामले के स्वरूप के अनुसार फैसला दिए जाने की परम्परागत व्यवस्था समाप्त कर दी गई। सब फैसलों को **मजलिस** के सदस्य प्रमाणित करते थे। उसके बाद यह एक कानूनी दस्तावेज (**महजर**) बनता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

19.7 वतन व्यवस्था

वतन एक अरबी शब्द है और **वतन** व्यवस्था की शुरूआत दक्खन में मुसलमान शासन की स्थापना के बाद हुई। यह सरकार द्वारा गांव में कार्यरत पदाधिकारी को ग्रामीण समुदाय को सेवाएं प्रदान करने के बदले दिया जाने वाला अनुवांशिक अनुदान था। ये अनुवांशिक ग्रामीण पदाधिकारी गांव (**देसक**) के स्थाई निवासी होते थे और उन्हें गांव में प्रशासनिक कार्य सम्पन्न करने के बदले में राज्य अधिकारों और विशेष छूट के प्रावधानों के साथ भूमि अनुदानित करता था। इन **देसकों** को **वतनदार, देशमुख, देसाई, देशपाण्डे, कुलकर्णी** आदि कहते थे। उन्हें सरकार को भू-राजस्व न देने की छूट मिली हुई थी। **स्मृतियों** में **वृतियों** का उल्लेख मिलता है जो वतन का देशी पर्याय था और **वृतियों** के धारकों द्वारा प्राप्त पारिश्रमिक को **निबंध** कहा जाता था। **वतनदारों** को मिली भू-राजस्व से मुक्त भूमि को **इनाम** कहते थे।

गांव का प्रमुख अनुवांशिक अधिकारी **पटेल** होता था, समकालीन मराठी दस्तावेजों में उसे **गावा पटेल या मोकद्दम पटेल** भी कहा गया है। राजस्व वसूल करना और केन्द्र का हिस्सा राजकोष तक पहुंचाना **पटेल** की प्रमुख जिम्मेदारी थी। गांव के मुखिया के रूप में वह गांव में कई प्रकार के प्रशासनिक कर्तव्य सम्पन्न करता था। इसके बदले में उसे कुछ विशेषाधिकार (**हक**) और अनुलाभ (**लाजिम**) प्राप्त होते थे जिसका उल्लेख **वतन** वचन पत्र में होता था। उसे **हक** एक अधिकार के रूप में प्रदान किया जाता था (कानूनी अनुदान)।

इसके अन्तर्गत राज्य उसे कुल राजस्व वसूली का एक हिस्सा नगद या वस्तु के रूप प्रदान करता था। **लाजिम** स्वेच्छापूर्ण भुगतान होता था जैसे **फुसकी** (कोई भी थोड़ा सा अनाज), **पसोड़ी** (वस्त्र) आदि, महारों और कारीगरों से मुफ्त सेवा, वरिष्ठता अधिकार (**मान पान**) जिसके कारण **पटेल** गांव के पर्व-त्यौहारों की अध्यक्षता करता था। इसके अलावा **पटेल**, अन्य अधिकारी जैसे **कुलकर्णी** और **चौगुल** (**पटेल** का सहायक) को भी उनकी सेवा के बदले अनुलाभ और अधिकार प्राप्त होते थे।

देशमुख और **देशपाण्डे** परगना के अनुवांशिक अधिकारी थे। **देशमुख** प्रधान **पटेल** था। अपनी सेवाओं के बदले उसे उपज में हिस्सा मिलता था और वे ग्रामीण सेवकों, व्यापारियों आदि से वस्तुएं और सेवा ग्रहण करते थे। इसके अलावा गांव में उनकी जमीन भी होती थी। अपने परगना में **देशकुलकर्णी कुलकर्णियों** के काम का निरीक्षण करते थे। पर वह **देशपाण्डे** का मातहत होता था। पारिश्रमिक के रूप में **देशपाण्डे** को राजस्व मुक्त भूमि के साथ-साथ नगद और वस्तु के रूप में भी भुगतान होता था। यह देशमुख को दिए गए हिस्से के मुकाबले आधा होता था।

सेठ और **महाजन कसबा** या **पेठ** (ग्रामीण बाजार) के अनुवांशिक अधिकारी होते थे। उन्हें नगद या वस्तु और भूमि के रूप में पारिश्रमिक मिलता था। कुछ गांवों को मिलाकर **तरफ** या **करयत** बनता था। यह क्षेत्रीय इकाई परगना से छोटी होती थी। इस इकाई का अनुवांशिक पदाधिकारी होता था जिसे नायक कहते थे। उसका काम किसानों से राजस्व वसूल करना था। बाद में मुसलमान शासित क्षेत्रों में इस पदाधिकारी का स्थान **हवलदार** ने ले लिया।

देशमुख और **देशपाण्डे** जमींदार (**हक्कदार**) हुआ करते थे पर अपने अधिकार क्षेत्र की सभी जमीन के वे मालिक नहीं होते थे। वे केवल हताश होकर ही अपनी जमीन बेचते थे पर उनके पद के साथ जुड़े अधिकारों और विशेषाधिकारों को अलग से बेचा नहीं जा सकता था। राजनैतिक उथलपुथल के समय भी उनकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता था।

MAADHYAM IAS

मिरासी और **वतनी** अधिकारों के बीच एक महत्वपूर्ण अन्तर है। **मिरासी** भूमि पर भूमिधारियों को अनुवांशिक स्वामित्व अधिकार प्राप्त था जबकि वतनी अधिकार **वतनदारों** के पद और उनके द्वारा प्रदान की गई सेवा से जुड़ा हुआ था और यह हस्तांतरणीय भी था। एक **मिरासदार वतनदार** भी हो सकता था, पर एक **वतनदार मिरासदार** भी हो यह आवश्यक नहीं था। (हालांकि **वतनदार** के पास अनुवांशिक आधार पर इनाम भूमि रहती थी।

19.7.1 बलूतेदार

महाराष्ट्र के गांवों में ग्रामीण सेवकों को बारह **बलूते** या **अलूते** कहा जाता था। **बलूतदारों** के संघटन को लेकर विद्वानों के बीच मतभेद है। आमतौर पर इस सूची में शमिल होते थे: बढ़ाई, लुहार, कुम्हार, चर्मकार, रस्सी बनाने वाला, नाई, धोबी, ज्योतिषि, हिंदू पंडित और महार। बारह **अलूत** शब्द (ग्रांट डफ आदि द्वारा उल्लिखित) संभवतः **बलूते** का ही विस्तार था और उनका एक ही अर्थ था। 18वीं शताब्दी के मराठी दस्तावेजों में अलूतों का उल्लेख नहीं मिलता है और इस प्रकार ऐसा लगता है कि वे कभी-कभी ही गांव में पाए जाते थे। दो प्रकार के **बलूतेदारों** का पता चलता है। **वतन** धारी **बलूता** और अस्थाई अपरिचित (**उपरि**) **बलूता**। प्रथम कोटि के **बलूतों** का अपनी सेवा कर्तव्यों पर अनुवांशिक एकाधिकार था वे पूरे गांव के सेवक होते थे और ग्रामीणों को व्यक्तिगत तौर पर सेवा प्रदान करते थे। किसान **बलूतेदारों** को तीन प्रकार से भुगतान करते थे।

1) वस्तु या नगद के रूप में जिसे **बलूता** कहा जाता था।

2) अनुलाभों, अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के रूप में, नगद या वस्तु के रूप में, तथा

3) राजस्व मुक्त **इनाम** भूमि के रूप में।

यह स्पष्ट नहीं है कि उपरि **बलूता** को भी अनुलाभ प्राप्त होते थे या नहीं। इनाम भूमि के बारे में आश्वस्त होकर कहा जा सकता है कि केवल वतन धारी **बलूतों** को ये भूमि रखने का अधिकार था। **बलूता वतन** पूरे गांव की अनुमति के बिना हस्तांतरित, विभाजित या बेची जा सकती थी, पर इस प्रकार के लेन देन में ग्रामीण सभा का अनुमोदन आवश्यक होता था।

बलूता वतन के विभाजन का मतलब पारिश्रमिक का विभाजन होता था, सेवा कर्तव्यों का नहीं। पारिश्रमिक की राशि में बढ़ोतरी नहीं होती थी अतः इस प्रथा को हतोत्साहित नहीं किया जाता था। **बलूते** किसी एक खास परिवार के नहीं बल्कि पूरे गांव के सेवक होते थे।

बलूते आमतौर पर विभिन्न रोजगार आधारित जातियों से संबंध रखते थे। पुजारी और लेखापाल ब्राहमण होते थे। पुजारी के पास कोई वतन नहीं होता था। हिंदू अनुष्ठानों और कर्मकांडों की खास प्रकृति के कारण उनका कार्य कुछ जातियों और परिवारों तक ही सीमित था। ये परिवार (**जजमान**) पुजारी के स्थाई या अस्थाई ग्राहक होते थे। अतः **जजमानी** सिद्धांत पुजारी पर तो लागू होता है पर यह बारह **बलूतों** पर लागू नहीं होता। अंतिम विश्लेषण के रूप में यह कहा जा सकता है कि गांव एक इकाई के रूप में **वतनदारों** और **बलूतेदारों** की देखभाल करता था और उन पर नियंत्रण रखता था।

19.7.2 सामंतवाद

परगना और ग्रामीण समुदाय एक ऊर्ध्व स्तरीय विन्यास संरचना का प्रतिनिधित्व करता है जबकि संरचनात्मक रूप में जाति क्षेतिज होती है और उसकी प्रकृति पर ग्रामीण होती है। जाति गांव और **परगना** का एक महत्व पूर्ण हिस्सा थी। इसमें एक जनजातीय संरचना भी थी जिसके कारण इसकी प्रकृति घुमंतु और लड़ाकू हो गई थी। इस प्रकार मध्यकालीन दक्खनी स्थानीय समाज की सामुदायिक संरचना बहुतत्ववादी थी पर यह ऊर्ध्व रूप में या क्षेतिज रूप में स्तराकृत था। इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारतीय ग्रामीण समुदाय आत्मनिर्भर और एकाकी नहीं थे बल्कि पड़ोसी गांवों से भी इनका सम्बन्ध था। **वतन** व्यवस्था सामुदायिक संरचना की कार्यपद्धति को नियंत्रित करती थी। यह ग्रामीण समुदाय में किसानों और कारीगरों के बीच श्रमशक्ति के विभाजन का प्रतिनिधित्व करती थी। स्थानीय समाज में उत्पादकता के बढ़ने से अधिशेष जमा होने लगा जिसे सामुदायिक नेताओं के अनुलाभों में बदल दिया गया। एक ऐस समाज में जहां काफी मात्रा में जमीन उपलब्ध थी भूमि स्वामित्व पर आधारित एक व्यवस्था उभर कर नहीं आ सकी। इसके बदले किसान भू-स्वामी सामुदायिक नेता बन गये और वे ही ग्रामीण शासकीय वर्ग में परिवर्तित हो गये जिन्होंने 16वीं शताब्दी के अंत तक शोषक की भूमिका निभानी आरंभ कर दी। इस समय **वतन** को प्राप्तकर्ताओं की निजी संपत्ति समझा जाता था। इस काल के दौरान इसे अलग से और मुक्त रूप से बेचा गया। ग्रामीण शासकीय वर्ग के अनुलाभ राज्य की राजनैतिक संरचना में मिला लिए गए और उन्हें बलर्पूवक वसूलने के अधिकार में बदल दिया गया। फुकाजावा जैसे इतिहासकार इस प्रवृति को नीचे से बढ़ते सामंतवाद के रूप में देखते हैं। हालांकि मध्यकालीन यूरोप की तरह यहां किसानों और शासकीय ग्रामीण के बीच का वर्ग सम्बन्ध मालिक दास का सम्बन्ध नहीं था पर उन्हें सामुदायिक आधारित कृषि संबंध की संज्ञा दी, जा सकती है। मध्यकालीन दक्खन के संदर्भ में किसान सीधे तौर पर उत्पादक थे, जिनके पास उत्पादन के साधन होते थे और एक कृषक परिवार उन साधनों से खेती करता था। सामुदायिक नेता बाद में स्थानीय समाज के शोषक वर्ग बन गए पर वे जमीन के मालिक या सामंत नहीं बन पाए क्योंकि उस समय जमीन इतनी अधिक थी कि समाज में भू-स्वामित्व कोई महत्वपूर्ण मुद्दा नहीं था। वे किसानों और कारीगरों द्वारा उत्पादित अधिशेष पर कब्जा जमाने में ही रुचि रखते थे। इस प्रकार के समाज में समुदाय ही सर्वोच्च था और ग्रामीण शासकीय समूह किसानों पर न्यायिक अधिकारों का एकाधिकार स्थापित नहीं कर सकता था।

परगना और गांवों से राजस्व वसूल करने के लिए राज्य पदाधिकारियों को दिए गए **जागीर** और **सरजाम (मोकासा)** अनुदान को ऊपर से लादे गए सामंतवाद के रूप में देखा जाता है।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

पर मध्यकालीन दक्खन की स्थिति की विशेषता को देखते हुए इस शब्द का प्रयोग सावधानीपूर्वक करना कीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) भारतीय ग्रामीण समुदाय की प्रकृति से सम्बन्धित दो सिद्धांतों पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

2) **वतन** व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? इसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

3) मध्यकालीन दक्खन में मौजूद किसानों की दो कोटियों की सूची बनाइए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

19.8 दक्षिण भारत : कृषि संरचना

अंग्रेज पदाधिकारियों की रिपोर्टों में दक्षिण भारतीय गांवों में भूमि पर सामूहिक स्वामित्व का उल्लेख मिलता है। आधुनिक काल के पहले भू-स्वामित्व और खेती उत्पादन का मुख्य आधार था। दक्षिण भारत में दो प्रकार के गांव थे: **ब्रहम्देय** और **गैर ब्रहम्देय**। शासकों द्वारा ब्राहम्णों को अनुदानित भूमि को **ब्रहम्देय** कहा जाता था। इन गांवों में ब्राहम्णों ने सामूहिक स्वशासी निकाय **सभा** की स्थापना की थी। पल्लव और चोल काल में ये गांव सबसे ज्यादा प्रतिष्ठित थे। **गैर-ब्रहम्देय** गांव अधिक पुराने थे और इनकी संख्या **ब्रहम्देय** गांवों से ज्यादा थी। एक काल और स्थान के अभिलेखों के अध्ययन से कुछ मुद्दे उभर कर आते हैं। **ब्रहम्देय** गांवों में व्यक्तिगत (बड़े भूमिपतियों के पास कई गांव होते थे) स्वामित्व था और गैर ब्रहम्देय गांवों में **उरार** किसानों के बीच सामुदायिक भू-स्वामित्व था **उर** गैर-**ब्रहम्देय** गांवों की सभा को कहते थे। विजयनगर काल में भू अधिकार की दृष्टि से गांव बड़ी इकाई थी। चोल काल में मुख्य इकाई **नाडु** (स्थान) था जिसे **ओक्कुल** (कर्नाटक में) भी कहते थे। विजयनगर साम्राज्य में गांव मुख्य इकाई हो गई। **सभा**, **उर** और **नटटर** जैसे स्वशासी निकायों का पतन हुआ और बाद में विजयनगर काल में ये लुप्त हो गए और इनका स्थान **नायक** या स्वतंत्र शासकों ने ले लिया।

ग्रामीण सेवकों (**अयगारों**) को **मान्या** या राजस्व मुक्त भूमि या कम किराये की भूमि मिलती थी। ब्राहम्णों और मन्दिरों के भूमि अनुदान को क्रमश: **एकोभोगम** और **देवदान**

कहते थे। कृषि में निवेश करने के कारण बढ़ी उत्पादकता से प्राप्त निजी अधिकार (आय अंश) को कर्नाटक में **दसवंदा** या **काटट् कोडग** कहते थे। 16वीं शताब्दी में भूमि स्वामित्व व्यवस्था और कृषि संरचना में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। विजयनगर के सैनिक प्रधान **(नायक)** तमिल गांवों के स्थानीय वंश आधारित समाजों में हस्तक्षेप करने लगे। तमिल क्षेत्र में काफी समय से मन्दिर एक स्वायत्त भू स्वामी और सामूहिक संस्था के रूप में कार्य कर रहा था। विजयनगर के शासक ने मन्दिरों का प्रबधन अपने पास ले लिया। मन्दिरों की भूमि को ठेके की भूमि में बदलने के कारण कृषि अर्थव्यवस्था में काफी परिवर्तन आ गया। इस ठेके की भूमि पर अधिकार करके ये शासक कृषि व्यवस्था की धुरी बन गये।

19.9 भूमि सम्बन्धी अधिकारों की प्रकृति

ग्रामीण समाज में मौजूद कृषि अधिकारों **(कनियात्छी)** के विभिन्न प्रकारों पर विचार करने से **नायकों** और किसानों के आपसी संबंधों पर प्रकाश पड़ेगा। किसानों द्वारा अधिशेष उत्पादन और तेलुगु **नायकों** द्वारा सफलतापूर्वक उसकी वसूली विजयनगर राज्य की शक्ति का आधार था। तमिल ग्रामीण प्रदेश के सूखे मैदानों में **थोटिटयन, पान्टा रेडडी, नायडू** और **कम्बलटटर** जैसी योद्धा प्रजातियां बसी हुई थी। परम्परागत तमिल **कृषक संभ्रांतों जैसे नट्टावर** एवं **उरावर** का स्थान तेलुगु बोलने वाले समुदायों ने लिया जिन्होंने इस इलाके को परिधीय क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया।

योद्धा प्रधानों ने कम बसे हुए कोंगू क्षेत्रों में गहन खेती कर कृषि विकास को प्रोत्साहित किया। कोगूं की काली मिटटी वाले इलाकों में तालाब सिंचाई व्यवस्था उपलब्ध कराई गई और गन्ने जैसी नगदी फसलों को बढ़ावा दिया गया।

15वीं. शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मन्दिर भूमि **(देवदान)** को योद्धा प्रधानों की अर्ध निजी भूमि सम्पदा **(कनिपर्रू)** के रूप में परिवर्तित किया। 1511 ई. के एक अभिलेख में मन्दिर के भूमि अधिकारों की कृषि बस्ती **(तिरूनामथुक्कनी)** को एक योद्धा प्रधान के **कनिपरू** में परिवर्तित करने का उल्लेख मिलता है। खेती करने के अधिकार के साथ-साथ कर आरोपित करने का अधिकार भी अनुदानग्रही को मिल गया। 16वीं शताब्दी के भूमि सम्बन्धी इन लेन देनों में कई भूमि संबंधी और वित्तीय अधिकार समाहित थे। **उरावर** और **नटटर जैसे** परम्परागत किसान संभ्रान्तों और **उर** जैसी किसान सभाओं का स्थान **नायकों** द्वारा निर्मित सक्रिय और विस्तारित कृषि राजनैतिक संरचना ने ले लिया।

नायकों ने इस काल में कई शहर और किलाबंदी करके बस्तियां बसाईं। उन्होंने राजनैतिक और आर्थिक केन्द्रों के रूप में कार्य किया। कावेरी डेल्टा में उनकी अनुपस्थिति सुस्पष्ट है। योद्धा प्रधानों द्वारा अधिगृहीत **पलयान** वह भूमि थी जहां **नायकों** द्वारा स्थापित राजनैतिक और आर्थिक संरचना में किसानों, कारीगरों और व्यापारियों को समाहित कर लिया गया। वे किसानों और कारीगरों से क्रमशः **कुदानाइ** (स्थानीय कर) और **सित्तयम** वसूल करते थे।

नायकों के भूमिधारण अधिकार को **कानिपर्रू** के नाम से जाना जाता था। यह संभवतः भूमि संबंधी अधिकार की ओर इशारा करना था अर्थात् इसके अंतर्गत स्वामित्व के पूर्ण अधिकार के बिना भूमि की खरीद बिक्री की जा सकती थी। इसमें कई प्रकार के करों का भी उल्लेख है। 1522 ई. में एक अभिलेख में मन्दिर भूमि और इसके अधिकारों के नायकों को हस्तांतरित किए जाने का उल्लेख मिलता है। ये अधिकार निम्नलिखित थे:

1) किसानों से कर वसूलना
2) खेती करवाना और लोगों को बसाना, और
3) मन्दिर से **परसादम** (पवित्र भोजन) ग्रहण करना।

MAADHYAMIAS
way to achieve your dream

नायकों को भूमि के हस्तांतरण का अर्थ भू-स्वामित्व का हस्तांतरण नहीं था। **नायक** भूमि का उपयोग कर सकते थे और कर वसूल कर सकते थे पर अभी भी स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार मन्दिरों के पास सुरक्षित था।

कनिपर्रू योद्धा प्रधानों और मन्दिरों के बीच एक सशर्त और संविदागत पटटेदारी या समझौता था। स्वामित्व मन्दिरों के पास रहता था और मन्दिरों को नगद या वस्तु में भुगतान करना नायकों का उत्तरदायित्व होता था।

भूमि के हस्तांतरण से किसानों को अपनी जमीन नहीं छोड़नी होती थी। अपने हिस्से की जमीन (**करई**) उनके पास ही रहती थी। किसानों को मन्दिर भूमि के हस्तांतरण के मामले में किसान नेता (**मुदाली**) खेती का जिम्मा अपने ऊपर ले लेते थे। वे मन्दिर को **बडवथी** (नाजराना) प्रदान करते थे। इस प्रकार के किसान भूमि अधिकार को **कुडिनंइग देवदानम** कहते थे। इस प्रकार के गांवों के किसानों का भूमि में स्थाई हिस्सा होता था और उन्हें कोई बेदखल नहीं कर सकता था।

करों की दर ऊंची थी। इसके अलावा किसानों पर सिंचाई व्यवस्था बनाए रखने के लिए दबाव डाला जाता था। कृषि असंतोष बढ़ने लगा पर कांगू इलाके में भूमि की उपलब्धता के कारण इसे रोक कर रखा जा सका। बाद में 17वीं शताब्दी में जब यह क्षेत्र (सीमांत) बंद हो गया तो असंतोष बढ़ने लगा। यह विजयनगर **नायकों** की कृषि नीति का परिणाम था।

नायकों और संस्थाओं के अलावा व्यक्तिगत तौर पर भी भूमि लोगों को पटटे पर दी गई। **इस पटटे में घर, सिंचित और सूखी भूमि शामिल थी। कई मामलों में, पटटेदार के वंशजों** को इसे बेचने, गिरवी रखने आदि का भी अधिकार होता था।

मन्दिरों द्वारा पटटे पर दी गई भूमि पर केन्द्रीय और स्थानीय सरकारों द्वारा लगाया गया कर पटटेदार मन्दिरों को ही चुकाता था। मन्दिरों द्वारा पट्टे पर दी गई भूमि कर मुक्त नहीं होती थी। अपने लिए **कदमई** जैसे कुछ कर रखकर पटटेदारों से लिया गया कर मन्दिर राज्य को सौंप देते था। पटटेदारों को खेती करने, जमीन को खेती योग्य बनाने और नई जमीन पर खेती करने का अधिकार होता था। आमतौर पर पटटेदार स्वयं खेती नहीं करते थे, वे यह काम दूसरों से करवाते थे। वे मन्दिर कोष में नगद या वस्तु के रूप में कर जमा करते थे। खेतीहरों को भी उत्पाद में हिस्सा मिलता था। लगभग सभी पटटेदार पटटे वाली भूमि के मालिक होते थे।

MADHYAM IAS

मिरासी अधिकार दक्षिण भारत की भूमि व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। **मिरासदारों** के पास मनियम नामक कर मुक्त जमीन होती थी। उन्हें इन भूमि से उत्पाद में हिस्सा (**कुपांटटम**) मिलता था। कई मामलों में एक गांव कई **मिरासदारों** के पास होता था। खेतीहरों को **पयकरी** कहा जाता था वे समूहों में विभक्त थे—**उलकुडी** और **परकुडी।** पहले वाले गांव में रहते थे। उनके अधिकार हस्तांतरणीय नहीं थे और उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता था। **परकुड़ी** भूमिधारी द्वारा दी गई भूमि के असामी थे जिन्हें ठेके पर खेती करने का अधिकार मिलता था। **मिरासदारों** द्वारा सरकार को दिए जाने वाले करों को **पन्नू, इरह, वारि** आदि नाम से सम्बोधित किया गया है। **मिरासदार** दो प्रकार के होते थे—निवासी और अनिवासी। खेती कराने के लिए **मिरासदार** सरकार और ग्रामीणों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे।

इस प्रकार **मिरासी** अधिकार हालांकि अनुवांशिक था पर यह सब जगह एक समान नहीं था। इसका स्वरूप जगह-जगह पर अलग अलग था। इसे बिक्री, बंधक या उपहार के द्वारा हस्तांतरित किया जा सकता था।

बोध प्रश्न 3

1) कनिपर्रू अधिकार के स्वरूप पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

2) दक्षिण भारत में **मिरासी** अधिकार की मुख्य विशेषताएं क्या थी?

....

....

....

....

....

19.10 सारांश

इस इकाई में हमने मध्यकालीन दक्खनी गांवों की विशेषताओं पर विचार किया। मध्य कालीन दक्खन में भू-स्वामित्व संबंधी बहस पर एक नजर डाली गई। इसमें ग्रामीण समुदाय के साथ-साथ, ग्रामीण समुदाय के विभिन्न तत्वों की भी जानकारी दी गई। दक्खन में पाई जाने वाली वतन व्यवस्था का विस्तार से विश्लेषण किया गया। इसके साथ-साथ इस इकाई में दक्षिण भारत की भू-व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला गया। विभिन्न प्रकार के भू-अधिकारों और इन भू-अधिकारों से उत्पन्न कृषि संबंधों की भी चर्चा की गई।

19.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 19.3
2) देखिए भाग 19.5 और उप भाग 19.5.1, 19.5.2, 19.5.3, 19.5.4
3) देखिए भाग 19.4

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 19.5 और उप भाग 19.6.1
2) देखिए भाग 19.7 और उप भाग 19.7.1 और 19.7.2
3) देखिए भाग 19.6 और उप भाग 19.6.1

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 19.9
2) देखिए भाग 19.9

इकाई 20 वित्तीय और मौद्रिक प्रणाली, कीमतें

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 वित्तीय व्यवस्था
    20.2.1 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कर
    20.2.2 वसूली का तरीका
20.3 मौद्रिक व्यवस्था
    20.3.1 मुद्रा प्रणाली
    20.3.2 ढलाई व्यवस्था
20.4 कीमतें
20.5 सारांश
20.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम मुगल कालीन भारत की वित्तीय और मौद्रिक व्यवस्था पर विचार-विमर्श करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- मुगलों द्वारा भू-राजस्व के अतिरिक्त वसूले जाने वाले अन्य करों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- कर वसूल करने के तरीके का उल्लेख कर सकेंगे;
- मौद्रिक व्यवस्था पर प्रकाश डाल सकेंगे; और
- मुगल शासन में कीमतें और उनके उतार-चढ़ाव के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

MAADHYAM IAS

20.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम इकाई 17 में चर्चा कर चुके हैं मुगल कालीन भारत में आय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत भू-राजस्व था। इसके अतिरिक्त राज्य की आय के कुछ अन्य स्रोत भी थे। इस इकाई के प्रथम भाग में हम इसी पर विचार करेंगे।

समकालीन स्रोतों में भू-राजस्व का तो विस्तार से उल्लेख मिलता है परन्तु अन्य करों का उल्लेख सुस्पष्टता और विस्तार से नहीं किया गया है।

दूसरे भाग में हम मौद्रिक व्यवस्था की चर्चा करेंगे। मुगलों की धातु मुद्रा की व्यवस्था काफी विकसित थी। इस काल में सोने, चांदी और तांबे के सिक्के ढाले गये। यहां हम विभिन्न मुद्राओं के तुलनात्मक मूल्य, ढलाई की व्यवस्था और टकसालों की अवस्थिति पर विचार करेंगे।

तीसरे भाग में हम मूल्यों का विश्लेषण करेंगे। अन्य बातों के अलावा, हम इस काल के उत्पादन और वाणिज्यिक गतिविधियों पर मूल्यों के उतार-चढ़ाव के पड़ने वाले प्रभावों पर भी विचार करेंगे।

20.2 वित्तीय व्यवस्था

साम्राज्य की कुल आय में भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य करों के योगदान का ठीक-ठीक ब्योरा देना बहुत कठिन है। शीरीन मूसवी के अनुसार गुजरात और आगरा **सूबे** (प्रांत) में यह क्रमशः 18 प्रतिशत और 15 प्रतिशत के आसपास था जबकि अन्य **सूबों** में यह 5 प्रतिशत से भी कम था। **(Economy of the Mughal Empire)**

यहां हम विभिन्न करों के बारे में विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। हम अपनी चर्चा इन करों के स्वरूप और इन्हें वसूल करने के तरीके तक सीमित रखेंगे।

2.2.1 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कर

हस्तशिल्प उत्पादन पर कर, बाजार कर, अंतःराष्ट्रीय और **अतर्राष्ट्रीय** दोनों तरह के व्यापारों पर सीमा शुल्क और **राहदारी** (पथकर) और सिक्कों की ढलाई पर कर आय के मुख्य स्रोत थे। इनके अलावा युद्ध की लूट, **नजरानों** और भेटों से भी राजकोष समृद्ध होता था।

बाजार में बेची जाने वाली लगभग सभी वस्तुओं पर कर लगता था। इनमें कपड़ा, चमड़ा, अनाज, पशु आदि प्रमुख हैं। कोई चीज जितनी बार बेची जाती थी उस पर उतनी बार कुछ कर देना होता था। हमारे पास कराधान की सही सही दर को गणना करने के लिए पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध नहीं है। आमतौर पर जो उल्लेख मिलता है उससे लगता है कि ये कर काफी ज्यादा थे। पीटर मंडी (1632) के विवरण के अनुसार, पटना का राज्यपाल कर वसूलने में बहुत निर्ममता बरतता था, और यहां तक कि दूध बेचने वाली औरतों से भी कर वसूल किया जाता था।' एक अन्य समकालीन लेखक ने भी लिखा है कि फूल बेचने वाले से लेकर मिट्टी का बर्तन बेचने वाले तक, अच्छी कोटी का मलमल बनाने वालों से लेकर मोटा कपड़ा बनाने वालों तक को, हर तरह के व्यापारी को कर देना पड़ता था।

MAADHYAM IAS

व्यापारियों के अलावा कारीगरों को भी अपने उत्पादन पर कर देना पड़ता था। सभी प्रकार के कपड़ों, रेशम और ऊनी वस्त्र पर **कटरापार्चा** कर लगाया जाता था। नील, शोरा और नमक पर भी कर लगाया जाता था। कुछ मामलों में, जैसे कि अकबर के समय में पंजाब में नमक पर लगाया गया कर उसकी मूल लागत के दोगुना से भी ज्यादा था।

सीमा शुल्क और पारगमन शुल्क

जब कोई वस्तु एक जगह से दूसरी जगह ले जाई जाती थी तब उस पर कर लगाया जाता था। हमें सीमा शुल्क दरों की थोड़ी बहुत जानकारी मिलती है। बंदरगाहों से लाई जाने वाली प्रत्येक वस्तु पर कर लगाया जाता था। अबुल फजल के अनुसार अकबर के समय में इस प्रकार के शुल्क ढाई प्रतिशत से ज्यादा नहीं लगाए जाते थे। सत्रहंवी शताब्दी के आरंभ के एक दस्तावेज में बताया गया है कि वस्तुओं पर ढाई प्रतिशत, खाद्य सामग्री पर तीन प्रतिशत और धन (सोना और चांदी) पर दो प्रतिशत कर लगाया जाता था। 17वीं शताब्दी के अंत में सीमा शुल्क चार से पांच प्रतिशत के बीच था।

औरंगजेब ने अलग-अलग समुदायों पर अलग-अलग पारगमन कर लगया था। यह दर मुसलमानों के लिए ढाई प्रतिशत, हिंदुओं के लिए पांच प्रतिशत और विदेशियों के लिए साढ़े तीन प्रतिशत थी। यह दर पूरे साम्राज्य में लागू थी।

52 रुपए से कम मूल्य की वस्तु कर से मुक्त होती थी। कुछ समय के लिए औरंगजेब ने मुसलमानों को सभी सीमा शुल्कों से मुक्त कर दिया परन्तु जल्द ही उसने फिर उन पर ढाई प्रतिशत कर लगा दिया।

सम्राट के निर्देशों के बावजूद व्यापारियों से अक्सर निर्धारित सीमा शुल्क से ज्यादा राशि वसूल कर ली जाती थी। हमें सीमा शुल्क के बारे में विदेशियों की शिकायतों का पता चलता है। अंग्रेजों ने 1615ई. में, शिकायत की थी कि अहमदाबाद से सूरत तक वस्तुओं को लाने में तीन बार अलग-अलग शुल्क वसूला जाता था। समय-समय पर अंग्रेज और डच सीमा शुल्क में छूट प्राप्त करने के लिए सम्राट से **फरमान** प्राप्त किया करते थे फिर भी अक्सर सीमा शुल्क चौकियों पर शुल्क का भुगतान करना पड़ता था। मुगल सीमा क्षेत्र के अतिरिक्त स्वायत्त शासक भी अपने इलाके से गुजरने वाली वस्तुओं पर शुल्क लगाते थे। मोरलैंड कहता है कि व्यापार और वाणिज्य पर करों के बोझ की ठीक-ठीक गणना करना संभव नहीं है क्योंकि सभी अपनी मनमर्जी से कर लगाते थे और शुल्क उगाहते थे। एक राज्य में या क्षेत्र में कर देने के बावजूद व्यापारियों को दूसरे क्षेत्र में पुनः कर देना पड़ता था।

सीमा शुल्क के अलावा **राहदारी** कर या पारगमन शुल्क भी वसूल किया जाता था यह एक प्रकार का पथकर या चुंगी थी। विभिन्न क्षेत्रों से गुजरने वाली वस्तुओं पर यह चुंगी लगायी जाती थी। हालांकि प्रत्येक स्थान पर थोड़ी-थोड़ी राशि ही देनी पड़ती थी परन्तु कुल मिलाकर यह राशि बड़ी हो जाती थी। यहां तक कि अपने क्षेत्र से गुजरने वाली वस्तुओं पर **जमींदार** भी चुंगी वसूला करते थे।

17वीं शताब्दी के एक समकालीन विवरण (खाफी खां) के अनुसार **राहदारी** को अवैध माना जाता था परन्तु इसके नाम पर व्यापारियों और व्यवसायियों से बड़ी मात्रा में राशि वसूल कर ली जाती थी। यह कर नदी मार्गों पर भी लगाया जाता था

टकसाल से आय

टकसाल में लिया जाने वाला शुल्क साम्राज्य के लिए आय का एक अन्य प्रमुख स्रोत था। राज्य द्वारा वसूले गए टकसाल-शुल्क को **महसूल-ए-दारुल जर्ब** कहा जाता था। यह शुल्क कुल ढाली गयी मुद्रा का पांच प्रतिशत था। इसके अतिरिक्त दो अन्य शुल्क भी लिए जाते थे। इन्हें **रुसूम-ए-अहलकारान** (पदाधिकारियों का देय) और **उजरत-ए कारीगरान** (कारीगरों की मजदूरी) कहा जाता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

20.2.2 वसूली का तरीका

भू-राजस्व के समान करों की वसूली के लिए भी एक सुगठित और व्यवस्थित तंत्र स्थापित किया गया था। साम्राज्य में भू-राजस्व और अन्य करों से हुई आयों का अलग-अलग हिसाब रखने का प्रयत्न किया जाता था। इस दृष्टि से करों को **माल-ओ-जिहात** और **सायर जिहात** में वर्गीकृत किया गया। पहले वाला भू राजस्व से और दूसरा व्यापार और वाणिज्य पर लगाये गये करों से संबद्ध था। कर निर्धारण और वसूली की सुविधा की दृष्टि से **महालात-ए-सायर** या **सायर महाल** नामक राजस्व संबंधी अलग क्षेत्र विभाजन बड़े शहरों और नगरों में किया गया। **महाल** शुद्ध राजस्व क्षेत्र था जो **परगना** (जो राजस्व और क्षेत्रीय विभाजन दोनों था) से भिन्न था।

आइन-ए अकबरी में अहमदाबाद, लाहौर, मुल्तान और भडौंच जैसे क्षेत्रों के लिए **सायर महल** और शहरों के राजस्व आंकड़ों को अलग से दर्ज किया गया है। सत्रहवीं शताब्दी के उपलब्ध राजस्व आंकड़ों में प्रत्येक शहर के **सायर महालों** (राजस्व क्षेत्रों) का उल्लेख अलग से किया गया है। उदाहरण के लिए, सूरत की सूची में दिए गए राजस्व **महालों** में **महाल फर्जा, महाल खुश्की, महाल नमकजार, महाल चबूतरा-ए कोतवाली, महाल दलाली, जौहरी वा मनहारी, महाल दारुल जर्ब, महाल गल्ला मंडी** और **महाल जहाजात** का उल्लेख मिलता है।

ये राजस्व क्षेत्र या तो **जागीर** के रूप में दिये जाते थे अथवा इनका राजस्व वसूल करके राजकोष में सीधे जमा करा दिया जाता था। सीमा शुल्क चौकियां और टकसालों को

छोड़कर अन्य करों को वसूल करने वाले अधिकारियों की पदवी भू-राजस्व पदाधिकारियों के अनुरूप ही होती थी।

बंदरगाहों पर अधिकारियों का एक अलग वर्ग होता था। **मुतसद्दी** बंदरगाह का मुख्य पदाधिकारी या अधीक्षक होता था। उसकी नियुक्ति सीधे सम्राट करता था। कर की वसूली करना उसका काम था। सीमा शुल्क चौकियों में व्यापारियों से बात करके निर्धारित किए गए मूल्यों के आधार पर ही वस्तुओं का बाजार मूल्य तय होता था।

मुतसद्दी के अधीन कई पदाधिकारी कार्यरत होते थे जो सीमा शुल्क लगाने, वसूल करने और खातों के रखरखाव में उसकी सहायता करते थे। इनमें **मुशरिफ, तहवीलदार** और **दरोगा-ए-खजाना** प्रमुख है। इन पदाधिकारियों की नियुक्ति भी राजदरबार से होती थी। इन सीमा शुल्क गृहों के अपने कर्मचारी और कुली भी हुआ करते थे।

विस्तृत आंकड़ों के अभाव में कुल वसूली जाने वाली राशि का अनुमान करना कठिन है। शीरीन मूसवी ने प्राप्त आंकड़ों का आकलन करके अनुमान लगाया है कि राज्य की आय में इन करों का योगदान लगभग 10 प्रतिशत के करीब होता था।

बोध प्रश्न 1

1) भूमि कर के अतिरिक्त अन्य मुख्य करों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) **राहदारी** और सीमा शुल्क किस प्रकार वसूल किया जाता था।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

20.3 मौद्रिक व्यवस्था

मुगलों के शासन काल में मौद्रिक व्यवस्था पूरी तरह सुव्यवस्थित थी। इस समय धातुओं की शुद्धता बनाए रखने में काफी सफलता प्राप्त कर ली गयी थी।

20.3.1 मुद्रा प्रणाली

मुगल मुद्रा व्यवस्था को त्रिपदात्मक कहा जा सकता है। तीन प्रकार के सिक्के ढाले जाते थे, तांबा, चांदी और सोना।

चांदी के सिक्कों का मुगलों से पहले का लंबा इतिहास है। दिल्ली सल्तनत में इसका प्रयोग किया गया और इसे **तनका** कहा गया। शेरशाह ने पहली बार चांदी के सिक्के का मानकीकरण किया। इसे **रुपया** कहा जाता था और इसका वजन 178 ग्रेन (ट्राय) होता था। (ट्राय वज़न मापने की अंग्रेजी प्रणाली थी जिसका प्रयोग सोने, चांदी और बहुमूल्य नगों के संदर्भ में किया जाता था। इसके अनुसार 1 पाउंड = 12 आउन्स = 5760 ग्रेन) ढलाई

करने के लिए सिक्के में अन्य धातु भी मिलाई जाती थी जो सिक्के के कुल वजन के 4 प्रतिशत से अधिक नहीं होती थी। अकबर ने भी लगभग इसी वजन के साथ **रुपया** को आधार मुद्रा के रूप में अपनाया। औरंगजेब के शासन काल में **रुपया** का वजन बढ़कर 180 ग्रेन (ट्राय) हो गया। व्यापार और राजस्व आदि के लिए मुख्य रूप से चांदी के सिक्के का ही उपयोग किया ााता था।

मुगलों ने स्वर्ण मुद्राएं भी जारी की जिसे **अशर्फी** या **मुहर** कहते थे। इसका वजन 169 ग्रेन (ट्राय) होता था। यह सिक्का मुख्य रूप से वाणिज्यिक लेन-देन में काम में नहीं लाया जाता था। इसे मुख्य रूप से संचय निधि के रूप में रखा जाता था और इसे उपहार देने के काम में भी लाया जाता था।

छोटे मोटे लेन देन में प्रयुक्त होने वाला आम सिक्का तांबे का **दाम** था जिसका वजन 323 ग्रेन हुआ करता था। संभवतः तांबे की आपूर्ति में कमी के कारण औरंगजेब के शासनकाल में तांबे के **दाम** का वजन एक तिहाई घटा दिया गया।

तटीय इलाकों में छोटे-मोटे खरीद-फरोख्त के लिए **कौड़ियों** (समुद्री सीपी) का उपयोग किया जाता था। ये मुख्य रूप से मालदीव द्वीपों से लायी जाती थीं। लगभग 2500 **कौड़ी** एक **रुपया** के बराबर होती थीं।

चांदी के रुपया के अलावा अन्य प्रकार के सिक्के भी उपयोग में लाए जाते थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण **महमूदी** था जो गुजरात का काफी पुराना चांदी का सिक्का था। यहां तक कि गुजरात में मुगल शासन की स्थापना के बावजूद इसकी ढलाई जारी रही और यह गुजरात में वाणिज्यिक लेन-देन में प्रयुक्त होता रहा।

विजयनगर साम्राज्य में **हूण** या **पगोडा** नामक सोने का सिक्का चला करता था। विजयनगर के विघटन के बाद बीजापुर और गोलकुंडा राज्यों में इसका उपयोग होता रहा। कई दक्खनी राज्यों में तांबे और चांदी की मिश्रधातु का सिक्का **तनका** के नाम से उपयोग में आता रहा। दक्खन में मुगल शासन की स्थापना के बाद उस इलाके में मुगल चांदी के सिक्के की ढलाई के लिए कई टकसाल खोले गये।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सिक्कों का आदान-प्रदान मूल्य

सोना, चांदी और तांबे के सिक्कों का आदान-प्रदान मूल्य बाजार में इन धातुओं की उपलब्धता के आधार पर बदलता रहता था। पूरे मुगल काल में सोने के सिक्के की तुलना में चांदी के सिक्के का मूल्य अधिक ऊपर-नीचे होता रहा। एक सोने के सिक्के का मूल्य 10 से लेकर 14 रुपये तक बदलता रहा।

तांबे के सिक्के के मामले में 1595 को आधार वर्ष बनाकर इरफान हबीब दिखाते हैं कि 1668 ई. तक यह ढाई गुना ऊपर बढ़ा परन्तु 1700 ई. तक आते-आते यह लगभग दोगुना हो गया। (1595 ई. की तुलना में) और फिर 1730 ई. में लगभग 1660 ई. के स्तर पर आ गया।

अकबर के शासन काल में लेन-देन की दृष्टि से 40 तांबे के **दाम** एक **रुपया** के बराबर होते थे। उसकी मृत्यु के बाद तांबे की दर में तेजी से वृद्धि होने के कारण यह अनुपात कायम नहीं रखा जा सका। चूंकि सभी भू-राजस्व निर्धारण और आकलन **दाम** में किए जाते थे अतः इसे रुपया के सिद्धांततः इकाई के रूप में उपयोग में लाना आवश्यक था। छोटे मूल्य के चांदी के सिक्कों को **आना** कहते थे। इसका भी उपयोग किया जाता था। यह रुपये का 1/16वां हिस्सा होता था।

ऊपर हमने जो विवरण दिया है उसमें हमने मुगलों की मौद्रिक व्यवस्था के संबंध में विद्वानों के बीच हुए विवादों और जटिताओं का जिक्र नहीं किया है। यहां हमने सरल ढंग से केवल मुगल मुद्रा प्रणाली की आधारभूत विशेषताओं को स्पष्ट करने की कोशिश की है।

20.3.2 ढलाई व्यवस्था

मुगलों की 'मुक्त-मुद्रा प्रणाली' में बहुमूल्य धातुओं को ढालकर सिक्का बनाया जाता था। केवल राज्य ही सिक्का जारी कर सकता था और कोई अन्य व्यक्ति उसे जारी नहीं कर सकता था। सिक्कों की शुद्धता बनाए रखने के लिए मानकीकरण का कड़ाई से पालन किया जाता था।

पूरे साम्राज्य में कई टकसाल स्थापित किए गए थे। ये टकसाल बड़े शहरों और बंदरगाहों में स्थापित किए गए थे ताकि आयातित बहुमूल्य धातुओं को आसानी से सीधे टकसाल पहुंचाया जा सके। प्रत्येक सिक्के पर ढलाई करने वाले टकसाल, ढलाई का वर्ष और शासक का नाम लिखा होता था। चालू या पिछले वर्ष में ढाले गये नये सिक्कों को **ताजा सिक्का** (नये ढाले गये सिक्के) कहते थे। किसी सम्राट के शासनकाल में जारी और प्रचलित सिक्के की **चलानी** (वर्तमान) कहते थे। जबकि पिछले शासनकाल में ढाले गये सिक्के को **खजाना** के नाम से जाना जाता था। **ताजा** के अलावा अन्य सभी सिक्कों को उनके वास्तविक मूल्य से कम में आंका जाता था।

जारी किए गए वर्ष के बाद के वर्षों में सिक्के के मूल्य से कुछ खास राशि काट ली जाती थी। अगर कोई सिक्का एक वर्ष से अधिक प्रचलन में रहा तो 3 प्रतिशत काटा जाता था और यदि यह 2 वर्ष से ज्यादा पुराना होता था तो 5 प्रतिशत की कटौती की जाती थी।

समय के साथ-साथ सिक्के का वजन घटने पर भी उसके मूल्य में कटौती की जाती थी। अबुल फजल कहता है कि अगर वजन एक रत्ती कम होता था तो इसे नजरअंदाज कर दिया जाता था और सिक्के को मानक माना जाता था। अगर वजन में 1 से 2 रत्ती की कमी आती थी तो ढाई प्रतिशत की कटौती की जाती थी, और अगर यह कमी 2 रत्ती से भी ज्यादा हो जाती थी तो उसे केवल धातु (चांदी) के रूप में देखा जाता था।

इन सभी कटौतियों का निर्णय राज्य करता था परन्तु व्यवहार में **सर्राफ** (मुद्रा की जांच करने वाले) बाजार के आधार पर मनमाने ढंग से कटौतियां किया करते थे।

MAADHYAM IAS

टकसालों की कार्य पद्धति

सिक्कों की ढलाई का इच्छुक कोई भी व्यक्ति धातु या पुरानी मुद्रा टकसाल लाकर सिक्कों की ढलाई करा सकता था। धातु की गुणवत्ता और शुद्धता जांच की जाती थी। मुद्रा ढालकर व्यक्ति विशेष के सुपुर्द कर दी जाती थी। ढलाई के लिए निश्चित दर पर शुल्क लिया जाता था। ढाली गयी बहुमूल्य धातु का लगभग 5.6 प्रतिशत ढलाई शुल्क लिया जाता था।

इस ढलाई के काम को कई व्यक्ति और दस्तकार मिलकर किया करते थे।

दारोगा ए दारुल जर्ब टकसाल का मुख्य पदाधिकारी होता था। वह टकसाल के सभी कार्यों का समग्र निरीक्षण करता था। कई पदाधिकारी, निपुण कारीगर और कार्मिक उसकी सहायता करते थे। टकसाल द्वारा सर्राफ की नियुक्ति मूल्यांकनकर्ता के रूप की जाती थी। उसे सिक्के की शुद्धता, वजन और समय की जांच करनी और उनका मूल्य निर्धारण कर कटौती की राशि निश्चित करनी होती थी। **मुशरिफ** लेखे की देखरेख करता था। **तहवीलदार** प्रतिदिन के लाभ का हिसाब रखता था और सिक्कों तथा बहुमूल्य धातुओं को सुरक्षित स्थान पर रखता था। **महरकान (ढालने** वाला) सिक्कों को ढालता और खांचे बनाता था। **वजनकश** (वजन लेने वाला व्यक्ति) सिक्कों का वजन जांचता था। इसके अलावा **जराब**, (सिक्का निर्माता), **सिक्काची** (ठप्पा लगाने वाला) आदि कई कारीगर बन टकसालों में काम करते थे।

टकसालों की उत्पादन क्षमता के बारे में ठीक ठीक बताना मुश्किल है क्योंकि यह टकसाल के आकार और उस इलाके की वाणिज्यिक गतिविधियों पर निर्भर करता था जहां टकसाल स्थित होता था। 17वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में सूरत की टकसाल में प्रतिदिन 30,000

सिक्के (**रुपया**) ढाले जाते थे। अज़ीज़ा हासन ने 16वीं-17वीं शताब्दी में सिक्कों को जारी किए जाने के विन्यास की चर्चा की है। उनके अनुसार प्रचलित रुपयों की संख्या 1591 ई. और 1639 ई. के बीच तिगुनी हो गई। 1639 ई. के बाद गिरावट आई और 1684 ई. तक यह 1591 ई. में प्रचलित रुपयों के दुगने तक सीमित रह गया। 1684 के बाद यह पुनः बढ़ने लगी और 1700 ई. में कुल संख्या 1591 ई. की तुलना में तिगुनी हो गई।

टकसालों की अवस्थिति

अबुल फजल ने **आइन-ए अकबरी** में टकसालों की एक सूची दी है। उसके अनुसार बयालीस टकसालों में तांबे के सिक्के, चौदह में चांदी के सिक्के और चार में सोने के सिक्के ढाले जाते थे। 17वीं साताब्दी के अंत तक चांदी के सिक्के ढालने वाली टकसालों की संख्या बढ़कर चालीस हो गई।

एम.पी. सिंह ने कई मुद्रा संबंधी स्रोतों के आधार पर टकसालों की एक विस्तृत सूची बनाई है। उनके अनुसार बहुत से सिक्कों पर टंकित टकसालों के नाम न तो **आइन-ए अकबरी** में और न ही किसी अन्य साहित्यिक स्रोत में मिलते है। हम उनके द्वारा बनाई गई सूची नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं।

शासन काल	सोना चांदी और तांबा को ढालने वाली टकसाल	केवल सोने का सिक्का बनाने वाली टकसाल	केवल सोना और चांदी के सिक्के ढालने वाली टकसाल	सोना और तांबे के सिक्के ढालने वाली टकसाल	चांदी के सिक्के ढालने वाली टकसाल	चांदी और तांबा के सिक्के ढालने वाली टकसाल	केवल तांबे का सिक्का ढालने वाली टकसाल	कुल
अकबर	13	4	3	—	14	14	35	**83**
जहांगीर	6	2	7	—	11	3	3	**32**
शाहजहां	19	1	12	—	33	—	5	**41**
औरंगजेब	19	1	34	—	36	3	3	**85**

स्रोत : एम.पी. सिंह, **टाउन मार्केट, मिंट एंड पोर्ट इन द मुगल अम्पायर**, पृष्ठ 173, 1985, दिल्ली।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

20.4 कीमतें

आइन-ए अकबरी में कई प्रकार की वस्तुओं के मूल्यों की सूचियां उपलब्ध हैं। ये मुख्य रूप से 16वीं शताब्दी के अंत के आगरा के आसपास के मूल्य से संबद्ध हैं। तुलना करने के लिए आगे के वर्षों के मूल्यों का कोई व्यवस्थित ब्योरा उपलब्ध नहीं है।

17वीं शताब्दी के दौरान साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों और अलग-अलग वर्षों में कुछ वस्तुओं के मूल्यों के बारे में कुछ बिखरी हुई जानकारी मिलती है। इस स्थिति में पूरे मुगल काल में विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों में उतार-चढ़ाव की निश्चित प्रवृत्ति को पहचान पाना बहुत कठिन है। इरफान हबीब ने 16वीं-17वीं शताब्दी के दौरान मूल्यों के उतार-चढ़ाव का अध्ययन किया है। (**कैम्ब्रिज इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इन्डिया**, खंड 1) हम नीचे इरफान हबीब द्वारा किए गये इस अध्ययन का संक्षेप में उल्लेख करने जा रहे हैं।

सोना, चांदी और तांबा

हमने 20.3.1 उपभाग में इन धातुओं के तुलनात्मक मूल्यों का उल्लेख किया था। 1580 के आसपास सोने और चांदी का अनुपात 1:9 था। 1670 ई. के बाद कई उतार चढ़ाव आए और यह अनुपात 1:16 हो गया। परन्तु 1750 ई. तक यह पुनः 1:14 हो गया।

16वीं शताब्दी के अंत से 1660 ई. तक आते-आते तांबे के सिक्कों का चांदी में मूल्य 2.5 गुना बढ़ गया। 1700 ई. तक यह नीचे गिरकर 16वीं शताब्दी के मूल्य का दोगुना हो गया। एक बार फिर 1750 ई. में यह 1660 ई. के स्तर पर पहुंच गया।

कृषी उत्पाद

खाद्यान्नों के मूल्यों के विश्लेषण में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इनके मूल्यों में कई प्रकार के उतार-चढ़ाव होते रहते थे। किसी वर्ष और क्षेत्र में खाद्यान्नों का मूल्य उस क्षेत्र में उसके उत्पादन से निर्धारित होता था। इसके अतिरिक्त उस वर्ष हुई उपज से भी इनका मूल्य निर्धारित होता था। एक ही समय में एक ही वस्तु का दो स्थानों पर अलग-अलग मूल्य हो सकता था। यह उत्पादन स्थल से बाजार की दूरी पर भी निर्भर करता था। **आइन-एअकबरी** में उल्लिखित कुछ अनाजों के मूल्यों को नीचे दर्शाया जा रहा है:

गेहूं प्रति मन	12 दाम	सादा धान प्रति मन	100 दाम
काला चना प्रति मन	8 दाम	देवजीरा चावल प्रति मन	90 दाम
मसूर चना प्रति मन	12 दाम	साथी चावल प्रति मन	20 दाम
जौ प्रति मन	8 दाम	उर्द दाल प्रति मन	16 दाम
मोठ प्रति मन	12 दाम	मूंग दाल प्रति मन	18 दाम

1595 ई. और 1637 ई. के बीच अनाजों के मूल्य में दोगुनी वृद्धि हुई। 1637 ई. और 1670 ई. के बीच 15 से 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। 1670 ई. तक मूल्य 1595 ई. की तुलना में 230 प्रतिशत बढ़ गये। पूर्वी राजस्थान का व्यवस्थित आंकड़ा उपलब्ध है। यहां 1660 ई. और 1690 ई. के बीच कृषीय मूल्यों में मामूली वृद्धि पाई जाती है लेकिन 18वीं शताब्दी के दूसरे दशक में इसमें तेजी से वृद्धि हुई। इसके बाद 1690 ई. की तुलना में उनका मूल्य दोगुना से भी ज्यादा रहा।

चीनी और नील

चीनी और नील मुगल कालीन भारत की दो प्रमुख नगदी फसलें थीं। उत्तर भारत में 1615 ई. तक चीनी के मूल्य में न के बराबर वृद्धि हुई। 1630 ई. तक इसमें 140 प्रतिशत की वृद्धि हुई और 1650 ई. तक यह बढ़ोत्तरी कायम रही, जबकि गुजरात में 1620 ई. तक चीनी का मूल्य दोगुना हो गया था।

MAADHYAM IAS

नील के दो प्रमुख प्रकारों-बयाना नील और सरखेज नील के मूल्यों में अलग-अलग ढंग से उतार-चढ़ाव हुआ। **आइन-ए अकबरी** (1595 ई.) में बयाना नील का मूल 16 रुपये प्रति मन बताया गया है। 17वीं शताब्दी के प्रथम 25 वर्षों तक मूल्य लगभग इसी स्तर पर टिके रहे। 1630 ई. में इसमें अचानक वृद्धि हुई और कुछ समय बाद इसके मूल्य में गिरावट आ गई, फिर भी 1620 ई. के मूल्य से यह मूल्य काफी अधिक था। 1660 ई. में एक बार फिर तेजी से वृद्धि हुई, थोड़े समय बाद इसमें गिरावट आई परन्तु 1595 ई. की तुलना में यह मूल्य तिगुना था।

1620 ई. तक सरखेज नील का मूल्य डेढ़ गुना बढ़ गया। 1630 ई. में इसमें तेजी से वृद्धि हुई और 1640 ई. में गिरावट आई लेकिन 1595 ई. की तुलना में यह मूल्य दोगुना था। नील के मूल्य में उतार-चढाव विदेशी मांग से भी प्रभावित होता था।

वेतन और मजदूरी

आइन-ए अकबरी में कई प्रकार के मजदूरों की मजदूरी का उल्लेख मिलता है। 17वीं शताब्दी के लिए ऐसा कोई आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। अतः इस पूरे काल की मजदूरी दर की प्रवृत्ति को आंक पाना कठिन है। 17वीं शताब्दी के इधर-उधर फैले आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि 1637 ई. तक 67 से 100 प्रतिशत तक वृद्धि हो चुकी थी, परन्तु इनके आधार पर कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

1) मुगलों के अधीन सिक्का ढालने की व्यवस्था पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

2) टकसालों के प्रबंधन पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

3) 17वीं शताब्दी के दौरान मूल्यों के उतार-चढ़ाव पर संक्षेप में टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

20.5 सारांश

MAADHYAM IAS

इस इकाई में हमने यह बताने की कोशिश की कि भू-राजस्व के अलावा राज्य की आय के और भी कई स्रोत थे। यह आय बाजार कर, सीमा शुल्क, **राहदारी,** सिक्का ढलाई शुल्क, आदि के माध्यम से होती थी।

मुगल मुद्रा प्रणाली त्रिपदीय थी अर्थात् इसमें सोने, चांदी और तांबे के सिक्के का उपयोग होता था। मुगल मुद्रा प्रणाली मुक्त थी और कोई भी व्यक्ति बहुमूल्य धातु लेकर टकसाल से सिक्के बनवा सकता था। पूरे सामाज्य में टकसाल स्थापित किए गए थे। इमसें शुद्धता और मानकीकरण के ऊंचे मानदंड का कड़ाई से पालन किया जाता था।

डेढ़ सौ वर्षों में मूल्य चार गुना बढ़ गए। प्रति वर्ष मूल्यों की वृद्धि दर लगभग 1.9 प्रतिशत थी। मजदूरी संबंधी परिमाणात्मक आंकड़े काफी कम उपलब्ध हैं। हमें मजदूरी के बारे में विस्तार से जानकारी **आइन-ए अकबरी** (1595) में मिलती है।

20.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप इसमें चुंगी कर, टकसाल शुल्क, उत्पाद शुल्क आदि का उल्लेख कर सकते हैं। देखिए उपभाग 20.2.1

2) देखिए उपभाग 20.2.2

बोध प्रश्न 2

1) मुगलों की मुद्रा बनाने की व्यवस्था मुक्त थी। यह त्रिपदीय मुद्रा प्रणाली थी। देखिए उपभाग 20.3.1 और 20.3.2

2) आप इसमें टकसालों के अधिकारियों और उनकी कार्य पद्धति का उल्लेख कर सकते हैं। देखिए उपभाग 20.3.2

3) देखिए भाग 20.4

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

इरफान हबीब, **मुगलकालीन भारत की कृषि व्यवस्था 1556-1707**

जी.डी. शर्मा, **मध्यकालीन भारतीय सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थायें**

तपनराय चौधरी, एवं इरफान हबीब, **द कैम्ब्रिज इकानॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,** भाग-1

एच. फुकाज़ावा, **द मिडिवल डैकन : पेज़ेंट्स, सोशल सिस्टम्स एंड स्टेट्स 16 टू 18 सैंचुरी**

एच.के. शेखानी, पी.एम. जोशी, **हिस्ट्री ऑफ मिडिवल डैकन** (1295-1724) भाग-2

एच.सी. वर्मा, **मध्यकालीन भारत**

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 21 कृषि उत्पादन

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 खेती का विस्तार
21.3 खेती और सिंचाई के साधन
    21.3.1 खेती के साधन और तरीके
    21.3.2 सिंचाई के साधन
21.4 कृषि उत्पाद
    21.4.1 खाद्यान्न उत्पादन
    21.4.2 नगदी फसल
    21.4.3 फल, सब्जी और मसाले
    21.4.4 उत्पादकता और उपज
21.5 पशु और पशुधन
21.6 सारांश
21.7 शब्दावली
21.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

इस इकाई में अध्ययनरत काल में भारत के कृषि उत्पादन के बारे में विचार किया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- अध्ययनरत काल में खेती के प्रसार का उल्लेख कर सकेंगे;
- खेती और सिंचाई के साधनों और तरीकों को रेखांकित कर सकेंगे;
- उपजाई जाने वाली प्रमुख फसलों की जानकारी दे सकेंगे; और
- पशुधन तथा पशु पालन की स्थिति पर प्रकाश डाल सकेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

21.1 प्रस्तावना

भारत के विस्तृत भू-भाग में विभिन्न प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र हैं। इसके पूरे इतिहास में कृषि सर्वप्रमुख उत्पादक गतिविधि रही है। मुगल काल में भी भू-भाग के विस्तृत क्षेत्रों में खेती की जाती थी। इस काल के भारतीय और विदेशी लेखकों ने भारतीय मिट्टी की उर्वरता की प्रशंसा की गई है।

इस इकाई में हम कृषि के विभिन्न आयामों के साथ-साथ खेती के विस्तार अर्थात् जोती जाने वाली भूमि पर भी विचार करेंगे। भारत में कई प्रकार की खाद्यान्न फसल, फल, सब्जी और नगद फसलें उपजाई जाती थीं। हमारे लिए इन सभी पर विचार कर पाना संभव नहीं होगा अतः हम कुछ प्रमुख फसलों का ही उल्लेख करेंगे। खेती के तरीके के साथ-साथ खेती में काम आने वाले औजारों और सिंचाई तकनीक की भी चर्चा करेंगे। यहां हम मुगल नियंत्रण में पड़ने वाले क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ-साथ इसके नियंत्रण के बाहर पड़ने वाले क्षेत्रों की भी चर्चा करेंगे।

21.2 खेती का विस्तार

विस्तृत आंकड़ों के अभाव में जोती जाने वाली कुल भूमि का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है। फिर भी उपलब्ध आंकड़े की सहायता से मुगल काल में खेती की जाने वाली भूमि का एक अंदाज लगाया जा सकता है।

अबुल फ़ज़ल ने अपनी कृति **आइन-ए अकबरी** में बंगाल, थट्टा और कश्मीर को छोड़कर उत्तर भारत के सभी मुगल प्रांतों से संबद्ध क्षेत्रीय माप के आंक़ड़े प्रस्तुत किए हैं। दिल्ली, आगरा, अवध, लाहौर, मुल्तान, इलाहाबाद और अजमेर जैसे अधिकांश प्रांतों के मामले में प्रत्येक परगना (कुछ अपवादों को छोड़कर) के लिए अलग से आंकड़े उपलब्ध हैं।

आइन-ए अकबरी में दिए गए आंकड़े 1595 ई. के आसपास के है। 1686 ई. की लेखा संबंधी एक नियम पुस्तिका में 17वीं शताब्दी के विभिन्न प्रांतों के क्षेत्र संबंधी आंकड़े उपलब्ध हैं। **चहार गुलशन** (1739-40) ई.) नामक ऐतिहासिक कृति में भी ये आंकड़े पुनः प्रस्तुत किए गए हैं। इस नियम-पुस्तिका में प्रत्येक प्रांत के मापित क्षेत के आंकड़े दिए गए हैं। प्रत्येक प्रांत में गांवों की कुल संख्या दी गई है इसमें मापित और गैर मापित गांवों की संख्या भी उपलब्ध है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है **आइन-ए अकबरी** में अधिकांश मामलों में प्रत्येक परगना का क्षेत्र संबंधी आंकड़ा दिया गया है पर यह कहना मुश्किल है कि परगना के कितने क्षेत्र को वास्तविक रूप में मापा गया था। औरंगजेब के शासनकाल से मिले आंकड़ों से तस्वीर ज्यादा स्पष्ट रूप में उभरती है। इनसे पता चलता है कि 1686 ई. तक लगभग पचास प्रतिशत गांवों की मापी नहीं हुई थी।

औरंगजेब के शासनकाल के उपलब्ध आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि इस काल में **आइन** (1595 ई.) की तुलना में मापित इलाके का फैलाव बढ़ा था। पर यह कहना मुश्किल है कि मापी गयी भूमि में यह बढ़ोतरी खेती के विस्तार के कारण हुई थी। ऐसा भी हो सकता है कि पहले आंकड़ों में कुछ खेती होने वाली भूमि की माप शामिल नहीं थी और बाद में इस भूमि को माप कर आंकड़ों में शामिल कर लिया गया हो।

विद्वानों के बीच यह विवाद का विषय है कि इन माप संबंधी आंकड़ों से वस्तुतः क्या परिलक्षित होता है। इनसे उठने वाले कुछ प्रश्न हैं: क्या इन आंकड़ों से वास्तविक रूप से जोती गई भूमि का पता चलता है, या कुल खेती योग्य भूमि या कुल मापे गये क्षेत्र का बोध होता है। डब्ल्यू-एच-मोरलैंड का मानना था कि ये आंकड़े इस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें फसल बोई जाती थी।

इरफान हबीब का मानना है कि इसमें कृषि योग्य ऐसी भूमि जिसमें कुछ बोया नहीं गया हो तथा रहने वाले इलाके, झील, तालाब, जंगल के कुछ भागों आदि को भी शामिल किया गया होगा। शीरीन मूसवी इरफान हबीब के मत का समर्थन करती है और गणना क़रके बताती है कि मापे गये इलाके में दस प्रतिशत खेती योग्य परती जमीन भी शामिल होती थी। लेकिन वे यह महसूस करती हैं कि इस दस प्रतिशत को निकालने के बावजूद शेष क्षेत्र को कुल फसल क्षेत्र के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता है क्योंकि खेती की जाने वाली भूमि का काफी हिस्सा मापा नहीं जा सका था। उनका यह भी मानना है कि खरीफ और रबी फसलों की भूमि को कई बार अलग-अलग मापा जाता था और बाद में दोनों को जोड़कर मापा गया क्षेत्र अंकित किया जाता था।

इस स्थिति में, खेती के प्रसार को जानने के लिए मुगल काल के केवल माप संबंधी आंकड़ों से बहुत मदद नहीं मिलती है। इरफान हबीब और शीरीन मूसवी ने कुछ राजस्व प्रपत्रों में उपलब्ध विस्तृत आंकड़ों, जमा (अनुमानित राजस्व) आंकड़ों और **दस्तूर** दरों (नगद राजस्व दरों) जैसे स्रोतों का भी सहारा लिया है। इन्होंने बीसवीं शताब्दी के आरंभ में वास्तविक जोती गई भूमि के आंकड़ों से इनकी तुलना की है।

उनके प्राक्कलन के अनुसार 16वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी के बीच खेती की गई भूमि का फैलाव लगभग दोगुना हो गया। बिहार, अवध और बंगाल के कुछ भागों में जंगलों को साफ करने से खेती योग्य भूमि में विस्तार हुआ। पंजाब और सिंध में नहर सिंचाई व्यवस्था के विकास होने से खेती का विस्तार हुआ।

21.3 खेती और सिंचाई के साधन

मिट्टी की प्रकृति और फसलों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारतीय किसान कई प्रकार के औजार और तकनीकों का सहारा लिया करते थे। इसी प्रकार, विभिन्न प्रांतों में सिंचाई के विभिन्न साधन उपलब्ध थे।

21.3.1 खेती के साधन और तरीके

प्रमुख रूप से हल में दो बैलों को जोतकर खेत जोता जाता था। हल लकड़ी का बना होता था जिसमें लोहे का फाल लगा होता था। यूरोप की तरह भारत में घोड़ों या बैल द्वारा खींचे जाने वाली पहियेदार हल और सांचा पट्ट का उपयोग नहीं होता था। भारत में क्षेत्रीय विभिन्नताओं के कारण हल के आकार और वजन में फर्क होता था। हलके हल (इतने हलके जिन्हें) किसान अपने कंधों पर भी उठा सकता था से लेकर काफी भारी हलों का उपयोग किया जाता था। कड़ी मिट्टी के लिए अधिकांशः भारी हलों का प्रयोग होता था। हलकी मिट्टी वाले क्षेत्र में हल के फाल में लोहा नहीं लगाया जाता था क्योंकि लोहे की कीमत भी ज्यादा होती थी। कई समकालीन यूरोपीय यात्रियों ने यह देखकर आश्चर्य प्रकट किया है कि भारतीय हलों द्वारा केवल मिट्टी को उलट दिया जाता था और गहरी जोताई नहीं की जाती थी। ऐसा लगता है कि यह भारतीय महाद्वीप के अनुकूल था क्योंकि गहरी जोताई करने से मिट्टी की नमी कम होने का खतरा रहता था। इसके अलावा केवल ऊपरी सतह ही अधिक उपजाऊ होती थी। मिट्टी के ढेलों को तोड़ने के लिए अलग तरीका अपनाया जाता था। इस कार्य के लिए पटेला कही जाने वाले लकड़ी के तख्ते का प्रयोग किया जाता था। हल की तरह इस चपटे तख्ते को भी दो बैलों की सहायता से खींचा जाता था। आमतौर पर वजन डालने के लिए इस पर एक आदमी खड़ा हो जाता था। खेत में पटेला को बैल खींचते थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बीजारोपण का काम आमतौर से बीजों की खेत में हाथ से छीट कर किया जाता था। सोलहवीं शताब्दी में तटीय क्षेत्रों में बारबोसा धान रोपने के लिए एक प्रकार के बीज बरमे के उपयोग का विवरण देता है।

कृत्रिम तरीकों से मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए विभिन्न तरीकों का प्रयोग किया जाता था। दक्षिण में बकरों और भेड़ के झुंडों का इस कार्य के लिए खूब उपयोग किया जाता था। आमतौर पर इन पशुओं के झुंड को रात भर के लिए खेत में छोड़ दिया जाता था जहां वे अपना मल त्याग करते थे और यह अच्छी खाद का काम करता था। यह माना जाता था कि अगर 1000 का झुंड एक **कानी** खेत (1.32 एकड़) में पांच-छह दिन व्यतीत करे तो यह अगले छह-सात वर्षों के लिए खेत को उपजाऊ रखने के लिए उपयुक्त होता है। **(कैम्ब्रीज इक्नॉमिक हिस्ट्री, खंड 1, पृष्ठ 231)**। इसी प्रकार की प्रथा आमतौर पर उत्तरी भारत में भी प्रचलित थी। तटीय प्रदेशों में मछली की खाद भी उपयोग में लायी जाती थी।

पूरे वर्ष भूमि का अधिकतम उपयोग करने के लिए फसलों को बदल-बदल कर उगाया जाता था। मिट्टी की उत्पादकता की दृष्टि से भी इसे अच्छा माना जाता था। परम्परागत अनुभव से किसान फसल को बदल बदलकर बोने की सार्थकता से परिचित हो चुके थे। वे यह निर्णय किया करते थे कि अच्छे उत्पादन के लिए किस फसल के बाद कौन सी फसल लगाई जानी चाहिए।

फसल काटने के लिए अर्द्ध वृत्ताकार हंसुए का उपयोग किया जाता था। अनाज को अलग करने के लिए काटी गई फसल को जमीन पर फैला दिया जाता था। हमारे स्रोतों में इस फसल से दाना अलग करने के दो तरीकों का जिक्र मिलता है: पहले तरीके में फसल को डंडे से पीटा जाता था, दूसरे तरीके में फैली हुई फसल पर जानवरों को घुमाया जाता था। जानवरों के भार और चलने फिरने से अनाज फसल से अलग हो जाता था। अलग किया हुआ अनाज टोकरी में भर दिया जाता था और एक नियंत्रित गति के साथ उसे गिराया जाता था। हवा के प्रभाव से भूंसा बिखर जाता था और अनाज जमीन पर गिर जाता था।

21.3.2 सिंचाई के साधन

भारतीय कृषि बहुत हद तक वर्षा पर निर्भर करती थी। किसी क्षेत्र विशेष में फसलों को लगाने से पहले वर्षा के जल की उपलब्धता को मुख्य रूप से ध्यान में रखा जाता था। वर्षा जल के अतिरिकत सिंचाई के कृत्रिम साधनों का भी उपयोग किया जाता था।

पूरे देश में कुएं द्वारा सिंचाई की जाती थी। कुएं से पानी को निकालने के लिए विभिन्न उपलब्ध तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता था। यह तकनीक इस बात पर भी निर्भर करती थी कि कुंआ कितना गहरा है।

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03 के खंड 6 में पानी खींचने के कई तरीकों पर विचार किया गया है। यहां हम पानी खींचने के तरीकों का संक्षेप में उल्लेख करने जा रहे हैं।

उत्तर भारत में कच्चे और पक्के दोनों प्रकार के कुंए खोदे जाते थे। कच्चे कुएं अधिक टिकाऊ नहीं होते थे और इनमें हर साल कुछ खुदाई करनी पड़ती थी। पक्के कुंए टिकाऊ होते थे और इन कुओं से पानी निकालने की तकनीक का आसानी से उपयोग किया जा सकता था। पक्के कुएं की दीवारें उठी होती थी और उनके ऊपर एक घेरा या चबूतरा बना होता था। कुओं कि दीवारें बनाने के लिए पत्थर या ईंटों का प्रयोग होता था। इन कुओं के बनाने में पक्की हुई मिट्टी के वृत्ताकार घेरों या छल्लों को एक के ऊपर एक कुंए की गोलार्द्ध में बिठाया जाता था इन्हें वृत्तीय कुएं भी कहते थे। इन कुओं से पानी खींचने के लिए अनेक तरीके अपनाए जाते थे।

MAADHYAM IAS

i) रस्सी और बाल्टी के सहारे हाथों से पानी निकालना सबसे आसान तरीका था जिसमें किसी प्रकार के यंत्र की सहायता नहीं ली जाती थी। अपनी सीमित क्षमता के कारण इसका उपयोग बड़े खेतों की सिंचाई के लिए नहीं किया जा सकता था।

ii) दूसरे तरीके में कुंओं के ऊपर धुरी लगा दी जाती थी। धुरी में रस्सी और बाल्टी को लगा दिया जाता था और पहले तरीके की तुलना में शक्ति का उपयोग कर अधिक पानी निकाला जा सकता था। इन दोनों तरीकों का उपयोग घरेलू आपूर्ति और बहुत छोटे खेतों की सिंचाई के लिए किया जाता था।

iii) एक तीसरे तरीके में रस्सी और धुरी के तरीके से पानी निकालने में बैलों का भी उपयोग किया जाता था। इस प्रणाली में पशु शक्ति का उपयोग करने से बड़े क्षेत्रों की सिंचाई संभव हो सकी।

iv) चौथी प्रणाली में उतोलक (लीवर) सिद्धांत का उपयोग किया जाता था। इस प्रणाली के एक लम्बे पेड़ के तने या बांस को एक पेड़ की दो शाखाओं के बीच इस प्रकार फंसा देते हैं कि वह झूले के समान हो जाता था। उसके एक सिरे पर कसकर रस्सी बांध दी जाती थी और पिछले हिस्से में एक भारी पत्थर लटका दिया जाता था। अगले हिस्से की रस्सी में बाल्टी को बांध दिया जाता था। पिछले हिस्से का वजन पानी भरी बाल्टी से अधिक होता था। इसे एक आदमी चला सकता था। (विवरण के लिए पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03 का खंड 6 देखिए)।

v) पांचवी प्रणाली में चक्के का उपयोग किया जाता था। आरंभ में चक्के के ऊपर वर्तन लगा दिये जाते थे जिसे जानवर की सहायता से घुमाया जाता था। इस प्रकार के चक्के से केवल छिछले स्तर से ही पानी निकाला जा सकता था और कुंओं के लिए

इसका कोई उपयोग नहीं था। चक्के या पहिए के परिवर्तित रूप का उपयोग कुंए से पानी निकालने के लिए भी किया जाता था। इसमें कई बर्तनों की माला सी बनाई जाती थी और इसमें तीन चक्कों के गेयर की तकनीक और पशु शक्ति की सहायता ली जाती थी। (विवरण के लिए ई.एच.आई.-03 का खंड 6 पढ़िए) इसकी सहायता से बड़े खेतों में काफी मात्रा में पानी पहुंचाया जा सकता था। इससे गहरे कुंओं से भी पानी निकाला जा सकता था। जटिल यंत्र और पशु शक्ति के उपयोग के कारण यह तरीका खर्चीला होता होगा। अतः इसका उपयोग सम्पन्न किसान ही किया करते होंगे।

पूरे देश में झीलों, तालाबों और जलाशयों का उपयोग एक समान होता था। दक्षिण भारत में यह अधिक लोकप्रिय प्रणाली थी। यहां नदियों के ऊपर बांध बनाए गए। इन जलाशयों का निर्माण व्यक्तिगत उद्यम से नहीं हो सकता था। अतः इस प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराना राज्य, स्थानीय सरदारों और मंदिर प्रबंधन की जिम्मेदारी थी। विजयनगर के शासकों द्वारा बनवाई गई विशाल मडग झील उस समय के नागरिक अभियंत्रिकी का उत्तम नमूना थी। इसे तुंगभद्र नदी को तीन तरफ से घेरकर बनाया गया था। इसके लिए तीन पहाड़ियों के बीच तीन बांध बनाए गए थे। भरी होने पर यह झील 10-15 मील लंबी थी। इन तीनों बांधों में बड़े-बड़े पत्थरों से निर्मित जलद्वार बने हुए थे।

राजस्थान में भी पानी जमा करने के लिए जलाशयों का निर्माण किया जाता था। **आइन-ए अकबरी** के अनुसार मेवाड़ की धेबर झील 36 मील में फैला हुई था। कहा जाता है उदय सागर 12 मील के क्षेत्र में फैला था, राजसमंद और जयसंमंद 17वीं शताब्दी में मेवाड़ में बनी अन्य महत्वपूर्ण झीलें थी। मारवाड़ और आमेर प्रातों में बांधों की सहायता से क्रमशः बालसमंद और मानसागर नामक जलाशयों का निर्माण किया गया। लगभग सभी गांवों में जलाशय और झील बने थे जहां वर्षा का पानी एकत्र किया जाता था। हमारे स्रोतों से पता चलता है कि 1650 के दशक में मुगल प्रशासन ने खानदेश और बरार में सिंचाई के लिए बांध निर्माण करने हेतु किसानों को 40,000-50,000 रुपये तक अग्रिम देने का प्रस्ताव रखा था। यह एक रोचक तथ्य है कि आज भी खानदेश में ऐसे छोटे बांधों का उपयोग किया जाता है और ये इस क्षेत्र की मोसम, गिरना, केन, पंजबरा, शिवान नामक पांच प्रमुख नदियों के द्रोणी क्षेत्र को सिंचित करते हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

उत्तरी मैदानी भागों में नहरों का उपयोग सिंचाई के प्रमुख साधन के रूप में किया जाता था हम ऐच्छिक पाठ्यक्रम 3 के खंड 6 में चौदहवीं शताब्दी में सुल्तान फिरोज तुगलक द्वारा बनवाई गई नहरों के बारे में पढ़ चुके हैं। यह प्रवृति मुगलों के काल में भी जारी रही। शाहजहां ने 150 मील लंबी फैज नामक नहर बनवाई थी। इसके द्वारा यमुना का जल विस्तृत क्षेत्र में पहुंचाया जाता था। इसी प्रकार लाहौर के निकट रावी नदी से 100 मील लंबी नहर निकाली गई थी। पूरे सिंधु नदी के मुहाने में कई नहरों के अवशेष पाए जाते हैं। इरफान हबीब का मानना है कि मुगल नहरों में सबसे बड़ी कमी यह थी कि वे अक्सर आसपास के स्तर से ऊपर नहीं उठी होती थीं अतः उनसे की गई सिंचाई इस बात पर निर्भर करती थी कि उनसे कितना पानी निकाला जा सकता था। इस क्षेत्र में नहरों की संख्या लगातार बढ़ती रही। दक्षिण भारत में नहरों की जानकारी नहीं मिलती है।

बोध प्रश्न 1

1) मुगल काल में उपयोग में लाए जाने वाले हलों पर तीन पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

2) मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए अपनाई गई तीन विधियों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

3) खेतों की सिंचाई करने के लिए कुंओं से पानी निकालने की तीन विधियों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

4) सिंचाई के काम में आनेवाली तीन झीलों या बांधों का नाम बताइए।

....

....

....

....

....

21.4 कृषि उत्पाद

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

भारत के विस्तृत भू-भाग, विभिन्न प्रकार की मिट्टियों और पर्यावरणीय वातावरण के कारण यहां कई प्रकार के कृषि उत्पादों का उत्पादन होता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम इन कृषि उत्पादों को तीन हिस्सों—खाद्यान्न फसल, नगदी फसल और फल, सब्जी और मसालों में बांटकर विचार करेंगे।

21.4.1 खाद्यान्न उत्पादन

उत्तर भारत की अधिकांश मौसमी फसलें दो प्रमुख फसल ऋतुओं खरीफ (शरद) और रबी (बसंत) में उगाई जाती थी। कुछ किसान इनके बीच लघु अवधि की फसलें उगाकर कभी-कभी तीन फसलें भी उपजा लिया करते थे। प्रमुख खरीफ धान या चावल और प्रमुख रबी फसल गेहूं थी। दक्षिण भारत में इस प्रकार का विभाजन नहीं था जिसमें अलग मौसमों में अलग फसल उपजाई जाती हो। यहां सिंचित भूमि पर धान (चावल) की एक फसल जून-जुलाई से दिसम्बर/जनवरी और दूसरी फसल जनवरी/फरवरी से अप्रैल/मई तक उगाई जाती थी। उत्तरी आर्कोट में भूमि पर मई से सितम्बर/अक्टूबर तक सूखी फसलें (कुम्बु, लाल चना, घोड़ा चना और अरंडी) बोई जाती थी और इन्हें अगस्त से दिसम्बर/जनवरी तक काटा जाता था, अगस्त सितम्बर में रागी और छोलम तथा फरवरी/मार्च में धान की फसलें काटी जाती थी (**कैम्ब्रिज इक्नॉमिक हिस्ट्री, पृ० 229**)।

गेहूं और चावल पूरे देश की दो महत्वपूर्ण फसलें थी। अधिक वर्षा (40″ से 50″) वाले क्षेत्रों में धान का उत्पादन अधिक होता था। सम्पूर्ण उत्तर पूर्व, पूर्वी भारत (बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग), गुजरात का दक्षिणी तटीय प्रदेश और दक्षिण भारत प्रमुख धान उत्पादक क्षेत्र थे। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है दक्षिण भारत में चावल

उत्पादन के **कुट्टपाह-कर** और **साम्बा-पेशानम** दो प्रमुख मौसम थे। इनका नामकरण गर्मी और जाड़े के मौसम में उपजाउ जानेवाले मुख्य धान के प्रकार पर आधारित था।

पंजाब और दक्खन के सिंचित इलाकों से भी धान की खेती की जानकारी मिलती है। प्रत्येक क्षेत्र में अलग किस्म का मोटा, साधारण और अच्छी कोटि का धान या चावल उपजाया जाता था। बंगाल और बिहार क्षेत्रों में उत्तम कोटि का चावल उपजाया जाता था।

चावल के समान गेहूं के भी कुछ खास इलाके थे। पंजाब, सिंध, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और अन्य कम वर्षा वाले क्षेत्र में गेहं उपजाया जाता था। बिहार, गुजरात, दक्खन और यहां तक कि बंगाल के कुछ भागों में भी इसके उत्पादन का हवाला मिलता है।

इन दोनों फसलों के अतिरिक्त मध्य मैदानी भागों में जौ का खूब उत्पादन होता था। **आइन-ए अकबरी** में इलाहाबाद, अवध, आगरा, अजमेर, दिल्ली, लाहौर और मुल्तान आदि में भी जौ के उत्पादन का उल्लेख मिलता है।

कुछ अपवादों को छोड़कर गेहूं वाले इलाकों में ज्वार और बाजरा भी उपजाया जाता था।

विभिन्न प्रांतों में दालों के उगाए जाने की भी जानकारी मिलती है। इनमें चना, अरहर, मूंग मोठ, उड़द और खेसाड़ी (अंतिम काफी मात्रा में बिहार और आधुनिक मध्यप्रदेश के इलाके में उपजाया जाता था) की दालें प्रमुख हैं। हालांकि अबुल फजल बताता है कि खिसाड़ी का सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता था। आधुनिक शोध भी इसे प्रमाणित करते हैं।

काफी समय तक यह समझा जाता था कि 17वीं शताब्दी में भारत में मकई या मक्का का उत्पादन नहीं होता था। कुछ नए शोधों से यह साबित हो चुका है कि 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में से राजस्थान और महाराष्ट्र में निश्चित रूप से और संभवतः अन्य प्रांतों में भी यह उपजाया जाता था।

MAADHYAM IAS

21.4.2 नगदी फसल

मुख्य रूप से बाजार के लिए उपजाई जाने वाली फसलों को आमतौर पर नगदी फसल कहते थे। फारसी विवरणों में इन्हें **जिन्स-ए कामिल** या **जिन्स-ए आला** (सर्वोतम कोटि की फसल) कहा गया है। खाद्यान्न फसलों के विपरीत ये पूरे वर्ष खेतों में खड़ी रहती थी। 16वीं-17वीं शताब्दी की नगदी फसलों में गन्ना, कपास, नील और अफीम प्रमुख थे।

ये सभी फसलें भारत में पुरातन काल से उपजाई जा रही थीं। 17वीं शताब्दी में कारीगर उत्पादन और वाणिज्यिक गतिविधियों के बढ़ने के कारण उनकी मांग में वृद्धि हुई थी। इस काल में इन वस्तुओं के लिए एक विशाल विदेशी बाजार का द्वार भी खुल गया। भारतीय किसानों ने बाजार की मांग को तेजी से पहचाना और इन फसलों का उत्पादन तेज कर दिया।

इस काल में नगदी फसलों में सबसे ज्यादा खेती गन्ने की होती थी। **आइन-ए अकबरी** के अनुसार आगरा, अवध, लाहौर, मुल्तान और इलाहाबाद के अधिकांश राजस्व क्षेत्रों (**दस्तूर** प्रखंडों) में गन्ना उगाया जाता था। बंगाल में उगाया जाने वाला गन्ना सर्वोतम कोटि का माना जाता था। 17वीं शताब्दी के दौरान मुल्तान, मालवा, सिंध, खानदेश, बरार और दक्षिण भारत के क्षेत्रों में भी गन्ना उपजाया जाता था।

इसके अलावा एक और नगदी फसल, कपास, पूरे भारत में उपजाई जाती थी। आज के महाराष्ट्र, गुजरात और बंगाल के इलाके में उस समय वृहद् पैमाने पर कपास की खेती की जाती थी। समकालीन स्रोत अजमेर, इलाहाबाद, अवध, बिहार, मुल्तान, थट्टा (सिंध) लाहौर और दिल्ली में भी इसके उत्पादन का हवाला देते हैं।

मुगलों के शासनकाल में नील (एक नगदी फसल) का भी बृहद् पैमाने पर उत्पादन होता था। इस पौधे से नील निकलता था जिसकी मांग भारत के साथ-साथ यूरोपीय बाजारों में

भी थी। अवध, इलाहाबाद, अजमेर, दिल्ली, आगरा, लाहौर, मुल्तान और सिंध के दस्तुर प्रखंडों में नील उगाए जाने की सूचना मिलती है। गुजरात, बिहार, बंगाल मालवा और दक्षिण भारत में कोरोमंडल और दक्खन में इसके उत्पादन का हवाला मिलता है। बयाना और सरखेज के उत्पाद की मांग सबसे ज्यादा थी। आगरा के निकट बयाना में उगाई जाने वाली नील को उत्तम कोटि का माना जाता था और इसका मूल्य भी ज्यादा होता था। इसके बाद अहमदाबाद के निकट सरखेज में उपजाये जाने वाले नील का स्थान आता था और यह भी ऊंचे दामों में बिकता था। खुर्जा और अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश), सेहवान (सिंध) और तेलंगाना (दक्खन) में भी उच्च कोटि के नील का उत्पादन होता था।

भारत के कई भागों में अफीम की खेती होने की भी सूचना मिलती है। मुगल प्रांतों बिहार और मालवा में अच्छी कोटि की अफीम का उत्पादन होता था। यह अवध, दिल्ली, आगरा, लाहौर, बंगाल, गुजरात और राजस्थान में मारवाड़ और मेवाड़ में भी उगाया जाता था।

ऐसा लगता है कि कम अवधि में ही भारत में तम्बाकू का उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा। **आइन-ए अकबरी** में किसी **दस्तूर** प्रखंड या किसी अन्य क्षेत्र में इस फसल का उल्लेख नहीं किया जाता है। ऐसा लगता है कि 16वीं शताब्दी में पुर्तगाली इसे अपने साथ भारत लाए। शीघ्र ही इसकी खेती देश के लगभग सभी भागों में होने लगी (खास कर सूरत और बिहार में)।

ऐसा लगता है कि 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में काफी का उत्पादन शुरू हो गया था पर हमारे अध्ययन काल में चाय का उल्लेख नहीं मिलता है। सन रेशे वाला एक पौधा होता है जो मुगल साम्राज्य के मुख्य प्रातों (अवध, इलाहाबाद, आगरा लाहौर, अजमेर, आदि) में उपजाया जाता था।

बंगाल, असम, कश्मीर और पश्चिम तटीय प्रदेशों में रेशम का उत्पादन किया जाता था। हालांकि बंगाल मुख्य उत्पादन क्षेत्र था।

तिलहन खाद्यान्न के साथ-साथ नगदी फसल भी थी। इससे तेल निकाला जाता था। तोरी का बीज, अरंडी, तीसी प्रमुख तेलहन फसलें थीं। यह इलाहाबाद से लेकर मुलतान और बंगाल सहित सभी प्रांतों में उपजाई जाती थी। तिलहन के अन्य प्रकारों को कम ही उपजाया जाता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

21.4.3 फल, सब्जी और मसाले

मुगल काल में बागबानी अपने चरम शिखर पर थी। मुगल सम्राटों और सामंतों ने भव्य फलोद्यान लगवाए थे। लगभग सभी प्रभावशाली सामंतों के पास अपने शहर के बाहर एक बागान हुआ करता था। इन फलोद्यानों और निकुंजों को सावधानीपूर्वक योजनाबद्ध ढंग से निर्मित किया जाता था। आज भारत में उपलब्ध बहुत से फलों का आगमन 16वीं-17वीं शताब्दी में ही हुआ था। अनानास एक ऐसा ही फल है जो भारत में पुर्तगालियों द्वारा लैटिन अमेरिका से लाया गया था। कम समय में यह फल लोकप्रिय हो गया और पूरे भारत में बड़े पैमाने पर उगाया जाने लगा।

पपीता और काजू भी यही अपने साथ लेकर आए थे पर इसका विस्तार धीमी गति से हुआ। लीची और अमरूद का आगमन बाद में हुआ। काबुल से चेरी लाई गई और कलम लगाकर इसे कश्मीर में उपजाया गया। कलम की तकनीक से कई फलों की किस्म में सुधार हुआ। कलम के द्वारा संतरा, गलगल (नींबू वंश) खूबानी, आमों और अन्य कई फलों की किस्मों में सुधार लाया गया। नारियल केवल तटीय प्रदेशों में ही नहीं बल्कि अंदरूनी इलाकों में भी उगाया जाता था।

काबुल से खरबूजे और अंगूर के विभिन्न प्रकारों के बीज लाए गए और उन्हें सम्राटों और राजाओं के बागीचों में सफलतापूर्वक उगाया गया। साधारण किस्म का खरबूजा किसानों द्वारा नदी के किनारे हर जगह उपजाया जाता था।

कई तरह की सब्जियां पूरे देश में उपजाई जाती थी। उस समय उपयोग में आने वाली सब्जियों की लंबी सूची **आइन-ए अकबरी** में दी गयी है ऐसा लगता है कि आलू और टमाटर का आगमन 17वीं शताब्दी और उसके बाद हुआ।

शताब्दियों से भारत अपने मसालों के लिए जाना जाता था। भारत के दक्षिण तट से एशिया और यूरोप के विभिन्न देशों को बड़े पैमाने पर मसाले का निर्यात किया जाता था। काली मिर्च, लौंग, इलायची का खूब उत्पादन होता था। अदरख और हल्दी भी बड़े पैमाने पर उपजाया जाता था। डच और अंग्रेज इसे बड़ी मात्रा में खरीदकर निर्यात करते थे। केसर कशमीर में उगाया जाता था जो अपने रंग और सुगंध के लिए जाना जाता था। पान का उत्पादन कई इलाकों में होता था। बिहार का मगही पान और बंगाल में उपजाए जाने वाले अन्य प्रकार प्रसिद्ध थे। तटीय प्रदेशों में सुपारी का भी उत्पादन होता था।

विशाल वन सम्पदा से भी कई महत्वपूर्ण वाणिज्यिक वस्तुएं प्राप्त होती थी। लिग्नम का उपयोग दवा बनाने के लिए होता था और लाख बड़ी मात्रा में निर्यातित होता था।

21.4.4 उत्पादकता और उपज

शीरीन मूसवी ने मुगल भारत में फसल की उत्पादकता और प्रति बीघा उपज पर प्रकाश डाला है (**द इक्नॉमी ऑफ मुगल अम्पायर, अध्याय** 3) इस भाग में हम उनके शोधों के आधार पर ही आपको निम्न जानकारी दे रहे हैं। **आइन-ए अकबरी** में फसल उपज की तालिका और **जब्ती** प्रांतों (लाहौर, मुल्तान, आगरा, इलाहाबाद, अवध और दिल्ली), की राजस्व दरों का उल्लेख किया गया है। उच्च, मध्यम और निम्न कोटि की फसलों की उपज का अलग से उल्लेख किया गया है। इनके आधार पर औसत उपज निकाली जा सकती है। हालांकि अबुल फजल इन तीनों कोटियों के आधार के बारे में हमें कुछ नहीं बताता है। ऐसा लगता है कि कम उत्पादकता वाली फसल का संबंध गैर सिंचित क्षेत्र से और शेष दोनों प्रकार की फसलों का संबंध सिंचित क्षेत्र से था।

शीरीन मूसवी ने 16वीं शताब्दी के प्राप्त आंकड़ों को आधार बनाकर कृषि उत्पादकता के क्षेत्र में रोशनी डाली है। उनके आकलन के अनुसार कुछ प्रधान फसलों की उपज (उच्च, मध्यम और निम्न उपज का औसत) इस प्रकार थी :

औसत फसल उपज : 1595-96 ई.
(मन-ए अकबरी प्रति बीघा-ए इलाही)

गेहूं : 13.49	जौ : 12-93	चना : 9.71
बाजरा : 5.02	ज्वार : 7.57	कपास : 5.75
गन्ना : 11.75	सरसों : 5.13	तिल : 4.00

(इक्नॉमी ऑफ मुगल एम्पायर लगभग 1595, एक सांख्यिकीय अध्ययन, पृष्ठ 82)।

शीरीन मूसवी ने **आइन-ए अकबरी** में दी गयी उपज की तुलना 19वीं शताब्दी के आसपास की उपज के साथ की है। उनका मानना है कि इन दो कालों के बीच खाद्यान्न फसलों की उत्पादकता में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ था। हालांकि जहां तक नगदी फसलों का संबंध है इसमें 19वीं शताब्दी के दौरान उत्पादकता में निश्चित रूप से वृद्धि हुई थी।

21.5 पशु और पशुधन

हमारे काल के कृषि उत्पादन में पशुओं की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। हल जोतने और सिंचाई करने में उनसे सहायता ली जाती थी और उनके गोबर का खाद के रूप में उपयोग होता था। दुग्ध उत्पादन के अतिरिक्त कृषि सम्बन्धी उत्पादन में भी ये काफी योगदान देते थे। आमतौर पर किसान और कुछ खास जाति के लोग पशु पालन का कार्य करते थे।

कृषि कार्यों में बड़े पैमाने पर पशुओं के योगदान से यह पता चलता है कि पशुधन की संख्या भी काफी रही होगी। प्रति व्यक्ति भूमि के ऊंचे अनुपात के कारण चारागाह भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहा होगा। समकालीन यूरोपीय यात्री भारतीय खेतों में बड़ी संख्या में जानवरों की उपस्थिति का उल्लेख करते हैं। इरफान हबीब का मानना है कि आज की तुलना में मुगल भारत में प्रति व्यक्ति पशुओं की संख्या अधिक थी। कहा जाता है कि आम आदमी भी मक्खन और घी का उपयोग करता था, इससे भी बड़ी संख्या में पशुओं के होने का पता चलता है। बैलों का उपयोग बैलगाड़ी खींचने या भारवाही पशु के रूप में होता था। बंजारों (घुमंतु व्यापारी समुदाय) के पास सैंकड़ों-हजारों जानवर होने का उल्लेख मिलता है। भेड़ों और बकरियों को भी हजारों के झुंड में पाला जाता था।

बोध प्रश्न 2

1) छह मुख्य खाद्यान्न फसलों के नाम बताइए :

1. .... 2. ....

3. .... 4. ....

5. .... 6. ....

2) खाद्यान्न फसल, नगदी फसल और तेलहन फसल से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

3) चार प्रमुख नगदी फसलों का उल्लेख कीजिए :

1) .... 2) ....

3) .... 4) ....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

4) बाहर से भारत में लाए गए चार फलों का नाम बताइए?

1) .... 2) ....

3) .... 4) ....

21.6 सारांश

समकालीन विदेशी पर्यवेक्षक कृषि औजारों की पुरातनता और सरलता की बात करते हैं पर यह भारतीय कृषि के अनुकूल था। कृषि मुख्य रूप से वर्षा जल पर निर्भर थी पर कृत्रिम सिंचाई के तरीके भी अपनाए जाते थे। कुंओं से पानी निकालने के लिए ढेकली, चरस और **साकिया** (कुएँ से पानी निकालने की पारसी विधि) फारसी जैसे तरीकों का उपयोग किया जाता था। तालाब और जलाशयों के अतिरिक्त कुछ सीमा तक नहर सिंचाई के प्रमुख स्रोत थे।

भारतीय किसान कई प्रकार के खाद्यान्न और नगदी फसलें उपजाया करते थे। कुछ खेतों में दो या उससे अधिक फसल उगाई जाती थी। फसलों को बदल-बदल कर लगाना और बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप नगदी फसल की खेती करना इस युग की खास विशेषताएं हैं। गुणवता और परिमाण दोनों ही मानदण्डों पर इस काल के फल उच्च कोटि के थे।

19वीं शताब्दी की आधुनिक उपज और उत्पादन की तुलना में भी उस समय की उत्पादकता और उपज खरी उतरती है। मुगल काल में पशु और पशुधन की प्रति व्यक्ति जनसंख्या भी काफी अच्छी थी।

21.7 शब्दावली

बीघा-ए इलाही : 60 वर्ग **गज-ए इलाही** (अकबरी गज) **गज-ए इलाही** की लंबाई लगभग 32 इंच होती थी। एक **बीघा-ए इलाही** में एक एकड़ का लगभग 60 अंश होता था।

दस्तूर प्रखंड : ऐसा क्षेत्र जिसमें अलग-अलग फसलों के लिए कुछ नगद राजस्व दर लगाई जाती थी, पूरा प्रांत विभिन्न **दस्तूर** प्रखंडों में विभक्त होता था, प्रत्येक दस्तूर में राजस्व दरें अलग होती थीं।

दस्तूर दरें : विभिन्न फसलों के प्रति इकाई क्षेत्र के लिए नगद राजस्व दरें।

जमा : आकलित या अनुमानित आय

मन-ए अकबरी : वजन मापने की इकाई जो 55 पौंड के आसपास होती थी।

हल का फाल : हल का नुकीला निचला हिस्सा जिससे खेत जोता जाता था। यह लोहे या कड़ी लकड़ी का बना होता था।

21.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आमतौर पर बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हलके हल का उपयोग होता था। देखिए उपभाग 21.3.1

2) आप इसमें फसलों के बदलाव और विभिन्न प्रकार के उर्वरकों के उपयोग आदि का उल्लेख कर सकते हैं। देखिए उपभाग 21.3.1

3) पढ़िए उपभाग 21.3.2 आप कम मात्रा में पानी निकालने की विधियों को छोड़कर शेष का उल्लेख कर सकते हैं।

4) देखिए उपभाग 21.3.2

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 21.4.2 पढ़िए और उत्तर दीजिए।

2) बाजार के लिए उत्पादित फसल को नगदी फसल कहते थे। खाद्यान्न फसल बाजार में भी बेची जाती थी और इनका उपभोग स्वयं के भोजन के लिए भी किया जाता था। तिलहन फसलों से खाद्य तेल निकाला जाता था। देखिए भाग 21.4

3) देखिए उपभाग 21.4.2

4) देखिए उपभाग 21.4.3

इकाई 22 गैर-कृषि उत्पादन

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 कृषि आधारित उत्पादन
  22.2.1 वस्त्र उद्योग
  22.2.2 नील
  22.2.3 चीनी, तेल आदि
22.3 खनिज, खनन और धातु
  22.3.1 खनिज उत्पादन
  22.3.2 धातु
22.4 काष्ठ आधारित शिल्प
22.5 अन्य शिल्प
22.6 उत्पादन का संगठन
22.7 सारांश
22.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.0 उद्देश्य

MAADHYAMIAS 'way to achieve your dream'

हमारे अध्ययन के काल के दौरान भारत में उच्च कोटि का शिल्प उपलब्ध था। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- **भारत में उत्पादित विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बारे में जानकारी दे सकेंगे;**
- **खास-खास शिल्पों के प्रमुख केन्द्रों का उल्लेख कर सकेंगे;**
- **देश के विभिन्न भागों में पाए जाने वाले खनिजों की जानकारी हासिल कर सकेंगे;**
- **कुछ वस्तुओं के उत्पादन में अपनाई जाने वाली तकनीकों के बारे में जान सकेंगे; और**
- **कुछ शिल्पों के उत्पादन के संगठन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।**

22.1 प्रस्तावना

हम जिस काल का अध्ययन कर रहे हैं उस काल में शिल्प उत्पादन का स्तर काफी ऊंचा था। यह शिल्प उत्पादन व्यापार और वाणिज्य की पद्धति से जुड़ा हुआ था। हम मुख्य वाणिज्यिक केन्द्रों में और उसके आसपास उत्पादन संबंधी गतिविधियों में एक प्रकार की सक्रियता पाते हैं।

फारसी ऐतिहासिक अभिलेखों से शिल्प और उत्पादन की तकनीक की कम जानकारी मिलती है। इस क्षेत्र में यूरोपीय यात्रियों के वृत्तांतों और दस्तावेजों तथा विभिन्न यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के पत्र व्यवहार से ज्यादा व्यापक सूचना मिलती है। ये कम्पनियां उत्पादन की प्रक्रिया और उत्पादन की गुणवत्ता का गौर से निरीक्षण करती थी।

शिल्प उत्पादन मूल रूप से घरेलू बाजार की मांग और खपत से निर्देशित होता था। 17वीं शताब्दी में विदेशी बाजारों से मांग बढ़ने लगी और इससे यहां की उत्पादन गतिविधि प्रभावित होने लगी।

इस इकाई में हम प्रमुख शिल्प, उनके केन्द्रों, उपयोग में आने वाले कच्चे मालों और जहां संभव होगा उत्पादन की तकनीकों की भी चर्चा करेंगे। हम खनिजों की उपलब्धता और उनके उत्पादन पर भी विचार करेंगे। हम कुछ चुने हुए शिल्पों में उत्पादन के संगठन का भी विश्लेषण करेंगे।

22.2 कृषि आधारित उत्पादन

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आज के संदर्भ में कृषि आधारित उद्योगों का इस्तेमाल कुछ विशिष्ट प्रकार के उद्योगों के लिए होता है। यहां हम इसका प्रयोग उन उद्योगों के लिए कर रहे हैं जिनमें कच्चा माल कृषि उत्पादों से आता था।

जिस काल का हम अध्ययन कर रहे हैं उस काल में अधिकांश उत्पादन इन क्षेत्रों में था जिनमें कच्चे माल की आपूर्ति कृषि उत्पाद से होती थी। इकाई 21 पढ़ते समय हमने गौर किया था कि हमारे यहां कपास, गन्ना, नील, तम्बाकू जैसी उच्च कोटि की फसलों का उत्पादन होता था। अतः इनसे जुड़े शिल्पों का विकाय स्वाभाविक था। आइए पहले कपड़ा उत्पादन पर विचार करें।

22.2.1 वस्त्र उद्योग

वस्त्र उद्योग के अन्तर्गत हम मुख्य रूप से सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रों के उत्पादन का अध्ययन करेंगे।

सूती कपड़ा

उप हिमालय क्षेत्र को छोड़कर लगभग पूरे भारत में सूती कपड़ा बनाया जाता था क्योंकि कपास की पैदावार लगभग हर जगह होती थी। अबुल फ़जल ने सूती कपड़े के उत्पादन के विभिन्न केन्द्रों का नामोल्लेख किया है।

गुजरात वस्त्र उत्पादन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक था। यहां अहमदाबाद, भड़ौंच, बड़ौदा, कैम्बे, सूरत आदि जैसे प्रमुख उत्पादन केन्द्र थे। राजस्थान में अजमेर, सिरोंज और कई छोटे शहरों में कपड़ा बनाया जाता था। उत्तरप्रदेश में लखनऊ और इसके आसपास के कई शहरों जैसे बनारस, आगरा, इलाहाबाद आदि में कपड़े का उत्पादन होता था। उत्तर में दिल्ली, सिरहिंद, समाना, लाहौर, सिआलकोट, मुलतान और थट्टा जैसे क्षेत्रों में उत्तम कोटी का कपड़ा बनाया जाता था। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में सोनारगांव, ढाका, राजमहल, कासिम बाजार, बालासोर, पटना और कई छोटे-छोटे शहरों में कपड़ा बनाया जाता था।

दक्खन में, बुरहानपुर और औरंगाबाद में उत्तम कोटि के सूती वस्त्र निर्मित किए जाते थे। महाराष्ट्र के पश्चिमी तट पर चोल और भिवण्डी कपड़ा बनाने के प्रमुख केन्द्र थे। दक्षिण में कोयम्बटूर और मालाबार में भी अच्छी कोटि के वस्त्र बनाए जाते थे।

कई केन्द्रों में केवल सूत काता जाता था और उसे बुनाई केन्द्रों में और यहां तक कि विदेश में भी भेजा जाता था। इस प्रकार धागे की कताई एक विशेषीकृत व्यवसाय बन गया। वस्त्र उत्पादन के प्रमुख केन्द्रों और उसके आसपास के इलाकों में किसानों और महिलाओं ने इसे अपनी आय का अतिरिक्त साधन बना लिया और बुनकरों को धागे की आपूर्ति करने लगे।

मैसूर, विशाखापट्टनम और गंजम में महिलाएं बड़ी संख्या में सूत काता करती थीं। भड़ौंच, कासिम बाजार और बालासोर धागे की बिक्री के प्रमुख बाजार थे। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुजरात बंगाल को सूत की आपूर्ति किया करता था। ढाका मलमल के लिए परिष्कृत सूत की जरूरत होती थी जिसे महिलाएं तकली की सहायता से काता करती थीं।

कपड़े की कई कोटियां उपलब्ध थी हमीदा नकवी ने मुगल साम्राज्य के पांच प्रमुख उत्पादन केन्द्रों में उत्पादित उनचास प्रकार के कपड़ों का नामोल्लेख किया है। यूरोपीय दस्तावेजा में एक सौ से अधिक नामों का उल्लेख है। देश में उत्पादित होने वाले सूती कपड़ों की सभी कोटियों का उल्लेख करना बहुत मुश्किल है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्टताएं थी।

इनमें से कुछ प्रकारों की चर्चा यहां की जा सकती है। **आइन-ए अकबरी** मे **बाफ्ता** नामक उच्च कोटि के सूती वस्त्र का उल्लेख हुआ है जो आमतौरपर सफेद या एक रंग का होता था। यूरोपीय सभी प्रकार के सूती वस्त्रों के लिए "कैलिकों" शब्द का प्रयोग करते थे। इसका मतलब मोटा उजला कपड़ा भी होता था। **ताफ्ता** रेशमी कपड़ा होता था जिसमें कभी-कभी सूती धागे भी बुने गए होते थे। **जरतरी** कपड़े में सोने या चांदी के तार बुने होते थे। मलमल मोटे सूती कपड़े का एक उत्तम प्रकार था। छींट सूती कपड़े में **फूल-पत्ती** या अन्य प्रकार के डिजाइन बने होते थे। **खासा** मलमल का ही एक प्रकार था। यह उत्तम कोटि का महंगा कपड़ा था। (इरफान हबीब ने कपड़ों की शब्दावली की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है, देखिए **एन एटलस ऑफ द मुगल अम्पायर**, पृष्ठ 69-70)

कुछ कपड़ों का नाम उनके उत्पादन स्थल पर आधारित था जैसे दरियाबादी और खैराबादी, समिआना (समाना), लखौरी (पटना के निकट लखावर) आदि। कुछ प्रदेशों में खास प्रकार के कपड़े ही बनाये जाते थे, गुजरात में **बाफ्ता**, सोनारगांव और ढ़ाका में मलमल आदि इस प्रकार की विशेषता के उदाहरण हैं। इंग्लिश, डच और फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनियों, आदि से यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों की गतिविधियों में तेजी आई और उसके कारण सत्रहवीं शताब्दी में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

सूती वस्त्रों में उच्च कोटि के उजला सादे सूती कपड़े की मांग सबसे ज्यादा थी। इसे विभिन्न नामों से जाना जाता था—बिहार और बंगाल में **अम्बरती**, गुजरात में **बाफ्ता** आदि। बंगाल का मलमल जिसको **खासा** कहते थे छींट, रंगीन वस्त्र और रेशम के धागों को मिलाकर बनाए गए कपड़े, कुछ महत्वपूर्ण कोटियां थी। अहमदाबाद अपने रंगीन कपड़े छींट के लिए प्रसिद्ध था।

कपड़ा उत्पादन में कई चरणों से गुजरना होता था। सबसे पहले ओटाई होती थी जिसमें कपास से बीज अलग किया जाता था। बाद में धुनियां अपने धनुषाकार यंत्र से कपास या रूई को साफ करता था इसके बाद तकली पर इस रूई से धागा बनाया जाता था। बुनकर करघे पर इस धागे से वस्त्र बुनते थे। आमतौर पर प्रचलित करघा क्षैतिज होता था जिसे पैर के पास लगे पैडल से चलाया जाता था।

बना हुआ कपड़ा अभी भी अपरिष्कृत रूप में होता था। उपयोग में लाने के पहले इसका रंग उड़ाया जाता था (सफेद किया जाता था) या रंगा जाता था। यह काम एक अलग समुदाय द्वारा सम्पन्न किया जाता था। हालांकि यह प्रक्रिया हर जगह अपनाई जाती थी पर कुछ केन्द्र प्रसिद्ध हो गए। पानी की खासियत की वजह से गुजरात में भड़ौंच कपड़ों को विरंजित (रंग उड़ाने के लिए) करने के लिए प्रसिद्ध हो गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी आगरा, लाहौर आदि से **बाफ्ता** खरीदती थी और उसे भड़ौंच और नौसारी में विरंजित करने के बाद ही निर्यात करती थी। अहमदाबाद, सूरत, पटना सोनारगांव, ढ़ाका, मसूलीपट्टम आदि शहरों में भी बड़े पैमाने पर कपड़ों को विरंजित करने का काम किया जाता था।

कपड़ों के विरंजन के लिए उन्हें पानी में सोखा जाता था (उत्कृष्ट कपड़े) या विशेष घोल में उबाला जाता था।

रंगाई और छपाई भी विशेषीकृत व्यवसाय हो गए थे। कपड़ा रंगने वाले को **रंगरेज** कहते थे और उन्हें एक अलग जाति का माना जाता था। आमतौर पर सब्जियों के रंगों का उपयोग किया जाता था। लाल रंग चै या लाख से और नीला रंग नील से प्राप्त किया जाता था।

MAADHYAM IAS

रेशम (सिल्क)

रेशम से भी कपड़ा बनाया जाता था। अबुल फजल बताता है कि कश्मीर में बड़ी मात्रा में रेशम के कपड़े बनाए जाते थे। पटना और अहमदाबाद भी रेशम वस्त्र के लिए जाने जाते थे। बनारस का भी इस क्षेत्र में नाम था। सत्रहवीं शताब्दी में बंगाल में रेशम का सबसे ज्यादा उत्पादन हुआ जिसे विदेश और भारत के अन्य हिस्सों में निर्यातित किया गया। बंगाल में कासिम बाजार और मुर्शिदाबाद में रेशम के वस्त्र बनाए जाते थे। 17वीं शताब्दी के मध्य के आसपास 25 लाख पाउंड के करीब प्रति वर्ष उत्पादन होने का अनुमान लगाया गया था। लगभग साढ़े सात लाख पाउंड केवल डच व्यापारी ही अपरिष्कृत रूप में ले जाते थे। 1681 ई. में लंदन के रेशम बुनकरों ने इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा इसके आयात पर प्रतिबंध लगाने के लिये ब्रिटिश संसद को एक प्रतिवेदन दिया। 1701 ई. में बंगाल के रेशम वस्त्रों का आयात रोक दिया गया। इसके बावजूद बंगाल रेशम और रेशम वस्त्र उत्पादन का महत्वपूर्ण केन्द्र बना रहा।

ऊन

कपड़ा बनाने के लिए ऊन का भी उपयोग किया जाता था। इसमें कश्मीर की शॉल सबसे प्रसिद्ध थी जिसे पूरी दुनियां में निर्यातित किया जाता था। इन शॉलों में उपयोग में लाया जाने वाला उत्कृष्ट ऊन तिब्बत से आयातित किया जाता था उत्कृष्ट कोटि के ऊनी वस्त्रों का आयात यूरोपीय व्यापारी आमतौर पर उच्च वर्ग के लिए किया करते थे। लगभग पूरे उत्तर भारत में ऊन से कम्बल बनाए जाते थे।

इसके अलावा सूती दरियां, कालीन (रेशमी और ऊनी) तम्बू और रजाइयां आदि भी बनाई जाती थीं। कालीन बुनाई कपड़ा उत्पादन की एक अन्य शाखा थी। उत्तर में बिहार (दाउदनगर, ओबरा आदि) दिल्ली, आगरा, लाहौर, मिर्जापुर आदि इसके प्रमुख केन्द्र थे। दक्षिण में वारंगल भी कालीन बनाने का प्रसिद्ध केन्द्र था। कोरोमंडल तट पर स्थिति मसूलीपट्टम में भी कालीन बनाई जाती थी। कालीन काफी मात्रा में नहीं बनाए जाते थे और अभी भी ईरानी कालीनों का ही उपयोग होता था अकबर ने ईरानी ढंग के रेशमी कालीनों को राजकीय कारखाने में बनवाने में रुचि दिखाई।

MAADHYAM IAS

तम्बुओं का उपयोग मुख्य रूप से सम्राट और उनके सरदार किया करते थे। इसलिए उनकी भी जरूरत पड़ती थी। अबुल फ़जल ने ग्यारह प्रकार के तम्बुओं का उल्लेख किया है। उनके आकार प्रकार में काफी विभिन्नता होती थी।

विभिन्न प्रकार के कपड़ों की सूती रेशमी या चांदी और सोने के धागे से कढ़ाई भी कपड़ा उद्योग से जुड़ा एक शिल्प था। काफी संख्या में शिल्पियों ने यह व्यवसाय अपना रखा था।

22.2.2 नील

पूरे देश में और विदेश में भी इसकी मांग काफी अधिक थी। जैसा कि हमने इकाई 21 में पढ़ा है कि नील की खेती बड़े पैमाने पर की जाती थी।

केवल पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर पूरे देश में नील की खेती की जाती थी इसकी उत्कृष्ट कोटि आगरा के निकट बयाना में पाई जाती थी। इसके बाद अहमदाबाद के निकट सरखेज का स्थान आता है यह नीले रंग का होता था और रंगाई के काम आता था, इसलिए पूरे देश में और विदेश में भी इसकी मांग थी।

गुजरात में जम्बुसार, भड़ौच, बड़ौदा आदि में भी नील से रंगाई होती थी। उत्तर भारत में आगरा और लाहौर में बड़ी मात्रा में नील की खरीद बिक्री होती थी। कोरोमंडल तट पर मसूलीपट्टम भी नील का प्रमुख बाजार था।

इसमें से रंग निकालना काफी आसान था। पौधों को पानी में रख दिया जाता था। जब नील पानी में घुल जाता था तोउसे दूसरे हौज में डाल दिया जाता था। जहां नील तल में बैठ जाता था। इसे छान कर टिक्की के रूप में सुखा लिया जाता था। अधिकांशतः किसान ही नील निकालने का काम किया करते थे।

22.2.3 चीनी, तेल आदि

पूरे देश में गन्ना उपजाया जाता था और बड़े पैमाने पर इससे चीनी निकाली जाती थी। आमतौर पर गन्ने से तीन प्रकार के उत्पाद निकाले जाते थे: गुड़, चीनी और मिसरी। सभी गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में गुड़ बनाया जाता था और स्थानीय तौर पर इसका उपभोग किया जाता था। अन्य दो प्रकार मुख्य रूप से बंगाल, उड़ीसा, अहमदाबाद, लाहौर, मुल्तान और उत्तरी भारत के हिस्सों में बनाए जाते थे। 17वीं शताब्दी के दक्खन के बारे में लिखते हुए थिविनो बताता है कि गन्ना उपजाने वाले सभी किसानों के पास अपनी भट्टी होती थी। अबुल फ़जल के अनुसार एक मन चीनी का मूल्य लगभग 128 **दाम** था जबकि मिसरी का मूल्य प्रति मन 220 **दाम** था।

गन्ने को कोल्हू में दबाकर उससे रस निकाला जाता था, यह कोल्हू या तो हाथों से चलाया जाता था या फिर पशुओं की सहायता ली जाती थी। गुड़ या चीनी बनाने के लिए गन्ने के रस को चौड़े बर्तनों में भट्टी पर चढ़ा दिया जाता था। रस को उबालने के दौरान ही विभिन्न प्रकार के गुड़ या चीनी बनाई जाती थी। बंगाल की चीनी उत्तम कोटि की मानी जाती थी और यूरोप तथा ईरान मे इसकी व्यापक मांग थी।

तेल भी अधिकांशतः ग्रामीण आधारित उद्योग में ही आता था। तेल के बीज को कोल्हू में डाल दिया जाता था और बीज से तेल निकल आता था। कोल्हू हाथों से भी चलाया जाता था और इसे चलाने में पशुओं की भी सहायता ली जाती थी। तेल निकालने वाली जाति को तेली कहते थे। बचा हुआ उत्पाद (खल्ली) जानवरों को खिलाया जाता था।

बोध प्रश्न 1

1) कपड़ा उत्पादन के महत्वपूर्ण केन्द्रों का नाम बताइए।

....

....

....

....

....

2) भारत में रेशम उत्पादन पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

3) भारत में पैदा होने वाले नील के मुख्य प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

22.3 खनिज, खनन और धातु

16वीं और 17वीं शताब्दी के दौरान भारत में गहरा खनन नहीं किया जाता था बल्कि विभिन्न प्रकार के खनिजों और धातुओं के लिए धरती के ऊपरी स्तर में ही खनन किया जाता था।

22.3.1 खनिज उत्पादन

नमक एक अनिवार्य खाद्य वस्तु थी और भारत इसमें आत्म निर्भर था। राजपूताना में सम्भर झील, पंजाब में नमक पत्थर की खानें और समुद्र का पानी इसका मुख्य स्रोत था। सिंध, कच्छ, गुजरात के तटवर्ती प्रदेशों, मालावार, मैसूर,बंगाल, आदि में समुद्र के पानी से नमक बनाया जाता था। नमक हर जगह नहीं पाया जाता था अतः यह प्रांतीय और अन्तर्प्रान्तीय व्यापार की एक मुख्य वस्तु था।

शोरा एक प्रमुख खनिज पदार्थ था। यूरोप में इसकी खूब मांग थी। इससे बारूद बनाया जाता था। आरंभ में शोरा अहमदाबाद, बड़ौदा आदि में ही निकाला जाता था। पर बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए दिल्ली-आगरा क्षेत्र में भी इसका निर्माण शुरू हो गया। सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बिहार में पटना शोरा बनाने का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया। पटना के आसपास के क्षेत्रों में शोरा इकट्ठा किया जाता था और उसे नाव द्वारा गंगा के रास्ते हुगली और फिर यूरोप ले जाया जाता था।

मिट्टी मिले शोरे से शोरा निकालना एक आसान विधि थी। जमीन पर छिछले हौज बनाए जाते थे उसमें मिट्टी मिले शोरा को डाल दिया जाता था। शोरा पानी में घुल जाता था और मिट्टी नीचे जम जाती थी। इसके बाद बड़े बर्तनों में शोरा पानी को उबाला जाता था, पानी वाष्प बनकर उड़ जाता था और शोरा प्राप्त किया जाता था। भारतीय कारीगर मिट्टी का बर्तन उपयोग करते थे। टैवर्नियर (17वीं शताब्दी) के अनुसार डच हॉलैंड से आयातित तांबे के बर्तनों में उबालने का काम करते थे। एक स्रोत के अनुसार एक वर्ष (1688 ई.) में केवल बिहार में ही दो लाख मन से ज्यादा शोरा का उत्पादन होता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

छोटे पैमाने पर फिटकरी और अभ्रक जैसे अन्य खनिजों का भी उत्पादन होता था।

22.3.2 धातु

सही मायने में भारत में सोने और चांदी की खानें नहीं थीं। कोलार की प्रसिद्ध सोने की खान का पता नहीं लग पाया था। नदी तल से थोड़ी बहुत मात्रा में सोना निकाला जाता था पर इसमें इसके मूल्य से लागत ज्यादा हो जाती थी। फिच (1584) ने बिहार में नदी की रेत से सोना निकालने की विधि का उल्लेख किया है। इसी प्रकार दूसरे प्रांतों में भी नदी तलों में सोना पाया जाता था।

चांदी की आपूर्ति अधिकांशतः आयात से ही होती थी। सिक्का बनाने के लिए सोने और चांदी का उपयोग किया जाता था। गहना बनाने के लिए भी इनका खूब उपयोग होता था तथा लोग इसे बहुमूल्य धातु के रूप में अपने पास जमा भी रखते थे।

राजस्थान ताम्र उत्पादन का प्रमुख केन्द्र था। खेतरी में तांबे की खानें थीं। इनमें ज्यादातर तांबे का उपयोग सिक्का बनाने के लिए किया जाता था। इससे छोटे बड़े बर्तन और घरेलू उपयोग की वस्तुएं बनाई जाती थी।

भारत में लोहा काफी मात्रा में पाया जाता था। लोहे की खानें भारत के उत्तर, पूर्व, पश्चिम, मध्य और दक्षिण भागों में पाई जाती थी। अबुल फजल ने बंगाल, इलाहाबाद, आगरा, बिहार, गुजरात, दिल्ली और कश्मीर को प्रमुख लौह उत्पादक क्षेत्र बताया है। बिहार में छोटानागपुर और इससे लगे उड़ीसा के इलाकों में लोहा बड़ी मात्रा में पाया जाता था। दक्षिण में पाए जाने वाले लोहे से इस्पात बनाया जाता था।

लोहे का उपयोग हल, कुल्हाड़ी, कील, पेंच, तलवार, खंजर आदि बनाने के लिए किया जाता था। दक्षिण, खासकर गोलकुंडा में बनाए जाने वाले इस्पात से तलवारें बनाई जाती थी जिसकी सारी दुनियां में मांग थी।

कुछ दूसरे धातु भी थोड़ी मात्रा में उत्पादित किए जाते थे। उत्तर और पश्चिमी भारत में सीसा पाया जाता था।

हीरे का खनन

भारत के कुछ हिस्सों में हीरों का खनन किया जाता था पर गोल-कुंडा की खान सर्वाधिक प्रसिद्ध थी। दूसरे स्थानों में बरार में बीरागढ़, मध्यप्रदेश में पन्ना, बिहार में छोटानागपुर या खोखरा उल्लेखनीय है।

22.4 काष्ठ आधारित शिल्प

लकड़ी से कई प्रकार के शिल्प जुड़े हुए थे। लकड़ी निर्मित आवागमन के साधनों में पालकी और बैल गाड़ी प्रमुख थे। इन्हें कई शैलियों में बनाया जाता था और अमीर लोग इसमें नक्काशी करवाते थे, और सुसज्जित करवाते थे। भारत में लंबा तटीय प्रदेश था और उत्तर भारत में कई नदियां थी इस कारण भारत में हमेशा से नौकाओं और जहाजों की जरूरत रही है।

कई प्रकार की नौकाओं का निर्माण किया जाता था। छोटी आकार की नौकाओं से लेकर बड़ी-बड़ी भारवाहक नौकाओं का निर्माण किया जाता था।

अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के बंदरगाहों जैसे थाट्टा, सूरत, बसीन, गोआ, क्रैगनोर, कोचिन, मसूलीपट्टम, नारस-हरिहरपुर, सतगांव और चटगांव प्रमुख जहाज निर्माण केन्द्र थे। जब यूरोपवासियों की गतिविधियों में तेजी आई तो उन्होंने अपने जहाजों की इन्हीं केन्द्रों में मरम्मत करवानी शुरू कर दी। यहां बने जहाज उन्हें पूर्वी समुद्रों के लिए उपयुक्त लगे और उन्होंने भारत में बने जहाज भी खरीदे। इस प्रकार यूरोपवासियों की इस बढ़ती मांग के कारण 17वीं-18वीं शताब्दी में जहाज निर्माण उद्योग में तेजी से प्रगति हुई। दरवाजा, खिड़की और घरेलू लकड़ी के सामान जैसे बकसे, खाट आदि बनाने में भी लकड़ी का उपयोग होता था। समृद्ध लोग उत्कृष्ट कोटि की लकड़ी का फर्नीचर बनवाते थे।

MADHYAM IAS

बोध प्रश्न 2

1) भारत में शोरा उत्पादन पर दस पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित के प्रमुख क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए :

i) हीरा खनन ....

....

....

ii) जहाज निर्माण : ....

....

....

....

22.5 अन्य शिल्प

प्रत्येक क्षेत्र का अपना विशेष शिल्प होता था। यहां उन सभी शिल्पों पर विस्तार से विचार करना संभव नहीं इसलिए हम केवल कुछ महत्वपूर्ण शिल्पों का ही जिक्र करेंगे।

पत्थर कटाई एक महत्वपूर्ण शिल्प था क्योंकि इसका उपयोग घर, महल, किला, मन्दिर, आदि बनाने में किया जाता था। भारतीय पत्थर शिल्पी अपनी कारीगरी के लिए प्रसिद्ध थे।

ैर कृषि उत्पादों में चमड़े की वस्तुओं जैसे जूता, चप्पल, पुस्तकों की जिल्द आदि का ावशेष महत्व है। इनका निर्माण पूरे देश में होता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

कागज

विवेच्य काल में अहमदाबाद, दौलताबाद, लाहौर, सिआलकोट, पटना के निकट बिहार शरीफ, आदि स्थानों पर कागज बनाया जाता था। अहमदाबाद में भी कई प्रकार के कागज बनाए जाते थे और इसे अरब देशों, तुर्की और फारस को निर्यातित किया जाता था। कश्मीर का कागज भी प्रसिद्ध था।

उत्तर भारत में कई स्थानों पर कागज बनाया जाता था और उसका स्थानीय उपयोग होता था। दक्षिण भारत में इसका उत्पादन कम होता था। अधिकांश कागज हाथ का बनाया होता था और यह साधारण कोटि का होता था।

मिट्टी के बर्तन

समकालीन दस्तावेजों को देखने से पता चलता है कि उस समय लोग खाना बनाने, पानी और अनाज रखने आदि के लिए मिट्टी के बर्तन का उपयोग करते थे। इसके अतिरिक्त सभी घरों की छत खपड़ैल की हुआ करती थी। मिट्टी से बने बर्तनों की मांग अवश्य ही काफी अधिक थी। भारत के प्रत्येक बड़े गांव में एक कुम्हार होता था जो प्रतिदिन काम में आनेवाले मिट्टी के बर्तन बनाया करता था।

साधारण मिट्टी के बर्तनों के अलावा चीनी मिट्टी के परिष्कृत बर्तन भी बनते थे। मनूकी (1663 ई.) बताता है कि खानपान के लिए बने मिट्टी के परिष्कृत बर्तन शीशे से ज्यादा बारीक और उत्कृष्ट और कागज से ज्यादा हल्के हुआ करते थे। मार्शल (1670 ई.) ने भी उत्कृष्ट खानपान के बर्तनों का उल्लेख किया है।

देश के कई भागों में शीशे का सामान भी बनाया जाता था। भारतीय कारीगर साबुन, हाथी दांत और सीप की वस्तुएं तथा सींघ से भी विभिन्न चीजें आदि बनाया करते थे।

कई शिल्प वन आधारित थे। इनमें से एक लाख था। लाख का उपयोग चूड़ी बनाने, दरवाजों, खिड़कियों, खिलौने को रंगने और लाल रंग बनाने के लिए किया जाता था। यह

बंगाल, बिहार, असम, उड़ीसा, मालवा, गुजरात मालाबार आदि के जंगलों से निकाला जाता था। बंगाल लाख सबसे अच्छा माना जाता था। सूरत में लाख की चूड़ियां और खिलौने बनाए जाते थे। यह मुहर लगाने के काम भी आता था।

कई समकालीन स्रोत दक्षिण तट पर समुद्र से मोती निकालने के व्यवसाय का भी उल्लेख करते हैं।

22.6 उत्पादन का संगठन

विवेच्य काल में भारत में कारीगरों के व्यक्तिगत प्रयास से लेकर कारखाने तक की व्यवस्था मौजूद थी। शिल्प की जरूरतों और आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न शिल्पों और उद्योगों में उत्पादन के संगठन में विभिन्नताएं थीं।

ग्रामीण कारीगर : जैसा कि हम इकाई 17 में देख चुके हैं गांवों की जरूरतों को पूरा करने वाली वस्तुओं का निर्माण कारीगर करता था और वह जजमानी व्यवस्था नामक ग्रामीण व्यवस्था का एक नियमित अंग था। इनमें लोहार, कुम्हार और चर्मकार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। आमतौर पर उन्हें उनकी सेवा के बदले अनाज दिया जाता था। वे कृषि से जुड़े औजार उपलब्ध कराते थे और उनकी मरम्मत करते थे। दक्खन और महाराष्ट्र में यह व्यवस्था ज्यादा संगठित थीं जहां ग्रामीण कारीगरों और सेवकों को बलूतेदार कहा जाता था। दक्खन में अलूतेदार नामक एक और समुदाय था जिन्हें भी कई प्रदेशों में गांव के कारीगरों की श्रेणी में शामिल किया गया था।

ग्रामीण इलाकों में मुद्रा अर्थव्यवस्था के प्रवेश और इसकी बढ़ती मांग के कारण जीवन यापन संबंधी दृष्टिकोण में अंतर आ गया तपन राय चौधरी के अनुसार कम से कम सत्रहवीं शताब्दी एक गुजर बसर पर आधारित अर्थव्यवस्था में फर्क आया। इस पद्धति में कारीगर अपना माल बनाया करता था और उसे उपज का एक हिस्सा मिलता था। अब वह अपना सामान नगद बेचने लगा और अतिरिक्त काम के लिए अलग से नगद या वस्तु रूप में भुगतान लेने लगा। पर इसके साथ-साथ ग्रामीण उत्पाद में हिस्सा या राजस्व मुक्त जमीन का एक भाग देने की प्रथा भी कायम थी।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

तपन राय चौधरी बताते हैं कि संभवतः अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक लंबी और मध्यम दूरी के व्यापार के लिए सारा उत्पादन इन कारीगरों पर निर्भर था जो जजमानी व्यवस्था में पूरी तरह गुंथे हुए थे।

मांग बढ़ने के साथ ग्रामीण कारीगर शहरी बाजारों में भी अपना माल भेजने लगे। ग्रामीण कारीगर इधर उधर घूमते रहते थे और एक गांव से दूसरे गांव या पास के शहर में जाते रहते थे।

बाजार के लिए उत्पादन

कारीगर स्वतंत्र और व्यक्तिगत तौर पर बाजार के लिए उत्पादन करता था। अलग-अलग वस्तुएं अलग-अलग कारीगर बनाया करते थे। और उन्हें बाजार में बेचा जाता था। एक डच यात्री पेल्सर्ट (1623 ई.) बताता है कि विभिन्न शिल्पों से जुड़े कारीगरों की लगभग सौ विशेषीकृत श्रेणियां थी। वस्त्र उद्योग में उच्च कोटि की विशेषता देखने को मिलती है। वस्त्र के उत्पादन के प्रत्येक चरण से एक अलग समुदाय जुड़ा था। मसलन रूई धुनना, सूत कातना, कपड़ा बुनना, सिल्क का धागा बनाना, विरंजन, रंगाई, छपाई से अलग-अलग विशेषीकृत समुदाय जुड़ा हुआ था। गांव के किसान भी कई प्रकार की चीजें बनाते थे और इसमें उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। कृषि आधारित सभी उद्योगों जैसे नील, चीनी, रेशम और सूती, धागों की कताई, नमक और शोरा का निर्माण, से वे सक्रिय रूप में जुड़े हुए थे।

उत्पादन की स्थानीयता एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। जैसाकि पहले जिक्र किया जा चुका है, प्रत्येक क्षेत्र में किसी खास प्रकार के शिल्प का ही उत्पादन होता था। यूरोपीय

व्यापारियों के अनुसार उन्हें अलग-अलग सामान लेने के लिए अलग-अलग जगह जाना पड़ता था। केवल मसूलीपट्टम और बनारस में सात-सात हजार बुनकर थे। इसी प्रकार कासिम बाजार में 2500 रेशमी बुनकर थे।

कारीगर व्यक्तिगत स्तर पर उत्पादन करने के लिए कच्चा माल खुद प्राप्त करता था और बने माल को खुद ही बेचने की भी व्यवस्था करता था। कारीगर या शिल्पी अपने घर में ही निर्माण कार्य करता था। इन कारीगरों के पास पूंजी कम होती थी। अतः व्यक्तिगत तौर पर वे कम माल तैयार कर पाते थे और व्यापारियों को इनसे माल लेने के लिए काफी प्रयास करना पड़ता था। माल की गुणवता में भी अंतर होता था।

दादनी

इन समस्याओं के कारण उत्पादन के नए तरीके दादनी का जन्म हुआ। इसमें व्यापारी कारीगरों को अग्रिम राशि दे दिया करते थे और कारीगर दिए हुए समय पर माल देने का वादा करता था। यहां व्यापारी अपनी पसंद कारीगर को बता सकता था। कपड़ा उद्योग में यह प्रथा इतनी जम गयी थी कि कारीगरों को अग्रिम दिए बिना कपड़ा प्राप्त करना मुश्किल था। सत्रहवीं शताब्दी में दक्खन में बुनकर उद्योग पर व्यापारी हावी हो गए। ऐलोव के अनुसार दक्षिण भारत में "शिल्प उद्योगों पर व्यापारिक पूंजी का प्रभाव काफी फैल चुका था। वस्तुतः कोरोमंडल तट के पास बसे सभी कारीगरों पर एक या दूसरे व्यापारी का नियंत्रण था। 17वीं शताब्दी में, कासी वीरन्ना सबसे बड़ा व्यापारी था। पुलिकट को छोड़कर मद्रास से लेकर आलमगांव तक का पूरा तटीय प्रदेश उसके नियंत्रण में था। इस क्षेत्र की बुनकर बस्तियों को वीरन्ना गांवों के नाम से जाना जाता था।

दादनी व्यवस्था में उत्पादित वस्तु की गुणवता और मात्रा निर्धारित करने में खरीदार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। कारीगरों को कच्चा माल खरीदने के लिए पर्याप्त पूंजी मिल जाती थी। उनके माल की बिक्री का भी आश्वासन मिल जाता था पर बिक्री पर उसका नियंत्रण नहीं रह जाता था।

MAADHYAM IAS

उत्पादक केन्द्र (कारखाने)

1620-21 में अंग्रेजों ने पटना में इस प्रकार की पहली इकाई स्थापित की जहां रेशम के धागे बनाए जाते थे और इसमें 100 मजदूर काम करते थे। कासिम बाजार में डच कम्पनी ने अपने रेशम के कारखाने में 700-800 बुनकरों को काम दे रखा था। पर इस प्रकार की व्यवस्था इक्का दुक्का स्थानों पर ही उपलब्ध थी (देखिए ए.जे. कैसर "द रोल ऑफ ब्रोकर्स इन मेडिवल इंडिया")। जहाज निर्माण और गृह निर्माण भी ऐसा क्षेत्र था जहां एक साथ काफी लोग काम करते थे। दक्खन और दक्षिण भारत के लगभग सभी जहाज निर्माण केन्द्रों में एक छत के नीचे और एक निगरानी तहत अनेक कारीगर और मजदूर काम करते थे। गृह निर्माण में भी जहाज निर्माण की तरह कई लोग एक निगरानी में काम करते थे। (देखिए ए.जे. कैसर, 'Ship Building in the Mughal Empire during the 17th Century' तथा Building Construction in Mughal India, the Evidence from Painting).

दो अन्य उत्पादक क्षेत्रों में भी काफी संख्या में कार्मिक (हालांकि वे बहुत निपुण नहीं होते थे) एक साथ कार्य करते थे। पहला, गोलकुंडा और दक्खन की हीरे की खानों में 30,000 से 60,000 लोग काम करते थे। यहां खान निरीक्षक शासक से जमीन के टुकड़े किराए पर ले लेता था। ये सभी अपने जमीन के टुकड़ों पर 200 से 300 खनिकों से काम करवाते थे। इन खनिकों को प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती थी। इसी प्रकार खनन के मौसमः (दिसम्बर-जनवरी) में बिहार के हीरे की खानों में लगभग 8000 आदमी काम करते थे। आमतौर पर ये किसान या खेतिहर मजदूर होते थे जो अपने खेतों में फसल रोपकर यहां आते थे।

शोरा के उत्पादन में भी एक साथ कई लोग काम करते थे। इस मामले में भी एक मालिक के निरीक्षण में छोटे समूहों में कई लोग काम करते थे। बिहार में इन्हें नूनियां कहा जाता

था। बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए डच और अंग्रेजों ने शोरा निकालने के लिए अपनी इकाइयां स्थापित की। शोरे की इन शोधक इकाइयों में यूरोपीय कम्पनियां सारे साधन उपलब्ध कराती थीं और कार्मिक उनके साधनों से ही काम करते थे।

शाही कारखाने

विवेच्य काल में शाही कारखाने उत्पादन की एक प्रमुख विशेषता थे। ये कारखाने 14-15वीं शताब्दियों में भी कार्यरत थे। ये कारखाने राजकीय व्यवस्था का हिस्सा थे और कुलीन वर्गों के लोग भी अपने कारखाने चलाते थे। इनमें बनी चीजों का निर्माण राजकीय घरेलू आवश्यकताओं और दरबार के लिए हुआ करता था। कई उच्चस्थ कुलीनों के अपने कारखाने हुआ करते थे। आमतौर पर इनमें महंगी और विलास की वस्तुओं का उत्पादन होता था। निपुण कारीगर एक छत के नीचे काम करते थे और उत्पादन करते थे। राज्य के अधिकारी उनका निरीक्षण करते थे। कारीगारों के पास इतनी पुंजी नहीं थी कि वे राजकीय जरूरतों के अनुसार वस्तुओं का निर्माण कर सकें। इस जरूरत को पूरा करने के लिए **कारखानों** का निर्माण हुआ। इन बहुमूल्य वस्तुओं के निर्माण के लिए बहुमूल्य कच्चे माल की जरूरत होती थी और शासन नहीं चाहता था कि ये बहुमूल्य वस्तुएं कारीगर अपने घर ले जाकर रखें। यहां हम इन कारखानों की कार्य पद्धति पर विस्तार से विचार नहीं करने जा रहे हैं क्योंकि इनमें बाजार के लिए नहीं बल्कि राजकीय और व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन होता था।

हमने देखा कि विवेच्य काल के दौरान उत्पादन की प्रक्रिया में परिवतन आ रहा था। तपन राय चौधरी के कथन से इसका निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है ''मुगल भारत में उत्पादन का संगठन अपरिवर्तित नहीं रहा। बहुत कुछ घटित हो रहा था, पर यह सब बहुत सीमित था। नये विकास हुए पर अतीत से नाता नहीं टूट सका। परम्परागत प्रक्रिया अभी भी जारी थी। इसके बावजूद तकनीक की अपेक्षा संगठन में अधिक आधारभूत बदलाव आया''।

बोध प्रश्न 3

1) **जजमानी** व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर पांच पंक्तियां लिखिए।

   i) **दादनी :** ....

   ....

   ....

   ....

   ....

MAADHYAM IAS

ii) **कारखाने**

....

....

....

....

....

iii) **शाही कारखाना**

....

....

....

....

....

22.7 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में गैर-कृषि उत्पादन पर विचार किया यह क्षेत्र काफी विकसित था और इसकी अलग पहचान थी। यहां वस्त्र उद्योग सबसे बड़ा उत्पादक क्षेत्र था। सूती वस्त्र की काफी मांग थी और इससे इस उद्योग को काफी बढ़ावा मिला। नील और चीनी कृषि आधारित उद्योग थे।

नमक के उत्पादन से घरेलू आवश्यकता की पूर्ति हो जाती थी। शोरा उद्योग में भी बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था। इसे निर्यात भी किया जाता था। लोहे और तांबे का भी उत्पादन होता था। चांदी का उत्पादन इसके मुकाबले कम होता था। इस काल के दौरान जहाज निर्माण उद्योग का भी उल्लेखनीय विकास हुआ।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि गैर-कृषि क्षेत्र में कारीगर व्यक्तिगत स्तर पर उत्पादन करता था। कुछ क्षेत्रों, जैसे शोरा और हीरा खनन में एक साथ एक निगरानी में काफी लोग काम किया करते थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने रेशम के धागों को निकालने के लिए कुछ कारखाने स्थापित करने का काम किया। पर उन्हें कम ही सफलता मिली। कारीगरों को अग्रिम राशि देने की प्रथा पूरी तरह विकसित थी। राजकीय कारखानों में राजपरिवार और कुलीन वर्गों की जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन किया जाता था।

22.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) गुजरात, बंगाल और उत्तर प्रदेश के कुछ भाग प्रमुख कपड़ा उद्योग केन्द्र थे। देखिए उपभाग 22.2.1

2) बंगाल में काफी मात्रा में रेशम का धागा बनाया जाता था और उसे देश के अन्य भागों में बुनने के लिए भेजा जाता था। देखिए उपभाग 22.2.1

3) बयाना और सरखेज की दो महत्वपूर्ण कोटियां देखिये उपभाग 22.2.2

बोध प्रश्न 2

1) 17वीं शताब्दी में बिहार, बंगाल और गुजरात में बड़ी मात्रा मे उत्पादन होता था। देखिए उपभाग 22.3.1

2) देखिए उपभाग 22.3.1 और 22.3.2

बोध प्रश्न 3

1) **जजमानी** व्यवस्था में कारीगरों को उनकी सेवा के लिए ग्राम समुदाय द्वारा भुगतान किया जाता था। देखिए 22.5

2) देखिए भाग 22.6

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 23 आंतरिक और विदेशी व्यापार

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 आंतरिक व्यापार
23.2.1 स्थानीय और प्रांतीय व्यापार
23.2.2 अंतरप्रांतीय व्यापार
23.2.3 तटीय व्यापार
23.3 विदेशी व्यापार
23.4 व्यापार मार्ग और यातायात के साधन
23.5 प्रशासन और व्यापार
23.6 सारांश
23.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम मुगलकालीन भारत के आंतरिक और विदेशी व्यापार पर विचार विमर्श करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- स्थानीय, प्रांतीय, और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की पद्धति के बारे में जान सकेंगे;
- आंतरिक व्यापार में विनिमय की प्रमुख वस्तुओं का नाम बता सकेंगे;
- समुद्र और जमीन के रास्ते होने वाले भारतीय विदेश व्यापार की पद्धति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- आयात और निर्यात होने वाली प्रमुख वस्तुओं का नाम बता सकेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

23.1 प्रस्तावना

इस खंड की इकाई 21 और 22 में हमने भारत के कृषि और गैर-कृषि उत्पादनों पर विचार विमर्श किया है। इन दोनों इकाइयों में हमने साम्राज्य के विभिन्न प्रांतों में वस्तुओं के उत्पादन की चर्चा की है। हमने यह भी देखा कि वस्तुओं का उत्पादन स्थानीय खपत से ज्यादा होता था। इस अधिशेष उत्पादन ने व्यापारिक गतिविधियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

यह व्यापारिक गतिविधि खेत में अनाज उत्पादन के साथ ही शुरू हो जाती थी। इसी प्रकार शिल्प उत्पादन के क्षेत्र में व्यापारिक गतिविधि कारीगर के घर से ही आरंभ हो जाती थी। यह गतिविधि स्थानीय, प्रांतीय, अंतर प्रांतीय और देश के बाहर कई स्तरों पर घटित होती थी। इस इकाई में हम अपने अध्ययन काल के दौरान देशी और विदेशी व्यापार पर विचार विमर्श करेंगे।

राजनैतिक स्थिरता और उत्पादन में हुई वृद्धि के कारण इस काल में व्यापारिक गतिविधि में काफी तेजी आई। व्यापार में कई गुना वृद्धि हुई। इस दौरान भारत की व्यापारिक गतिविधियों में कई यूरोपीय देश भी शामिल हुए। सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में ही भारत के पश्चिमी भागों में पुर्तगाली आकर बस चुके थे। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान फ्रांसीसी, डच और अंग्रेज व्यापारी भी व्यापारिक गतिविधियों में शामिल हुए।

इस इकाई में हम दो मुद्दों पर विचार करेंगे i) आंतरिक और विदेशी व्यापार की पद्धति; और ii) आयात और निर्यात होने वाली प्रमुख वस्तुएं।

वाणिज्यिक गतिविधियों के विकास से व्यापार में हिस्सा लेने वाले कुछ विशेषीकृत समुदायों का उदय हुआ। इसी के साथ-साथ कुछ आधारभूत वाणिज्यिक प्रथाएं भी स्थापित हुईं। इन मुद्दों की चर्चा इकाई 24 में की जाएगी। इकाई 25 में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के संगठन पर भी विचार किया जाएगा। आइए, पहले आंतरिक व्यापार की चर्चा की जाए।

23.2 आंतरिक व्यापार

जैसा कि हमने पहले बताया है कि हम स्थानीय, प्रांतीय, तटीय और अंतर प्रांतीय स्तरों पर आंतरिक व्यापार की चर्चा करेंगे।

23.2.1 स्थानीय और प्रांतीय व्यापार

जैसा कि इकाई 16 में बताया जा चुका है : भू-राजस्व नगद में वसूल किया जाता था। इसका अर्थ यह हुआ कि अधिशेष कृषि उत्पाद को बेचा जाता था। इसका अधिकांश हिस्सा गांव में ही बेचा जाता था। इनमें से अधिकांश बंजारों (परम्परागत अनाज व्यापारी) द्वारा खरीद लिया जाता था और वे इसे दूसरे शहरों और बाजारों में ले जाया करते थे। टेवर्नियर नामक फ्रांसीसी यात्री 17वीं शताब्दी में भारत आया था, वह बताता है कि लगभग प्रत्येक गांव में चावल, आटा, मक्खन, दूध, सब्जी, चीनी और विभिन्न प्रकार की मिठाइयां खरीदी जा सकती थीं। यहां तक कि कई गांवों में भेड़, बकरी, मुर्गा आदि भी उपलब्ध होते थे। उसके अनुसार प्रत्येक बड़े गांव में एक सर्राफ या मुद्रा विनिमयदाता होता था। इसके अलावा क्षेत्र विशेष के प्रत्येक शहर में एक बाजार होता था जहां आसपास के लोग सामानों की खरीद-बिक्री किया करते थे। इन नियमित बाजारों के अतिरिक्त **हाट** या **पेंठ** भी लगते थे जहां गांव के लोग रोजमर्रा की वस्तुओं का आदान-प्रदान कर सकते थे या खरीद-बेच सकते थे। **हाट** नियतकालिक बाजार होते थे जो सप्ताह में किसी खास दिन लगाए जाते थे। इस प्रकार के कुछ **हाट** किसी खास वस्तु के व्यापार के लिए भी होते थे।

इन स्थानीय बाजारों में साधारणतया अनाज, नमक, कृषि और घरेलू उपयोग के लिए लकड़ी और लोहे के बने साधारण औजार और मोटे सूती कपड़े उपलब्ध होते थे।

इस प्रकार के बाजार सभी छोटे कस्बों और बड़े गांवों में अवस्थित होते थे। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य के जौनपुर के बारे में बनारसी दास लिखते हैं कि इसमें 52 परगने, 52 बाजार और 52 थोक बाजार या मंडी थीं। इस विवरण से ऐसा लगता है कि प्रत्येक परगने में कम से कम एक बाजार और एक मंडी या थोक बाजार होता था।

इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में छोटे और बड़े बाजारों यथा **हाट, पेंठ,** मंडी और व्यक्तिगत रूप से व्यापारियों के माध्यम से व्यापारिक गतिविधियां चलती रहती थीं। तपन राय चौधरी के अनुसार प्रत्येक गांव और उसमें स्थित मंडी विनिमय और वस्तुओं के वितरण की कड़ी के रूप में काम करती थी।

ये स्थानीय व्यापारिक केंद्र उस क्षेत्र के बड़े वाणिज्यिक केंद्रों से जुड़े होते थे। प्रत्येक मुगल प्रांत में एक बड़ा वाणिज्यिक केंद्र होता था जहां सूबा के विभिन्न हिस्सों में उत्पन्न वस्तुओं का व्यापार होता था। आमतौर पर ये बड़े शहर **सूबा** के प्रशासनिक मुख्यालय हुआ करते थे। पटना, अहमदाबाद, सूरत, ढाका, आगरा, दिल्ली, लाहौर, मुल्तान, अजमेर, थट्टा, बुरहानपुर, मसूलीपट्टम, बीजापुर, हैदराबाद, कालिकट, कोचीन, आदि इस प्रकार के व्यापारिक केंद्रों के कुछ उदाहरण हैं। हमारे स्रोतों से पता चलता है कि इन वाणिज्यिक केंद्रों में केवल उस प्रांत की वस्तुएं ही नहीं मिलती थीं, बल्कि यहां दूसरे प्रांतों और विदेशों में बनी वस्तुएं भी उपलब्ध होती थीं। प्रत्येक शहर में कई बाजार होते थे। केवल

MAADHYAM IAS

अहमदाबाद और उसके आसपास लगभग 19 मंडियां थीं। बाजार पर लगाये गये वाणिज्यिक कर को बाजार के आकार का सूचकांक माना जा सकता है। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अहमदाबाद से प्रति वर्ष 42,8600 दाम वाणिज्य कर वसूला जाता था। इसी प्रकार दिल्ली, आगरा, ढाका और लाहौर में अलग-अलग वस्तुओं के लिए अलग बाजार होता था। यह कहा जाता है कि दिल्ली में बड़े कुलीनों के लड़के बिना किसी परेशानी के एक दिन में एक लाख रुपये खर्च कर सकते थे। 17वीं शताब्दी के अंत के गोवा के बारे में लिखते हुए जे. लिशोटन बताते हैं कि शहर के मुख्य मार्ग पर प्रतिदिन नीलामी होती थी। वह यह भी बताता है कि एक मार्ग पर बहुत सी दूकानें थीं जिनमें सभी प्रकार के रेशमी, मखमली, साटन, के कपड़े, चीन के बने चीनी मिट्टी के बर्तन, सिल्क और सभी प्रकार के वस्त्र मिलते थे। इन शहरों में बड़ी संख्या में व्यापारी, दलाल और सर्राफ रहते थे। बाहरी व्यापारियों के रहने के लिए इन शहरों में **सरायों** की व्यवस्था थी।

इन केंद्रों में पास के शहरों, कस्बों और गांवों से चीजें बिकने के लिए आती थीं, मसलन पटना में रेशम, बैकंठपुर से सूती वस्त्र, नंदनपुर और सालिमपुर से और सूबा के अन्य भागों से सब्जियां, अफीम और चीनी आती थी।

कुछ शहर कुछ खास चीजों के व्यापार के लिए विशेष बाजार समझे जाते थे। मसलन बुरहानपुर (कपास मंडी), अहमदाबाद (कपड़ा), कैम्बे (रत्न बाजार), सूरत सरखेज (नील), आगरा बयाना (नील) आदि।

इन सभी वाणिज्यिक केंद्रों में टकसाल होते थे जिनमें चांदी, तांबे और कभी-कभी सोने के सिक्के भी ढाले जाते थे। टकसालों के बारे में आप इकाई 20 में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

23.2.2 अंतरप्रांतीय व्यापार

विवेच्य काल में भारत का अंतरप्रांतीय व्यापार काफी विकसित था। यातायात के खर्च और आवागमन में लगने वाले समय को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अंतर प्रांतीय व्यापार का परिमाण काफी ऊंचा था। व्यापार के लिए वस्तुएं एक जगह से दूसरी जगह सैकड़ों और कभी-कभी हजारों मील दूर ले लाई जाती थीं। अंतर प्रांतीय व्यापार में अनाज और विभिन्न प्रकार के कपड़ों का विशेष स्थान था। लम्बी दूरी के व्यापार में विलास की वस्तुओं, धातु और अस्त्र भी शामिल होते थे। इन सभी वस्तुओं की सूची प्रस्तुत करना संभव नहीं है। यहां हम कुछ महत्वपूर्ण वस्तुओं की संक्षिप्त जानकारी देंगे।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

पूर्व में, बंगाल का भारत के सभी हिस्सें से व्यापार संबंध काफी विकसित था। हुगली, ढाका, मुर्शिदाबाद, मालदा, सतगांव, टांडा, हिजली, श्रीपुर, सोनार गांव बंगाल के महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र थे। इनमें हुगली व्यापार का सर्वप्रमुख केंद्र था।

यहां बिहार, उड़ीसा और बंगाल के कुछ भागों से माल लाया जाता था। बंगाल पूरे देश को अनाज की आपूर्ति करता था। पटना से चावल और चीनी बंगाल के बाजारों में आता था। पटना के निकट लखावर कपड़ा उत्पादन का प्रमुख केंद्र था। यहां भारत के विभिन्न हिस्सों और यहां तक कि विदेश से आए व्यापारी माल खरीदते थे। बंगाल में बना कपड़ा पटना से लेकर गुजरात में अहमदाबाद तक उपलब्ध था। गुजरात और बिहार में बड़े पैमाने पर रेशम (सिल्क) बनाया जाता था पर इसके लिए कच्चा माल बंगाल से आता था। इस कच्चे माल से बना रेशम वस्त्र देश के सभी हिस्सों में तथा विदेश भेजा जाता था। कश्मीर का केसर आसानी से बंगाल और बिहार के बाजारों में मिल जाता था। बुरहानपुर में बनने वाला छींट का कपड़ा भी बंगाल के बाजारों में मिलता था। बंगाल का आगरा, बनारस और उत्तर भारत के अन्य शहरों के साथ नियमित व्यापारिक संबंध था।

पश्चिम में, अहमदाबाद और सूरत सबसे बड़े वाणिज्यिक केंद्र थे, यहां के बाजारों में भारत के दक्षिण, उत्तर और पूर्वी भागों में बने कपड़े उपलब्ध होते थे। बेचने के पहले यहां उन्हें सुखाया और रंगा जाता था। बंगाल के कच्चे रेशम से गुजरात में रेशम का वस्त्र बनाया जाता था और उसे उत्तर के बाजारों में ले जाया जाता था। गुजरात को काली मिर्च और मसाले मालाबार तट से प्राप्त होते थे। गुजरात से कपड़ा मुल्तान और लाहौर ले जाया

जाता था। गुजरात में लाख बंगाल से आता था, अपनी गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध सरखेज नील गुजरात से भारत के विभिन्न प्रांतों में भेजा जाता था। गुजरात, कोंकण और मालाबार के शहरों के बीच व्यापक पैमाने पर व्यापार होता था।

उत्तर में, आगरा में काफी मात्रा में रेशम बंगाल से आता था। अवध क्षेत्र से कालीन और कपड़े, गुजरात, बंगाल, पटना, लाहौर और मुल्तान ले जाये जाते थे। कश्मीर का केसर, लकड़ी का सामान, फल, ऊनी शॉल आदि उत्तर, पश्चिम और पूर्वी भारत में पाया जाता था। कश्मीर से मुल्तान, आगरा और दिल्ली तक बर्फ भेजी जाती थी। शाहजादपुर (इलाहाबाद के पास) से भारत के सभी हिस्सों में कागज भेजा जाता था। बयाना (आगरा के निकट) का प्रसिद्ध नील लाहौर, मुल्तान और दक्षिणी भागों में भेजा जाता था। राजस्थान का प्रसिद्ध संगमरमर देश के सभी हिस्सों, खासकर आगरा और दिल्ली में भेजा जाता था। उत्तर से अनाज गुजरात तक ले जाया जाता था।

दक्षिण में होने वाला अधिकांश व्यापार तटों के समीप होता था। बंगाल में उत्पन्न नील को काफी मात्रा में मसूलीपट्टम में बेचा जाता था। मालाबार तट से काली मिर्च और मसाले बीजापुर, कोरोमंडल और कोंकण तट तक ले जाए जाते थे और मसूलीपट्टम से गुजरात का तम्बाकू बंगाल ले जाया जाता था। गोलकुंडा की खानों से पूरे भारत को हीरे की प्राप्ति होती थी।

खनिज और धातु किसी खास जगह ही प्राप्त होते थे, मुगल भारत में देश के सभी भागों में उन्हें व्यापारियों द्वारा पहुंचाया जाता था। नमक का उत्पादन मुख्य रूप से राजस्थान और पंजाब में होता था पर उन्हें उत्तरी और दक्षिणी भारत के सभी हिस्सों में पहुंचाया जाता था। तटीय प्रदेशों में समुद्र से नमक प्राप्त किया जाता था। मध्य भारत में ग्वालियर लोहे का प्रमुख स्रोत स्थान था। इसके अलावा राजस्थान, पंजाब और सिंध में भी लोहा पाया जाता था। अच्छी कोटि का इस्पात गुजरात में कच्छ, दक्खन और दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में पाया जाता था। तांबे का उत्पादन राजस्थान, बिहार, सिंध, और उत्तर भारत के कई हिस्सों में होता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

23.2.3 तटीय व्यापार

लंबी दूरी और यातायात के तीव्र गति के साधनों के अभाव के कारण अंतर प्रांतीय व्यापार समुद्र के रास्ते होता था जिनमें कई तटीय इलाके शामिल होते थे। पश्चिमी तट पर तटीय व्यापार ज्यादा गतिशील था, हालांकि पूर्वी तट पर भी काफी व्यापारिक गतिविधियां होती थीं। दोनों तटों पर व्यापारिक गतिविधियां विभिन्न तरीकों से संगठित की जाती थीं। पश्चिमी तट पर समुद्री डाकुओं का खतरा गंभीर था। अतः इस रास्ते से जाने वाले जहाज एक कारवां में जाते थे जबकि पूर्वी तट पर पूरे वर्ष छोटी बड़ी नौकाओं द्वारा व्यापार होता रहता था।

पश्चिमी तट पर मई और सितम्बर के बीच सुरक्षा के साथ कारवां बनाकर व्यापारियों के जहाज गोवा से कोचिन और गोवा और खंभात के बीच दो से तीन बार चक्कर लगा लेते थे। खंभात जाने वाले कारवां में विभिन्न आकारों के लगभग 200-300 जहाज और नौकाएं होती थीं। ये गेहूं, तेल, दाल, चीनी, कपड़े और विभिन्न फुटकल वस्तुएं ले जाती थीं। कोचिन और गोवा के बीच जाने वाले कारवां इतने बड़े नहीं होते थे पर इसमें बहुत अधिक प्रकार के सामान ले जाये जाते थे। मलक्का और पूरब से आने वाले जहाज श्रीलंका के आसपास कहीं मिलते थे और फिर बंगाल और कोरोमंडल तट से आई नौकाएं इन्हें सुरक्षित रूप से कोचिन पहुंचा देती थीं। बंगाल के तटीय शहरों में तांबा, जिंक, टीन, तम्बाकू, मसाले और छींट के कपड़ों से लदी नावें कोरोमंडल तट से आती थीं। इसके बदले कोरोमंडल तट पर तांबा, पारा, हिंगुल, काली मिर्च,आदि गुजरात से और मसाले मालाबार से पहुंचते थे। उड़ीसा के तटीय शहरों का भी कोरोमंडल और मालाबार के तटों से संबंध था। विजयनगर और गोलकुंडा से लाया गया कपड़ा, अनाज, लोहा, इस्पात और अन्य धातुएं कोरोमंडल के रास्ते बंगाल पहुंचती थीं। बंगाल के तट से चावल, कपड़े और अन्य

वस्तुएं पश्चिमी तट तक पहुंचाई जाती थी। सिंधु-खंभात, गुजरात-मालाबार, बंगाल-कोरोमंडल, और मालाबार-कोरोमंडल के बीच तटीय व्यापार काफी मात्रा में होता था।

बोध प्रश्न 1

1) स्थानीय व्यापार में **हाट** और **पेंठ** की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) प्रांतीय व्यापार के दस प्रमुख केंद्रों का नाम बताइए।

....

....

....

....

....

3) देश के अन्य हिस्सों से गुजरात में होने वाले अंतर प्रांतीय व्यापार का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

23.3 विदेशी व्यापार

शताब्दियों से भारत का व्यापारिक संबंध अन्य देशों के साथ रहा है। कालांतार में व्यापार की पद्धति और व्यापार में शामिल वस्तुओं में परिवर्तन होता रहा। 16वीं और 17वीं शताब्दी के दौरान भी भारत का अन्य देशों के साथ समृद्ध व्यापारिक लेने-देन कायम था। इस काल के विदेशी व्यापार की प्रमुख विशेषता यूरोपियों का भारत में आगमन था। इससे भारत के विदेश व्यापार में कई गुना वृद्धि हुई। इस विदेशी व्यापार में भारतीय माल का निर्यात बहुत अधिक था जबकि आयात की मात्रा काफी कम थी। इस भाग में हम इसी विदेश व्यापार पर प्रकाश डालेंगे। इस पर हम निर्यात और आयात शीर्षक के अंतर्गत विचार करेंगे।

i) निर्यात

मुख्य रूप से कपड़ा, शोरा और नील का निर्यात किया जाता था। चीनी, अफीम, मसाले और अन्य विभिन्न उत्पाद निर्यात की अन्य वस्तुएं थीं।

कपड़ा

जैसा कि हम इकाई 21 में पढ़ चुके हैं इस काल के दौरान भारत में कपड़ा उत्पादन अपने उत्कर्ष पर पहुंचा हुआ था। निर्यात बढ़ने से उत्पादन में काफी तेजी से वृद्धि हुई।

यूरोपीय व्यापारियों के आने से पहले मुगल, खोरासानी, इराकी और आरमेनियन भारतीय कपड़े के मुख्य खरीददार थे। ये इन कपड़ों को मध्य एशिया, फारस और तुर्की ले जाते थे। भारत के विभिन्न भागों से खरीदी गई इन वस्तुओं को लौहौर के रास्ते थल मार्ग से ले जाया जाता था। व्यापार के कुल परिमाण का अनुमान लगाना कठिन है। 17वीं शताब्दी के बाद से ही डच और अंग्रेजों ने भारतीय कपड़ों का व्यापार करना शुरू कर दिया था। व्यापार के लिए कपड़ों की कई किस्में उपलब्ध थीं जैसे **बाफता, समानी, खैराबादी, दरियाबादी, अमबर्ती, कैयमखानी,** अन्य कई तरह के सूती कपड़े और मलमल। बाद में पूर्वी तट से भी सूती वस्त्रों के कई प्रकार प्राप्त किए जाने लगे। छींट और रंगीन कपड़ों की विदेशों में खूब मांग थी। गुजरात, जौनपुर और बंगाल के कालीनों का भी निर्यात होता था।

गुजरात और बंगाल के रेशमी वस्त्रों का भी निर्यात होता था। तैयार कपड़े के अलावा सूती और रेशमी सूत की भी मांग थी। मोरलैंड की गणना है कि केवल इंग्लिश कम्पनी की मांग 1625 में 200,000 थान, 1628 में 1,50,000 थान और 1630 में लगभग 1,20,000 थान की थी। गुजरात में 1630 में पड़े अकाल से इस पर प्रभाव पड़ा पर 1638-41 में सूरत से प्रतिवर्ष लगभग 50,000 थान जहाजों द्वारा ले जाए जाने के विवरण मिलते हैं। 1650 के बाद पूर्वी तटों से भी व्यापार शुरू हुआ और मद्रास से प्रतिवर्ष 50,000 थानों की आपूर्ति हुई। डचों की मांग भी प्रतिवर्ष 50,000 थानों से अधिक थी। 1661 के एक दस्तावेज से पता चलता है कि आरमेनियनों ने 10 लाख रुपये का कपड़ा खरीद कर उसे ईरान भेजा था। उपर्युक्त आंकड़े निर्यात का मोटा खाका प्रस्तुत करते हैं, फिर भी इनसे कपड़े के विपुल मात्रा में निर्यात की जानकारी मिलती है।

शोरा

शोरा से बारूद बनाया जाता था और यूरोप में इसकी काफी मांग थी। 16वीं शताब्दी के दौरान इसके निर्यात का कोई हवाला नहीं मिलता है। 17वीं शताब्दी में, डच कम्पनी ने कोरोमंडल से इसका निर्यात आरंभ किया। इसके बाद अंग्रेजों ने भी इस पथ का अनुगमन किया। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान डच और अंग्रेज कोरोमंडल, गुजरात और आगरा से इसका काफी मात्रा में निर्यात कर रहे थे। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बिहार से उड़ीसा होकर और बंगाल के तटों से इसका निर्यात आरंभ हुआ। जल्दी ही बिहार महत्वपूर्ण निर्यातक बन गया।

MAADHYAM IAS

1658 के बाद अंग्रेज केवल बंगाल के तटों से प्रतिवर्ष 25,000 मन शोरा निर्यात कर रहे थे। 1680 के बाद यह मात्रा और भी बढ़ गई। डच कम्पनी की मांग इससे लगभग चार गुना अधिक थी। 18वीं शताब्दी के दौरान भी अंग्रेज शोरा की मांग करते रहे।

नील

अधिकांश उत्तरी भारत, पंजाब, सिंध और गुजरात में नील का उत्पादन होता था। इसका उपयोग रंगाई के लिए नीले रंग के रूप में होता था। निर्यात के लिए सरखेज (गुजरात) और बयाना (आगरा के निकट) में बनाई जाने वाली नील की काफी मांग थी। पहले यह गुजरात से फारस की खाड़ी और लाहौर से एलेप्पो के बाजारों में भेजा जाता था। बाद में यूरोपीय कम्पनियां भी इसका व्यापार करने लगीं। 16वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश से पुर्तगाली इसका निर्यात करने लगे थे। ऊनी कपड़ों की रंगाई के लिए यूरोप में इसकी मांग काफी अधिक थी। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान डच और अंग्रेजों ने इसका निर्यात करना आरंभ किया। आरमेनियन भी इसे काफी मात्रा में खरीदते थे। इसके अलावा ईरान के व्यापारी इसे एशिया के बाजारों और पूर्वी यूरोप के लिए खरीदते थे। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान इसे प्राप्त करने के लिए डच, अंग्रेजों, ईरानियों, मुगलों और आरमेनियनों के बीच प्रतिद्वंद्विता शुरू हो गई। 17वीं शताब्दी के मध्य के आसपास डच और अंग्रेज प्रतिवर्ष लगभग 15,000 या 30,000 मन नील प्राप्त कर रहे थे। बाद के वर्षों में यह मांग बढ़ती चली गई।

अन्य वस्तुएं

ऊपर उल्लिखित वस्तुओं के अलावा भारत से और भी कई चीजों का निर्यात होता था।

फ्रांसीसी, डच और अंग्रेज कम्पनियां अफीम खरीदा करती थीं। मुख्य रूप से बिहार और मालवा से इसकी आपूर्ति होती थी। डच और इंग्लिश कम्पनी बंगाल से भारी मात्रा में चीनी की भी खरीद करती थीं। डच यूरोप को अदरख का निर्यात करते थे। आरमेनियन हल्दी, अदरख और सौंफ का निर्यात करते थे। गुजरात और इंडोनेशियाई द्वीप समूह के बीच बड़े पैमाने पर व्यापारिक गतिविधियां होती थीं। यहां से थोक मात्रा में कपड़ा इंडोनेशिया ले जाया जाता था और बदले में मसाला लाया जाता था। भारत में बने सूती रंगीन और छींट के कपड़ों की खूब मांग थी। बाद में यह व्यापार कोरोमंडल तट से होने लगा, यहां से कपड़े का निर्यात और मसालों का आयात होने लगा।

ii) आयात

भारत में होने वाले निर्यात की तुलना में आयात कुछ चुनी हुई वस्तुओं तक ही सीमित था। मुख्य रूप से चांदी का आयात होता था। यूरोपीय कम्पनियां और यूरोप और एशिया के व्यापारी यहां से सामान खरीदकर चांदी से भुगतान करते या चांदी का आयात करते थे। थोड़ा बहुत तांबे का भी आयात होता था। भारत में सीसा और पारे का भी आयात होता था। अंग्रेज चीन से भारत में रेशम और चीनी मिट्टी के बर्तन का आयात करते थे। फारस से अच्छी किस्म की शराब, कालीन और इत्र का आयात होता था। यूरोप में निर्मित शीशों, घड़ियों, चांदी के बर्तनों और छोटे औजारों की भारत के कुलीन वर्ग में मांग थी। सैन्य उपयोग के लिए मध्य एशिया से घोड़ों का आयात किया जाता था। राज्य घोड़ों का प्रमुख खरीददार होता था। इसके अतिरिक्त भारत का पड़ोसी पहाड़ी राज्यों से भी व्यापारिक संबंध था। भूटान और नेपाल से कस्तूरी भारत लाया जाता था यहां से यूरोपीय व्यापारी इसे खरीदते थे। नेपाल और तिब्बत से सुहागा का आयात किया जाता था। इन पहाड़ी राज्यों को इसके बदले में अनाज और लोहा भेजा जाता था।

MAADHYAM IAS

बोध प्रश्न 2

1) यूरोप के बाजारों में निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुओं का नाम बताइए।

....

....

....

....

....

2) भारत से नील निर्यात पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

3) भारत में आयात की जाने वाली कुछ प्रमुख वस्तुओं का नाम बताइए।

....

....

....

....

....

23.4 व्यापार मार्ग और यातायात के साधन

अंतर प्रांतीय और विदेश व्यापार के लिए व्यवस्थित व्यापारिक मार्ग और विकसित यातायात व्यवस्था की बहुत आवश्यकता थी। इस भाग में हम इन दो मुद्दों पर विचार विमर्श करेंगे, जिनका वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए खास महत्व था।

अंतर्देशीय व्यापारिक मार्ग

सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में भारत के विभिन्न वाणिज्यिक स्थलों के व्यापारिक मार्गों से जोड़ने में मुगल सम्राटों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। आमतौर पर सड़कों की देखभाल राज्य या क्षेत्र विशेष के राजा किया करते थे। इन मार्गों के बीच में कई नदियां पड़ती थीं। जिनको घाटों पर नाव द्वारा पार किया जाता था और कभी-कभी बड़े पुल भी बनाए जाते थे। इनका निर्माण और देख-रेख राज्य या कुलीन वर्ग किया करता था। वर्षा ऋतु में इन सड़कों पर यात्रा करना कठिन कार्य होता था क्योंकि मानसून के दौरान सड़कें खराब हो जाती थीं। कई यात्रियों ने बरसात के दौरान सूरत-बुरहानपुर मार्ग की बिगड़ी स्थिति का उल्लेख किया है। सड़कों की पहचान बताने और दूरी बताने के लिए राज्य ने जगह-जगह पर कोस मीनारें बनवाईं थीं। पर हमारे स्रोत बताते हैं कि उन्हीं मार्गों पर **कोस** मीनारें बनाई जाती थीं जो अधिक उपयोग में आते थे। सभी प्रमुख मार्गों पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर सरायें होती थीं। व्यापारी और यात्री इन सरायों में ठहरा करते थे। रहने के अलावा बड़ी सरायों में यात्रियों के सामान को ज्यादा दिनों तक सुरक्षित रखने की भी व्यवस्था थी।

आपकी जानकारी के लिए हम नीचे कुछ प्रमुख व्यापारिक मार्गों की चर्चा कर रहे हैं।

आगरा–दिल्ली–काबुल मार्ग

आगरा–फरीदाबाद–दिल्ली–सोनीपत–पानीपत–करनाल–अम्बाला–लुधियाना–फतेहपुर–लाहौर–रोहतास किला–रावलपिंडी–शमसाबाद–पेशावर–फतेहाबाद–काबुल।

MAADHYAM IAS

आगरा–बुरहानपुर–सूरत मार्ग

आगरा–धौलपुर–ग्वालियर–नरवर–सिरोंज -हँडिया–बुरहानपुर–तलनेर–नन्दुरबार–किर्का–सूरत।

सूरत-अहमदाबाद–आगरा

सूरत–भडौंच–बड़ौदा–अहमदाबाद–पालमपुर–जालोर–मेर्ता–लुदाना–हिन्दुआना–फतेहपुर सीकरी–आगरा।

आगरा–पटना–बंगाल मार्ग

आगरा–फिरोजाबाद–इटावा–सराय शाहजादा–इलाहाबाद–बनारस–सासाराम–दाउदनगर–पटना–मुंगेर–भागलपुर–राजमहल–दामपुर–ढाका।

आगरा से लेकर बंगाल तक नदी मार्ग थल मार्ग के लगभग समानांतर था।

विदेशी व्यापार के लिए मार्ग

विदेशी और भारतीय व्यापारी जल और थल दोनों मार्गें का उपयोग करते थे।

i) थल मार्ग

मध्य काल का सबसे प्रमुख थल मार्ग ''बृहद रेशम मार्ग'' (Great Silk Route) था। यह ''रेशम मार्ग'' बीजिंग से शुरू होकर काशघर, समरकन्द, बल्ख और काबुल होते हुए मध्य एशिया से गुजरता था। भारतीय थल मार्ग इस बड़े मार्ग से लाहौर में जाकर मिलता था। मुल्तान और कांधार से गुजरता हुआ यह यज्द और इस्फहान, बगदाद होते हुए फारस में प्रवेश करता था और यूफरेट्स को पार करने के बाद यह अलेप्पो पहुंचता था। वहां से यूरोपवासी वस्तुओं को जाहाजों में लाद कर ले जाया करते थे।

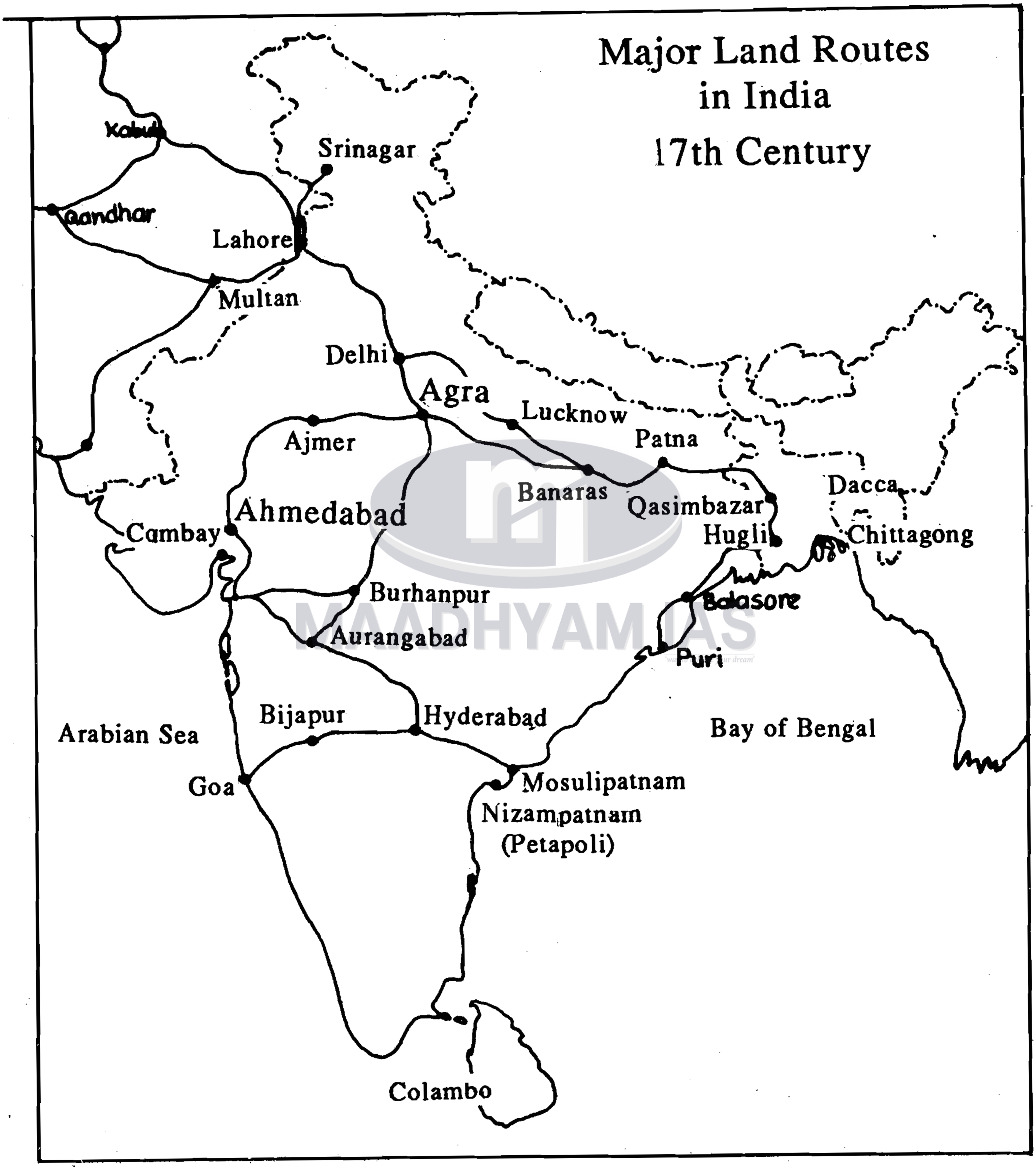

MAADHYAM IAS

ii) समुद्र मार्ग

अरब सागर और बंगाल की खाड़ी प्रमुख समुद्र मार्ग थे। आशा अन्तरीप (Cape of Good Hope) के रास्ते समुद्र मार्ग की खोज के पहले उत्तर से आने वाला समुद्री मार्ग खम्बात, सूरत, थट्टा से होकर फारस की खाड़ी और लाल समुद्र में मिलता था, दूसरा मार्ग दाभोर, कोचिन, कलकत्ता से होकर अदन और मोछा पहुंचता था। मोछा में वस्तुओं को लाल समुद्र और उसके बाद थल मार्ग से अलेक्जेंड्रिया होते हुए काहिरा पहुंचाया जाता था। अलेक्जेंड्रिया से भी यूरोपीय देशों को वस्तुओं की आपूर्ति की जाती थी। उत्तम आशा अन्तरीय की खोज के बाद यूरोप के देशों को नये अवसर प्राप्त हुए। अब उन्हें अलेक्जेंड्रिया या एलेप्पो पर निर्भर नहीं रहना पड़ा। इसके बदले वे भारत और दक्षिण एशियाई देशों से सीधे व्यापार करने लगे।

पूर्वी समुद्रों के रास्ते भारतीय व्यापारी काफी समय से चीन और इन्डोनेशियाई द्वीप समूहों के साथ व्यापार करते आ रहे थे। हुगली, मसूलीपट्टम और पुलिकट से वस्तुएं सीधे अचिन, बटाविया और मलक्का भेजी जाती थीं। मलक्का जल मार्ग के जरिए व्यापारी चीन में मकाओ और कैंटन तक चले जाते थे।

यातायात के साधन

यहां यातायात के साधनों पर विचार करते हुए हम केवल वाणिज्य के काम में आने वाले साधनों पर ही विचार करेंगे।

थल यातायात

इसमें बैलों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन पर सामान लाद कर ढ़ोया जाता था। इस काल में इस बात का हवाला मिलता है कि बंजारों के एक व्यापारिक कारवां में 10,000--20,000 ढ़ोने वाले जानवर शामिल होते थे जो अनाज ढ़ोते थे। इन्हें टंडा कहते थे। बंजारों के अतिरिक्त दूसरे व्यापारी भी माल ढ़ोने के लिए इनका उपयोग करते थे। एक बैल चार मन और एक बैलगाड़ी चालीस मन तक माल ढ़ो सकती थी। बैलगाड़ियों को खींचने वाले बैल 20 से 30 दिन तक बिना किसी रूकावट के और प्रतिदिन 20 से 30 मील चल सकते थे। देश के पश्चिमी हिस्से में सामान ढ़ोने के लिए ऊंटों का उपयोग किया जाता था। वे जमीन के रास्ते माल ढ़ोकर फारस और मध्य एशिया तक पहुंचाते थे।

ऊंचे पहाड़ी इलाकों पर पहाड़ी घोड़ों, खच्चरों और गधों का उपयोग किया जाता था। यहां आदमी भी माल ढ़ोते थे।

नदी यातायात

भारत में नदियों की बहुलता थी और इनका व्यापारिक मार्ग के रूप में उपयोग होता था। बंगाल और सिंध में नौकाओं का खूब उपयोग होता था। आगरा और बंगाल के बीच नौकाओं से काफी माल आता जाता था। आगरा से चली नौकायें यमुना के रास्ते इलाहाबाद पहुंचती थी वहां संगम पर वह गंगा मार्ग पकड़ कर बंगाल पहुंच जाती थीं। समकालीन स्रोत आगरा और बंगाल के बीच बड़ी संख्या में नौकाओं के चलने की सूचना देते हैं और यह बताते हैं कि राजमहल में लगभग 2000 नौकाएं तट पर खड़ी देखी जा सकती थीं। हमारे स्रोतों के अनुसार सिंध में चालीस हजार नावें प्रयोग में आती थीं।

पटना और हुगली के बीच चलने वाले ''पटेला'' (एक प्रकार की चपटी नांव) पर 120 से 200 टन तक माल लादा जा सकता था। माल ढ़ोने वाली नौकाएं 1000 से 2000 मन तक सामान ढ़ो सकती थीं। नदी के वेग के साथ चलते समय इनकी गति तेज होती थी। ऐसे में आमतौर पर इसमें थल मार्ग की अपेक्षा आधा समय लगता था। इसके अलावा नदी यातायात सस्ता भी था। उदाहरण के लिए नदी के जरिए मुल्तान से थाट्टा तक माल जाने का खर्च 3-4 रुपये प्रति मन और स्थल मार्ग से इससे कम दूरी के लिए यह खर्च 2 रुपये प्रति मन होता था।

MAADHYAM IAS

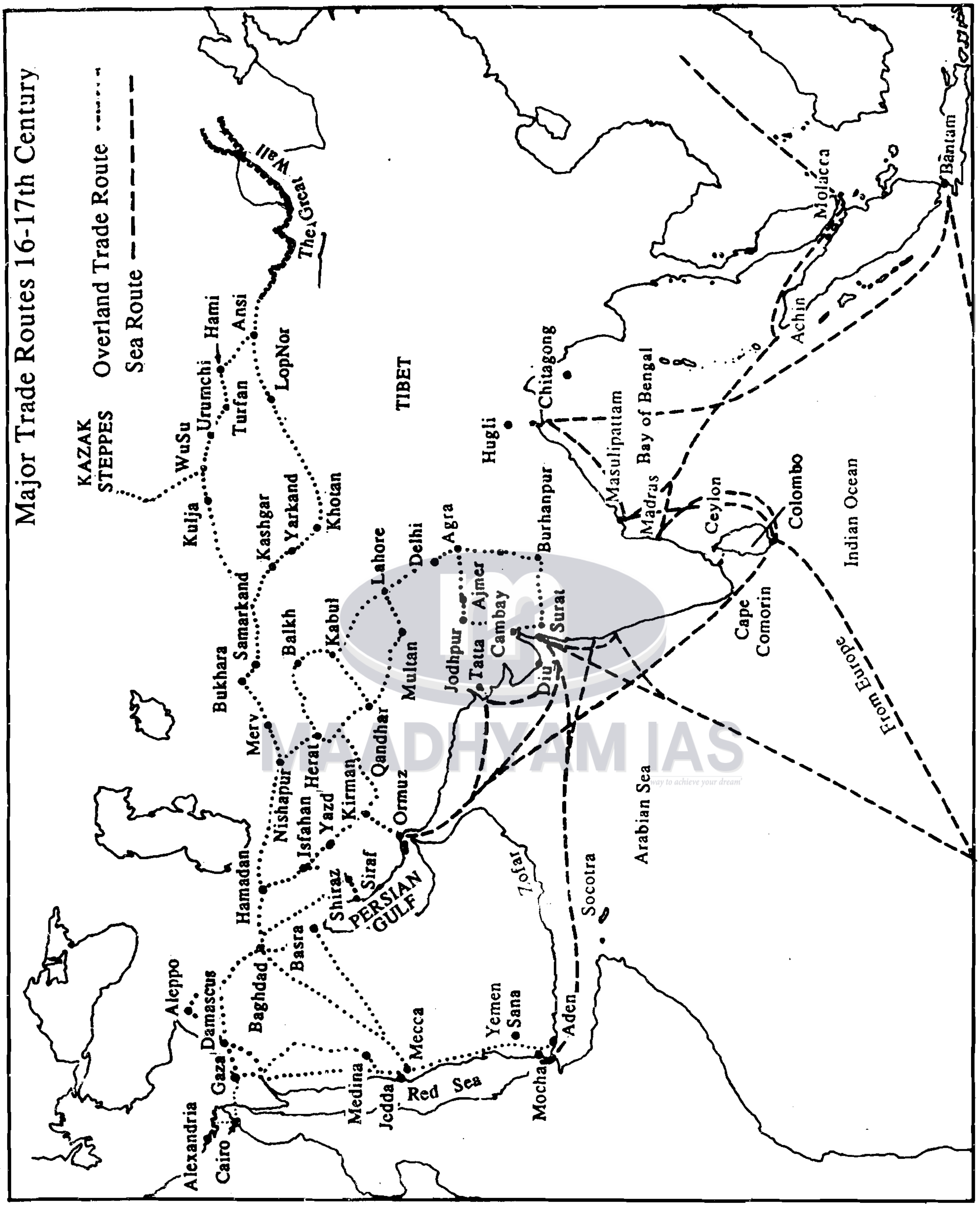
Major Trade Routes 16-17th Century
Overland Trade Route
Sea Route
KAZAK STEPPES
WuSu
Urumchi
Hami
Ansi
Turfan
LopNor
The Great Wall
TIBET
Kulja
Kashgar
Yarkand
Khotan
Bukhara
Samarkand
Balkh
Kabul
Lahore
Delhi
Agra
Merv
Herat
Qandhar
Multan
Jodhpur
Ajmer
Tatta
Cambay
Diu
Surat
Burhanpur
Hugli
Chitagong
Masulipattam
Madras
Bay of Bengal
Ceylon
Colombo
Cape Comorin
Indian Ocean
From Europe
Achin
Molucca
Bantam
Nishapur
Isfahan
Yazd
Kirman
Ormuz
Siraf
Shiraz
PERSIAN GULF
Hamadan
Baghdad
Basra
Aleppo
Damascus
Gaza
Alexandria
Cairo
Medina
Jedda
Mecca
Red Sea
Yemen
Sana
Mocha
Aden
Zofar
Socotra
Arabian Sea
MAADHYAM IAS

23.5 प्रशासन और व्यापार

मुगल सम्राट व्यापारिक गतिविधियों में रुचि लिया करते थे। वे व्यापार को बढ़ावा देते थे और समय-समय पर व्यापारियों को रियायतें देते थे।

सीमा शुल्क और सड़क कर :

इकाई 20 में हम पहले ही व्यापारियों पर लगाए गए सीमा शुल्क और सड़क कर की चर्चा कर चुके हैं। हम आपको यह बता देना चाहते हैं कि ये कर समय-समय पर बदलते रहते थे। कभी-कभी कुछ वस्तुओं पर सीमा शुल्क हटा दिया जाता था। उदाहरण के लिए जहांगीर ने काबुल और कांधार के साथ होने वाले व्यापार में कुछ वस्तुओं पर सीमा शुल्क हटा लिया था। गुजरात में पड़े अकाल के समय वहां कुछ वस्तुओं पर सीमा शुल्क हटा दिया गया था। 1659 ई. में गद्दी पर बैठने के बाद औरंगजेब ने खाद्यान्नों पर लगे कर और शुल्क हटा लिए।

समय-समय पर कई प्रकार की वस्तुओं पर कर और शुल्क हटा लिया जाता था। इस सन्दर्भ में कई राजकीय आदेश पारित किए जाते थे। सीमा शुल्क से छूट पाने के लिए सभी यूरोपीय कम्पनियां–ब्रिटिश, डच और फ्रांसीसी-सीमा शुल्क में छूट के लिए राजकीय आदेश प्राप्त करने के लिए निवेदन करती थीं। एक अवसर पर औरंगजेब ने सभी प्रकार का सड़क शुल्क समाप्त कर दिया। सम्राटों के राजकीय आदेशों के अनुसार व्यापार के प्रति राज्य उदारवादी दृष्टिकोण अपनाता था पर व्यवहार में स्थिति इससे अलग थी।

प्रशासन का दृष्टिकोण

प्रांतीय राज्यपाल, बाजार के अधिकारी और सीमा शुल्क अधिकारी ज्यादातर उदारवादी नीति लागू करने के मार्ग में बाधाएं उत्पन्न किया करते थे। वे हमेशा व्यापारियों से कुछ न कुछ वसूल करने की ताक में रहते थे। कभी-कभी वसूल की गई राशि अधिकारी अपने पास ही रख लेते थे। अधिकारियों द्वारा स्वयं व्यापार करने से स्थिति और भी उलझ जाती थी। कुलीन वर्ग के सदस्य और उच्चस्थ पदाधिकारी अक्सर कुछ वस्तुओं पर एकाधिकार स्थापित करने की कोशिश करते थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

शाहजहां के पुत्र राजकुमार शुजा व्यापार में खूब रुचि लेते थे। एक बड़े कुलीन मीर जुमला ने बंगाल में कुछ वस्तुओं पर अपना एकाधिकार स्थापित करने का प्रयत्न किया। अंग्रेजों ने पहले इसका विरोध किया पर अंततः उन्होंने शोरा उसी के माध्यम से लेना स्वीकार कर लिया। एक अन्य महत्वपूर्ण कुलीन शाइस्ता खां ने अंग्रेजों को बाध्य किया कि वे अपना माल और चांदी उसी को बेचें और उन्हें शोरा की असीमित आपूर्ति का आश्वासन दिया। शाइस्ता खां की प्रतिदिन की आय दो लाख रुपये होने का अनुमान था। उसका पुत्र बुजुर्ग उमेद खां भी बृहद पैमाने पर विदेशों से व्यापार करता था।

इन उच्चस्थ कुलीनों के अलावा मातहत पदाधिकारी भी व्यापार करते थे। वैधानिक तौर पर पदाधिकारियों और कुलीनों को व्यापार में हिस्सा लेने की मनाही नहीं थी। समस्या यह थी कि इस प्रतियोगिता में सत्ता में रहने वाले लोग दमन और शोषण का सहारा लेने लगते थे।

इन उच्चस्थ पदाधिकारियों के दमन के खिलाफ विदेशी कम्पनियों, व्यापारियों और व्यक्तियों की याचिकायें और प्रतिवेदन मिलते हैं। रियायत देने के संदर्भ में कई राजकीय आदेशों की भी जानकारी मिलती है। संचार के विकसित साधनों का अभाव और लंबी दूरी के कारण कई बार रियायतें लागू करने में विलंब हो जाता था और कभी-कभी तो ये आदेश लागू ही नहीं हो पाते थे। यह संघर्ष पूरे काल के दौरान चलता रहा। इन बाधाओं के बावजूद व्यापार बढ़ता रहा और कई देशों के व्यापारी यहां आकृष्ट होते रहे।

बोध प्रश्न 3

1) आगरा-अहमदाबाद और आगरा-ढ़ाका मार्ग में स्थित मुख्य शहरों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

2) भारतीय तट से यूरोप जाने वाले समुद्री मार्ग का विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

3) वाणिज्य संबंधी राजकीय आदेशों का पूर्ण रूप से पालन क्यों नहीं हो पाता था?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

23.6 सारांश

इस इकाई में हमने विवेच्य काल के देशी और विदेशी व्यापारिक गतिविधियों की चर्चा की है। स्थानीय और प्रांतीय स्तर पर अनाज, मोटे कपड़े, नमक, रोजमर्रा के सामानों आदि का व्यापार होता था। इन वस्तुओं की खरीद बिक्री हाटों या पेंठों के जरिए होती थी। छोटे शहरों के बाजार की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। इस मामले में हम पाते हैं कि वस्तुएं गांव से शहर लाई जाती थीं। भारत के विभिन्न प्रांतों के बीच व्यापारिक गतिविधियां काफी विकसित थीं। जमीन और नदी के रास्ते वस्तुएं एक जगह से दूसरी जगह ले जाई जाती थीं। तटीय प्रदेशों से समुद्र मार्ग के ज़रिए व्यापार होता था। पश्चिमी तट पर तटीय व्यापार ज्यादा सक्रिय था।

विदेश व्यापार का संतुलन भारत के पक्ष में था। एशिया और यूरोप के विभिन्न हिस्सों में भारतीय माल ले जाया जाता था। मुख्य रूप से कपड़ों, नील, शोरा, चीनी आदि का निर्यात किया जाता था। अंग्रेजों के आने के बाद विदेश व्यापार, खासकर नील और शोरा, में काफी वृद्धि हुई। भारत में आयात काफी सीमित था। चांदी, ऊनी कपड़ा और विलास की कई वस्तुओं का आयात किया जाता था।

मुगल प्रशासन व्यापार की सभी वस्तुओं पर कर और शुल्क लगाया करता था। मुगल शासक यूरोप की कम्पनियों को रियायतें दिया करते थे। मुगल कुलीन वर्ग के सदस्यों और

उच्चस्थ पदों पर आसीन पदाधिकारियों के व्यापार में संलग्न होने से बहुत बार व्यापारियों और यूरोपीय कम्पनियों को कठिनाई का सामना करना पड़ता था।

23.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) स्थानीय स्तर पर वस्तुओं के वितरण में हाटों और पेंठों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। यहां विनिमय की जाने वाली वस्तुओं के लिए 23.2.1 देखें।
2) पटना, अहमदाबाद, ढ़ाका, सूरत, आगरा, लाहौर आदि का उल्लेख कर सकते हैं। देखिए उपभाग 23.2.1
3) गुजरात में अहमदाबाद और सूरत सबसे बड़े वाणिज्यिक केंद्र थे जहां देश के सभी भागों से माल आता था। विस्तार के लिए 23.2.2 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) रेशम और सूती वस्त्र, शोरा, नील, चीनी आदि। देखिए भाग 23.3।
2) चांदी, कांच का सामान, छोटे अस्त्र और ऊनी वस्त्र आयात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएं थीं।

बोध प्रश्न 3

1) 23.4 में अंतर्देशीय व्यापार मार्ग देखिए और उत्तर दीजिए।
2) 23.4 में विदेश व्यापार मार्ग देखिए।
3) पदाधिकारियों और कुलीनों के भ्रष्टाचार और स्वयं व्यापार में भाग लेने के कारण राजकीय आदेशों का ईमानदारी से पालन नहीं हो पाता था। देखिए भाग 24.5

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 24 व्यापार के कार्मिक, और वाणिज्यिक गतिविधियां

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य
24.1 प्रस्तावना
24.2 व्यापार के कार्मिक
 24.2.1 व्यापारी
 24.2.2 महाजन और सर्राफ
 24.2.3 दलाल
24.3 वाणिज्यिक गतिविधियां
 24.3.1 हुंडी
 24.3.2 बैंकिंग
 24.3.3 सूदखोरी और ब्याज की दर
 24.3.4 भागीदारी
 24.3.5 बीमा
24.4 व्यापारी, व्यापारिक प्रतिष्ठान और राज्य
24.5 सारांश
24.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

24.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस काल के व्यापार में संलग्न व्यापारी वर्ग और वाणिज्यिक गतिविधियों के बारे में जान सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न प्रमुख व्यापारिक समुदायों के बारे में जान सकेंगे;
- वाणिज्य में **दलालों, सर्राफों** और **महाजनों** की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- **हुंडी**, वाणिज्यिक ऋण, ब्याज की दर और व्यापारिक भागीदारी जैसे पक्षों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

विवेच्य काल के अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार का आप पहले ही अध्ययन कर चुके हैं। देश में स्थानीय रूप से व्यापार करने वाले छोटे व्यापारी भी थे और समुद्र व्यापार में संलग्न बड़े व्यापारी भी मौजूद थे। पूरी वाणिज्यिक प्रक्रिया में, व्यापारियों के खास विशेषीकृत समुदाय, दलाल और सर्राफ विभिन्न स्तरों पर अपनी भूमिका निभाते थे।

बड़े पैमाने पर व्यापार होने के कारण कुछ मौजूद प्रथाएं और संस्थाएं मजबूत हुई और कुछ नये रूप सामने आए। बैंकिंग व्यवस्था, हुंडी और ऋण लेना तथा देना कुछ प्रमुख विशेषताएं थी। व्यापारिक भागीदारी और बीमा का भी प्रचलन था।

24.2 व्यापार के कार्मिक

इस भाग में हम भारतीय बाजारों में काम कर रहे व्यापारियों, सर्राफों, महाजनों और

दलालों पर विचार करेंगे। व्यापारिक गतिविधियों के बढ़ने से इन व्यवसायों की ओर काफी लोग आकृष्ट हुए। हालांकि उपर्युक्त व्यापारिक समुदायों का विभाजन बिल्कुल अलंध्य नहीं था। एक ही साथ एक व्यक्ति दो या अधिक भूमिकाएं निभा सकता था। यहां हम इस काल के व्यापार और वाणिज्य में इन समुदायों की अलग-अलग भूमिकाओं के आधार पर उनका अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

24.2.1 व्यापारी

सैद्धांतिक तौर पर वैश्यों से व्यापार करने की उम्मीद की जाती थी पर व्यवहार में अलग-अलग पृष्ठभूमि के लोग व्यापार में संलग्न पाये जाते हैं। अपने अध्ययन के इस काल में हम पाते हैं कि किसी खास प्रदेश में कुछ खास समुदायों और जातियों का वर्चस्व होता था। बंजारे : हमारे स्रोतों में व्यापारी समुदाय के रूप में बंजारों का उल्लेख मिलता है। ये एक क्षेत्र में गांवों के बीच और गांवों और शहर के बीच व्यापार करते थे, कभी-कभी ये अन्तर क्षेत्रीय स्तर पर भी व्यापार करते थे। वे ग्रामीण शहरी व्यापार की महत्वपूर्ण कड़ी थे। बंजारे अपनी व्यापारिक गतिविधियां अनाज, दाल, चीनी, नमक आदि वस्तुओं तक ही सीमित रखते थे। उनके पास बड़ी संख्या में पशु (खासकर सामान ढ़ोने के लिए बैल) होते थे और वे लोग घूम-घूम कर सामान बेचते और खरीदते थे। **तुजुक-ए-जहांगीरी** में जहांगीर कहता है "इस देश में बंजारा एक खास वर्ग है जिनके पास हजार के आसपास बैल होते हैं। वे गांव से शहर अनाज लाते हैं और सेना के साथ भी चलते हैं।" आमतौर पर बंजारे अपने परिवार और घर के सामान के साथ घूमते थे। इधर-उधर घूमते इनके इस समुदाय को टाण्डा कहते थे। प्रत्येक टाण्डा का एक प्रधान होता था जिसे नायक कहते थे। कभी-कभी एक टाण्डा में 600-700 लोग (महिलाओं और बच्चों को मिलाकर) होते थे और प्रत्येक के पास अपने बैले होते थे।

बंजारे हिंदू भी थे और मुसलमान भी। कुछ विद्वान उन्हें उनके द्वारा व्यापार की जाने वाली वस्तुओं, अनाज, दाल चीनी, नमक और लकड़ी के आधार पर विभाजित करते हैं।

बंजारे उत्तर भारत के कई भागों में व्यापार करते थे पर इसी प्रकार के और भी व्यापारी थे, जिन्हें दूसरे नामों से जाना जाता था। सिंध में इसी प्रकार का व्यापारी वर्ग कार्यरत था, जिसे नामधारी कहते थे। हिमालय और मैदानी इलाकों के बीच भोटिया नामक घुमंतु व्यापारी कार्यरत थे।

MAADHYAM IAS

विभिन्न प्रदेशों में व्यापारी

एक महत्वपूर्ण वैश्य उपजाति, बनिया उत्तर भारत और दक्खन का महत्वपूर्ण व्यापारी वर्ग था। वे हिंदु और जैन (मुख्य रूप से गुजरात और राजस्थान में) धर्म मानने वाले थे। पंजाब में खत्री और गोलकुंडा में कोरनाती भी इसी वर्ग के लोग थे।

बनिया शब्द, संस्कृत शब्द वणिक अर्थात् व्यापारी से गृहीत है। बनिया समुदाय अपने नाम के साथ उपनाम भी लगाया करता था जिससे उनके मूल स्थान का पता चलता था। अग्रवालों का मूल स्थान अमरोहा (अभी हरियाणा में) और ओसवालों का मारवाड़ में ओसी था। मारवाड़ के व्यापारियों की संख्या सबसे अधिक थी और इन्हें मारवाड़ी के नाम से जाना जाता था। वे देश के सभी हिस्सों में फैले हुए थे और हमारे अध्ययन काल के दौरान सर्वप्रमुख व्यापारी समुदाय था। इन व्यापारियों के बीच घनिष्ठ जातिगत बंधन था। इनकी अपनी परिषद् (महाजन) भी होती थी।

समकालीन यूरोपीय यात्रियों (लिनशोटेन 1538-39 टेवरनियर, 1640-67) ने बनियों की व्यापारिक निपुणता की दाद दी थी और उनके लेख बही संबंधी योग्यता की सराहना की थी।

पंजाब में खत्री प्रमुख व्यापारी समुदाय था। सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरू नानक भी खत्री थे। इनमें से कइयों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इस समुदाय में हिंदू भी थे, मुसलमान भी और सिख भी। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली, पंजाब और सिंध में

कार्यरत मुलतानी प्रमुख व्यापारी समुदाय था। हमारे अध्ययन काल (1550-1750) में भी उनका अक्सर उल्लेख मिलता है।

बोहरा गुजरात के महत्वपूर्ण व्यापारी थे। वे ज्यादातर मुसलमान थे। वे शहरी समुदाय थे और मुख्य तौर पर गुजरात और अन्य पश्चिमी इलाकों में बसे हुए थे। गुजरात के अलावा उज्जैन और बुरहानपुर में भी उनकी कुछ बस्तियां थीं। मुल्ला मुहम्मद अली और अहमद अली जैसे बोहरा व्यापारियों के पास लाखों रुपयों की सम्पदा थी। पश्चिमी तट पर व्यापार में संलग्न मुसलमान व्यापारी समुदायों में खोजाह और गुजरात के कच्छी (कच्छ के) मेमन भी प्रमुख थे।

दक्षिण भारत

इस उपमहाद्वीप के दक्षिणी भाग में कई व्यापारिक समुदायों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। चेटटी ऐसा ही एक समुदाय था। यह शब्द संस्कृत **श्रेष्ठी** (सेठ) से ग्रहीत है। संभवतः चेट्टी काफी धनाड्य व्यापारी थे। कोरोमंडल तट से लेकर उड़ीसा तक के व्यापारियों को क्लिंग के नाम से जाना जाता था। कोमती भी एक व्यापारी वर्ग था। वे मुख्यतः कपड़े के दलाल थे और देश के अंदरूनी इलाकों से बंदरगाहों तक माल लाने का काम करते थे। वे मुख्यतः तेलुगु भाषी थे।

चेटटी की तरह चूलिया भी एक व्यापारी समुदाय था जो चार उप समुदायों में विभक्त था। इनमें मरककयर सबसे धनाड्य व्यापारी थे और ये तटीय और दक्षिण-पूर्वी एशियाई व्यापार में संलग्न थे। यह काफी गतिमान समुदाय था और इनमें से कई श्रीलंका, मालदीव, मलक्का, जोहोर, जावा तट, स्याम और बर्मा जाकर बस गए थे। भारत में दक्षिण में, कोरोमंडल, मदुरा, ओउद्दालोर, पोर्टो नोवा, नागोल, नाग-पट्टणम, कोयलपट्टनम आदि स्थानों में सक्रिय थे। वे मुख्य रूप से वस्त्र, सुपारी, मसाले, अनाज, सूखी मछली, नमक, मोती और बहुमूल्य रत्नों का व्यापार करते थे।

कोरोमंडल से मालाबार और श्रीलंका तक छुर्तियन पारव नामक समुदाय व्यापार में सक्रिय था। तटीय व्यापार और दलाली में उन्हें विशेषज्ञता प्राप्त थी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

मुसलमानों में, गोलकुंडा मुसलमान समुद्रपारीय व्यापार में संलग्न थे। मद्रास के दक्षिण और बंगाल प्रदेश में बंगाल की खाड़ी में वे प्रमुख व्यापारी थे। भारतीय अरब मूल के मोपिल्ला मुसलमान भी इस क्षेत्र में कार्यरत महत्वपूर्ण व्यापारी थे।

मद्रास प्रदेश में गुजराती व्यापारी भी कार्यरत थे।

विदेशी व्यापारी

इस काल के लगभग सभी वाणिज्यिक केन्द्रों में विदेशी व्यापारियों की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है। इनमें यूरोपीय व्यापारियों की व्यापारिक गतिविधियों की चर्चा इकाई 23 में की जा चुकी है। अन्य विदेशी व्यापारियों में अरमेनियन सर्वप्रमुख हैं। वे कपड़े से लेकर तम्बाकू तक अनेक प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते थे। वे बंगाल बिहार और गुजरात में अधिक सक्रिय थे। खुरासानी, अरब और ईराकी भी अक्सर भारतीय बाजारों में काफी संख्या में आते रहते थे।

बोध प्रश्न 1

1) अंतर्देशीय व्यापार में बंजारों की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

2) भारत के विभिन्न भागों में कार्यरत चार व्यापारी समुदायों का नाम बताइए।

....

....

....

....

....

24.2.2 महाजन और सर्राफ

उत्तर भारत के बड़े भाग में परम्परागत व्यापारी गण व्यापार के साथ-साथ ब्याज पर रुपया भी देते थे। गांवों में परम्परागत बनिया, किसानों को, राजस्व का भुगतान करने के लिए भी उधार दिया करता था।

सर्राफ भी व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। उनके तीन कार्य थे: 1) मुद्रा विनिमयदाता; 2) बैंकर का काम करना; 3) सोना, चांदी और गहने के व्यापारी। यहां हम पहले दो कार्यों पर चर्चा करेंगे तीसरा कार्य किसी भी अन्य वस्तु के व्यापार की भांति ही था।

सर्राफ सिक्के की धातुगत शुद्धता और वजन के पारखी और विशेषज्ञ माने जाते थे। वे धातु की मुद्रा की विनियम दर भी निर्धारित करते थे। टैवेरनियर के अनुसार "भारत के किसी गांव में अगर बहुत सर्राफ न हो तो निश्चय ही एक काफी छोटा गांव होगा। वह बैंकर के रूप में लोगों के पैसे का लेन-देन करता था और हुंडियां भी जारी करता था।"

जैसा कि हमने इकाई 20 में अध्ययन किया है सर्राफ मुगल मुद्रा ढ़लाई व्यवस्था का भी एक अंग था। प्रत्येक टकसाल में एक सर्राफ होता था जो धातु की शुद्धता और ढ़लने के बाद सिक्के की शुद्धता की जांच करता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बैंकर के रूप में लोगों का वे धन सुरक्षित रखते थे और ब्याज पर ऋण देते थे। वे हुंडी जारी करते थे और दूसरों द्वारा जारी हुंडियों के बदले अपना कमीशन काट कर भुगतान भी करते थे (इस पक्ष पर हम इसी इकाई में आगे विस्तार के साथ विचार करेंगे)।

24.2.3 दलाल

भारत में तुर्की विजय के बाद के काल में दलाल एक विशेषीकृत वाणिज्यिक वर्ग के रूप में कार्यरत थे। वे विभिन्न वाणिज्यिक गतिविधियों और लेन-देन में मध्यस्थ के रूप में कार्य करते थे। अन्तर प्रान्तीय और विदेशी व्यापार के बढ़ने से उनकी भूमिका अपरिहार्य हो गई। दूर से आये हुए व्यापारी और विदेशी व्यापारी उन पर काफी निर्भर रहते थे। ए.जान. कैसर के अनुसार विदेशी व्यापारी यहां के उत्पादन के केन्द्र, विपणन की पद्धति और भाषा नहीं जानते थे। उन्हें इस सबके लिए स्थानीय दलालों पर निर्भर करना पड़ता था। भारत में दलालों की जरूरत कुछ कारणों से महत्वपूर्ण हो गई थी। वे इस प्रकार हैं:

1) एक ही वस्तु के उत्पादन के केन्द्र पूरे भारत में फैले हुए थे;
2) प्रत्येक केन्द्र का उत्पादन सीमित था (कुछ केन्द्र खास वस्तुओं का ही उत्पादन करते थे); और
3) एक ही बाजार में एक हीं वस्तु के काफी खरीददार होते थे। दलालों की सहायता से लेन-देन किए जाने के कई प्रमाण मिलते हैं।

इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के दस्तावेजों से पता चलता है कि उन्होंने अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में भी दलालों को नियुक्त किया था। फ्रायर (17वीं शताब्दी) के अनुसार दलाल के बिना देशी या विदेशी कोई भी व्यापारी व्यापार नहीं कर सकता था। ''ओविंग्टन (1690 ई.) ने भी टिप्पणी की है कि ''कम्पनी की वस्तुओं को बेचने और खरीदने के लिए बनिया जाति के दलालों को नियुक्त किया जाता था, जो वस्तुओं के मूल्य और गुणों के पारखी होते थे।''

मैनरीक (1640 ई.) बताता है कि पटना में लगभग 600 दलाल और मध्यस्थ थे। सूरत, अहमदाबाद, आगरा और अन्य तटीय शहरों और बड़े विणिज्यिक केंद्रों में उनकी संख्या अवश्य ही अधिक रही होगी।

विदेशी बंदरगाहों पर भी भारतीय दलाल मौजूद होते थे। वे गोम्बरून (बन्दर अब्बास) बसरा, बन्दर रिग आदि स्थानों में भी कार्यरत थे। कभी-कभी पूरा परिवार भागीदारी में दलाली का काम करता था। हमें भीमजी पारक, एक प्रमुख दलाल, के बारे में जानकारी मिलती है कि वह अपने भाइयों के साथ मिलकर दलाली का काम करता था। इस व्यापार के लाभ में उसके पास 8, कल्याणदास के पास 5, केस्सों और विटटलदास के पास 4-4 हिस्से थे।

ए. जान. कैसर दलालों को चार कोटियों में विभक्त करते हैं :

1) कम्पनी या व्यापारियों द्वारा नियुक्त दलाल केवल उनके लिए कार्य करते थे;
2) कई ग्राहकों के लिए स्वतंत्र रूप से काम करने वाले दलाल;
3) वे जो तदर्थ आधार पर दलाल ठेकेदार के रूप में काम करते थे; और
4) वाणिज्यिक केंन्द्रों पर खरीद और बिक्री को पंजीकृत करने के लिए राज्य द्वारा नियुक्त दलाल।

वस्तुओं की विशेषता के आधार पर स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे दलालों को कई समुदायों में विभक्त किया जा सकता है। कई दलाल किसी एक वस्तु की ही दलाली किया करते थे और इसके विशेषज्ञ माने जाते थे जैसे रेशम, शोरा, सूती कपड़ा, नील आदि। कुछ दलाल एक से अधिक वस्तुओं की दलाली करते थे। कुछ दलाल प्रतिष्ठित दलालों के उप दलाल या मातहत दलाल के रूप में कार्य करते थे।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

दलालों का शुल्क या कमीशन नियत नहीं होता था। यह वस्तु विशेष, सौदा तय करने में दलाल के परिश्रम या वस्तु प्राप्त करने में लगे श्रम आदि पर निर्भर करता था। आम लेनदेन में दलाली कुल मूल्य का दो प्रतिशत होती थी। प्रत्येक पक्ष (बेचने वाला और खरीददार) से एक प्रतिशत की दर से शुल्क वसूला जाता था।

नियमित रूप से नियुक्त दलालों को नियत वेतन और लेनदेन में कुछ कमीशन भी मिलता था। हमें उनकी कुल आय का पता नहीं है। हालांकि इंग्लिश कम्पनी के कुछ दस्तावेजों को देखने से पता चलता है कि उनके दलालों को 10 रुपये से 38 रुपये प्रतिमाह की दर से वेतन दिया जाता था।

अपने ग्राहकों से माल लेने और बेचने के अलावा दलाल उत्पादन की प्रक्रिया और संगठन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। व्यापारियों द्वारा कारीगरों को दी जाने वाली अधिकांश अग्रिम राशि इन दलालों के माध्यम से ही दी जाती थी।

बोध प्रश्न 2

1) सर्राफों की विभिन्न भूमिकाओं पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

2) दलाल कौन थे? विभिन्न प्रकार के दलालों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

24.3 वाणिज्यिक गतिविधियां

इस भाग में हम इस काल के व्यापार और वाणिज्य से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों पर विचार करेंगे।

24.3.1 हुंडी

इस काल में **हुंडी** मुद्रा विनिमय का प्रमुख साधन हो गई थी। **हुंडी** कागज पर लिखा एक वचन पत्र होता था जिसके द्वारा किसी निर्धारित समय और स्थान पर लिखी गई राशि देने की व्यवस्था की जाती थी। इस प्रथा का आरंभ वाणिज्यिक कार्यों के लिए मुद्रा के रूप में अधिक धन को लेकर जाने वालों के खतरे को ध्यान में रखकर हुआ। व्यापारी अपनी राशि किसी खास स्थान पर **सर्राफ** के पास जमा कराकर **हुंडी** ले लिया करते थे। व्यापारी अपने गंतव्य स्थान पर यह **हुंडी** सर्राफ के प्रतिनिधि को देकर अपनी राशि वापस ले सकता था। इससे धन का स्थानांतरण आसान और सुरक्षित हो गया। शनैः शनैः **हुंडी** स्वयं लेनदेन का आधार बन गयी। किसी लेनदेन में इसे प्रस्तुत किया जा सकता था। इसे अनुमोदित करने के बाद बाजार में बेचा या खरीदा जा सकता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इरफान हबीब के अनुसार "**हुंडी** के लेन-देन का इतना अधिक प्रचलन हो गया कि अक्सर व्यापारिक लेनदेन में नगद भुगतान के स्थान पर **हुंडी** ली और दी जाने लगी।" इस प्रक्रिया में यह भुगतान का माध्यम बन गई।

हुंडी का प्रयोग इतना व्यापक था कि राजकोष और राज्य भी इसका उपयोग करते थे। इसके कई उदाहरण मिलते हैं। 1599 में राजकोष ने दक्कन में सेना को 3,00,000 रुपये **हुंडी** के द्वारा भेजे। गोलकुंडा (10,00,000 रुपये) और घक्कर के शासक (50,000 रुपये) ने मुगल बादशाह को अपना नजराना **हुंडी** के रूप में भेजा।

हमें इस बात के भी सबूत मिले हैं कि प्रांतीय पदाधिकारियों को **हुंडियों** के जरिए राजस्व स्थानान्तरित करने का निर्देश दिया जाता था। यहां तक कि वरिष्ठ कुलीन भी अपने व्यक्तिगत धन के स्थानान्तरण के लिए **सर्राफों** की सहायता लेते थे। बिहार के राज्यपाल मुकर्रब खां ने पटना से आगरा स्थानान्तरित होते समय पटना के **सर्राफ** को 3,00,000 रुपये आगरा पहुंचाने के लिए दिए थे।

सर्राफ के अतिरिक्त कई बड़े व्यापारी भी **हुंडी** जारी करते थे। प्रमुख वाणिज्यिक स्थानों पर इन व्यापारियों और **सर्राफों** के प्रतिनिधि रहा करते थे। कभी-कभी एक परिवार के सदस्य (पिता, पुत्र, भाई, भतीजा) एक दूसरे के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते थे। बड़े प्रतिष्ठानों के प्रतिनिधि विदेशों में भी होते थे।

सर्राफ प्रत्येक **हुंडी** के लिए शुल्क लिया करता था। विनिमय के कमीशन की दर सूद की दर और विनिमय अवधि पर निर्भर करती थी। **हुंडी** जारी करने से **हुंडी** वापस करके राशि वापस लेने तक के दिन की अवधि गिनी जाती थी। **हुंडी** जारी करने और इसके परिपक्व

होने के समय मुद्रा की उपलब्धता के आधार पर भी दर ऊपर नीचे होती रहती थी। अगर मुद्रा की उपलब्धता अच्छी होती थी तो दर गिर जाती थी। अभाव की स्थिति में दर ऊंची हो जाती थी। इरफान हबीब के अनुसार, "एक स्थान पर ज्यादा भुगतान करने पर सर्राफ के पास नगद की कमी हो जाती थी और दूसरे स्थान पर नगद की उपलब्धता ज्यादा हो जाती थी। इस स्थिति में जहां नगद की कमी होती थी वहां नगद लेने को प्रोत्साहित किया जाता था और जहां नगद की उपलब्धता ज्यादा होती थी वहां नगद देने को प्रोत्साहित किया जाता था। इसके कारण विनिमय दर में भी परिवर्तन होता रहता था।"

एक सामान्य जानकारी के लिए यहां कुछ विनिमय दरों का उल्लेख किया जा रहा है। आमतौर पर पटना से आगरा की हुंडी के लिए 1½ प्रतिशत और पटना से सूरत के लिए 7-8 प्रतिशत शुल्क लिया जाता था। 1622 में अहमदाबाद से बुरहानपुर के लिए हुंडी शुल्क 7¼ प्रतिशत था।

24.3.2 बैंकिंग

सर्राफ हुंडी जारी करने के साथ-साथ अपने पास दूसरों की राशि भी जमा करते थे। जमाकर्ता की मांग पर यह राशि उसे वापस दे दी जाती थी। जमाकर्ता को जमा राशि पर ब्याज भी मिलता था। जमाकर्ता को दी जाने वाली ब्याज की दर बदलती रहती थी। 1645 ई. में आगरा में और 1630 ई. में सूरत में ब्याज की दर साढ़े नौ प्रतिशत प्रति वर्ष थी। बैंकर जमा राशि का उपयोग अधिक ब्याज पर ऋण देकर किया करता था। ऐसे कई हवाले मिले हैं जहां राज्य अधिकारी राजकोष से इन बैंकरों को राशि दिया करते थे। बंगाल के जगत सेठ के बारे में लिखते हुए तपन राय चौधरी कहते हैं कि "उसकी भौतिक समृद्धि का मूल कारण यह था कि वे बंगाल राजकोष के धन का उपयोग करने की स्थिति में थे और इस धन को ब्याज पर दे सकते थे।"

सुजान राय के (1694 ई.) अनुसार लेन-देन में सर्राफ ईमानदार होते थे। यहां तक कि अनजान आदमी भी उनके पास हजारों रुपये जमा करके निश्चिंत हो सकता था और आवश्यकता के समय वापस ले सकता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

24.3.3 सूदखोरी और ब्याज की दर

व्यक्तिगत जरूरतों और वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए पैसा उधार लेने का आम प्रचलन था। अधिकांश व्यापार ब्याज पर लिए पैसे से ही होता था। आमतौर पर सर्राफ और व्यापारी दोनों ही पैसा उधार देने का काम करते थे। कभी-कभी पैसा उधार देने का काम एक अलग कोटि का वाणिज्यिक वर्ग करता था जिन्हें साह कहा जाता था। ऋण विभिन्न उद्देश्यों के लिए लिया जाता था। किसान राजस्व के भुगतान के लिए ऋण लिया करते थे और कटाई के समय ऋण चुकाया करते थे। कुलीन और जमींदार अपने रोजमर्रा के खर्च के लिए ऋण लिया करते और राजस्व वसूली के समय भुगतान किया करते थे। व्यापारिक उद्देश्यों के लिए ऋण लेना भी आम बात थी।

कम ऋणों पर सूद की दर के निर्धारण के बारे में जानना जरा मुश्किल है। यह व्यक्ति की जरूरत, बाजार में उसकी साख और सौदेबाजी करने की उसकी शक्ति पर निर्भर करता था। तपन राय चौधरी के अनुसार 18वीं शताब्दी में बंगाल के किसान 150 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से भी ऋण लिया करते थे। वाणिज्यिक ऋण पर अलग-अलग प्रांतों में अलग-अलग ब्याज दर होती थी। हमारे स्रोतों में प्रति महीने की दर से ब्याज का उल्लेख मिलता है। इरफान हबीब के अनुसार प्रति महीने की दर से ब्याज के उल्लेख का मतलब था कि ऋण अल्प-अवधि के लिए लिया और दिया जाता था।

1620-21 में पटना में सूद की दर व प्रतिशत प्रतिवर्ष होने का उल्लेख मिलता है। 1680 के आसपास यह 156 प्रतिशत से भी अधिक हो गया मालूम होता है। 1679 ई. में कासिमबाजार में प्रचलित सूद की दर प्रतिवर्ष 15 प्रतिशत बताई गई है जबकि इसी समय यह दर मद्रास में 8 प्रतिशत और सूरत में 9 प्रतिशत थी। ब्रिटिश कम्पनी के प्रतिष्ठान

ब्याज की दर पर नजर लगाए रखते थे और जिस प्रांत में ब्याज की दर कम होती थी उस प्रांत से ऋण लेकर यह राशि दूसरे प्रांतों में भेज दिया करते थे। 17वीं शताब्दी के दौरान आगरा और सूरत में ब्याज की दर प्रतिवर्ष 6 से 12 प्रतिशत थी। कोरोमंडल तट पर यह दर 18 प्रतिशत से 36 प्रतिशत तक थी।

विभिन्न स्थानों पर ब्याज की दर की भिन्नता साबित करती है कि उस समय तक वित्तीय बाजारों का एकीकरण नहीं हो सका था।

पोत बंधक ऋण

लंबी दूरी के समुद्री व्यापार में कई प्रकार की अनिश्चिताएं और खतरे थे। इन अनिश्चितताओं के कारण पोत बंधक ऋण की शुरुआत हुई। यह एक प्रकार का सट्टेबाजी निवेश था जो उस काल में काफी प्रचलित था। इसमें ब्याज की दर 14 से 60 प्रतिशत तक होती थी। यह राशि किसी खास स्थान को जा रहे जहाज में निवेशित की जाती थी। ब्याज की दर यात्रा विशेष के खतरे पर निर्भर करती थी। यात्रा या सभी खतरों और नुकसान से ऋणदाता ही प्रभावित होता था।

24.3.4 भागीदारी

भागीदारी में व्यापारीगण अपने संसाधनों को एक साथ मिलाकर व्यापार करते थे। कुछ लोग मिलकर व्यापार की योजनाएं बनाया करते थे। अकबर के शासनकाल में दो कुलीनों **नवाब कुतुब खां और नवाब किलिच खां** ने जहाज बनवा कर संयुक्त रूप से व्यापार किया था। बनारसीदास ने 1611-16 ई. में जवाहरात के व्यापार में अपने भागीदार का उल्लेख किया है। यहां तक कि दलाल भी भागीदारी में काम करते थे। 1662 में दो दलाल छोटा ठाकुर और सूरत के सामजी ने संयुक्त रूप से फ्लावर नामक एक जहाज हासिल किया और उसे यात्रा के लिए सुसज्जित किया। कभी-कभी दलाल भी संयुक्त रूप से व्यापार करते थे।

24.3.5 बीमा

MAADHYAM IAS

उस समय सीमित रूप में बीमा नामक वाणिज्यिक प्रथा भी भारत में प्रचलित थी। कई मामलों में सर्राफ माल को सुरक्षित रूप से पहुंचाने की जिम्मेदारी ले लेते थे। अंग्रेजी कम्पनी के दस्तावेजों में भी अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार में वस्तुओं के बीमा का उल्लेख मिलता है। समुद्र में जहाज और उस पर लदे सामान दोनों का बीमा होता था। कारखाने के दस्तावेजों में बीमा दर का उल्लेख भी मिलता है। 18वीं शताब्दी तक यह प्रथा अच्छी तरह स्थापित हो चुकी थी और सब जगह प्रचलित थी। विभिन्न गंतव्य स्थानों के लिए और विभिन्न वस्तुओं के लिए बीमा दरों का भी उल्लेख किया गया है। समुद्र के रास्ते जाने वाले माल की बीमा दर जमीन के रास्ते जाने वाले माल की बीमा दर से ज्यादा थी।

24.4 व्यापारी, व्यापारिक प्रतिष्ठान और राज्य

हम इकाई 20 और 23 में पढ़ चुके हैं कि राज्य द्वारा विभिन्न व्यापारिक गतिविधियों पर कर लगाया जाता था। माल इधर-उधर ले जाने के लिए भी व्यापारियों को कर और चुंगी देनी पड़ती थी। राज्य की कुल आय में इन स्रोतों से होने वाली आय भू-राजस्व की तुलना में काफी कम थी।

शहर वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र होते थे। अतः प्रशासनिक अधिकारी इस बात का ख्याल रखते थे कि व्यापारिक गतिविधियों में कोई अड़चन न आए। कानून और व्यवस्था तथा शांति और सुरक्षा से बेहतर व्यापारिक माहौल बनता था। यह जिम्मेदारी कोतवाल और शहर में मौजूद उसके कर्मचारियों की थी।

रोजमर्रा के कामकाज, व्यापार से संबंधित नियम और कायदे व्यापारिक समुदाय स्वयं बनाया करता था। व्यापारियों की अपनी श्रेणियां और संगठन होते थे जो नियम बनाते थे। हमारे स्रोतों में इस प्रकार के संगठनों का उल्लेख मिलता है। गुजरात में इन्हें **महाजन** कहा जाता था। 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हम अहमबाद में 53 महाजनों का उल्लेख पाते हैं। एक खास इलाके और खास वस्तु के व्यापार करने वाले व्यापारी अपने को **महाजन** में संगठित करते थे। इसमें कोई जातिगत बंधन नहीं होता था। कभी-कभी बड़े व्यापारियों के लिए भी महाजन शब्द का प्रयोग संभवतः इसलिए होता था क्योंकि वे अपने संगठन के प्रधान हुआ करते थे। व्यावसायिक वर्गों के कई जाति आधारित संगठन भी मौजूद थे।

शहर के सबसे प्रभुत्वशाली और धनाड्य व्यापारी को **नगर सेठ** कहा जाता था। कभी-कभी यह पद अनुवांशिक भी माना जाता था। **नगर सेठ** राज्य और व्यापारिक समुदाय के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता था। व्यापारियों के बीच के मतभेदों और झगड़ों को सुलझाने में महाजन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। आमतौर पर उसके निर्णय का सम्मान किया जाता था। मुगल प्रशासन ने भी इन महाजनों को मान्यता प्रदान की और मतभेद तथा संघर्ष की स्थिति में उनकी सहायता ली। अक्सर प्रशासनिक नीतियों के लिए भी उनकी मदद मांगी जाती थी। व्यापारिक संगठन मजबूत हुआ करते थे और शहर और बंदरगाहों में अधिकारियों के अत्याचारों या दुर्व्यवहार का विरोध किया करते थे। प्रशासनिक कार्यवाहियों के खिलाफ व्यापारिक संगठनों द्वारा हड़ताल (व्यापारिक प्रतिष्ठानों और दुकानों को बंद करना) किए जाने का भी कई जगह उल्लेख मिलता है। राजस्व में बहुत नुकसान के कारण प्रशासकों को इस संयुक्त विरोध के आगे अक्सर झुकना पड़ता था। एक ऐसा ही गंभीर संघर्ष 1669 ई. में सूरत में हुआ। यहां नये राज्यपाल के अत्याचार के विरोध में व्यापारियों ने अपने परिवार समेत (लगभग 8000 लोग) सूरत छोड़ दिया। वे भड़ौंच में बस गए और सम्राट औरंगजेब के पास याचिका भेजी। पूरे शहर की व्यापारिक गतिविधि ठप्प पड़ गई। सम्राट ने शीघ्रता से हस्तक्षेप किया और समस्या को सुलझाया।

1639 ई. में शाहजहां ने सूरत के एक बड़े व्यापारी वीरजी वोहरा को सूरत के राज्यपाल के विरुद्ध व्यापारियों की शिकायतें सुनने के लिए बुलाया। उत्तराधिकार के लिए हो रहे युद्ध के समय शाहजहां के बेटे मुराद ने अहमदाबाद के नगर सेठ शांतिदास के माध्यम से 5,50,000 रुपये उगाहे थे। मुराद की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने इसके भुगतान की जिम्मेदारी ली।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इतनी विशाल सम्पदा (कहा जाता है कि वीरजी वोहरा अपनी मृत्यु के समय 80,00,000 रुपये की सम्पत्ति छोड़ गया था) के बावजूद व्यापारी राजनीति में ज्यादा रुचि नहीं लेते थे।

व्यापारी दरबार की राजनीति से दूर रहते थे पर सामंत वर्ग व्यापार में हिस्सा लेता था। कई बड़े सरदार व्यापार में मुनाफा कमाने के लिए अपने पद का सहारा लेते थे।

शाइस्ता खां ने कई वस्तुओं, खासकर शोरा, पर एकाधिकार स्थापित करने की कोशिश की। मीर जुमला एक हीरा व्यापारी था। निचले स्तर के अधिकारी भी व्यापारिक गतिविधियों में शामिल थे और ज़ोर-जबरदस्ती का रास्ता अपनाते थे। अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार संबंधी इकाई में भी कुलीनों के व्यापार में शामिल होने के पक्ष पर विचार किया गया है।

बोध प्रश्न 3

1) **हुंडी** पर पांच पंक्तियां लिखिए :

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर तीन पंक्तियां लिखिए :

i) ब्याज की दर :

....

....

....

ii) बीमा :

....

....

....

....

iii) व्यापारियों के व्यावसायिक संगठन पर पांच पंक्तियां लिखिए :

....

....

....

....

....

24.5 सारांश

इस इकाई में हमने व्यापार में संलग्न कई विशेषीकृत समुदायों की गतिविधियों का अध्ययन किया। प्रांतीय और अंतर्प्रांतीय स्तर पर कई वस्तुओं के व्यापार में बंजारों की भूमिका महत्वपूर्ण होती थी। वे अपने पशुओं के साथ घूम-घूम कर व्यापार करते थे और मुख्य रूप से अनाज, नमक, चीनी आदि की खरीद बिक्री करते थे।

देश के विभिन्न हिस्सों में कई प्रकार के व्यापारिक समुदाय और जातियां मौजूद थीं। बनिया, वोहरा, खत्री, चेट्टी, कोमाति, आदि प्रमुख व्यापारी समुदाय थे। विदेशी व्यापारियों में अंग्रेज, डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, अरमेनियन, खुरासानी और इराकी प्रमुख थे।

दलाल, सर्राफ और महाजन विशेषीकृत वाणिज्यिक समुदाय थे। हुंडी और ऋण देने की प्रथा पूर्ण रूप से विकसित थी। ब्याज की दर कुछ अधिक थी।

व्यापारिक श्रेणियां और संगठन पूर्ण रूप से स्थापित थे। व्यापारिक और वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए आमतौर पर वे ही नियम और कानून बनाया करते थे।

24.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) बंजारे मुख्य रूप से अनाज, नमक, चीनी आदि का व्यापार करते थे। वे बड़े समुदाय में रहते थे। विस्तार के लिए 24.2.1 उपभाग देखिए।

मारवाड़ी, वोहरा, मुल्तानी, चेटटी, कोमाति आदि विभिन्न व्यापारिक समुदाय थे। इनके कार्यक्षेत्र के लिए 24.2.1 उपभाग देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) **सर्राफ** मुद्रा विनिमयकर्ता, ऋणदाता के रूप में कार्य करते थे और सिक्के की शुद्धता की जांच करते थे। देखिए उपभाग 24.4.2

2) वाणिज्यिक लेनदेन में **दलाल** मध्यस्थ की भूमिका निभाता था। विभिन्न कोटियों के लिए उपभाग 24.2.4 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) **हुंडी** धन स्थानांनतरित करने का एक आसान और सुरक्षित माध्यम था। विस्तार के लिए उपभाग 24.3.1 देखिए।

2) दोनों प्रथाओं के लिए उपभाग 24.3.3 और उपभाग 24.3.5 देखिए।

3) अपने हितों की रक्षा के लिए व्यापारी अपना संगठन बनाते थे और अपने नियम एवं कानून स्वयं बनाते थे। विस्तार के लिए देखिए भाग 24.4.1

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 25 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियां

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियां और भारत : 1600-1750
- 25.2.1 डच ईस्ट इंडिया कम्पनी
- 25.2.2 इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी
- 25.2.3 फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी
- 25.2.4 अन्य यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियां

25.3 कारखाने और उनका संगठन
- 25.3.1 डच
- 25.3.2 इंग्लिश
- 25.3.3 फ्रांसीसी

25.4 यूरोपीय कम्पनियों का अपने पैतृक देश से सम्पर्क और उनका नियंत्रण
- 25.4.1 डच
- 25.4.2 इंग्लिश
- 25.4.3 फ्रांसीसी

25.5 भारतीय शासक और यूरोपीय कम्पनियां
- 25.5.1 डच
- 25.5.2 इंग्लिश
- 25.5.3 फ्रांसीसी

25.6 सारांश
25.7 शब्दावली
25.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

25.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के विकास और प्रसार को रेखांकित कर सकेंगे;
- यूरोपीय कारखानों और उनके आंतरिक संगठन की पद्धति के बारे में जान सकेंगे;
- यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों पर उनके राज्यों द्वारा नियंत्रण की प्रकृति को जान सकेंगे; और
- इन व्यापारिक कम्पनियों के प्रति भारतीय शासकों के रवैये और दृष्टिकोण का उल्लेख कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम विवेच्य काल के अंत तक भारत में स्थित यूरोपीय बस्तियों, भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के कारखानों के संगठन और उनके अपने पैतृक देश और मुगल शासकों एवं भारतीय राजाओं के साथ संबंधों पर विचार करेंगे। खंड 1 की इकाई 4 में हम भारत में पुर्तगालियों की व्यापारिक गतिविधियों की प्रकृति, अवस्थिति और संगठन पर विस्तार से विचार कर चुके हैं। यहां यूरोपीय कम्पनियों और भारतीय राजाओं के बीच हुए सशस्त्र संघर्षों का भी विवरण नहीं प्रस्तुत किया

गया है। (इसके लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम 05 देखिए)। यूरोपीय कम्पनियों के व्यापारिक हितों से जुड़े मुद्दों की चर्चा इस खंड की इकाई 23 में की जा चुकी है।

यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों के उदय से यूरोप की "एकीकृत एकल अर्थव्यवस्था" टूट गई। इसके साथ-साथ यूरोप में कृषि और औद्योगिक क्रांति का आगमन हुआ। वाणिज्यवाद ने भी अपनी भूमिका निभाई। इन सब कारणों से नये बाजार की खोज की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। घरेलू बाजारों में माल की खपत की एक सीमा थी और खपत बढ़ाने के लिए विदेशी बाजार ही एकमात्र सहारा था। हालांकि आप इकाई 4 में पढ़ चुके हैं कि पूर्वी समुद्र पर वेनिस और जेनेवा के व्यापारियों का व्यापारिक एकाधिकार था। यूरोपीय व्यापारी उनके एकाधिकार को तोड़ने की जोरदार कोशिश कर रहे थे और पूर्व की ओर वैकल्पिक मार्ग ढूंढने का भी प्रयत्न किया जा रहा था। जहाज निर्माण और जलमार्गीय तकनीकों में अभूतपूर्व प्रगति के कारण यह संभव था। इस प्रयास के कारण अंततः आशा अन्तरीप के रास्ते पूर्व की ओर समुद्री रास्ता खोज निकाला गया। इससे समुद्र पर यूरोपीय देशों का एकाधिकार स्थापित हुआ—पहले पुर्तगाली हावी रहे और बाद में अन्य यूरोपीय शक्तियों (इंग्लिश, डच और फ्रांसीसी) ने अपना वर्चस्व कायम किया।

आप जानेंगे कि 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत इन यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के युद्ध का अखाड़ा बन गया (अधिक जानकारी के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम 05 पढ़िए)। पुर्तगालियों, डच, इंग्लिश और फ्रांसीसियों के अतिरिक्त कुछ अन्य यूरोपीय राष्ट्र भी पूर्वी व्यापार में रुचि लेते थे। परंतु उनकी व्यापारिक गतिविधियां सीमित थीं।

25.2 यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियां और भारत : 1600-1750

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

प्रस्तुत भाग में हम भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के आगमन और उनके विकास पर विचार करेंगे। इस अंश में उनके हितों के टकराव और उनके तथा भारतीय शासकों के बीच सशस्त्र संघर्ष का भी विश्लेषण किया जाएगा।

25.2.1 डच ईस्ट इंडिया कम्पनी

1602 ई. में एक चार्टर द्वारा डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की गई। आरंभ में डच व्यापारियों ने मसालों के व्यापार में रुचि दिखाई। इसलिए उन्होंने सुदूर पूर्व में अपना ध्यान ज्यादा केन्द्रित किया। उनके लिए भारत एक व्यापारिक डिपो मात्र था। उन्होंने 1606 ई. में अपना पहला कारखाना उत्तरी कोरोमंडल में पेटापूली में स्थापित किया, इसी वर्ष उन्होंने मसूलीपट्ठम में दूसरा कारखाना लगाया। धीरे-धीरे उन्होंने महसूस किया कि मसाला द्वीप (इंडोनेशिया द्वीपसमूह) से मसाले के बदले कपड़े का विनिमय लाभदायक होगा। अतः उन्होंने भारत में क्षेत्रीय विस्तार की नीति अपनानी शुरू कर दी। उन्होंने पूलिकट (1610 ई.), कैम्बे (1620 ई.), सूरत और आगरा (1621 ई.), हरिहरपुर (1633 ई.), पटना (1638 ई.), ढाका (1650 ई.), उदयगंज (1651 ई.), चिनसूरा (1653 ई.), कासिम बाजार, बरानगर, बालासोर तथा नेगापट्टम (1659-60 ई.), में अपने कारखाने स्थापित किए।

गोलकुंडा के अंदरूनी इलाकों में भी उन्होंने अपने कारखाने स्थापित किये थे—एक नागलवानचा और दूसरा गोलकुंडा में। नागलवानचा में 1670 ई. में कारखाना स्थापित किया गया था परंतु राजनैतिक अस्थिरता के कारण 1680 ई.के दशक में इसे हटा लिया गया। गोलकुंडा में उन्होंने 1662 ई. में कारखाना लगाया। परंतु यहां भी राजनैतिक गड़बड़ी (मुगल-गोलकुंडा संघर्ष, 1684-87 ई.) के कारण उन्हें 1684 ई. में गोलकुंडा से भी अपना कारखाना हटाना पड़ा। 1675 ई. तक हुगली के महत्व में काफी वृद्धि हो चुकी

थी जिससे पिपली (उड़ीसा के समुद्रतट पर स्थित) डच कारखाने का महत्व घट गया और अंततः 1675 ई. में उन्होंने यह स्थान छोड़ दिया। इसी प्रकार स्थानीय राजा द्वारा सशस्त्र आक्रमण करने के कारण ढाका और उदयगंज स्थित डच कारखानों को भी हटाना पड़ा। डचों ने बंगाल प्रांत में दो कारखाने 1669 ई. में खानकुल और 1676 ई. में मालदा में स्थापित किए। परंतु जल्दी ही दोनों कारखानों को बंद करना पड़ा।

डचों की बढ़ती शक्ति को अंग्रेजों ने अपने हितों के लिए खतरनाक समझा। जब अंग्रेजों ने मसूलीपट्टम में अपना कारखाना लगाया और पेटापूली में अपनी व्यापारिक गतिविधियां आरंभ कीं तो डचों की यह भरसक कोशिश रही कि पूलीकट के व्यापार में अंग्रेजों को कोई हिस्सा न मिले। हितों का यह संघर्ष जारी रहा। हालांकि 1619 ई. में डच और अंग्रेजों के बीच एक समझौता हुआ कि दोनों मिलकर भारत में व्यापार करेंगे। अंग्रेजी कम्पनी को इस शर्त पर पूलीकट के व्यापार में हिस्सा लेने की अनुमति दी गयी कि वे डच किले और वहां की सेना का आधा खर्च वहन करेंगे। परंतु यह समझौता ज्यादा दिन तक कायम न रह सका। 1623 ई. और पुनः 1653-54 ई. में डचों ने अंग्रेजों के जहाजों पर हमला किया। 1672-74 ई. के बीच डचों ने एक बार फिर सूरत और बम्बई में स्थित अंग्रेजी प्रतिष्ठानों में बाधा पहुंचाने की कोशिश की और बंगाल की खाड़ी में अंग्रेजी जहाजों पर कब्जा कर लिया। अंग्रेजों ने पूर्वी द्वीपों पर डचों के वर्चस्व को महसूस किया। अतः उन्होंने उन्हें भारतीय भूमि से भगाने का निर्णय किया। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए अंग्रेजों ने भारत में पुर्तगालियों से हाथ मिलाये। अंततः वे उन्हें बेदारा (1759 ई.), के युद्ध में हराने में सफल हुए। इससे भारत में पुर्तगालियों की शक्ति को गहरा धक्का लगा। उसके बाद डचों ने भारत में अपने को "देशी व्यापार" तक ही सीमित रखा। 1773 ई. में उन्होंने नागौर और नेगापट्टम स्थित बचे-खुचे डच अड्डे को भी छोड़ दिया। 1795 ई. तक अंग्रेजों ने डचों को भारत से पूरी तरह निष्कासित कर दिया। यहां तक कि आशा अन्तरीप में भी उनके प्रभाव में कमी और अंग्रेजों के वर्चस्व में वृद्धि हुई।

25.2.2 इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी

MAADHYAM IAS

1599 ई. में पूर्व के साथ व्यापार करने के लिए "साहसी व्यापारियों का इंग्लिश संगठन" बनाया गया। इस कम्पनी (ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम से प्रसिद्ध) को 31 दिसम्बर 1600 ई. को रानी एलिजाबेथ ने पूर्व में एकाधिकार व्यापार का राजकीय चार्टर प्रदान किया। 1608 ई. में अंग्रेज व्यापारियों ने सूरत में अपना "पहला" कारखाना लगाने का निर्णय लिया। 1619 ई. तक उन्होंने आगरा, अहमदाबाद और भड़ौंच में अपने कारखाने स्थापित कर लिए।

दक्षिण भारत में कोई शक्तिशाली राज्य नहीं था अतः वहां कारखाना स्थापित करने का माहौल ज्यादा अनुकूल था। अंग्रेजों ने दक्षिण में अपना पहला कारखाना 1611 ई. में मसूलीपट्टम में लगाया। दूसरा कारखाना 1626 ई. में आराम गांव में लगाया गया। 1639 ई. में उन्होंने स्थानीय राजा से मद्रास पट्टे पर ले लिया। जल्द ही उन्होंने इसकी किलेबंदी कर दी जिसे फोर्ट सेंट जॉर्ज के नाम से जाना गया। 1668 ई. में उन्होंने बम्बई द्वीप पर कब्जा जमा लिया और जल्द ही वहां भी किलेबंदी कर ली। शीघ्र ही (1687 ई. तक) सूरत के स्थान पर यह कम्पनी के पश्चिमी तट का मुख्यालय बन गया।

पूर्व में अंग्रेजों ने अपेक्षाकृत विलंब से प्रवेश किया। उड़ीसा में 1633 ई. में हरिहरपुर और बालासोर में पहला कारखाना लगाया गया। 1651 ई. में उन्हें हुगली में व्यापार करने की अनुमति मिली। जल्द ही उन्होंने पटना (बिहार) और कासिमबाजार (बंगाल) में भी अपने कारखाने खोल लिए। 1690 ई. में सूत्तनती में कारखाना खोला गया जिसे 1696 ई. में किलाबंद कर दिया गया। 1698 ई. में अंग्रेजों को सूत्तनती, कालिकत्ता और गोविंदपुर की **जमींदारी** मिल गयी जहां उन्होंने फोर्ट विलियम नामक किले का निर्माण किया। जल्द ही यह एक बड़े शहर के रूप में परिवर्तित हो गया और इसे कलकत्ता के नाम से जाना गया।

फोर्ट विलियम (1736)

25.2.3 फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी

फ्रांसीसियों ने पूर्वी व्यापार में देर से प्रवेश किया। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना 1664 ई. में हुई। पहला फ्रांसीसी कारखाना 1668 ई. में सूरत में स्थापित हुआ। यह स्थान अंग्रेजों के लिए काफी महत्वपूर्ण था। परंतु हुगली में मुगल-अंग्रेज सशस्त्र संघर्ष (देखिए भाग 25.5) के कारण भारत में अंग्रेजों की स्थिति और व्यापार को गंभीर धक्का लगा। इससे फ्रांसीसियों को भारत में जड़ जमाने का मौका मिल गया। 1669 ई. में फ्रांसीसियों ने मसूलीपट्टम में अपना दूसरा कारखाना लगाया। 1673 ई. में उन्होंने पांडिचेरी प्राप्त करने में सफलता पाई और 1674 ई. में बंगाल के नबाव ने उन्हें कलकत्ता के निकट एक स्थान आवंटित कर दिया जहां उन्होंने 1690-92 ई.में चंद्रनगर नामक शहर बसाया। शीघ्र ही फ्रांसीसियों को डच और अंग्रेजों के विरोध का सामना करना पड़ा। डच व्यापारियों ने गोलकुंडा के शासक के मन में फ्रांसीसियों के आक्रामक रवैये की बात भर दी। अतः डचों के साथ मिलकर गोलकुंडा के शासक ने सां थोम से फ्रांसीसियों को निष्कासित करने का निर्णय लिया (1674 ई.)। अंततः फ्रांसीसियों को सां थोम का किला छोड़ना पड़ा।

बाद में, 1690 ई. के दशक में, फ्रांस और हॉलैंड के बीच युद्ध छिड़ गया और भारत में भी ये आपस में लड़ पड़े। 1693 ई. में डचों ने उनसे पांडिचेरी छीन लिया। डचों ने हुगली में फ्रांसीसियों की व्यापारिक गतिविधियों पर भी रोक लगाने में सफलता प्राप्त की। 1720 ई. तक बेन्टम, सूरत और मसूलीपट्टम से फ्रांसीसी नियंत्रण हट गया: "यहां तक कि वे अपना लाइसेंस दूसरों को बेचने लगे।" परंतु 1721 ई. में उन्हें पुनर्जीवन मिला। माहे (मालाबार तट पर) में जल्द ही एक नई कम्पनी बनाई गई। 1739 ई. में कारिकल में भी उन्होंने अपना कारखाना खोला।

अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच कट्टर दुश्मनी थी। 1742 ई. में यूरोप में ब्रिटेन और फ्रांस के बीच युद्ध हुआ। भारत में उनके बीच यहीं से संघर्ष शुरू हुआ। फलस्वरूप तीन कर्नाटक युद्ध हुए (1746-48 ई., 1749-54, ई., 1758-63 ई.)। वैंडिवाश मे निर्णायक युद्ध हुआ (जनवरी 1760 ई.)। फ्रांसीसी हार गये और भारत में लगभग उनके सभी अड्डे समाप्त हो गये। (विस्तार के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 देखिए)।

अब अन्य यूरोपीय कम्पनियों पर अंग्रेजी वर्चस्व पूर्णरूपेण कायम हो गया। पूर्तगालियों को गोवा, दमन और दीव से ही संतोष करना पड़ा और फ्रांसीसी पांडिचेरी, कारिकल और माहे में सिमट कर रह गये। अब अंग्रेजी विस्तार के लिए रास्ता बिल्कुल साफ था। (विस्तार के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 देखिए)।

25.2.4 अन्य यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियां

डेनमार्कवासी 1616 ई. में व्यापारी के रूप में भारत आए परंतु साम्राज्य स्थापित करने की उनकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। उन्होंने 1620 ई. में तंजोर के **नायक** से ट्रेंकूबार समुद्र तट प्राप्त किया और वहां एक किला बनाया। परंतु उनके पास संसाधनों की कमी थी। उन्होंने मसूलीपट्टम, पोर्टो नोवो और श्रीरामपुर में अपने कारखाने लगाए (1755 ई.) परंतु उन्हें सीमित सफलता ही मिली और अंततः वे अंग्रेजों को अपने कारखाने बेचकर 1845 ई. में भारत छोड़कर चले गए।

1722 ई. में फ्लैन्डर्स के व्यापारियों ने ओस्टेंड कम्पनी की स्थापना की परंतु उनकी गतिविधियां भारत में सीमित थी। स्वीडिश ईस्ट इंडिया कम्पनी 1731 ई. में स्थापित की गई परंतु भारत के बजाय उनकी गतिविधियां चीन में केन्द्रित थी।

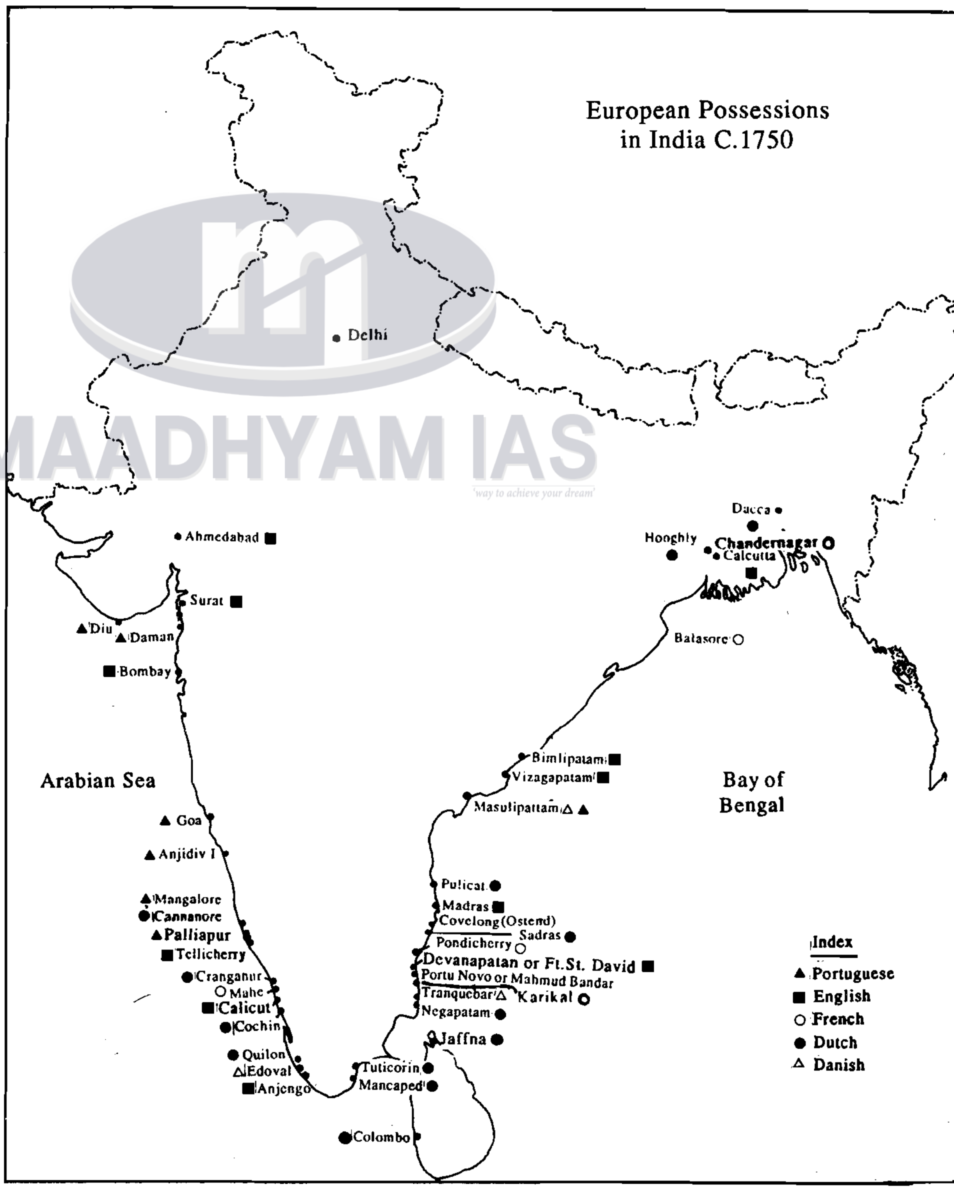

बोध प्रश्न 1

1) भारतीय समुद्र पर नियंत्रण के लिए डच-इंग्लिश संघर्ष का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना .... (वर्ष) में हुई थी।

ii) "साहसी व्यापारियों के इंग्लिश संगठन" की स्थापना .... (वर्ष) में हुई थी।

iii) भारत में पहला अंग्रेजी कारखाना .... (वर्ष) में .... (स्थान) में लगाया गया।

iv) अंग्रेजों ने .... (वर्ष) में बम्बई द्वीप पर अधिकार प्राप्त किया।

v) चंद्रनगर स्थित फ्रांसीसी बस्ती .... (वर्ष) में स्थापित हुई।

vi) वैंडीवाश का युद्ध .... (वर्ष) में .... और .... के बीच लड़ा गया।

25.3 कारखाने और उनका संगठन

MAADHYAM IAS

खंड 1 की इकाई 4 में आप पढ़ चुके हैं कि यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों ने पूर्व में अपने कारखाने किस प्रकार स्थापित किए थे। इन कारखानों में उत्पादन नहीं होता था। ये भंडार घर हुआ करते थे। अक्सर इनकी किलेबंदी की जाती थी। प्रस्तुत अंश में हम भारत में उनके कारखानों के आंतरिक संगठन पर विचार करेंगे।

25.3.1 डच

डच ईस्ट इंडिया कम्पनी का मुख्य प्रशासनिक केन्द्र बटाविया में स्थित था। गवर्नर जनरल और एक परिषद् इस प्रतिष्ठान के प्रधान होते थे। यह परिषद् एशिया के सभी डच कारखानों पर नियंत्रण रखती थी। परिषद् केंद्रीय निदेशक मंडल के प्रति उत्तरदायी होती थी, जिसे "भद्रजन XVII" के नाम से जाना जाता था जो लगातार छह वर्ष तक चैम्बर ऑफ एम्सटर्डम में अपनी बैठकें करते रहे और अगले दो वर्षों तक इनकी बैठक चैम्बर ऑफ जीलैंड में हुई।

प्रत्येक कारखाने में एक कारखानेदार को नियुक्त किया जाता था। ये कारखानेदार लगातार अपने प्रांत की व्यापारिक गतिविधियों, जहाजें की संख्या, निर्यातित-आयातित वस्तुओं, आदि की सूचना बटाविया भेजते थे।

कोरोमंडल में स्थित डच कारखाने एक निदेशालय, जिसका अध्यक्ष एक निदेशक होता था, द्वारा शासित थे। इस निदेशक को 1615 ई. में गवर्नर के नाम से जाना जाता था। 1655 ई. से पहले बंगाल में डच कारखाने कोरोमंडल के कारखानेदार द्वारा नियंत्रित तथा शासित किए जाते थे। 1655 ई. में हुगली में एक अलग निदेशालय, जो कि पुलीकट शासन के अधीन नहीं था, की स्थापना हुई। 1690 के दशक में कोरोमंडल में डच शासन का केंद्र पुलिकट से नेगापट्टम हो गया।

भारत में प्रत्येक फैक्ट्री (कारखाना) एक परिषद् द्वारा शासित थी। इस परिषद में एक निदेशक, सीनियर कारखानेदार या अधिकारी, लेखाधिकारी, न्याय अधिकारी, भंडार-गृह अधिकारी, जहाजों में माल लदवाने और उतरवाने वाले अधिकारी तथा छः कनिष्ठ (जूनियर) फैक्ट्री अधिकारी होते थे जिनमें से एक परिषद् के सचिव के रूप में कार्य करता था। इनके वेतन बहुत अच्छे नहीं होते थे।

25.3.2 इंग्लिश

इंग्लिश कम्पनी के आंतरिक प्रबंधन का प्रशासनिक उत्तरदायित्व ''कोर्ट ऑफ कमीटीज'' पर था जिसे बाद में 1709 ई. में ''कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स'' का नाम दे दिया गया। इसमें एक गवर्नर, एक उप-गवर्नर और व्यापारियों, जो इस कंपनी के भागीदार थे, की आम सभा द्वारा प्रतिवर्ष चुने गए 24 सदस्य होते थे। इसके अतिरिक्त एक सचिव और एक कोषपाल होता था। इसके सदस्य निदेशक (डायरेक्टर) के रूप में जाने जाते थे। कम्पनी की वर्चस्व निकाय ''कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स'' का मुख्यालय लंदन में था जबकि मातहत निकाय एशिया में स्थित थी। ''कोर्ट ऑफ प्रॉपर्टीज'' में सम्पन्न होने वाली बैठक में कम्पनी के हिस्सेदार प्रत्येक वर्ष निदेशकों का चुनाव करते थे। बड़े से बड़े और छोटे से छोटे हिस्सेदार केवल एक ही वोट दे सकते थे। कम्पनी की सदस्यता केवल हिस्सेदारों तक ही सीमित नहीं थी बल्कि यह आनुवांशिक सेवा तथा शुल्क द्वारा, प्रशिक्षता, आदि के माध्यम से भी प्राप्त की जा सकती थी। कम्पनी के पास आदेश जारी करने और क्षेत्र विशेष के कानूनों और रीति-रिवाजों के अनुसार कानून और आदेश देने के असीम अधिकार थे। कम्पनी के पास अपने कर्मचारियों के अपराध करने पर उन्हें जेल भेजने या आर्थिक रूप से दंडित करने का भी न्यायिक अधिकार था।

भारत में प्रत्येक कारखाने का प्रशासन एक **''गवर्नर-इन-कौंसिल''** के हाथ में था। गवर्नर इस परिषद् का अध्यक्ष होता था, परंतु उसके पास अतिरिक्त विशेषाधिकार नहीं होते थे। परिषद में सब निर्णय बहुमत से लिए जाते थे। इस परिषद् में कम्पनी के वरिष्ठ व्यापारी शामिल होते थे।

MAADHYAM IAS

हालांकि कम्पनी की नीतियों के निर्धारण में कम्पनी की सत्ता सर्वोच्च होती थी परंतु एशिया में इसका अधिकार क्षेत्र सीमित था। आमतौर पर रोजमर्रा के मामले सीधे उपसमितियों को सौंप दिए जाते थे, अधिक महत्वपूर्ण मामले ''कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स'' के पास भेजे जाते थे। एशिया स्थित कौंसिल के अध्यक्ष और सदस्य सीधे ''कोर्ट'' या लंदन स्थित कम्पनी के सचिव से संवाद स्थापित कर सकते थे। परंतु प्रेसिडेंसियों के प्रभाव-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले कारखानों को यह स्वतंत्रता और विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। अपना नियंत्रण मजबूत रखने के लिए लंदन स्थित ''कोर्ट'' विभिन्न मामलों पर वरिष्ठ पदाधिकारियों से भी अलग से जानकारी प्राप्त किया करता था। इस प्रकार सूचना दो जगहों से प्राप्त की जाती थी और अनियमितता से बचा जा सकता था।

कम्पनी की नीतियों का रख-रखाव और उन्हें लागू करने की जिम्मेदारी साधारणतया भारत स्थित कम्पनी के अध्यक्ष और परिषद पर थी। पूर्वी तट पर स्थित कारखानों के प्रशासन का नियंत्रण सेंट जॉर्ज किले (मद्रास) से किया जाता था। कंपनी का अध्यक्ष और परिषद् वहीं स्थित थे। यह परिषद् प्रशासनिक मामलों में सुझाव दिया करती थी।

1700 ई. में बंगाल के इंग्लिश कारखाने का मुख्यालय कलकत्ता बना दिया गया। ये कारखाने अलग से एक अध्यक्ष और परिषद् के नियंत्रण में थे।

25.3.3 फ्रांसीसी

भारत में फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी का मुख्यालय पहले सूरत में स्थित था बाद में उनका मुख्यालय पांडिचेरी हो गया। ''सुपीरियर कौंसिल ऑफ द इंडीज'' उनका सर्वोच्च निकाय था। गवर्नर जनरल इसका अध्यक्ष था। वह भारत में फ्रांसीसी कार्यकलापों का समग्र रूप से प्रभारी होता था। सर्वोच्च परिषद् में पांच सदस्य थे। जिसकी अध्यक्षता गवर्नर करता था।

पूरा प्रशासन उसके हाथ में था। हालांकि कानून का क्रियान्वयन फ्रांसीसी राजा के नाम से होता था परंतु फ्रांसीसी राजा का हवाला दिए बिना गवर्नरों और पार्षदों को हटाया जा सकता था। सभी औपनिवेशिक पदाधिकारी परिषद् के मातहत होते थे।

भारत में फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी की प्रमुख विशेषता उसके अधिकारियों का आपस में ईर्ष्या-द्वेष था। फ्रांसीसी आपस में लड़ते रहते थे। इससे भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के विकास और प्रसार पर असर पड़ा। 1670 ई. के दशक में कैरों अपने साथी फ्रांसीसी मरकारा की उल्लेखनीय सफलता से जल उठा। हालांकि अंततः मरकारा ने फ्रांसीसी सरकार को आश्वस्त कर दिया कि यह आरोप आधारहीन है परंतु भारत में फ्रांसीसी कारखानों की स्थापना के प्रारंभिक चरण से ही आपसी वैमनस्य का बीज बोया जा चुका था जो अंततः घातक सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 1726 में डुप्ले को उसके पद से निलंबित कर दिया गया। 1730 ई. में कहीं जाकर उसका यह निलंबन वापस हुआ और उसे चंद्रनगर का अधीक्षक (निदेशक) बनाया गया।

बोध प्रश्न 2

1) "भद्रजन XVII" क्या था?

....

....

....

....

....

2) "कोर्ट ऑफ कमीटीज" की कार्य पद्धति का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS

25.4 यूरोपीय कंपनियों का अपने पैतृक देश से सम्पर्क और उनका नियंत्रण

इस भाग में हम यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के अपने देश के साथ संबंधों, आदि पर विचार-विमर्श करेंगे।

25.4.1 डच

डच सरकार (स्टेट्स जनरल) के एक चार्टर द्वारा डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की गयी थी। सत्रह निदेशक इस कम्पनी का प्रशासन संभालते थे इन्हें "भद्रजन XVII" के नाम से जाना जाता था। डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की एक खास विशेषता यह थी कि इसके हिस्सेदारों का प्रबंधन निकाय पर कोई नियंत्रण नहीं होता था। हालांकि डच सरकार के पास सर्वोच्च सत्ता थी परंतु "भद्रजन XVII" के पास वास्तविक शक्ति थी और वे राज्य के भीतर राज्य के रूप में स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे। 1644 ई. में "भद्रजन XVII" ने डच सरकार (स्टेट्स जनरल) से कहा कि "पूर्व में जीते गए स्थानों और अड्डों को राष्ट्रीय अभियान नहीं माना जाना चाहिए और इन्हें निजी सम्पत्ति के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।"

डचों के पूर्वी व्यापार में बटाविया स्थित गवर्नर जनरल परिषद् के पास लगभग पूर्ण प्रभुसत्ता थी। बटाविया स्थित परिषद् एक निपुण प्रशासनिक निकाय थी। पूर्व के सभी कारखानेदारों को वहां नियमित सूचना भेजनी पड़ती थी। वरिष्ठ पदाधिकारी नियमित जांच भी किया करते थे। लंबी दूरी और संचार के तीव्र माध्यमों के अभाव में परिषद् की गतिविधियों पर "भद्रजन XVII" द्वारा नियंत्रण स्थापित कर पाना कठिन था। "भद्रजन XVII" ने बटाविया गवर्नर जनरल परिषद् को आशा अन्तरीप के पूर्व में स्थित क्षेत्रों के शासकों के साथ समझौता करने, किला बनाने और गवर्नरों को नियुक्त करने आदि का अधिकार सौंप दिया। परंतु ये सभी संधियां डच सरकार के नाम से सम्पन्न होती थीं। हालैंड में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी कभी भी अस्त्र-शस्त्र के बल पर व्यापार बढ़ाने के पक्ष में नहीं रहती थी। वे गवर्नर जनरल और परिषद् को निर्देश देते थे कि जहां तक संभव हो सके सशस्त्र संघर्ष टाला जाए। परंतु इनके कारखानेदार जानते थे कि भारत में बिना युद्ध किए और सैन्य बल दिखाए व्यापार करना असंभव था। हालैंड में स्थित कम्पनी के निदेशकों के पास बटाविया परिषद् के माध्यम से सूचनाएं पहुंचती थी और परिषद् भारत और विभिन्न पूर्वी देशों में नियुक्त कारखानेदारों से सूचनाएं प्राप्त करती थी। कभी-कभी बटाविया स्थित गवर्नर जनरल और भारत स्थित कारखानेदार कुछ आदेशों को अपनी ओर से घुमाकर पेश करने का प्रयत्न करते थे। 1616 ई. में जब गृह स्थित डच निदेशकों ने आदेश जारी किया कि "अम्बोयना और बांदा द्वीपों को अधीन करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण था और सभी विदेशी राष्ट्रों को इस व्यापार से अलग कर देना चाहिए, बटाविया के गवर्नर जनरल ने आंग्ल-डच संघर्ष की आशंका से अंग्रेजों के विरुद्ध शक्ति का उपयोग न करने का फैसला किया। दूसरी तरफ महानिदेशक कोन ने इसे अंग्रेजों को लवंग द्वीपों (Spice Islands) से निष्कासित करने के लिए शक्ति प्रयोग करने संबंधी आदेश के रूप में ग्रहण किया। परिणामस्वरूप बटाविया परिषद् ने कोन की कार्यवाई को मंजूरी न देने का फैसला किया। परंतु अगस्त 1616 ई. तक कोन ने "भद्रजन XVII" से मंजूरी ले ली। इसकी प्रतिक्रिया में गवर्नर जनरल (रेन्सट रियल) ने त्यागपत्र दे दिया और कोन ने नियंत्रण संभाल लिया।

कारखाने में अक्सर मनमुटाव और दुश्मनी चलती रहती थी। जब कोन ने रेवेस्टीन को पश्चिमी भारत का प्रशासनिक प्रमुख बनाया तब गोयरी ने उसकी सत्ता स्वीकार करने से सीधे इंकार कर दिया। अंततः कोन ने 1620 ई. में पीटर फान देन ब्रुक को ईरान और पश्चिमी भारत के डच कारखानों की गतिविधियों के निरीक्षण का उत्तरदायित्व संभालने के लिए सूरत भेजा। तब जाकर संकट हल हुआ। पीटर फान देन ब्रुक ने बटाविया के उस निर्देश को मानने से इंकार कर दिया जिमसें स्वदेशी (भारतीय) व्यापारियों के जहाजों पर कब्जा कर लेने का आदेश था। यान फान हैसेल ने वस्तुओं की खरीद के लिए स्थानीय ऋणदाताओं से राशि प्राप्त करने से मना कर दिया जबकि बटाविया और "भद्रजन XVII" का निर्देश था कि इन खरीदों के लिए केवल कम्पनी की पूंजी का ही उपयोग किया जाए। अतः अपनी प्रशासनिक गतिविधियों को संभालने के कम्पनी के सारे प्रयास असफल रहे और सुचारू संचार के अभाव में असल नियंत्रण कारखानेदारों और कारखानों के पास रहा।

25.4.2 इंग्लिश

सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी इंग्लैंड की एकमात्र सबसे बड़ी कम्पनी थी। पूर्व के व्यापार पर इसका पूर्ण नियंत्रण था और अन्य अंग्रेज व्यापारियों को व्यापार करने से ये सख्ती से रोकते थे। अतः आरंभ से ही उन्होंने पूर्वी समुद्रों से प्रतिद्वंद्वी व्यापारियों को दूर रखने का प्रयत्न किया और विशेषाधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इससे स्वभावतः उन अंग्रेज व्यापारियों में असंतोष उत्पन्न हुआ जो पूर्वी व्यापार के असीम मुनाफे में हिस्सा चाहते थे। इन व्यापारियों ने राजनैतिक नेताओं को प्रभावित करने का प्रयत्न किया परन्तु कम्पनी ने किसी प्रकार (रिश्वत, आदि देकर) चार्ल्स द्वितीय के शासन काल तक यह विशेषाधिकार कायम रखा। सभी प्रकार के विरोधों के बावजूद "इन्टरलोपर्स" के नाम से जाने वाले ये व्यापारी निजी आधार पर पूर्वी भारतीय व्यापार में संलग्न होकर कम्पनी के एकाधिकार का उल्लंघन करते रहे। 1688 ई. तक वे ब्रिटिश

संसद में काफी शक्तिशाली हो गए और परिस्थिति उनके अनुकूल हो गई। ये "मुक्त व्यापारी" सार्वजनिक तौर पर और संसद में अपनी मांगों के लिए दबाव डालने लगे। 1694 ई. में संसद ने एक प्रस्ताव पारित कर दिया कि इंग्लैंड के सभी नागरिकों को पूर्व में व्यापार करने का समान अधिकार है। इसके परिणामस्वरूप एक "नयी कम्पनी" का निर्माण हुआ। परन्तु "पुरानी कम्पनी" अपना विशेषाधिकार छोड़ने को तैयार न थी। काफी संघर्ष के बाद अंततः दोनों कम्पनियों ने मिलकर काम करने का फैसला किया और 1708 ई. में "द लिमिटेड कम्पनी ऑफ मर्चेन्ट ऑफ इंग्लैंड ट्रेडिंग टू द ईस्ट इंडीज" की स्थापना हुई।

इंगलैंड में कम्पनी और सम्राट में घनिष्ठ संबंध था। रानी एलिजाबेथ स्वयं कम्पनी की भागीदार थीं। रानी एलिजाबेथ की मृत्यु (1603 ई.) के बाद जेम्स प्रथम ने चार्टर (1609 ई.) को पुनः मंजूरी दे दी हालांकि तीन साल की सूचना देकर इसे कभी भी निरस्त किया जा सकता था। 1615 ई. में लंबी यात्राओं पर अनुशासन कायम करने के लिए कम्पनी को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ। 1623 ई. के चार्टर द्वारा कम्पनी को अपने सेवकों को नियंत्रित करने और दंड देने का और भी व्यापक अधिकार प्राप्त हो गया।

चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में कम्पनी को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। 1635 ई. में चार्ल्स प्रथम ने सर विलियम कोर्टेन को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिए एक नये व्यापारिक निकाय "असाडा कम्पनी" स्थापित करने की अनुमति दे दी। परन्तु यह कम्पनी ईस्ट इंडिया कम्पनी के सामने टिक न सकी।

ऑलिवर क्रॉमवेल के शासनकाल में स्थिति एक बार फिर बदली। उसने कम्पनी के हितों का समर्थन किया। 1657 ई. में उसने एक नया चार्टर जारी किया जिसके द्वारा कोर्टेन "एसोसिएशन" को "पुरानी कम्पनी" में मिला लिया गया। यह चार्टर इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि इससे कम्पनी के स्वरूप में परिवर्तन आ गया। पहले कम्पनी के हिस्सेदार जहाज के प्रति फेरे के हिसाब से अपना योगदान देते थे। अब इसके द्वारा कम्पनी एक संयुक्त स्टॉक कम्पनी के रूप में परिवर्तित हो गई जिसमें लगातार धन की आपूर्ति संभव हो सकी। अब कोई भी व्यक्ति 5 पौंड का प्रवेश शुल्क देकर और कम्पनी के स्टॉक में 100 पौंड का योगदान देकर कम्पनी का सदस्य बन सकता था। 500 पौंड देकर मतदान का अधिकार प्राप्त किया जा सकता था, इसी प्रकार 1000 पौंड का अंशदान देकर वह समिति का सदस्य चुना जा सकता था। गवर्नर और उप-गवर्नर के पद की अवधि कम करके दो वर्ष कर दी गई।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

चार्ल्स द्वितीय ने 1661 ई. में कम्पनी को दूसरा चार्टर प्रदान किया। इस चार्टर द्वारा कम्पनी को अपने प्रशासन के लिए गवर्नर और अधीनस्थ अधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार मिल गया। उनका दंड देने का न्यायिक अधिकार भी व्यापक हो गया। कम्पनी को यह अधिकार मिला कि वह गवर्नर और प्रत्येक कारखाने की परिषद् को अंग्रेजी कानून के अनुसार अपने अधीनस्थ अधिकारियों का निरीक्षण करने का अधिकार प्रदान कर सके। 1668 ई. के चार्टर ने कम्पनी को मात्र व्यापारिक निकाय से बदलकर एक क्षेत्रीय शक्ति बना दिया। जैसा कि हमने पहले बताया है, 1669 ई. में कम्पनी ने बम्बई पर अपना क्षेत्रीय अधिकार प्राप्त कर लिया। यहां राज्य करने के लिए अब कम्पनी स्वतंत्र होकर कानून बना सकती थी और अध्यादेश जारी कर सकती थी। यहां तक कि 1676 ई. में कम्पनी को बम्बई में सिक्के ढालने का भी अधिकार मिल गया। 1683 ई. के चार्टर से कम्पनी को एक सीमा तक सेना रखने की भी अनुमति मिल गई और अमेरिका, अफ्रीका और एशिया में युद्ध करने या शांति स्थापित करने का भी अधिकार मिल गया। 1687 ई. में कम्पनी को मद्रास में एक नगर निगम और मेयर की अध्यक्षता में न्यायालय स्थापित करने का अधिकार मिला।

गौरवपूर्ण क्रांति (1688 ई.) से कम्पनी की बढ़ी ताकत को झटका पहुंचाया। 1693 ई. के चार्टर के अनुसार कोई भी कम्पनी में 10,000 पौंड तक हिस्से (शेयर्स) खरीद सकता था। इसी प्रकार मताधिकार की सीमा 500 पौंड से बढ़ाकर 1,000 पौंड कर दी गई और अब एक सदस्य अधिकतम दस वोट तक दे सकता था। 1694 ई. में पदाधिकारियों के समयबद्ध सेवानिवृत्ति का सिद्धांत अनिवार्य बना दिया गया। 24 सदस्यों में से प्रतिवर्ष 8 सदस्यों को

सेवानिवृत्त होना था। मताधिकार की सीमा एक बार फिर 1000 पौंड से घटाकर 500 पौंड कर दी गई। अब पहले के दस मत के स्थान पर प्रत्येक सदस्य को पांच मत देने का अधिकार रह गया। कम्पनी ने राजा और संसद को काफी ऋण देकर कई चार्टरों द्वारा रियायतें प्राप्त की। इन चार्टरों के जरिए (1709, 1711, 1726, 1734, 1744, 1754, 1757 ई.) में कम्पनी ने अधिक से अधिक सैन्य और प्रशासनिक अधिकार प्राप्त किए।

25.4.3 फ्रांसीसी

फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी एक राज्य नियंत्रित संगठन था और इस प्रकार इंग्लैंड और हॉलैंड की चार्टर्ड कम्पनियों से भिन्न था। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी को अपने अनुदानों, रियायतों, ऋणों, आदि के लिए फ्रांसीसी सरकार पर काफी निर्भर रहना पड़ता था। 1723 ई. के बाद से इसके लगभग सभी निदेशक राज्य के प्रतिनिधि थे। इस प्रकार फ्रांसीसी सरकार का इस पर पूरा नियंत्रण स्थापित हो गया। इसके हिस्सेदारों में व्यापारियों की नहीं बल्कि कुलीनों और ठेकेदारों की संख्या अधिक थी। वे तुरंत लाभ अर्जित करने में रुचि लेते थे। फ्रांसीसी सरकार निरंकुश, भ्रष्ट और पतनोन्मुख थी और उनका इस स्तर का नियंत्रण फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए स्वभावतः घातक सिद्ध हुआ।

व्यावहारिक तौर पर निदेशकों के पास कोई शक्ति नहीं थी। यहां तक कि हिस्सेदारों की बैठक भी कभी-कभी ही होती थी और इस बैठक में सरकारी या राजा के पदाधिकारी के आगे उनकी कुछ नहीं चलती थी। माननीय सदस्यों या निदेशकों द्वारा प्रस्तुत और मंत्री द्वारा अनुमोदित प्रस्ताव को नामंजूर करने के बारे में "एसेम्बली जनरल" भी नहीं सोच सकती थी।

आरंभ से ही फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी दिवालिया थी। कम्पनी का पुनर्संगठन करने के लिए 1684 ई. में आम सभा (जनरल असैम्बली) बुलाई गई। राजा द्वारा मनोनीत निदेशक आजीवन पद पर बने रह सकते थे। एक निदेशक की मृत्यु के बाद उसके स्थान पर शेष निदेशक और हिस्सेदार (कम से कम 20,000 लिवर के हिस्सेदार) मतदान द्वारा निदेशक का चुनाव कर सकते थे। प्रशासन पूरी तरह निदेशकों, जिनकी संख्या 12 थी, की मुट्ठी में था जिन्हें प्रतिवर्ष 3000 लिवर प्राप्त होता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1688 ई. में आठ नये निदेशकों के पद कायम किए गए। इस निदेशकों को नियुक्ति के लिए 60,000 लिवर नियुक्ति शुल्क अदा करना था। 1697 ई. में साधारण हिस्सेदारों ने भी कम्पनी प्रशासन में अपने प्रतिनिधियों को शामिल करने की मांग की परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली।

1721-23 में पुनः कम्पनी को संगठित करने के लिए प्रयास किए गए। 1730 ई. के बाद यह कम्पनी राष्ट्रीय ईस्ट इंडिया कम्पनी बन गई। ये बारहों निदेशक राज्य द्वारा नियुक्त "कार्उंसिल डेस इंडीज" के क्लर्क बनकर रह गए। इस काउंसिल में राजकीय पार्षद, नौसेना अधिकारी और प्रतिष्ठित व्यापारी शामिल थे। हिस्सेदारों द्वारा 6 मान्य सदस्यों या निदेशकों को चुनने का अधिकार 1745 ई. तक स्थगित रहा। 1745 ई. में उन्हें बारह व्यक्तियों को मनोनीत करने का अधिकार प्राप्त हुआ जिनमें से छह को सम्राट चुनता था। 1730 ई. के बाद एक राजकीय कमिश्नर के द्वारा परिषद् ने अपने आदेश देने शुरू किए। वास्तव में महानिदेशक परिषद् (कन्ट्रोलुस जनरल) और नौसेना मंत्री के पास कम्पनी का वास्तविक नियंत्रण था। पूंजी का अधिकांश हिस्सा निदेशकों के हाथ में ही रहा।

कम्पनी का मुख्यालय पेरिस में था। परन्तु रेजिडेन्ट निदेशक के नेतृत्व में लोरिएण्ट में भी लगभग उतने ही कर्मचारी कार्यरत थे।

फ्रांसीसी कम्पनी के पास अपना जहाजी बेड़ा था। परन्तु अन्य दो बड़ी ईस्ट इंडिया कम्पनियों के मुकाबले फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी में व्यर्थ खर्च अधिक होते थे।

1769-1785 ई. से और पुनः 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति के बाद से भारत के साथ फ्रांसीसी व्यापार के द्वार सबके लिए खुल गये।

बोध प्रश्न 3

1) "इन्टरलोपर्स" कौन थे? इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ उनके संघर्ष का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी अपने समकालीन इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी से किन मायनों में भिन्न थी?

....

....

....

....

....

25.5 भारतीय शासक और यूरोपीय कम्पनियां

मुगल और भारतीय शासक भारत के विदेशी व्यापार का विकास करना चाहते थे ताकि उनका राजस्व स्रोत बढ़ सके। अतः सभी प्रकार की दिक्कतों के बावजूद मुगल बादशाहों और स्थानीय भारतीय शासकों ने विदेशी व्यापारियों का स्वागत किया। परन्तु मुगल और अन्य भारतीय राजाओं की समुद्र पर पकड़ मजबूत नहीं थी। समुद्र में भारतीय जहाजों की सुरक्षा के लिए उन्हें किसी एक यूरोपीय ताकत से समझौता करना जरूरी था क्योंकि समुद्र पर उनकी शक्ति बहुत अधिक थी। आपने गौर किया होगा कि जब तक मुगल शासक मजबूत रहे तब तक यूरोपीय व्यापारियों ने याचिकाओं और पुरस्कारों का सहारा लिया। कम्पनियों ने व्यापार और कूटनीति के साथ-साथ युद्ध किया और अपने कारखाने वाले क्षेत्रों पर अधिकार की नीति अपनाई। मुगल सत्ता के कमजोर पड़ते ही ये यूरोपीय कम्पनियां एकाधिकार और रियायतें प्राप्त करने के लिए भारतीय राजाओं पर दबाव डालने लगे। उन्होंने यहां की आन्तरिक कलह का भी भरपूर लाभ उठाया। (विस्तार के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम ई.एच.आई. 05 देखिए)।

MAADHYAM IAS

25.5.1 डच

डचों के प्रति गोलकुंडा शासकों का रुख सकारात्मक रहा। उन्होंने आयात और निर्यात पर 4 प्रतिशत सीमा शुल्क लगाकर डचों को व्यापार करने की इजाजत दे दी। कम्पनी को कपड़े पर लगाए गए कर पर भी छूट मिली (यह लगभग 12 प्रतिशत थी)। 1612 ई. में 4 प्रतिशत शुल्क को प्रतिवर्ष 3000 पगोडा की एक मुश्त रकम में परिवर्तित कर दिया गया।

भारतीय राजाओं के साथ कम्पनियों के संबंध का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि भारतीय शासकों द्वारा रियायतें प्रदान किए जाने के बावजूद स्थानीय अधिकारी लगातार इन आदेशों का उल्लंघन करते थे। यह अधिकारी कम्पनी के व्यापार पर कर लगाने का प्रयत्न किया करते थे। इससे कम्पनी और स्थानीय अधिकारियों में अक्सर मुठभेड़ होती रहती थी। स्थानीय **हवलदार** की मनमानी मांगों से तंग आकर डचों ने 1616 ई. में पेटापूली स्थित अपना कारखाना बंद कर दिया। 1619 ई. में डच अपना मसूलीपट्टम स्थित कारखाना भी बंद करने वाले थे तभी गोलकुंडा के शासक ने हस्तक्षेप किया और स्थानीय **हवलदार** मीर

कासिम को हटा दिया। 1636 ई. में स्थानीय अधिकारियों द्वारा तंग किए जाने और स्थानीय व्यापारियों की दुश्मनी आदि के कारण डचों को हुगली स्थित कारखाना छोड़ देना पड़ा। (बाद में 1645-50 ई. में यह कारखाना फिर खोला गया)। 3000 **पगोड़ा** अदा करने पर उन्हें मसूलीपट्टम में सीमा शुल्क की छूट दे दी गई। 1657 ई. में उन्होंने गोलकुंडा के राजा से पूलिकट टकसाल में सिक्का ढलवाने का भी अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्होंने 5.38 प्रतिशत टकसाल कर वसूल किया। 1676 के **फरमान** द्वारा गोलकुंडा शासक ने डचों को गोलकुडा में कर से पूरी तरह मुक्त कर दिया।

गोलकुंडा के मंत्री अकन्ना से अनबन होने के कारण 1680 के दशक में उन्होंने गोलकुंडा के विरुद्ध अस्त्र उठा लिए। 1686 ई. में उन्होंने मसूलीपट्टम बंदरगाह पर कब्जा कर लिया। यह कब्जा दो महीने तक कायम रहा। अन्ततः गोलकुंडा की संधि करनी पड़ी और गोलकुंडा शासक ने डचों को उनके सभी विशेषाधिकार लौटाने का वादा किया।

1690 ई. में तंजौर के **नायक** ने अपने राज्य में डचों को आधा कर भुगतान करने की छूट दे दी। उन्होंने तंजौर से अन्य यूरीपीयों को बाहर रखने का भी अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्हें नागापट्टम में सिक्का ढालने का भी अधिकार मिल गया। बीजापुर के शासक ने भी 1651 ई. में जिंजी के **नायक** द्वारा प्रदान विशेषाधिकारों को अपनी स्वीकृति दे दी।

पश्चिमी तट पर व्यापार करने के लिए डच मुगल सम्राट जहांगीर से **फरमान** प्राप्त करने में सफल रहे। उन्हें बुरहानपुर से खम्भात और अहमदाबाद तक कर देने से मुक्ति मिल गई। शाहजहां ने भी उन्हें दो **फरमान** प्रदान किए जिनके अनुसार उन्हें बंगाल (1635 ई.) और सूरत में व्यापार करने की अनुमति मिल गई। 1638 ई. में कम्पनी को शोरा का व्यापार करने के लिए शाहजहां द्वारा अनुमति प्रदान कर दी गई। 1642 ई. में शाहजहां ने डचों को पीपली-आगरा मार्ग पर पारगमन शुल्क से मुक्त कर दिया। 1662 ई. में औरंगजेब ने शाहजहां द्वारा बंगाल में डचों को दिए गए सभी विशेषाधिकारों को स्वीकृति दे दी। मुगलों ने कुछ समय के लिए गोलकुंडा पर कब्जा कर लिया था, इसी दौरान 1689 ई. में औरंगजेब ने एक **फरमान** जारी कर गोलकुंडा में डचों के विशेषाधिकारों को स्वीकृति दे दी। शाह आलम (1709 ई.) ने सूरत और हुगली में सीमा शुल्क को साढ़े तीन प्रतिशत से घटाकर ढाई प्रतिशत कर दिया। उसने कम्पनी को पूरे मुगल साम्राज्य में पारगमन शुल्क से पूरी तरह मुक्त कर दिया। परन्तु स्थानीय अधिकारियों की रुकावटों के कारण कभी-कभी डच कारखानेदार राहदारी कर से मुक्ती नहीं पाते थे। इसी प्रकार स्थानीय अधिकारियों को खुश करने के लिए उन्हें काफी राशि भी खर्च करनी पड़ती थी। परन्तु कम्पनी अक्सर कर मुक्त वस्तुओं को ढोने के अपने विशेषाधिकार का उल्लघंन करती थी। वे हुगली में अपना माल ढोने के बदले भारतीय व्यापारियों का माल अपने नाम पर बिना कर के निकाल देते थे। 1712 ई. में जहांदार शाह ने औरंगजेब द्वारा कोरोमण्डल तट पर दिए गए सभी विशेषाधिकारों को मंजूरी दे दी। इसके बावजूद स्थानीय अधिकारी जहांदार शाह द्वारा दिए विशेषाधिकार को समर्पित करने के लिए तैयार नहीं थे। 1725-30 ई. पालकोट्टू और द्रकश्वरम् में स्थानीय अधिकारियों और डचों के मध्य जमकर लड़ाई हुई, और 1728 ई. में डच कारखाने पर आक्रमण कर उसे लूट लिया गया।

MAADHYAM IAS

25.5.2 इंग्लिश

जहांगीर के शासनकाल में पहली बार मुगल दरबार में अंग्रेजी दूत आया था और उसे 1607 ई. में राजकीय **फरमान** प्रदान किया गया। 1608 ई. में अंग्रेजों ने सूरत में कारखाना लगाया और उसी वर्ष कैप्टन हॉकिन्स को मुगल दरबार में व्यापारिक रियायतें प्राप्त करने के लिए भेजा गया। आरंभ में जहांगीर ने अंग्रेजी दूत का स्वागत किया और सम्राट ने उसे 400 **जात** का **मनसब** प्रदान किया। 1611 ई. में हॉकिन्स को हालांकि सूरत में व्यापार करने की अनुमति मिल गई परन्तु बाद में पुर्तगालियों के प्रभाव के कारण उसे आगरा से बाहर निकाल दिया गया। अंग्रेजों ने यह महसूस किया कि अगर वे मुगल शासकों से रियायतें प्राप्त करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम उन्हें पुर्तगालियों के प्रभाव को कम करना पड़ेगा। इसके कारण सूरत के निकट स्वैली में दोनों के बीच सशस्त्र संघर्ष हुआ। (1612, 1614 ई.)। इसका आशाजनक परिणाम निकला। मुगल शासक पुर्तगालियों की नौ सेना

शक्ति का मुकाबला करने के लिए अंग्रेजों की सहायता चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे यह भी चाहते थे कि विदेशी व्यापारियों की प्रतिद्वंद्विता से भारतीय व्यापारियों को अधिक से अधिक मुनाफा हो। शीघ्र ही पश्चिमी तट पर सूरत के खंभात, अहमदाबाद और गोआ में कारखाने खोलने के लिए कैप्टन बेस्ट मुगलों से एक राजकीय **फरमान** प्राप्त करने में सफल रहा।

1615 ई. में सर टामस रो को जहांगीर के दरबार में भेजा गया। अंग्रेजों ने भारतीय शासकों की नौ सेना संबंधी कमजोरियों का लाभ उठाने की कोशिश की। उन्होंने भारतीय व्यापारियों और उनके जहाजों को परेशान करना शुरू किया। इस दबाव के परिणामस्वरूप एक **फरमान** जारी कर अंग्रेजों को मुगल साम्राज्य के सभी भागों में कारखाने खोलने का अधिकार प्राप्त हो गया। अंग्रेजों की इस सफलता के बाद 1620 ई. से 1630 ई. के बीच अंग्रेजों और पुर्तगालियों के बीच कई संघर्ष हुए जिसमें अंग्रेजों की जीत हुई। इसके बाद गोआ, दमन और दीव को छोड़कर धीरे-धीरे पुर्तगालियों का अन्य भारतीय क्षेत्रों पर प्रभुत्व समाप्त हो गया। 1662 ई. में उन्होंने बम्बई का द्वीप इंगलैंड के चार्ल्स द्वितीय को दहेजस्वरूप दे दिया।

जहांगीर के शासनकाल के अंतिम दिनों में इंग्लिश कम्पनी ने सूरत स्थित अपने कारखाने की किलाबंदी करने का प्रयत्न किया, परन्तु मुगल अधिकारियों ने उन्हें बंदी बना लिया। जब कम्पनी के प्रतिद्वंद्वी अंग्रेज व्यापारियों ने मुगल जहाजों पर आक्रमण किया तब मुगलों ने सूरत स्थित कम्पनी के अध्यक्ष को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें 1,80,000 रुपयों का भुगतान करने पर ही मुक्त किया गया।

1651 ई. में इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी को शाहजहां के पुत्र और उस समय बंगाल के गवर्नर सुल्तान शुजा ने **निशान प्रदान** किया। इसके द्वारा उन्हें 3000 रुपये प्रतिवर्ष का निश्चित भुगतान करने की शर्त पर व्यापारिक विशेषाधिकार प्रदान किए गए। 1656 ई. में प्राप्त एक अन्य निशान द्वारा इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी को सीमा शुल्क से छूट मिल गई परन्तु बंगाल से शुजा की वापसी के बाद उसके उत्तराधिकारी ने शुजा के आदेश को नजरअंदाज कर दिया क्योंकि इससे राजकीय कोष पर असर पड़ रहा था और बाद में शाइस्ता खां (1672 ई.) और सम्राट औरंगजेब के **फरमान** ने अंततः अंग्रेजों को सीमा शुल्क से मुक्त कर दिया।

MAADHYAM IAS

औरंगजेब के शासनकाल में मुगल-अंग्रेज संबंधों में कुछ परिवर्तन नजर आता है। इस समय तक इंग्लिश कम्पनी ने मद्रास और बम्बई स्थित अपने क्षेत्रों की किलाबंदी कर ली थी और अपनी स्थिति मजबूत समझने लगे थे। औरंगजेब खुद भी दक्खनी अभियानों में व्यस्त था। ऐसी स्थिति में अंग्रेज विनयपूर्वक याचिका देने की नीति को छोड़ने की बात सोच सकते थे। शक्ति का इस्तेमाल करके मूल्य निर्धारित कर सकते थे और व्यापार पर एकाधिकार हासिल कर सकते थे। वे धीरे-धीरे सभी यूरोपीय शक्तियों को प्रतिद्वंद्विता से हटाकर व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहते थे।

1686 ई. में अंग्रेजों ने मुगल सम्राट के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया और हुगली को रौंद दिया। परन्तु यहां मुगल शक्ति को आंकने में उनसे भारी भूल हो गई। दक्षिण भारत के शासकों की तुलना में मुगल सम्राट की शक्ति काफी मजबूत थी और एक छोटी व्यापारिक कम्पनी की मुगलों के सामने कोई बिसात नहीं थी। अतः कम्पनी को बुरी तरह अपमानित होना पड़ा। उन्हें बंगाल स्थित सभी कारखानों को छोड़ना पड़ा। सूरत, मसूलीपट्टम और विशाखापट्टम स्थित उनके कारखानों पर तथा बंबई स्थित उनके किले पर मुगलों ने कब्जा कर लिया गया।

मुगलों की शक्ति का अंदाज लगते ही वे पुनः **याचिका** और **कूटनीति** की अपनी पुरानी नीति पर लौट गए। वे पुनः 'विनयपूर्वक याचिका' के लिए अनुरोध करने लगे और भारतीय शासकों के संरक्षण में व्यापार करने को सहमत हुए।

विदेशी व्यापार के बढ़ते लाभ को देखते हुए मुगलों ने उन्हें माफ कर दिया। 1,50,000 रुपयों का मुआवजा लेकर औरंगजेब ने उन्हें व्यापार करने की अनुमति दे दी। 1619 ई. में 3000 रुपये वार्षिक शुल्क देकर इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल में सीमा शुल्क से मुक्ति पा ली। व्यापारिक रियायत की वैध अनुमति लेने और अंग्रेजी बस्तियों में अंग्रेजी शासन का अधिकार प्राप्त करने के लिए 1698 ई. में इंग्लैंड के राजा ने सर विलियम नोरिस को औरंगजेब के दरबार में भेजा। 1714-17 ई. में सरमन के नेतृत्व में दूसरा प्रतिनिधि मंडल भेजा गया जो फरूखसियर से तीन **फरमान** प्राप्त करने में सफल रहा। इसके द्वारा उन्हें गुजरात के साथ-साथ दक्खन में भी सीमा शुल्क देने से मुक्ति मिल गई। जब तक मुर्शिद कुली खां और अली वर्दी खां का बंगाल पर शासन रहा तब तक वे कम्पनी द्वारा विशेषाधिकारों के दुरुपयोग पर कड़ाई से नियंत्रण लगाते रहे। परन्तु उनके हटने (1750 का दशक) के बाद अंग्रेजों को हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया और जल्द ही 1757 ई. में प्लासी के युद्ध में उन्हें बंगाल के नवाब को परास्त करने में सफलता प्राप्त हुई। (विस्तार के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-05 देखिए)।

गोलकुंडा के शासकों का भी इंग्लिश कम्पनी के साथ मित्रतापूर्ण संबंध था। 1632 ई. में गोलकुंडा के शासक ने **फरमान** जारी कर गोलकुंडा के बन्दरगाहों पर अंग्रेजों को मुक्त रूप से व्यापार करने की छूट दे दी। इसके बदले में उन्हें 500 **पगोड़ा** देना था, इसके बाद वे निर्बाध रूप में वस्तुओं का व्यापार कर सकते थे। इससे निश्चित रूप से कोरोमण्डल क्षेत्र में अंग्रेजों के व्यापार में अभूतपूर्व प्रोत्साहन मिला।

25.5.3 फ्रांसीसी

फ्रांसीसियों को 1677 ई. में मराठों (शिवाजी) का प्रकोप झेलना पड़ा था। फ्रांसीसी कमांडर (बाद में भारत में फ्रांसीसी मामलों का महानिदेशक) मार्टिन ने शिवाजी की सत्ता स्वीकार कर ली और उनके क्षेत्र में व्यापार करने की छूट देने के बदले एक राशि अदा करने के लिए सहमत हुआ। शिवाजी ने फ्रांसीसिसी निवेदन इस शर्त पर स्वीकार किया कि वे उसके खिलाफ होने वाले सैनिक अभियानों में शामिल नहीं होंगे। 1689 ई. में शम्भाजी ने फ्रांसीसियों को पांडिचेरी की किलाबंदी करने की अनुमति दे दी। 1667 ई. में फ्रांसीसियों ने औरंगजेब से **फरमान** प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की और उन्होंने सूरत में अपना कारखाना लगाया। 1688 ई. में मुगल सम्राट औरंगजेब ने फ्रांसीसियों को चन्द्रनगर गांव दे दिया। कर्नाटक के नवाब दोस्त अली के साथ भी फ्रांसीसियों के अच्छे संबंध थे। उसकी जोरदार अनुशंसा के आधार पर ही मुगल सम्राट मौहम्मद शाह ने एक **फरमान** जारी कर फ्रांसीसियों को सिक्का गढ़ने और सोने और चांदी की मुद्रा जारी करने का अधिकार दे दिया। यह अधिकार इस शर्त पर दिया गया कि इन मुद्राओं पर एक तरफ मुगल बादशाह तथा दूसरी तरफ टकसाल के स्थान का नाम अंकित होना चाहिए।

दक्षिण की राजनैतिक स्थिति में हुए परिवर्तन के कारण फ्रांसीसियों को भारतीय शासकों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया। 1738 ई. में वेन्कोजी के पोते बाबा साहब की मृत्यु के बाद तंजोर में गृह युद्ध छिड़ गया। गद्दी के एक दावेदार साहूजी ने फ्रांसीसी गवर्नर एम. ड्यूमा से सहायता मांगी। इसके बदले उसने फ्रांसीसियों को करिकल और किरकनगढ़ी देने का वादा किया। परन्तु उसने अपने वादे पर अमल नहीं किया और इससे चान्दा साहब (कर्नाटक के नवाब दोस्त अली का दामाद) को मौका मिला और उसने शीघ्र फ्रांसीसी गवर्नर के पास जाकर करिकल और किरकनगढ़ी देने का वादा किया बशर्ते वे उसे तंजोर के इलाकों पर अधिकार करने में उसकी मदद करें। परन्तु जल्दी ही चांदा साहब को मराठों के प्रकोप का सामना करना पड़ा और वह फ्रांसीसी सहायता प्राप्त करने के लिए मजबूर हुआ। मराठों से सफलतापूर्वक टक्कर लेने की बात सुनते ही मौहम्मद शाह ने फ्रांसीसी गवर्नर एम. ड्यूमा को नबाव की पदवी प्रदान की और 4500 **जात** और 2000 **सवार** का **मनसब** प्रदान किया। दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप कर्नाटक के युद्ध हुये जिसमें फ्रांसीसियों की हार हुई (कर्नाटक-युद्धों और आंग्ल-फ्रांसीसी मुठभेड़ों, आदि पर ऐच्छिक पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-05 में विस्तार से विचार किया गया है)।

बोध प्रश्न 4

1) मुगल शासकों और भारतीय राजाओं ने यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों को क्यों प्रोत्साहित किया।

....

....

....

....

....

2) स्थानीय अधिकारी भारतीय शासकों द्वारा यूरोपीय व्यापारियों को दिए गए विशेषाधिकारों का पालन करने में क्यों रुकावट डालते थे? इसका क्या परिणाम हुआ?

....

....

....

....

....

25.6 सारांश

MAADHYAMIAS

आशा अन्तरीप मार्ग के जरिये नये समुद्री मार्ग का पता लगाते ही पूर्वी व्यापार का द्वार सभी यूरोपीय राष्ट्रों के लिए खुल गया। इस दौरान अफ्रीका और एशिया में पुर्तगालियों, डच, इंग्लिश और फ्रांसीसी व्यापारिक कम्पनियों ने अपने कारखाने लगाए। यूरोपीय कम्पनियां भारतीय शासकों से ज्यादा से ज्यादा रियायत प्राप्त करना चाहती थीं। वे पूर्वी व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करना चाहते थे, परिणामस्वरूप समुद्र में और जमीन पर दोनों जगह इनमें मुठभेड़ें हुई। 1750 के दशक तक अंग्रेजों ने सबको पीछे छोड़ दिया और भारत में साम्राज्य स्थापित करने की दिशा में अग्रसर हुए।

पुर्तगाली, डच और इंग्लिश कम्पनियां मूलतः व्यापारिक कम्पनियां थीं। परन्तु फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी फ्रांसीसी सरकार पर बहुत निर्भर थी। भारत में सभी यूरोपीय कम्पनियों के पास किलाबंद कारखाने थे। वे कारखाने केवल भंडारगृह ही नहीं थे लेकिन अस्त्र-शस्त्र के अड्डे भी थे। भारत में उनका प्रधान प्रेसिडेंट/गवर्नर होता था। परन्तु उन्हें सारी शक्ति अपने देश से प्राप्त होती थी। भारत स्थित डच ईस्ट इंडिया कम्पनी सीधे बटाविया के प्रति जिम्मेदार थी जो हेग स्थित मुख्यालय से जुड़ा हुआ था।

इन कम्पनियों ने मुगलों और अन्य भारतीय राजाओं से अच्छा संबंध बनाए रखने की कोशिश की। परन्तु वे खुशामद, याचिका, पुरस्कार, धमकी और सैन्य शक्ति प्रदर्शन की मिली-जुली नीति का प्रयोग करते थे। भारतीय शासकों ने भी सीमा शुल्क में बढ़ोत्तरी की आशा से यूरोपीय कम्पनियों को बढ़ावा दिया। शक्तिशाली राज्य के अभाव में यूरोपीय कम्पनियो का दक्षिण में प्रवेश आसान था। शीघ्र ही वे कमजोर नायकों और दक्खनी शासकों पर अपनी शर्तें लादने लगे। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी में वे शक्तिशाली मुगलों का सामना नहीं कर सके। उन्होंने जब भी मुगलों से टक्कर लेने की कोशिश की उन्हें मुंह की खानी पड़ी। परन्तु जैसे ही केंद्रीय मुगल सत्ता में कमजोरी के लक्षण नजर आने लगे वैसे ही यूरोपीय कम्पनियां और खासकर अंग्रेज अपनी मर्जी के अनुसार उनसे भी रियायतें प्राप्त करने में सफल हुए।

25.7 शब्दावली

देशी व्यापार : भारत के अंतर्देशीय व्यापार में भाग लेने वाले विदेशी कम्पनियां

25.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 25.2.1 भारत में इन दो कम्पनियों के हितों का विश्लेषण कीजिए और डचों के समर्पण का कारण बताइए। यह भी बताइए कि वे देशी व्यापार से ही अंततः कैसे संतुष्ट हुए।

2) i) 1602 ई. ii) 1599 ई. iii) 1608, ई. सूरत iv) 1668 ई. v) 1690-92 ई. vi) 1760, इंग्लैंड, फ्रांस।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 25.3.1

2) देखिए उपभाग 25.3.2 सबसे पहले इस समिति के संगठन के बारे में बताइए। इसके अधिकारों और पूर्वी क्षेत्रों में स्थित कारखानों के साथ संबंधों का उल्लेख कीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए उपभाग 25.4.2 इन्हें परिभाषित करने के बाद इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी से उनके हितों का टकराव, उनके द्वारा इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के एकाधिकार का विरोध और इस संघर्ष का परिणाम, आदि मुद्दों पर विचार कीजिए।

2) उपभाग 25.4.2, 25.4.3 ध्यान से पढ़िए। इस तथ्य का उल्लेख कीजिए कि इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी एक व्यापारिक संगठन था जबकि फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी काफी हद तक फ्रांसीसी सरकार पर निर्भर थी। यह भी बताइए कि कैसे इससे भारत में फ्रांसीसी ताकत कमजोर हुई।

बोध प्रश्न 4

1) देखिए भाग 25.5 आलोचनात्मक रूप से परीक्षण कीजिए कि वे अपने व्यापारियों और कारीगरों की भलाई के लिए भारतीय विदेशी व्यापार का विकास चाहते थे, यह भी बताइए कि इससे उनकी वित्तीय स्थिति कैसे मजबूत हुई?

2) भाग 25.5 और इसके उपभाग सावधानी से पढ़िए। इससे स्थानीय अधिकारियों द्वारा वसूल किए गए राजस्व स्रोत में कमी आई। बताइए कि इस वजह से इन दोनों में कैसे सशस्त्र संघर्ष हुआ।

MAADHYAM IAS

इस खंड के लिये कुछ उपयोगी पुस्तकें

इरफान हबीब : **मुगल कालीन कृषि व्यवस्था**

डब्लू. एच. मोरलैंड : **मुस्लिम कालीन भारत की कृषि व्यवस्था**

डब्लू. एच. मोरलैंड : **अकबर की मृत्यु के समय का भारत**

डब्लू. एच. मोरलैंड : **अकबर से औरंगजेब तक**

तपन राय चौधरी एवं इरफान हबीब : **द कैम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया भाग-1**

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 26 मुगलकालीन भारत की जनसंख्या

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 मुगलकालीन भारत की जनसंख्या का आकलन
 26.2.1 कृषि के अधीन भूमि के आधार पर
 26.2.2 नागरिक : सैनिक अनुपात के आधार पर
 26.2.3 कुल और प्रति व्यक्ति भू-राजस्व के आधार पर
26.3 जनसंख्या वृद्धि की औसत दर
 26.3.1 समकालीन यूरोप से तुलना
 26.3.2 वृद्धि दर के प्रभाव
26.4 ग्रामीण और शहरी जनसंख्या का संघटन
26.5 सारांश
26.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 1601 ई. में मुगलकालीन भारत की जनसंख्या के कई आकलनों से परिचित हो सकेंगे;
- जनगणना से पहले की भारतीय जनसंख्या का आकलन करने की विभिन्न विधियों को जान सकेंगे;
- 17-18वीं शताब्दियों में जनसंख्या के विकास की औसत वार्षिक दर पर प्रकाश डाल सकेंगे; और
- मुगलकालीन भारत में शहरी जनसंख्या का आकार बता सकेंगे ।

26.1 प्रस्तावना

जैसा कि विदित है भारत में जनगणना की विधिवत शुरुआत 1872 ई. से हुई। मुगल साम्राज्य में जनसांख्यिकी संबंधी आंकड़ों का काफी अभाव है, कहा जाता है कि अकबर ने जनसंख्या का विस्तार से आकलन करने का आदेश दिया था, पर इस संदर्भ में और कोई जानकारी हमें नहीं मिलती है। यहां तक कि **आइन-ए-अकबरी,** जिसमें विभिन्न प्रकार के आंकड़े सम्मिलित हैं, में भी अकबर के पूरे साम्राज्य या इसके किसी एक भाग में रहने वाली जनसंख्या का कोई आंकड़ा प्रस्तुत नहीं किया गया है।

26.2 मुगलकालीन भारत की जनसंख्या का आकलन

लगभग 1601 ई0 से 1872 ई0 तक के भारत का निश्चित जनसांख्यिकी आंकड़ा प्राप्त करना लगभग असंभव है पर इसे जाने बिना कई पहलुओं पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता है। जनसांख्यिकी तत्व को नजरअंदाज कर आर्थिक इतिहास के किसी भी चरण का अध्ययन नहीं किया जा सकता है। आधुनिक समाजों के आविर्भाव के पहले जनसंख्या विकास को अक्सर आर्थिक विकास का सूचकांक माना जाता था। अत: विभिन्न प्रकार के उपलब्ध आंकड़ों की सहायता से 1601 ई. में भारतीय जनसंख्या का आकलन आवश्यक है।

26.2.1 कृषि के अधीन भूमि के आधार पर

मोरलैंड ने **आइन-ए-अकबरी** में दिए गए आंकड़ों के आधार पर जनसंख्या के आकलन का पहला प्रयास किया। **आइन** में दिए गए आंकड़ों के आधार पर उसने उत्तर भारत की जनसंख्या निर्धारित करने का प्रयत्न किया। इसमें **आराजी** (नापा गया इलाका) का आंकड़ा दिया हुआ है जिसे वह बोई हुई (फसल की) कुल भूमि के रूप में मानता है। इस **आराजी** को मोरलैंड फसल के आधीन कुल भूमि के रूप में देखता है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में कुल खेती की जाने वाली भूमि की तुलना वह **आइन** की **आराजी** से करता है। उसने इन दोनों कालों के बीच (1600 और 1900) जनसंख्या के प्रसार और खेती के प्रसार के बीच एक निश्चित और स्थिर संबंध को माना। उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर उसने निष्कर्ष निकाला के 16वीं शताब्दी के अंत में "मुल्तान से मुंगेर तक" 3 से 4 करोड़ लोग रहते थे।

26.2.2 नागरिक : सैनिक अनुपात के आधार पर

दक्खन और दक्षिण भारत की जनसंख्या का पता लगाने के लिए मोरलैंड ने विजयनगर साम्राज्य और दक्खनी सल्तनतों के सैन्य बल को आधार बनाया। उन्होंने मनमाने ढंग से सैनिकों और नागरिकों की जनसंख्या का अनुपात 1 : 30 तय कर लिया। उन्होंने इस आधार पर उस समय की जनसंख्या 3 करोड़ बताई। स्वतंत्रता से पूर्व भारत की सीमा में पड़ने वाले कुल क्षेत्रों की जनसंख्या का आकलन करते हुए उन्होंने बताया है कि अकबर के शासनकाल में 1600 ई. में मुगल साम्राज्य के क्षेत्रों की जनसंख्या 6 करोड़ और कुल भारत की जनसंख्या 10 करोड़ थी।

ये आकलन काफी हद तक स्वीकार किए गए। इसके बावजूद मोरलैंड की आधारभूत मान्यताओं और उसके आंकड़ों पर प्रश्न चिह्न लगाया गया। उत्तरी भारत की जनसंख्या का आकलन करते हुए उन्होंने दो पूर्व धारणाओं का सहारा लिया : (क) केवल खेती की गई भूमि को मापा गया था, और (ख) सभी क्षेत्रों में यह कार्य मुगल प्रशासन द्वारा पूरा कर लिया गया था और इससे संबंधित आंकड़े भी उपलब्ध हैं।

परन्तु ग्रंथों और सांख्यिकी प्रमाण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि **आइन** में उल्लिखित **आराजी** वह इलाका था जिसे राजस्व के उद्देश्य से मापा गया था। इसमें नहीं जोती जाने वाली जमीन, और कुछ खेती योग्य और खेती न करने के योग्य खाली भूमि बंजर भूमि को भी शामिल किया गया है। इसके अलावा सब जगह भूमि की माप संपन्न नहीं हुई थी।

MAADHYAM IAS

उपरोक्त तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि उत्तर भारत की जनसंख्या के संबंध में मोरलैंड के आकलन की साख काफी कम हो गई। दक्खन और दक्षिण भारत के संदर्भ में भी इसका आधार कमजोर है। सैनिक : नागरिक अनुपात का आधार न केवल मनमाना है बल्कि उस पर भरोसा भी नहीं किया जा सकता है। प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व फ्रांस और जर्मनी के सैनिक : नागरिक अनुपात को आधार बनाना असंगत है। आधुनिक राज्यों और अर्थव्यवस्था में सैनिक : नागरिक अनुपात आगे पीछे होता रहता है। इनके आधार पर उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के आधुनिक काल से पहले के सैनिक : नागरिक के विभिन्न अनुपातों की सीमा को किसी भी प्रकार निर्धारित नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा मोरलैंड ने दक्खनी राज्यों की सैनिक संख्या का पता लगाने के लिए यूरोपीय यात्रियों के आम वक्तव्यों को आधार बनाया है।

इसके अलावा मोरलैंड ने इन दो क्षेत्रों से बाहर पड़ने वाले इलाकों की जनसंख्या को कम आंका। उत्तर भारत तथा दक्खन के अलावा अन्य क्षेत्रों की जनसंख्या को सही ढंग से आंकते हुए किंग्सले डेविस ने अपनी पुस्तक, **पॉपुलेशन ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान** में मोरलैंड द्वारा पूरे भारत की जनसंख्या के आकलन को बढ़ाकर 12 करोड़ 50 लाख कर दिया। आनुपातिक दृष्टि से जनसंख्या में दिखाई गई यह बढ़ोत्तरी सही लगती है पर इसमें भी मोरलैंड द्वारा अपनाए गए तरीकों की आधारभूत कमियां दूर नहीं होती है।

मोरलैंड के आकलन पर कई प्रकार की आपत्तियों के बावजूद अभी भी जनसंख्या मालूम करने के लिए कई विद्वान खेती के विस्तार को ही आधार बना रहे हैं। **आइन** में **आराजी** के आंकड़ों से 1601 ई. में खेती की जाने वाली भूमि का अंदाजा लगाया जा सकता है।

आराजी में शामिल खेती योग्य और खेती अयोग्य बंजर भूमि को नजर में रखते हुए और मुगल साम्राज्य के विभिन्न भागों में की गई माप के विस्तार को स्थापित करती हुई शीरीन मुसवी अपनी पुस्तक **इकानॉमी ऑफ द मुगल अम्पायर** में लिखती है कि 1601 ई. में मुगल शासन काल में 1909-10 ई. के मुकाबले खेती योग्य जमीन के 55 प्रतिशत हिस्से पर ही खेती होती थी।

इरफान हबीब ने अपने विश्लेषण द्वारा इस आकलन को और भी मजबूती प्रदान की। उन्होंने 17वीं शताब्दी और 1881 ई. में साम्राज्य के विभिन्न प्रांतों के गांवों के आकार और संख्या की तुलना की। इरफान हबीब के अनुसार 17वीं शताब्दी के दौरान 1900 ई. की अपेक्षा आधी से अधिक पर दो तिहाई से कम भूमि पर खेती होती थी।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर शीरीन मुसवी निम्नलिखित तीन धारणाएं स्थापित करती हैं :

i) वर्तमान शताब्दी के प्रथम दशक की तुलना में 1601 ई. में कुल 50 से 55 प्रतिशत खेती की जाती थी।

ii) कुल जनसंख्या का 15 प्रतिशत शहरों में और 85 प्रतिशत गांवों में रहता था।

iii) 1901 ई. की तुलना में 1601 ई. में औसत कृषि जोत का आकार 107 प्रतिशत ज्यादा था।

उनके अनुसार 17वीं शताब्दी के दौरान भारत की जनसंख्या 14 करोड़ से 15 करोड़ तक के बीच थी।

26.2.3 कुल और प्रति व्यक्ति भू-राजस्व के आधार पर

अशोक वी. देसाई ने भी जनसंख्या का पता लगाने के लिए विभिन्न आंकड़ों का सहारा लिया है। इसके लिए उपयोग में लाई जाने वाली पूर्वधारणाएं जटिल हैं। देसाई ने निम्नतर शहरी मजदूर की क्रय शक्ति की तुलना पहले **आइन** में दिए गए मूल्य और मजदूरी के आधार पर की है और फिर 1960 ई. के आरंभ में अखिल भारतीय औसत मूल्य और मजदूरी के आधार पर की है। अबुल फजल द्वारा बताई गई उपज और फसल की दर के आधार पर अकबर के शासनकाल में खाद्यान्न की कुल खपत का अंदाजा लगाया गया जो 1960 ई. में होने वाली खपत का पाँचवा हिस्सा थी (उस समय अधिक उपज के क्षेत्र में ही खेती केन्द्रित थी)। उनके अनुसार 1961 ई. की तुलना में 1595 ई. में प्रति इकाई उत्पादकता 25 से 30 प्रतिशत ज्यादा थी। इसी के आधार पर उन्होंने कृषि में प्रति मजदूर उत्पादकता का पता लगाया जो उनकी गणना के अनुसार 1961 ई. की तुलना में 1595 ई. में दुगनी थी।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

1960 के दशक में उपभोग की सांख्यिकी को आधार बनाते हुए देसाई ने 1595 ई. के उपभोग स्तर का अनुमान लगाया। उनके अनुसार आधुनिक स्तर पर यह 14 और 18 गुना अधिक पड़ता है। इसके बाद वह 16वीं शताब्दी के दौरान प्रत्येक प्रमुख कृषि उत्पादों का अलग-अलग औसत उपभोग बताता है।

इन आंकड़ों और अन्य आधुनिक आंकड़ों की सहायता से देसाई ने विभिन्न फसलों के प्रति व्यक्ति क्षेत्र का पता लगाया जिसे बाद में राजस्व दरों से गुणा किया और इससे प्रति व्यक्ति भू-राजस्व का आकलन किया गया।

कुल **जमा** (जिसे देसाई कुल भू-राजस्व मानते हैं) को इस आंकलित प्रति व्यक्ति राजस्व से विभाजित करके देसाई ने साम्राज्य की जनसंख्या 6 करोड़ 50 लाख आंकलित की। यह संख्या मोरलैंड के आकलन की पुष्टि करती है।

एलेन हेस्टन और शीरीन मूसवी ने देसाई की धारणाओं और विधि की आलोचना की है। हेस्टन की मुख्य आपत्ति इस बात को लेकर है कि 1595 ई. की उपज को बढ़ा चढ़ाकर आंकलित किया गया है। शीरीन मूसवी को कुछ अन्य मुद्दों पर गंभीर आपत्ति है। उनकी आपत्ति इस बात पर है कि 16वीं शताब्दी के आंकड़ों के साथ तुलना करने के लिए अखिल भारतीय आधुनिक सांख्यिकी का उपयोग किया गया है। **आइन** में उल्लिखित मूल्य और मजदूरी केन्द्रीय (मुगल शिविर में प्रचलित मूल्य) दृष्टिकोण से

प्रस्तुत किए गए हैं और आगरा (तथा संभवत: लाहौर) के लिए प्रयुक्त होते थे। अत: आधुनिक अखिल भारतीय स्तर से इनकी तुलना उपयुक्त नहीं होगी। इसी प्रकार **आइन** में दी गयी मानक फसल दर या तो शेरशाह की राजधानी दिल्ली के आस पास के इलाके पर लागू होती थी या ज्यादा से ज्यादा **दस्तूर उल अमल** (राजस्व दरों की तालिका) वाले इलाकों जैसे उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब पर इसे लागू माना जा सकता है। अत: इनकी तुलना अखिल भारतीय उपज से नहीं की जा सकती है। इसके अलावा देसाई ने साम्राज्य की कुल **जमा** को अनुमानित प्रति व्यक्ति भूमि कर से विभाजित किया है और **जब्त** प्रांतों (नगद राजस्व वसूलने वाले इलाके) और अन्य इलाकों में अंतर स्थापित नहीं किया है जहां कर प्रणाली का स्तर बिल्कुल भिन्न था। उनकी इस मान्यता में भी सुधार की आवश्यकता है कि **जमा** कुल राजस्व के बराबर थी। जबकि जैसाकि हम इकाई 15 में पढ़ चुके हैं यह (**जमा**) वह अनुमानित आय थी जो **जागीरदारों** को अनुदान में मिले अपने क्षेत्रों से प्राप्त करनी होती थी।

इसके अलावा अकबर कालीन भारत के उपभोग के स्तर की तुलना 1960 ई. के दशक से नहीं की जा सकती है क्योंकि मुगल साम्राज्य मुख्य रूप से गेहूं उपभोग क्षेत्र में ही केन्द्रित था और 1595 ई. में तिलहन की खपत संभवत: इतनी ज्यादा नहीं हो सकती थी जितना 1960 ई. में थी।

शीरीन मूसवी देसाई द्वारा सुझाई गई आधारभूत पद्धति का ही उपयोग करती है पर देसाई की पद्धति पर उठाई गई आपत्तियों के निवारण के लिए वे 1870 ई. के आधार में सुधार करती हैं। वे 1860-70 ई. के उपलब्ध आंकड़ों का इस्तेमाल तुलना और निर्देशात्मकता के लिए करती हैं : पहले वे अकबर कालीन भारत के पांच **जब्त** प्रांतों की जनसंख्या मालूम करती हैं और फिर पूरे अनुपात के आधार पर पूरे मुगल साम्राज्य की जनसंख्या निकालती हैं और फिर इसे अखिल भारतीय स्तर पर जनसंख्या मालूम करने के लिए लागू करती हैं। उनके अनुसार 1601 ई. से जनसंख्या समान रही। उनके अनुसार अकबर के शासनकाल में अकबर के साम्राज्य की जनसंख्या 10 करोड़ थी और पूरे भारत (1947 ई. से पहले के भारत की सीमा के आधार पर) की जनसंख्या 14 करोड़ 50 लाख थी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 1

i) मुगल साम्राज्य की जनसंख्या के आकलन के लिए मोरलैंड की पद्धति के विरुद्ध उठाई गई आपत्तियों पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

ii) मुगलकालीन भारत की जनसंख्या मालूम करने के लिए देसाई द्वारा अपनाई गई पद्धति का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

26.3 जनसंख्या वृद्धि की औसत दर

अगर हम यह मान लें कि 1601 ई. में भारत की जनसंख्या 14 करोड़ 50 लाख और 1871 ई. में 22 करोड़ 50 लाख (1872 ई. की जनगणना तथा इसमें जिन क्षेत्रों को शामिल नहीं किया गया था उनके लिए डेविस द्वारा की गई गणना के आधार पर) थी तो 1601 और 1872 ई. के बीच प्रति वर्ष वृद्धि की

दर 0.21 प्रतिशत होगी। 1601ई. और 1872 ई. की जनसंख्या और औसत वृद्धि दर के आधार पर 1801 ई. में जनसंख्या 21 करोड़ के आस पास रहो होगी। इस आकलन में एक प्रकार की संगतता है और 1801 के लिए सबसे ज्यादा मान्य आंकड़ा है। विभिन्न गणनाओं और तर्कों का इस्तेमाल कर इस वर्ष की जनसंख्या को 19 करोड़ 80 लाख से 20 करोड़ 70 लाख के बीच ही बताया गया है।

19वीं शताब्दी (1872-1901 ई.) के अंतिम तीन दशकों में जनसंख्या वृद्धि दर प्रति वर्ष 0.37 प्रतिशत थी। यह दर 1601-1801 ई. के लम्बे काल के लिए हमारे द्वारा की गई गणना से ऊँची है पर यह भी अपने आप में बहुत ज्यादा ऊंची दर नहीं है।

26.3.1 समकालीन यूरोप से तुलना

नीचे यूरोपीय देशों की जनसंख्या की विकास दर प्रस्तुत की जा रही है। इसे यूरोपीय आर्थिक इतिहास के एक प्रमुख ग्रंथ से उद्दृत किया गया है :

	1600-1700
स्पेन और पुर्तगाल	0.12
इटली	0.00
फ्रांस	0.08
ग्रेट ब्रिटेन	0.31
जर्मनी	0.00
स्वीटजरलैंड	0.18
रूस	0.12
कुल	0.10

MAADHYAM IAS

इन आंकलनों को देखने से पता चलता है कि यूरोप में भी मुगलकालीन भारत की तरह जनसंख्या वृद्धि की दर कम थी। पर 0.21 प्रतिशत की वृद्धि से पता चलता है कि उस समय एक ऐसी अर्थव्यवस्था कायम थी जिसके तहत "राष्ट्रीय बचत" की जा सकती थी और खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाया जा सकता था, हालांकि इसकी गति काफी कम थी। इस धीमी गति के कारण अकाल जैसे प्राकृतिक प्रकोप के साथ-साथ मनुष्य निर्मित समस्यायें (अधिक राजस्व की मांग एक कारण हो सकता है) भी थी। अगर हमारे पास 1650 ई. या 1700 ई. या उसके आसपास के किसी वर्ष की जनसंख्या का अनुमान लगाने के लिए आंकड़े उपलब्ध होते तो लघु अवधि की जनसंख्या वृद्धि दर का पता लगाया जा सकता था और उन वर्षों में मुगल अर्थव्यवस्था की कार्य क्षमता का अंदाजा लगाया जा सकता था। इन आंकलनों से यह जानने में भी मदद मिल सकती कि 17वीं शताब्दी और 18वीं शताब्दी में जनसंख्या वृद्धि के कारण आर्थिक व्यवस्था में कोई खास बदलाव आया या नहीं। लेकिन दुर्भाग्यवश इस प्रकार का कोई भी आंकड़ा मौजूद नहीं है।

26.3.2 वृद्धि दर के प्रभाव

1601-1801 ई. के बीच जनसंख्या में 0.2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के आधार पर हम कई रोचक निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं। अगर जनसंख्या वृद्धि को पूंजीवादी व्यवस्था से पहले की अर्थव्यवस्था की क्षमता का सूचकांक मान लिया जाए तो मुगल अर्थव्यवस्था को स्थिर या निश्चल नहीं माना जा सकता है क्योंकि दो सौ वर्षां में जनसंख्या की वृद्धि 36 से 44 प्रतिशत के बीच होने का अनुमान है। डेविस का मानना है कि 1601-1801 ई. के दो सौ वर्षों के बीच जनसंख्या 12 करोड़ 50 लाख पर स्थिर रही। इस शून्य वृद्धि दर के सिद्धान्त की जमकर आलोचना हुई।

26.4 ग्रामीण और शहरी जनसंख्या का संघटन

यहां भी शहरी जनसंख्या के लिए कोई निश्चित आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। इरफान हबीब ने कृषि उत्पादों के उपभोग की पद्धति के आधार पर शहरी जनसंख्या का अनुमान लगाया है। मुगल शासक वर्ग कुल कृषि उत्पाद का आधा हिस्सा भू-राजस्व के रूप में अपने कब्जे में ले लेता था पर यह सम्पूर्ण राजस्व गांवों से बाहर नहीं जाता था। उनके अनुमान के अनुसार इसका लगभग एक चौथाई कृषि उत्पाद ही शहर जाता था। उनका यह भी मानना है कि शहरों में कृषि उत्पादों का कच्चे माल के रूप में अधिक उपभोग होता था। इस आधार पर उन्होंने बताया है कि शहरों की जनसंख्या कुल जनसंख्या का लगभग 15 प्रतिशत थी।

विभिन्न शहरों की आकलित जनसंख्या

अपनी पुस्तक **तबकात ए अकबरी** (लगभग 1593 ई.) में निज़ामुद्दीन अहमद ने बताया है कि अकबर के शासनकाल में 120 बड़े शहर और 3200 छोटे शहर या कस्बे थे। अकबर के साम्राज्य की कुल जनसंख्या 10 करोड़ थी और 15 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती थी। इस प्रकार 3200 शहरों में औसतन 5000 लोग रहते होंगे। हालांकि मुगल साम्राज्य में कुछ शहर काफी बड़े थे। यूरोपीय यात्रियों ने कुछ मुख्य शहरों की जनसंख्या इस प्रकार बताई है:

शहर	वर्ष	आंकलन
आगरा	1609	500,000
दिल्ली	1659-66	500,000
लाहौर	1581	400,000
थट्टा	1631-35	225,000
अहमदाबाद	1663	100,00-200,000
सूरत	1663	200,000
पटना	1631	200,000
ढाका	1630	200,000
मसूलीपट्टम	1672	200,000

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

बोध प्रश्न 2

1) मुगल साम्राज्य की जनसंख्या वृद्धि की दर पर टिप्पणी लिखें और बताएं कि क्या यह मुगल अर्थव्यवस्था की स्थिरता का द्योतक है?

....

....

....

....

....

2) मुगलकालीन भारत की शहरी जनसंख्या की प्रकृति पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

26.5 सारांश

मुगलकालीन भारत की जनसंख्या का विश्लेषण करने में मोरलैंड का योगदान महत्वपूर्ण है। उस समय की जनसंख्या का पता लगाने के लिए उसने व्यक्ति : भूमि और नागरिक : सेना के अनुपात को आधार बनाया। पर उसकी पद्धति में दो खामियां थी :

1) अकबर के जमाने में माप पूर्ण नहीं हुई थी।

2) दक्खनी राज्यों के सैनिक : नागरिक अनुपात के विश्लेषण के लिए आधुनिक राज्यों को आधार बनाया गया।

अशोक देसाई ने औसत मूल्य और मजदूरी को आधार बनाया और इस आधार पर उसने अकबर के शासनकाल में विभिन्न फसलों का प्रति व्यक्ति क्षेत्र मालूम किया और प्रति व्यक्ति भू-राजस्व मालूम करने के लिए उसे चालू राजस्व दरों से विभाजित किया और पुन: इस प्रति व्यक्ति राजस्व को अकबर कालीन **जमा** से विभाजित किया। इससे मुगल साम्राज्य की कुल जनसंख्या का पता लगाया। पर इस प्रविधि पर भी विद्वानों ने प्रश्न चिन्ह लगाया। इन आपत्तियों से बचने के लिए शीरीन मुसवी ने इस प्रविधि में कुछ सुधार किया। उन्होंने अकबर के साम्राज्य की जनसंख्या 10 करोड़ और पूरे भारत की जनसंख्या 14 करोड़ 50 लाख बताई। एक रोचक तथ्य यह है कि मुगल कालीन भारत की जनसंख्या की विकास दर की समकालीन यूरोप के देशों की जनसंख्या वृद्धि दर से तुलना करने पर पता चलता है कि भारत की जनसंख्या वृद्धि दर उनसे कम नहीं थी। अत: भारतीय अर्थव्यवस्था को पूरी तरह स्थिर नहीं कहा जा सकता है।

26.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 26.2.2 । बताइए कि मोरलैंड ने जनसंख्या का पता लगाने के लिए व्यक्ति : भूमि और सैनिक : नागरिक के अनुपात को आधार बनाया था। पर इसकी प्रविधि में काफी खामियां हैं। इनका आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

2) देखिए उपभाग 26.2.3 । जनसंख्या मालूम करने के लिए अशोक देसाई द्वारा अपनाई गई प्रविधि का उल्लेख कीजिए और विद्वानों द्वारा उठाई गई आपत्तियों का उल्लेख कीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 26.3.1 और 26.3.2 । 17वीं शताब्दी के दौरान भारत की जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना यूरोप के देशों की जनसंख्या वृद्धि के साथ कीजिए। विश्लेषण करके बताइए कि किसी भी स्थिति में अर्थव्यवस्था जड़ नहीं थी। यह जनसंख्या वृद्धि विकासशील अर्थव्यवस्था का द्योतक है।

2) देखिए भाग 26.4 ।

इकाई 27 ग्रामीण वर्ग तथा जीवन शैली

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य
27.1 प्रस्तावना
27.2 ग्रामीण समाज की संरचना
27.3 जीवन स्तर
27.3.1 वस्त्र
27.3.2 रहन-सहन और आवास
27.3.3 खान-पान
27.4 सामाजिक जीवन
27.4.1 पारिवारिक जीवन
27.4.2 सामाजिक संस्थाऐं एवं रीति-रिवाज
27.4.3 त्यौहार और मनोरंजन
27.5 सारांश
27.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

27.0 उद्देश्य

परम्परागत रूप से भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा इसकी अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है। इसलिए भारतीय समाज की जानकारी प्राप्त करने के लिए ग्रामीण वर्गों का अध्ययन आवश्यक है। इस इकाई के अध्ययन से आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी होगी :

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

- 16वीं से 18वीं शताब्दी के बीच गांवों में निवास करने वाले वर्गों की;
- उनकी जीवन शैली तथा जीवन यापन के स्तर की; और
- ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक संस्थाओं और प्रथाओं की।

27.1 प्रस्तावना

भारत एक ग्रामप्रधान देश है। आज भी इसकी अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है। भारत में आज की तुलना में मध्यकाल में गांवों में निवास करने वाली जंनसंख्या निश्चित ही अधिक रही होगी क्योंकि औद्योगिक उत्पादन केवल कारीगर उत्पादों और हस्तशिल्प तक सीमित था तथा अधिकांश जनसंख्या के लिए रोजगार का प्रमुख स्रोत कृषि उत्पादन ही था। अब प्रश्न यह उठता है कि उस समय के गांवों में रहन-सहन की पद्धति क्या थी ? इस बड़े निम्नलिखित प्रश्न पर विचार करने से निम्नलिखित प्रश्न सामने आते हैं :

- क्या ग्रामीण समाज समरूप था, या विभिन्न वर्गों से मिलकर बना था ?
- इस समाज में उत्पादन का संगठन क्या था? इस समाज के अंतर्संबंधों की प्रकृति क्या थी ?

इस इकाई में हम उपरोक्त प्रश्नों की चर्चा 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य हुए विकास के परिप्रेक्ष्य में करेंगे।

27.2 ग्रामीण समाज की संरचना

जैसा कि आपने ऊपर पढ़ा भारतीय समाज की आधारभूत इकाई गांव था। एक गांव की निम्नलिखित प्रमुख विशेषतायें थी :

प्रत्येक गांव परिवारों के एक समूह से मिलकर बनता था, जिनमें अपने रहने के लिए घर और कृषि योग्य भूमि के स्वामित्व के प्रश्न पर हम पहले ही खंड 5 की इकाई 17 में चर्चा कर चुके हैं। गांवों के अधिकांश निवासी किसान थे। ग्रामीण जनसंख्या में कृषक एक ऐसा वर्ग था जिसके उत्पादन पर सभी ग्रामीण वर्गों (साथ ही शहरी भी) का अस्तित्व निर्भर था। यह कृषक वर्ग सामाजिक प्रतिष्ठा और धन के असमान वितरण के आधार पर वर्गों में बंटा हुआ था। धनी किसान (जैसे **खुद काश्त, घरूहल** और **मिरासदार**) तथा निर्धन किसान (**रेजारिआया, पाल्ती** तथा **कुन्बी**) में बंटे थे। गांव में निवास के आधार पर गांव के स्थायी निवासी (**मिरासदार, थलकर**) तथा अस्थायी निवासियों **पाईकाश्त, ऊपरी** में विभाजित थे। जातीय तथा गोत्रीय संबंधों के आधार पर भी कृषक समाज में विभाजन थे।

गांवों में कृषकों के अतिरिक्त कारीगर और कामगार तथा मजदूर समुदायों की एक बड़ी संख्या भी निवास करती थी। ग्रामीण समाज के इन समुदायों में बुनकर, कुम्हार, लोहार, बढ़ई, नाई, तथा धोबी प्रमुख थे। यह समुदाय ग्रामीण समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। अक्सर यह कृषि उत्पाद में मजदूर के रूप में भी कार्य करते थे।

गांवों में कृषकों के ऊपर ग्रामीण जनसंख्या का एक अन्य वर्ग निवास करता था, जो भू-राजस्व में विशेष उच्चाधिकार रखता था, इन्हें **जमींदार** के नाम से जाना जाता था। इस वर्ग के लोग कुल कृषि उत्पादन में से एक भाग प्राप्त करते थे। इस वर्ग के संघठन और विशेषाधिकारों के विषय में आप खंड 5 की इकाई 17 में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहां केवल यह बताना पर्याप्त होगा कि मध्यकालीन शासकों ने इस ग्रामीण वर्ग (**जमींदार**) को राजस्व वसूली के लिए राज्य के सहायक के रूप में स्वीकार किया था। इस सेवा के बदले इन **जमींदारों** को वसूले हुए राजस्व में से एक निश्चित भाग प्राप्त करने का अधिकार था। एक सामाजिक वर्ग के रूप में **जमींदार** भी जातीय और स्थानीय संबंधों के आधार पर विभाजित थे।

MAADHYAM IAS

27.3 जीवन स्तर

मध्यकालीन भारत का ग्रामीण समाज वर्गों में बंटा हुआ था। अत: एक ही गांव की जनसंख्या में भी काफी असमानतायें थी। हमारे स्रोत इन असमानताओं की अधिक जानकारी नहीं देते और ग्रामीण समाज को एक समरूपी इकाई के रूप में देखते हैं। इस भाग में हम उस काल के स्रोतों में उपलब्ध सीमित संदर्भों के आधार पर तत्कालीन ग्रामीण समाज के विभिन्न पक्षों पर विचार करेंगे।

27.3.1 वस्त्र

मुगल काल में ग्रामवासियों के पास सीमित वस्त्रों की उपलब्धता उनकी गरीबी का प्रमाण है। ग्रामवासियों के वस्त्रों की चर्चा करते हुए बाबर कहता है कि वे अपने शरीर के मध्य भाग को सिर्फ एक कपड़े (लूंगी) से ढकते हैं। अन्य यूरोपीय यात्री भी इसकी पुष्टि करते हैं परन्तु साथ में यह जानकारी भी मिलती है कि जाड़े के मौसम में वे रूई भरे ढीले कोटनुमा वस्त्र तथा टोपी भी पहनते थे।

महिलायें अधिकांशत: सूती साड़ी पहनती थीं। ब्लाऊज में कई प्रकार की क्षेत्रीय विभिन्नतायें थीं। मालाबार के इलाके में महिलायें (तथा पुरुष भी) कमर के ऊपर कुछ नहीं पहनती थीं। पूर्वी भारत में भी ब्लाऊज नहीं पहना जाता था। परन्तु कुछ अन्य क्षेत्रों में ग्रामीण स्त्रियां चोली या अंगिया पहनती थीं। कुछ पश्चिमी और मध्य क्षेत्रों में स्त्रियां साड़ी के स्थान पर लहंगा और शरीर के ऊपरी भाग में ब्लाऊज पहनती थीं।

ग्रामीण वर्गों में पांव में जूते पहनने का रिवाज लगभग नहीं था। संभवत: केवल गांव के धनी वर्ग ही जूते पहनते थे। इतिहासकार सतीश चन्द्र हिन्दी कवियों, सुरदास और तुलसीदास की कृतियों के आधार पर बताते हैं कि शायद जूते के लिए **पनही** और **उपनाहा** शब्द का प्रयोग होता था (**कैम्ब्रिज इक्नॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया**, खंड 1, पृ. 460)।

27.3.2 रहन-सहन और आवास

ग्रामीण जनसंख्या का अधिकांश भाग मिट्टी के बने तथा फूस की छतों वाले घरों में रहता था। सामान्यत: यह एक कमरे वाले घर होते थे। पेल्सर्ट नामक डच यात्री ने, जो जहांगीर के काल में भारत आया था, ग्रामीण घरों का सजीव चित्रण किया है। नीचे उसका विवरण दिया जा रहा है :

> "उनके (ग्रामवासियों के) घर मिट्टी के बने हुए हैं जिन पर फूस की छत है। घरों में फर्नीचर नहीं या बहुत कम हैं। कुछ थोड़े से मिट्टी के बर्तन होते हैं, जिनमें पानी रखा जाता है और खाना पकाते हैं। केवल दो पलंग होते हैं। एक पुरुष के लिए और दूसरा स्त्री के लिए .... बिस्तर के नाम पर केवल एक या दो चादरें होती हैं जो ओढ़ने और बिछाने दोनों के काम आती हैं। गर्मी के मौसम में तो इनसे काम चल जाता है परन्तु जाड़े की ठंडी रातें अत्यंत कष्टदायक होती हैं। जाडों में स्वयं को गर्म रखने के लिए दरवाजे के बाहर गोबर के कंडे जलाते हैं क्योंकि घरों के अंदर आग जलाने के लिए आतिशदान और चिमनी नहीं होते हैं। (**फ्रेंकोस, पेल्सर्ट, जहांगीर्स इंडिया,** अनुवाद डब्लू. एच. मोरलैंड तथा पी. गेल, दिल्ली, 1925)।"

स्थानीय वस्तुओं और सामान की प्राप्ति के आधार पर ग्रामीण घरों में काफी क्षेत्रीय भिन्नतायें होती थीं। बंगाल में झोंपड़ी बनाने के लिए बांसों और आसाम में लकड़ी, बांसों और फूस का प्रयोग किया जाता था। कश्मीर में लकड़ी के घर बनते थे। उत्तर और मध्य भारत में घर बनाने का प्रमुख सामान मिट्टी और भूसे का मिश्रण था। दक्षिण में झोंपड़ियां बनाने के लिए ताड़ की पत्तियों का प्रयोग होता था। जहां एक ओर गरीबों के घरों में उनके पशु और वे स्वयं एक साथ रहते थे वहीं दूसरी ओर गांव के धनी वर्ग कई कमरों वाले पक्के घरों में रहते थे। इन घरों में कई कमरों के अतिरिक्त अनाज रखने के लिए अलग स्थान और चार दीवारी से घिरे आँगन भी होते थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

27.3.3 खान-पान

भारत के अधिकांश भागों में अधिकतर जनसंख्या का नियमित भोजन चावल, ज्वार, बाजरा और दालें थी। पेल्सर्ट के अनुसार "ये लोग मांस के स्वाद के विषय में बहुत कम जानते हैं।" जिन क्षेत्रों में धान प्रमुख फसल थी वहां की ग्रामीण जनता का प्रमुख भोजन चावल था। ऐसे क्षेत्रों में बंगाल, उडीसा, सिंध, कश्मीर, असम और दक्षिण भारत के अधिकांश भाग थे। इसी प्रकार राजस्थान और गुजरात के क्षेत्रों में ज्वार और बाजरा ज्यादा होने की वजह से यहां की ग्रामीण जनता ज्वार और बाजरा का प्रयोग खाने में करती थी। सतीश चन्द्र के अनुसार "ऐसा प्रतीत होता है कि आगरा और दिल्ली के प्रमुख गेंहूँ उत्पादक क्षेत्रों में भी गेंहूँ आम जनता का मुख्य भोजन नहीं था।"

ग्रामीण जनता अनाज के अतिरिक्त फलियों और सब्जियों का भी सेवन करती थी। बंगाल और ड़डीसा के तटीय क्षेत्रों में मछली काफी लोकप्रिय थी। परन्तु गोमांस का सेवन अच्छा नहीं समझा जाता था। गांव के अत्यधिक निर्धन वर्ग के लोगों को उबले चावल, मोटे अनाज और घास-पात पर ही निर्भर रहना पड़ता था। अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या अधिकतर दिन में केवल एक बार ही नियमित भोजन करती थी। साधारणतया यह सुबह या दोपहर में होता था। संध्या के समय केवल कुछ हल्का फुल्का खाने को मिलता था।

विशेष ध्यान देने की बात है कि अधिकांशतया उत्तर भारत, बंगाल और पश्चिम भारत में भोजन में घी का नियमित प्रयोग होता था। प्रसिद्ध बंगाली कवि मुकुंदराम दही, दूध और खांड (गुड़) से बनने वाले कई

स्वादिष्ट खाने की वस्तुओं का वर्णन करता है जो गरीब लोग विवाह या अन्य उत्सवों पर खा पाते थे। गांवों में गुड़ का उपयोग आमतौर पर होता था।

बोध प्रश्न 1

1) मध्यकालीन भारत में ग्रामीण समाज की संरचना की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

....

2) मध्यकालीन भारत के ग्रामीण समाज के जीवन स्तर का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

27.4 सामाजिक जीवन

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

भारतीय गांवों के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालने वाले स्रोतों की कमी है। समकालीन साहित्य में उपलब्ध कुछ संदर्भों तथा कुछ ऐतिहासिक स्रोतों में मिली जानकारी के आधार पर मध्यकालीन गांवों के सामाजिक जीवन की रूपरेखा तैयार की जा सकती है।

27.4.1 पारिवारिक जीवन

आप जानते ही होंगे कि परंपरागत रूप से भारत के घरेलू जीवन की एक महत्वपूर्ण संस्था संयुक्त परिवार है। एक कृषक के लिए परिवार में अधिक सदस्यों का तात्पर्य कृषि उत्पादन में सहयोग देने वाले अतिरिक्त हाथ थे जो आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। पारिवारिक जीवन की कुछ प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार थीं :

- भारत के अधिकांश भागों में परिवार पितृसत्तात्मक थे।
- सबसे अधिक आयु का पुरुष ही परिवार का प्रमुख माना जाता था।
- परिवार के अंदर विभिन्न सदस्यों का सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार नहीं माना जाता था। सदस्यों को अपनी गुजर-बसर के लिए सम्पत्ति की आय में से एक हिस्सा मिलता था।
- सामान्यत: परिवार की महिला सदस्यों को पुरुषों की आज्ञाओं का पालन करना होता था।
- परिवारों में कन्या की तुलना में पुत्र जन्म को अधिक महत्व दिया जाता था। सभी पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र को अधिक महत्व प्राप्त था।

कुल मिलाकर परिवार-व्यवस्था ने एक दूसरे के साथ सहयोग की भावना और आपसी निर्भरता को विकसित किया। इससे एक विशेष प्रकार की भावना का उदय हुआ कि एक दूसरे के सहयोग के बिना जीवन कठिनाइयों से भरा होगा।

27.4.2 सामाजिक संस्थायें एवं रीति-रिवाज

ग्रामीण समाज में विवाह सबसे महत्वपूर्ण संस्था थी। पुत्र और पुत्रियों के विवाह का उत्तरदायित्व मुख्यत: मां-बाप पर था। विवाह की कोई निर्धारित आयु नहीं थी परन्तु कम उम्र में विवाह करने को पसंद किया जाता था। अबुल फजल के कथन के अनुसार अकबर ने विवाह के लिए एक निश्चित आयु निर्धारित की जो लड़कों के लिए 16 और लड़कियों के लिए 14 वर्ष थी (**आइन-ए अकबरी**, अनुवाद एच. ब्लॉकमैन, भाग 1, पृ. 195) परन्तु यह कह पाना मुश्किल है कि इस नियम का पालन पूर्णतया होता था या नहीं। मगर समकालीन साहित्य में विवाहों के विषय में दी गई जानकारी को देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह नियम केवल कागज तक सीमित था और व्यवहार में इसका पालन नहीं होता था। ग्रामीण समाज के मुस्लिम और गैर-मुस्लिम संप्रदायों में विवाह की अलग-अलग प्रथायें प्रचलन में थीं। उदाहरण के लिए हिन्दुओं में विवाह एक परम संस्कार माना जाता था। जबकि मुस्लमानों में यह एक सामाजिक अनुबंध था। हालांकि दोनों ही स्थितियों में (हिन्दू तथा मुस्लिम) महिलायें अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र नहीं थीं। इसी तरह दहेज प्रथा भी दोनों ही समुदायों में एक अभिशाप की तरह मौजूद थी।

27.4.3 त्यौहार एवं मनोरंजन

ग्रामीण जनता में कई तरह के त्यौहार और मनोरंजन के साधन लोकप्रिय थे। हालांकि मुस्लिम और गैर-मुस्लिम समुदायों के अपने अलग अलग त्यौहार और उत्सव थे परन्तु यह मानना गलत होगा कि ये एक दूसरे के उत्सवों में भागीदारी नहीं करते होंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

हिन्दुओं के अधिकांश त्यौहार विशेष मौसमों से संबंधित थे। अधिकांशत: यह उस समय पड़ते थे जबकि कृषकों को अपने काम फुर्सत रहती थी और वे आनन्द मनाने की मनोस्थिति में होते थे। इन त्यौहारों में बसंत पंचमी, होली, दीपावली तथा शिवरात्रि प्रमुख थे। बसंत का त्यौहार बसंत ऋतु के आगमन के साथ मनाया जाता था। इसमें गाने-बजाने और नृत्य का आनन्द लिया जाता था। होली का त्यौहार रबी की फसल के तैयार होने के समय मनाया जाता था। इसे स्थान-स्थान पर अग्नि के अलाव जलाकर, लोकप्रिय गीतों को गाकर और एक दूसरे पर रंग डालकर मनाया जाता था। दीपावली, रोशनी और दीप जलाने का त्यौहार है, जिसे खरीफ फसल के काटने के बाद मनाया जाता था। शिवरात्रि प्रमुखत: एक धार्मिक त्यौहार माना जाता था, और इसे रात भर पूजा प्रार्थना के साथ मनाते थे।

इस काल तक (16 से 18वीं शताब्दी तक) मुस्लिम त्यौहार भी भारतीय वातावरण से काफी प्रभावित हो चुके थे। ग्रामीण क्षेत्रों में ईद, शबेबरात और मुहर्रम मुसलमानों के प्रमुख त्यौहार थे। इतिहासकार के. एम. अशरफ के अनुसार "संभवत: शबेबरात हिन्दुओं के शिवरात्रि त्यौहार से काफी प्रभावित था" (के. एम. अशरफ, **भारत के निवासियों का जीवन और परिस्थितियां**)। अशरफ के अनुसार "आम जनता द्वारा इस त्यौहार के मनाने की विशेषता इस अवसर पर बड़ी संख्या में आतिशबाजी का प्रयोग और घरों तथा मस्जिदों को रोशनियों से सजाना था।" ईद और शबेबरात की तुलना में मुहर्रम बहुत सादगी से मनाया जाता था। मुहर्रम के पहले दस दिन इमाम हुसैन की शहादत से संबंधित वृतांतों को पढ़ने और गाने में गुजारे जाते थे। इसके अंत में **ताजिये** (उनके मजार की अनुकृतियां), एक शोभायात्रा के रूप में निकाले जाते थे।

ग्रामीण जनसमुदायों में मनोरंजन का सर्वाधिक लोकप्रिय तरीका गाने-बजाने और नृत्यों का आयोजन था। होली जैसे त्यौहारों के अवसर पर गांव के चौक या चौपाल में लोग जमा होते थे और यहां लोकप्रिय गाथागीत और लोकनृत्य होते थे।

बोध प्रश्न 2

1) ग्रामीण स्तर पर प्रचलित परिवार व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का विवरण कीजिए।

....

....

....

....

....

2) ग्रामीण भारत में कौन-कौन सी प्रमुख प्रथायें, त्यौहार और मनोरंजन के साधन प्रचलित थे?

....

....

....

....

....

27.5 सारांश

इस इकाई में हमने ग्रामीण समाज की संरचना की एक रूपरेखा प्रस्तुत की है। ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर, खान-पान तथा आवास और रहन-सहन की चर्चा की है। सामाजिक जीवन के विभिन्न आयामों, जैसे परिवार, सामाजिक संस्थायें और प्रथायें, त्यौहार तथा मनोरंजन के साधनों के विषय में भी जानकारी दी गई है।

27.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 27.2

2) देखें भाग 27.2 तथा उपभाग 27.3.1, 27.3.2, तथा 27.3.3

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 27.4 तथा उपभाग 27.4.1

2) देखें भाग 27.4 तथा उपभाग 27.4.2 तथा 27.4.3

इकाई 28 शहरीकरण, शहरी वर्ग तथा जीवन शैली

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
28.2 परिप्रेक्ष्य
28.3 शहरी परिदृश्य
 28.3.1 भौतिक विन्यास
 28.3.2 शहरी जनसंख्या की संरचना
 28.3.3 शहरी जनसांख्यिकी
28.4 शहरी जीवन
 28.4.1 जीवन स्तर
 28.4.2 सामाजिक जीवन
 28.4.3 मनोरंजन और आमोद-प्रमोद
28.5 सारांश
28.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

28.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

मध्यकालीन भारत का नगरीय इतिहास अत्यधिक महत्वपूर्ण और रोचक विषय है। इस इकाई के अध्ययन से आप :

- मध्यकालीन भारत में शहरीकरण में जान सकेंगे तथा साथ-साथ इस विषय में प्रतिपादित प्रमुख दृष्टिकोणों की जानकारी भी प्राप्त करेंगे;
- मध्यकालीन शहरों की भौतिक विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे; तथा
- मध्यकालीन शहरी जीवन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे।

28.1 प्रस्तावना

मुगलकालीन भारत का शहरी इतिहास एक महत्वपूर्ण विषय होने के बावजूद इतिहासकारों का पर्याप्त ध्यान आकृष्ट नहीं कर पाया है। इस विषय में अध्ययन के विविध क्षेत्रों की बड़ी संख्या इसके बहुआयामी होने की ओर संकेत करती है। शहरी केन्द्रों का विस्तार, उनका आकार, नगरीय अर्थव्यवस्था, तथा शहरी समाज इस विषय में अध्ययन के आयामों के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं।

इस इकाई में पहले हम आपको नगरीय इतिहास से परिचित करायेंगे। हम सैद्धांतिक के साथ-साथ शहरीकरण के अध्ययन के प्रति अपनाये गये सामान्य परिप्रेक्ष्य के विषय पर भी चर्चा करेंगे। हम प्रमुखत: शहरों की संरचना और शहरी जीवन शैली पर ध्यान केन्द्रित करेंगे। यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि इस प्रकार के अध्ययन में हमारा दृष्टिकोण इस बात से निर्धारित होगा कि हम किस प्रकार के प्रश्न और उनके उत्तर आपके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। आप देखेंगे कि शहरों की संरचना और शहरी समाज और जीवन का जो प्रारूप हम यहां प्रस्तुत करेंगे वह मध्यकालीन शहरीकरण के प्रश्न से सीधे संबंधित है।

28.2 परिप्रेक्ष्य

विद्वानों ने शहरीकरण का शहरों के भौतिक विकास और एक विशिष्ट जीवन शैली (शहरी) के रूप में अध्ययन किया है। पश्चिमी देशों में इस क्षेत्र में काफी काम किया गया है परन्तु भारत में शहरी इतिहास

का अध्ययन अभी विकास की व्यवस्था में है। इस भाग में हम भारत में इस विषय में अब तक किये गये शोधों के आधार पर तत्कालीन शहरी संरचना की जानकारी देंगे।

गांव के विपरीत शहरों की दो प्रमुख विशेषताओं पर अब आम सहमति है। प्रथम तो यह कि शहर एक घनी आबादी वाला ऐसा क्षेत्र था जिसका विस्तार सीमित और निर्धारित था। दूसरा यह कि यहां की जनसंख्या प्रमुखत: गैर-कृषि आधारित थी। इस प्रकार शहरों में व्यक्ति: स्थान अनुपात सीमित था और यहाँ के निवासी विविध प्रकार के व्यवसायों में कार्यरत थे।

मध्यकालीन भारत में शहरीकरण के विषय में विभिन्न व्याख्यायें दी गई हैं। इन व्याख्याओं में शहरीकरण के जिन कारणों पर चर्चा की गई है वह प्रमुखत: चार प्रकार के शहरी केन्द्रों के विकास की ओर इंगित करते हैं:

i) प्रशासनिक
ii) धार्मिक
iii) सैनिक/सामरिक महत्व के
iv) बाजार (वाणिज्यिक)

प्रशासनिक शहर स्वाभाविक रूप से प्रशासन के केन्द्रों के रूप में कार्य करते थे। मुगलकाल के दिल्ली और लाहौर जैसे शहर इसी श्रेणी में आते थे। धार्मिक केन्द्र प्रमुखत: तीर्थ यात्रियों को आकृष्ट करते थे, उदाहरण के लिए वाराणसी तथा मथुरा। सैनिक और सामरिक महत्व के शहरों का विकास प्रमुख रूप से छावनियों के रूप में हुआ। बाद में इन केन्द्रों में गैर सैनिक जनसंख्या भी बस गई। अटक और असीरगढ़ जैसे शहर इस श्रेणी के थे। चौथी श्रेणी में ऐसे शहर आते हैं जो वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र या उत्पादन के स्थल थे। अक्सर इस प्रकार के शहरों में दोनों गतिविधियां केन्द्रित होती थी। इस श्रेणी में मुगल साम्राज्य के पटना और अहमदाबाद जैसे शहर आते थे।

यहां हमें दो बातों का ध्यान रखना जरूरी है। पहला यह कि मुगल काल का एक औसत शहर सामाजिक व्यवहार और विशेषताओं में गांव का एक विस्तृत रूप था। यह ग्राम शहर अविच्छन्नता मुगलकालीन शहरीकरण की एक प्रमुख विशेषता थी। मुगल शहरी अर्थव्यवस्था की विविधता को देखते हुए इस काल के भारतीय शहर का कोई एक निश्चित स्वरूप स्थापित करना भ्रामक होगा। दूसरी विशेषता यह थी कि बाह्य रूप से समान (कार्यों की दृष्टि से) दिखते हुए भी दो शहर वास्तव में काफी भिन्न होते थे। वास्तव में किसी शहरी केन्द्र का विकास इसकी ऐतिहासिक परिस्थितियों और भौगोलिक अवस्थिति पर निर्भर था।

MAADHYAM IAS

28.3 शहरी परिदृश्य

मुगल शहरों की विभिन्नता के विषय में उपरोक्त चर्चा को स्वीकार करते हुए भी इन शहरों की कुछ सामान्य विशेषतायें निम्नानुसार देखी जा सकती हैं।

28.3.1 भौतिक विन्यास

अधिकांश शहर एक ऐसी चारदीवारी में स्थित होते थे जिसमें एक या अधिक प्रवेशद्वार होते थे। शहर की प्रमुख जनसंख्या इन चारदीवारी के अंदर ही रहती थी। शहरों के विस्तार के साथ अक्सर शहरी जनसंख्या इन दीवारों के बाहर तक बसने लगती थी। 17वीं शताब्दी के अंत में जॉन जार्डन का आगरा का वर्णन एक विशिष्ट मुगल शहर के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। जार्डिन के अनुसार "यह शहर नदी की दिशा में 12 कोस लम्बा है जो लगभग 16 मील के बराबर है। यह एक चारदीवारी में स्थित है, परन्तु उपशहरी बस्ती शहर की दीवारों से लगी हुई ही थी। अगर दीवारों में प्रवेश द्वार न हों तो यह कह पाना मुश्किल होगा कि आप शहर की दीवारों के भीतर हैं या बाहर।" अक्सर अमीर और कुलीन शहर की दीवारों के बाहर अपनी कोठियां और बाग बनवाते थे। इस प्रकार दिल्ली, आगरा, पटना, अहमदाबाद और इलाहाबाद जैसे नगरों के बाहर इन कोठियों और बागों के आस-पास बस्तियां बन कर उपशहर बस गये।

सुनियोजित बसाये गये शहरों में बाजार अलग से बनाये जाते थे। अन्य शहरों में सड़कों के दोनों ओर दुकानें होती थीं। दुकानदार स्वंय इनके ऊपर या पीछे के भाग में रहते थे। अधिकांश शहरों में एक से अधिक बाजार होते थे। कई बाजार किसी खास वस्तु के व्यापार के लिए विशिष्ट रूप से जाने जाते थे। अक्सर बाजारों के नाम उन विशिष्ट वस्तुओं का हवाला देते है। उदाहरण के लिए आगरा में लोहा गली (लोहे की वस्तुएं), दाल मंडी, साबुन कटरा (साबुन का बाजार), नील पाड़ा (नील के लिए), दिल्ली में जौहरी बाजार (आभुषणों के लिए), सब्जीमंडी, (सब्जी के लिए), चूड़ी वाला (चूड़ियों के लिए), आदि। दिल्ली में पहाड़गंज, अनाज की थोक मंडी थी।

जिन क्षेत्रों में शहर की जनसंख्या रहती थी वे मुहल्लों में बंटे हुए होते थे। अधिकतर मुहल्ले किसी खास जाति या उत्पादक समुदायों के नामों से जाने जाते थे। उदाहरण के लिए कुंजड़ो मुहल्ला (सब्जी के बेचने वाले) मोची बाड़ा (जूते बनाने वाले), मुहल्ला जरगरान (सुनार), कूचा रंगरेजन (कपड़े रंगने वाले), आदि इस प्रकार के नाम लगभग सभी मुगल शहरों में पाये जाते हैं। कभी-कभी यह मुहल्ले उनमें रहने वाले प्रमुख व्यक्तियों, आदि के नाम से भी जाने जाते थे।

शहरों की एक अन्य विशेषता वहां पर सरायों का होना था। **सराय** व्यापारियों और यात्रियों के लिए रहने का स्थान थी। छोटे शहर में भी कम से कम एक **सराय** होती थी। दिल्ली, आगरा, पटना, लाहौर और अहमदाबाद जैसे शहरों में बड़ी संख्या में **सरायें** पाई जाती थी। अधिकांशतः कुलीन, बड़े व्यापारी, शाही घराने की महिलायें तथा राज्य की ओर से इन **सरायों** को बनवाया जाता था। यात्रियों को यहां सामान रखने के भंडार गृह से लेकर अन्य सभी प्रकार की सुविधायें मिलती थी। भटियारों के परिवार **सरायों** के रख-रखाव का कार्य करते थे। भटियारे सरायों के देखभाल करने वालों के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। शहर में आने वाले विदेशियों को नगर के प्रशासकों को अपने आने और जाने के विषय में सूचित करना पड़ता था।

सामान्य शहरों में किसी भी प्रकार के योजनाबद्ध विकास का अभाव था। प्रमुख मार्गों के अलावा अन्य सड़के तथा गलियां संकरी और मिट्टी की बनी होती थीं। शहरों के नियमित प्रशासन के लिए एक पृथक विकसित प्रशासनिक व्यवस्था थी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

28.3.2 शहरी जनसंख्या की संरचना

शहरों की जनसंख्या एक प्रकार की न होकर मिश्रित प्रकार की थी। समकालीन स्रोतों में हमें शहरों में विभिन्न वर्गों के लोगों के निवास के विषय में जानकारी मिलती है। इनको मोटे तौर पर चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

i) कुलीन और उनके सहयोगी, राज्य के अधिकारी तथा सैनिक।
ii) व्यापारिक और वाणिज्यिक गतिविधियों से संबंधित वर्ग (व्यापारी, सर्राफ, दलाल, आदि)।
iii) धार्मिक प्रतिष्ठानों से संबंधित वर्ग, संगीतकार, चित्रकार, कवि, लेखक, वैद्य, हकीम, आदि।
iv) कारीगर, मजदूर विभिन्न प्रकार के सेवक आदि।

विभिन्न शहरों में विभिन्न वर्गों के प्रकार, संख्या, आदि उस शहर की प्रकृति पर निर्भर करते थे, अर्थात् वे प्रशासनिक केन्द्र थे अथवा वाणिज्यिक केन्द्र या अन्य। साम्राज्य के प्रमुख केन्द्र या राजधानी में संभवतः सबसे बड़ा वर्ग सम्राट और कुलीनों के सैनिक और सेवकों का था। बर्नियर (1658 ई.) ने सम्राट शाहजहां के शिविर में लोगों की संख्या लगभग 3-4 लाख आंकी थी।

अन्य प्रशासनिक केन्द्रों की स्थिति भी लगभग यही थी। गवर्नर प्रातीय उच्च कुलीन तथा अन्य प्रशासनिक अधिकारी सभी के साथ बड़ी संख्या में सैनिक, आश्रित, सेवक, गुलाम और परिवार के सदस्य होते थे।

अधिकांश बड़े शहर व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र होते थे इसलिए इन शहरों में वाणिज्यिक वर्ग महत्वपूर्ण होता था। एक अनुमान के अनुसार अहमदाबाद में केवल हिन्दू व्यापारियों की कुल जातियों और उपजातियों की संख्या लगभग 84 थी। 1640 ई. में पटना में लगभग 600 दलाल थे। समकालीन

स्रोतों में लगभग सभी बड़े शहरों में मीलों लम्बे बाजारों का वर्णन मिलता है। पटना जैसे औसत आकार के शहर में परचून की 200 से अधिक दुकानें थी। जोधपुर जैसे शहर में भी महाजनों की 600 दुकानें थीं।

शहरों में रहने वाला अन्य महत्वपूर्ण वर्ग विद्वानों, वैद्यों, हकीमों तथा कला और संगीत से जुड़े लोगों का था। सामान्यत: धार्मिक कायो के लिए और दान में दी जाने वाली राजस्व मुक्त भूमि भी शहरों के आस-पास दी जाती थी। इसके अतिरिक्त अधिकांश कवि, संगीतकार, चिकित्सक, आदि शहरों में ही रहते थे क्योंकि यहां धन कमाने के साधन थे तथा साथ ही यहीं उन्हें सम्राट और कुलीनों का संरक्षण भी प्राप्त हो जाता था।

व्यापारिक और वाणिज्यिक शहरों में एक बड़ी जनसंख्या, कारीगर, मजदूर और अन्य कार्मिक वर्गों की होती थी। हम इस काल के कारीगर उत्पादों की चर्चा इकाई 22 में कर चुके हैं। उत्पादन की विभिन्न क्रियाओं से जुड़े कारीगरों को कई वर्गों में बांटा जा सकता है।

i) ऐसे कारीगर जो स्वंय वस्तुएं बनाते और बेचते थे।
ii) ऐसे कारीगर जो सम्राट या कुलीनों के कारखानों या भवन निर्माण गतिविधियों में कार्यरत थे।
iii) कई उत्पादन क्षेत्रों में एक बड़ी संख्या अर्द्धकुशल कारीगर या अकुशल कार्मिकों के रूप में कुशल कारीगरों के सहायक के रूप में कार्य करती थी। जहाज निर्माण, हीरे, नमक या शोरे के खनन उत्पादन के ऐसे क्षेत्र थे।
iv) घरेलू सेवकों या मजदूरों के रूप में कार्यरत एक बड़ा वर्ग भी शहरों में पाया जाता था।

28.3.3 शहरी जनसांख्यिकी

तबकात-ए अकबरी (लगभग 1593 ई.) के अनुसार अकबर के काल में लगभग 120 बड़े शहर और 3200 कस्बे (छोटे शहर) थे। 17वीं शताब्दी में उद्योग व व्यापार के विकास के साथ यह संख्या भी बढ़ी होगी। निश्चित स्रोतों और अभिलेखों के अभाव में विभिन्न शहरों की ठीक-ठीक जनसंख्या पता करना संभव नहीं है। इरफान हबीब के अनुसार कुल जनसंख्या का लगभग 15 प्रतिशत शहरों में निवास करता था।

MAADHYAM IAS

विभिन्न शहरों के आकार के विषय में कुछ यूरोपीय यात्रियों के वृत्तांतों से जानकारी मिलती है। इन्होंने कहीं-कहीं तो अपने अनुमान दिये हैं और कहीं भारतीय शहरों की तुलना यूरोपीय शहरों से की है। इस प्रकार की जानकारी कुछ गिने चुने शहरों के बारे में ही दी गई है।

कुछ मुख्य शहरों के बारे में आकलन निम्नलिखित है :

शहर	आकलन	जनसंख्या
आगरा	1609	5,00,000
	1629-43	6,66,000
	1666	8,00,000
दिल्ली	1659-66	5,00,000
लाहौर	1581	4,00,000
	1615	7,00,000
अहमदाबाद	1613	1,00,000
		2,00,000
सूरत	1663	1,00,000
	1600	2,00,000
पटना	1631	2,00,000
ढाका	लगभग 1630	2,00,000

(स्रोत : इरफान हबीब, **कैम्ब्रिज इक्नॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,** भाग 1, पेज 171)

जनसंख्या के उपरोक्त आकलनों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के उस समय के शहर यूरोपीय शहरों के समकक्ष थे।

बोध प्रश्न 1

1) मध्यकालीन शहरों के उत्कर्ष के कारणों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) **सराय** पर 50 शब्दों में एक टिप्पणी लिखिये।

....

....

....

....

....

3) सही वक्तव्यों पर (√) सही का और गलत वक्तव्यों पर (×) गलत का चिन्ह लगाइए :

i) **भटियारे** सरायों का रख रखाव करते थे।

ii) **तबकात-ए अकबरी** के अनुसार अकबर के काल में 120 बड़े शहर और 3200 कस्बे थे।

iii) इरफान हबीब के अनुमान के अनुसार लगभग 12 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में निवास करती थी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

28.4 शहरी जीवन

हमारे मुगलकालीन स्रोत शहरी जीवन के विषय में काफी जानकारी प्रदान करते हैं। निम्नलिखित उपभागों में हम इसी जानकारी के आधार पर शहरी जीवन पर प्रकाश डालेंगे।

28.4.1 जीवन स्तर

मध्यकालीन शहरी जीवन स्तर में काफी विषमता दिखाई देती है। जहां एक और उच्च वर्गों के लोग शाही तरीके का रहन-सहन अपनाते थे वहीं दूसरी और शहरों की गरीब जनता निम्न स्तर का जीवन व्यतीत करती थी। गोवा में आम जनता के जीवन स्तर के बारे में लिन्शोटन (1580-1590 ई) लिखता है कि " वे इतने गरीब हैं कि एक पैसे के लिए कोड़े सहने को तैयार हैं, वे इतना कम खाते हैं कि ऐसा लगता है कि वे हवा पर जिन्दा हैं, इसलिए ये सारे लोग आकार में छोटे और इनके हाथ पांव में कोई जान नहीं है" "डी. लायट भी कुछ इसी प्रकार के विचार प्रकट करता है। वह कहता है कि "आम लोगों की स्थिति अत्यंत दयनीय है, मजदूरी कम है, मजदूरों को दिन में एक ही बार भोजन प्राप्त हो पाता है, रहने के घर तुच्छ और बिना किसी साज-सामान के हैं, जाड़ों में स्वयं को गर्म रखने के लिए पहनने और ओढने के साधन भी नहीं हैं।"

आइन-ए अकबरी तथा उस काल के कुछ यूरोपीय स्रोत (पेल्सर्ट, पेट्रोडेला वेला आदि) दर्शाते हैं कि शहरी मजदूरों की औसत आय 3-4 रुपये प्रतिमाह थी। परन्तु, शीरीन मुसवी (**इक्नॉमी ऑफ मुगल**

एम्पायर) ने अपने शोधों के आधार पर दर्शाया है कि अकुशल कार्मिक की वस्तुएँ खरीदने की शक्ति 1867-1871-72 की तुलना में 1595 ई. में ही अधिक थी। उनके अनुसार अकबर के काल में एक शहरी कार्मिक 1867 के इसी प्रकार के कार्मिक की तुलना में अधिक गेहूँ, मोटे अनाज, घी और शक्कर, आदि खरीद सकता था। इसी प्रकार वह 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अपनी तरह के मजदूर की तुलना में अधिक अच्छा भोजन आदि प्राप्त करता था। अकबर के काल के मजदूर केवल कपड़े खरीदने की क्षमता में काफी पीछे थे। एक साधारण मजदूर की तुलना में एक कुशल कारीगर की वस्तुएं खरीदने की क्षमता 19वीं शताब्दी में और भी अधिक कम हो गई थी। शीरीन मूसवी के अनुसार यह कहा जा सकता है कि 1867 की तुलना में लगभग 1600 ई. में शहरी वेतन अधिक थे।

मध्यवर्ग विशेष कर राजस्व विभाग के अधीनस्थ अधिकारी, छोटे **मनसबदार**, चिकित्सक तथा छोटे व्यापारी, आदि एक अच्छे स्तर का जीवन गुजारते थे। बुद्धिजीवी वर्ग ज्यादातर गरीब था और अधिकांशतः अपने जीवन-यापन के लिए कुछ संरक्षकों पर निर्भर था। कुलीन तथा अन्य उच्च वर्ग अत्यंत शान-शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। हमें विवरण मिलता है कि एक कुलीन के लड़के ने चांदनी चौक (दिल्ली) में एक दिन में एक लाख रुपये की खरीददारी की। मोरलैंड कहता है कि "संचय करने की जगह खर्च करना ही उस काल की विशेषता थी।" शीरीन मूसवी ने शाही घराने और कुलीनों की उपभोग पद्धति का अध्ययन किया है। उपभोग की पद्धति शाही घराने और अमीरों तथा कुलीनों की जीवन शैली पर प्रकाश डालती है।

खर्च की मद	**शाही परिवार प्रतिशत में**	**कुलीन प्रतिशत में**
हरम (जनानखाना)	18.68	14.25
रसोई	7.28	7.04
वस्त्र	8.93	7.32
भवन (निर्माण)	8.01	6.57
शिविर से संबंधित व्यय	5.53	4.54
बर्तन	7.97	6.54
पशुओं का शिकार	1.41	1.16
पुस्तकें तथा कलाकृतियां	3.60	2.96
आभूषण व रत्न	23.65	19.40
पालतू और शिकारी पशु	6.94	5.69
विविधा	1.33	1.09
नक़द अनुदान	6.67	-
पैदल सैनिक	-	8.43
हथियार	-	9.67
बोझा ढोने वाले पशु	-	2.65
प्रदर्शन के लिए रखे जाने वाले पशु	-	2.69

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इन आंकड़ों से साफ प्रदर्शित होता है कि मुगल कुलीन लगभग 75 प्रतिशत अपने आराम और विलासिता की वस्तुओं पर व्यय करता था। यह रईसी की जीवन शैली अक्सर उन्हें कंगाल बना देती थी। बर्नियर के अनुसार "......... दूसरी ओर अधिकांश अमीर कर्ज में डूबे हुए थे, सम्राट को भेंट में दिए जाने वाले कीमती उपहार और उनके विस्तृत घर-गृहस्थी के खर्चे उन्हें बर्बाद कर देते थे। इस कारण वे किसानों से अधिक से अधिक अनुचित वसूलियां करते थे।"

किन्तु कारीगर उत्पादन के विकास में कुलीनों ने काफी योगदान दिया है। शीरीन मूसवी की गणना के अनुसार कुलीनों के वेतन का लगभग 63.26 प्रतिशत किसी न किसी प्रकार के कारीगर उत्पादन पर खर्च

होता था। कुल **जमा** (अनुमानित आय) का लगभग 37.38 प्रतिशत औसत रूप से कारीगर उत्पादन पर खर्च होता था। यह कहा जा सकता है कि कारीगर उत्पादों पर खर्च काफी अधिक था। परन्तु यह उत्पादन व्यापार के उद्देश्य से नहीं अपितु व्यक्तिगत उपभोग के लिए था। इसलिए भारी निवेश के बावजूद यह उत्पादन किसी प्रकार के आंतरिक बाजार (कारीगर उत्पादन के व्यापार के लिए) को जन्म नहीं दे सका।

वस्त्र

मध्यम और उच्च् वर्गों के वस्त्र पहनने और उपभोग, आदि का स्तर लगभग समान था। पहने हुए वस्त्रों के स्तर के आधार पर वे अलग से पहचाने जा सकते थे। पुरुष विशिष्ट प्रकार की शलवार या चूड़ीदार पजामा तथा कमीज पहनते थे। जाड़ों में रूई भरी कोटी या सदरी तथा लम्बा ढीला कोट **क़बा** भी पहनते थे। साथ ही कंधों पर शॉल, कमर में पटका और सिर पर एक पगड़ी भी रहती थी। कहा जाता है कि हुमायूं ने एक नये प्रकार के कोट का चलन शुरू किया। यह कमर पर फिटिंग वाला और आगे से खुला होता था। वह इसे **क़बा** (चोगे) के ऊपर पहनता था। इस प्रकार का कोट अक्सर सम्राट द्वारा कुलीनों को सम्मानसूचक वस्त्रों (खिल्लत) के रूप में भेट किया जाता था। स्त्रियाँ ब्लाउज और एक बड़ी चादर पहनती थीं। दोआब क्षेत्र में लहंगा और चोली तथा एक प्रकार का बड़ा दुपट्टा काफी लोकप्रिय थे। मुस्लिम महिलायें ढ़ीली शलवार, कमीज और दुपट्टा तथा अक्सर बुर्का पहनती थीं। वस्त्रों के लिए सादा या धारीदार सूती और रेश्मी कपड़े का उपयोग होता था।

अकबर अपने वस्त्रों की ओर काफी ध्यान देता था। अबुल फजल के अनुसार प्रत्येक वर्ष उसके लिए एक हजार जोड़े बनाए जाते थे। वह अपने सभी पुराने वस्त्र नौकरों को दान कर देता था। बर्नियर कहता है कि "अमीर व्यापारी कोशिश करते थे कि वे दरिद्र दिखें ताकि उनसे धन न निचोड़ा जाय।" परन्तु बारबोसा कालीकट के मुस्लिम व्यापारियों के पहनावे और वस्त्रों की काफी प्रशंसा करता है। इसी प्रकार डेला वैले भी सूरत के व्यापारियों की शान-शौकत की चर्चा करता है। हिन्दू कुलीन भी अपना पहनावा अपने मुस्लिम साथियों की भांति अपनाते थे। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण मस्तक पर तिलक भी लगाते थे और राजपूत कानों में कुंडल पहनते थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

निम्न वर्ग के लोग बहुत ही कम वस्त्र पहनते थे। आगरा और लाहौर की आम जनता के विषय में साल बंक लिखता है कि "साधारण लोग इतने दरिद्र हैं कि उनमें से अधिकांश नग्न रहते हैं।" यूरोपीय यात्रियों ने दक्षिण भारत के विषय में भी लगभग इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। विजयनगर के आम लोगों के विषय में बारबोसा कहता है कि "इनका पूरा शरीर नग्न रहता है और केवल शरीर का मध्य भाग ढकने के लिए एक कपड़े का प्रयोग करते हैं। " लिन्शोटन (1580-1590 ई.) कहता है कि "गोवा के आम लोग बहुत गरीब हैं और लगभग नग्न रहते हैं।" बाबर कहता है कि "कृषक और निम्न वर्गों के लोग लगभग नग्न रहते हैं। वह एक प्रकार का लंगोट पहनते हैं जिसे टांगो के बीच से पीठ के पीछे ले जाकर गांठ लगाते हैं। औरतें भी एक प्रकार का वस्त्र पहनती हैं जिसका एक हिस्सा कमर पर बांधती हैं और दूसरा सिर के ऊपर ले जाती हैं। जाड़ों में पुरुष रूई भरा कोट और इसी प्रकार की टोपी पहनते हैं।" दक्षिण में अधिकांश लोग नंगे पांव रहते थे।

बोध प्रश्न 2

1) मुगल काल के शहरी मजदूरों के जीवन स्तर की तुलना 19वीं शताब्दी के शहरी मजदूरों से कीजिए।

....

....

....

....

....

2) मुगल काल के शहरों के गरीब लोगों के वस्त्रों पर टिप्पणी लिखिये।

....

....

....

....

....

28.4.2 सामाजिक जीवन

संयुक्त परिवार व्यवस्था का सामान्य प्रचलन था। महिलाओं को पुरुषों के अधीन रहना होता था। उच्च वर्गों की महिलायें पर्दा प्रथा का पालन करती थीं। बारबोसा का कहना है कि खम्बात में पर्दा प्रथा थी परन्तु महिलायें अपने मित्रों के यहां आती जाती रहती थीं। पर्दा प्रथा की सीमाओं के भीतर सामाजिक सम्पर्क और व्यवहार की पूर्ण स्वतंत्रता थी।

जौहर प्रथा केवल राजपूतों में ही प्रचलित थी। उनकी महिलायें असफलता या युद्ध आदि में पराजय की स्थिति में अपने सम्मान की रक्षा के लिए सामूहिक रूप से जल कर अपने प्राणों की आहुति दे देती थीं। बाबर ने चन्देरी में मेदनीराय की पराजय के बाद उसकी स्त्रियों द्वारा जौहर किए जाने का विस्तृत वर्णन किया है। उच्च जाति के हिन्दुओं में सती प्रथा भी काफी प्रचलित थी। मारवाड़ के मोटा राजा की पुत्री को अपनी इच्छा के विरुद्ध जलने के लिए बाध्य किया गया था। अकबर ने इस घटना को बहुत गंभीरता से लिया और प्रत्येक शहर और सरकार में पर्यवेक्षक नियुक्त किये। इनका कार्य इस बात पर नजर रखना था कि किसी भी स्त्री को सती होने के लिए बाध्य न किया जाए। अगर कोई स्त्री अपनी इच्छा से सती हो रही हो तो उसे न रोका जाये। अकबर ने (1587 ई.) विधवाओं को पुन: विवाह करने की इजाजत देने के संबंध में भी कदम उठाये।

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही लड़के और लड़कियों के विवाह कम उम्र में करने के पक्ष में थे परन्तु अकबर बाल-विवाह के विरुद्ध था। उसने लड़कियों के लिए शादी की न्यूनतम उम्र 14 वर्ष और लड़कों के लिए 16 वर्ष निश्चित की।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

जन्म उत्सव का विशेष महत्व था। मुसलमानों में जन्म के बाद **अकीका** (शिशु के सर के बाल मूंडना और पशु की बलि देना) उत्सव मनाया जाता था। हिन्दूओं में भी जन्म के समय धार्मिक अनुष्ठान होते थे। मध्यम वर्गों में हिन्दू बच्चे को 5 साल की उम्र में शिक्षा के लिए गुरु के पास छोड़ देते थे जबकि मुसलमानों में परंपरा थी कि बच्चे को 4 साल 4 महीने और 7 दिन की आयु पर **मकतब** (स्कूल) भेजा जाता था। इसे **बिस्मिल्लाह ख्वानी** कहा जाता था। सामान्यत: मुस्लिम लड़कों का खतना 7 साल की आयु में कराया जाता था। अकबर ने आदेश दिया कि 12 साल की आयु से पहले खतना न कराया जाये और इसे बालक की इच्छा पर भी छोड़ने का आदेश दिया। हिन्दुओं में **उपनयन** संस्कार क़ाफी महत्व था। इसमें बालक को 9 वर्ष की आयु में पवित्र धागे पहनाये जाते थे।

वैवाहिक अनुष्ठान लगभग आज प्रचलित पद्धति की ही तरह थे। हिन्दू विवाह का आरंभ तिलक और मंगनी से होता था। तत्पश्चात् लगन (विवाह की तारीख) की तिथि निर्धारित की जाती थी। गाना बजाना होता था और विवाह के विस्तृत अनुष्ठान और समारोह होते थे।

मृत्यु के बाद भी काफी अनुष्ठान और कर्मकाण्ड होते थे। पुजारी मंत्र पढ़ते थे, दान दिये जाते थे और एक साल के बाद श्राद्ध होता था। मुसलमानों में मृत्यु के तीसरे दिन **सोयम** नामक अनुष्ठान प्रचलित था।

कुलीन और बड़े व्यापारी विवाह के अवसर पर काफी धन खर्च करते थे। खेमचन्द नामक व्यापारी ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए 15 लाख रुपये खर्च करने की योजना बनाई थी परन्तु रास्ते में लूट लिया गया। दारा शिकोह के विवाह पर लगभग 32 लाख रुपये खर्च किए गए थे। 17वीं शताब्दी में सिंध

आये और एक यात्री बोक्कारों के अनुसार एक आम विवाह पर लगभग 4-5 हजार रुपये खर्च होते थे। अपने परिवार में एक विवाह के अवसर पर राजा, भगवानदास ने कई घोड़े, 100 हाथी, भारत, अबीसीनिया और करकेशिया के लड़के लड़कियां, विभिन्न प्रकार के रत्न जड़ित गहने, बर्तन आदि, दिये।

शिक्षा

शिक्षा की सुविधायें आम स्त्रियों की पहुंच से बाहर थीं। उच्चवंश की महिलाओं को शिक्षा की पूर्ण सुविधायें थीं। राजकुमारियों के लिए भी शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। अकबर ने भी स्त्रियों की शिक्षा में रुचि ली। बदायूनी लिखता है कि उसने एक नया पाठ्यक्रम निर्धारित किया था। उसने फतेहपुर सीकरी में लड़कियों के लिए एक स्कूल की स्थापना की। शाही परिवार की कुछ महिलाओं ने भी लड़कियों की शिक्षा में विशेष रुचि दिखाई। हुमायूं की पत्नी बेगा बेगम ने हुमायूं के मकबरे के पास लड़कियों के लिए एक विद्यालय की स्थापना की। अकबर की सौतेली मां महम अंगा ने भी दिल्ली में एक स्कूल बनवाया। हुमांयू की बहन गुलबदन बानू बेगम फारसी और तुर्की का अच्छा ज्ञान रखती थी। उन्होंने **हुमायूंनामा** नामक ग्रंथ की रचना की। इसी प्रकार नूरजहां (जहांगीर की पत्नी), जहांआरा (शाहजहां की पुत्री), तथा जेबुननिसा (औरंगजेब की पुत्री) अपने काल की साहित्यक रुचि वाली महिलायें थीं। औरंगजेब ने अपनी सभी पुत्रियों की अच्छी शिक्षा की व्यवस्था की। नृत्य और संगीत को पसंद नहीं किया जाता था। नूरजहां और जहांआरा राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाती थीं। अनेक कुलीन **मनसबदार** फारसी के ज्ञाता थे। कुछ गणित और चिकित्सा विज्ञान की जानकारी रखते थे। और कुछ लेखन कला में भी रुचि रखते थे। मुगल काल के अनेक कुलीनों के पास अपने व्यक्तिगत ग्रंथालय थे। अब्दुल रहीम खान खाना के पास अपना एक बड़ा ग्रन्थालय था जिसमें लगभग 95 सुलेखक, शिल्पी, चित्रकार, जिल्दसाज और पाण्डुलिपियों की सजावट करने वाले थे।

बाबर स्वयं तुर्की भाषा का महान विद्वान था। उसकी पुस्तक **बाबरनामा** को तुर्की गद्य की एक उत्कृष्ट कृति माना जाता है। वह फारसी का भी ज्ञाता और एक कुशल सुलेखक था। हुमायूं और उसके बाद के लगभग सभी मुगल सम्राट फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। हालांकि, अकबर, परिस्थितियों के कारण, औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाया परन्तु उसने अनेक कवियों, लेखकों, दार्शनिकों, चित्रकारों तथा चिकित्सकों, आदि को संरक्षण प्रदान किया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 3

1) अपने काल की सामाजिक कुरीतियों के प्रति अकबर के दृष्टिकोण की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2) मुगल राजकुमारियों की शिक्षा की स्थिति पर टिप्पणी लिखिये।

....

....

....

....

....

28.4.3 मनोरंजन और आमोद प्रमोद

जुआ खेलना, हाथियों की लड़ाई, चौपड़, **चंडाल मंडल**, शतरंज, ताश, पोलो, आदि ऐसे प्रमुख खेल थे जिनमें उच्च वर्ग के लोग रुचि लेते थे। हिन्दुओं और विशेषकर राजपूतों में चौपड़ का खेल बहुत लोकप्रिय था। अकबर ने चौपड़ के मोहरों के स्थान पर व्यक्तियों का प्रयोग करना शुरू किया और चौपड़ एक अत्यंत रोचक खेल **चंडाल मंडल** के रूप में विकसित हुआ। ताशों का खेल (**गंजीफा**) संभवत: भारत में पहली बार बाबर द्वारा लाया गया था। अकबर के काल में यह काफी लोकप्रिय हो गया। जुआ खेलना आम प्रचलन में था। कबूतरबाजी और मुर्गों की लड़ाई आदि खेल भी काफी प्रचलित थे। अकबर स्वयं अपने पक्षियों को दाना देता था और उसने कबूतर उड़ाने के खेल को **इश्क बाजी** (प्रेम का खेल) का नाम दिया।

शिकार खेलना शाही घराने का एक प्रिय शौक था। मुगल **कमरगाह** शिकार का आयोजन करते थे। इसमें एक संख्या में सवारों द्वारा (कभी-कभी लगभग 50,000 घुड़सवार) एक बड़े क्षेत्र से जानवरों को हुँकार कर शाही शिकारगाह में लाया जाता था। इस हाँके द्वारा धीरे-धीरे एक घेरे में जानवरों को लाया जाता था। तत्पश्चात् सम्राट और प्रमुख कुलीन घेरे के जानवरों का शिकार करते थे। हिरन, बकरियां, हाथी, आदि भी शिकार के लिए पाले जाते थे। चीतों को हिरन का शिकार करने के लिए पाला और प्रशिक्षित किया जाता था। उत्तर भारत के बहुत से क्षेत्रों में शाही शिकारगाहें स्थापित की गई थी जो शाही परिवार के सदस्यों के शिकार खेलने के लिए सुरक्षित रहती थीं। चीता, शेर और हाथियों का शिकार करना शाही परिवार का विशेषाधिकार था।

साधारणतया शाही परिवार की महिलायें महल के बाहर के खेलों में भाग नहीं लेतीं थी। परन्तु कुछ पोलो खेलती थीं। केवल नूरजहां ही शेर और बाघों के शिकार के लिए जाती थी। कबूतर बाजी तथा आंखमिचोली ही इनके प्रिय खेल थे।

MAADHYAM IAS

उत्सव और मेले

धार्मिक उत्सव तथा तीर्थस्थलों और मजारों की यात्रा मन बहलाने के प्रमुख साधन थे। सूफी संतों की मजारों पर बड़े पैमाने पर **उर्स** (वार्षिक उत्सव) मनाये जाते थे। दिल्ली में शेख निजामुद्दीन औलिया और शेख बख्तियार काकी की मजारों पर बड़े **उर्स** होते थे। दिल्ली में हजरत नासिरउद्दीन चिराग दिल्ली (ह. निजामउद्दीन औलिया के उत्तराधिकारी) की मजार पर विशेषकर दीपावली के महीने में प्रत्येक इतवार को बड़ी संख्या में हिन्दू और मुसलमान जमा होते थे। **ईद उल फितर, ईद उल जुहा, नौरोज** (ईरानी नव वर्ष), शबबरात, होली, दशहरा, दीपावली, रक्षा बंधन, बसंतपंचमी, आदि प्रमुख त्यौहार काफी धूम-धाम से मनाये जाते थे। मेलों का भी आयोजन होता था। गढ़मुक्तेश्वर का प्रसिद्ध मेला जो आज भी लगता है, मध्य काल में ही शुरू हुआ था। दशहरे का त्यौहार क्षत्रिय तथा अनेक खेतिहर समुदायों में काफी लोकप्रिय था। गंगा के किनारे लगने वाला कुंभ मेला सर्वाधिक लोकप्रिय था। **मुहर्रम** के अवसर पर शहर की सड़कों से **ताजियों** (**करबला** के शहीदों की मजारों की अनुकृतियां) की शोभायात्रा निकाली जाती थी।

संगीत

बड़े अमीर अपने भवनों और हवेलियों में मुशायरों का आयोजन करते थे। जहां कवि अपनी रचनाओं का पठन करते और साहित्यिक चर्चा करते थे। संगीतकार और गायक जनान-खाने में सम्राट और महिलाओं के मनोरंजन के लिए अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। कविन्द्र, चित्रा खां, लाल खां तथा श्रीमन शाहजहां के प्रिय संगीतकार थे। शाहजहां के एक अमीर शाहनवाज खां ने भी बड़ी संख्या में संगीतकारों को संरक्षण प्रदान किया। सम्राट मौहम्मद शाह भी बड़ा संगीत प्रेमी था। उसके काल में बोली खां, जलाला, चमनी, और कमलबाई प्रसिद्ध संगीतकार थे। नियामत खां एक कुशल बांसुरी वादक और ख्याल शैली का गायक था। उसकी शिष्या पन्ना बाई एक अत्यंत सुरीली आवाज वाली गायिका थी। ताज खां कव्वाल तथा मईनुद्दीन, कुशल कव्वाली गायक, और मौहम्मद शाह के काल के प्रसिद्ध संगीतकार थे।

हिजड़े सार्वजनिक नृत्यों में भाग लेते थे। मियां हैगा नामक हिजड़ा शाहजहांनाबाद के किले के सामने उर्दू बाजार के चौक में नृत्य का प्रदर्शन करता था। उसे देखने के लिए काफी भीड़ लग जाती थी। आसा पुरा नाम की एक हिन्दू नर्तकी भी काफी प्रसिद्ध थी।

भाटों और चारणों द्वारा आल्हा और नल दमयन्ती का गायन किया जाता था। हिन्डोलों और श्रवनी जैसे श्रवण गान भी लोकप्रिय थे। पश्चिमी तटों के क्षेत्र में गुजराती नृत्य गर्भा काफी लोकप्रिय था। कठपुतलियों का तमाशा, बंदरों के खेल, सांपों का प्रदर्शन, नटों के कर्तब आम जनता के प्रिय मनोरंजन थे। बड़े लोगों के घरों में नृत्य और भोजों के बड़े जश्न (समारोह) आयोजित किए जाते थे। हुमांयू ने यमुना नदी के तट पर पिकनिक मनाने के आयोजन शुरू किये। उसने शाही परिवार की महिलाओ के लिए **मीना बाजार** आयोजित करने की परंपरा भी शुरू की जो उसके बाद के सम्राटों के काल में और भी समृद्ध और विकसित हुए।

मद्यपान सामान्य प्रचलन में था। अकबर का मानना था कि सीमित मात्रा में शराब का सेवन स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। अफीम का सेवन भी आम था। भांग एक अन्य नशीला पदार्थ था जिसका सेवन होता था।

16वीं शताब्दी में तम्बाकू के प्रयोग की जानकारी नहीं थी। 17वीं शताब्दी में जब भारत में तम्बाकू का प्रचलन हुआ तो इसका प्रयोग तेजी से फैल गया। वेश्यावृत्ती भी प्रचलित थी।

बोध प्रश्न 4

1) निम्न को परिभाषित कीजिए ?

इश्कबाजी ....

....

....

....

चन्डाल-मंडल ....

....

....

....

कमरगाह शिकार ....

....

....

....

2) **उर्स** के उत्सवों पर टिप्पणी ?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

28.5 सारांश

मध्यकाल में शहरी केन्द्र और शहरी जीवन एक विकसित अवस्था में थे। भारत में नगर, शहर और ग्रामीण क्षेत्रों का एक अच्छा मिश्रण थे। इसका स्पष्ट कारण यह था कि अधिकांश शहर वास्तव में गांव का विस्तार ही थे। शहरी जनसंख्या मिली जुली प्रकार की थी। जीवन स्तर में भी विषमतायें थीं। जहां तक और शाही परिवार और उच्च कुलीन वर्ग विलासिता और वैभव का जीवन व्यतीत करते थे वहीं दूसरी ओर शहरी गरीब अत्यंत दरिद्रता का जीवन गुजारते थे। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि मुगलकालीन शहरों के मजदूर और कार्मिक वर्ग की खाद्य पदार्थ खरीदने की क्षमता 19वीं शताब्दी के अपने समकक्ष वर्गों की तुलना में, अधिक थी। इस मान दंड के आधार पर मुगलकालीन शहरी कार्मिक वर्ग 19वीं शताब्दी के ऐसे वर्ग की तुलना में कुछ बेहतर दिखाई देता है।

मुगलकाल में कई सामाजिक कुरितियों जैसे सतीप्रथा, बाल विवाह, शिशु बलि तथा कुछ अन्य प्रथायें जैसे पर्दा, जौहर, आदि प्रचलन में थी। अकबर ने सुधार कुछ लागू किये। उसने जबरदस्ती सती होने की प्रथा पर रोक लगाई। शिक्षा की सुविधा अधिकांश स्त्रियों की पहुंच से बाहर थी। शाही परिवार की महिलाओं को औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था थी। मनोरंजन और क्रीड़ा के क्षेत्र में मुगल सम्राटों ने कुछ मौलिक योगदान किया। कुछ नये खेलों का प्रचलन किया (ताश, आदि) तथा कुछ खेलों में किंचित परिवर्तन किये (चौपड, आदि)। धार्मिक त्यौहार और मेलों का ओयोजन आज की ही भांति काफी धूमधाम से किया जाता था। आजकल प्रचलित बहुत से मेलों का प्रारंभ वस्तुतः मुगल काल में हुआ था।

28.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 1

1) भाग 28.2 देखें। विभिन्न प्रकार के नगरों के उत्थान के कारणों की विवेचना करें।

2) देखें उपभाग 28.3.1 ।

3) i) √ ii) √ iii) ×

बोध प्रश्न 2

1) देखें उपभाग 28.4.1 तथा तुलना करें कि क्या मध्यकालीन कार्मिक की स्थिति बेहतर थी।

2) देखें उपभाग 28.4.1

बोध प्रश्न 3

1) देखें उपभाग 28.4.2 समकालीन सामाजिक बुराइयों की ओर अकबर की संवेदनशीलता की चर्चा कीजिए। अकबर ने हिन्दु तथा मुसलमानों में प्रचलित कुप्रथायों को सुधारने के प्रयास किये।

2) देखें उपभाग 28.4.2

बोध प्रश्न 4

1) देखें उपभाग 28.4.3 (मनोरंजन तथा आनन्दोत्सव)।

2) देखें उपभाग 28.4.3 (त्यौहार और मेले)।

इकाई 29 धार्मिक विचार और आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य

29.1 प्रस्तावना

29.2 भक्ति आंदोलन का प्रभाव

- 29.2.1 विचारधारा
- 29.2.2 प्रमुख मत
- 29.2.3 भक्ति.आंदोलन का प्रभाव

29.3 रहस्यवाद

- 29.3.1 सूफी दर्शन
- 29.3.2 सैद्धांतिक ग्रंथ
- 29.3.3 प्रमुख **सिलसिले**
- 29.3.4 **महदवी** आंदोलन

29.4 18वीं शताब्दी में पुनर्रुत्थानवादी इस्लामी आंदोलन

29.5 सारांश

29.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

29.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भक्ति आंदोलन की विचारधारा से परिचित हो सकेंगे;
- भक्ति आंदोलन पर विभिन्न मतों पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- समाज साहित्य आदि पर भक्ति आंदोलन के प्रभाव को रेखांकित कर सकेंगे;
- इस्लामिक रहस्यवाद, सूफी दर्शन और प्रमुख सूफी सिलसिलों का उल्लेख कर सकेंगे;
- **महदवी** आंदोलन के चरित्र और दर्शन पर प्रकाश डाल सकेंगे; और
- 18वीं शताब्दी के पुनर्रुत्थानवादी आंदोलनों की प्रकृति को समझा सकेंगे।

MAADHYAM IAS

29.1 प्रस्तावना

जब इस्लाम भारतीय उप-महाद्वीप में आया तो उस समय बौध धर्म अपना वर्चस्व खो चुका था। ब्राह्मणवाद धर्म बौध धर्म के सिद्धातों और आर्यो के पूर्व की प्रथाओं को समेटकर अपनी स्थिति मज़बूत करने की कोशिश कर रहा था। हालांकि इस्लाम यहां के लिए बिल्कुल नयी चीज़ था पर इसने अपने सार्वभौम, बंधुत्व और मानव समानता के सिद्धांतों की सहायता से भारतीयों को प्रभावित किया। ताराचंद के शब्दों में केवल हिंदू धर्म, हिंदू कला, हिंदू साहित्य और हिंदू विज्ञान में ही मुस्लिम तत्व समाहित नहीं हुए बलिक हिंदू संस्कृति और हिंदू विचारधारा में भी परिवर्तन हुआ और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन के प्रति मुसलमान भी जागरूक हुए इस प्रकार आदान-प्रदान की प्रक्रिया शुरू हुई। अलबरूनी, अमीर खुसरो, अबुल फ़ज़ल, दारा शिकोह आदि मुसलमानों ने हिंदू धर्म को समझने की कोशिश की और हिंदू धर्म के संदर्भ में उन्होंने मुसलमानों की समझ को विकसित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। उन्होंने संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया। फिरोज शाह तुगलक, काश्मीर के जैनुल अबीदीन, सिकंदर लोदी, अकबर, जहांगीर आदि ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। इसका एक परिणाम यह हुआ कि मिर्जा मजहर जान जाना ने 18वीं शताब्दी में राम और कृष्ण को पैगम्बर के रूप में घोषित कर दिया।

धर्म, खासकर भक्ति और सूफी, के क्षेत्रों में दो महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों की झलक इस काल में मिलती है। आगे आने वाले भागों में हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

29.2 भक्ति आंदोलन

भारत में मुसलमानों के आगमन के समय शंकराचार्य के सर्वेश्वरवादी दर्शन के बावज़ूद हिंदू समाज में ईश्वरवाद, वैष्णववाद और शाक्त संप्रदाय के अनुयायी शामिल थे। पर कुछ ऐसे भी बुद्धिजीवी थे जिन्हें (कर्म मार्ग) कर्म के पथ पर विश्वास नहीं था बल्कि वे मुक्ति के लिए (ज्ञान मार्ग) ज्ञान के मार्ग को अधिक उपयुक्त मानते थे। इन विचारों के प्रतिपादकों की आपसी मत भिन्नता ने मनुष्य के वास्तविक नैतिक व्यवहार मनुष्य के जीवन के बेहतर होते स्तर और पृथ्वी पर उसके इच्छित भाग्य की पूर्ति को पूरी तरह नज़रअंदाज कर दिया। अपनी समस्त दार्शनिक और अनुष्ठानिक प्रकृति के साथ ब्राह्मणवाद एक बौद्धिक सिद्धांत बन कर रह गया। इसने लोगों की व्यक्तिगत धार्मिक आकांक्षा को नजरअंदाज किया। इसका मूलभूत सिद्धांत अवैयक्तिक और चिंतन पर आधारित था। लोग एक ऐसे नैतिक और भावनात्मक पंथ की खोज में थे जो उनके हृदय को तृप्त कर सके और उन्हें नैतिक दिशा दिखा सके। पर ऐसा दार्शनिक ब्राह्मणवाद लोगों की समझ के बाहर था। इन परिस्थितियों में भक्ति का उदय हुआ जिसमें भक्ति के साथ-साथ भगवान के साथ प्रेम करने की बात भी कही गयी थी।

29.2.1 विचारधारा

इस विचारधारा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें आत्मा को ईश्वर के साथ बिल्कुल आत्मसात कर दिया गया है। भक्ति शब्द का उल्लेख 8वीं शताब्दी ईसा पूर्व में पाली साहित्य में मिलता है। भागवत गीता, बौध-पूर्व काल के ग्रंथों और छानदोग्य उपनिषद् में एक व्यक्तिगत भगवान के प्रति भक्ति के उदय का संकेत मिलता है। रूढ़ बौद्धिकतावाद की प्रक्रिया के रूप में भक्ति का जन्म हुआ। अत: वेबर के इस कथन को स्वीकार करना कठिन है कि भक्ति एक विदेशी विचारधारा है और यह इसाई धर्म के माध्यम से भारत पहुंचा। बार्थ और सेनार्ट जैसे विद्वानों का भी मानना है कि भक्ति का जन्म भारत में हुआ था और यह भारतीय विचारधारा का ही प्रतिफलन है। पर इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि अपने विकास की प्रक्रिया में इसने बाहरी प्रभाव ग्रहण ही नहीं किया खासकर भारत में इस्लाम के आगमन के बाद। हालांकि हिंदूओं का प्रारंभिक दृष्टिकोण हमेशा से पुरानी मान्यताओं पर आधारित था पर इसमें काफी सुधार आया है।

MAADHYAM IAS

भागवत् गीता के काल से लेकर 13वीं शताब्दी तक भक्ति का विकास होता रहा और क्रम में परम्परागत क्लासीकल दर्शन और व्यक्तिगत ईश्वर के बीच समझौते की प्रक्रिया चलती रही। भागवत् गीता के लेखों का उद्देश्य एक निश्चित दर्शन प्रतिपादित करना नहीं था बल्कि हिंदू दर्शन के विभिन्न मतों के बीच सामंजस्य स्थापित करना था। भागवत् गीता के अंतर्गत भक्ति में एक ईश्वर और सर्वेश्वरवाद को मिला दिया गया है।

इस प्रकार 13वीं शताब्दी में जब इस्लाम भारत के अंदरूनी इलाकों में प्रवेश करने लगा तब भक्ति काफी हद तक वैदिक बौद्धिकतावाद के घेरे में पड़ी हुई थी। यह भी उल्लेखनीय है कि भागवत् गीता में जाति विभेद को स्वीकार किया गया है।

29.2.2 प्रमुख मत

भक्ति की अवधारणा को कई स्तरों और कई दृष्टिकोणों से परिभाषित और विश्लेषित किया गया। अत: एक दक्षिण भारतीय शैव ब्राह्मण शंकरा ने अद्वैत (एकेश्वरवाद) का सिद्धांत प्रतिपादित किया और उपनिषद् में दिए गए ज्ञान के द्वारा मुक्ति के सिद्धांत का प्रचार प्रसार किया। रामानुज एक दूसरे भारतीय ब्राह्मण थे जिन्होंने अद्वैतवादी होते हुये भी यह स्वीकार नहीं किया कि ईश्वर रूप और गुणों से परे हो सकता है। भक्ति के माध्यम से ही मुक्ति हो सकती है और भक्ति योग सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहस्यवादी प्रशिक्षण है। भक्त और ईश्वर का आपसी संबंध पूर्ण संबंध का एक कण था। प्राप्ति मुक्ति का दूसरा साधन था। रामानुज के भगवान में व्यक्ति तत्व की प्रधानता थी उनका मानना था कि जिस प्रकार मनुष्य को ईश्वर की आवश्यकता होती है उसी प्रकार ईश्वर को भी मनुष्य की आवश्यकता होती है। ईश्वर अपने में से ही व्यक्तिगत आत्मा का निर्माण करता है। पुन: यह आत्मा परमेश्वर में हमेशा के लिए लीन हो जाती है। उसका अलग अस्तित्व भी होता है। रामानुज के इस मत को विशिष्ट अद्वैतवाद कहा जाता है।

भागवत् पुराण के संस्कृत संस्करण के भारतीय भाषाओं में अनुवादित होने से हिंदू धर्म में भक्ति की अवधारणा तेजी से फैली।

रामानुज के शिष्य (1360-1470) ने नये पंथ की स्थापना की। मध्यकालीन भारत के धार्मिक इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। उन्होंने तुगलकों के अधीन, उत्तर भारत में इस्लाम के विकास की बेहतर जानकारी दी। उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया, विचार एकत्र किये और उनका सावधानी पूर्वक निरीक्षण किया। उन्होंने हिंदू अनुष्ठानों की रूढ़िवादिता का विरोध किया और उनके अनुयायी अद्‌वधुता (असंबद्ध) के नाम से प्रसिद्ध हुये और उन्होंने अपने को सभी प्रकार के धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों से मुक्त कर लिया। पर वे अतीत से बहुत दूर तक जाने को तैयार नहीं थे। इसी कारण अपने आनंद भाष्य में उन्होंने शुद्रों द्वारा वेद पढ़ने के अधिकार को मान्यता प्रदान नहीं की। इस प्रकार रामानंद से सामाजिक समानता की आशा नहीं की जा सकती थी। इसके बावजूद रेदास और कबीर जैसे व्यक्ति उनके शिष्य हुए। रामानन्द की शिक्षा से हिंदुओं में दो विचारधाराओं का उदय हुआ। इन्हें सगुण और निर्गुण के रूप में जाना जाता है। सगुण धर्म से तुलसीदास का नाम जुड़ा हुआ है जिन्होंने धार्मिक भक्ति को साहित्यिक रूप प्रदान किया। राम को एक अवतार मानते हुये और व्यक्तिगत रूप से उसकी आराधना करते हुए इस मत के अनुयायियों ने राम को लोकप्रियता दिलाई और इसके साथ-साथ वेदों की मान्यता भी बनाए रखी।

कबीर दूसरे मत का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने एकेश्वरवाद का प्रचार किया। वर्णाश्रम व्यवस्था को समाप्त करने की बात की और वेदों और अन्य पवित्र ग्रंथों की सर्वोच्चता पर प्रश्न चिह्न लगाया। कबीर मत के अनुयायियों ने इस्लाम धर्म को समझने की कोशिश की और उन्होंने उसके आधारभूत सिद्धांतों को अपनाने का उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया। इसी कारण सूफी साहित्य में भी उनका उल्लेख मिलता है। 17वीं शताब्दी में मिरात उल असर में उन्हें फिरदोसिया सूफी कहा गया है। दाबिस्तान-ए-मजाहिब ने कबीर को वैष्णववादी वैरागियों की पृष्ठ भूमि में देखा है। अबुल फज़ल ने कबीर को मुवाहिद (एकेश्वरवादी) कहा है। कबीर के दर्शन पर आधारित प्रमुख ग्रंथ बीजक के तौर पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने कभी भी धर्म की स्थापना की बात नहीं सोची थी। यह प्रवृत्ति उनके देहांत के बाद पनपी। वे मुख्य रूप से भक्ति द्वारा प्रतिपादित समन्वय की अवधारणा को स्वीकार करते थे और जिन लोगों ने उनसे जुड़ने की कोशिश की उन्होंने उनका स्वागत किया। सर्वोच्च ईश्वर में विश्वास उनकी अवधारणा का मूल आधार था। उनका यह मानना था कि ज्ञान या कर्म से नहीं बल्कि भक्ति से ही मुक्ति संभव है। उन्होंने न तो हिंदुओं का पक्ष लिया और न मुसलमानों का बल्कि उनमें निहित अच्छे तत्वों की प्रशंसा की।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सिख धर्म

भारतीय दर्शन और विचारधारा में गुरू नानक के उपदेश और दर्शन का विशेष महत्व है। उनके दर्शन में 3 तत्व प्रमुख हैं (गुरू, शबद और संगत)। गुरू नानक ने प्रचलित धार्मिक विचारों का मूल्यांकन और आलोचना की और एक सच्चे धर्म की स्थापना करने का प्रयास किया जो उन्हें मुक्ति की ओर ले जा सकता था। उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया, तीर्थ स्थानों की यात्रा का समर्थन नहीं किया और न ही अवतारवाद के सिद्धांत को माना। उन्होंने रूपवाद और अनुष्ठानवाद का भी विरोध किया। उन्हें ईश्वर की एकता पर विश्वास था और उनका मानना था मुक्ति के लिए एक सच्चे गुरू का होना आवश्यक है। उन्होंने लोगों को आचार और पूजा के सिद्धांतों का पालन करने को कहा : सच, हलाल, खैर, नियत और ईश्वर की सेवा। नानक ने जाति प्रथा की भी भर्तसना की और इससे पैदा होने वाली असमानता का भी विरोध किया। उनके अनुसार किसी व्यक्ति के व्यवहार और कार्यों के आधार पर जाति और सम्मान निर्धारित होना चाहिए। वे मनुष्य के सार्वभौम बंधुत्व, पुरुष और नारी की समानता में विश्वास रखते थे। उन्होंने नारी मुक्ति की दिशा में भी काफी प्रयत्न किये और सती-प्रथा का विरोध किया। नानक ने ब्रह्मचर्य और शाकाहारिता का समर्थन नहीं किया। उन्होंने न्याय, न्यायोचित और स्वतंत्रता जैसी अवधारणाओं पर बल दिया। नानक के पदों में मुख्य रूप से दो अवधारणाएँ शामिल हैं : सच और नाम। शबद (शब्द), गुरू और हुक्म (ईश्वर का आदेश) ईश्वर आत्माभिव्यक्ति के आधार बनते हैं। उन्होंने कीर्तन और सतसंग पर भी बल दिया। उन्होंने सांप्रदायिक भोज (लंगर) की शुरुआत की। ताराचंद के अनुसार नानक पर सूफियों का प्रभाव था। नानक और बाबा फरीद के पदों में विचारों की समानता देखी जाती है। इन दोनों में निष्ठापूर्ण समर्पण और एकेश्वर के प्रति समर्पण का भाव मिलता है। पर इसी के साथ-साथ गुरू नानक ने ऐश्वर्यपूर्ण जिंदगी व्यतीत करने के लिए सूफियों की आलोचना भी की। गुरू

नानक ने हिंदुओं और मुसलमानों को एक करने की कोशिश की और निश्चित रूप से उन्होंने अपने उपदेशों में हिंदू धर्म और इस्लाम की आधारभूत अवधारणाओं को शामिल करने की कोशिश की। सिखों के धार्मिक ग्रंथ गुरू ग्रंथ साहब का संकलन गुरू अर्जुन ने किया था। 10वें गुरू गोविंद सिंह की मृत्यु के बाद ईश्वरीय तत्व दूसरे गुरू को हस्तांतरित नहीं हुआ और यह ग्रंथ और संप्रदाय के लोगों में समाविष्ट हो गया।

ये गुरू मुख्य रूप से खत्री , व्यापारिक जाति के थे और उनके अनुयायी मुख्य रूप से ग्रामीण जाट थे। गुरू गोविंद सिंह ने सिखों के बीच खालसा (बंधुत्व) का प्रतिपादन किया। सिख सम्प्रदाय के अंतर्गत खत्री और अरोड़ा के साथ-साथ जाट भी शामिल हैं। राम गढ़िया सिख के रूप में जाने जाने वाले शिल्पकार और अनुसूचित जाति से सिख धर्म में परिवर्तित लोग हुये। सिख पंथ में जातिगत चेतना अस्तित्व में थी पर इसका महत्व अधिक नहीं था।

दादू (लगभग 1544-1603) भी कबीर के सिद्धातों से प्रभावित थे। दोहों और कविताओं के अपने संग्रह बाणी में उन्होंने अल्लाह, राम और गोविंद को अपना गुरू माना है। दादू के ब्रह्माण्ड ज्ञान और आत्मा शुद्धि जैसे विचारों पर सूफी प्रभाव दिखाई पड़ता है। 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन के बाद दादू पंथ नागाओं या पेशेवर लड़ाकुओं में तबदील हो गया।

बोध प्रश्न 1

1) भक्ति आंदोलन के दो प्रमुख मतों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) भक्ति आंदोलन की विचारधारा पर संक्षिप्त में विचार कीजिए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

....

....

....

....

....

3) सिख धर्म के प्रमुख विचारों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

मराठा वैष्णव धर्म

वैष्णव धर्म के मराठा पंथ या भागवत् धर्म का लम्बा इतिहास है। 13वीं शताब्दी के अंत तक महाराष्ट्र के कवि संतों ने भक्ति आंदोलन के दर्शन से इसे समृद्धि और तीव्रता दी। इनमें सर्वप्रमुख ज्ञानेश्वर हैं वे एक ब्राह्मण थे और उन्हें मराठा वैष्णव धर्म का महान प्रतिपादक बताया जाता है। उन्होंने भागवत् गीता पर भावार्थ दीपिका या ज्ञानेश्वरी नाम से मराठी टीका लिखी थी। इस आंदोलन का मुख्य केंद्र पंढरपुर था। बाद में पंढरपुर स्थित विठोबा का पूजा-स्थल महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन का प्रमुख आधार बन गया। पंढरपुर का कृष्ण भक्ति आंदोलन, मंदिर और मूर्ति से गहरे रूप में जुड़ा हुआ था। पर इसकी प्रकृति मुख्य रूप से मूर्ति पूजा पर ही आधारित नहीं थी, विठोबा का महत्व एक साधारण देवता से कहीं ज्यादा था, इसका महत्व प्रतीतात्मक था।

इस वैष्णव धर्म की मुख्य विशेषता इसका अनुष्ठान विरोधी और जाति विरोधी होना था। महाराष्ट्र के इस वैष्णववादी, अनुष्ठान विरोधी और जाति विरोधी आंदोलन की तुलना उत्तर भारत के अन्य रूढ़िवादी आंदोलन से की जा सकती है।

कवि संतों ने समाज के निचले हिस्से तक धर्म को पहुँचाने की कोशिश की। इन्होंने भागवत् गीता को मराठी धुनों में संगीतबद्ध किया। ज्ञानेश्वर ने महाराष्ट्र में भागवत् धर्म की आधारशिला रखी और विठोबा की मूर्ति की स्थापना करने वाले और उन्हें पूजने वाले बरकरी पंथ को बढ़ावा दिया। विठोबा बरकरी पंथ के भगवान थे। इसके अनुयायी गृहस्थ होते थे जो साल में दो बार विठोबा के दर्शन हेतु जाया करते थे। इसकी सदस्यता में जाति के आधार पर कोई बंधन नहीं था। अतिशुद्र कुम्हार, माली, माहार (जाति बहिष्कृत) और अलुते-बलुतेदारों को भी इसमें शामिल किया गया। संत चोका, गोरा कुम्हार, नरहसि सुनार, बंका माहार आदि हरिजन संत थे।

ज्ञानेश्वर के काल में नामदेव (दर्जी), तुकाराम, रामदास और एकनाथ (ब्राह्मण) प्रमुख मराठी संत थे। उन्होंने ज्ञानेश्वर की परम्परा को आगे बढ़ाया। तुकाराम और रामदास (शिवाजी के गुरू) ने भी जाति विरोधी और अनुष्ठान विरोधी मान्यताओं का प्रचार किया। एकनाथ ने लोक भाषा मराठी में अपनी रचनायें प्रस्तुत कीं। उन्होंने माराठी साहित्य में अध्यात्मवाद की जगह वर्णनात्मक रचनाओं पर विशेष बल दिया। उन्होंने अवंग ओर छंद (दोहा) के रूप में अपने उपदेश प्रस्तुत किये जिसे गाथा के नाम से जाना जाता है। यह मराठा वैष्णव वाद के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है। धार्मिक निर्देश के लिए वरकरी मराठा संतों ने कीर्तन और निरूपण जैसी नयी विधियों का विकास किया। इस मराठा आंदोलन ने मराठी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन संतों ने लोक भाषा का उपयोग किया जिसके कारण मराठी को साहित्यक भाषा की गरिमा प्राप्त हुई। वरकरी सम्प्रदाय के साहित्य से हमें इस आंदोलन की अकुलीन या जन प्रवृत्ति का पता चलता है। इस आंदोलन ने कुनबियों (किसानों), बनियों (व्यापारियों), शिल्पियों आदि को संबोधित किया। एम. जी. रानाडे बताते हैं इस आंदोलन के दौरान लोक साहित्य का तेजी से विकास हुआ और इसने निम्न जाति के उत्थान में सहायता की।

गौड़िया वैष्णववाद

MAADHYAM IAS

गौड़िया वैष्णववाद आंदोलन और चैतन्य आंदोलन (तब वैष्णव आंदोलन) ने चैतन्य के जीवन और शिक्षा से प्रभाव ग्रहण किया और इसका प्रभाव आसाम, बंगाल और उड़ीसा के लोगों के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ा। लोग केवल उनके उपदेशों से ही प्रभावित नहीं हुये बल्कि उन्हें ईश्वर के अवतार के रूप में पहचानने लगे। पहले हम चैतन्य के काल से पूर्व के बंगाल और उड़ीसा की सामाजिक और धार्मिक स्थितियों का सर्वेक्षण कर लें । सामाजिक ढाँचा वर्णाश्रम पर आधारित था। शुद्रों और निम्न जातियों पर तरह-तरह के जुल्म ढाये जाते थे। शाक्त-तांत्रिक जैसे धार्मिक पंथों का वर्चस्व कायम हो रहा था। बंगाल की मध्यकालीन भक्ति वैष्णव और गैर वैष्णव बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म से प्रभावित थी। जयदेव का **गीत गोविंद** पालवंश के शासन काल में लिखा गया जिसमें राधा और कृष्ण के प्रेम को शृंगारिक रहस्य वाद का आवरण प्रदान किया गया है। बौद्ध धर्म भी पतन की ओर उन्मुख था और इस पतनोन्मुख बोद्ध धर्म ने वैष्णववाद को प्रभावित किया जिसने बंगाली भक्ति आंदोलन को प्रभावित किया। इसमें मुख्य रूप से शृंगार, नारी वर्णन और भोगवाद पर बल दिया गया है। चैतन्य के पूर्व बंगाल और उड़ीसा में ब्राह्मणों द्वारा निम्न वर्ग की जातियों पर जुल्म ढाए जाते थे। एक भक्त कवि चंडीदास, **गीत गोविंद** और सहजिया सिद्धांतों (बौद्ध धर्म) दोनों से ही प्रभावित थे। सामाजिक और धार्मिक पतन के दौर में चैतन्य आन्दोलन ने आगे बढ़कर महत्वपूर्ण बदलाव किये। इस आंदोलन के प्रतिपादक चैतन्य ने अपने आपको सभी प्रकार की सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त रखा। मूलभूत रूप में यह सामाजिक सुधार आंदोलन नहीं था हालांकि इसने जातिगत बाधाओं को नकार दिया था। ब्राह्मण होने के बावजूद चैतन्य ब्राह्मणों की सर्वोच्चता में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने खुले रूप में जाति संबंधी नियमों का उल्लंघन किया और निम्न वर्गीय जातियों के साथ मेल-मिलाप रखा। **चैतन्य भागवत्** के लेखक वृंदावन दास ने बताया है कि किस प्रकार उन्होंने निम्न जातियों के साथ मेल-जोल रखा। उन्होंने ब्राह्मणवाद के प्रतीकों को नकार दिया। नव वैष्णववाद आंदोलन समाज के अछूत माने जाने वाले वर्गों को साथ लेकर चला।

भक्ति सिद्धांत के प्रभाव में मीरा एक महत्वपूर्ण कवियत्री के रूप में उभरी और उन्होंने कृष्ण भगवान को अपना प्रेमी और आराध्य बनाया। अपनी कविता **पदावली** में उन्होंने अपने को शुद्ध आत्मा कहा है और

कृष्ण के प्रति अपने को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया है और सांसारिक जीवन की ओर से मुँह मोड़ लिया। मीरा ने मूर्ति पूजा और विशेष व्रत जैसे पक्षों पर बल दिया है।

29.2.3 भक्ति आंदोलन का प्रभाव

भक्ति के सिद्धांत ने समकालीन समाज को कई रूपों में ऊपर उठाया। भोजपुरी, मगधी और मैथिली (बिहार), अवध क्षेत्र की अवधी, मथुरा क्षेत्र की ब्रजभाषा और राजस्थानी, पंजाबी, कश्मीरी, सिंधी और गुजराती जैसी बहुरूपीय बोलियों को नया स्वरूप प्रदान किया। भक्ति काल के प्रमुख कवियों के लेखन से तमिल और मराठी साहित्य में अभूतपूर्व विकास हुआ। कृष्ण भक्ति से संबंधित चैतन्य सम्प्रदाय के गीत, संगीत कथाओं और नाटकों से बंगाली साहित्य समृद्ध हुआ (देखिए इकाई 31)।

साहित्य के अलावा भक्ति सिद्धांत एवं संतों के प्रयास से सामाजिक धार्मिक अवधारणाओं में भी परिवर्तन हुआ जिसके कारण मध्य काल में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका निर्मित हुई। यह सही है कि भक्ति आंदोलन मूलत: देशी है पर इस देश के मुसलमानों का भी इस पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह केवल दोनों धर्मों का मिलन स्थल ही नहीं है बल्कि इसने खुले रूप में मनुष्य की समानता का प्रतिपादन किया था और कर्मकांड और जातिभेद का जमकर विरोध किया है। यह मूलत: नयी विचारधारा थी जो पुरानी परम्पराओं से अलग थी और इसके धार्मिक विचार भी नये प्रकार के थे। यह पूरी जीवन पद्धति को नये ढंग से सवांरना चाहती थी। इसने नये और समानता के आधार पर समाज का निर्माण करने का उद्देश्य अपने सामने रखा और एक नैतिक आध्यात्मिक ढाँचे के निर्माण की कोशिश की।

बोध प्रश्न 2

1) समकालीन समाज और साहित्य पर भक्ति आंदोलन का क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2) मराठा वैष्णववाद की मुख्य विशेषतायें क्या हैं?

....

....

....

....

....

3) गौड़िया वैष्णव आंदोलन की पृष्ठभूमि पर विचार कीजिए। इसकी मुख्य विशेषतायें क्या थीं?

....

....

....

....

....

29.3 रहस्यवाद

रहस्यवाद धर्म का ही एक प्रतिफलन है। ईश्वरीय गुणों एवं आज्ञा और जगत पर उसके प्रभाव के संदर्भ में समय-समय पर कई विचार उत्पन्न हुए और इन्हीं विवादों के बीच से सभी इस्लामी आंदोलनों का जन्म हुआ। इस्लाम के धार्मिक और आध्यात्मिक आंदोलन से राजनैतिक आयाम भी जुड़ा हुआ है। अत:

धार्मिक आंदोलन के कई प्रतिपादकों ने अपनी विचारधारा को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से राज्य का समर्थन प्राप्त करना चाहा। काफी समय से **इल्लमुलकलाम** (कट्टरपंथ को तर्कसंगत ढंग से समर्थन देने की विचारधारा) और यूनानी दर्शन से प्रभावित और ईश्वर के साक्षातीकरण पर बल देने वाले विचारकों के बीच द्वंद्ध चल रहा था। सब प्रकार के प्रयासों के बावजूद कट्टर धर्मशास्त्री न तो दर्शन के अध्ययन को रोक सके और न ही शासकों को दार्शनिकों को संरक्षण देने से रोक सके। सूफी सिद्धांत ने इस्लामी दर्शन का तीसरा दृष्टिकोण सामने रखा।

29.3.1 सूफी दर्शन

दार्शनिक उस मूल तत्व के स्वरूप को तर्क का आधार देने का प्रयत्न कर रहे थे और कलाम के विद्वान ईश्वर को अनुभव से परे मान रहे थे अर्थात् ईश्वर का न तो साक्षात्कार किया जा सकता है न उसे आत्मसात किया जा सकता है। इन सबसे अलग सूफी वाद अंतर्ज्ञानी और आध्यात्मिक प्रयासों के द्वारा उस ईश्वर के साथ आत्मसात होने की आंतरिक अनुभूति की बात करता है। तर्क को नकारते हुए सूफियों ने मनन और ध्यान करने पर बल दिया।

भारत के अठारवीं शताब्दी के एक प्रमुख विद्वान शाह वलिउल्लाह के विश्लेषण के अनुसार सूफी धर्म इस्लाम के गोपनीय पक्ष को न्यायोचित ठहराता है जिसमें नैतिक आचरण के द्वारा हृदय को पवित्र करने की बात कही गई है। इस्लामी सिद्धांत में इस आयाम को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि अल्लाह की इबादत करते हुए ध्यान रखना चाहिए कि भक्त अल्लाह को देख रहा है और वह भक्त को देख रहा है।

सूफी पंथ चार चरणों में विभक्त है। प्रथम चरण की शुरुआत पैगम्बर मोहम्मद और उनके सहयोगियों द्वारा होती है और यह बगदाद के सूफी शेख जुनैद के समय (मृत्यु 910) तक जारी रहता है। इस काल में सूफियों ने अपने को प्रार्थना (**नमाज**), उपवास (**रोजा**) और ईश्वर का नाम लेने (**जिक्र**) तक सीमित रखा। जुनैद के काल में सूफी अपने को ध्यान और मनन में लीन रखते थे। इस दौरान आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होता था जिसे प्रतीकात्मक रूप में या असामान्य मुहावरों द्वारा व्यक्त किया जाता था। इस चरण में सूफियों ने **समा** (धार्मिक संगीत) के भावनात्मक प्रभाव पर विशेष बल दिया। भौतिक इच्छाओं से अपने को बचाने के लिए सूफियों ने आत्मग्लानि की प्रथा की शुरुआत की। संसार की माया और भौतिक सुख सुविधाओं से अपने को दूर रखकर सूफी दूरदराज के जंगलों और पहाड़ों पर जीवन व्यतीत करने लगे।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

शेख अबु सैयद बिन अबुल खैर (मृत्यु 1049) के साथ तीसरे चरण की शुरुआत हुई। अब हर्षातिरेक दूरसंवेदन पर जोर दिया जाने लगा और इसके माध्यम से आध्यात्मिक संवाद कायम किया गया। भौतिक और शाश्वत को एकाकार किया गया और इसमें उनका व्यक्तित्व समाहित हो गया तथा सूफियों ने नियमित प्रार्थना, उपवास आदि भी छोड़ दिया।

चौथे चरण में सूफियों ने मूल तत्व (**वाजिब उल वजूद**) से पाँच अवस्थाओं में अवरोहण सिद्धांत ग्रहण किया। यहीं से **वहादत-उल वजूद** की समस्या शुरू हुई।

बायजिद बुस्तानी (मृत्यु 874 या 877-78) ने सूफी धर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका अदा की। वह ईरानी था। उसने **फना** (अस्तित्व मिटाना) की अवधारण से परिचित कराया। इसके अनुसार मनुष्य अपने अस्तित्व को ईश्वर में डूबो देता है, यह एक ऐसी स्थिति है जहां रहस्यवादी को शाश्वत जीवन (**बका**) की अनुभूति होती है।

बायजीद के चिंतन को जुनैद के एक शिष्य हुसैन इब्न मन्सूर अल हल्लाल ने आगे बढ़या। उसके रहस्यावादी सिंद्धात **अन अल हक** (मैं सत्य या ईश्वर हूँ) ने फारस और भारत में रहस्यावादी विचारों के अभ्युदय में महत्वपूर्ण भमिका निभाई। कई सिलसिलों की स्थापना हुई और दूर दराज इलाकों में शिष्यों को नियुक्त करने की प्रथा चली। तीसरे चरण में इस प्रवृति में तेजी आई और कई प्रमुख सूफी संत भारत आए। भारत आने वाले सूफी संतों में शेख सफीउद्दीन गजिरूनी और अबुंल हसन अली बिन उस्मानी अल-हुजवारी उल्लेखनीय हैं।

29.3.2 सैद्धान्तिक ग्रंथ

हुजवारी का **काशफ-उल-महजूब** और शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी कृत **अवारिफ-उल-मआरिफ** दो प्रमुख सूफी धर्म ग्रंथ हैं। इनमें मोहम्मद साहब के दिनों से लेकर सभी सूफियों की जीवनी और विचारधाराओं का उल्लेख हुआ है। दोनों **शरियत** (इस्लाम के सिद्धांत) की सर्वोच्चता स्वीकार करते हैं। इनमें कहा गया है कि सूफियों को अनिवार्य रूप से शरियत का पालन करना चाहिए। उनके अनुसार **शरियत, मारिफत** (अध्यात्म विद्या) और **हकीकत** (यथार्थ) एक दूसरे के पूरक हैं।

29.3.3 प्रमुख सिलसिले

13वीं शताब्दी तक आते-आते सूफी धर्म चौदह सिलसिलों में विभक्त हो गया। शेख शहाबुद्दीन के कुछ शिष्य भारत आए, पर शेख बहाउद्दीन जकारिया भारत में सुहरवर्दी सम्प्रदाय का असली संस्थापक था। उसने अपने को दरबार से जोड़ लिया और 1228 ई. में इल्तुतमिश ने उसे **शेख-उल-इस्लाम** नियुक्त किया। इसके बाद से सुहरवर्दी सिलसिले शासन व्यवस्था से जुड़े रहे और राजनैतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। शेख रूकनुद्दीन इस सिलसिले का महान संत था जिसे दिल्ली के सुल्तानों ने खूब सम्मान दिया। उसके अनुसार एक सूफी के पास तीन चीजें होनी चाहिए : सम्पत्ति (कलंदर की भौतिक मांगों की पूर्ति के लिए), ज्ञान (उलेमा के साथ प्रश्नों पर विद्वत्तापूर्वक बहस करने के लिए) और हाल (रहस्यवादी अंतर्ज्ञान, दूसरे सूफियों को प्रभावित करने के लिए)। उसकी मृत्यु (1334-35) के बाद सुहरवर्दी सिलसिला मुल्तान के बाहर अन्य प्रांतों में भी विकसित हुआ और कच्छ से गुजरात, पंजाब, कश्मीर और यहां तक कि दिल्ली तक फैला। फिरोजशाह तुगलक के अधीन इस सिलसिले को सैयद जलालुद्दीन बुखारी ने प्रतिष्ठा दिलवाई। वह एक कट्टर और शुद्धतावादी मुसलमान था और मुस्लिम सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं पर हिंदूओं के बढ़ते प्रभाव का विरोध करता था। कुतुब आलम और शाह आलम इस सिलसिले के प्रमुख संत हैं। इन्होंने अपने समय के राजनीतिक शासकों को प्रभावित किया था।

इसी के साथ-साथ 14वीं शताब्दी में **फिरदौसिया** नामक एक और **सिलसिला** उदित हुआ। शेख शर्फुद्दीन अहमद याहया इस समय के प्रमुख संत थे। वे **हादत उल वजूद** के प्रबल समर्थक थे।

चिश्ती सिलसिला भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसे लोगों के बीच सम्मान भी प्राप्त हुआ और इसने भारत में सूफी धर्म की नींव भी मजबूत की। इसकी स्थापना ख्वाजा चिश्ती (मृत्यु 966) ने की थी और भारत में इसे ख्वाजा उसमान हारूनी के शिष्य ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती लेकर आए। दुर्भाग्यवश हमें उनके जीवन का कोई विश्वस्त दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। जो कुछ भी उनके जीवन के बारे में मालूम है वह उनके प्रति विभिन्न संतों की श्रद्धांजलि के रूप में उपलब्ध है। उनका जन्म 1143 में सिस्तान में हुआ था और वे मोहम्मद गोरी के आक्रमण के ठीक पहले भारत पहुँचे थे। अपने गुरू के परामर्श पर 1190 में वे भारत पहुँचे और अंततः अजमेर में बस गए। ऐसा माना जाता है कि उनकी मृत्यु 1234 में हुई थी।

ख्वाजा मुईनुद्दीन के कथनों से प्रतीत होता है कि वे ईश्वर के समक्ष अपनी दीनता, लघुता और भक्ति प्रकट करते हैं। उनके अनुसार जो ईश्वर को जानते हैं वे दूसरे लोगों में घुलना मिलना पसंद नहीं करते और ईश्वर से संबंधित ज्ञान पर मौन रहते हैं। उनकी मृत्यु के बाद, उनके शिष्यों की देखरेख में इस **सिलसिले** ने उल्लेखनीय प्रगति की।

चिश्ती संत संगीत के आध्यात्मिक प्रभाव में विश्वास रखते थे। ख्वाजा मुइनुद्दीन के शिष्य ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का संगीत सुनते हुए आनंदातिरेक की अवस्था में देहावसान हुआ था। वे दिल्ली में रहते थे ओर यहां के लोगों पर उनका जबरदस्त प्रभाव था।

ख्वाजा फरीदउद्दीन मसूद ख्वाजा कुतुबुद्दीन के खलीफा (उत्तराधिकारी) थे। उन्होंने अपने को राजनेताओं और धनी तथा शक्तिशाली व्यक्तियों से अलग रखा। उसने अपने शिष्य सैयदी मौला को सलाह दी थी : "राजाओं और कुलीनों से मित्रता मत करो। उनके घर जाना तुम्हारे लिए घातक होगा (तुम्हारे ज्ञान के लिए)। राजाओं और कुलीनों से मित्रता करने वाले हर दरवेश का अंत बुरा होता है।' ऐसा ही संदेश उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य शेख निजामुद्दीन औलिया को भेजा था और कहा था कि राजाओं से दूर रहो। बाबा फरीद का 1265 में 93 वर्ष की आयु में देहावसान हुआ।

शेख निजामुद्दीन उनके प्रमुख शिष्य थे। हालांकि उनके जीवन काल में दिल्ली में सात सुल्तानों का शासन हुआ पर उन्होंने कभी दरबार के अंदर कदम नहीं रखा। शेख के उदारवादी दृष्टिकोण और संगीत से उनके जुड़ाव के कारण कट्टरपंथी उलेमाओं ने उनकी निंदा की। 1325 में उनकी मृत्यु के बाद भी शेख को बहुत सम्मान मिला और अभी भी उन्हें महान् आध्यात्मिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है। उन्होंने लोगों को ईश्वर से प्रेम करना सिखाया और सांसारिक मामलों से मुक्त होने की सलाह दी। प्रेम मार्ग से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है- यह उनकी शिक्षा का मूल सार था। उन्होंने यह भी बताया कि मानव प्रेम से ईश्वर प्रेम पूर्णतया प्राप्त होता है। उनके अनुसार सामाजिक न्याय और सहिष्णुता इस्लाम के अंग हैं।

शेख निजामुद्दीन का यह प्रेम का संदेश उनके शिष्यों द्वारा देश के कोने-कोने में ले जाया गया। शेख सिराजुद्दीन उस्मानी इस संदेश को बंगाल तक ले गये। शेख अलाउद्दीन अलाउल हक उनके उत्तराधिकारी बने और वह पूर्वी भारत में इस संदेश का प्रचार करते रहे। शेख निजामुद्दीन के एक अन्य शिष्य शेख बुरहानुद्दीन दौलताबाद में बस गए और वहां उनके शिष्य शेख जैनुद्दीन और शाह बरकतुल्ला ने समानता और मानवता का संदेश फैलाया। ये लोग आंतरिक प्रकाश और हृदय के धर्म के प्रचारक और पुजारी थे।

यहां एक बात ध्यान देने की है कि अपने गूढ़ ज्ञान के बावजूद मुस्लिम संत जीवन के यथार्थ से कटे हुए नहीं थे। वे आध्यात्मिक ज्ञान और आनंदातिरेक के लिए जीवन के सामाजिक नैतिक आयाम को छोड़कर आगे बढ़ने में विश्वास नहीं रखते थे। इसीलिए उन्होंने न्याय और परोपकार की मांग की। कुरान में यह बात कही गई है कि प्रार्थना लोगों की सेवा से जुड़ी हुई है, सेवा से कटी प्रार्थना अधूरी और अप्रभावी होती है। जब भी कोई शासक इस पथ से अलग हुआ उन्होंने खुलकर उसकी आलोचना की। इसी कारण से वे राज्य की अनुकंपा लेने के इच्छुक नहीं थे क्योंकि इससे उनके सोच और कार्य की स्वतंत्रता में बाधा पहुंचती। सूफियों ने संगीत समा (समा) को यह कहकर सही ठहराया कि सूफी ईश्वर का प्रेमी है, उसका ईश्वर से अलग संबंध है और वह दूसरों की तरह ईश्वर का "अब्द" या दास नहीं है। संगीत से प्रेम की लौ उठती है और इससे आनंदातिरेक के माहौल में प्रवेश करना आसान हो जाता है, अत: सूफियों को संगीत की अनुमति थी।

बाबा फरीद की मृत्यु के बाद चिश्ती **सिलसिला** दो प्रमुख उपविभागों में विभक्त हो गया—निजामिया और साबरिया। साबरिया की स्थापना मख्दुम अलाउद्दीन अली साबरी ने की जिन्होंने अपने को दुनिया से काट लिया था और सन्यासी का जीवन व्यतीत करने लगे थे।

MAADHYAM IAS

शेख अब्दुल कुद्दूस गंगोत्री ही (मृत्यु 1537) साबरिया सिलसिले के एक प्रमुख संत थे। वह ईश्वर की एकता" (**वहादत उल वजूद**) सिद्धांत के प्रतिपादक थे। यह अवधारणा भारत की जनता और बुद्धिजीवियों के बीच काफी लोकप्रिय हुई।

आइए अब **कादरी** और **नक्शबंदी** जैसे दूसरे महत्वपूर्ण सिलसिलों के योगदान की चर्चा की जाए।

कादरी सिलसिला के संस्थापक बगदाद के शेख अब्दुल कादिर जिलानी (मृत्यु 1166) थे। पश्चिमी अफ्रीका और मध्य एशिया के बीच इस्लाम के प्रसार में इस **सिलसिले** ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 15वीं शताब्दी के मध्य में शाह निआमतुल्लाह और मखदूम मोहम्मद जिलानी इस **सिलसिले** को लेकर भारत आए। इस परिवार के एक सदस्य शेख मूसा ने अकबर की सेवा स्वीकार कर ली पर उनके भाई शेख अब्दुल कादिर ने सरकारी सेवा स्वीकार नहीं की।

राजकुमार दारा शिकोह कादिरी सिलसिला का प्रमुख अनुयायी था। वह शाहजहाँ के साथ लाहौर स्थित कादिरी सिलसिले के संत मियां मीर (1550-1635) के दर्शन के लिए प्रस्तुत हुआ था। वह उनके व्यक्तित्व से काफी प्रभावित हुआ था। शेख की मृत्यु के बाद दारा मुल्ला शाह बदखशी का शिष्य बना। राजकुमार के रहस्यवादी ग्रंथों, **सफीनत-उल-औलिया**, **सकीनत-उल-औलिया**, **रिसाला ए हक नुमा, मजमा उल बहैरन,** आदि पर **वहादत उल वजूद** अवधरणा का प्रभाव देखा जा सकता है।

अकबर के शासन काल में चिश्ती सिलसिला फिर एक बार प्रमुख हो उठा। सम्राट फतेहपुर स्थित शेख सलीम चिश्ती का परम भक्त था। इस काल के एक प्रमुख कुलीन बैरम खाँ की भी शेख सलीम चिश्ती में असीम आस्था थी।

18वीं शताब्दी के दौरान दिल्ली के शेख कलीमुल्लाह और उनके शिष्य शेख निजामुद्दीन चिश्ती प्रमुख हस्तियों के रूप में उभरे।

भारत में नक्शबंदी **सिलसिले** की शुरुआत ख्वाजा बाकी बिल्लाह (1563-1603) ने की। इस सिलसिले के संस्थापक ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंदी (1317-1389) थे। बाकी बिल्लाह इस सम्प्रदाय के 7वें उत्तराधिकारी थे। आरंभ से इस सिलसिले के संतों ने इस्लाम के कानून (**शरियत**) पर काफी बल दिया और उन सभी बिददतों (धर्म में नई प्रथाओं का प्रयोग) की जमकर आलोचना की जिससे इस्लाम की शुद्धता पर आंच आती थी। इस प्रकार इसे वहादत उल वजूद के सिद्धांतों के खिलाफ एक प्रकिया के रूप में देखा जा सकता है। ख्वाजा बाकी बिल्लाह के प्रमुख शिष्य शेख अहमद सरहिंदी ने इस सिद्धांत की जमकर आलोचना की। उसने यह मत प्रचारित किया कि जिस भगवान ने विश्व को बनाया है उसकी तुलना मनुष्य के साथ नहीं की जा सकती। वहादत उल वजूद के स्थान पर उसने वहादत उल शहूद की स्थापना की। उसके अनुसार ईश्वर की एकता वस्तुनिष्ठ नहीं बल्कि आत्मनिष्ठ अनुभव है। एक संत को ऐसा लग सकता है कि उसने ईश्वर से साक्षात्कार कर लिया है पर यथार्थ में ऐसा नहीं होता। आनंदातिरेक की स्थिति में वह धर्म में इतना खो जाता है कि वह अपना अस्तित्व खो बैठता है। पर यह एक अस्थाई अनुभव होता है और संत अपने को अबदियत (पराधीनता) की स्थिति में पाता है। शेख के अनुसार मनुष्य और ईश्वर का संबंध दास और मालिक या आराधक और आराध्य का संबंध होता है। यह प्रेमी और प्रेमिका का संबंध नहीं होता जैसा कि सूफी आम तौर पर मानते हैं। वह इस बात पर बल देते हैं कि ईश्वर और अपने सर्जक के प्रति मनुष्य का संबंध निष्ठा और उत्तरदायित्व का होता है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा भाव से ही मनुष्य और ईश्वर के बीच सही संबंध स्थापित होता है। केवल **शरियत** के माध्यम से ही मनुष्य उस असीम सत्ता का अनुभव कर सकता है। शेख अहमद ने सूफी रहस्यवादी सिद्धांत और कट्टरपंथी इस्लाम की शिक्षा को एक साथ मिलाने की कोशिश की इसलिए उन्हें इस्लाम का मुजददिद कहा जाता है। औरंगजेब मुजददिद के पुत्र ख्वाजा मोहम्मद मासूम का शिष्य था।

शाह वलीउल्लाह (1702-1762) एक जाने माने विद्वान और नक्शबंदी सिलसिले के एक प्रमुख संत थे। उन्होंने **वहादत उल वजूद** और **वहादत उल शहूद** के दोनों सिद्धांतों को एक साथ मिलाने की कोशिश की क्योंकि उनका मानना था कि इन दोनों सिद्धांतों में कोई मूलभूत अंतर नहीं है। उनके अनुसार इन दोनों विचारों में ईश्वर का अनुभव करने का तत्व छिपा हुआ है और ईश्वर का अस्तित्व स्वतंत्र है। इस संसार का अस्तित्व सत्य नहीं है और इसे काल्पनिक भी नहीं कहा जा सकता है। उनका यह भी मानना है कि यथार्थ एक ही है। जो अनेक रूपों में परिलक्षित होता है। इसके बावजूद अगर कहीं थोड़ी बहुत भिन्नता है तो यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है।

ख्वाजा मीर दर्द एक प्रमुख उर्दू कवि के साथ-साथ नक्शबंदी सिलसिले के एक प्रमुख संत थे। वह शाह वलीउल्लाह के समकालीन थे। अपने आंतरिक अनुभव के प्रकाश में उन्होंने **वहादत उल वजूद** की भी आलोचना की थी। उनके अनुसार आनंदातिरेक के नशे में सूफियों ने इस सिद्धांत की स्थापना की थी। अत: इस प्रकार का सिद्धांत न्यायोचित नहीं है। उन्होंने वहादत उल वजूद में आस्था रखने वाले लोगों की यह कहकर आलोचना की कि उन्हें यथार्थ का कोई ज्ञान नहीं है। उनका यह भी मानना था कि ईश्वर के समक्ष दास बनकर ही पहुंचा जा सकता है।

भारत के लगभग प्रत्येक हिस्से में सूफियों ने अपने केंद्र (खानकाह) स्थापित कर लिए थे जहां पीर के नेतृत्व में आध्यात्मिक चर्चाएँ हुआ करती थीं।

17वीं शताब्दी के अंत तक संतों और पीरों की परम्परा चलती रही इसके बाद इसका ह्रास शुरू हुआ। पर 18वीं शताब्दी में भी कुछ **खानकाह** आध्यात्मिक संस्कृति के प्रमुख केंद्र बने रहे। ऐसी **खानकाहों** में ख्वाजा मीर दर्द की खानकाह एक प्रमुख केंद्र थी जहां सम्राट शाह आलम अक्सर जाया करते थे।

MAADHYAM IAS

बोध प्रश्न 3

1) सूफी दर्शन के मुख्य तत्व क्या हैं?

....

....

....

....

....

2) प्रमुख सूफी **सिलसिलों** पर प्रकाश डालिये।

....

....

....

....

....

29.3.4 महदवी आंदोलन

पैगम्बर मोहम्मद या उनके साथियों के काल से ही उद्धारकों की परम्परा चली आ रही है। इस्लाम के इतिहास में हज़रत अली के पुत्र मोहम्मद अल हनीफा पहले उद्धारक (महदी) माने जाते हैं। इसके बाद महदियों का आगमन हुआ जो मुख्य रूप से आर्थिक और राजनीतिक आदोलनों से जुड़े हुये थे। जौनपुर के सैयद एक मात्र महदी थे जिन्होंने राजनीतिक सत्ता से अपने को नहीं जोड़ा और जो मुख्य रूप से आध्यात्मतावाद और इस्लाम के शुद्धीकरण से जुड़े रहे।

उन्होंने मक्का में अपने को उद्धारक घोषित किया। भारत लौटने पर ऐसे उलेमाओं ने उन पर काफी दबाव डाला जो उनके खिलाफ दुश्मनी का रवैया रखते थे। इसके बावजूद कुछ उलेमा उनके शिष्य बने। महदी शरीयत के कानून के मुताबिक ईश्वर की आराधना करते थे। अल्लाह, उनके पैगम्बर और उनकी पुस्तक उनके लिए प्रमुख दिशा-निर्देशक थे। महदवी दायरों में रहा करते थे जहां वे शरियत के कानून का पालन किया करते थे। महदवियों के लिए कुरान के आदेश दो हिस्सों में विभक्त थे। **शरियत** से जुड़े ऐसे भाग जिनकी व्याख्या पैगम्बर मोहम्मद ने की थी, और अंतिम वली या महदी की व्याख्या। बाद वाले भाग में निम्नलिखित बातें शामिल हैं। संसार का त्याग, सत्य को अपनाना, मनुष्य मात्र से अलगाव, ईश्वर की इच्छा के प्रति समर्पण, ईश्वर की खोज, आय के 10वें हिस्से का वितरण, लगातार **जिक्र** (ईश्वर का) करना और प्रवास करना (हिजरत)। जौनपुर के सैयद मोहम्मद की मृत्यु के बाद महदी की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए कई **दायरों** की स्थापना की गई। इन दायरों में रहने वाले गुरुओं को खलीफा कहा जाता था। दीक्षा के लिए स्थानीय बोलियों का प्रयोग करते थे। महदियों के आत्म बलिदान और रहन-सहन के साधारण ढंग के कारण जनता इन दायरों की ओर आकृष्ट हुई। इन दायरों की स्थापना दक्षिण और उत्तर भारत में गुजरात, चंडीगढ़, अहमदनगर, बयाना आदि में हुई।

29.4 18वीं शताब्दी में पुनर्रुत्थानवादी इस्लामी आंदोलन

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का तेजी के साथ पतन हुआ। मराठा, जाट और सिखों जैसे हिंदू सम्प्रदायों ने मुस्लिम शक्ति को गंभीर चुनौती दी। इस पृष्ठभूमि में धार्मिक राजनीतिक प्रकृति का इस्लामी पुनरूत्थान आंदोलन शुरू हुआ और यह शाह वलीउल्लाह (1703-62) के लेखन के माध्यम से सामने आया। वह मूल रूप से एक धर्म शास्त्री थे जिन्होंने मूल तत्व की रक्षा पर बल दिया और इस्लाम में किसी प्रकार के बदलाव को अस्वीकार कर दिया। शाह अपने आपको मुस्लिम समाज का सुधारक कहते थे। वे पैगम्बरी परम्पराओं को फिर से स्थापित करना चाहते थे। उनके धार्मिक और राजनीतिक

विचारों ने मुजाहिदीन (धर्म यौद्धा) नामक धार्मिक सुधारकों को प्रभावित किया। गदर (1857) के बाद के काल में उनके धार्मिक विचारों से इस्लामी पुनरुत्थान के कई मत प्रभावित हुये : सैयद अहमद खान का आधुनिकवाद और अलीगढ़ आंदोलन, देवबंद संस्था के परम्परागत धर्मशास्त्री और नव-परम्परावादी अहलेह दीस (पैगम्बर मोहम्मद की परम्परा के अनुगामी) इससे प्रभावित हुये।

बोध प्रश्न 4

1) महदवी आंदोलन की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं ?

....

....

....

....

....

2) 18वीं शताब्दी में इस्लामी पुनरूत्थानवादी आंदोलन की प्रकृति पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

29.5 सारांश

MAADHYAM IAS

इस इकाई में हमने भारत में भक्ति आंदोलन के विकास का अध्ययन किया। इसके साथ-साथ हमने इसकी विचारधारा, विभिन्न मतों और सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में इसके प्रभाव का भी अध्ययन किया। इस इकाई में इस्लामी रहस्यवाद की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया। सूफी दर्शन की प्रकृति, इसके मुख्य **सिलसिले** और ग्रंथों के साथ-साथ महदवी आंदोलन की प्रकृति पर भी विचार किया गया। अंत में इस इकाई में 18वीं शताब्दी के दौरान इस्लामी पुनरूत्थानवादी आंदोलनों की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया।

29.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.3
2) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.2
3) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.3

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.4
2) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.3
3) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.3

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 29.3 और उपभाग 29.3.1
2) देखिए भाग 29.3 और उपभाग 29.3.3

बोध प्रश्न 4

1) देखिए भाग 29.3 और उपभाग 29.3.4
2) देखिए भाग 29.4

इकाई 30 राज्य और धर्म

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य
30.1 प्रस्तावना
30.2 ऐतिहासक परिप्रेक्ष्य
- 30.2.2 समकालीन इतिहास लेखन
- 30.2.3 आधुनिक इतिहास लेखन

30.3 धर्म के प्रति मुगल शासकों का दृष्टिकोण
- 30.3.1 अकबर
- 30.3.2 जहांगीर
- 30.3.3 शाहजहां
- 30.3.4 औरंग्रजेब

30.4 सारांश
30.5 शब्दावली
30.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- तत्कालीन लेखकों के धर्म संबंधी लेखनों के स्वरूप के बारे में जान सकेंगे,
- मुगल शासकों की धार्मिक नीतियों के बारे में कुछ इतिहासकों के विचारों कें बारे में जान सकेंगे तथा
- मुगल शासकों की नीतियां कहां तक उनके व्यक्तिगत धर्म से प्रभान्वित हुई।

MAADHYAM IAS

30.1 प्रस्तावना

उत्तर भारत में मुगलों की विजय के बाद उच्च शासकीय वर्ग के संघटन में एक आमूलकारी परिवर्तन हुआ। यह भारतीय इतिहास की एक मंहत्वपूर्ण घटना थी। इस समय से एक नये युग की शुरूआत मानी जा सकती है। इस नए युग के सूत्रपात का एक महत्वपूर्ण राजनैतिक कारण यह था कि इसके बाद से भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में मुसलमानों का उदय एक प्रभावकारी तत्व के रूप में हुआ। यह प्रक्रिया कई वर्षो तक जारी रही और मुगल शासन काल तक कायम रही। इसका भारतीय इतिहास के काल विभाजन पर भी प्रभाव पड़ा। कुछ आधुनिक इतिहासकार मध्ययुग को "मुस्लिम काल" की संज्ञा देने लगे। उनका यह सोचना है कि इस काल में मुसलमान शासक वर्ग के रूप में मौजूद थे अत: इस्लाम का राज्य धर्म के रूप में मान्य होना अनिवार्य था। पर यह दृष्टिकोण भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि यह उच्च वर्ग के धर्म पर जरूपत से ज्यादा बल देता है और मध्यकालीन समाज के आर्थिक, राजनैतिक और सामातिक हितों को नजरअंदाज कर देता है। दूसरी बात यह है कि शासक के धर्म को राज्य का धर्म मान लेना तर्कसंगत नहीं है। इस प्रकार सोचने से राज्य और धर्म का मुद्दा उलझ जाता है।

इस इकाई में सबसे पहले हम उस पृष्ठभूमि का उललेख करेंगे जिसमें मुगल राज्य तंत्र सकिय था। हम समकालीन लेखकों की टिप्पणियों का भी उल्लेख करेंगे। धर्म के प्रति मुगल सम्राटों के दृष्टिकोण का भी

परीक्षण किया जाएगा। इस इकाई में शासक की व्यक्तिगत आस्था, राज्य की नीतियों और गैर-मुसलमानों के साथ संबंधों को चर्चा की जाएगी। हमने यहां जानबुझकर मुगल-रापूत संबंधों की चर्चा नहीं की है क्योंकि इस पर इकाई 11 में विस्तार से बातचीत की जा चुकी है।

हम यहां एक बात जोर देकर कहना चाहते हैं कि मध्यकालीन इतिहास, खासकर इस काल के धर्म, का मुल्यांकन करते समय आधुनिक शब्दावलियों का खूव सावधानी के साथ उपयोग किया जाना चाहिए। "सम्प्रदायवाद" "धर्माधता", "धार्मिक कट्टरता" जैसी शब्दावलियों का आज खुलकर उपयोग हो रहा है। कई बार इसके माध्यम से तथ्यों को तोड़-मरोड़ दिया जाता है। अत: इन मुद्दों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए हमें एक अनुशासित ऐतिहासिक दृष्टिकोण का मार्ग अपनाना होगा और मध्ययुग की कुछ महत्वपूर्ण विशेष्ताओं को सावधानी से परखना होगा।

30.2 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

इस भाग में हम धर्म के प्रति राज्य और जनता के दृष्टिकोण पर विचार करेंगे। इसके साथ-साथ राज्य और धर्म के संबंध के नाजुक मुद्दे पर समकालीन और आधुनिक इतिहासवेत्ताओं का दृष्टिकोण जानने में भी मदद मिलेगी।

30.2.1 तत्कालीन परिदृश्य

इस काल में अधिकांश लोग धर्म के प्रति आस्थावान थे। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति से धार्मिक विषय का ज्ञाता होने की अपेक्षा की जाती थी। इसके परिणामस्वरूप इस काल में हिंदुओं या मुसलमानों द्वारा लिखे गए ऐतिहासिक लेखों, आदि पर धार्मिक विचारों की गहरी छापा है।
इन पर अगर जरा विवेकहीन तरीके से विचार किया गया तो गलम निर्णय और भ्रामक निष्कर्ष सामने आएंगे।

MAADHYAM IAS

दूसरे, जनजीवन में धर्म के महत्व को देखते हुए शासक अपने व्यक्तिगत और रातनैतिक हितों के लिए इसका खुलकर उपयोग करते थे। महमूद गजनी जैसे शासक अपने दुश्मनों के खिलाफ अक्सर **जेहाद** (धार्मिक युद्ध) का नारा दे दिया करते थे जबकि वस्तुत: इनमें से किसी ने धर्म के लिए लड़ाई नहीं की। पी. सरन के अनुसार "हमें उेसा कोई भी उदाहरण नहीं मिलता है जिसमें मुसलमान शासक ने शुद्ध रूप से धार्मिक आधार पर और धार्मिक उद्देश्य के लिए युद्ध किया हो"।

तीसरे, **उलेमा** (मुस्लिम धर्मशास्त्री) का मनोबल काफी ऊँचा था। वे चाहते थे। कि शासक अपने प्रशासन में इस्लामी संहिता का पालन करें और इसी के तहत गैर-मुसलमानों के साथ व्यवहार करें पर पी. सरन लिखते हैं, "मुसलमान धर्मशास्त्रियों ने मुसलमानों को गैर-मुसलमानों, खासकर मूतिपुजकों के प्रति एक खास तरह का व्यवहार करने का निर्देश दिया था। यह ब्राह्मण धर्मशास्त्रियों के उस दर्शन से भिन्न नहीं था जिसमें धर्म की पवित्रता के नाम पर अपने देश के एक बड़े हिस्से को त्याज्य, और अदुत समझा गया था और उन पर कई तरह के जुल्म ढाए जाते थे।"

दूसरी तरफ प्रशासनिक मामलों में अक्सार भारत के मुसलमान शासक कट्टरनंथी **उलेमा** के विचार से सहमत नहीं होते थे। अधिकांश मामलों में वे अपनी नीतियों के अनुकुल न पड़ने वाले धार्मिक समुदायों के आदेशों को स्वीकार नहीं करते थे। उदाहरण के लिए, 14 वीं शताब्दी का इतिहासकार जिआउद्दीन बर्नी विस्तार के साथ अलाउद्दीन खलजी के दृष्टिकोण का इसप्रकार उललेख करता है : "वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि राजनैतिक व्यवस्था और सरकार अलग चीज है और धार्मिक कानून (**शरीयत**) अलग चीज है। शासकीय आदेश राजा के अधिकार क्षेत्र में आते हैं और न्याय निर्दिष्ट करने वाले आदेशों पर **काजियों** और **मुफ्तियों** का अधिकार होता है। उसके मतानुसार राज्य के मामलों में वह जनता के हित का ख्याल रखता है और अपने किसी कार्य को कानूनी और गैर-कानूनी तराज पर नहीं तोलता है।" सुल्तान के काजी बयाना के मुगीसुद्दीन ने गैर-मुसलमान जनता के प्रति कठारे और अपमानजनक

दृष्टिकोण अपनाने की सलाह दी थी, पर अलाउद्दीन ने उसकी सलाह अस्वीकृत कर दी और **काजी** को कहा कि उसके लिए सरकार और उसकी जनता का हित सर्वोपरि है। अत: उसने कट्टरपंथी विचारों को नजरअंदाज करते हुए आदेश जारी किए और नीतियां निर्धारित कीं। वस्तुत: धार्मिक कट्टरता और राजनैतिक मामलों के प्रति अलाउद्दीन के दृष्टिकोण ने नया मार्ग प्रशस्त किया : मध्यकालीन शासकों ने धार्मिक कानूनों की अपेक्षा प्रशसनिक जरूरतों और राजनैतिक आवश्यकताओं को अधिक महत्व दिया। परंतु इसके साथ-साथ **उलेमा** को खुश रखने की नीति भी अपनाई जाती रही। ये शासक इस समुदाय को संतुष्ट करने और राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्राय: **उलेमा** को वित्तीय और अन्य प्रकार की सहायता प्रदान किया करते थे।

एक बात यहां स्परूट कर देना आवश्यक है कि मध्य युग में धर्म जीवन का अहम हिस्सा था अत: आम तौर पर शासकों ने अपनी नीतियों और कार्यो को धार्मिक शब्दावली में व्यक्त किया।

30.2.2 समकालीन इतिहास लेखन

मध्यकाल में शिक्षा की व्यवस्था के अनुरूप एक इतिहासकार **मदरसों** (मध्यकालीन शिक्षा केंद्र) में, धार्मिक माहौल में, प्रशिक्षण प्राप्त किया करता था। इसका उसके लेखन पर गहरा असर पड़ा। अपने संरक्षक की सेना के लिए वह **लश्कर-ए इस्लाम** (इस्लाम की सेना) और उसके दुश्मन की सेना के लिए **लश्कर-ए कुफ्र (काफिरों** की सेना) शब्दावली का इस्तेमाल किया करते थे। इसी प्रकार अपने स्वामी के सैनिकों की मौत को वह **शहादत** (शहीद) की संज्ञा देता था जबकि दूसरे पक्ष के सैनिकों को वह नर्क भेजने में जरा भी देर नहीं करता था। भारत में शासक के धर्म की अपेक्षा शासितों के धर्मानुयायियों की संख्या ज्यादा थी और इस स्थिति में ऐसी शब्दावली का उपयोग उलझन ही पैदा करता है। इन अभिव्यक्तियों को देखकर कोई भी असावधान व्याख्याता मध्यकालीन भारत के संघर्ष को मूलत: धार्मिक मान सकता है और वह यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि यह संघर्ष मूलत: इस्लाम और **कुफ्र** के बीच का संघर्ष था। लेकिन यह तथ्यों को विश्लेषित करने का सही ढंग नहीं होगा क्योंकि इन्हें किसी भी स्थिति में समकालीन राज्य की नीतियों के साथ उलझाना उचित नहीं है। वस्तुत: मूलत: यह एक प्रकार की शैली थी, लिखने का ढंग था, इस संबंध में कई प्रमाण भी उपलब्ध हैं। शाहजहां के शासनकाल के एक इतिहासकार मोहम्मद सालिह (**अमल-ए सालिह** के लेखक) ने कमालुद्दीन रोहिला के नुतृत्व में हुए अफगान विद्रोह को **दुश्मन -ए दीन** (धर्म का दुश्मन) की संज्ञा दी है। 1630 ई. में जब ख्वाजा अबुल हसन (शाहजहां का एक कुलीन) ने नासिक अभियान की शुरूआत की तो अब्दुल हमीम लौहौरी (शाहजहां का दरबारी इतिहासकार) ने मुगल सेना के लिए **मुजाहिदान-ए दीन** (धर्म की रक्षा के सैनिक) शब्दावली का प्रयोग किया जबकि वास्तविक स्थिति यह थी कि विपक्षी सेना में गैर-मुसलमानों की अपेक्षा मुसलमानों की संख्या अधिक थी और मुगल सेना में भी गैर-मुसलमान सैनिक पर्याप्त मात्रा में शामिल थे।। यह भी रोचक तथ्य है कि इन्ही इतिहासकारों ने निजामशाही सेना के खिलाफ लड़ रहे मुगल सैनिकों को **मुजाहिदान -ए इस्लाम** (इस्लाम की रक्षा में लड़ रहे सैनिक) कहा जबकि निजामशाही सेना में अधिकांश सैनिक मुसलमान थे। गैर-मुसलमान सरदारों और कुलीनों के खिलाफ भी जब मुगल सेना भेजी जाती थी तो उनके लिए भी उसी शब्दावली का इस्तेमाल किया जाता था। जुझार सिंह बुंदेला के विद्रोह को कुचलने के लिए गई सेना को **लश्कर-ए इस्लाम** कहा गया जबकि मुगल सेना में बड़ी संख्या में गैर-मुसलमान सैनिक मौजूद थे। शाहजहां के अधीन बल्ख और बदख्शां के खिलाफ भेजे गए अभियान में भी **मुजाहिद**, शहादत, आदि शब्दों का इस्तेमाल किया गया। ध्यान रहे इस बार मुगल शुद्ध रूप से अपने सहधर्मियों के साथ लड़ रहे थे। इससे पता चलता है कि इन शब्दों का धार्मिक महत्व कम और शैलीगंत महत्व ज्यादा था। यह अभिव्यक्ति का एक ढंग था, एक शैली थी। अत: इस प्रकार के लेखन को पढ़ते समय कुलीन सावधानी बरतनी चाहिए।

30.2.3 आधुनिक इतिहास लेखन

"धर्म और राज्य" विषय पर शोध का प्रारंभ एलियट और डाफवसन ने काफी पहले किया था। उन्होंने मध्यकालीन फारसी ग्रंथों के अग्रेजी में अनुवाद की एक बड़ी योजना प्रारंभ की थी। उन्होंने अक्सर ऐसे प्रसंग उड़ाए जिनका संबंध या तो शासक की (मूलम: मुसलमान) की "धार्मिक कट्टरता" से था। अथवा उन्होंने उन उद्धरणों को लिया जिसमें मुठ्ठी भर मुसलमान शासकों द्वारा स्थानीय भारतीय जनता (जो ज्यादातर हिंद को दबाए जाने का उल्लेख किया था।)

वस्तुत: अंग्रेजी ने ऐसा एक सोची-समझी राजनैतिक नीति के तहत किया था। परंतु जदुनाथ सरकार, ए. एल. श्रीवास्तव, श्रीराम शर्मा, आदि भारतीय इतिहासकारों ने भी उनके ही दृष्टिकोण को अपना लिया।

एक बात गौर करने की है कि जब शासक और शासित अलग-अलग धर्म के होते थे तभी "धार्मिक नीति" के तहत उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं की चर्चा की जाती थी। अगर अपने ही धर्मानुयायियों के प्रति शासक सही और गलत रुख अपनाता था तो उसे "धार्मिक नीति " का अंग नहीं माना जाता था। इसी कारण औरंगजेब के "हिंदू विरोधी" रवैये का तो खूब प्रचार किया गया पर उसने अपने ही धर्म के विद्वानों, दार्शनिकों और संतों पर जो जुल्म ढाए उसकी चर्चा कोई नहीं करता। याद रहे औरंगजेब के ही आदेश से सरमद, शाह मौहम्मद बदख्शी, मौहम्मद ताहिर और सैय्यद कुतबुद्दीन अहमदाबादी को फांसी की सजा दे दी गयी थी।

सीधे-सीधे शब्दों में कहा जाए तो धर्म शासक के हितों की पूर्ति का एक हथियार मात्र था। कभी शासक अपने स्थानीय सरदारों को धार्मिक रियायतें दिया करते थे तो कई बार शक्ति का उपयोग कर उन्हें कुचलते थे। उच्च और निम्न शासकीय समुदायों की क्रिया-प्रतिक्रिया को केवल धर्म के परिप्रेक्ष्य में देखना इतिहास के साथ अन्याय करना होगा। यह आर्थिक और राजनैतिक मुद्दों की भी अनदेखी होगी।

अंतत: इस विषय (राज्य और धर्म) के प्रति एक और दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है जो महत्वपूर्ण होते हुए भी इतिहासकारों का ध्यान अपनी ओर कम ही आकर्षित कर सका है। शासक की व्यक्तिगत आस्था, विश्वास, अहं और अपने समय की समस्याओं के प्रति उसके स्वयं के दृष्टिकोण और उसके द्वारा उन समस्याओं को हल करने के तरीके का भी विशेष महत्व है। इस दृष्टिकोण के तहत शासकों और उच्च पदस्थ लोगों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक परीक्षण किया जा सकता है। औरंगजेब के कार्यों और आदेशों का मूल्यांकन करते समय इस दृष्टिकोण से काफी मदद मिलेगी।

MAADHYAM IAS

बोध प्रश्न 1

1) राज्य की नीतियों के साथ धर्म को उलझाने में समकालीन लेखंन किस हद तक उत्तरदायी है ?

....

....

....

....

....

2) मुगल शासकों की "धार्मिक नीति" संबंधी इलियट और डॉवसन के दृष्टिकोण का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

30.3 धर्म के प्रति मुगल शासकों का दृष्टिकोण

इस भाग में हम धर्म और धार्मिक समुदायों के प्रति मुगल शासकों के दृष्टिकोण का परीक्षण करेंगे।

30.3.1 अकबर

1560-65 के बीच अकबर ने जो कदम उठाए और इससे साम्राज्य की गैर-मुस्लिम जनता पर जो प्रभाव पड़ा उसी के आधार पर आम तौर पर धर्म और धार्मिक समुदायों के प्रति अकबर के दृष्टिकोण का

मूल्यांकन किया जाता है। इस काल में सम्राट ने राजपूतों से वैवाहिक संबंध स्थापित किए, तीर्थ कर हटा दिया, युद्ध बंदियों के इस्लाम धर्म में परिवर्तन करने पर रोक लगा दी और **जजिया** कर समाप्त कर दिया। अकबर के इन सब कार्यों ने उसे एक "धर्मनिरपेक्ष" व्यक्तित्व प्रदान किया। पर अपने व्यक्तिगत जीवन में अकबर एक श्रद्धावान मुसलमान था। **"गुलजार-ए अकबर"** और **"नफाइस-उल मासिर"** जैसे ग्रंथों में इस बात का उल्लेख है कि अकबर के मन में **उलेमा** के प्रति गहरा सम्मान था और उसने इस समुदाय को कई प्रकार की रियायतें भी दी थीं। सम्राट की शह पाकर उनमें से कुछ ने यहां तक कि मुसलमानों के गैर-सुन्नी संप्रदायों को दंडित करना शुरू कर दिया। महादवियों और शियाओं पर ढाए गए जुल्मों को इस काल के ऐतिहासिक लेखों में लगभग नजरअंदाज कर दिया गया है।

अकबर के "उदारवाद" की व्याख्या कई रूपों में की जाती है। यह कहा जाता है कि उसके पालन-पोषण और विविध बौद्धिक प्रभावों ने उसके व्यक्तिगत विचारों को बदल दिया। दूसरी तरफ एक मत यह भी है कि अकबर ने इस्लाम छोड़ दिया था और उसका उदारवादी दृष्टिकोण आडंबरपूर्ण था। आज इस धारणा से लोग सहमत हैं कि अकबर के इन कार्यों के पीछे राजनैतिक उद्देश्य था। किसी विश्वसनीय मुस्लिम समर्थन के अभाव में अकबर के पास राजपूतों और भारतीय मुसलमानों के साथ संधि करने के अलावा और कोई चारा नहीं था। इन कार्यों के माध्यम से वस्तुत: गैर-मुसलमानों को कुछ रियायतें दी गईं और उनका सहयोग हासिल किया गया। हालांकि 1565 ई. के बाद उसके दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन हुआ। "धर्म के मामले में उसके दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण बदलाव आया।" उसके वकील मुनीम खां ने एक दस्तावेज (अगस्त-सितंबर 1566) पर हस्ताक्षर किए जिसमें आगरा के आसपास के इलाके से **जजिया** कर वसूल करने का आदेश था। 1568 ई. में अकबर ने प्रसिद्ध चित्तौड़ में जारी किये गये **फतहनामा (मुन्शात्-ए नमकीन** में संग्रहीत) में धार्मिक शब्दावलियाँ और प्रतीकों का जमकर उपयोग किया गया है और उसकी तुलना किसी भी अन्य पूर्वाग्रहयुक्त और धार्मिक आदेश से की जा सकती है। उसने राजपूतों के खिलाफ लड़े गए युद्ध को **जेहाद** कहा, मंदिर तोड़कर और काफिलों को मारकर गर्वान्वित हुआ। **शरायफ-ए उस्मानी** के अनुसार सम्राट ने बिलग्राम के काजी अब्दुल समद को वहां हिंदुओं द्वारा की जाने वाली मूर्तिपूजा रोकने का आदेश दिया था। बदायूंनी के अनुसार और तो और 1595 ई. में अकबर ने पुन: **जजिया** कर लगा दिया पर यह कार्यान्वित न हो सका। इस काल का एक रोचक तथ्य यह है कि धार्मिक असहिष्णुता के इस वातावरण में भी 1566-79 के बीच राजपूत राजा उसकी सेवा में शामिल होते रहे (देखिए इकाई 11)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अत: सम्राट के लिए धर्म प्रमुख मुद्दा नहीं था। अकबर का मुख्य उद्देश्य स्थानीय सरदारों को नियंत्रण में रखना था। राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धर्म का औजार के रूप में प्रयोग किया गया। जब अकबर को इससे पूरा फायदा नहीं मिला तो उसने यह नीति स्थगित कर दी। अकबर ने 1575 ई. में **इबादत खाना** की स्थापना की। इस पक्ष पर चर्चा वांछनीय है। इस्लाम धर्म सिद्धांत के विभिन्न मुद्दों पर मुक्त बहस करने के लिए इसकी स्थापना की गई थी। परंतु इसमें मुस्लिम व्याख्याता आपस में लड़ते ही रहते थे अत: अकबर जल्द ही इनसे ऊब गया। आरंभ में केवल सुन्नियों को ही इस बहस में हिस्सा लेने का मौका मिला। परंतु सितंबर 1578 ई. से सम्राट ने सूफियों, शियाओं, ब्राह्मणों, जैनों, ईसाइयों, यहूदियों, पारसियों, आदि सभी धर्म के व्यक्तियों के लिए भी **इबादत खाना** के द्वार खोल दिए। **इबादत खाना** में हुए विवाद से अकबर को नई दिशा मिली और वह यह जान सका कि सभी धर्मों का मूलतत्व एक है। अपने को **मुजतहिद** और **इमाम-आदिल** घोषित कर अकबर ने सभी धार्मिक मसलों पर **उलेमा** के बीच के मतभेदों को निपटाने और मत व्यक्त करने का अधिकार प्राप्त करने का दावा किया। मुगल समाज के एक समुदाय ने इसका जमकर विरोध किया परंतु अकबर अंतत: कट्टरपंथियों को दबाने में सफल रहा।

अकबर का **तौहीद-ए इलाही** (इसे प्राय: **दीन-ए इलाही** कहा जाता है जो गलत है) इस शासन काल की एक महत्वपूर्ण घटना थी। आर. पी. त्रिपाठी (**राइज ऐंड फॉल ऑफ द मुगल एम्पायर,** इलाहाबाद, 1956, पृ. 285-89) ने इस विषय का विस्तार से परीक्षण किया है। उनके कथन को यहां विस्तार से रखना प्रासंगिक होगा : "अकबर जैसे चालाक शासक ने यह भली-भांति समझ लिया होगा कि न तो सभी धर्मों को एक में मिलाना संभव था और न ही मौजूद धर्मों से अलग एक और नया धर्म स्थापित करना संभव था। परंतु उसने उसे सुनने वालों तक अपनी बात पहुंचाने की आवश्यकता महसूस की। इस पंथ का कोई धार्मिक ग्रंथ नहीं था, किसी पुजारी की व्यवस्था नहीं थी, उपासना का कोई पवित्र

स्थल नहीं था, दीक्षा के अलावा कोई अनुष्ठान या समारोह नहीं था ...... प्रत्येक सदस्य को वचन पत्र लिखना होता था, जैसे सम्पत्ति, जीवन, सम्मान और धर्म का त्याग ...... (यह) एक धर्म नहीं था और अकबर ने कोई "चर्च" स्थापित करने की कोशिश नहीं की .... अनुयायियों को शामिल करने के लिए शक्ति और धन का सहारा नहीं लिया गया ...... यह पूर्णत: एक व्यक्तिगत मुद्दा था, यह सम्राट और उसकी जनता के बीच का मामला नहीं था बल्कि अकबर और उसे पीर या गुरू मानने वालों के बीच का मामला था।"

ऐसा लगता है कि अकबर अपने चारों ओर एक निष्ठावान वर्ग खड़ा करना चाहता था जिन्हें वह आध्यात्मिक दिशा प्रदान कर सके। अत: **तौहीद-ए इलाही** का अकबर की धार्मिक या राजनैतिक नीति से कुछ भी लेना-देना नहीं था।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि राजनैतिक स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए आम तौर पर अकबर ने धार्मिक भेदभाव की नीति नहीं अपनाई। परंतु अकबर ने धर्म और जाति को भूलकर उन सबके खिलाफ कड़े कदम उठाए जिन्होंने उसे चुनौती देने की कोशिश की या अपनी सामाजिक या वैचारिक मूल्यों की सीमा का अतिक्रमण किया। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि किसी भी धार्मिक समुदाय के खिलाफ कड़ा रुख नहीं अपनाया गया बल्कि व्यक्तियों को दंड दिया गया।

बोध प्रश्न 2

1) 1565 ई. तक धर्म और धार्मिक समुदायों के प्रति अकबर के दृष्टिकोण का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2) **इबादत खाना** के बारे में 50 शब्द लिखिए।

....

....

....

....

....

30.3.2 जहांगीर

समग्र रूप से जहांगीर ने अपने पिता के उदारवादी दृष्टिकोण का पालन किया। आर. पी. त्रिपाठी के अनुसार जहांगीर " अपने पिता से ज्यादा और पुत्र खुर्रम से कम कट्टर था।" उस पर आरोप लगाया जाता है कि उसने सिक्खों, जैनियों और सुन्नियों के खिलाफ कठोर कदम उठाए। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि गुरू अर्जुन सिंह, मानसिंह सूरी और शेख अहमद सरहिंदी जैसे लोग व्यक्तिगत रूप से उसके कोपभाजन बने, पूरे धार्मिक समुदाय को इसका दंड नहीं भोगना पड़ा। दूसरी तरफ जहांगीर तीन बार जदरूप गोसाई के पास गया था और उसके साथ हिंदू दर्शन पर विचार-विमर्श किया था।

जहांगीर कभी-कभी दूसरे व्यक्तियों के धार्मिक विचारों से उत्तेजित हो जाया करता था। अपनी इसी कमी के कारण उसने सुन्नी धार्मिक नेता शेख अहमद सरहिंदी, मुजद्दिद अलिफ सानी को तीन साल तक ग्वालियर के किले में बंद रखा। शेख ने दावा किया था कि अपने "सपने" में वह पहले के **खलीफाओं** की अपेक्षा ईश्वर के अधिक समीप आ गया था। जहांगीर को यह वक्तव्य निंदनीय लगा था। कौकब,

अब्दुल लतीफ और शरीफ जैसे कई मुसलमानों को केवल इसीलिए कैदखाने में डाल दिया गया क्योंकि उनके विचार सम्राट को पसंद नहीं थे।

यह भी ध्यान देने की बात है कि जहांगीर के शासनकाल में हिंदू **मनसबदारों** का प्रतिशत कम नहीं हुआ। उसने कभी भी हिंदू मंदिरों को तोड़ने की नीति नहीं अपनाई उसने **जजिया** भी लागू नहीं किया और वह जोर-जबरदस्ती से इस्लाम कबूल कराने के पक्ष में भी नहीं था।

30.3.3 शाहजहां

शाहजहां जब 1627 ई. में गद्दी पर बैठा उस समय तक सहिष्णुता और उदारवाद की नीति में परिवर्तन का सिलसिला शुरू हो गया था। इस्लाम की विचारधारा का राज्य के मामले में हस्तक्षेप होने लगा, सम्राट को सलाम करने की प्रथा में बदलाव से तथ्य स्पष्ट होता है। अकबर ने अपने दरबार में **सिजदा** या झुक कर सलाम करने की प्रथा चलाई थी परंतु शाहजहां ने प्रथा को समाप्त कर दिया क्योंकि **सिजदा** खुदा के सामने ही किया जा सकता था। शाहजहां ने **सिजदा** के स्थान पर **चहार तस्लीम** की प्रथा शुरू की। इसके अतिरिक्त **अमल-ए सालिह** के लेखक ने बताया है कि सम्राट के आदेश से बनारस के आसपास के 76 मंदिर तोड़े गए थे। उनका तर्क था कि कोई भी नया मंदिर (**ताजा सनमखाना**) नहीं बनवाया जा सकता था। हां, शाहजहां के शासनकाल से पहले बने मंदिरों को नहीं तोड़ा गया। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस्लामी कानून के खिलाफ सम्राट संगीत और चित्रकला को सरंक्षण दिया करता था और इस मामले में उस पर मुसलमान कट्टरपंथियों का जोर नहीं चलता था। ध्रुपद सम्राट का प्रिय राग था। सम्राट ने प्रसिद्ध हिंदू संगीतकार जगन्नाथ को प्रोत्साहन दिया और बाद में उसे **महा कवि राय** की उपाधि से सम्मानित किया। शाहजहां के शासन काल में चित्रकला का भी विकास हुआ। संगीत और चित्रकला को संरक्षण देना अकबर के जमाने से ही राज्य नीति का हिस्सा था। उसके पोते ने भी इस परंपरा का पालन किया।

शाहजहां अकबर के रास्ते से थोड़ा हट गया था। जहांगीर ने कामोबेश अकबर के पथ का ही अनुगमन किया था। परंतु शाहजहां ने कभी भी गैर-मुसलमानों पर **जजिया** कर नहीं लगाया था। इसके अलावा पहले की अपेक्षा उसके हिंदू **मनसबदारों** की संख्या में भी कमी नहीं आई थी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

30.3.4 औरंगजेब

औरंगजेब का शासनकाल विवादों से घिरा हुआ है। विद्वानों के विचारों में खासकर धर्म के मामले में काफी मतभेद है। इस दृष्टि से हम विद्वानों को तीन कोटियों में विभक्त कर सकते हैं :

क) जदुनाथ सरकार, एस. आर. शर्मा और ए. एल. श्रीवास्तव औरंगजेब को धार्मिक कट्टरवाद और पक्षपात के लिए दोषी ठहराते हैं।

ख) शिबली नोमानी, जहीरूद्दीन फारूकी और इश्तियाक हुसैन कुरैशी औरंगजेब के सभी कार्यों को राजनैतिक प्रकृति का मानकर न्यायोचित ठहराते हैं।

ग) सतीश चन्द्र और अतहर अली एक "निष्पक्ष" रुख अपनाते हुए औरंगजेब के कार्यों का विश्लेषण करते हैं और पक्ष-विपक्ष के तर्क जाल में नहीं उलझते हैं।

औरंगजेब पर विचार करने में यह सुविधा है कि उस पर विद्वानों ने खूब लिखा है और उस पर तत्कालीन दस्तावेज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। हम औरंगजेब के कार्यकलापों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं : (क) गौण असंगत अध्यादेश, और (ख) प्रधान आदेश जिन्हें 'राज्य' नीति का हिस्सा समझा जा सकता है। हम इन आदेशों और कार्यों पर क्रम से विचार करेंगे और उनके आधार पर औरंगजेब की धार्मिक नीति का मूल्यांकन करेंगे। सबसे पहले निम्नलिखित मुद्दों पर विचार किया जाएगा :

i) औरंगजेब ने सिक्कों पर **कलमा** (इस्लाम धर्म के प्रति आस्था) खुदवाने की प्रथा बंद कर दी। सिक्कों के पैर के नीचे पड़ने से अथवा इस्लाम को न मानने वाले **काफिरों** द्वारा इसे स्पर्श करने से पाक **कलमे** के नापाक हो जाने का भय था।

ii) उसने अपने पूर्ववर्ती शासकों के समय से मनाया जाने वाला **नौरोज** (पारसी धर्म के वर्ष का पहला दिन) के पर्व का आयोजन समाप्त कर दिया।

iii) पुरानी मस्जिदों, आदि की मरम्मत के आदेश दिए गए और **इमामों** और **मुअज्जिनों** आदि की नियमित वेतन पर बहाली हुई।

iv) मौहम्मद साहब द्वारा प्रतिपादित नियमों को लागू कराने और उनके द्वारा निषेध प्रथाओं को रोकने के लिए **मुहतसिब** (नैतिक आचरण की देख-रेख करने वाले) की नियुक्ति की गई। शराब पीना, भांग खाना, जुआ खेलना और वेश्यावृत्ति की इस्लाम धर्म में मनाही है। अत: इन पर रोक लगाई गई। सम्राटों को उनके दो जन्म दिनों (चंद्र और सूर्य कैलेंडर के हिसाब से) पर सोने और चांदी से तौलने की प्रथा समाप्त कर दी गई।

v) सम्राटों को उनके दो जन्म दिनों (चन्द्र और सूर्य कैलेंडर के हिसाब से) पर सोने और चांदी से तोलने की प्रथा समाप्त कर दी गई।

vi) 1665 ई. में सम्राट ने गुजरात के गवर्नर को आदेश दिया कि होली और दीवाली अहमदाबाद और इसके **परगनों** के बाजारों से बाहर मनाई जाए। होली पर इस आंशिक रोक के पीछे यह तर्क दिया गया था कि हिंदू "गंदी-गंदी गालियां" देते हैं और **चकलों** और बाजारों में होली जलाते हैं, लोगों का सामान जबरदस्ती और चोरी से आग में फेंक देते हैं।

vii) उसके शासन के ग्यारहवें वर्ष में झरोखा दर्शन की प्रथा समाप्त की दी गई। सम्राट इसे इस्लाम के विरुद्ध मानता था क्योंकि दर्शनार्थियों का समूह उन्हें पृथ्वी पर भगवान का अवतार मानते थे इसलिए वे सम्राट का दर्शन किए बिना कुछ खाते नहीं थे।

viii) औरंगजेब ने दरबार में अपने सामने दरबारी संगीतकारों के गायन पर रोक लगा दी। "संगीत में उसका मन नहीं रमता था और उसके पास काम इतना अधिक था कि वह मनोरंजन का समय नहीं निकाल पाता था, धीरे-धीरे दरबार में संगीत का पूर्णत: निषेध हो गया।" परंतु संगीतकारों को अवकाश भत्ता दिया जाता था। इसके अलावा **नौबत** (शाही ढोल) को बरकरार रखा गया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

पहले पांच कार्यों से औरंगजेब की इस्लाम धर्म के प्रति आस्था के साथ-साथ सामाजिक सुधार की झलक भी मिलती है। इनमें से किसी को "हिंदू विरोधी" नहीं कहा जा सकता है। सातवें और आठवें के संबंध में भी यही बाद लागू होती है। केवल छठा कार्य सीधे हिंदुओं को प्रभावित करता है। जदुनाथ सरकार टिप्पणी करते हैं "यह निश्चित रूप से होली के मामले में पुलिस कानून और दीवाली के मामले में धर्मांधता थी।"

जदुनाथ सरकार के यह कथन विचारणीय हैं परंतु सरकार एक बात ध्यान में नहीं रखते हैं कि पूरे साम्राज्य में होली या दीवाली पर रोक नहीं लगाई गई थी। इसे औरंगजेब के अन्य आदेश के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना चाहिए " जब 1669 ई. में बुरहानपुर में प्रतिद्वंदी गुटों के बीच संघर्ष होने पर उसने मुहर्रम का जुलूस निकालने पर प्रतिबंध लगा दिया था।" यह प्रतिबंध भी एक "पुलिस कानून" था और दीवाली और होली की तरह यह किसी खास प्रांत तक सीमित नहीं बल्कि संपूर्ण मुगल राज्य में लागू किया गया था।

झरोखा दर्शन से संबंधित सातवें कार्य से हिंदू समुदाय का कोई सरोकार नहीं था। यह इस्लाम के सिद्धांतों के प्रति सम्राट के व्यक्तिगत दृष्टिकोण का परिणाम था।

आठवें आदेश में दरबार में संगीत पर रोक लगा दी गई थी, अब इसे भी हिंदुओं के खिलाफ एक कदम मानना गलत होगा। इस आदेश से खुशहाल खां और बिसराम खां जैसे दरबारी मुस्लिम संगीतकार भी प्रभावित हुए। इसके बावजूद कुलीनों ने संगीत सुनना बंद नहीं कर दिया।

अब हम उन प्रधान अध्यादेशों पर विचार करेंगे जो "राज्य" नीति के रूप में पूरे साम्राज्य में हिंदुओं को सीधे प्रभावित करती थी। इसमें से सबसे पहला कदम था नये बने हिंदू मंदिरों का विध्वंस। आपको याद होगा कि शाहजहां ने भी नये बने (**ताजा सनमखाना**) मंदिरों को ही तोड़ा था। परंतु उसका यह कार्य

बनारस तक ही सीमित रहा था। दूसरी तरफ औरंगजेब का आदेश पूरे साम्राज्य (खासकर उत्तर भारत) पर लागू होता था। उसने पुराने मंदिरों की मरम्मत न करने का आदेश दिया था।

1670 ई. में एक **फरमान** जारी किया गया कि "उड़ीसा में पिछले 10-12 वर्षों के भीतर ईंट या मिट्टी के बने सभी मंदिरों को अविलंब तोड़ दिया जाए।" औरंगजेब के शासनकाल में नष्ट किए गए मंदिरों में बनारस का विश्वनाथ मंदिर, मथुरा का केशव राय मंदिर और सोमनाथ का पुनर्निर्मित मंदिर उल्लेखनीय है। 1664 ई. में औरंगजेब जब गुजरात का वायसराय था तब उसने अहमदाबाद स्थित चिंतामन के मंदिर में गौ हत्या कर उसे अपवित्र कर दिया था और तत्पश्चात उसे मस्जिद में बदल दिया था। अन्य मंदिरों में भी जानबुझकर गौ हत्या की जाती थी।

मथुरा के मंदिरों का मामला बड़ा रोचक है। इस मंदिर का निर्माण बीर सिंह बुंदेला ने तैंतीस लाख रुपए खर्च करके किया था। 1602 ई. में अबुल फजल की हत्या कर वह जहांगीर का विश्वासपात्र बन गया था अत: उसके मंदिर को स्पर्श नहीं किया गया पर औरंगजेब ने इसे विशाल मस्जिद में बदल दिया और मथुरा का नाम बदलकर इस्लामाबाद कर दिया।

अकबर ने जिस **जजिया** कर को काफी पहले समाप्त कर दिया था उसे औरंगजेब ने पुन: 1679 ई. में लागू कर दिया। औरंगजेब के इस कार्य ने कई आधुनिक विद्वानों को विचलित किया है। जदुनाथ सरकार जैसे इतिहासकार ने इसे मंदिर तोड़ने की भाँति ही धर्मांधता से परिपूर्ण कार्य बताया है। पर सतीश चन्द्र का मानना है कि इसका संबंध दक्खन समस्या (गोलकुंडा, बीजापुर और मराठा) से है, वे यह भी बताते हैं कि सम्राट गहरे राजनैतिक संकट में फंसा हुआ था और वह मुसलमानों, खासकर कट्टरपंथियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए कुछ चमत्कारिक कदम उठाना चाहता था। (**इकॉनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री ऑफ द ओरिएंट**, भाग XII, अंक III, नामक पत्रिका में 'जजिया एंड द स्टेट इन इंडिया ड्यूरिंग द 17 सेंचुरी' नामक लेख से उद्घृत) **जजिया** से वित्तीय संकट कम करने के बारे में भी सोचा गया था पर यह तर्क बहुत कमजोर है क्योंकि **जजिया** से प्राप्त आय इतनी नगण्य थी कि उससे राज्य का वित्तीय संकट हल नहीं किया जा सकता था।

1665 ई. में आदेश जारी किया गया कि हिंदू व्यापारियों को उनके माल पर 5 प्रतिशत सीमा शुल्क देना पड़ेगा जबकि मुसलमानों को मात्र $2^1/_2$ प्रतिशत शुल्क देना पड़ता था। 1671 ई. में जारी दूसरे **फरमान** के अनुसार **खालिसा** भूमि का राजस्व संग्राहक केवल मुसलमान हो सकता था। बाद में उसने अनिच्छापूर्वक हिंदुओं को केवल कुछ विभागों में जगह दी, फिर भी उनकी संख्या मुसलमानों की अपेक्षा आधी से कम रही।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

औरंगजेब के व्यक्तित्व में एक विरोधाभास दिखाई पड़ता है। अपने असहिष्णुता के कार्यों के विपरीत उसने राज्य नौकरशाही में बड़ी संख्या में गैर-मुस्लिम अधिकारियों को नियुक्त किया था। औरंगजेब ने **मनसब** व्यवस्था में भी हिन्दुओं का प्रतिशत कम नहीं किया, बल्कि अपने पूर्वजों की तुलना में यह कुछ ज्यादा ही था। कई हिंदुओं को बड़े पद मिले और दो को गर्वनर नियुक्त किया गया। यह भी रोचक तथ्य है कि एक तरफ तो सम्राट बड़े पैमाने पर मंदिर तुड़वाने का आदेश देता है वहीं दूसरी तरफ मंदिरों और पुजारियों के भरण-पोषण के लिए अनुदान भी जारी करता है।

औरंगजेब के इन कार्यों के **'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण'** से साफ जाहिर है कि औरंगजेब ग्लानि का अनुभव कर रहा था। उसने अपने भाइयों की हत्या की थी और बूढ़े पिता को कैदखाने में डाल दिया था — बाबर से लेकर शाहजहां तक के मुगल इतिहास में कभी भी ऐसा नहीं हुआ था। उसके अंतिम कार्य से तो **तुरा-ए चगताई** की भी अवमानना हुई थी क्योंकि अपने पिता के जिंदा रहते ही वह सिंहासन पर बैठ गया था। कभी न कभी ऐसे व्यक्ति को कुंठा, पीड़ा और पश्चाताप से गुजरना पड़ता है। अत: उसने इस्लाम का कवच ओढ़ लिया। इस दृष्टि से उसके सभी कार्य उसके व्यक्तिगत निर्णय के परिणाम थे।

बोध प्रश्न 3

1) गैर-मुस्लिम जनता के प्रति जहांगीर के दृष्टिकोण पर विचार-विमर्श कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए :

सिजदा

....

....

जमीं बोस

....

....

ताजा सनमखाना

....

....

3) होली और दीवाली संबंधी औरंगजेब के आदेशों पर टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

30.4 सारांश

इस इकाई में हमने प्रमुख धार्मिक समुदायों के प्रति मुगल शासकों की नीतियों पर विचार-विमर्श किया है। मुगल शासकों पर कोई संवैधानिक प्रतिबंध नहीं लगा हुआ था, इसलिए वे निरंकुश थे और किसी के प्रति वे उत्तरदायी भी नहीं थे। अत: उनके कार्य और नीतियां एक प्रकार से राज्य की ही नीतियां बन जाती थीं।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

मुगल राज्य की अपनी कोई धार्मिक नीति नहीं थी। यह नीति मुगल सम्राट की सोच और व्यक्तिगत दृष्टिकोण पर निर्भर थी। अकबर और जंहागीर काफी हद तक सहिष्णु थे। शाहजहां अपने पूर्वजों के बनाए रास्ते से कई मामलों में अलग हट कर चला। पर औरंगजेब के शासनकाल में धार्मिक और हिंदू विरोधी कदम स्पष्ट रूप से उठाए गए। इन सबसे पीछे औरंगजेब की व्यक्तिगत सोच और अंदर छिपी कुंठा और गलानि काम कर रही थी।

30.5 शब्दावली

इबादत खाना : मूलत: अकबर ने 1575 ई. में **इबादत खाना** की स्थापना की। यह मुस्लिम (सुन्नी) धर्मशास्त्रियों के साथ धार्मिक बहस करने के उद्देश्य से की थी। बाद में इसके दरवाजे सभी धर्मावलंबियों के लिए खोल दिए गए।

इमाम-ए आदिल : सही शासक

मुअज्जिन : वह व्यक्ति जो मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिए **अजान** देता है।

मुजाहिद : धर्म के लिये युद्ध करने वाला

मुजतहिद : अपरिहार्य सत्ता

30.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 30.2.1, 30.2.2 । स्पष्ट कीजिए कि अभिव्यक्ति की इस शैली के कारण आधुनिक इतिहासकार उलझन में पड़ गए और जिन्होंने उनके ग्रंथों के अर्थों को ठीक ढंग से विश्लेषित करने की कोशिश नहीं की। अतः वे सही निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाए। किसी भी युद्ध को **जेहाद** और दुश्मन को **कुफ्र** आदि की संज्ञा देना आम बात थी। इसी तथ्य पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

2) देखिए उपभाग 30.2.3 । विश्लेषण करके यह बताइए कि किस प्रकार इलियट और डॉउसन ने मुगल इतिहास के दस्तावेजों के उन्हीं अंशों का अनुवाद किया है जिससे मुगल शासक वर्ग को शोषक और धर्मांध के रूप में दिखाया जा सके या फिर मुसलमानों (मुगल शासकों) को हिंदुओं (जनता) पर अत्याचार करते हुए दिखाया जा सके।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 30.3.1 । इस तथ्य पर विचार कीजिए कि 1556-1568 के बीच विभिन्न समुदायों को धार्मिक रियायत दिए जाने के पीछे राजनैतिक उद्देश्य काम कर रहा था। तुरानी कुलीनों की बगावत का सामना करने के लिए अकबर को भारतीय मुसलमानों और राजपूतों पर निर्भर रहना पड़ता था। पर जब भी उसे जरूरत महसूस हुई उसने उनके खिलाफ कड़े कदम उठाने में जरा भी संकोच नहीं किया और राजनैतिक जरूरत के अनुसार इसे धार्मिक स्वर भी प्रदान किया (बिल्कुल वैसा ही जैसा 1568 ई. में किया था)।

2) देखिए उपभाग 30.3.1 । इबादत खाने में होने वाली बहस से उसके चिंतन में आमूल परिवर्तन हो गया और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सभी धर्मों में एक तत्व की समानता है और इसके पीछे एक तर्क भी है।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 3

1) देखिए उपभाग 30.3.2 । बताइए कि आमतौर पर उस पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह इन समुदायों के विरुद्ध था पर ऐसी बात नहीं है।

2) देखिए उपभाग 30.3.3 ।

3) देखिए उपभाग 30.3.4 । बताइए कि कुछ कारणों से उसने केवल गुजरात क्षेत्र के लिए ऐसे कदम उठाए (विस्तार से चर्चा कीजिए)। उसने ऐसा ही कदम **मुहर्रम** के संदर्भ में भी उठाया था। अतः यह सब धार्मिक से अधिक राजनैतिक मामलों से संबद्ध था।

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

इरफान हबीब (संपादक) : **मध्यकालीन भारत,** भाग 1 व 2

के. एम. अशरफ : **हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और परिस्थितियाँ**

एस. आर. शर्मा : **मुगल सम्राटों की धार्मिक नीतियाँ**

रामनाथ : **मध्यकालीन भारतीय कलाएं एवं उनका विकास**

जी. डी. शर्मा : **मध्यकालीन भारतीय सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक संस्थाएं**

इन्दू बन्गा : **द सिटी इन इन्डियन हिस्ट्री**

एस. ए. ए. रिजवा : **द वन्डर दैट वाज इन्डिया,** भाग II

शिरीन मूसवी : **इकोनॉमी ऑफ द मुगल अम्पायर**

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 31 भारतीय भाषाएँ और साहित्य

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य
31.1 प्रस्तावना
31.2 अरबी और फारसी
31.3 संस्कृत
31.4 उत्तर भारत
31.4.1 हिंदी
31.4.2 उर्दू
31.4.3 पंजाबी
31.5 पश्चिमी भारत
31.5.1 गुजराती
31.5.2 मराठी
31.6 पूर्वी भारत
31.6.1 बंगला
31.6.2 असमी
31.6.3 उड़िया
31.7 दक्षिण भारतीय भाषाएं
31.7.1 तमिल
31.7.2 तेलुगु
31.7.3 कन्नड़
31.7.4 मलयालम
31.8 सारांश
31.9 शब्दावली
31.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

31.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम 16वीं-18वीं शताब्दियों के दौरान भारत में विभिन्न भाषाओं में विकसित होने वाले साहित्य के बारे में विचार विमर्श करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- इस काल के दौरान विकसित साहित्य की समृद्धि और अनेकरूपता का अवलोकन कर सकेंगे;
- भारत में लिखे गये अरबी, फारसी, संस्कृत, हिंदी, पंजाबी, बंगला, असमी, उड़िया, तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ भाषाओं के साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- उपर्युक्त भाषाओं में लिखने वाले कुछ इतिहासकारों, लेखकों और कवियों के बारे में जान सकेंगे।

31.1 प्रस्तावना

मुगल शासन की स्थापना से भारत में कुछ हद तक राजनैतिक एकता कायम हुई। इस शासन काल में न केवल आंतरिक बाजार आपस में जुड़े बल्कि विदेशी व्यापार में भी वृद्धि हुई। इसके साथ-साथ सर्जनात्मक बौद्धिक गतिविधियों के लिए भी माहौल निर्मित हुआ। सम्राटों के अलावा मुगल शाहजादों और सामंतों ने भी साहित्यिक गतिविधियों को संरक्षण दिया। राजपूत राजा और दक्खन तथा दक्षिण भारतीय शासक भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहे। मुख्य रूप से भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर इस काल में विभिन्न देशी भाषाओं में

समानांतर रूप मे लोकप्रिय साहित्य विकसित हुआ।

खंड 1 में हम पहले ही फारसी और अन्य भाषाओं में लिखी ऐतिहासिक कृतियों पर विचार विमर्श कर चुके हैं। इस इकाई में हम ऐतिहासिक कृतियों की चर्चा नहीं करेंगे। हम अपनी चर्चा को साहित्य तक ही सीमित रखेंगे।

सभी भाषाओं में लिखे गये समग्र साहित्य को समेटना असंभव है। हमारा मुख्य उद्देश्य देश के विभिन्न भागों में लिखी जा रही प्रमुख साहित्यिक रचनाओं से आपको परिचित कराना है।

31.2 अरबी और फारसी

मुगलों के अधीन अरबी भाषा में लिखा गया साहित्य मुख्य रूप से धार्मिक प्रकृति का था पर कुछ कवियों ने अरबी भाषा में कविताएं भी लिखीं।

फारसी मुगल दरबार की सरकारी भाषा थी। प्रथम मुगल शासक, बाबर, एक कुशल लेखक था और उसने तुर्की में अपना संस्मरण लिखा था जिसे बाद में अब्दुर रहीम खानखाना ने फारसी में अनूदित किया। बाबर ने **मसनवी मुबीन** नामक एक उपदेशात्मक ग्रंथ भी लिखा है। भारत में फारसी साहित्य के विकास में बाबर का महत्वपूर्ण योगदान यह है कि वह अपने साथ कई फारसी कवियों को लेकर आया। हुमायूँ के ईरान से वापस लौटने के बाद भारत में फारसी लेखकों का आगमन तेजी से हुआ। ईरान के शाह तहमस्प के दरबार में उसकी कई कवियों और कलाकारों से मुलाकात हुई थी। उनमें से कुछ कवियों और कलाकारों से उसने भारत चलने का अनुरोध किया। बाद में अपना दरबार कायम करने के बाद उसने देशी कवियों और लेखकों के साथ-साथ बाहर से आने वाले प्रतिभाशाली कवियों और लेखकों की कृतियों का भी सम्मान किया।

16-17वीं शताब्दी के दौरान फारसी कवियों का एक समूह भारत आया था। इन कवियों ने फारसी साहित्य को एक नये रूप में प्रस्तुत किया। इसे **सबक-ए-हिंदी** (भारतीय शैली) के रूप में जाना गया। अकबर से लेकर शाहजहाँ तक ने इस धारा के कवियों को संरक्षण दिया। इसमें फैजी, उर्फी, नजीरी, तालिब-अमूली, कालिम, गनी कश्मीरी, सायब और बेदिल जैसे महान् भारतीय और फारसी लेखक शामिल हैं।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

अक्सर मुगल सम्राट और राजकुमार खुद भी कविताएं लिखा करते थे, उदाहरण के लिए हुमायूँ ने एक फारसी दीवान लिखा। अबुल फजल के अनुसार अकबर के दरबार में हजारों कवि उपस्थित रहते थे। फैजी के अलावा गजली मश्नदी भी एक मशहूर और बहुत ही तेजस्वी कवि था। उसने कई मसनवियाँ लिखीं। गजली मश्नदी के उत्तराधिकारी के रूप में फैजी आया। उसकी प्रमुख कृतियों में एक दीवान शामिल है। जिसका शीर्षक **तबशिर-अल-सुबह** है। इसमें **कसीदा, गजल, मरसिया, किता** और **रूबाइयां** शामिल हैं। समय के साहित्यिक चलन के अनुरूप उसने एक **खामसाह** लिखने की योजना भी बनाई थी, पर वह अधूरा ही लिख पाया, उदाहरण के लिए **नल दमयंती**। फैजी के गद्य ग्रंथों में **लीलावती** का फारसी रूपांतरण, उसके संदेश पत्र और हिंदू धार्मिक ग्रंथों के फारसी अनुवाद शामिल हैं। कुछ आलोचकों के अनुसार फैजी का तुर्की में बड़ा सम्मान था और उसके प्रभाव के कारण ही भारतीय-फारसी कविता का भारत के बाहर भी प्रचार प्रसार हुआ।

अब्दुर रहीम खानखाना एक जाना माना विद्वान और तेजस्वी कवि था। उसने अकबर और जहांगीर दोनों का शासनकाल देखा था। उसके पास एक विशाल पुस्तकालय था, जिसमें चार हजार से भी ज्यादा पुस्तकें थीं। यह पुस्तकालय भी उसकी समृद्धि का प्रमुख कारण था। उसने नजीर निशपुरी, उर्फी शिराजी और मुल्ला अब्दुल बाकी निहवंदी जैसे कई लेखकों को संरक्षण प्रदान किया था।

शाहजहां को फारसी साहित्य और साहित्यकारों का महान् संरक्षक कहा जाता था। समकालीन फारसी कवि अली कुली सलेम के अनुसार उसके शासनकाल में भारत में फारसी कविता अपने उत्कर्ष पर थी। शाहजहां के दरबारी कवि के रूप में कुदसी का स्थान हमादान के अबु तालिब कालिम ने लिया। उसने अपने दीवान के अतिरिक्त शाहजहां की उपलब्धियों पर आधारित **पादशाहनामा** नामक महाकाव्य भी लिखा। तबरीज का मिर्जा मुहम्मद अली

सायब इस काल का महानतम फारसी कवि था। उसने फारसी कविता को एक नयी शैली प्रदान की। इसफहान लौटने पर भारत को दूसरा स्वर्ग कहकर उसने इस देश के प्रति अपनी कृतज्ञता जाहिर की। इस प्रकार मुगल शासकीय वर्ग के संरक्षण के कारण न केवल फारसी साहित्य की एक नयी शैली विकसित हुई बल्कि इससे गद्य लेखन में भी निखार आया।

दक्षिण में, बीजापुर के आदिल शाही शासकों ने फारसी साहित्य को भरपूर संरक्षण प्रदान किया। इब्राहीम अदिल शाह द्वितीय (1580-1626) के दरबार में उत्तर भारत और मध्य एशिया से अनेक लेखक और कवि एकत्रित होने लगे। आदिलशाही राजवंश का संरक्षण पाने वाले कवियों में मलिक कुम्मी (मृत्यु 1640 ई.) का नाम महत्वपूर्ण है। उसका समकालीन कवि मुल्ला ज़ूहरी निश्चित रूप से दक्खन का महानतम फारसी कवि था। उसने कविता और गद्य लेखन दोनों क्षेत्रों में एक नयी शैली विकसित की और सादी के **गुलिस्तां** के नमूने पर **साकीनामा** नामक पुस्तक लिखी। गोलकुंडा के कुतुब शाहियों ने भी फारसी विद्वानों और साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। इनके संरक्षण में फारसी भाषा में अनेक पुस्तकें लिखी गयीं। अब्दुल्ला कुतुब शाह के संरक्षण में 1651 ई. में मुहम्मद हुसैन तबरेजी ने अपना फारसी शब्दकोश निर्मित किया। 1681 ई. में बुस्तमी ने **हदीकल सलातीन** शीर्षक से प्रमुख फारसी कवियों की जीवनी प्रस्तुत की।

मुहम्मद कुली कुतुब शाह के शासनकाल में कुतुब शाही राज्यवंश के चार ऐतिहासिक अभिलेखों को छंद में ढाला गया। अबु इमाद ने **खिर कतुल आलम** नाम से छह खंडों में एक बृहद् संदर्भ ग्रंथ निर्मित किया। इनसे पता चलता है कि कुतुबशाही शासकों का ईरानी संस्कृति से लगाव बना हुआ था और वे इसमें रुचि भी लेते थे। साथ ही यह भी लगता है कि कुतुबशाही शासक अपने राज्य में आने वाले फारसी विद्वानों का गर्मजोशी से स्वागत और सम्मान करते थे। इसके परिणामस्वरूप फारसी ने दक्षिण में बीजापुर और गोलकुंडा की क्षेत्रीय दरबारी भाषा के रूप में पैर जमा लिया।

फारसी भाषा में रहस्यवादी या सूफी साहित्य भी लिखा गया। इसके अंतर्गत सूफियों द्वारा रहस्यवाद पर लिखे शोध ग्रंथ, सूफियों द्वारा लिखे गये पत्र **मलफूजात** (सूफी संतों की बहस), सूफियों की जीवनियां और सूफी कविता के संग्रह शामिल हैं।

शाहजादा दारा शिकोह ने **सकीनतुल औलिया** शीर्षक से सूफी मियां मीर और उनके शिष्यों की जीवनी लिखी है। **मजमउल बहरैन** (दो सागरों का मिलन) सूफीवाद से संबद्ध एक अन्य ग्रंथ है। इस कृति में उसने इस्लामी सूफी अवधारणाओं की तुलना हिंदू दार्शनिक दृष्टिकोण के साथ की है।

इस काल में मुगल सम्राटों ने महान् भारतीय ग्रंथों को फारसी में अनूदित करवाकर फारसी साहित्य को समृद्ध बनाया। अकबर के समय में **सिंहासन बतीसी**, **रामायण** और **कल्हण** की **राजतरंगिणी** का अनुवाद हो चुका था। ये सभी अनुवाद बदायूनी ने किये थे।

मुगल दरबार में विकसित हो रहे फारसी साहित्य का क्षेत्रीय साहित्य के विकास पर अच्छा खासा प्रभाव पड़ा। साहित्यिक उर्दू भाषा का विकास इसी का परिणाम था। पंजाबी, पश्तो, सिंधी, बलूची और कश्मीरी जैसी भाषाओं के विकास में भी फारसी परंपरा का महत्वपूर्ण योगदान है।

31.3 संस्कृत

मध्यकाल में संस्कृत दरबार की प्रमुख भाषा नहीं रह गयी। हालांकि मुगल सम्राटों और दारा जैसे राजकुमारों ने संस्कृत विद्वानों को संरक्षण दिया पर उत्तर भारत में इसका पहले जैसा महत्व नहीं रहा। दूसरी तरफ दक्षिण में माधवाचार्य और शंकराचार्य के प्रभाव के कारण संस्कृत साहित्य फलता फूलता रहा और विजयनगर के राजाओं ने उसे संरक्षण भी प्रदान किया। 1565 ई. के बाद तुलुवा और अराविडु राजवंशों के शासकों, तंजोर के नायकों और कोचीन तथा त्रावणकोर के सरदारों ने संस्कृत को संरक्षण देने की परम्परा जारी रखी। संस्कृत साहित्य की कई विधाएं, महाकाव्य, श्लेष काव्य, चम्पू काव्य, नाटक और खासकर ऐतिहासिक काव्य, विकसित होती रहीं। महाकाव्य के क्षेत्र में तंजोर के शासक रघुनाथ

नायक और उसके दरबारी कवियों का उल्लेख किया जा सकता है। उसकी कई कृतियों में उसके पिता अच्युत की जीवनी का विशेष महत्व है। जिंजी के नायकों के एक मंत्री, श्रीनिवास दीक्षित ने कई रचनाएं लिखी थीं। उसकी रचनाओं में अठारह नाटक और साठ काव्य ग्रंथ शामिल हैं। गोविंद दीक्षित तंजोर के नायक के दरबार का एक अन्य महान् साहित्यकार था। **साहित्य सुधा** और **संगीतसुधानिधि** उसकी महान् रचनाएं हैं।

वेल्लोर के नायक सरदारों ने एक अन्य संस्कृत विद्वान अप्पय दीक्षित (1520-92) को प्रश्रय दिया था। उसने संस्कृत की ज्ञान परम्परा की अनेक शाखाओं पर सौ से अधिक ग्रंथ लिखे।

नीलांत दीक्षित (17वीं शताब्दी) मदुरा के तिरुमलनायक का एक मंत्री था। उसने कई महाकाव्य लिखे। उसके शिव लीला और भगीरथ की तपस्या से सम्बद्ध काव्य को विद्वान उच्च कोटि का मानते हैं।

इस काल का एक महत्वपूर्ण संस्कृत कवि चक्रकवि, कोझीकोडे के राजा मानदेव जमोरी (1637-1648) का मित्र था। उसने **जानकी परिणय** और **नारायण** या **नारायण भट्टतीरे** नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। मानदेव जमोरी ने संस्कृत साहित्य को काव्य, मीमांसा, व्याकरण आदि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ग्रंथ दिए। महाकाव्य के क्षेत्र में वह बहुत प्रतिभावान था। उसे केरल का महानतम कवि माना गया।

इस काल में लिखे गये ऐतिहासिक "काव्यों" और "नाटकों" में इन संस्कृत लेखकों के सामाजिक दृष्टिकोण की झलक मिलती है जो अभी तक शास्त्रीय नियमों की वकालत करते आ रहे थे। एक रोचक तथ्य यह है कि इन प्रारंभिक ऐतिहासिक काव्यों में से एक काव्य एक महिला द्वारा भी रचित है। इसका नाम तिरुमल्लांबा है जिसे अभिलेख में 'पाठक' बताया गया है। उसकी कृति **वरदम्बिका परिणय** में अच्युतदेवराय के विवाह की कथा है। इस कृति का ऐतिहासिक महत्व होने के साथ-साथ यह उस काल में "चम्पू" काव्य का बेहतरीन नमूना है।

तंजोर के रघुमल्ल नायक की वीरता को लेकर अनेक वीरकाव्य लिखे गये पर इसमें गोविंद दीक्षित रचित **रघुनाथभ्युदय** उल्लेखनीय है। इसमें कई ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है।

शिवाजी और उनके पुत्र के जीवन को आधारित कर लिखे गये कई महाकाव्य मराठा इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इस संदर्भ में **अनुभरत** या **शिव भरत** नामक काव्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शिवाजी के समकालीन कवीन्द्र परमानंद ने यह कार्य शुरू किया। उसके पुत्र देवदत्त ने इसे जारी रखा और उसके पोते गोविंद ने शम्भूजी के जीवन का वर्णन किया।

एक रोचक तथ्य यह है कि ऐतिहासिक काव्यों में दरबारी कवियों ने मुसलमान शासकों को भी नायक के रूप में पेश किया है। मसलन, पंडित जगन्नाथ ने दारा शिकोह की प्रशंसा में **जगदभ** और आसफ खां के लिए **आसफ विलास** लिखा। दारा शिकोह ने खुद बनारस के नृसिंह सरस्वती के सम्मान में एक प्रशस्ति की रचना की।

दक्षिण भारत में लिखित तर्क ग्रंथों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय **तर्क संग्रह** (लगभग 1625 ई.) है। इसका लेखक अनामभट्ट चित्तूर जिले का रहने वाला था। उसने कई दार्शनिक ग्रंथों पर टीकाएं भी लिखी थीं। द्वैत दर्शन के क्षेत्र में वियसराय (मृ. 1537) और उसके शिष्य विजयेन्द्र (1576) का विशेष योगदान है। वियसराय ने **भदोजजीवन, तात्पर्यचन्द्रिका** और **न्यायमित्र** नामक ग्रंथ लिखे। विजयेन्द्र ने **उपसंहारविजय** और **माधव तंत्रमुख भूषण** नामक रचनाएं रचीं। अहमदनगर के निजामशाही दरबार के एक उच्च पदाधिकारी दलपति (1490-1533) ने **नृम्हिप्रद** नामक वृहद ग्रंथ लिखा जो धर्म और नागरिक कानूनों से सम्बद्ध था।

ऊपर दिए गए सभी उदाहरणों के बावजूद संस्कृत साहित्य पतनोन्मुख था। लेखक मूल रचनाओं का लेखन करने के बजाय टीकाओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित कर रहे थे। हालांकि वैज्ञानिक ग्रंथ लिखे जा रहे थे और संगीत और दर्शन पर अध्ययन जारी था, पर इनकी संख्या काफी कम थी। मुख्य रूप से इस समय रूप की तकनीक और व्याकरण ग्रंथों की टीकाओं से सम्बद्ध ग्रंथ लिखे गये। संस्कृत साहित्य के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण इस काल के दौरान देशी साहित्य का उदय माना जाता है। भक्ति आंदोलन ने पूरे देश को प्रभावित किया। इससे क्षेत्रीय कवि अपनी बोलचाल की भाषा में छंदबद्ध काव्य लिखने को प्रेरित हुए।

यह भाषा बोलचाल की भाषा के नजदीक थी। इन साहित्यिक कृतियों की लोकप्रियता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि सामान्य जन के साथ-साथ कुलीन वर्ग भी इसकी ओर तेजी से आकर्षित हुआ।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :

क) रहस्यवादी साहित्य :

....
....
....
....
....

ख) दक्षिण भारत की फारसी साहित्यिक कृतियाँ :

....
....
....
....
....

ग) फारसी भाषा में श्रेष्ठ भारतीय ग्रंथों का अनुवाद :

....
....
....
....
....

MAADHYAM IAS

2) 16वीं-17वीं शताब्दियों के दौरान संस्कृत भाषा में लिखी गयी कृतियों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

....
....
....
....
....

31.4 उत्तर भारत

उत्तर भारत में मुख्य रूप स ाहदा, उर्दू और पंजाबी भाषा में साहित्य का निर्माण हुआ।

31.4.1 हिंदी

हिंदी भाषा के विकास की कहानी लंबी है। यह कई कालों और दौरों से गुजरकर अपने आधुनिक स्वरूप में हमारे सामने है। उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाने वाली बोलियों का इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। इन बोलियों में ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी, मालवी आदि प्रमुख हैं, हिंदी के एक मिश्रित रूप खड़ी बोली का उदय भी 15वीं-16वीं शताब्दियों के दौरान हुआ।

हिंदी का उद्गम 7वीं से दसवीं शताब्दी के बीच हुआ। इस समय हिंदी अपभ्रंश रूप मे उभर रही थी। हिंदी साहित्य के आरंभिक काल को वीरगाथा काल के नाम से जाना जाता है। इस काल में कवियों ने राजपूत राजाओं और सरदारों की कीर्ति में काव्यों की रचनाएं कीं। ऐसी कविताओं में '**पृथ्वीराज रासो**', '**हमीर रासो**' आदि प्रमुख हैं।

इसके बाद भक्तिकाल का दौर शुरू हुआ। कबीर इस युग के सबसे महत्वपूर्ण कवि थे। यह परम्परा 16वीं-17वीं शताब्दियों के दौरान भी जारी रही। संस्कृत के भ्रष्ट रूप मागधी-प्राकृत से हिंदी भाषा का विकास हुआ और भक्तिकाल में इस भाषा में अभूतपूर्व रचनाएं सामने आयीं। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने लेखन के माध्यम से इस भाषा को सर्जनात्मक शक्ति प्रदान की। इनका जन्म 1523 ई. के आसपास पूर्वी उत्तर प्रदेश में हुआ था। उन्होंने सन्यास धारण कर लिया और 1574 ई. में अपनी विख्यात पुस्तक **रामचरित मानस** की रचना शुरू की। तुलसीदास ने इसकी रचना अवधी लोकभाषा में की। लोकभाषा में लिखे होने के कारण यह ग्रंथ अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। तुलसीदास ने अपने इस ग्रंथ में राम को आदर्श पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने भक्ति का आदर्श स्थापित किया।

तुलसीदास ने अनेक ग्रंथों की रचना की लेकिन **विनयपत्रिका** में उनका दर्शन अधिक मुखर हुआ है। हालांकि उन्होंने ईश्वर मात्र के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना की शिक्षा दी थी पर अपने व्यक्तिगत जीवन में वे एक ईश्वर की पूजा करते थे और उसी के प्रति समर्पित थे। तुलसीदास ने अग्रदास और नाभादास जैसे अन्य भक्त कवियों को भी प्रेरित किया। इन्होंने भक्तमाल की रचना की थी जिसमें प्राचीन काल के वैष्णव संतों तक का उल्लेख किया गया था।

राम के अलावा कृष्ण की भी ईश्वर के अवतार के रूप में पूजा की गयी और उनके प्रति भक्ति भाव प्रकट किया गया। कृष्ण के प्रति भक्ति करने वाले कवियों को ''अष्टछाप'' के नाम से जाना गया। ये सभी आठ कवि वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनमें सूरदास सर्वोत्तम माने गये। उनका रचना काल 1503-1563 ई. के बीच का है। मीराबाई ने कृष्ण भक्ति को एक नया आयाम दिया। राजपूत घराने की इस रानी ने सन्यासिनी का वेश धारण किया। मीरा खुद कई रोमांटिक दंत कथाओं की नायिका बन गयीं। अपने गीतों में उन्होंने कृष्ण को प्रेमी के रूप में चित्रित किया और अपने आराध्य देव के प्रति एक ''भक्त'' के समान खुद को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया। ये गीत मूल रूप से राजस्थान की मारवाड़ी बोली में रचे गये थे पर बाद में बोलचाल के क्रम में उसमें ब्रजभाषा का प्रभाव पड़ गया। यह भाषा मुख्य रूप से गुजरात और उत्तरी भारत के हिस्सों में लोकप्रिय थी।

सूफी कवियों ने अवधी भाषा में अपनी रचनाएं लिखीं और अपने रहस्यवादी दर्शन को अभिव्यक्त करने के लिए लोककथाओं का सहारा लिया। अधिकांशतः प्रेमकथाएं ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनीं। इस प्रकार के लेखकों में **चंदायन** के लेखक मुल्ला दाउद और **मृगावती** के लेखक कुतुबन का नाम लिया जा सकता है। पर इस परम्परा के महान् कवि मलिक मुहम्मद जायसी थे जिन्होंने 1520-40 ई. के बीच प्रसिद्ध ग्रंथ **पद्मावत** की रचना की। इसमें अलाउद्दीन खिलजी और चित्तोड़ की रानी पद्मिनी की लोकप्रिय लोककथा का विस्तार से रहस्यवादी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यह कृति विषय की दृष्टि से तो उल्लेखनीय है ही, इसमें अवधी भाषा को एक नया स्वरूप भी प्रदान किया गया है। इससे अवधी भाषा की सर्जनात्मक क्षमता में वृद्धि हुई। 17वीं और 18वीं शताब्दियों के मुसलमान कवियों में उस्मान शेख नबी, कासिम और मीर मुहम्मद उल्लेखनीय हैं।

अकबर के संरक्षण में ब्रजभाषा साहित्य समृद्ध हुआ और तानसेन जैसे संगीतकारों तथा अब्दुर रहीम खानखाना जैसे कवियों ने कृष्ण की लीला संबंधी पद रचे।

31.4.2 उर्दू

तुर्की ''उर्दू'' शब्द का अर्थ सैनिक छावनी है। यह 14वीं शताब्दी के बाद दक्खन और दक्षिणी भारत में शासन कर रहे मुसलमानों की बोली के रूप में उभरी। इसका साहित्यिक रूप 15वीं शताब्दी में सामने आया जिसे ''दक्खनी'' के रूप में जाना गया। हालांकि इस भाषा में मुस्लिम शासन के पहले के काल की बोलियों की झलक मिलती है पर इसका मुख्य प्रेरणा

स्रोत तत्कालीन फारसी साहित्य बना। रूप और विषय उन्होंने इसी साहित्य से ग्रहण किया। यह प्रवृत्ति 17वीं शताब्दी के अंत तक कायम रही और यहां तक कि इसकी लिपि भी फारसी अरबी बनी रही।

गुजरात, बीजापुर, गोलकुंडा, औरंगाबाद और बीदर दक्खनी साहित्य के प्रमुख केंद्र थे। मुसलमानी हिंदी परम्परा के सबसे प्राचीन लेखक प्रसिद्ध सूफी कवि सैयद बंदा नवाज गेसूदराज (मिराज़ उल आशिकी का लेखक) हैं जिन्होंने 1422 ई. में बहमनी राज्य की राजनीति में मुख्य भूमिका अदा की थी।

इस साहित्यिक रूप के दो प्रमुख कवि शाह अली मोहम्मद जान और शेख खूब मोहम्मद ने गुजरात में रहकर अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं। गोलकुंडा के कुतुबशाही सुल्तान दक्खनी साहित्य के प्रमुख संरक्षक थे। उनमें मुहम्मद कुली कुतुब शाह (1580-1619) खुद कवि था। इसके अलावा उसके दरबारी कवि मुल्ला वजही ने उन्हें अपने काव्य के रोमांटिक नायक के रूप में भी प्रस्तुत किया। गोलकुंडा में रहने वाले उल्लेखनीय कवियों में घसवी, इब्नी, निशाती और तबी का नाम प्रमुख है।

बीजापुर का सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय (1580-1626) कला एवं संस्कृति का एक महान् संरक्षक था और उसने स्वयं दक्खनी संगीत पर एक पुस्तक लिखी थी। दक्खनी कवि अपनी कृतियों में स्थानीय घटनाओं और वृत्तांतों का भी उल्लेख करते थे। हसन शौकी ने अपनी एक कविता में तालिकोटा के युद्ध (1565) का उल्लेख किया है। इस युद्ध में दक्खन के मुसलमान सुल्तानों ने विजयनगर के हिंदू राज्य पर विजय प्राप्त की थी। रूस्तमी और मलिक खुनसुद के समान अधिकांश कवि मुसलमान थे, पर हिंदू भी इस भाषा में कविता रचते थे। हिंदू कवियों में सर्वप्रथम एक हिंदू, ब्राह्मण था जो "नुसरती" के नाम से कविता लिखता था। **अलीनामा** और **गुलशने इश्क** उसकी प्रमुख कृतियां हैं। **अलीनामा** एक लंबी कविता है जिसमें कवि ने अपने आश्रयदाता अली आदिल शाह द्वितीय (1656-1672) का जयगान किया है। **गुलशने इश्क** में मनोहर नामक हिंदू और मधुमालती की प्रेमकथा को विषय बनाया गया है। उन्हें कविता के नायक-नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

रूस्तमी की प्रमुख कृतियों में **खावरनामा** का नाम सर्वोपरि आता है। वजही दूसरा महत्वपूर्ण कवि है। उन्होंने **कुतबो मुश्तरी**, एक **मसनवी** और **सब रस** (गद्य रचना) की रचना की। वली दक्खनी इस काल का सबसे महत्वपूर्ण उर्दू कवि था। उर्दू कविता को गज़ल शैली से उसी ने परिचित करवाया। उसने फारसी परम्परा की तर्ज पर उर्दू गज़ल का विकास किया। वली की दृष्टि तीक्ष्ण थी, उसकी अनुभूति प्रबल थी और उसकी शैली में फैलाव और अनेकरूपता थी। उसके समकालीन उर्दू कवि मिर्जा दाउद ने भी इस काल में उर्दू साहित्य के विकास में योगदान किया।

1750 ई. तक दिल्ली क्षेत्र में उर्दू अच्छी तरह जम गयी और दक्खन पर औरंगजेब के अभियान के बाद दक्खनी का पतन हो गया।

31.4.3 पंजाबी

पंजाबी भाषा संस्कृत के एक अपभ्रष्ट रूप सौरशेनी प्राकृत या और स्पष्ट रूप से कहें तो सौरशेनी अपभ्रंश से निकली है। ब्रजभाषा और राजस्थानी के साथ-साथ पंजाबी का व्याकरणिक आधार एक है। हालांकि गुरुनानक (1469-1538) के पहले का लिखित पंजाबी साहित्य प्राप्त नहीं हुआ है। 'आदि ग्रंथ' इस भाषा की प्रारंभिक कृति है, जिसे 1604 ई. में गुरू अर्जुन देव ने संग्रहीत किया था। इस ग्रंथ से एक शब्द निकालना या जोड़ना पाप माना गया है अतः यह अपने मूल रूप में सुरक्षित है। इस प्रकार यह मध्यकालीन साहित्य का सर्वोत्तम प्रारूप है।

इस ग्रंथ में गुरुओं ने ईश्वर के रूवरूप और महिमा का बखान किया है और इस ग्रंथ को विभिन्न राग वाले पदों से संवारा गया है। गुरुनानक की वाणी में उपदेशात्मकता का स्वर प्रमुख है। उनके ये उपदेश गहरी तपस्या, अंतः प्रज्ञात्मकता और सहज बोध को ही अभिव्यक्त करते हैं।

गुरुओं के अलावा सिक्ख धर्म के प्रचार प्रसार के लिए भाई गुरुदास (1559-1637) ने भी कविताओं की रचना की। उनकी छंद पर असाधारण पकड़ थी। उनके बाद भक्ति साहित्य से

MAADHYAM IAS

सम्बद्ध अनेक रचनाएं प्रकाशित हुईं। इससे पंजाबी या गुरुमुखी भाषा समृद्ध हुई।

काव्य के अलावा गद्य रचनाएँ भी सामने आयीं। इनमें मुख्य रूप से जनम साखियां नाम से जीवनियां लिखी गयीं। सिक्ख धर्म के सिद्धांतों और वचनों को भी गद्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। गैर धार्मिक क्षेत्र में अधिकतर प्रेम कथाओं की रचना की गयी। इन्हें ''किस्सा'' के नाम से जाना गया। इनकी रचना मुख्य रूप से मुसलमान लेखकों ने की है। इन प्रेम कथाओं में हीर रांझा और मिर्जा तथा साहिबान की कथाएं प्रमुख हैं। हीर और रांझा कथा के सर्वोत्तम प्रवक्ता वारिस शाह हैं। वारिस शाह एक कुशल कवि थे जिनकी संवाद पर असाधारण पकड़ थी। कथा में मार्मिक अंशों और त्रासदिक तत्वों के समावेश में वे सिद्‌हस्त थे। नायक और नायिका की मृत्यु का वर्णन करते हुए उनकी यह कला अपने उत्कर्ष पर पहुंची दिखाई देती है।

मिर्जा-साहिबान की कथा का सर्वोत्तम रूप कवि पीलू की रचना में देखने को मिलता है। उसने गहराई में जाकर नायिका साहिबान के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का चित्रण किया है जिसमें नायिका अपने परिवार के प्रति निष्ठा और मिर्जा के प्रति प्रेम के दोहरे पाट में पिसती दिखाई गई है।

एक हिंदू कवि अग्र ने हकीकत राय नामक एक सिक्ख युवा की शहादत की गाथा गाई है। यह युवक शाहजहां के शासनकाल में लाहौर में अपने धर्म के लिए शहीद हो गया था।

सूफी कवियों ने भी पंजाबी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनमें सुल्तान बाहु (1631-91) प्रमुख है। वह झंग क्षेत्र का रहने वाला एक सूफी था। उसने अपनी कविताओं के माध्यम से ईश्वर से मिलन और भक्ति का प्रतिपादन किया है।

शाह हुसैन एक घुमक्कड़ संत फकीर थे जो गांव-गांव घूमा करते थे। लोग उन्हें बहुत प्यार करते थे। उन्होंने लयबद्ध गीत लिखे। इस पद को **काफी** के नाम से जाना जाता है और अधिकांश सूफी कवियों ने इसे अपनाया। शाह हुसैन द्वारा प्रयुक्त संगीत और लय को भी सूफी कवियों ने अपनाया। बुल्लेशाह (1680-1758) सर्वाधिक नामवर सूफी कवि थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में परमानंद, प्रेम और जीव के ईश्वर से मिलन के बारे में लिखा है। उन्होंने अपनी कृतियों में मुख्य रूप से जीवन के आध्यात्मिक पक्ष पर जोर डाला है पर उनकी कविताओं में पंजाब की मिट्टी की गंध है। बुल्लेशाह की कविताएं लोक गीतों में ढल गयीं। आज वह पंजाबी साहित्यिक परम्परा का एक समृद्ध अंग है।

MAADHYAM IAS

बोध प्रश्न 2

1) हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में भक्ति आंदोलन के योगदान पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

2) उर्दू साहित्य के विकास में दक्खन राज्यों के योगदान पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित पर संक्षेप में लिखिए :

क) **''आदि ग्रंथ**

....

....

....

....

....

ख) पंजाबी में लिखने वाले सूफी कवि :

....

....

....

....

....

31.5 पश्चिमी भारत

पश्चिम भारतीय भाषाओं में हम यहां गुजराती और मराठी का अध्ययन करेंगे।

31.5.1 गुजराती

16वीं शताब्दी के आरंभ से गुजराती साहित्य के इतिहास में एक नये अध्याय की शुरुआत होती है। यह दूसरा चरण कहा जा सकता है। आधुनिक गुजराती साहित्य के आगमन के पहले लगभग दो सौ वर्षों तक इसी चरण का प्रभुत्व कायम रहा। कई अन्य भाषाओं के समान धर्म और रहस्यवाद गुजराती साहित्य की भी विषयवस्तु रही। 16वीं शताब्दी के आरंभ में गुजरात में वैष्णव भक्ति आंदोलन एक प्रमुख सामाजिक विषय था। अतः इस काल का अधिकांश साहित्य भक्ति परम्परा से जुड़ा हुआ है।

इस काल के प्रमुख गुजराती कवि निम्नलिखित हैं :

भलन	(लगभग 1426—1500)
नरसिंह मेहता	(लगभग 1500—1580)
अक्खो	(लगभग 1615—1674)

इनमें से नरसिंह मेहता ने परवर्ती कवियों को विशेष रूप से प्रभावित किया। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा और बहुरंगी लेखन के कारण उन्हें गुजराती कविता का महान कवि माना जाता है। भलन एक परम्परागत कवि थे। उनकी कविता विषयवस्तु की दृष्टि से श्रेष्ठ और अभिव्यक्ति में गरिमामय होती थी। उन्हें गुजराती छंद का उत्तम कलाकार माना जाता है। अक्खो एक कुशाग्र और तेजस्वी कवि थे और उनकी कविताओं में आध्यात्मिकता के साथ-साथ सामाजिक दृष्टिकोण भी मुखर हुआ है। वे कोई विद्वान नहीं थे पर उन्होंने आध्यात्मिक और सामाजिक सुधार संबंधी गीत बिल्कुल भक्ति में डूबकर गाये हैं।

17वीं शताब्दी के बाद गुजराती साहित्य में गिरावट का रुख शुरू हो जाता है। इसके बावजूद इस काल में तरह-तरह के साहित्य रचे गये। इस समय भक्ति, नीति, अर्द्धतात्विक और धर्मनिरपेक्ष साहित्यों की भी रचना की गयी।

31.5.2 मराठी

16वीं-17वीं शताब्दी के मराठी साहित्य में दो प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं धार्मिक और गैर धार्मिक। इस काल की धार्मिक कविताओं में निम्नलिखित रचनाएं प्रमुख हैं :

- ज्ञानेश्वर की शैली में फादर थॉमस स्टीफिन्स (1549-1619) का **खाविस्त पुराण** लिखा गया।
- मुक्तेश्वर ने **रामायण** और **महाभारत** के अंशों पर आधारित अपनी कविताओं में अपने समाज को प्रतिध्वनित किया है।
- तुकाराम के **अभंग** में लोगों से प्रत्यक्ष रूप में संवाद स्थापित किया गया है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस काल के गैरधार्मिक साहित्य में शिवाजी के गुरू और महान् संत रामदास की कविताएं और वामन पंडित (1615-1678) की रचनाएँ शामिल हैं। रामदास की रचनाओं में भक्ति और धार्मिक संवेदना के साथ मुक्ति और राष्ट्रीय पुनर्संरचना का भाव मिला होता था। वामन का दृष्टिकोण विद्वतापूर्ण और शैक्षिक था। इस कारण उसकी भाषा क्लिष्ट और संस्कृतनिष्ठ थी। उनकी प्रमुख रचना गीता की टीका है जिसमें उन्होंने भक्ति के स्थान पर ज्ञान की महत्ता स्थापित की है।

इस काल की गैरधार्मिक कविताओं में **पोवडों** और **लवनियों** को भी गिना जा सकता है। **पोवडा** जीवंत नृत्य नाटिका कविता होती थी और इसकी काव्य भाषा में चटकीलापन होता था। **लवनियों** की प्रकृति रोमांटिक होती थी और इसमें गहरी संवेदनाओं का सुंदर उपयोग किया जाता था।

31.6 पूर्वी भारत

पूर्वी भारत में मुख्य रूप मे बंगला, असमी और उड़िया भाषा में साहित्य का सृजन हुआ।

31.6.1 बंगला

पूर्व में, चैतन्य महाप्रभु के आगमन के बाद बंगला भाषा और साहित्य की समृद्धि शुरू हुई। श्री चैतन्य वैष्णव कवि थे। संतों की वाणी से प्रभावित होकर उन्होंने रहस्यवाद का उपदेश देना आरंभ किया और मैथिली और संस्कृत की मिली जुली नयी भाषा में अपने गीत रचने लगे। यह भाषा ब्रज बोली के नाम से जानी गई और इसके गीतों को पदावली के रूप में जाना गया। वैष्णव संतों की कई जीवनियां भी प्रकाशित हुईं। हालांकि श्री चैतन्य की जीवनी सबसे पहले मुरारी गुप्त ने संस्कृत में लिखी थी पर इसके तुरंत बाद बंगला में वृंदावनदास के द्वारा रचित एक जीवनी सामने आयी। अनुमानतः वृंदावनदास ने श्री चैतन्य की मृत्यु के एक दशक के भीतर ही **चैतन्य भागवत** या **चैतन्य मंगल** की रचना कर दी थी और इसे तत्कालीन सामाजिक अवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जाता है।

MAADHYAM IAS

कृष्णदास कविराज का चैतन्य चरितामृत इस कड़ी की एक महत्वपूर्ण कृति है। हालांकि इसके लेखन काल के संबंध में विवाद है, पर यह ग्रंथ गौड़ीया वैष्णव धर्म का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है। इसमें पहली बार दार्शनिक सिद्धांत का प्रतिपादन कर श्री चैतन्य को श्री कृष्ण का अवतार बताया गया है।

श्री चैतन्य की जीवनी में चूड़ामणिदास का गौरंग विजय प्रमुख है। जयनंद और लोचनदास नामक दो कवियों की **चैतन्य मंगल** नाम से दो अलग-अलग रचनाएं उल्लेखनीय हैं। लोचनदास लोक संगीत **धमाली** नामक शैली विकसित करने के लिए ज्यादा जाना जाता है। इस शैली में मुख्य रूप से कृष्ण की प्रेम कथाओं का उल्लेख होता था।

पदावली के नाम से प्रसिद्ध गीतकाव्य वैष्णव साहित्य की एक अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इन "पदों" के निर्माण के लिए संस्कृत साहित्य में वर्णित रसों को आधार बनाया गया। राधा-कृष्ण का प्रेम प्रमुख विषय बना। इन ग्रंथों के आरंभ में श्री चैतन्य की स्तुति की जाती थी और राधा और कृष्ण का मिला जुला रूप मानकर उनकी वंदना की जाती थी। कृष्ण लीला को आधार बनाकर कई आख्यानात्मक कविताएँ लिखी गयीं। मुख्य रूप से इनमें **भागवत्** दशम स्कंध में वर्णित वृंदावन लीला को आधार बनाया गया है।

एक तरफ जहां हिंदू जमींदारों और मुसलमान सूबेदारों ने वैष्णव साहित्य को प्रश्रय देना शुरू किया वहीं "मंगल काव्य" के नाम से आख्यानात्मक काव्य की एक अन्य धारा का भी विकास हुआ। इसमें चंडी, मनसा, धर्म आदि स्थानीय देवी-देवताओं का महत्व स्थापित किया गया और शिव तथा विष्णु जैसे पौराणिक भगवानों को बंगाली कृषक या कलाकार के रूप में प्रस्तुत कर पारिवारिक देवी-देवता के रूप में प्रतिस्थापित किया गया। "मंगल काव्य" की वर्णनात्मक शैली पुराणों से प्रेरित है। इन काव्यों पर पौराणिक लेखकों के प्रभाव का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इन बंगाली कवियों ने शैली पुराण से ली है पर उसे अपने अनुभवों के आधार पर लिखा है। इसी कारण से पुराणों में वर्णित राक्षसों का नाश

करने वाले डरावने भैरव शिव का त्रिशूल खेती के औजारों में बदल दिया गया है और उन्हें एक अर्द्ध विक्षिप्त ग्रामीण योगी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। धर्म मंगल काव्यों में समन्वयात्मक प्रवृत्ति देखने को मिलती है। इसमें पौराणिक नारायण में बौद्ध धर्म को समाविष्ट किया गया है और मुसलमान पीर को सत्यपीर या सत्यनारायण कहा गया है।

कई मुसलमान लेखकों ने भी बंगला भाषा में रचनाएं प्रस्तुत कीं। पहला उल्लेखनीय लेखक दौलत काज़ी था, जो अराकान से आया था। अराकान के बर्मा से स्वतंत्र होने के बाद से ही बंगाल और अराकान के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया था। अराकान से भागकर वहां का शासक बंगाल में शरण लेने को बाध्य हुआ था और उसे वहां 26 वर्षों तक रहना पड़ा था। इसी कारण से बंगला भाषा वस्तुतः अराकान की राजकीय भाषा बन गयी।

दौलत काज़ी ने गुजरात-राजस्थान क्षेत्रों में प्रचलित लोर-चंद्रानी या मैना सती की प्रेम कथाओं को बंगला भाषा में प्रस्तुत किया। यह कहा जाता है कि लोर चंद्रानी उसके मरने के बाद पूरी की गयी। इसे पूर्ण करने वाला कवि अलौल और भी ज्यादा प्रतिभाशाली था। अलौल निचले बंगाल के एक मुसलमान अमीर का बेटा था। उसे पुर्तगाली डाकुओं ने पकड़कर अराकान सेना के सैनिक के रूप में बेच दिया। उसकी संगीत प्रतिभा और कवि रूप से अराकान दरबार के एक मंत्री सुलेमान और राजा के पौष्य भतीजे मगन ठाकुर प्रभावित हुए। इन प्रभावशाली मित्रों ने अलौल को उसके दासत्व से मुक्त करा दिया। उसने मलिक मुहम्मद जायसी की **पद्मावत,** फारसी प्रेम कथा **सैफुल मुल्क बदउज्जमाल** और निजामी की दो कृतियों को बंगला में प्रस्तुत किया। फारसी कविता और अन्य प्रेम कथाओं का बंगला भाषा में अनुवाद कर अलौल ने बंगला साहित्य को गैर धार्मिक विषय प्रदान किए।

16वीं शताब्दी और उसके बाद बंगाल में अनेक मुसलमान लेखक रचना कर रहे थे और हालांकि उन्होंने ज्यादातर गैर धार्मिक विषय (साबिर ने **विद्या मुंदर** का सार लिखा था) ही उठाए थे पर उन्होंने **करबला** की त्रासद कथा तथा पैगम्बरों और गाजियों के विषय में भी लिखा। सैयद सुल्तान की कृति **रसूल अर्ज** दोनों धर्मों से मिली जुली विषयवस्तु पर आधारित है इसमें कुछ हिंदू भगवानों को भी शामिल किया गया है। उसके शिष्यों द्वारा लिखित **युगसंवाद** या **सत्य कली विवाद संवाद में भी** यह प्रवृत्ति पायी जाती है।

MAADHYAM IAS

31.6.2 असमी

बंगला के समान असमी साहित्य का विकास भी भक्ति आंदोलन की छत्र-छाया में हुआ। शंकरदेव ने वैष्णव धर्म धारण किया और एक अच्छा कवि होने के नाते उन्होंने असमी साहित्य को श्रेष्ठ कविताएं प्रदान कीं। शंकरदेव की परम्परा को उनके शिष्य माधवदास ने आगे बढ़ाया। **भक्ति रत्नावली** में कई श्लोक हैं और इसमें भक्ति के विभिन्न आयामों की चर्चा की गयी है। **बारागीता** में वृंदावन बिहारी कृष्ण का वर्णन है और एक अन्य कृति में कृष्ण के बचपन को चित्रित किया गया है। बंगाल और गुजरात में वर्णित राधा कृष्ण की प्रेम कथा में अक्सर पायी जाने वाली कामुकता का असमी वैष्णव कविता में नामो निशान नहीं है। इस दृष्टि से असमी वैष्णव कविताएं अलग हैं। असमी वैष्णव कविताओं में कृष्ण प्रेम की कथा की अति श्रृंगारिकता को त्यागने की कोशिश की गयी है और उनके बाल रूप पर अधिक बल दिया गया है।

असमी लेखकों ने महाकाव्यों और पुराणों का भी अनुवाद किया। राम सरस्वती ने अपने आश्रयदाता कूच बिहार के राजा के लिए महाभारत के कुछ अंशों का अनुवाद किया। इसी प्रकार चंद्र द्विज ने भागवत और विष्णु पुराण के आधार पर कृष्ण कथा लिखी।

असमी गद्य साहित्य का विकास मुख्य रूप से ऐतिहासिक अभिलेखों 'बुरंजी' के संग्रहण के क्रम में हुआ। ये अहोम राजाओं के निर्देश पर लिखे गये थे। जिन्होंने आसाम पर कब्जा जमाकर यहां राज्य किया और जरूरत पड़ने पर मुगलों से टक्कर भी ली। अहोमो की चीनी-तिब्बती संस्कृति का प्रभाव आसाम पर पड़ा और असमी गद्य भी इससे प्रभावित हुआ।

31.6.3 उड़िया

इस काल में उड़िया साहित्य पर भी संस्कृत का प्रभाव मौजूद था। मधुसूदन, भीम, द्विवर, सदाशिव और शिशु ईश्वरदास ने पौराणिक विषयों पर आधारित कई काव्यों की सर्जना की।

धनंजय भार्या ने गैर-पौराणिक विषय पर आधारित प्रेम कथाएं लिखीं। **'रस कल्लोल'** नामक एक कृति में एक अभिनत काव्य प्रयोग किया गया है, जिसमें प्रत्येक पंक्ति 'इ' वर्ण से शुरू होती है। इसमें राधा और कृष्ण की प्रेम कथा कही गयी है। शिशु शंकर दास का **उषाविलास,** देव दुर्लभ दास की **रहस्यमंजरी** और कार्तिक दास का **रुक्मणी बिभा** इसी प्रकार की उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

17वीं शताब्दी में रामचंद्र पटनायक की कृति **हारावली** की रचना से उड़िया साहित्य को एक लोक आधार प्राप्त हुआ। इसमें एक आम आदमी नायक और एक किसान की बेटी नायिका है। हालांकि यह अपने आप में एक नूतन प्रयोग था पर आमतौर से उड़िया साहित्य संस्कृत साहित्य का ही अनुगमन करता रहा। भूपति पंडित की रचना **प्रेम पंचमित्र** में धर्म सिद्धांत को भक्ति के सूत्र में पिरोकर काव्य रूप प्रदान किया गया है। इस रचना की भाषा की तुलना अक्सर जयदेव के साथ की जाती है।

हालांकि आमतौर पर उड़िया भाषा पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट था, पर 18वीं शताब्दी के दौरान एक कृत्रिम शैली का विकास हुआ जिसमें अतिश्रृंगारिकता होती थी और भाषा का चमत्कार होता था। उपेन्द्र भंज (1670-1720) इस धारा का प्रतिनिधि कवि था जिसने उड़िया साहित्य में नये युग का प्रवर्तन किया जो 19वीं शताब्दी तक कायम रहा।

बोध प्रश्न 3

1) बंगला साहित्य को चैतन्य परम्परा ने कैसे प्रभावित किया?

....

....

....

....

....

2) अध्ययनरत काल के असमी साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

31.7 दक्षिण भारतीय भाषाएँ

तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम प्रमुख दक्षिण भारतीय भाषाएं थीं जिनमें इस काल में साहित्य की रचनाएं हुईं।

31.7.1 तमिल

इस काल के तमिल साहित्य में कई प्रकार के दार्शनिक ग्रंथ, टीकाएँ, साहित्यिक कृतियाँ और पुराण लिखे गये। बहुत-सी कृतियां वैष्णव और शैव धर्म से सम्बद्ध हैं। हरिदास नामक एक वैष्णव कवि ने **इरूसमय्या विलक्कम** (शैव और वैष्णव धर्म की व्याख्या) की रचना की। मरैनानरबंदर ने **सिवदारु मोत्तरम्** (1533) नामक एक अन्य तमिल कृति की रचना की। इस पुस्तक में 1200 श्लोक हैं। इनमें कालानुक्रम, मंदिर और उसकी संरचना और धर्म सिद्धांत की बातें की गयी हैं। इसकी लेखक ने **शैवा-समयनेरी** (शैव पंथ का पथ) नामक कृति की भी रचना की जिसमें शैवों के प्रतिदिन की उपासना पद्धति का उल्लेख है। कमलई नानप्रकारा ने तिरुमलुवड़ी पर पुराण और शैव पूजा पर अनेक निर्देशिकाएं प्रकाशित कीं। निरम्बा अलीगया और उनके शिष्यों ने भी पुराण साहित्य को समृद्ध किया। देसिकर ने **सेतु पुराणम्** और **तिरुप्परंगिरि** और **तिरुवैय्युर** पर पुराण लिखे। उनके एक शिष्य ने **तिरुवल्तरपुराणम्** (1592 ई) की रचना की।

मदुरा के नायक का एक अधिकारी मदई तिरुवेंगदनत्थार 17वीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण साहित्यकार था। अद्वैत वेदांत की व्याख्या करते हुए उसने तमिल में एक लंबी कविता लिखी थी।

पुराण तिरुमलैनाथन कृत **चिदंबरा पुराणम्** (1508), नल्लूर वीरकविरायर रचित **अरीचंद्र पुराणम्** (1524), अंदारी का **सुंदर पाड्यन** (1580), काच्चियप्पा शैवाचार्य का **कंदपुराणम्** (1625) और बालासुब्रह्मणयम् कविरायर रचित **पॉलनि तल पुराणम्** (1628) इस काल के अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ हैं। इसी समय के आसपास तंजोर के एक वेल्लाल कवि एल्लपा नवलार (लगभग 1542-80) ने तिरुवरुर पर एक उत्कृष्ट **कोवई** लिखी। तेनकराइ के एक पांड्य राजा अतिवीररामा ने **नैडतम** नामक एक सुंदर ग्रंथ लिखा। उन्होंने संस्कृत के कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का तमिल में अनुवाद भी प्रस्तुत किया।

परनजोति रचित **चिदंबरा पाहियल**, कुरुगई पेरुमल कवियर कृत **मारन अलंकारम** और वैद्यनाथ दसिकर कृत **इलक्कनाविलक्कम** प्रमुख व्याकरणिक ग्रंथ हैं। जैन कवि मंडलपुरुष की कृति **निगंटु चूड़ामणि**, कयदरार कृत **कोयदरम** इस काल के प्रमुख शब्दकोश हैं।

31.7.2 तेलुगु

तेलुगु भाषा के स्तर पर तमिल और कन्नड़ से जुड़ी हुई है परंतु इसके साहित्यिक मानदंड संस्कृत पर आधारित हैं।

हमारे इस अध्ययनरत काल में विजयनगर के राजा कृष्ण देव राय (1509-1529) के शासनकाल में तेलुगु साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। वह स्वयं एक प्रतिष्ठित विद्वान था। उसकी रचना **अमुक्तामालयदा** को तेलुगु साहित्य का महान् काव्य माना जाता है। अल्लारानी पेद्दना उसके दरबार का सर्वोत्कृष्ट कवि था। उन्हें आंध्रकवि तपितामह (तेलुगु कविता के पितामह) की उपाधि प्रदान की गयी थी। **स्वरोचिश मनुसंभवम् या मनुचरित** उसके प्रमुख ग्रंथ हैं। कृष्णदेव राय के दरबार के एक अन्य कवि नंदी तिम्मन ने **पारिजातपहरणम्** की रचना की जिसमें श्री कृष्ण के जीवन के एक अंश को काव्य रूप में प्रस्तुत किया गया था।

भट्टमूर्ति, जो राम राजा भूषण के नाम से विख्यात थे, ने **वसु चरित** (महाभारत के एक अंश पर आधारित काव्य) की रचना कर ख्याति अर्जित की। उन्होंने **हरिशचंद्र नलोपाख्यानम्** नामक काव्य की भी रचना की जिसके प्रत्येक श्लोक के दो अर्थ हैं : इनमें नल के साथ राजा हरिश्चन्द्र की भी कथा कही गयी है। **रामायण** और **महाभारत** की कथाओं को आधार बनाकर पिंगली सुरन्न ने **राघव-पांडवीयम्** की रचना की। कुमार धूरजेटि ने 16वीं शताब्दी के आसपास अपनी महान् कृति **कृष्णदेवराय विजयम्** की रचना की जिसमें उन्होंने महान् राजा की विजयों का उल्लेख किया है। तेनाली राम कृष्ण तेलुगु साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्ति है। उन्हें वाक्पटु और हँसोड़ व्यक्ति के रूप में याद किया जाता है। उनका **पाडुरंग महात्म्यम** तेलुगु कविता की एक महान् कृति मानी जाती है। निम्न जाति की कही जाने वाली मोल्ला एक कवयित्री थी जिसने **रामायण** का लोकप्रिय तेलुगु रूपांतरण प्रस्तुत किया। कुली कुतुब शाह (1550-83) भी तेलुगु साहित्य का संरक्षक था। अदानकी गंगाधर और पोन्नागंती तेलेंगाना ने अपनी पुस्तकें **तपति संमहरणोपाख्यानाम** और ययाजीचरित शाह को समर्पित की थीं।

मनुमन्ची भट्ट ने 16वीं शताब्दी में **हयलक्षण** नामक कृति लिखी। इसमें घोड़ों और उनके प्रशिक्षण के बारे में लिखा गया है।

17वीं शताब्दी में विजयनगर के पतन के बाद तेलुगु साहित्यकारों को गाडिकोटा, नेल्लू, सिद्धवटम, जिंजी, तंजोर और मदुरा जैसे छोटे राज्यों ने शरण दी। सिद्धवटम के मालती अनंत ने **काकुस्तविजयम्** (1590-1610 ई.) लिखा। नेल्लोर के पुष्पगिरि ने भर्तृहरि कृत नीतिशतक का अनुवाद किया। तंजोर के राजा रघुनाथ नायक ने **वाल्मीकि चरित्रम** नाम से एक आरंभिक गद्य कृति लिखी थी।

31.7.3 कन्नड़

अधिकांश कन्नड़ ग्रंथ जैन मुनियों द्वारा रचित हैं। 16वीं-17वीं शताब्दियों के दौरान भी वे कन्नड़ साहित्य को समृद्ध करते रहे।

गेरोप्पा के वादी विद्यानंद ने 1533 ई. में **काव्यरस** का संकलन किया था जिसमें प्रमुख कन्नड़ कवियों का जीवन परिचय दिया गया था। दूसरे जैन विद्वान साल्व (लगभग 1550 ई.) ने भारत रत्नाकर वर्णनी का जैन रूपांतरण प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उन्होंने **त्रिलोककार** (जैन ब्रह्माण्ड मीमांसा पर), **अपराजित शतक** (दर्शन पर), और **भरतेश्वर चरित** (प्रमुख राजा भरत की कथा) की रचना की। उनके द्वारा रचित कई गीत अभी भी जैनियों द्वारा गाये जाते हैं। इसे **अन्नगलापद** के नाम से जाना जाता है।

चेन्ना बासव पुराण लिंगायत साहित्य की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसके नायक चेन्ना बासव को शिव का अवतार माना गया है। इसमें संतों की कई कहानियां भी सम्मिलित हैं। अदृश्य (लगभग 1595) रचित **प्राधंरायचरित** लिंगायत साहित्य का एक अन्य प्रमुख ग्रंथ है।

विरक्त पंतादर्व कृत **सिद्धेश्वर पुराण** और निजगुन्न शिव योगी कृत **विवेक चिंतामणि** (लगभग 1560) और **शिव योग प्रदीपिका। भावचिंतरत्न** और वीरशैवामृत अथवा मर्ल्लनार्य गुब्बी और सर्वज्ञन्य मूर्ति कृत **सर्वज्ञन्यपदगलू** इस काल के कुछ महत्वपूर्ण शैव ग्रंथ हैं।

इस काल में वैष्णव साहित्य भी लिखे गये। इस क्षेत्र में संस्कृत कृतियों का कन्नड़ में अनुवाद किया गया। कुमार व्यास ने महाभारत के एक अंश का अनुवाद किया और बाकी अंश का अनुवाद 1510 के आसपास तिम्मन्ना ने किया। लक्ष्मीरा ने **जैमिनी भारत** की रचना की। भिक्षुक गायकों द्वारा गाया जाने वाला लोकप्रिय गीत वैष्णव साहित्य का एक अन्य रूप है। नीलकंठ शास्त्री के अनुसार ये माध्वाचार्य और व्यासआर्य से प्रेरित है। 1510 ई. में चैतन्य की दक्षिण यात्रा से इस लोकप्रिय गीत को काफी बढ़ावा मिला। इस श्रेणी के गायकों में पूरन दास (मृ. 1564) सर्वप्रमुख हैं।

कन्नड़ व्याकरण के क्षेत्र में भट्ट कलंक देव की कृति **कर्नाटक शब्दनिशान** (1604) सर्वोत्तम है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

31.7.4 मलयालम

मलयालम ओडयार क्षेत्र में तमिल की एक बोली के रूप में विकसित हुई। चौदहवीं शताब्दी आते-आते इसका स्वतंत्र अस्तित्व कायम हो गया। 15वीं शताब्दी और उसके बाद एक खास परम्परा के कवियों (ट्रावनकोर के निरणम से आये हुए) ने कविता की मलयालम शैली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। राम पनिक्कर इस परम्परा के एक प्रमुख कवि हैं। उन्होंने **भारत गाथा, सावित्री महात्म्यम, ब्राह्मांड पुराणम्** और **भागवतम्** जैसी कृतियों की रचना की।

आधुनिक मलयालम साहित्य के विकास में 16वीं शताब्दी के महान् कवि चेरसेरी नम्बूदरी का महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी महान् कृति **कृष्ण गाथा** में कृष्ण के जीवन को सुंदरता से काव्य में ढाला गया है। सोलहवीं शताब्दी के दौरान मलयालम में अनेक लोकप्रिय गीत और गाथा गीत रचे गये। अंजु कृत **तंबूरनपट्टू** और **इरावकुट्टी पिल्ल पाटटू** इसी प्रकार की रचनाएं हैं।

तुकांत रामानुजम् एलूतच्चन ने मुख्य रूप से हिंदू मिथक, धर्म और दर्शन को आधार बनाकर रचनाएं कीं। **अध्यात्म रामायणम्, किलीपाट्टू, भारतम् किलीपाट्टू** और **हरिनाम कीर्तनम** उनकी कुछ प्रमुख कृतियां हैं।

अत्तकथा या कथाकलि नामक नृत्य साहित्य की लोकप्रिय विधा का विकास भी 16वीं शताब्दी के दौरान हुआ। **रामन अत्रम** एक आरंभिक अत्तकथा है। अनेक नई कथाओं ने भी मलयालम साहित्य को समृद्ध किया।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए .

   क) शैव परम्परा का तमिल साहित्य।

   ....

   ....

   ....

   ख) कृष्णदेव राय (1509-1529) के शासनकाल के दौरान लिखा गया तेलुगु साहित्य।

   ....

   ....

   ....

2) जैन विद्वानों के कन्नड़ साहित्य के विकास में योगदान पर विचार कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) क) आधुनिक मलयालम साहित्य का विकास किसने किया?

   ....

   ....

   ....

   ख) अत्तकथा क्या है?

   ....

   ....

   ....

   ग) तेनाली रामकृष्ण कौन थे?

   ....

   ....

   ....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

31.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान गये होंगे कि अध्ययनरत इस काल में बड़े पैमाने पर समृद्ध साहित्य की रचना हुई थी।

मुगल दरबार ने न केवल फारसी भाषा और साहित्य बल्कि संस्कृत, हिंदी और कुछ अन्य भाषाओं को भी संरक्षण प्रदान किया। अन्य राजाओं, सरदारों और यहां तक कि सामंतों ने भी साहित्यिक गतिविधियों को प्रश्रय दिया। इस काल में दरबारी संरक्षण की परिधि से बाहर भी विपुल साहित्य का निर्माण हुआ। यह इस काल के साहित्य की प्रमुख प्रकृति है। हिंदी और लगभग सभी क्षेत्रीय भाषाओं में भक्ति काव्य की रचना हुई।

लगभग सभी भाषाओं के साहित्य में धर्म और पौराणिक मिथक का वर्चस्व रहा। इस काल में तर्कशास्त्र, दर्शन और व्याकरण की पुस्तकें भी लिखी गयीं। इसके अलावा इस काल में एक

भाषा से दूसरी भाषा में प्रचुर मात्रा में अनुवाद भी हुए। मुख्य रूप से संस्कृत साहित्य का अनुवाद लोक भाषाओं में किया गया और इस प्रकार यह जनसामान्य तक पहुंच सका।

31.9 शब्दावली

चम्पू काव्य : गद्य और पद्य की मिली जुली साहित्यिक विधा।

दीवान : एक कवि का काव्य संकलन जैसे दीवान गालिब।

मर्सिया : शोक, दुःख काव्य। यह उर्दू साहित्य में कविता का एक रूप है।

करबला : वह प्रसिद्ध स्थान जहाँ पैगम्बर मुहम्मद साहब के नाती इमाम हुसैन शहीद हुए थे।

गज़ल : एक काव्य रूप, जिसमें प्रेम को विषय बनाया जाता था। बाद में अन्य विषय भी अपनाये गये। गज़ल मुक्तक होता है। इसका प्रत्येक छंद अपने आप में स्वतंत्र होता है।

खम्सा : पाँच पंक्तियों की कविता या अनुच्छेद।

मसनवी : गीतात्मक छंद में लिखे काव्य। इसकी शैली वर्णनात्मक होती है।

प्रशस्ति : किसी की प्रशंसा में लिखित काव्य या अंश।

कसीदा : किसी की प्रशंसा में लिखी कविता।

किता : लंबी कविता का छोटा अंश।

रुबाई : चार पंक्तियों की छोटी कविता। पहली, दूसरी और चौथी पंक्ति में गीतात्मकता होती है, तीसरी पंक्ति में नहीं।

श्लेष काव्य : ऐसा काव्य जिसके दो अर्थ हों।

तर्जी बंद : ऐसा छंद जिसमें बार-बार एक पंक्ति दुहराई जाती हो।

तरकीब बंद : एक तरह की कविता।

31.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 31.2
2) देखिए भाग 31.3

बोध प्रश्न 2

1) भक्ति संतों की साहित्य कृतियों पर विचार कीजिए। देखिए उपभाग 31.4.1
2) आरंभिक चरण में उर्दू दक्खन में एक साहित्यिक भाषा के रूप में उभरी। देखिए उपभाग 31.4.2
3) देखिए उपभाग 31.4.3

बोध प्रश्न 3

1) श्री चैतन्य ने भक्ति परम्परा के अंतर्गत लेखन करने के लिए अनेक कवियों को प्रोत्साहित किया। देखिए उपभाग 31.6.1

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

2) इस काल का असमी साहित्य भक्ति परम्परा से प्रभावित था। देखिए उपभाग 31.6.2

बोध प्रश्न 4

1) क) शैव परम्परा के अंतर्गत अनेक तमिल कृतियों की रचना हुई। देखिए उपभाग 31.7.1

   ख) कृष्ण देव राय स्वयं एक कवि और लेखक थे और उन्होंने अनेक कवियों को प्रोत्साहित दिया और प्रश्रय दिया। देखिए उपभाग 31.7.2

2) आरंभिक कन्नड़ साहित्य के निर्माण में जैन विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान है। देखिए उपभाग 31.7.3

3) क) चेर्रीरेरी नम्बूदरी

   ख) मलयालम में नाट्य नृत्य साहित्य का एक लोकप्रिय रूप

   ग) वह एक महत्वपूर्ण तेलुगु लेखक था जो अपनी वाक्पटुता और हँसोड़पन के लिए प्रसिद्ध था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 32 विज्ञान और तकनीकी

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य
32.1 प्रस्तावना
32.2 विज्ञान
32.3 कृषि तकनीकी
32.4 वस्त्र उद्योग तकनीकी
32.5 सैन्य तकनीकी
32.6 जहाज निर्माण
32.7 धातुशोधन तकनीकी
32.8 काँच निर्माण तकनीकी
32.9 मुद्रणालय
32.10 समय मापन पद्धतियाँ
32.11 विविधा
32.12 सारांश
32.13 शब्दावली
32.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

32.0 उद्देश्य

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस इकाई में आप :

- मुगल काल के दौरान विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- तत्कालीन यूरोपीय विज्ञान और तकनीकी के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया पर भी विचार किया जाएगा।

32.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम (खंड 6, इकाई 22) में आप भारत में सल्तनत काल में विकसित तकनीकी की झलक प्राप्त कर चुके हैं। उस पाठ्यक्रम में बाहर से आए मुसलमानों द्वारा प्रस्तुत किए गए नये शिल्पों पर विशेष रूप से विचार किया गया था। प्रस्तुत इकाई में 16वीं-17वीं शताब्दी में यूरोपवासियों द्वारा लाई गई नयी तकनीकों, कृषि उत्पादन, फलों, आदि पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। हम इस काल में विज्ञान की स्थिति पर भी विचार करेंगे।

32.2 विज्ञान

इस काल में भौतिकशास्त्र, रसायन, खगोलशास्त्र, औषधि, भूगोल तथा गणित आदि क्षेत्रों में कोई नयी वैज्ञानिक प्रगति नहीं हुई। परम्परागत ज्ञान की ही शिक्षा दी जाती रही, उस पर बहस होती रही तथा उसमें बिना कुछ नवीन परिवर्तन के भाष्य तैयार किए जाते रहे। इस क्षेत्र में भारतीय और यूनानी-अरबी वैज्ञानिक दृष्टिकोण का वर्चस्व था। भारत में मुसलमान विद्वानों पर लिखते हुए फ्रांसीसी यात्री करेरी कहता है :

"पुस्तकों के अभाव में वे वैज्ञानिक ज्ञान में विकास नहीं कर सके, उनकी जानकारी अरस्तु और एवीसीना के लेखन (अरबी में) तक की सीमित थी।"

परंतु हम इस बात से इंकार नहीं कर सकते हैं कि विवेच्य काल में कुछ योग्य वैज्ञानिक हुए। मीर फतउल्लाह शिराजी एक ऐसा ही प्रतिभाशाली वैज्ञानिक था। वह 1583 ई. में आगरा में अकबर के दरबार में शामिल हुआ (मृत्यु 1588 ई.)। उसके बारे में लिखते हुए अबुल फजल कहता है : "अगर सोचने का पुराना तरीका समाप्त हो गया होता तो वह ज्ञान का नया आधार विकसित कर सकता था और उसने जो कुछ भी खोया है उसका गम न करता।" उसकी मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हुए अकबर ने कहा था "अगर वह फिरंगियों (यूरोपवासियों) के हाथ लग गया होता और वे उसके बदले हमारा पूरा खजाना भी मांगते तो मैं यह फायदेमंद सौदा खुशी-खुशी मंजूर कर लेता और फिर भी उस अनमोल रत्न की खरीद सस्ते में ही होती।" उसने यांत्रिकी संबंधी कुछ नई खोजें की थीं (देखिए भाग 32.5 और 32.11 vi)। अकबर के आदेश पर 1584 ई. में एक "सही" अर्थों में सौर कैलेंडर (जो **इलाही** के नाम से जाना जाता है) का विकास किया था। परंतु उसने भारत में उपलब्ध परम्परागत ज्ञान से अलग हटकर कोई नया वैज्ञानिक सिद्धांत या सूत्र प्रतिपादित नहीं किया था। भारतीय यूरोपीय ज्ञान से परिचित थे। अबुल फजल को यूरोपवासियों द्वारा अमेरिका की खोज की जानकारी थी। इस "नई दुनिया" को उसने फारसी में **"आलम-ए-नौ"** की संज्ञा दी। परंतु भारत में आमतौर पर इस प्रकार की शिक्षा भूगोल शिक्षण का हिस्सा नहीं था। गैलीलियो की खोज (टॉलमी के विश्व दृष्टि के विपरीत) थी कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, यह ज्ञान अभी तक भारतीय वैज्ञानिकों तक नहीं पहुंचा था। इसी प्रकार इस समय भारतीय न्यूटन के गतिशीलता संबंधी तीन सिद्धांतों और उसके गुरुत्वाकर्षण के नियम से परिचित नहीं थे। बर्नियर नामक एक फ्रांसीसी चिकित्सक सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत आया, उसने दावा किया कि वह मुगल कुलीन आगा दानिशमंद खां के संसर्ग में पांच छह वर्ष रहा था। उसने उसे हार्वे और पैक्वेट की "खून के परिसंचरण" संबंधी खोज के बारे में बताया था। बर्नियर के अनुसार भारतीयों का शरीर विज्ञान संबंधी ज्ञान बहुत कम था। हमारे **हकीमों** और वैद्यों ने हार्वे की खोज के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

32.3 कृषि तकनीकी

मुगल काल में हल, लोहे के फाल, सिंचाई के तरीकों, बोने, काटने, कूटने और फटकने की विधि में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हुआ (विवरण के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03, खंड 6, इकाई-22 पढ़िए)। बुआई के लिए बीज छिड़कने और नली द्वारा बीज बोने की विधि के अतिरिक्त खुरपी से गड्ढा खोदकर बीज डालने की प्रथा भी प्रचलित थी। यह विधि खासकर कपास की खेती के लिए उपयुक्त थी : खुरपी से गड्ढा खोदकर उसमें बीज डाल दिया जाता था और उसे मिट्टी से ढक दिया जाता था। अनाज को फसल से अलग करने के लिए बैलों का प्रयोग किया जाता था, साथ ही साथ डंडे से पीटकर भी अनाज को फसल से अलग किया जाता था।

इस काल के दौरान कुछ नयी फसलों, पौधों और फलों की जानकारी प्राप्त हुई। इनमें से कई यूरोपवासियों खासकर पुर्तगालियों, द्वारा लाए गए थे। मुगल कुलीन वर्ग ने अकबर के समय से ही भारत में मध्य एशियाई फलों को उगाना शुरू कर दिया था।

अमेरिका से आने वाली महत्वपूर्ण फसलों और फलों में तम्बाकू, अनन्नास, काजू और आलू प्रमुख हैं। तम्बाकू के आगमन से हुक्का पीने का प्रचलन हुआ। इसके अलावा, टमाटर, अमरूद और लाल मिर्च भी बाहर से लाए गए। अबुल फजल की **"आइने अकबरी"** में मक्का का उल्लेख नहीं है। संभवतः इसे भी यूरोपवासी लैटिन अमेरिका से लेकर आए थे।

आगरा के आसपास उपजाए जाने वाले कई प्रकार के खरबूज, तरबूज और अंगूर मध्य एशिया से लाए गए थे। अकबर के शासनकाल में कश्मीर में चैरी की खेती आरंभ हुई।

तम्बाकू का प्रयोग : हुक्का

बीज प्रजनन की सहायता से अच्छी कोटि के फल उपजाए जाते थे। दिल्ली सल्तनत के शासन काल में बागबानी में कलम-तकनीक का उपयोग होता था या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पी.के. गोडे के अनुसार भारत में 1550 ई. के बाद कलम-पद्धति का आरंभ हुआ। फारस और मध्य एशिया में इस तकनीक की जानकारी थी परंतु गोवा में पुर्तगाली कलम पद्धति का उपयोग करके अच्छी कोटि का आम पैदा किया करते थे। भारत आने वाले यूरोपीय यात्रियों ने गोवा में पैदा होने वाले अलफाँसो, ऑवर लेडी, जोआनी परेरा, आदि आमों की खूब प्रशंसा की है। आज भी अलफासो भारत में एक उच्चकोटि का आम है।

सभी मुगल सम्राटों में अकेले शाहजहाँ को दो नहरें (**नहर फैज** और **शाह नहर**) खुदवाने का श्रेय प्राप्त था।

सिचाई के अन्य साधनों के विषय में आप पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03 के खंड 6 की इकाई 22 में अध्ययन कर चुके हैं।

बोध प्रश्न 1

1) खुरपी द्वारा बुआई की प्रथा क्या थी? इसके प्रयोग का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) 16वीं-17वीं शताब्दी के दौरान भारत में उगाई जाने वाली नई फसलों और फलों पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

32.4 वस्त्र उद्योग तकनीकी

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03, खंड 6, इकाई-22 में आप वस्त्र निर्माण तकनीकों के बारे में थोड़ा बहुत जान चुके हैं। इसमें ओटाई, कताई, बुनाई, रंगाई, चित्रकारी और छपाई जैसी कई प्रक्रियाओं के बारे में बताया गया है। आप यह भी जानते हैं कि भारत में तकली का आगमन तुर्कों के साथ हुआ। वस्तुतः 17वीं शताब्दी के दौरान कोई आमूलकारी परिवर्तन या विकास नहीं हुआ। फिर भी इस काल में दो महत्वपूर्ण तकनीकी विकास के बारे में चर्चा की जा सकती है : पहला लाहौर, आगरा और फतेहपुर सीकरी में अकबर के संरक्षण में कालीनों की बुनाई और दूसरा बड़े पैमाने पर रेशम और रेशम के धागों का उत्पादन।

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यूरोपवासी अपने साथ किसी भी प्रकार की वस्त्र निर्माण तकनीक नहीं लाए। वस्तुतः उनके पास इस काल में कोई बेहतर तकनीक थी भी नहीं। अंग्रेज़ी कम्पनी को रेशम रंगाई, बटाई और बुनाई के लिए बंगाल के कासिम बाजार की शरण लेनी पड़ती थी। 1770 ई. के दशक में भारत में इतालवी रेशम सूत्रण की शुरूआत हुई।

32.5 सैन्य तकनीकी

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03, खंड 6, इकाई 22.6 में आप भारत में तुर्कों द्वारा लाए गए घोड़े की जीन, नाल और बारूद के बारे में पढ़ चुके हैं। 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के गुजरात, मालवा तथा दक्खन जैसे कुछ प्रदेशों में पहली बार आग्नेयास्त्रों का इस्तेमाल किया गया। परंतु इसका नियमित उपयोग पुर्तगालियों ने दक्षिण भारत में 1498 ई. से करना शुरू किया और उत्तर भारत में पहली बार बाबर ने 1526 ई. में इसका उपयोग किया। बाबर ने राजपूतों और अफगानों के विरुद्ध युद्धों में बंदूकों और तोपों का उपयोग किया।

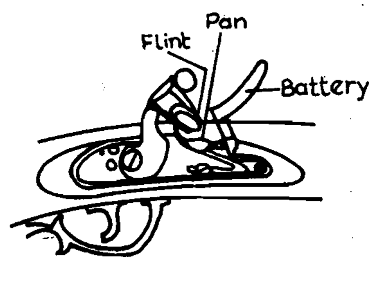

चकमकी पत्थर की विधि

MAADHYAM IAS

ये बंदूकें वस्तुतः तोड़ेदार बंदूकें (matchlock) थीं। यूरोप में बंदूक चलाने के लिए दो और विधियों का उपयोग किया जाता था। चक्र तकनीक (व्हील लॉक) (लगभग 1520 ई.) और चकमकी पत्थर की विधि (फ्लिंट लॉक) (लगभग 1620 ई.)। इसमें फलीते का उपयोग नहीं होता था। अबुल फजल बताता है कि अकबर की आयुधशाला में तोड़ेदार विधि के बिना ही छोटी बंदूक का निर्माण किया जाता था परंतु वह किसी अन्य वैकल्पिक विधि का उल्लेख नहीं करता है। यहां शायद फ्लिंट लॉक या चकमकी पत्थर की विधि का उपयोग किया जाता होगा क्योंकि यूरोप में भी चक्र तकनीक या व्हील लॉक का इस्तेमाल पिस्तौल के लिए हुआ करता था। परंतु इन छोटी बंदूकों (चकमक बंदूकों) का उत्पादन सीमित पैमाने पर होता था। बहुत संभव है कि अकबर अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए ऐसी बंदूकें बनवाया करता हो क्योंकि सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में उत्तर भारत में भारतीय इस तकनीक से कम ही परिचित थे। वस्तुतः औरंगजेब के समय तक के चित्रों में तोड़ेदार बंदूकों का ही चित्रण मिलता है।

1609 ई. में ही बुरहानपुर में यूरोप में बनी पिस्तौलों की बिक्री की जाती थी। कभी-कभी यूरोपवासी भारतवासियों को पिस्तौल भेंट के रूप में दिया करते थे। परंतु भारतीय चक्र तकनीक की कला नहीं सीख पाए। भारत में भारतीय शासकों के लिए विभिन्न आकारों की तोपें बनाई जाती थीं।

यहां हमें आक्रमण और बचाव के लिए उपयोग में आने वाले परम्परागत अस्त्रों जैसे तलवार, भाला, छुरा, तीर, धनुष, ढाल आदि का विवरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। यह रोचक तथ्य है कि आमतौर पर भारतीय वक्राकार तलवार रखते थे जबकि इसके विपरीत यूरोप में दोहरी धार वाली सीधी तलवार का प्रचलन था। बाद में सत्रहवीं शताब्दी में मराठा यूरोपीय शैली की तलवार रखने लगे।

मध्यकालीन तलवारें

बंदूक को साफ करने की प्राविधि का जिक्र करते हुए अबुल फजल लिखता है

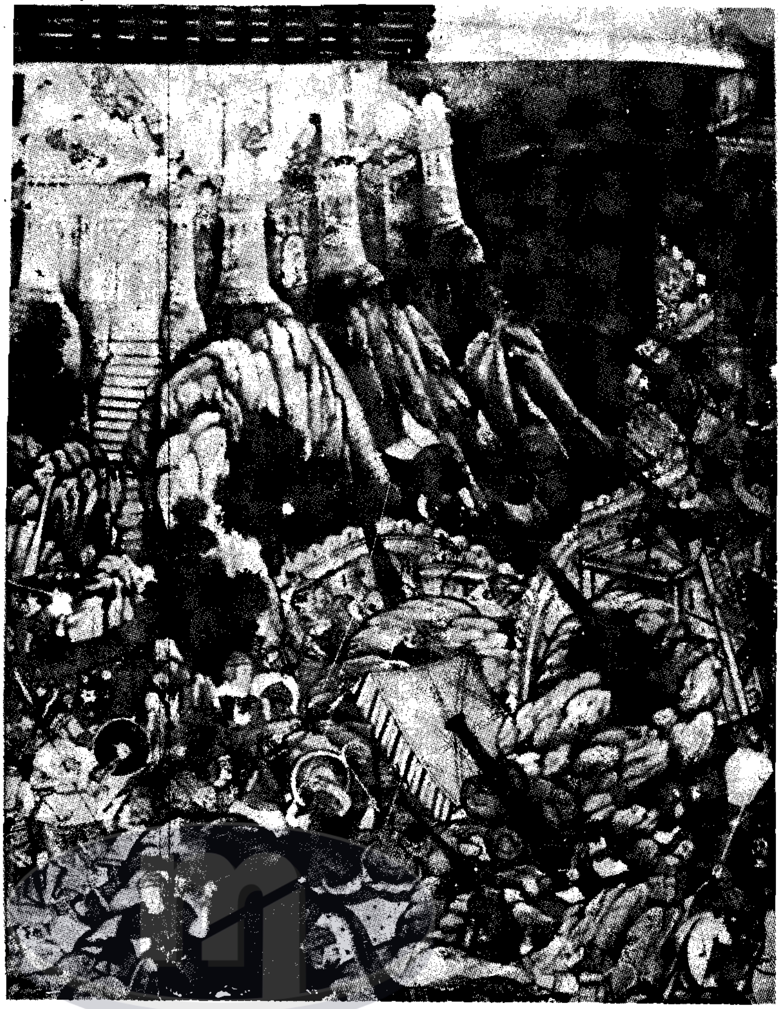

तोपों का प्रयोग : चित्तौड़ की घेराबंदी

MAADHYAM IAS

"आरंभ में एक शक्तिशाली व्यक्ति लोहे के औजार से बड़े परिश्रमपूर्वक बंदूक की नाल को साफ करता था। महामहिम (अकबर) ने अपने अनुभव के आधार पर एक पहिए का आविष्कार किया जिससे काफी कम समय में बंदूक की सोलह नालें साफ की जा सकती थीं। इस पहिए को बैलों की सहायता से घुमाया जाता था।"

एक अन्य स्थल पर अबुल फ़जल ने लिखा है कि अकबर ने एक ऐसी यांत्रिकी विकसित की थी जिसकी सहायता से एक घोड़ा दबाने से ही एक साथ सत्रह बंदूकों से गोली दागी जा सकती थी।

32.6 जहाज निर्माण

मध्यकालीन युग में सभी जगह जहाज का निर्माण लकड़ी से किया जाता था। तख्तों को जोड़ने के लिए कई उपाय किए जाते थे। भारत में इसके लिए चूल बैठाने की प्रथा थी। यह मूलत: पटरा और खांचा सिद्धांत पर आधारित थी – एक पटरे को दूसरे पटरे के खांचे से जोड़ दिया जाता था। इसके बाद तख्तों को एक स्वदेशी लेप और चूने से जमाया जाता था जिससे कि छिद्रों को भरा जा सके और समुद्री कीड़ों से भी लकड़ी के तख्तों का बचाव किया जा सके। तख्तों को जोड़ने के लिए मछली के तेल का भी प्रयोग होता था। भारतीयों ने यूरोपवासियों के टांकने की विधि (कीलों द्वारा तख्तों को जोड़ने की विधि) नहीं अपनाई, तख्तों को जोड़ने या उन्हें किसी प्रकार के रिसाव से बचाने के लिए पुराने सन के रेशे या पुरानी रस्सी के टुकड़े में लेप मिलाकर उसे जोड़ों, छिद्रों और ठीक से न जुड़ने वाले हिस्सों में भर दिया जाता था। इस तकनीक का भारतीयों द्वारा न अपनाए जाने का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि यह भारतीयों की स्वदेशी तकनीक की अपेक्षा कोई बेहतर नहीं थी। इसके अतिरिक्त टांकने की विधि भारतीय विधि से काफी खर्चीली भी थी।

यूरोपवासियों के आने से पहले जहाजों और नावों के तख्तों को नारियल की बनी रस्सी अथवा कभी-कभी लकड़ी की कीलों से जोड़ा जाता था। यूरोपवासी अपने जहाजों को मजबूत और टिकाऊ बनाने के लिए लोहे की कीलों और शिकंजों का इस्तेमाल करते थे। भारतवासियों ने

इन नई तकनीकों को शीघ्रता से अपना लिया। 1510 ई. के आसपास वार्थेमा ने कालिकट में खड़े भारतीय जंहाजों में "लोहे की कीलों का जमकर उपयोग" देखा था। अबुल फजल (1593-94 ई.) बताता है कि अकबर के एक जहाज को बनाने के लिए 468 मन लोहे का इस्तेमाल होता था। मुगल कालीन कुछ चित्रों में जहाजों के निर्माण में लोहे की कीलों, पत्तियों और शिकंजों का उपयोग दर्शाया गया है।

इसी प्रकार सत्रहवीं शताब्दी के दौरान यूरोप में बने लोहे के लंगरों (anchor) का उपयोग किया जाने लगा। इसके पहले लंगरों के लिए बड़े पत्थरों का उपयोग किया जाता था।

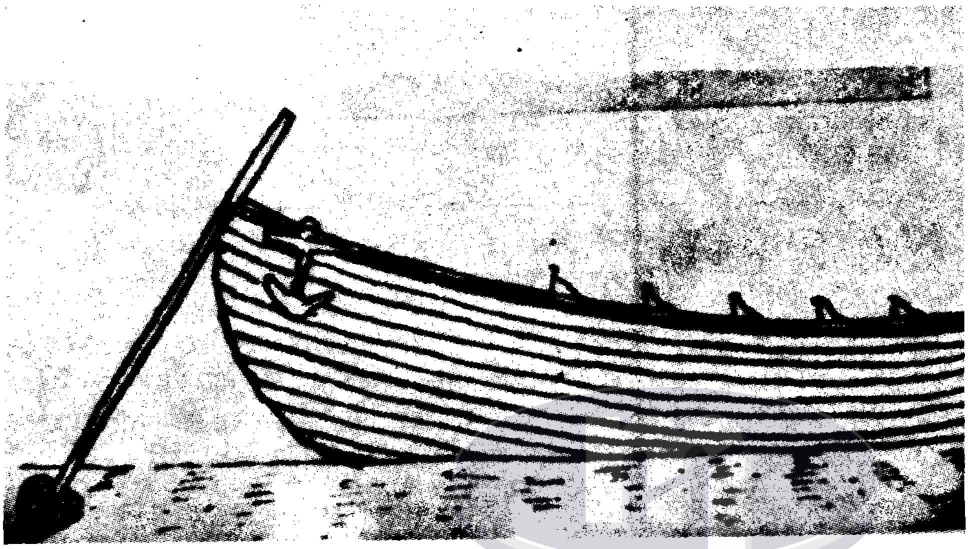

MAADHYAM IAS

लोहे का लंगर

जहाज से पानी निकालने के लिए भारतीय बाल्टी का उपयोग करते थे। हालांकि सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोपवासियों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले लोहे के चेन पंप का उपयोग भी भारतीय कमोबेश करने लगे। पर इनका निर्माण भारत में नहीं होता था : वे या तो यूरोपवासियों से खरीदे जाते थे या उधार लिए जाते थे।

पानी निकालने के लिए बाल्टियों का प्रयोग

बोध प्रश्न 2

1) 16वीं-17वीं शताब्दियों के दौरान बंदूको में किस यांत्रिक विधि का प्रयोग होता था।

....

....

....

....

....

2) चूल बैठाने और टांकने की विधि से आप क्या समझते हैं? भारतीयों ने टांकने की विधि को वरीयता क्यों नहीं दी और उन्होंने उसे क्यों नहीं अपनाया?

....

....

....

32.7 धातुशोधन तकनीकी

हम नीचे भारत में मौजूद धातुशोधन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करने जा रहे हैं:

i) धातु गलाने के लिए लकड़ी के कोयलों (पत्थर के कोयले की जानकारी नहीं थी) का ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। अतः धातु गलाने का काम वहीं किया जाता था जहां लकड़ी की आपूर्ति आसान होती थी।

ii) धातु गलाने वाले छोटी भट्टियों का उपयोग करते थे जिसमें संभवतः उच्च ताप सहनेवाली मिट्टी नहीं होती थी।

iii) धौंकनी बिना धारियों (पट्टियों) की तथा छोटी होती थी जिससे ज्यादा हवा नहीं फूंकी जा सकती थी, इसलिए इससे धातु को गलाने के लिए भट्टी में आवश्यक ताप पैदा करने की ताकत नहीं होती थी।

iv) लोहे और तांबे को गलाने के लिए कई भट्टियों (कभी-कभी आठ) का उपयोग किया जाता था जहां से उसे साँचों में ले जाया जाता था। सभी भट्टियों में धातु एक समान नहीं गल पाती थी अतः इनके मिलने से बनी हुई वस्तु हमेशा उच्च कोटि की नहीं होती थी।

अबुल फजल ने अकबर की आयुधशाला में लोहे की तोपों और छोटी बंदूकों की नाल बनाने की तकनीक का उल्लेख किया है। संभवतः इन नई तकनीकों का आविष्कार किया गया था। इस बात की जानकारी नहीं है कि बाद में इनमें सुधार किया गया या नहीं। तोपों के निर्माण में तांबा, पीतल और लोहे का उपयोग होता था।

भारत में जस्ता (zinc) संबंधी धातु शोधन तकनीक की शुरुआत बारहवीं शताब्दी के आसपास हुई। अबुल फजल जस्ता उत्पादन के लिए राजस्थान के जावर क्षेत्र का वर्णन करता है। जावर के निकट किए गए उत्खनन में जस्ता आसवन के लिए उपयोग में लाए जाने वाले साँचे पाए गए हैं।

राजस्थान में खेतरी में तांबे की खाने थीं। टीन का उत्पादन भारत में सामान्यतः नहीं होता था : इसे अन्य एशियाई क्षेत्रों से आयातित किया जाता था। कांसे का उपयोग सिंधु घाटी सभ्यता के काल से ही होता रहा है। पीतल जैसी मिश्रित धातु (तांबा और जस्ता या टीन) भी भारत में तैयार की जाती थी।

इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि भारत में और खासकर आंध्रप्रदेश में लगभग 400 ई.पू. से ही असली "**वूट्ज**" (wootz) लोहे का उत्पादन होता था। संभवतः "**वूट्ज़**" शब्द तेलुगु शब्द "**उक्कू**" का बिगड़ा हुआ रूप है। इसे सीरिया तक निर्यात किया जाता था। वहाँ डैमस्कस में इससे तलवार बनाई जाती थी (जो डैमेस्कीन तलवार के नाम से प्रसिद्ध थी)।

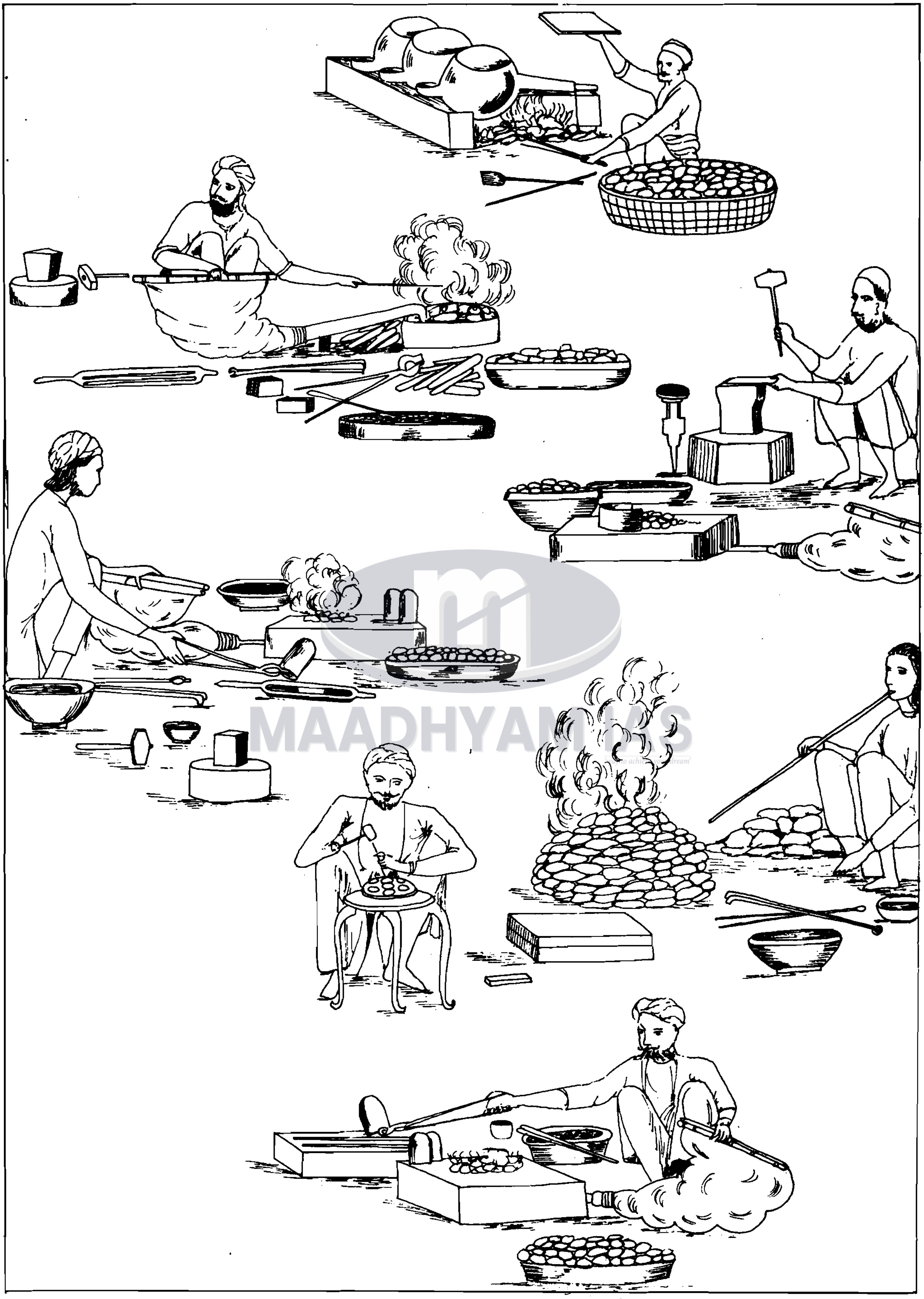

MAADHYAM IAS

धातु शोधन : धातु को गलाने की विधि; लकड़ी के कोयले का प्रयोग; भट्टी; धौंकनी (आइन-ए अकबरी, अनु. ब्लॉकमैन)

32.8 काँच निर्माण तकनीकी

काँच एक जटिल कृत्रिम औद्योगिक पदार्थ है। यह क्रिस्टल काँच (crystal), स्फटिक (quartz), लावा काँच, और पोर्सलिन या चीनी मिट्टी से भिन्न होता है। एम.जी. दीक्षित **(हिस्ट्री ऑफ ग्लास)** ने बताया है कि काँच की भारत में कमी नहीं थी परंतु उन्होंने यह भी माना है कि भारतीय काँच पदार्थों में "मनके या चूड़ियों" जैसी छोटी-छोटी चीजें ही बनाई जाती थीं।

मुसलमानों के आगमन के बाद दवा की शीशी, जार और शीशे के पात्र इस्लामी देशों से भारत आने लगे परंतु भारतीयों ने इनका स्वयं निर्माण शुरू नहीं किया।

16वीं-17वीं शताब्दी के दौरान यूरोपवासी अपने साथ काँच के बने कई तरह के सामान लाए। ये सब हमारे लिए नए थे : जैसे काँच का दर्पण। हम भारतीय केवल धातुओं (तांबा और कांसा) के दर्पण से परिचित थे परंतु काँच का दर्पण हमारे यहां उपलब्ध नहीं था। इसके अलावा वे काँच के बने चश्मे और लैंस भी अपने साथ लाए। यूरोपवासियों ने ये वस्तुएं भारतवासियों को बतौर भेंट दी और कभी-कभी वे इसे बेचा भी करते थे। परंतु इनका बाजार काफी सीमित था। इसी प्रकार विवेच्य काल में भारतीय यूरोप में बनी काँच की वस्तुओं का उपयोग करने लगे परंतु उन्होंने उसका निर्माण शुरू नहीं किया।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

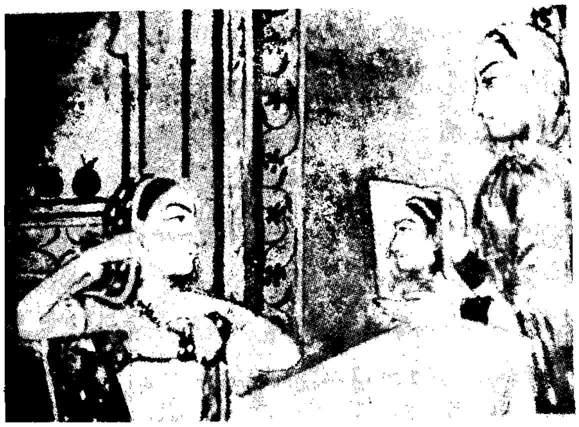

आयताकार दर्पण

चश्मे का प्रयोग

ऐसा प्रतीत होता है कि 15वीं शताब्दी के दौरान भारतीयों को रेत घड़ी (sand glass) बनाने की तकनीक ज्ञात थी, परंतु मुगल कालीन चित्रों में यूरोप में निर्मित रेत घड़ी को ही दर्शाया गया है जिसे यूरोपवासी अपने साथ भारत लेकर आए थे। भारत में इसे निर्मित किए जाने की सूचना 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मिलती है।

इसके अतिरिक्त हमें यूरोप में निर्मित पानी पीने के ग्लास, आवर्धक या ज्वलंत ग्लास और अग्रवर्ती ग्लास (टेलीस्कोप) की भी जानकारी मिलती है। यह टेलीस्कोप कांच के लैंसों से बनती थी अतः सत्रहवीं शताब्दी में भारत में इसके बनने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

32.9 मुद्रणालय

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि भारत और चीन के बीच इतने आदान-प्रदान के बावजूद चीन के लकड़ी के ठप्पों (ब्लाक) से छपाई की तकनीक के संबंध में भारतवासियों ने जरा-सी भी रुचि नहीं दिखाई। पुर्तगाली 1550 ई. के आसपास यूरोप में बने धातु की टाइप अपने साथ गोवा तक लेकर आए। यहां उन्होंने ईसाई संतों के उपदेशों, मराठी और कोंकणी भाषाओं और बोलियों की व्याकरण और शब्दावली छापनी शुरू की। परंतु इसके लिए उन्होंने देवनागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि अपनाई।

सम्राट जहांगीर ने जैसुइट सम्प्रदाय के ईसाइयों को कहा था कि फारसी या अरबी लिपि में टाइप नहीं ढ़ाले जा सकते, इसके जवाब में उसने तुरंत 1591 ई. में वैटिकन में छपे ईसोपदेश की अरबी प्रति दिखा दी। लेकिन इसके बाद जहांगीर ने कभी इसमें रुचि नहीं प्रदर्शित की।

1670 ई. के दशक में सूरत स्थित इंग्लिश कम्पनी के मुख्य दलाल भीमजी पारक ने इस तकनीक में गहरी रुचि दिखाई। भीमजी के निवेदन और खर्चे पर एक प्रेस और छपाई मशीन 1674 ई. में भारत आई। भीमजी ने भारतीय (banian) तरीके की टाइप बनवाने की कोशिश की परंतु इंग्लिश छपाई कारीगर को टाईप काटने और ढालने की जानकारी नहीं थी, अतः ऐसा संभव नहीं हो पाया। भीमजी की सहायता करने के लिए इंगलैंड से टाइप काटने वाला कारीगर नहीं उपलब्ध कराया गया था। इसके बावजूद भीमजी अपने सपने को साकार करने और देवनागरी लिपि का टाइप बनवाने के प्रयासों में जुटा रहा। उसने अपने कर्मचारियों को इस कार्य में लगाया। वे सब भारतीय थे। सूरत स्थित अंग्रेज़ कारखानेदार बताते हैं कि 1667/77 ई. के दौरान ''हमने मोढी (bania) प्रकृति के कुछ छपे कागज देखे जिसे भीमजी के आदमियों ने तैयार किया था जो बहुत ही स्पष्ट, सुपाठ्य और सुंदर था।'' परंतु शीघ्र ही भीमजी की हिम्मत टूट गई और उसने यह कार्य बीच में ही छोड़ दिया।

बोध प्रश्न 2

1) 17वीं शताब्दी के दौरान यूरोपवासियों द्वारा भारत लाई गयी काँच की बनी मुख्य वस्तुओं के नाम बताइए।

....
....
....
....
....

2) भीम जी पारक द्वारा देवनागरी लिपि में छापाखाना स्थापित करने के प्रयत्न पर टिप्पणी लिखिए।

....
....
....
....
....

MAADHYAM IAS

32.10 समय मापन पद्धतियाँ

घड़ी विज्ञान के इतिहास से विभिन्न देशों में मानवजाति द्वारा समय ज्ञात करने के लिए अपनाए गए विभिन्न तरीकों का पता चलता है। समय ज्ञात करने की इन विधियों में धूप घड़ी, जल घड़ी, रेत घड़ी और यांत्रिक घड़ियां उल्लेखनीय हैं।

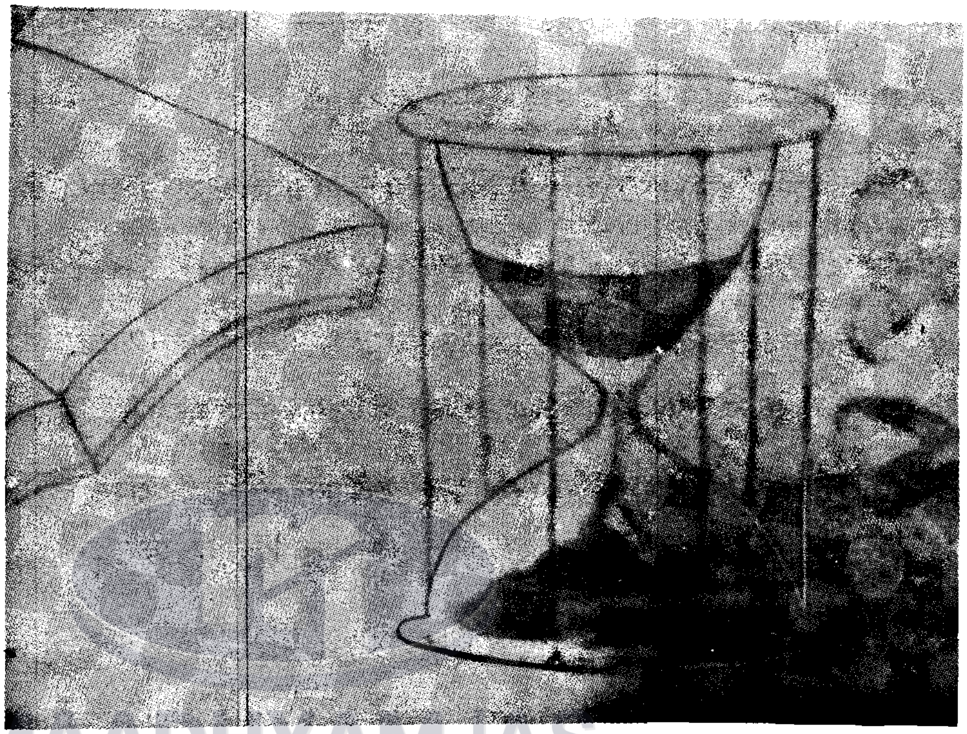

MAADHYAM IAS way to achieve your dream

बालू की घड़ी

सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के दौरान भारत के शहरों में समय पता करने के लिए जल घड़ी (डूबने वाला कटोरा) का उपयोग काफी किया जाता था। इसे फारसी में **तास** और इस पूरी यांत्रिकी (कटोरा तथा मुद्गर) को **तास घड़ियाल** कहते थे। पानी में डुबा हुआ कटोरा समय बताता था और घंटे पर मुद्गर से प्रहार करके समय की घोषणा होती थी। इसे **घड़ियाल** कहते थे। अफीफ की **तारीख-ए फिरोज शाही** में दिल्ली सल्तनत के काल में जल घड़ी का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फिरोजाबाद में सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने **तास घड़ियाल** लगवाया था। बाबर ने भी **बाबरनामा** में इसका उल्लेख किया है। अबुल फजल ने भी विस्तार के साथ इसका उल्लेख किया है।

मुगलों से काफी पहले यूरोपवासियों ने यांत्रिक घड़ी की आधारभूत यांत्रिकी विकसित कर ली थी जिसमें वजन से घूमने वाली सुई और "एस्केप" या निर्गम पद्धति का उपयोग होता था। यूरोपवासी अक्सर इस प्रकार की घड़ियाँ भारतवासियों, खासकर संभ्रांत वर्ग, को भेंट में दिया करते थे। (सर टामस रो ने जहांगीर को एक ऐसी ही घड़ी भेंट की थी परंतु सम्राट ने अपने संस्मरण में उसका उल्लेख तक नहीं किया है।) आगरा स्थित जेसुइट चर्च में एक बड़ी दीवार घड़ी थी जिसके घंटे की "आवाज शहर के हर हिस्से में सुनाई देती थी"। काफी लंबे समय से भारतवासी यूरोप में बनी इन घड़ियों से परिचित थे परंतु इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता है कि भारतवासियों के किसी सामाजिक समूह ने इसे अपनाने की कोशिश की हो। ये उनके लिए मात्र "खिलौने" थे, और साधारण रूप में या "राजनयिक" रूप से प्राप्त भेंट के रूप में लिए जाते थे। यूरोप की इस घड़ी को भारतवासी इस कारण से स्वीकार नहीं कर सके क्योंकि दोनों स्थानों पर समय की अवधारणा में अंतर था। यूरोपीय अवधारणा के अनुसार

12 घंटे का दिन और 12 घंटे की रात होती थी जबकि भारत में एक दिन आठ **पहरों** में विभाजित था। दिन में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक चार और पुनः सूर्यास्त और सूर्योदय तक चार **पहर** होते थे। प्रत्येक **पहर घड़ियों** में विभक्त होता था, एक **घड़ी** में 24 मिनट होते थे। इस प्रकार भारतीय पद्धति में पूरे दिन में 24 मिनट के 60 "घंटे" होते थे और यूरोपीय पद्धति में 60 मिनट के 24 घंटे होते थे।

32.11 विविधा

i) भारत में वैज्ञानिक तरीके से बनी मेहराबें, गुम्बद और चूना-गारा, आदि का उपयोग तुर्क शासक पहले ही कर चुके थे (पढ़िए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03, खंड 6, इकाई 22)। सत्रहवीं शताब्दी में भवन निर्माण की दिशा में कोई महत्वपूर्ण नवीन प्रगति नहीं हुई। परंतु इस काल में भवन का "नक्शा" बनाने की प्रथा चल पड़ी थी। इसे फारसी में **तरह (खाका)** कहते थे जिसमें एक आरेख पत्र पर भवन का खाका खींच लिया जाता था। यह भी ध्यान देने की बात है कि भारतीय भवनों में यूरोपीय भवनों की तरह खिड़की, चौखट और चिमनी नहीं होती थीं।

ii) भारतवासी यूरोपवासियों के समान शोरा को परिशुद्ध करने के लिए धातु (तांबा) के वाष्प पात्र का उपयोग नहीं करते थे। वे मिट्टी के पात्रों का उपयोग करते थे।

iii) व्यापार के लिए माल को ढोने के लिए बैलगाड़ी का आमतौर पर प्रयोग होता था। घोड़ा गाड़ी का प्रयोग काफी कम था। मुख्यतः इसे सवारी के लिए ही प्रयोग किया जाता था। आमतौर पर उससे सामान नहीं ढोया जाता था। सर टामस रो ने जहांगीर को चार घोड़ों से खींची जानेवाली अंग्रेज़ी बग्घी उपहार स्वरूप प्रदान की थी। सम्राट ने इस पर सवारी भी की थी (उन्होंने इसे **रथ फिरंगी** कहा था)। सत्ताधारी वर्ग ने भारतीय बढ़इयों से इस नमूने की बग्घियां बनवाईं। परंतु यह रुझान अल्प समय तक ही जीवित रहा। सत्रहवीं शताब्दी में इसमें कोई विकास नहीं हुआ।

MAADHYAM IAS

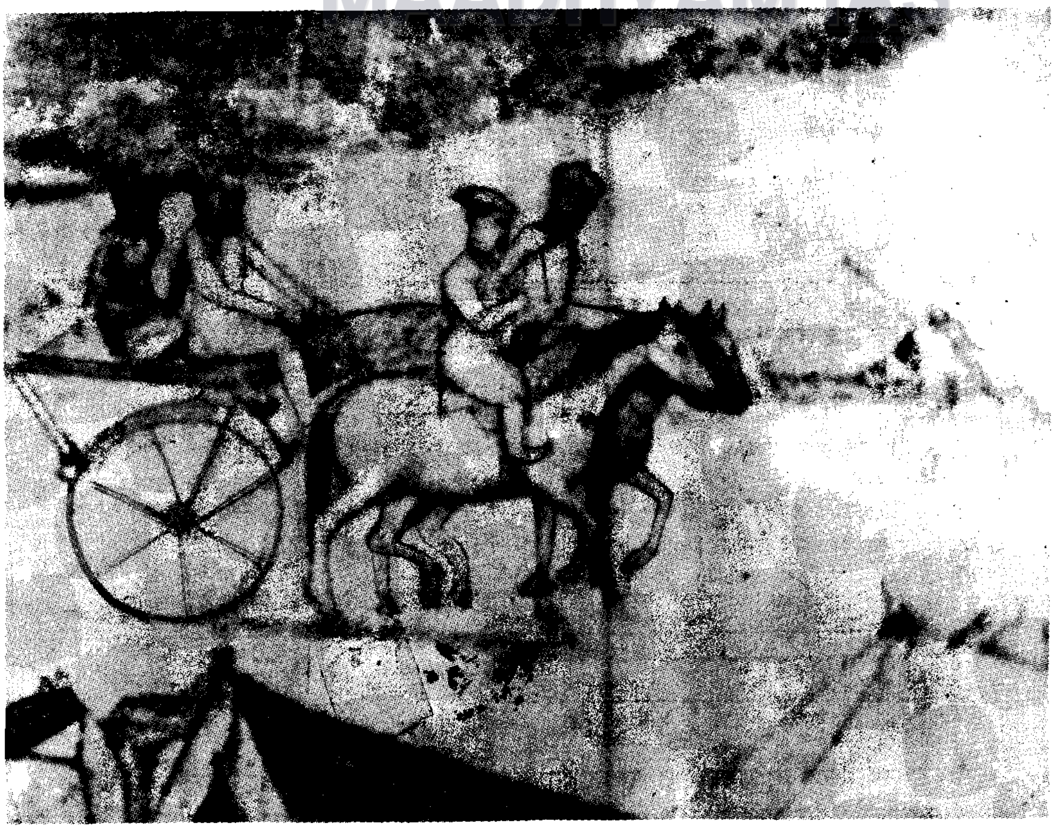

घोड़ा गाड़ी

iv) जहांगीर के शासनकाल के नौवें वर्ष में रसायन संबंधी एक खोज की गई थी। यह गुलाब का इत्र था जिसे **इत्र जहांगीर** के नाम से जाना जाता था। अपने संस्मरण **(तुजुक-ए जहांगीरी)** में सम्राट ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है :

> "इस इत्र की खोज मेरे शासनकाल में नूरजहां बेगम की मां द्वारा की गई थी। जब वे गुलाबजल बना रही थीं तो जग से गर्म गुलाब जल पात्र में डाला। इससे पात्र की तली में एक प्रकार का झाग (चर्बी) जमा हो गया। उन्होंने धीरे-धीरे इस झाग को इकट्ठा किया। काफी गुलाबजल से थोड़ा-सा झाग प्राप्त हुआ। इसके समान उच्च कोटि का दूसरा कोई इत्र नहीं है। उनकी इस खोज पर बतौर उपहार मैंने आविष्कारकर्ता को मोतियों का हार प्रदान किया। सलीमा सुल्तान बेगम ने इस तेल **(रोगन)** को **इत्र जहांगीर** का नाम दिया।"

v) पानी को ठंडा करने के लिए शोरे का उपयोग एक अन्य महत्वपूर्ण रासायनिक आविष्कार था। अबुल फजल बताता है कि वही शोरा जो बारूद में आगे पैदा करता है उससे पानी को ठंडा भी किया जा सकता है। उसने विस्तार से शोरे से पानी ठंडा करने की विधि का विवरण भी प्रस्तुत किया है।

vi) यह बताया जाता है कि सम्राट अकबर ने एक बैलगाड़ी विकसित की थी जो यात्रा करने और सामान ढोने के साथ-साथ अनाज भी पीसती थी। भारत में मुगलकाल के दौरान इस कार्य के लिए पन चक्की का इस्तेमाल बहुत कम ही होता था। मुगल कालीन एक चित्र (1600 ई.) जो भारत के बाहर की एक कथा पर आधारित है एक अधोजल चालित पन चक्की दर्शाता है। यहां तक कि अनाज पीसने के लिए पवन चक्की **(आसिया-ए बाद)** का इस्तेमाल भी कम होता था, ऐसी एक पवन चक्की अहमदाबाद में लगाई गई थी जिसके अवशेष अभी भी देखे जा सकते हैं। आमतौर पर हाथ की चक्की का प्रयोग किया जाता था। इसमें दो पत्थरों के बीच अनाज को पीसा जाता था। यह एक पुरानी प्रथा थी।

MAADHIYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 4

1) भारतवासियों ने यूरोपीय समय मापने की पद्धति क्यों नहीं अपनाई?

....

....

....

....

....

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :

i) **इत्र जहांगीर** का आविष्कार .... ने किया

ii) शोरा का उपयोग .... के लिए होता था।

iii) भारतीय घरों में .... और .... नहीं होती थी।

iv) भारतीय शोरा को परिशुद्ध करने के लिए .... का बना वाष्प पात्र उपयोग में लाते थे।

32.12 सारांश

इस इकाई में आपने मुगल शासन के दौरान भारत में विज्ञान और तकनीकी के विभिन्न आयामों की जानकारी प्राप्त की। सम्पूर्ण विषयवस्तु को दो स्तरों पर परखा गया : क) स्वदेशी विकास, और ख) यूरोपीय विज्ञान और तकनीक के प्रति भारतीय रुझान।

इस काल में विज्ञान के क्षेत्र में भारतीयों का कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं रहा। जहां तक तकनीकी का प्रश्न है खासकर सैन्य क्षेत्र में कुछ नये आविष्कार हुए और नए तरीके अपनाए गये। रासायनिक क्षेत्र में, गुलाब का इत्र और पानी ठंडा करने के लिए शोरा का उपयोग नयी उपलब्धियां थीं।

इस इकाई में यूरोपीय विज्ञान और तकनीक से भारतवासियों के परिचय पर भी प्रकाश डाला गया है। परंतु सभी क्षेत्रों में भारतीयों का रुझान एक जैसा नहीं था। जैसे जहाज निर्माण के क्षेत्र में तो भारतीयों का सकारात्मक रवैया सामने आया परंतु काँच तकनीकी के क्षेत्र में यह बात देखने को नहीं मिलती है। कई कारणों से विभिन्न तकनीकों के प्रति भारतवासियों का रवैया सकारात्मक, नकारात्मक और उदासीन रहा। जहां तक विज्ञान का संबंध है भारतवासियों ने यूरोप के अनुभव से लाभ नहीं उठाया।

32.13 शब्दावली

चक्र पद्धति/तकनीक : बंदूक में प्रयुक्त वह तकनीक जिसमें बंदूक चलाने के लिए लोहे के टुकड़े द्वारा चक्र को घुमाकर चिंगारी जलाई जाती थी जिससे गोली चलाई जाती थी।

चकमक पत्थर तकनीक : सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में गोली चलाने के लिए आवश्यक चिंगारी के लिये चकमक पत्थर का प्रयोग किया जाता था।

वूट्ज़ (wootz) : कन्नड उक्कू लोहा, यह लोहा बनाने की अत्यधिक प्राचीन भारतीय विधि है।

32.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 32.3 "खुरपी से बोने" की विधि बताइए। यह भी वर्णन कीजिए कि यह बीज बोने की नयी तकनीक थी।
2) देखिए भाग 32.3 नई फसलों और फलों के नाम लिखिए। यह भी बताइए कि यह कब और किसके द्वारा भारत लाए गए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 32.5 बताइए कि मुख्य रूप से तोड़ेदार बंदूकों का इस्तेमाल होता था। यह भी वर्णित कीजिए कि व्हील और फ्लिंट लॉक (चक्र और चकमक प्रविधि) का भी इस्तेमाल होता था। परंतु इनका उपयोग सीमित पैमाने पर होता था।
2) देखिए भाग 32.6 दोनों तकनीकों पर प्रकाश डालिए। बताइए कि टाँकने की विधि चूल बैठाने की विधि से ज्यादा महंगी थी। अतः भारतवासियों ने इसे अपनाने में उत्सुकता नहीं दिखाई।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 32.8
2) देखिए भाग 32.9 भीमजी ने अपना कारखाना स्थापित किया और उसको एक हद तक सफलता भी मिल गई थी परंतु उसने यह कार्य बीच में ही छोड़ दिया।

बोध प्रश्न 4

1) देखिए भाग 32.10 बताइए कि भारतवासी यूरोप की यांत्रिक घड़ी से परिचित थे परंतु

भारतवासियों की समय मापन पद्धति उनसे अलग थी।

2) i) सलीमा सुल्तान बेगम

ii) पानी ठंडा करने के लिए

iii) खिड़की के शीशे, चौखट, चिमनी

iv) मिट्टी

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 33 स्थापत्य

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य
33.1 प्रस्तावना
33.2 मुगल स्थापत्य की शुरुआत
 33.2.1 बाबर की इमारतें
 33.2.2 हुमायूँ की इमारतें
33.3 शासनांतराल : सूर स्थापत्य
33.4 अकबर कालीन स्थापत्य
 33.4.1 संरचनात्मक स्वरूप
 33.4.2 भवन परियोजनाएँ
33.5 जहांगीर और शाहजहां कालीन स्थापत्य
 33.5.1 प्रमुख्य विशेषताएं
 33.5.2 प्रमुख इमारतें
33.6 अंतिम चरण
 33.6.1 औरंगजेब की इमारतें
 33.6.2 सफदर जंग का मकबरा
33.7 सारांश
33.8 शब्दावली
33.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

33.0 उद्देश्य

1526 ई. में भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना (खंड 2) से भारतीय-इस्लामी स्थापत्य को एक नया स्वरूप और जीवन प्राप्त हुआ। नये शासकों ने प्रचलित स्थापत्यगत प्रकारों और तकनीकों के साथ मध्य-एशिया और ईरान की तकनीकों का सुंदर सम्मिश्रण प्रस्तुत किया। इस प्रकार के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भारत में कई भव्य भवनों का निर्माण हुआ।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मुगल स्थापत्य के नये संरचनात्मक स्वरूपों और तकनीकों को समझ सकेंगे;
- इस काल की प्रमुख इमारतों का विस्तृत विवरण प्राप्त कर सकेंगे; तथा
- इस काल के अंतिम चरण में मुगल स्थापत्य में आ रहे ह्रास को पहचान सकेंगे।

33.1 प्रस्तावना

मुगल शासक सौंदर्य के उपासक और कला तथा संस्कृति के संरक्षक थे। उन्होंने भारत में कई सुंदर भवनों और नगरों का निर्माण करवाया। भारत में तेरहवीं शताब्दी में ही स्थापत्य की नवीन शैली की नींव रखी जा चुकी थी। इसमें मेहराबों का उपयोग किया जाता था और इसकी सहायता से गुम्बदों और प्रवेश द्वार का निर्माण किया जाता था। मुगलों ने यह परम्परा जारी रखी और पूर्व-तुर्क तकनीक अर्थात् मेहराब का शहतीर के साथ सम्मिश्रण प्रस्तुत किया। इन सबके मिले-जुले रूप के कारण अपने आप में एक नये प्रकार की शैली विकसित हुई।

स्थापत्यगत विकास के लिए बाबर के पास पर्याप्त समय नहीं था। इसके बावजूद उसने अपने सांस्कृतिक क्षेत्र की पद्धति पर भारत में अनेक बगीचों का निर्माण करवाया। अपने

संस्मरण (बाबरनामा) में उसने अपने द्वारा निर्मित कुछ मंडपों की भी चर्चा की है। दुर्भाग्यवश उसके द्वारा निर्मित बहुत कम भवन आज बचे हुए हैं।

बाबर का उत्तराधिकारी हुमायूँ कभी भी दृढ़ता से अपना राजनैतिक प्राधिकार स्थापित न कर सका। सत्ता प्राप्त होने के एक वर्ष के अंदर उसे पदच्युत कर दिया गया और उसे देश छोड़कर ईरान जाना पड़ा। अतः इस काल में बनी इमारतों में कोई खासियत नहीं है। 1555 ई. में भारत लौटने के बाद हुमायूँ एक वर्ष ही जिंदा रहा। इसके बावजूद ईरानी संस्कृति से उसके दीर्घ सम्पर्क का प्रभाव हमीदा बानो बेगम के निरीक्षण में बने उसके मकबरे में देखा जा सकता है।

वास्तव में, मुगल स्थापत्य अकबर के समय से उभरना शुरू हुआ। उसने देशी और विदेशी तत्वों के मिले-जुले रूप को प्रश्रय दिया। देशी कलाकारों को अकबर ने खासकर महत्व दिया। फतेहपुर सीकरी के भवन इसके उत्तम उदाहरण हैं।

अकबर के पुत्र जहांगीर ने भवन निर्माण में कोई खास रुचि नहीं दिखाई परन्तु शाहजहां स्थापत्यगत कला का महान्तम संरक्षक था। भारत के कुछ सर्वोत्कृष्ट ऐतिहासिक भवनों का निर्माण उसी के शासनकाल में हुआ था। उसके काल में भवन निर्माण में लाल पत्थर का स्थान संगमरमर ने ले लिया और आंतरिक सजावट के लिए बहुमूल्य पत्थरों का इस्तेमाल किया जाने लगा। इसे **पैट्राड्यूरा** या पच्चीकारी के नाम से जाना जाता है। शाहजहां के काल में ही उभार वाले गुम्बदों और अनेक स्तरों वाली मेहराबों का प्रयोग शुरू हुआ।

औरंगजेब की मानसिकता अपने पिता से बिल्कुल भिन्न थी। इसका असर स्थापत्य शैली पर भी पड़ा। इस युग के भवनों में इस्तेमाल होने वाली वस्तुओं का स्तर सामान्य था और उसमें आडंबर का नामों निशान तक नहीं था।

33.2 मुगल स्थापत्य की शुरुआत

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

16 वीं. से 18 वीं शताब्दियों के दौरान स्थापत्य का इतिहास मुख्य रूप से वस्तुतः मुगल सम्राटों के भवन निर्माण संबंधी क्रियाकलापों से संबंधित है। इस बीच केवल पन्द्रह वर्षों का शासनांतराल आया। इस दौरान दिल्ली में सूर शासकों ने शासन किया।

यह सही है कि स्थापत्य संबंधी मुगल शैली का ठोस स्वरूप अकबर के शासन के दौरान सामने आया, परन्तु अकबर से पहले के दोनों मुगल सम्राट बाबर और हुमायूँ, ने मुगल स्थापत्य के मूलभूत आधारों की नींव रख दी थी।

33.2.1 बाबर की इमारतें

बाबर ने मात्र पांच वर्षों तक शासन किया और उसका अधिकांश समय अपने नवजात मुगल राज्य को सम्भालने और उसके लिए युद्ध करने में बीत गया। इसके बावजूद वह गैर धार्मिक भवनों के निर्माण में खूब रुचि लेता था। दुर्भाग्य से उसके द्वारा बनवायी गयी इमारतों में से काफी कुछ नष्ट हो चुकी हैं। 1526 ई. में बाबर ने पानीपत और सम्भल में दो मस्जिदें बनवायीं थीं। अब उनका ढांचा मात्र बचा है। ये दोनों ढांचे सामान्य स्थल हैं और इनमें कोई स्थापत्यगत विशेषता नहीं है।

बाबर ने अपने गैरधार्मिक कार्यों के तहत मुख्य रूप से ईरानी शैली पर आधारित बगीचे लगवाए और मंडप बनवाए। एक चित्र में उसे धौलपुर के बगीचे की रूपरेखा का निरीक्षण करते हुए दिखाया गया है। आगरा स्थित राम बाग और ज़हरा बाग नामक दो बगीचे भी उसी के बनवाये हुए कहे जाते हैं। परन्तु आज इन बगीचों की रूपरेखा देखने से लगता है कि इसमें कई प्रकर के परिवर्तन किये गये हैं। आज बाबर द्वारा निर्मित एक भी मंडप का अस्तित्व शेष नहीं रहा है।

33.2.2 हुमायूँ की इमारतें

बाबर की तरह हुमायूं के शासनकाल में निर्मित भवन भी आज कम ही बच पाये हैं। इस समय भारत में मुगल शासन अस्थिर था और ऐसी स्थिति में स्थापत्य संबंधी किसी महान् कार्य की आशा नहीं की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त दिल्ली में 15 सालों तक सूर शासन स्थापित रहा और इस दौरान हुमायूँ को देश के बाहर ईरान जाकर रहना पड़ा। इसके बावजूद उसके प्रथम चरण के शासन के दौरान बनायी गई इमारतों में से दो मस्जिदों का अस्तित्व बचा हुआ है। एक जीर्ण-शीर्ण अवस्था में आगरे में स्थित है। ये इमारतें भी बाबर द्वारा बनायी गयी मस्जिदों के समान स्थापत्यगत दृष्टि से कोई खासियत नहीं रखती हैं।

हुमायूँ 1555 ई. में दिल्ली लौटा, परन्तु उसके बाद वह काफी कम दिन जिंदा रह पाया। वस्तुतः इस काल के दौरान कोई महत्वपूर्ण भवन निर्मित नहीं हुआ। हां, हुमायूँ के मकबरे का उल्लेख किया जा सकता है। देश से बाहर अपने ईरान प्रवास के दौरान उस पर पड़े ईरानी प्रभाव की झलक इस भवन में देखी जा सकती है। वस्तुतः यह इमारत मुगल स्थापत्य शैली के विकास की एक महत्वपूर्ण पहचान है। 1564 ई. में, हुमायूँ की मृत्यु के बाद, उसकी पत्नी हमीदा बानों बेगम की देखरेख में इसका निर्माण आरंभ हुआ। इस भवन के स्थापत्य शिल्पी मिराक मिर्जा गियास थे। वे ईरान के रहने वाले थे। वे अपने साथ कुशल ईरानी कारीगर दिल्ली में लाये थे। भवन निर्माण में उनकी तकनीक और योग्यता का पूर्णतः इस्तेमाल किया गया। इस प्रकार यह मकबरा भारत में ईरानी अवधारणा के आत्मसातीकरण का प्रतिनिधित्व करता है। सही अर्थों में हुमायूं का मकबरा अकबर के शासनकाल की इमारत है। परन्तु अपनी खासियतों के कारण इसे इस काल से अलग माना जाता है।

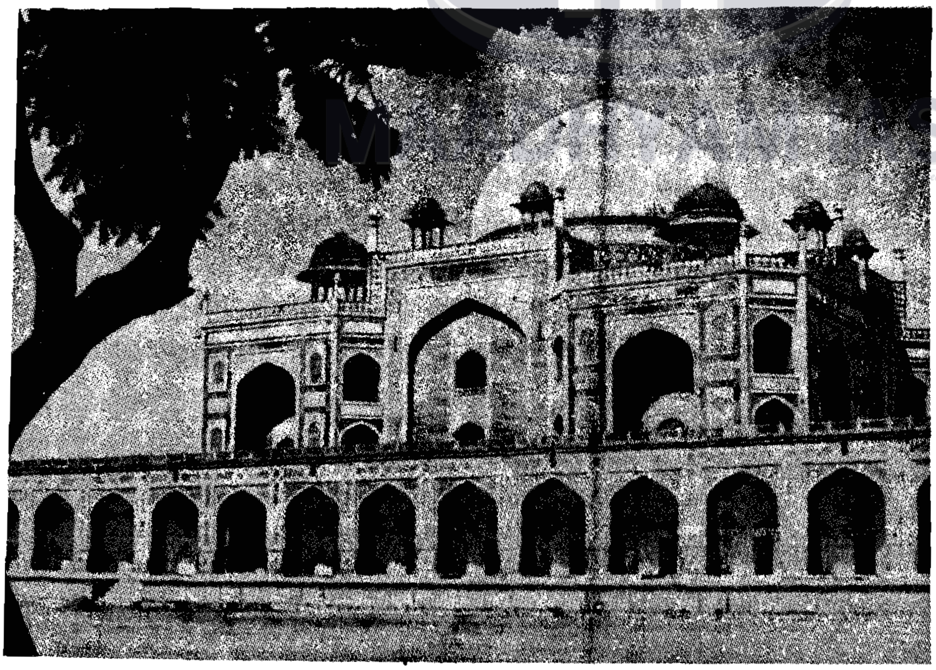

हुमायूँ का मकबरा

हुमायूँ के मकबरे में पहली बार बागानों का उपयोग किया गया था और इसे लाल बलुए पत्थर से बनाये तोरणयुक्त चबूतरे पर स्थापित किया गया था। यह आकार में अष्टकोणीय है और एक ऊंचे गुम्बद से आच्छादित है जो वस्तुतः दोहरा गुम्बद है। इसमें दो आवरण हैं और दोनों आवरणों के बीच में जगह छोड़ दी गयी है। आंतरिक आवरण अंदरूनी हिस्से की छत का काम करता है और बाहरी आवरण इमारत के अनुपात में ऊपर की ओर शल्क कंद के समान उभरा हुआ है। मकबरे के हरेक तरफ मध्य में एक द्वारमंडप है, जिसके साथ नुकीला मेहराब लगा हुआ है। यह मुख्य कक्ष में जाने का रास्ता है। इस भवन के अंदर कई कक्ष बने

हुए हैं। इनमें सबसे बड़ा कक्ष मध्य में है जिसमें सम्राट की कब्र है। प्रत्येक कोण पर बने छोटे कक्ष परिवार के अन्य सदस्यों की कब्रों के लिए बनाये गये हैं। प्रत्येक कक्ष अष्टकोणीय है और ये तिरछे रास्तों से जुड़े हुए हैं।

दोहरे गुम्बद में दो आवरण होते हैं। अंदर का आवरण भवन की अंदरूनी छत का काम करता है। ऊपरी आवरण भवन को महिमा मंडित बनाता है। दोहरे गुम्बद के शिल्प के कारण अंदरूनी छत को नीचे रखने में सुविधा हुई ताकि बेहतर संतुलन बन सके। बाहर के उभार और बनावट को बिना छेड़े हुए ऐसा किया जा सका। भारत आने से पहले दोहरे गुम्बद की तकनीक कुछ समय से पश्चिम एशिया में प्रचलित थी।

33.3 शासनांतराल : सूर स्थापत्य

1540 ई. में शेरशाह सूर ने भारत में मुगल शासन का विच्छिन्न कर दिया। अगले पन्द्रह वर्षों तक इस साम्राज्य पर सूर शासकों का आधिपत्य रहा, जिन्होंने स्थापत्य की दिशा में कई महत्वपूर्ण कार्य किए। उनके द्वारा बनाई गयी इमारतों ने मुगलों के भवन निर्माण के लिए पृष्ठभूमि का काम किया।

सूर शासकों ने विभिन्न परिस्थितियों में भवनों का निर्माण कराया और उनके द्वारा बनाई गयी इमारतें दो अलग-अलग इलाकों में स्थित हैं। इन्हें दो भिन्न कालों में विभाजित किया जा सकता है। शेरशाह कालीन प्रथम चरण 1530 से 1540 ई. के बीच का है, जिसका केन्द्र सासाराम (बिहार) में था। यहां लोदी शैली के कई मकबरों का निर्माण हुआ है (विस्तार के लिए पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-3, खंड 8 पढ़िए)। इन पर लोदी शैली का प्रभाव स्पष्ट है। हुमायूं से साम्राज्य की बागडोर छीनने के बाद शेरशाह के शासनकाल का दूसरा चरण (1540-1545 ई.) आरंभ होता है। उसके संरक्षण में कई स्थापत्य प्रयोग किये गये जिनका बाद में मुगल शैली के रूप में परिपक्व रूप उभरा।

प्रथम चरण में कई मकबरों का निर्माण हुआ। इनमें से तीन शासकीय परिवार के सदस्यों के मकबरे हैं और एक इन मकबरों के शिल्पी अलीवल खां का है। ये भवन शेरशाह की महत्वाकांक्षा को परिलक्षित करते हैं। वह दिल्ली में पाये जाने वाले किसी भी स्मारक से बड़ा उदाहरण पेश करना चाहता था। अपनी इस योजना के तहत 1525 ई. में उसने अपने पिता हसन खां के मकबरे का निर्माण करवाया। परन्तु यह लोदी शैली की परम्परागत शैली का ही अनुसरण था। इस प्रकार की महत्वपूर्ण इमारत सासाराम स्थित शेरशाह का मकबरा है। स्थापत्य की दृष्टि से यह खूबसूरत इमारत है। इसमें शिल्पकार ने पहले की अपेक्षा बड़ा भवन निर्मित किया और उसे सुंदर तालाब के बीच में स्थित कर दिया। भवन में जाने के लिए बीच-बीच में मार्गसेतु बनाये गये। इसके अलावा इसमें कई मंजिलें बनाई गयीं और पांच अलग चरणों में इसे सुंदर पिरामिड संरचना का स्वरूप प्रदान किया गया। इस स्मारक का निर्माण चुनार के बेहतरीन बलुए पत्थर से किया गया था।

शेरशाह का मकबरा छत पर स्थित एक चबूतरे पर बना हुआ है जिसके चारों ओर सीढ़ियां बनी हुई हैं और वहां तक पहुंचने के लिए तालाब पर पुल बने हुए हैं। मकबरे के निचले चबूतरे की मुख्य धुरी की बनावट में कुछ कमी है। परन्तु निचले चबूतरे के ऊपर बनी संरचना की धुरी को थोड़ा झुकाकर इस कमी को दूर कर दिया गया है। मुख्य भवन में एक अष्टकोणीय कक्ष है। यह तोरण पथ से घिरा हुआ है, जो गलियारे का काम करते हैं। यह एक विस्तृत निचले गुम्बद से आच्छादित है। प्रत्येक चबूतरे के कोने में गुम्बदनुमा छतरियां हैं। क्रमशः न्यूनतम अवस्थाओं का उपयोग और चतुर्भुज से अष्टकोण और फिर गोलाकार पद्धति पर आना भारतीय स्थापत्य की सुव्यवस्था का प्रमाण है।

विकास का दूसरा चरण दिल्ली में शुरू हुआ। शेरजाह ने दिल्ली के छठे शहर के रूप में पुराना किला का निर्माण करवाया। आज इसके केवल दो द्वार ही बच पाये हैं। हालांकि इसमें महत्वपूर्ण भवन 1542 ई. में पुराना किला गढ़ी के अंदर निर्मित **किला ए कोहना** मस्जिद है। स्थापत्यगत योजना के तहत इस मस्जिद के उपासना गृह का अग्रभाग पांच झुके हुए खांचों

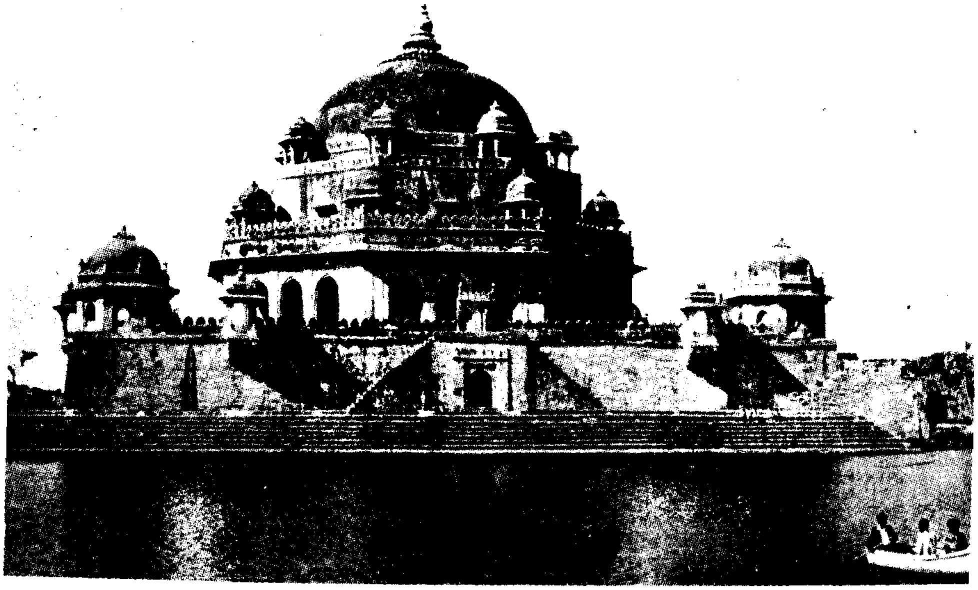

शेरशाह का मकबरा

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

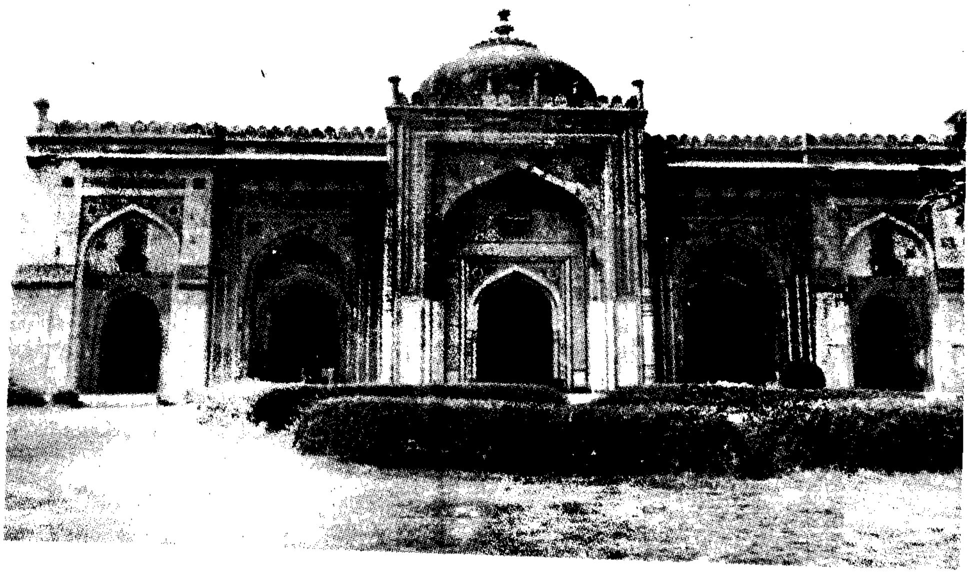

किला-ए कुहना मस्जिद

में विभक्त है। मध्यकक्ष दूसरों की अपेक्षा बड़ा है और सभी में खुले झिर्रीनुमा मेहराब द्वार बने हुए हैं। अग्रभाग में काले और उजले संगमरमर तथा लाल बलुए पत्थर का खूबसूरती से उपयोग किया गया है। केन्द्रीय मेहराब के बगल में संकीर्ण, लंबी धारियों से युक्त भित्ति स्तम्भ बने हुए हैं। मस्जिद के पिछले हिस्से में पांच घुमावदार सीढ़िया हैं जिनमें बहुत-सी खिड़कियां और झरोखे बने हुए हैं।

इस भवन की उल्लेखनीय विशेषता मेहराबें का आकार है। गोलाई में ऊपर को बढ़ते हुए इनमें हल्का झुकाव या समतलपन दृष्टिगोचर होता है यह मुगलों के चहु-केंद्रित 'ट्यूडर' मेहराव के विकास की पूर्वपीढ़िका है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित का मिलान कीजिए :

1) राम बाग और जोहरा बाग	क) हमीदा बानो बेगम
2) हुमायूं का मकबरा	ख) शेरशाह का मकबरा
3) सासाराम	ग) शेरशाह
4) पुराना किला	घ) बाबर

2) साठ शब्दों में हुमायूं के मकबरे की विशेषताओं पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

33.4 अकबर कालीन स्थापत्य

अकबर के शासनकाल को मुगल स्थापत्य का निर्माण काल माना जा सकता है। इस दौरान भारतीय-इस्लामी स्थापत्य की मिली-जुली स्थापत्य कला का विकास हुआ।

33.4.1 संरचनात्मक स्वरूप

अकबर के शासनकाल में स्थापत्य के क्षेत्र में देशी तकनीकों को बढ़ावा मिला और अन्य देशों के अनुभव का भी उपयोग किया गया। इस प्रकार अकबर के संरक्षण में पनपने वाली स्थापत्य शैली की निम्नलिखित विशेषताएं उल्लिखित की जा सकती हैं :

क) भवन निर्माण में मुख्य रूप से लाल बलुए पत्थर का उपयोग हुआ;

ख) शहतीरों का अधिकतम उपयोग;

ग) मेहराबों का संरचनात्मक स्वरूप की अपेक्षा अलंकरण के लिए प्रयोग;

घ) गुम्बद "लोदी" शैली में बनते रहे, कभी-कभी इसे खोखला बनाया जाता था, परन्तु तकनीकी तौर पर यह सही अर्थों में दोहरा गुम्बद नहीं होता था;

ङ) खम्भे का अग्रभाग बहुफलक युक्त होता था और इन खम्भों के शीर्ष पर ब्रैकेट या ताक बने होते थे; और

च) अंदरूनी हिस्से में अलंकरण के तौर पर स्पष्ट रूप से बड़ी-बडी नक्काशी तथा पच्चीकारी की जाती थी और उन्हें चमकीले रंगों से रंगा जाता था।

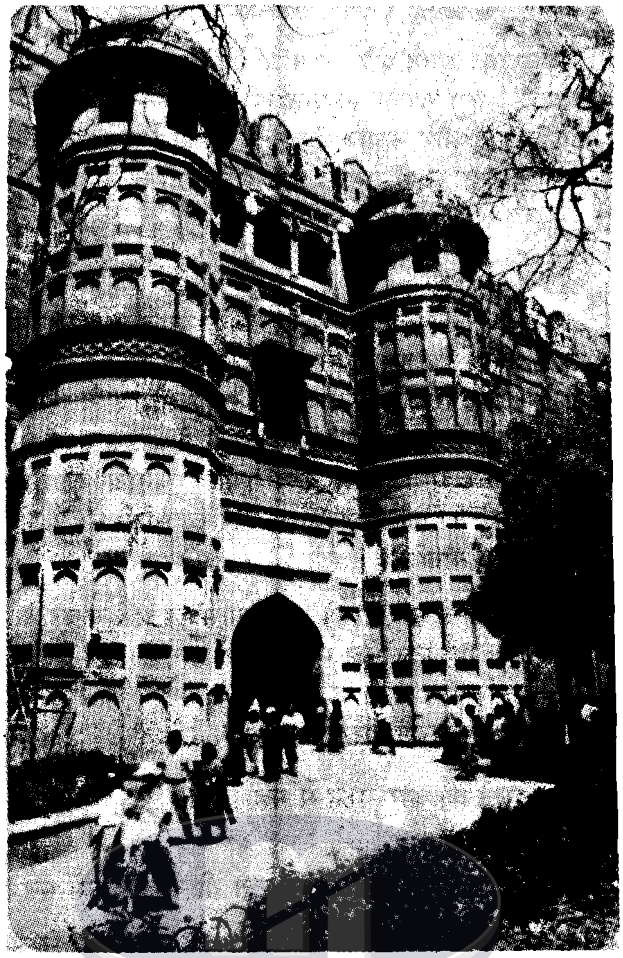

आगरा के किले का फाटक

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

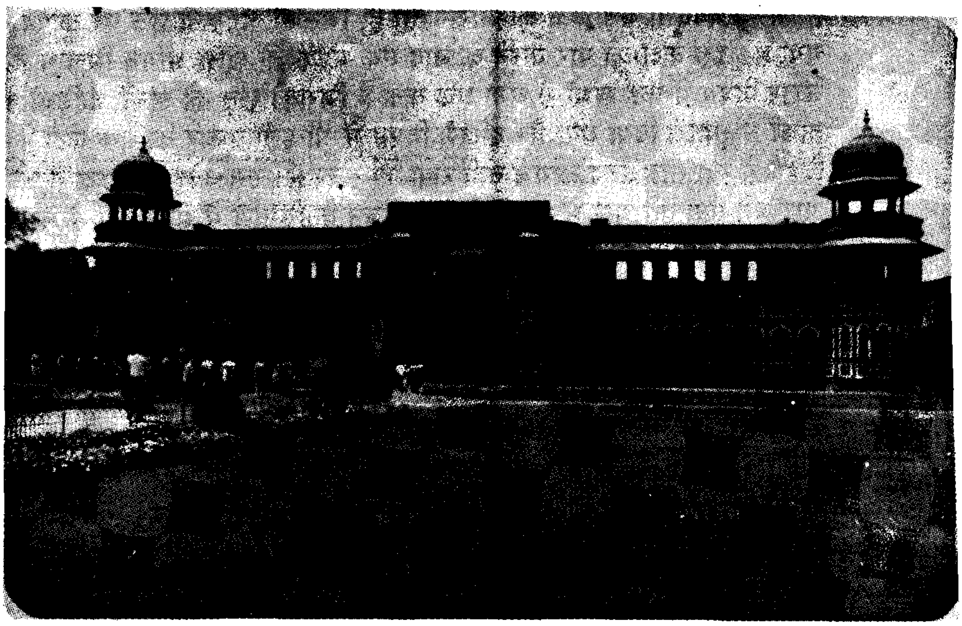

जहाँगीरी महल

33.4.2 भवन परियोजनाएं

अकबर की भवन परियोजनाओं को दो प्रमुख समूहों में बांटा जा सकता है। दोनों अलग-अलग चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पहले समूह में मुख्य रूप से आगरा, इलाहाबाद और लाहौर में बने किले और कुछ महलों के भवन शामिल हैं। दूसरा समूह मुख्य रूप से फतेहपुर में उसकी नयी राजधानी के निर्माण से संबद्ध है।

क) प्रथम चरण

अकबर के शासनकाल की आरंभिक भवन परियोजनाओं में आगरा के किले का निर्माण उल्लेखनीय है। इसका निर्माण एक किले रूपी महल के रूप में हुआ था। इसकी विशालकाय दीवारें और परकोटे किसी महान् सत्ता और शक्ति की याद दिलाते हैं। किले के भीतर, अकबर ने गुजरात और बंगाल शैली में कई इमारतें बनवायीं थीं। हालांकि जहांगीरी महल को छोड़कर शाहजहां ने अन्य सभी संरचनाओं को तुड़वाकर फिर से निर्मित करवाया था। आज किले का दिल्ली दरवाजा और जहांगीरी महल ही अकबर के काल के भवनों का एकमात्र प्रतिनिधि है।

आगरे के किले का दिल्ली दरवाजा संभवत: अकबर के आरंभिक स्थापत्यगत प्रयास का नमूना है। यह किले का मुख्य प्रवेश द्वार है। इस दरवाजे के स्थापत्य में नयापन है, जो भारत में भवन निर्माण कला के नये युग के आरंभ की सूचना देता है। इस दरवाजे की योजना सरल है। इसका विवरण इस प्रकार है :

- सामने की ओर मध्य में मेहराब पथ था और उसके दोनों ओर झुकी हुई अष्टकोणीय दीवारें थीं;
- पीछे की ओर तोरणयुक्त छत थी और जिसमें मंडप और कंगूरे बने हुए थे; और

ख) इसमें लाल बलुए पत्थर पर सफेद संगमरमर से अलंकरण किया गया था।

जहांगीरी महल का निर्माण अकबर ने करवाया था और यह लाल बलुए पत्थर से बने भवन का उत्कृष्ट नमूना है। अकबर द्वारा किले के भीतर निजी और घरेलू कार्य के लिए बनाये गये भवनों में केवल यही बचा हुआ है। यह हिंदू और इस्लामी भवन निर्माण पद्धति के मिले-जुले रूप का सुंदर नमूना है। इसमें विभिन्न कक्ष बने हुए हैं। पूर्व दिशा के अग्रभाग में प्रवेश द्वार है जो गुम्बदनुमा बड़े कक्ष की ओर जाता है, जिसकी अंदरूनी छत पर काफी नक्काशी की गयी है। इस कक्ष को पार करने के बाद एक मध्यवर्ती खुला आंगन मिलता है। इस आंगन की उत्तर दिशा में कई खंभों से बना एक कक्ष है जिसकी छत को खंभों, कड़ियों और घुमावदार ताकों से सहारा दिया गया है। दक्षिण दिशा में भी इसी प्रकार का एक कक्ष है। हालांकि पूर्व दिशा में यह सामंजस्य कायम नहीं रखा जा सका है। इस ओर कई कक्ष हैं जो यमुना नदी की ओर बने एक गलियारे में खुलते हैं। पूरे भवन के निर्माण में मुख्य रूप से लाल पत्थर, कड़ी और ब्रैकेट या ताक का इस्तेमाल किया गया है जो इसकी प्रमुख संरचनागत विशेषता दर्शाती हैं।

लाहौर और इलाहाबाद के किले में भी यह विशेषता देखने को मिलती है। केवल अजमेर का किला दूसरे ढंग से बना हुआ है। यह क्षेत्र साम्राज्य के सीमांत प्रदेश के निकट था अत: किले की दीवारों की मोटाई दोगुनी कर दी गयी थी।

ख) दूसरा चरण

अकबर की स्थापत्यगत योजना के दूसरे चरण की शुरुआत सीकरी में साम्राज्य की नयी राजधानी के निर्माण के साथ होती है। यह आगरा से 40 किलोमीटर पश्चिम में स्थित है। नयी राजधानी का नाम फतेहपुर रखा गया।

यह भारत के स्मारकों में प्रमुख स्थान रखता है। फतेहपुर सीकरी एक शहर है। इसका निर्माण इस तरीके से किया गया है कि सहन, दीवाने आम और जामा मस्जिद जैसे सार्वजनिक स्थल निजी महल के ही अंग बन गये हैं। इस शहर का निर्माण काफी कम समय (1571—1585 ई.) में किया गया और इसके लिए कोई वृहद योजना नहीं बनाई गयी थी।

भवन एक दूसरे के आसपास बने थे और एक दूसरे से जुड़े हुए थे। इस परिसर के निर्माण में असममिति का जानबूझकर प्रयोग किया गया है। सभी भवनों में बेहतरीन लाल बलुए पत्थर और परम्परागत शहतीर निर्माण पद्धति का प्रयोग किया गया है। खंभों, कड़ियों, ताकों, टाइलों और स्तंभों का निर्माण स्थानीय पत्थरों से किया गया है उन्हें बिना गारे से जोड़ा गया है।

फतेहपुर सीकरी के भवनों को दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है – धार्मिक और गैर-धार्मिक। धार्मिक भवनों में प्रमुख हैं क) **जामा मस्जिद**, ख) **बुलंद दरवाजा**, ग) **शेख सलीम चिश्ती की मजार**। गैर-धार्मिक भवन कई प्रकार के हैं और इनकी संख्या भी ज्यादा है। इन्हें इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है : क) महल, ख) प्रशासनिक भवन, ग) अन्य प्रकार के भवन। यह गौर करने की बात है कि आमतौर पर धार्मिक भवनों का निर्माण अर्द्धवृत्ताकार या धनुषाकार शैली में हुआ जबकि गैर-धार्मिक भवनों में शहतीर पद्धति की प्रमुखता है।

जामा मस्जिद की योजना बिल्कुल एक मस्जिद के अनुरूप है – मध्य में एक बरामदा, तीन तरफ से तोरण पथ और ऊपर की ओर गुम्बदनुमा संरचना। उपासना गृह की पश्चिमी तरफ तीन अलग-अलग साधनालय या एकांत स्थल बने हुए हैं। इसमें एक गुम्बद और तोरण पथ है। मस्जिद का आम प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है। यह प्रवेश द्वार आकार में काफी बड़ा और अर्द्ध षट्कोणीय ड्योढ़ी के समान है।

1596 ई. में अकबर ने दक्षिणी प्रवेश द्वार के स्थान पर **बुलंद दरवाजा** नामक विजय द्वार निर्मित किया। यह लाल और पीले बलुए पत्थर से बनाया गया है और मेहराबों की रूपरेखा निर्मित करने में सफेद संगमरमर का भी उपयोग किया गया है। बाहर की ओर से सीढ़ियों की ऊंची लंबी कतार के कारण यह और भी ज्यादा ऊंचा और भव्य दीखता है। प्रवेश द्वार में एक विशाल मध्यवर्ती मेहराब है जिससे एक करीने से गुम्बदनुमा छतरियां जुड़ी हुई हैं। 1573 ई. में अकबर के गुजरात अभियान की सफलता के उपलक्ष्य में बुलंद दरवाजा का निर्माण हुआ था।

उत्तरी पश्चिमी कोने में स्थित **जामा मस्जिद** के बरामदे में सलीम चिश्ती की **मजार** है। यह स्थापत्य कारीगरी का एक सुंदर नमूना है और भारत में संगमरमर के कलात्मक उपयोग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह 1581 ई. में बनकर तैयार हो गया था और मूलतः इसमें संगमरमर का उपयोग अंशतः ही हुआ था। छज्जे को सहारा देता घुमावदार ताक और नक्काशी किए हुए जाली के पर्दे इस मस्जिद की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं।

फतेहपुर सीकरी महल परिसर में अनेक कक्ष और हिस्से हैं। इनमें सबसे विशाल जोधाबाई महल है। यह भव्य और आडंबरहीन है। बाहर की दीवार समतल है। मुख्य भवन अंदर की ओर हैं और सभी एक आंगन में खुलते हैं। उत्तर की ओर तोरणयुक्त गलियारा और बालकनी है। ऊपरी मंजिल के उत्तरी और दक्षिणी हिस्सों में कमरे हैं। इनकी छतों में फांक हैं, जिसे मुल्तान से लाये गये चमकीले बेहतरीन नीले पत्थरों से पाटा गया है।

दीवाने खास के दक्षिण-पूर्व में पांच मंजिली इमारत खड़ी है जिसे **पंच महल** के नाम से जाना जाता है। यह इस महल परिसर का अनूठा भवन है। इसमें जैसे-जैसे ऊपर चढ़ते जाते हैं मंजिलों का आकार छोटा होता जाता है। सबसे ऊपर एक गुम्बदनुमा छतरी है। इस भवन के कुछ हिस्सों में लाल बलुए पत्थर की झिर्रियां लगवायी गयी हैं। परन्तु आज इनमें से कोई सही सलामत नहीं है। एक रुचिकर तथ्य यह है कि जिन खंभों पर ये पांच मंजिलें खड़ी की गयी हैं, वे सभी खंभे आकार प्रकार में भिन्न हैं।

प्रशासनिक भवनों में, निस्संदेह, **दीवाने खास** सबसे अलग और खास है। इस भवन की योजना आयताकार रूप में की गयी है और बाहर की ओर से इसमें दो मंजिले हैं। इसमें एक सपाट छत है जिसके प्रत्येक कोने के खंभों पर गुंबदनुमा छतरी लगी हुई है। बीच में एक खूबसूरत नक्काशी किया हुआ स्तम्भ है, जिसके विशाल ताक के ऊपर एक वृत्ताकार पत्थर का चबूतरा बना हुआ है। इस चबूतरे से चार रास्ते निकलते हैं। ये समकोणीय रूप से अवस्थित हैं और कक्ष के ऊपरी हिस्से के चारों ओर की वीथी को जोड़ते हैं। इस संरचना का मुख्य स्थापत्यगत आकर्षण केन्द्रीय स्तम्भ है। इसकी धुरी कई प्रकार से निर्मित है और शीर्ष पर इसकी कई शाखाएं हैं, जो कई घुमावदार और दोलायमान ताकों से जुड़ी हैं। इनके सहारे केन्द्रीय चबूतरा टिका हुआ है।

पंच महल

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

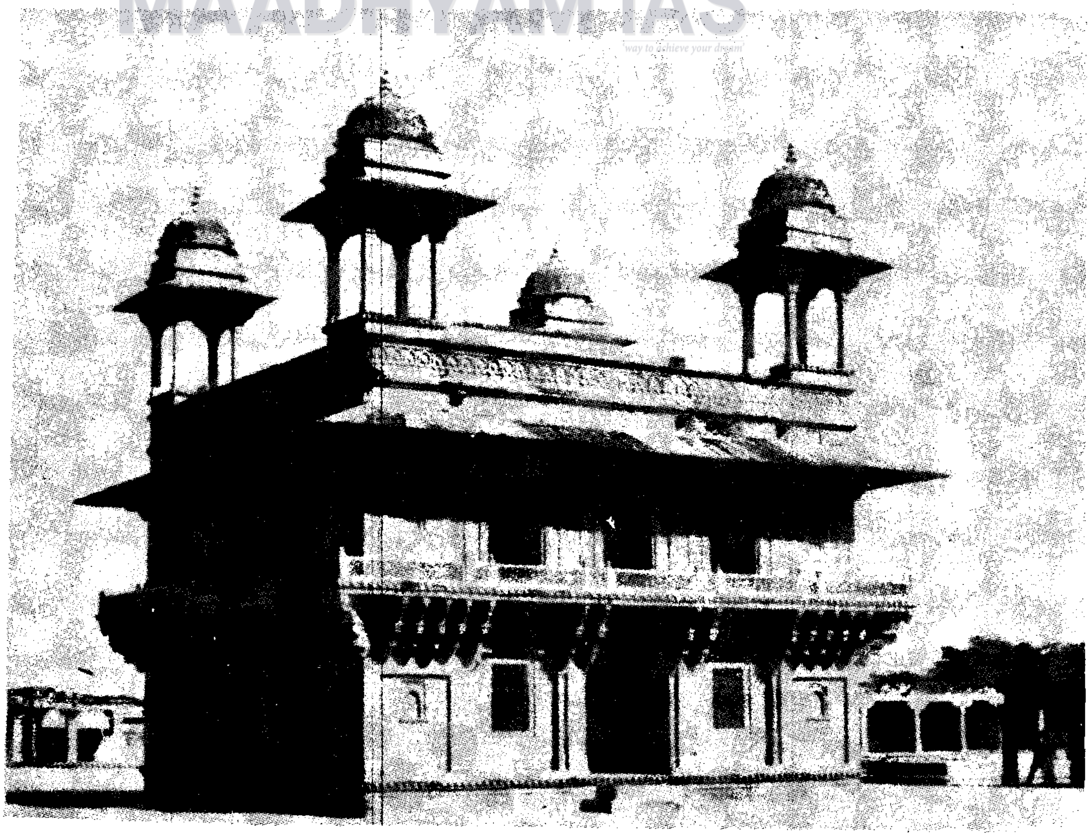

दिवान-ए खास

इस श्रेणी का दूसरा महत्वपूर्ण भवन **दीवाने आम** है। यह एक बड़ा आयताकार बरामदा है जो चारों ओर से स्तम्भों से घिरा हुआ है। सम्राट का चबूतरा पश्चिमी किनारे पर है। यह ऊपर उठी हुई संरचना है जिस पर बैठे हुए व्यक्ति को कोई भी देख सकता है। ऊपर पत्थर की छत है और वह पांच ओर से समान रूप से खुला हुआ है। चबूतरा तीन भागों में विभक्त है, मध्यवर्ती भाग शायद सम्राट के बैठने की जगह होगी जो कि दोनों किनारों से हटकर है और इसमें बेहतरीन चमकीले पत्थर ज्यामितीय आकार में लगाये गये हैं।

पूरे नगर परिसर में भिन्न-भिन्न प्रकार की इमारते फैली हुई हैं :

i) दो **कौंरवा सरायें**, एक आगरा दरवाजे के तुरंत बाद दाहिनी ओर स्थित है; और दूसरी, जो पहले वाली से बड़ी है, **हाथी पोल** के बाहर बायीं तरफ स्थित है।

ii) कारखाना भवन **दीवाने आम** और **नौबत खाना** के बीच में अवस्थित है जिसमें कई ईंट के बने गुम्बद हैं, जिनमें विकिरण की क्षमता है। वे क्षेतिज कम हैं।

iii) **कारवां सराय** के सामने और **हाथी पोल** के निकट जल-आपूर्ति की व्यवस्था की गयी है। इसमें एक गहरी **बावली** (सीढ़ीदार कुंए) है जिसके दोनों ओर दो कोष्ठ हैं जिसके जरिए सारे शहर को जल की आपूर्ति की जाती थी।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित वक्तव्यों के सामने सही (✓) और गलत के सामने (×) का निशान लगाइए :

   i) अकबर ने अपने अधिकांश भवनों में संगमरमर का उपयोग किया।

   ii) अकबर के भवनों में कभी भी दोहरे गुम्बद का इस्तेमाल नहीं किया गया।

   iii) अकबर की स्थापत्य शैली में धनुषाकार और शहतीर शैली का सामंजस्य है।

   iv) खाली जगहों को भरने के लिए अकबर ने छज्जों का उपयोग किया।

2) फतेहपुर सीकरी के महत्वपूर्ण गैर-धार्मिक भवनों पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

....

....

....

....

3) फतेहपुर सीकरी में बने धार्मिक भवनों का उल्लेख करते हुए उन पर दो पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

33.5 जहांगीर और शाहजहां कालीन स्थापत्य

1605 ई. में अकबर की मृत्यु के बाद भी उसके उत्तराधिकारियों के नेतृत्व में एक खास मुगल स्थापत्य शैली का विकास होता रहा। अब साम्राजय की नींव पक्की हो गयी थी और राजकोष में अपार धन इकट्ठा हो गया था। जहांगीर और शाहजहां ने इसका जमकर फायदा उठाया और कला के विकास की ओर ध्यान दिया।

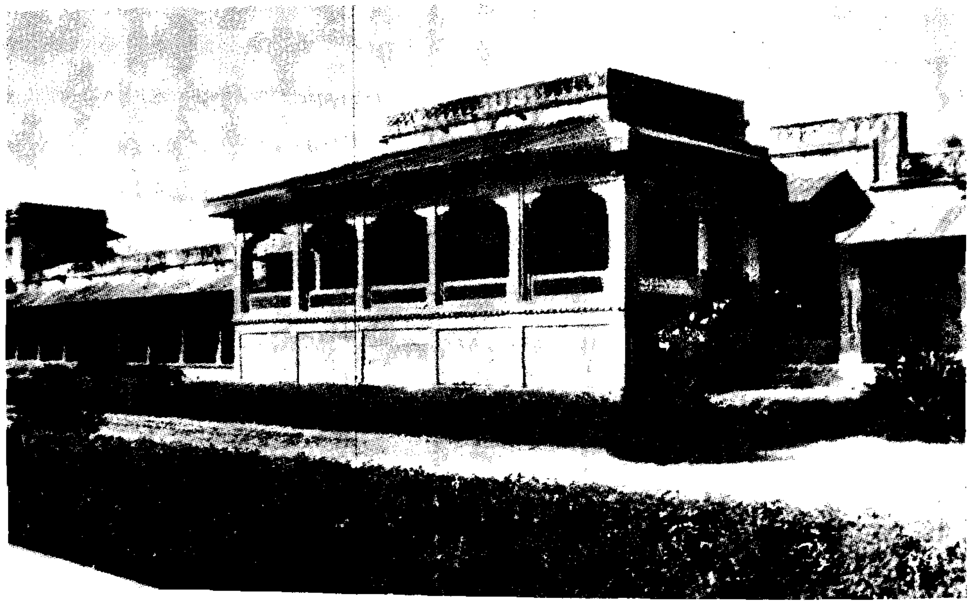

दिवान-ए आम

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

कारवाँ सराय

33.5.1 प्रमुख विशेषताएँ

भवन निर्माण कला के क्षेत्र में जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल संगमरमर के प्रयोग के काल हैं। लाल बलुए पत्थर का स्थान संगमरमर ने ले लिया और इसका बेहतरीन प्रयोग होने लगा। इस कारण कुछ शैलीगत परिवर्तन भी आये जो इस प्रकार हैं :

क) मेहराब को नया रूप दिया गया। इसमें घुमावदार फूल-पत्ती का उपयोग होने लगा जिसमें आमतौर पर नौ नुकीले सिरे होते थे;

ख) रंगे हुए मेहराब के संगमरमर के तोरण पथ इस काल की आम विशेषता हो गयी;

ग) गुम्बद कंदीय स्वरूप ग्रहण करने लगा और इसमें एक प्रकार की तंगी भी आने लगी। दोहरे गुम्बद का आम चलन हो गया;

घ) अलंकरण के लिए पच्चीकारी के प्रयोग में रंगीन पत्थरों का खूब उपयोग किया जाने लगा; और

ङ) जहांगीर के शासनकाल के उत्तरार्द्ध से पच्चीकारी का एक नया तरीका सामने आया जिसे पित्राड्यूरा के नाम,से जाना जाता है। इस पद्धति के तहत अशम, लेजुलाइट, सुलेमानी, चीनी मिट्टी, पुखराज और कार्नेलियन जैसे पत्थरों को संगमरमर में बड़ी नफासत के साथ फूलपत्तियों के रूप में जड़ा जाता था।

33.5.2 प्रमुख इमारतें

अकबर का मकबरा इस युग का पहला प्रमुख और उल्लेखनीय भवन है। यह आगरा से आठ किलोमीटर दूर दिल्ली मार्ग पर सिकन्दरा में अवस्थित है। अकबर ने इसकी रूपरेखा खुद बनायी थी और इसका निर्माण कार्य अपने जीवन काल में ही आरंभ करवा दिया था परन्तु उसकी मृत्यु के समय यह कार्य अधूरा था। इसके बाद जहांगीर ने इसकी मूलरेखा में परिवर्तन करके इसे नये रूप में निर्मित करवाया और इस भवन को पूरा किया। आज यह पूरा परिसर जिस रूप में खड़ा है वह अकबर और जहांगीर की स्थापत्यगत योजनाओं का असाधारण सम्मिश्रण है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस परिसर के बीच में मकबरा स्थित है जो चारों ओर से बागान से घिरा हुआ है। प्रत्येक ओर की चहारदीवारी के मध्यभाग में प्रवेश द्वार बने हुए हैं।

मध्य में स्थित मकबरे वाला भवन चौकोर आकार का है और इसमें तीन मंजिलें हैं। पहली मंजिल वस्तुतः एक छतयुक्त चबूतरा है जो तहखाने का काम करता है। इस चबूतरे के भीतर शवागार कक्ष के चारों ओर शव कक्ष बने हुए हैं और दक्षिण दिशा में एक पतला ढँलवा गलियारा है जो कब्र तक जाता है। बीच वाले हिस्सों में लाल बलुए पत्थर से बनी तीलियों के तीन स्तर हैं, जिनमें पूरी तरह शहतीरों का उपयोग किया गया है।

ऊपरी मंजिल पर लाल बलुए पत्थर के स्थान पर सफेद संगमरमर का उपयोग किया गया है। इसमें एक खुला सभागार है जो चारों ओर से जालियों से मुक्त स्तंभावलियों से घिरा हुआ है। मकबरा चहारदीवारी के प्रवेश द्वार से गुफाओं और सेतुपथों से जुड़ा हुआ था। परन्तु इसमे केवल दक्षिण की ओर से ही प्रवेश किया जा सकता था बाकी प्रवेश द्वार दिखावटी थे जिनका निर्माण एकरूपता के लिए किया गया था।

दक्षिणी प्रवेश द्वार दो मंजिला था जिसके प्रत्येक कोने पर सफेद संगमरमर की गोल मीनारें खड़ी थीं। सम्पूर्ण प्रवेश द्वार का ढांचा रंगीन पलस्तर के रंग के पत्थर से अलंकृत है और इसमें संगमरमर जोड़ा गया था इसमें खास बात यह है कि इस अलंकरण में परम्परागत फूल-पत्ती के बेलबूटों और आयतों के अतिरिक्त, गज (हाथी), हंस, पद्म (कमल), स्वास्तिक और चक्र का भी प्रयोग किया गया था। सिकन्दरा स्थित अकबर के मकबरे का स्थापत्यगत महत्व इस बात से सिद्ध होता है कि इसके बाद बनने वाले अनेक मकबरों में इस भवन की छाप दिखायी पड़ती है। लाहौर के निकट शाहदरा में स्थित जहांगीर का मकबरा और आगरा स्थित नूरजहां के पिता मिर्जा गियास बेग का मकबरा इसके उत्तम उदाहरण हैं।

अपने पिता मिर्जा गियास बेग की कब्र पर नूरजहां ने 1622-28 ई. में इतमादउद्दौला का मकबरा निर्मित किया। यह मकबरा अकबर के काल के बाद के स्थापत्यगत परिवर्तन का

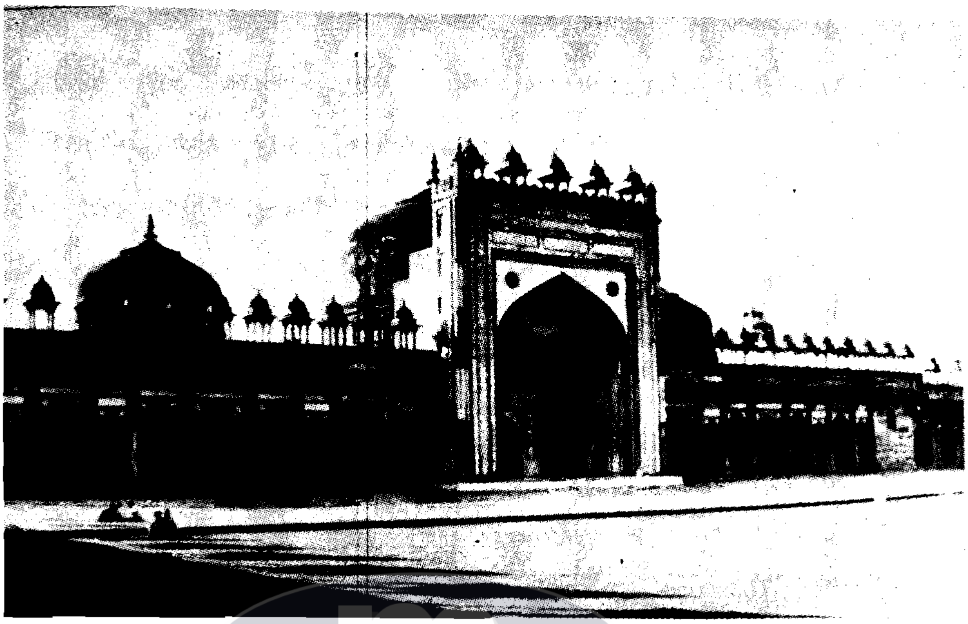

जामामस्जिद, फतहपुर सीकरी

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

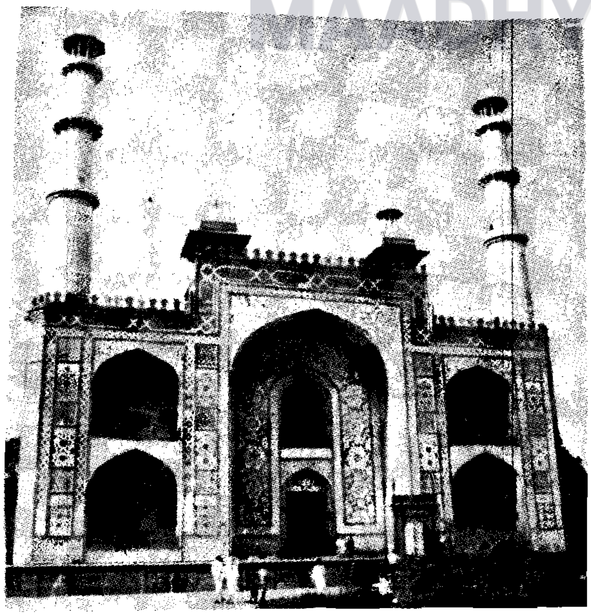

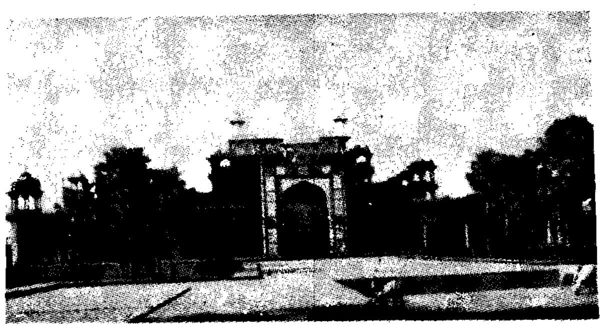

अकबर का मकबरा

अकबर के मकबरे का प्रवेश द्वार

सूचक है। जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल के स्थापत्य और अकबर के स्थापत्य में एक खास अंतर सूक्ष्मता और भव्यता का है। इस ढांचे में इसी सूक्ष्मता की अवधारणा की झलक मिलती है।

मकबरा चौकोर है जो थोड़े से उठे हुए चबूतरे पर बना हुआ है। प्रत्येक कोने पर चार गुम्बद युक्त अष्टकोणीय मीनारें हैं। केन्द्रीय कक्ष के चारों ओर बरामदा है जो खूबसूरत संगमरमर की जाली से घिरा हुआ है और इस पर मोज़ेक और **पित्राड्यूरा** किया हुआ है। केन्द्रीय कक्ष में इतमादउद्दौला और उसकी पत्नी की कब्र है, जो पीले संगमरमर की बनी है। बगल के कमरे रंगीन फूल पत्तियों से अलंकृत हैं। सफेद संगमरमर का मकबरा चारों ओर से बागों और दीवारों से घिरा बड़ा खूबसूरत दीखता है। इसके चारों ओर लाल बलुए पत्थर के बने चार प्रवेश द्वार हैं।

यह ध्यान देने की बात है कि जहांगीर चित्रकला का बहुत बड़ा प्रेमी और संरक्षक था। उसे जानवरों, पेड़-पौधों, फूलों, आदि से अगाध स्नेह था। यह उसके काल के चित्रों से भी प्रमाणित होता है। इसीलिए उसने भवनों की अपेक्षा बागानों और फुलवारियों के निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक रुचि दिखाई। कश्मीर में स्थित **शालीमार बाग** और **निशात बाग** जैसे मुगल बागान जहांगीर की इसी रुचि के परिचायक हैं।

जहांगीर के विपरीत उसका पुत्र और उत्तराधिकारी शाहजहां एक महान भवन निर्माता था। उसके शासनकाल के दौरान भवन निर्माण में संगमरमर का बड़े पैमाने पर सर्वोत्कृष्ट कलात्मक उपयोग हुआ। शाहजहां ने निम्नलिखित प्रकार के भवन बनवाए :

क) किले रूपी महल, मसलन दिल्ली का लाल किला;

ख) मस्जिदें, उदाहरणस्वरूप आगरे के किले में स्थित **मोती मस्जिद** और दिल्ली की **जामा मस्जिद**; और

ग) बाग से घिरे मकबरे, उदाहरणस्वरूप **ताजमहल**।

यहां हम शाहजहां के शासनकाल के दौरान निर्मित अधिक महत्वपूर्ण और प्रतिनिधि भवनों की चर्चा करेंगे।

लालकिला आयताकार है और इसकी उत्तरी दीवार यमुना नदी के पुराने बहाव क्षेत्र से सटी हुई है। दिल्ली दरवाजा और लाहौरी दरवाजा दो प्रमुख प्रवेश द्वार हैं। दीवार के साथ-साथ एक नियमित दूरी पर विशाल गोलाकार बुर्ज है। दरवाजों के दोनों ओर अष्टकोणीय मीनारें हैं। इसमें अंधेरी गलियां हैं और इसके ऊपर बुर्ज बने हुए हैं। नदी की दिशा को छोड़कर दीवार से सटी हुई खाई बनी हुई है। किले के अंदर अनेक उल्लेखनीय भवन हैं जिनमें **दीवाने आम, दीवाने खास** और **रंगमहल** महत्वपूर्ण हैं। **दीवाने आम** और **रंगमहल** छतयुक्त वीथियां हैं इसमें बलुए पत्थर के स्तंभ हैं जिन पर संगमरमर के चूर्ण का मजबूत प्लास्टर किया हुआ है। **दीवाने आम** की पूर्वी दीवार के साथ सम्राट का सिंहासन वाला चबूतरा बना हुआ है जिसकी छत बंगाल स्थापत्य की शैली में निर्मित है। इस इमारत की पूर्वी दिशा में रंगमहल स्थित है जिसके आगे एक खुला बरामदा है और पत्थर की ओर रंगमहल से मिलता जुलता **दीवाने खास** है। इन सभी इमारतों की दीवारों, स्तंभों और खंभों पर फूल-पत्तियों का अलंकरण है।

आगरा के किले की **मोती मस्जिद** में खुले तोरणयुक्त प्रार्थना कक्ष का इस्तेमाल कर शाहजहां ने एक नया प्रयोग किया। इसके अलावा मस्जिद में मीनारें भी नहीं बनायी गयीं। इनके स्थान पर प्रार्थना कक्ष के चारों कोनों पर छतरियों का उपयोग किया गया। एक अर्द्धचंद्राकार तोरण के ऊपर तीन उभरे हुए गुम्बद बनाये गये थे। पूरी इमारत संगमरमर से बनी है और काले संगमरमर से उन पर कुरान की **आयतें** खुदी हैं इससे इसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है।

दिल्ली की **जामी मस्जिद**, फतेहपुर सीकरी की **जामी मस्जिद** का विस्तारित और बड़ा रूप है और यह भारत की अपने आप में एक बड़ी इमारत है। यह एक ऊंचे चबूतरे पर बनी हुई है जिसके चारों ओर तोरण पथ है जिन्हें दो तरफ से खुला छोड़ दिया गया है। मुख्य प्रवेश पूर्वी दिशा से है और ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियां बनी हुई हैं। इससे इमारत की ऊंचाई का आभास बढ़ जाता है। उत्तरी और दक्षिणी भाग के मध्य में दो छोटे प्रवेशद्वार हैं। मस्जिद के

लाल किला

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

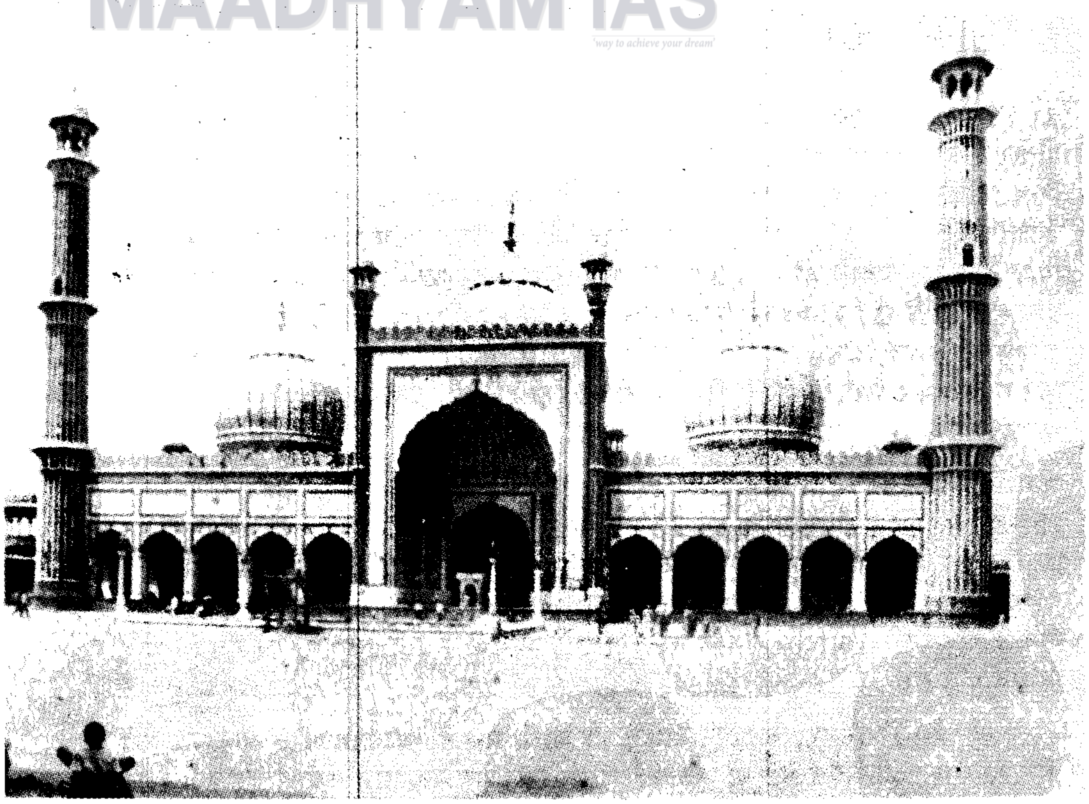

जामा मस्जिद

अंदर की योजना फतेहपुर सीकरी की **जामी मस्जिद** के अनुरूप है—तीन तरफ स्तंम्भावलियां हैं और चौथी तरफ उपासना स्थल है। उपासन स्थल के ऊपर संगमरमर निर्मित तीन बाहर की ओर उभरे हुए केंद्रीय गुंबद हैं। पूरी इमारत लाल बलुए पत्थर से बनी है और उनमें प्लास्टर के स्थान और चौखटों के ढांचे को अलंकृत करने के लिए संगमरमर का उपयोग हुआ है।

निस्सन्देह **ताजमहल** शाहजहां की सर्वोत्कृष्ट और अनुपम रचना है। इसका निर्माण कार्य 1632 ई. में आरंभ हुआ और इसके बनने में लगभग बाईस वर्ष लगे। यह परिसर आयताकार है और ऊंची दीवारों से घिरा हुआ है। दक्षिण दिशा के मध्य में एक ऊँचा प्रवेश द्वार है। कुल मिलाकर छह अष्टकोणीय वीथियां हैं -- प्रत्येक कोने पर एक पूर्वी और एक पश्चिमी दिशा में। इस परिसर के उत्तरी छोर में ऊंचे चबूतरे पर ताज की मुख्य इमारत अवस्थित है। एकरूपता के लिए इस इमारत के पूर्वी और पश्चिमी किनारे पर एक तरह की दो मस्जिदें बनी हुई हैं।

ताजमहल एक चौकोर इमारत है जिसके चारों ओर और चारों कोनों पर एक-एक झिर्रीदार कोष्ठिका बनी हुई है। इस इमारत के शीर्ष पर खूबसूरत उभरे हुए गुम्बद हैं जिसके ऊपर उलटा कमल कलश और एक धातु निर्मित कलश अवस्थित है। चबूतरे के चारों कोनों पर चार वृत्ताकार मीनारें हैं जिनके शीर्ष पर स्तम्भयुक्त बुर्जियां हैं। अन्दर की ओर एक केन्द्रीय कक्ष हैं जिसके आसपास प्रकोष्ठ हैं, जो एक दूसरे से एक प्रकाशयुक्त गलियारे से जुड़े हुए हैं। मुख्य कक्ष की छत अर्द्धवृत गुंबदाकार है। यह दोहरे गुम्बद के अंदर का हिस्सा है। आयतों की नक्काशियों और पच्चीकारियों से बाहरी ओर का अलंकरण किया गया है और अंदर की ओर **पित्राड्यूरा** किया गया है। भवन-निर्माण के काम में लाया गया संगमरमर उच्च कोटि का है। इसे जोधपुर के निकट मकराना की खदान से लाया गया था। मुख्य इमारत के सामने की फुलवारी चार बराबर हिस्सों में विभक्त है। दो नहरें इन्हें चार हिस्सों में बाँटती हैं। मुख्य कक्ष में बनी स्मारक समाधि मूलतः सोने की नक्काशी की गयी जाली से घिरी हुई थी। परन्तु बाद में औरंगजब न इसे हटाकर संगमरमर की जाली लगवा दी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

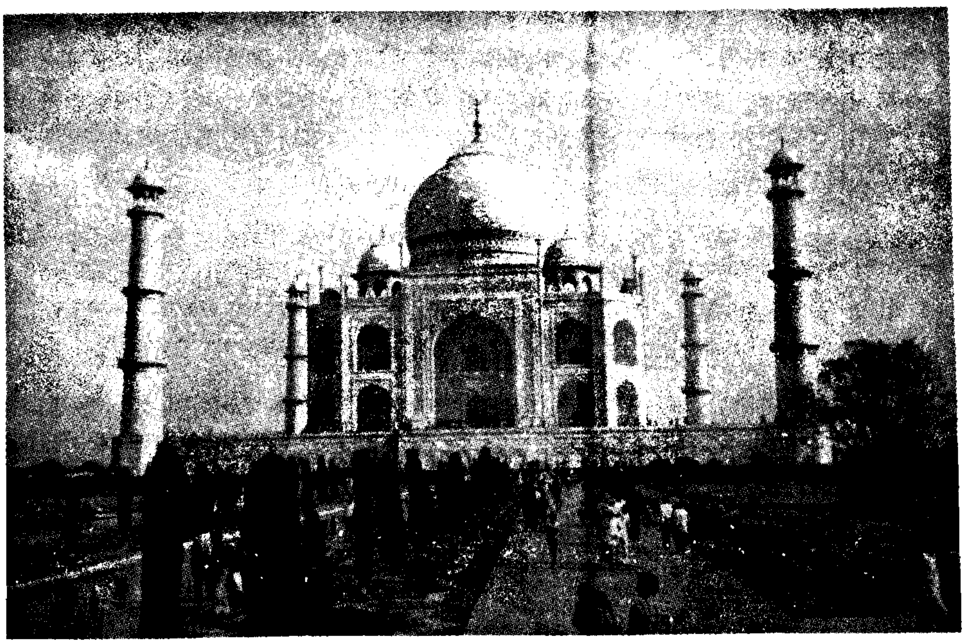

ताज महल

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित वक्तव्यों पर सही (√) और गलत (×) का निशान लगाइए :
जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल के स्थापत्य की प्रमुख विशेषता थी :

i) भवन-निर्माण में लाल बलुए पत्थर के स्थान पर संगमरमर का प्रयोग होने लगा।

ii) मेहराबों में बहु-पत्तीदार वक्रता का उपयोग।

iii) इकहरे गुम्बद के स्थान पर दोहरे गुम्बद का उपयोग।

iv) पच्चीकारी का स्थान ज्यामितीय अंकन और उत्कृष्ट नक्काशी ने ले लिया।

v) पित्राडूयूरा का प्रयोग।

2) साठ शब्दों में ताजमहल के स्थापत्य पर टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

33.6 अंतिम चरण

MAADHYAM IAS

यह भाग दो उपभागों में विभक्त है। पहले में औरंगजेब कालीन भवन निर्माण की गतिविधयों का उल्लेख किया गया है और दूसरे में औरंगजेब के शासनकाल के बाद के समय की वास्तुकला का जिक्र किया गया है।

33.6.1 औरंगजेब की इमारतें

अपने पिता के विपरीत औरंगजेब की स्थापत्य में कोई रुचि नहीं थी। उसके पूर्वजों ने कला को काफी बढ़ावा दिया परन्तु उसके शासनकाल में इन सब चीजों का महत्व काफी घट गया। पूर्ववर्ती मुगल शासकों की अपेक्षा औरंगजेब द्वारा बनाये गये भवन काफी कम हैं और इनका स्तर भी साधारण है। साम्राज्य की राजधानी दिल्ली में भी औरंगजेब के नाम से जुड़ी इमारतें कम ही हैं। औरंगजेब द्वारा बनवायी गयी इमारतों में औरंगाबाद स्थित उसकी बेगम रबियाउद्दौरान का मकबरा, लाहौर की बादशाही मस्जिद और लालकिला (दिल्ली) में बनी **मोती मस्जिद है**। आकार और बनावट में बादशाही मस्जिद दिल्ली की मस्जिद से मेल खाती है। इसमें एक बड़ा सभागार, खड़े होकर प्रार्थना करने का कक्ष और कक्ष के प्रत्येक कोने में मीनारें हैं।

उपासना स्थल के प्रत्येक कोण पर चार छोटी मीनारें हैं। उपासना कब्र के दोनों ओर एक खास अंतर पर मेहराबी प्रवेशद्वार है। इसमें केवल एक चँदोवा है। इमारत में ज्यादातर लाल बलुए पत्थर का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं नाम मात्र के लिए संगमरमर का इस्तेमाल किया गया है। उपासना कब्र के ऊपर तीन उभरे हुए गुम्बद खुबसूरत लगते हैं।

लाल किला (दिल्ली) में स्थित **मोती मस्जिद** इस युग की दूसरी महत्वपूर्ण इमारत है। इस इमारत के निर्माण में उच्च कोटि का संगमरमर लगाया गया है। आगरा के किले में शाहजहां निर्मित **मोती मस्जिद** से यह मस्जिद मेल खाती है। यहां केवल वक्रता ज्यादा उभर कर सामने आयी है। उपासना कक्ष के ऊपर तीन उभरे हुए गुम्बद बने हुए हैं जो एक ही आकार की बुर्जी के रूप में बनाये गये हैं।

औरंगजेब की पत्नी के मकबरे में ताजमहल की नकल करने की कोशिश की गयी है। लेकिन औरंगजेब का स्थापत्य शिल्पी मकबरे के कोने पर सही ढंग से मीनारों को स्थापित नहीं कर पाया है जिसके कारण पूरे भवन का सामंजस्य बिखर गया है। ताजमहल की नकल करने की कोशिश असफल रही है। इसकी मीनारें पूरी संरचना से मेल नहीं खातीं।

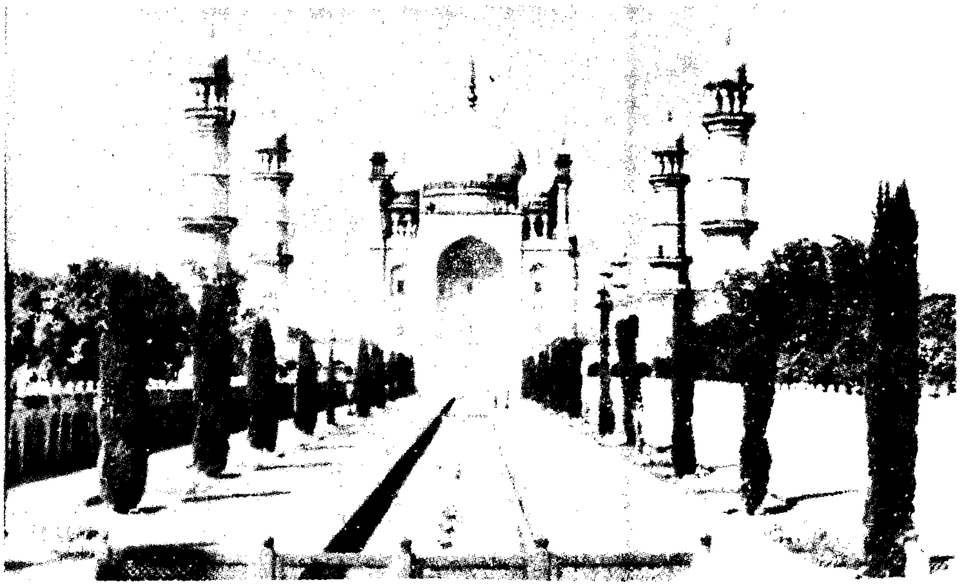

राबि उद दौरान का मकबरा

33.6.2 सफदर जंग का मकबरा

1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद साम्राज्य भरभरा कर गिर पड़ा। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनी कुछ इमारतें इस पतन की गवाह हैं।

दिल्ली में स्थित सफदर जंग का मकबरा इस युग का सबसे महत्वपूर्ण भवन है। यह एक बड़े बाग से घिरा हुआ है और औरंगाबाद में बने रबियाउद्दौरान के मकबरे के समान यहां भी ताजमहल की नकल करने की कोशिश की गयी है। हालांकि इसके आकार प्रकार में बदलाव यह किया गया है कि इसकी मीनारें मुख्य भवन के हिस्से के रूप में ही निर्मित हैं। ये स्वतंत्र ढांचे नहीं हैं। मुख्य भवन छत्तेदार चबूतरे पर खड़ा है। इसमें दो मंजिले हैं और यह एक बड़े और लगभग गोलाकार गुबंद से आच्छादित है। ये मीनारें बुर्ज की तरह उठी हैं और इसके शीर्ष पर गुंबदनुमा छतरियां हैं। पूरा भवन लाल बलुए पत्थर से बना है जिसमें संगमरमर की पट्टी दी गयी है। मेहराबों का अग्रभाग कम वक्र है परन्तु यह पूरे भवन की समग्र संरचना से अच्छी तरह मेल करता है।

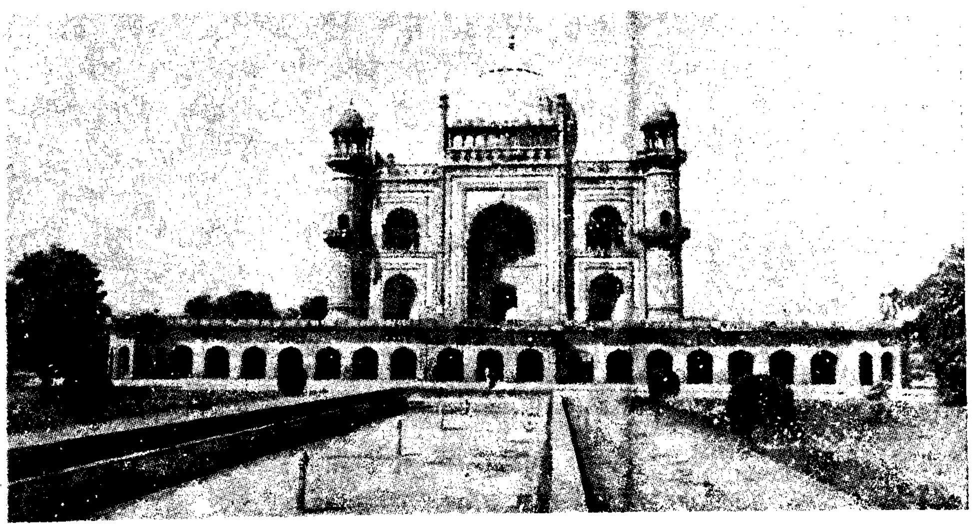

सफदर जंग का मकबरा

बोध प्रश्न 4

1) औरंगजेब के शासनकाल की स्थापत्यगत गतिविधियों पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

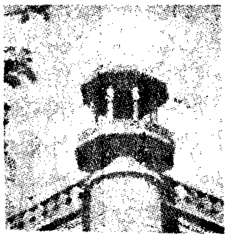

छतरी/बुर्जी

2) सफदर जगं के मकबरे पर लघु टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

33.7 सारांश

खंभे

बाबर और हुमायूं ज्यादातर अपनी राजनैतिक समस्याओं में उलझे रहे। इसलिए उन्हें भवन निर्माण का बहुत कम अवसर मिला। हालांकि बाबर खुद बगीचों का प्रेमी था और अपने छोटे से शासनकाल में उसने भारत में कई बागान लगवाए थे। मुगलों की स्थापत्यगत गतिविधियों की असल शुरुआत अकबर के समय से हुई। उसकी इमारतें मुख्य रूप से लाल बलुए पत्थर से निर्मित हैं। अकबर के भवनों में मेहराबों और शहतीर शैलियों का सुन्दर सम्मिश्रण है। जहांगीर स्थापत्य की अपेक्षा चित्रकला में ज्यादा रुचि रखता था। हालांकि चित्रकला में रुचि होने के कारण समकालीन स्थापत्य में नयापन आया। चित्रकारी, पशुओं और फूल-पत्तियों के डिजाइनों का अलंकरण के लिए इस्तेमाल होने लगा और **पित्राड्यूरा** नामक नयी अलंकरण शैली जहांगीर के समय सामने आयी। शाहजहां के शासनकाल में मुगल स्थापत्य अपने उत्कर्ष पर पहुंच गया और इस समय संगमरमर का उपयोग ज्यादातर होने लगा। शाहजहां द्वारा निर्मित सफेद संगमरमर में ढला ताजमहल एक अनुपम और अमर कृति है। इसकी दोहरी-गुम्बद, मीनारें, बहु-पत्तीदार मेहराबें, आदि स्थापत्य कला के चरम उत्कर्ष की गवाह हैं। उसका उत्तराधिकारी औरंगजेब भवन निर्माण गतिविधि के प्रति उदासीन था। इसलिए उसके शासनकाल में कम भवनों का निर्माण हुआ है। औरंगजेब के बाद का काल पतन का काल था। अव्यवस्थित राजनैतिक माहौल में स्थापत्य में रुचि लेना मुगल शासकों के वश में नहीं था। इस माहौल में बड़ी इमारतों का निर्माण नहीं हो सकता था। इस काल का एकमात्र स्मारक दिल्ली स्थित सफदर जंग का मकबरा है।

33.8 शब्दावली

शिखर

कोष्ठिका : गुंबदाकार झिरी

तोरण पथ : छतयुक्त मेहराबों की श्रृंखला

मेहराब : ईंटों या पत्थर के खंडों से बना अपने बल पर खड़ा ढांचा जिसके ऊपर कोई ढांचा खड़ा किया जाता है।

बावली : सीढ़ीनुमा कुंआ

ब्रैकेट : ताक दीवार का सहारा

स्मारक समाधि : किसी की याद में बनायी गयी इमारत

घुमावदार मेहराब	:	ऐसी मेहराब जो अंदर की ओर नोकदार हो।
स्तंभावलि	:	स्तंभों की एक पंक्ति
सेतुमार्ग	:	पानी के बीच बना रास्ता
बुर्जी	:	गुंबद का भीतरी भाग
गुम्बद	:	एक चौकोर के ऊपर बना उत्तल छत भवन में अष्टकोणीय या वृत्ताकार स्थान
छज्जा	:	छत का निकला हुआ बाहरी हिस्सा
रंगीन मेहराब	:	फूल-पत्तियों से अलंकृत मेहराब
कलश	:	शिखर
छतरी	:	एक खुली वीथी जिसकी छत स्तंभों के सहारे टिकी हुई हो
खंभे	:	पत्थर और ईंट को जोड़कर बनायी गयी संरचना जो क्षैतिज भार उठाये रखते हैं
पित्राड्यूरा	:	संगमरमर की खुदाई कर उसमें चमकीले पत्थरों को जड़ना और अलंकृत करना
चंदोवा	:	आगे का हिस्सा
गचकारी	:	चूने के प्लास्टर को खोदकर अलंकरण करना
शहतीर	:	इस स्थापत्य संरचना में कड़ी और स्तंभों का उपयोग किया जाता है
बुर्ज	:	भवन के साथ लगी मीनारें

चंदोवा

कोष्ठिका

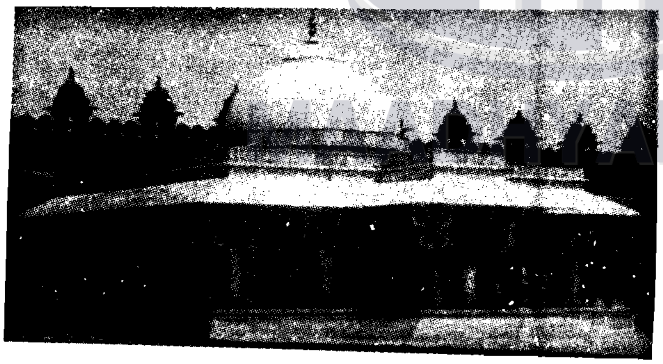

ब्रैकेट

घुमावदार मेहराब (शाहजहाँ)

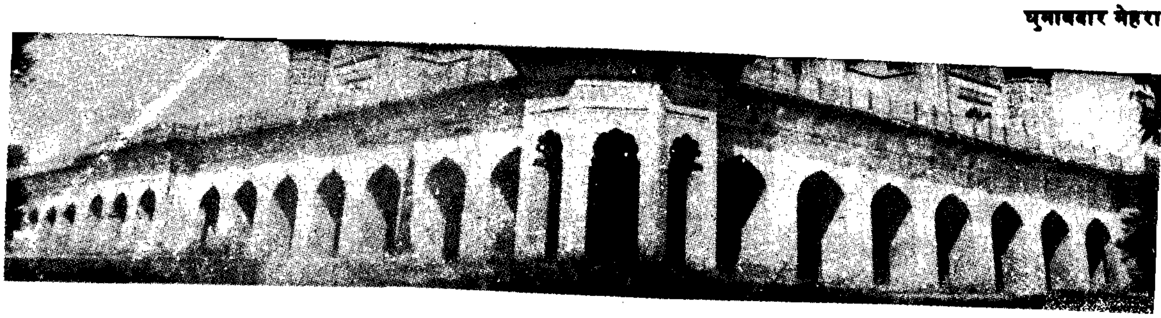

तोरण पथ

अकबरी मेहराब

गुम्बद

छज्जा

33.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 1

1) i) घ, ii) क, iii) ख, iv) ग

2) देखिए उपभाग 33.2.2

बोध प्रश्न 2

1 i) ×, ii) √, iii) √, iv) ×

2) देखिए उपभाग 33.4.2 फतेहपुर सीकरी में निर्मित अकबर के भवनों की आम विशेषताओं पर विचार कीजिए, जैसे शैली, निर्माण वस्तु, अलंकरण, नक्काशी आदि।

2) देखिए उपभाग 33.4.2

बोध प्रश्न 3

1) i) √ ii) √, iii) ×, iv) ×, v) √

2) देखिए उपभाग 33.5.2

बोध प्रश्न 4

1) देखिए उपभाग 33.6.1 इस तथ्य पर विचार कीजिए कि औरंगजेब भवन निर्माण में रुचि नहीं रखता था और उसके शासनकाल में कम भवनों का निर्माण हुआ। इन भवनों का वर्णन करते हुए इनकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

2) देखिए 33.6.2.

इकाई 34 चित्रकला और ललित कलाएं

इकाई की रूपरेखा

34.0 उद्देश्य
34.1 प्रस्तावना
34.2 पृष्ठभूमि
- 34.2.1 पन्द्रहवीं शताब्दी में चित्रकला
- 34.2.2 आरंभिक मुगलकालीन चित्रकला

34.3 अकबर के शासनकाल में मुगल शैली का विकास
- 34.3.1 राजकीय चित्रशाला की स्थापना
- 34.3.2 शैली और तकनीक
- 34.3.3 मूलभूत विशेषताएं

34.4 जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में विकास
- 34.4.1 नयी शैलियों का उदय
- 34.4.2 विषयगत भिन्नताएं
- 34.4.3 अंतिम चरण

34.5 मुगल चित्रकला पर यूरोप का प्रभाव
34.6 दक्खन में चित्रकला
- 34.6.1 दरबारी संरक्षण
- 34.6.2 शैली और विषय

34.7 राजपूत चित्रकला
- 34.7.1 शैली और विषय
- 34.7.2 मुख्य केन्द्र

34.8 मुगलकालीन ललित कलाएं
- 34.8.1 संगीत
- 34.8.2 नृत्य और नाटक

34.9 सारांश
34.10 शब्दावली
34.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

34.0 उद्देश्य

सांस्कृतिक मूल्य प्राय: चित्रकला और ललित कलाओं के माध्यम से प्रतिबिंबित होते हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद **आप** :

- सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में चित्रकला के विकास का उल्लेख कर सकेंगे,
- चित्रकला की विभिन्न शैलियों और तकनीकों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- विभिन्न क्षेत्रों की चित्रकला में विषयगत परिवर्तनों का उल्लेख कर सकेंगे, और
- मुगल दरबार और अन्य प्रान्तीय राज्यों में संगीत, नृत्य और नाटक आदि ललित कलाओं के विकास को रेखांकित कर सकेंगे।

34.1 प्रस्तावना

16 वीं शताब्दी, खासकर इसके उतरार्द्ध में भारत में चित्रकला और संगीत के क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। अकबर ने अपने शासन के दौरान ललित कलाओं के विकास को **उदारतापूर्वक** प्रोत्साहित किया। उसके उत्तराधिकारियों ने भी इन कलाओं में गहन **रुचि** दिखाई और 17 वीं शताब्दी का अंत होते-होते मुगल दरबार में चित्रकला और संगीत अपने अभूतपूर्व उत्कर्ष पर पहुंच गया।

इसके साथ-साथ दक्खन में मुगल प्रभाव से काफी कुछ स्वतंत्र चित्रकला और संगीत की एक अलग परम्परा विकसित हो रही थी। बाद में, 18 वीं शताब्दी में मुगल दरबार के स्थान पर राजस्थान और पंजाब जैसे क्षेत्रीय राज्य चित्रकला को सरंक्षण देने लगे।

इस इकाई में हम चित्रकला और विभिन्न ललित कलाओं की इन विभिन्न परम्पराओं का अध्ययन करेंगे।

34.2 पृष्ठभूमि

इस भाग में हम उस पृष्ठभूमि की चर्चा करेंगे जिसमें चित्रकला का अत्याधिक विकास हुआ। विकास हुआ।

34.2.1 पन्द्रहवीं शताब्दी में चित्रकला

अभी तक यह विश्वास किया जाता था कि दिल्ली सल्तनत में चित्रकला का विकास नहीं हुआ और मुगल काल में तैयार हस्तलिखित दस्तावेजों में प्राप्त चित्रकला की परंपरा वस्तुतः कई शताब्दियों के बाद (दसवीं शताब्दी के अंत के बाद) पुनः प्रारंभ हुई। एक प्रकार से यह चित्रकला का पुनरुत्थान था। परन्तु नई खोजों और शोधों से कुछ नये तथ्य सामने आये हैं :

- 13 वीं और 14 वीं शताब्दियों में भित्ति चित्रों **की** और कपड़ों पर चित्रकारी करने की जीवंत परंपरा थी,
- 14 वीं शताब्दी तक **कुरान** की आयतों को चित्र रूप में प्रस्तुत करने की परंपरा साथ-साथ चल रही थी, और
- संभवतः 15 वीं शताब्दी के आरंभ में फारसी और अवधी भाषा की पांडूलिपियों में चित्रकारी की परम्परा की भी जानकारी मिलती है।

15 वीं और 16 वीं शताब्दी में तैयार की गई कई महत्वपूर्ण **पांडुलिपियों** की हमें जानकारी मिलती है जिनमें चित्र भी बने हैं। इनमें से कुछ कृतियां क्षेत्रीय राजाओं के दरबार में तैयार की गई थीं और कुछ का निर्माण स्वतंत्र संरक्षकों द्वारा करवाया गया था। पहली कोटि में निम्नलिखित की चर्चा की जा सकती है :

क) **सादी की बोस्तां** में हाजी महमूद के बनाए चित्र

ख) **'नेमत नामा'** (पाककला की पुस्तक) और

ग) मोहम्मद शादिआबादी कृत **मिफताह उल फ़ुज़ला।**

15 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मांडू **(मालवा) में इन पांडुलिपियों में चित्रों का समावेश** किया गया था। लोरे चंदा (अवधी) इस प्रकार की चित्रित पांडूलिपि का उत्तम उदाहरण है जिसका संबंध दरबार से नहीं था बल्कि इसे अपने संरक्षक के लिए तैयार किया गया था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में मुगलों के आगमन से ठीक पहले चित्रित **पांडुलिपियों** की परंपरा मौजूद थी। कागज के उपयोग के कारण इस प्रकार की चित्रकारी संभव हो सकी।

34.2.2 आरंभिक मुगलकालीन चित्रकला

भारत में मुगल शासन के संस्थापक बाबर (1526) ने केवल चार वर्षों तक राज्य किया। चित्रकला के विकास में उसका कोई योगदान नहीं रहा। उसके उत्तराधिकारी हुमायूं का भी अधिकांश समय अपने विरोधियों से लड़ते हुए बीता और 1540 में शेरशाह ने उसे भारत से बाहर खदेड़ दिया। अपने निष्कासन के दौरान वह ईरान के शाह **तहमस्प के दरबार में रहा** और वहीं चित्रकला के प्रति उसके रुझान का विकास हुआ। वह वहां की कला से इस कदर प्रभावित हुआ कि उसने ईरान के दो कलाकारों मीर सैयद अली और ख्वाजा अब्दुस समद से **अपने** लिए पांडूलिपियां तैयार करने के लिए निवेदन किया। भारत लौटने पर हुमायूं उन्हें अपने साथ लेता आया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सादी का बोस्तान

नेमतनामा

मुगलकालीन चित्रकला के विकास में हुमायूं का योगदान महत्वपूर्ण है। हुमायूं के शासनकाल में मुगल चित्रकला की कई **महत्वपूर्ण विशेषताओं का उद्भव हुआ। तैमूर घराने के** राजकुमार शीर्षक से बनाया गया चित्र हुमायूं के काल की अनुपम देन है। यह 1550 ई. के आसपास बनाया गया था। इसे कपड़े पर बनाया गया है। इसकी लंबाई 1.15 वर्ग मीटर है। ईरानी चित्रकला में भी इतना लंबा चित्र मिलना अपवाद था। ऐसा माना जाता है कि यह मंगोल परम्परा की देन है जिसमें वे अपने तम्बुओं पर चित्र बनाया करते थे।

34.3 अकबर के शासनकाल में मुगल शैली का विकास

अकबर का कलाओं के प्रति अत्याधिक रुझान था। मुगल चित्रकला का अन्य शैलियों से भिन्न एक अलग स्कूल के रूप में स्थान प्राप्त करना अकबर की इसी रुचि का परिणाम था।

चित्रकला पर अकबर के विचार

किसी चीज की प्रतिकृति बनाने को तस्वीर कहते हैं। महामहिम ने अपनी युवावस्था से ही इस कला के प्रति गहरी रुचि दिखाई थी और इसे सभी प्रकार का प्रोत्साहन दिया था, क्योंकि वे उसे अध्ययन के साथ-साथ तृप्ति का साधन भी मानते थे। इस प्रकार यह कला फलने-फूलने लगी और कई चित्रकारों ने खूब नाम कमाया। **दरोगा** और लिपिक महामहिम के समक्ष प्रत्येक सप्ताह विभिन्न चित्रकारों के चित्र पेश किया करते थे, उसके बाद वे (अकबर) उन्हें उनके कार्य के अनुसार पुरस्कार देते थे या वेतन में प्रतिमाह वृद्धि करते थे। चित्रकारी के लिए आवश्यक सामग्री में (इस समय) काफी प्रगति हुई। इन सामानों का मूल्य बड़ी सावधानी से आंका जाता था। रंग के मिश्रण की तकनीक में विशेष रूप से विकास हुआ था। इस प्रकार चित्रों की बनावट में अभूतपूर्व विकास हुआ। इस काल में बेहतरीन चित्रकार हुए और उनकी उत्कृष्ट कलाओं को यूरोप के **विश्वविख्यात** चित्रकारों की रचनाओं के समक्ष रखा जा सकता है। सूक्ष्मता से चित्रण, सुंदर बनावट और उन्मुक्त प्रस्तुति आदि से इस युग की चित्रकला अतुलनीय हो गई, चित्रकारों ने जड़ पदार्थ में भी जीवन डाल दिया। इस युग में सैंकड़ों चित्रकार चित्रकला के महारथी थे, अच्छे और उत्कृष्ट कलाकारों की संख्या काफी बड़ी थी। यह बात विशेषतः हिंदुओं के परिप्रेक्ष्य में सही है, उनके चित्र कल्पना के अनुपम नमूने हैं। पूरे विश्व में उन जैसे कम कलाकार ही पाए जाते हैं।

स्रोत : (अबुल फ़ज़ल, आइन-ए अकबरी)

MAADHYAM IAS

34.3.1 राजकीय चित्रशाला की स्थापना

अकबर के शासनकाल में पहला प्रमुख पांडुलिपी चित्रण **हमजा नामा** की चित्रकारी थी। इसकी शुरुआत 1562 में हुई जिसके लिए कई दरबारी चित्रकार नियुक्त किए गए।

चित्रकारों के कार्य करने के स्थान को तस्वीर खाना कहा जाता था। हालांकि अबुल फज़ल ने केवल सत्रह कलाकारों का उल्लेख किया है, परन्तु हमारी जानकारी के अनुसार यह संख्या काफी बड़ी थी। एस.पी. वर्मा (**आर्ट एंड मैटीरियल कल्चर इन द पेंटिंग्स ऑफ अकबर्स कोर्ट** विकास प्रकाशन, नई दिल्ली 1978) ने अकबर की शिल्पशाला में काम करने वाले 225 कलाकारों की सूची तैयार की है। ये कलाकार कई जगहों से आए थे परन्तु इनमें हिंदुओं की संख्या अधिक थी। एक रोचक तथ्य यह है कि निम्न जाति के कलाकारों को भी उनकी प्रतिभा के आधार पर राजकीय कलाका का दर्जा दिया गया था। इस दृष्टि से पालकी ढोने वाले कहार के बेटे दसवंत का उल्लेख विशेष रूप से किया जाना चाहिए। कलाकारों की सहायता के लिए अनेक मुलम्मासाजी करने वाले और पृष्ठ तैयार करने वाले होते थे। कलाकार नक़द वेतन प्राप्त कर्मचारी थे। एस.पी. वर्मा का मानना है कि शिल्पशाला में न्यूनतम वेतन 600 से 1200 दाम (40 **दाम** = 1 रुपया) थी।

कुछ चित्रों पर दो चित्रकारों के नाम पाए गए हैं। यहां तक कि कभी-कभी तीन चित्रकार मिलकर एक चित्र बनाते थे। **अकबरनामा** का एक चित्र चार चित्रकारों ने मिलकर बनाया था। इस प्रकार चित्रकला एक सामूहिक कार्य के रूप में भी सामने आती है। चित्र का आरेख निर्माण और रंगाई, चित्रकारों के दो अलग-अलग समूहों द्वारा की जाती थी। **जहाँ तीन कलाकार** काम कर रहे होते थे, वहां एक कलाकार बाहरी रूपरेखा बनाता था, दूसरा इसके चहेरे को और तीसरा बाकी हिस्से को रंगता था। हमें इस बात का पता नहीं है कि वह जटिल कार्य किस ढंग से सम्पन्न होता था। संभवतः इस प्रकार के दल में आरेखन और रंगाई अलग-अलग कलाकारों द्वारा की जाती होगी।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है लिपिकों की सहायता से **दरोगा** शिल्पशाला की देखरेख करता था। कलाकारों को चित्रकारी का सामान उपलब्ध कराना और उनके कार्य की प्रगति पर नजर रखना उसका मुख्य दायित्व था। वह समय-समय पर सम्राट के सामने कलाकारों की कृतियों को पेश किया करता था।

34.3.2 शैली और तकनीक

अकबर के दरबार में बनाए गए चित्र मुगल कला की प्रतिनिधि रचाएं हैं परन्तु इस कला की शैली और तकनीक में बराबर विकास होता रहा। आरंभिक चरण के चित्रों पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट है, जिसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

- सममिति संघटन,
- आकृतियों की प्रतिबंधित गतिशीलता,
- चित्रों की रेखाओं की उत्कृष्टता,
- स्थापत्यगत स्तंभों का सतही चित्रण, और
- भवनों का आलंकारिक चित्रण।

बाद में चित्रकला ने अपना एक विशेष स्वरूप निर्मित किया। मुगलकला का वह रूप ईरानी और भारतीय परम्पराओं से निर्मित हुआ जिसमें यूरोपीय प्रभाव की भी थोड़ी बहुत झलक देखने को मिलती है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

34.3.3 मूलभूत विशेषताएं

अकबर द्वारा शिल्पशाला स्थापित किए जाने के पन्द्रह वर्षों के भीतर मुगल शैली की अपनी पहचान बन गई। अगले एक दशक में अर्थात 1590 तक इसने एक विशेष स्वरूप ग्रहण कर लिया जिसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :

- प्रकृतिवाद और लय,
- प्रतिदिन प्रयोग किये जाने वाले भारतीय परिधानों का चित्रण,
- प्रमुख चित्र की पृष्ठभूमि में कई उप दृश्यों का चित्रण,
- अभूतपूर्व क्रियाशीलता तथा अत्याधिक गतिशीलता, तथा
- फूल-पत्तियों और पेड़-पौधों का अद्भुत चित्रण।

यहां इस तथ्य पर बल दिया जाना चाहिए कि अकबर के काल में निखरी चित्रकला में भारतीय और ईरानी शैली का तो समन्वय था ही साथ ही साथ इसकी अपनी मौलिकता भी थी। इन चित्रों में गति और क्रिया का विशेष महत्व है जो न तो भारतीय पूर्व मुगलकालीन कला में मिलता है और न ही ईरान में ही ऐसी कला का प्रचलन था (**आर्ट एंड कल्चर**, सं.ए.जे.कैसर और एस.पी.वर्मा, जयपुर, 1993)।

अकबर के काल में बने चित्र ऐतिहासिक विषयवस्तु के कारण फारसी परम्परा के साथ-साथ भारतीय शैली से भी अपनी विशिष्टता प्रदर्शित करते हैं। मुख्य रूप से प्रयुक्त दो विषयवस्तु हैं:

तूतीनामा

तारीख-ए खानदान-ए तैमूरिया

MAADHYAM IAS

बाबरनामा

- दरबार की प्रतिदिन की घटनाओं का चित्रण, और
- छवि चित्रण।

हालांकि ईरान में छवि चित्रण बनाने की परम्परा थी परन्तु ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण का आयाम बिल्कुल नया था। घटना ऐतिहासिक हो या चित्रकार की शुद्ध कल्पना, शिकार या युद्ध के दृश्यों का अंकन करते समय चित्रकार एक बने बनाए सूत्र का प्रयोग करता था जैसा कि 1580 के आसपास चित्रांकित किए गए **तैमूरनामा** में किसी खास घटना का चित्रण करते हुए भी चित्रकार घटना से असंबद्ध दिखाई देता है। इसमें कलाकारों ने अपने मन में पूर्व स्थापित परिकल्पना के अनुसार किलों का आकार, नदी पार करने, दर्शकों अथवा युद्ध संबंधी दृश्यों का चित्रण किया है। **अकबरनामा** में भी कलाकारों ने इन दृश्यों की नकल की है या उन्हें अपने अनुसार ढ़ाल लिया है। कोई दृश्य पहले से उपलब्ध न होने की स्थिति में चित्रकार ही एक दृश्य की योजना करता प्रतीत होता है और कुछ चित्रकार इस प्रकार के नूतन प्रयोग करने में सक्षम दिखाई देते हैं।

हमने यहां ऐतिहासिक क्रम में इस काल में चित्रांकित प्रमुख ग्रंथों का उल्लेख किया है।

ग्रंथ	**तिथि**
हमजानामा	: लगभग 1562-1580 ई.
अनवार ए सुहेली	: 1570 ई.
तूतीनामा	: लगभग 1570-1580 ई.
तारीख ए खानदान ए तैमूरिया	: लगभग 1570-1590 ई.
बाबरनामा	: लगभग 1570-1600 ई.
अकबरनामा	: लगभग 1570-1600 ई.
तारीख ए अल्फी	लगभग 1570-1600 ई.
रज्मनामा	: 1582 ई.

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

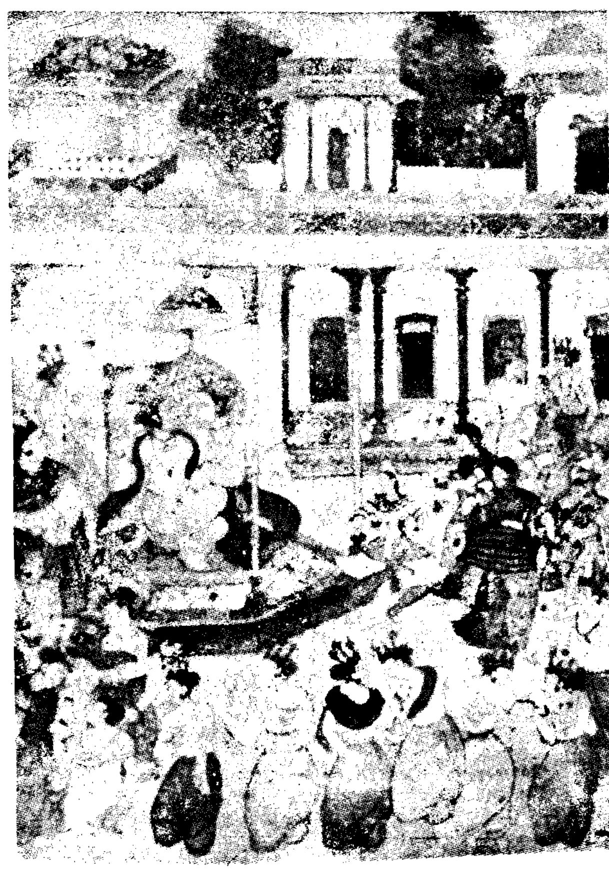

रज्मनामा : पांडव दरबार

अकबरनामा : इमारत का निरीक्षण करते हुए सम्राट अकबर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बोध प्रश्न 1

1) आरंभिक मुगल शासकों के अधीन चित्रकला के विकास पर 50 शब्दों में टिप्पणी कीजिए?

....
....
....
....
....

2) राजकीय शिल्पशाला में चित्रकारों द्वारा सामूहिक चित्रण की अवधारणा का वर्णन कीजिए।

....
....
....
....
....

3) मुगलकालीन शैली की चार विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....
....
....

34.4 जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में विकास

जहांगीर और शाहजहां के काल में मुगलकालीन चित्रकला अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई। जहांगीर जब राजकुमार था तब से ही वह चित्रकारी में रुचि रखता था। अकबर की विशाल शिल्पशाला से अलग उसकी अपनी चित्रशाला थी। जहांगीर शिकार के दृश्यों, पक्षियों और फूलों की चित्रकारी पसंद करता था। उसने छवि चित्रण की परम्परा भी जारी रखी। शाहजहां के समय की चित्रकारी में रंगों की चमक बढ़ गई और अलंकरण के लिए सोने का उपयोग होने लगा। आगे आने वाले उपभागों में हम जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में मुगल चित्रकला की नयी शैलियों और विषयगत विविधताओं का अध्ययन करेंगे।

34.4.1 नई शैलियों का उदय

जहांगीर के शासनकाल (1605-27) में छवि चित्रण की तुलना में पांडुलिपि चित्रण का महत्व कम हो गया। एम.सी.बीच (**मुगल एंड राजपूत पेंटिंग**, कैम्ब्रीज विश्वविद्यालय प्रेस, 1992) के अनुसार जहांगीर चित्रकारी में व्यक्तिगत रुचि लेता था और उसका हस्तक्षेप राजकीय चित्रशाला के कार्यकलापों में भी था। स्पष्टत: कला संबंधी निर्णय स्वयं सम्राट के होते थे। परिणामस्वरूप चित्रकला में वह अपने द्वारा प्रतिपादित शैली का समावेश कर सका। 17 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल चित्रकला की शैली में दो नये तत्व शामिल हुए, ये इस प्रकार हैं।

- जहांगीर की चित्रकला में रूपवादी शैली की प्रधानता है। इसमें चित्र को यथार्थवादी बनाने और समकालीन यथार्थ को हू-ब-हू चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है।
- इस काल के चित्रों में चौड़े हाशिए का प्रयोग किया गया, जिन्हें फूल-पत्तियों, पेड़ पौधों और मनुष्य की आकृतियों से भव्य रूप में अलंकृत किया गया है।

34.4.2 विषयगत भिन्नताएं

जहांगीर प्रकृति प्रेमी था। जब भी वह अनूठे जानवर या पक्षी देखता था तो उसका कलाकार मन तत्काल उसे चित्रित कराने के लिए बेचैन हो उठता था। उसके जमाने में पक्षियों और पशुओं का बड़ा ही जीवंत चित्रण हुआ है।

MAADHYAM IAS

शाहजहां स्थापत्य कला का महान संरक्षक था, परन्तु उसने चित्रकला की भी उपेक्षा नहीं की। उसके समय में भी छवि चित्रण बनाये जाते थे, चित्रों का संग्रह तैयार किया जाता था और पांडूलिपि चित्रण बनाये जाते थे। इसके अलावा प्रणय दृश्यों और महिलाओं के चित्र भी बनने लगे। इस काल की चित्रकला में पशु के अध्यारोपण और कलाबाजी के दृश्यों को भी स्थान मिला।

जहाँगीर का छवि चित्र

शाहजहाँ का छवि चित्र

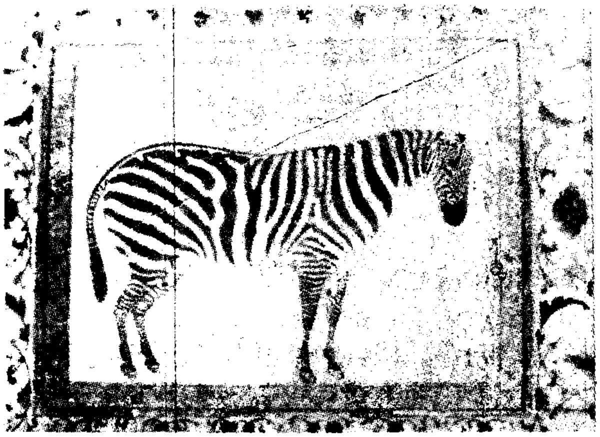

प्राकृतिक चित्रकला : मंसूर द्वारा चित्रित ज़ीब्रा

34.4.3 अंतिम चरण

शाहजहां के उत्तराधिकारी औरंगजेब के काल में कलाएं उपेक्षित रहीं। चित्रकारी पूरी तरह रुकी नहीं परन्तु इसे सम्राट का संरक्षण प्राप्त होना समाप्त हो गया और उसका क्षेत्रवादी स्वरूप सीमित हो गया। राजपूत राजाओं के दरबारों में कुलीनों और उनके संबंधियों के छवि चित्रण बनाए जाते रहे। चित्रकला संबंधी राजपूतों के अनेक दस्तावेज (**तस्वीरखाना** दस्तावेज) राजस्थान के राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में आज भी उपलब्ध हैं। वहां मुगल सम्राट के अभियान संबंधी कुछ रोचक चित्र रखे हुए हैं। इन चित्रों में चित्रकार की कला उत्तम है परन्तु अब चित्रकारी औपचारिकता मात्र रह गई और उसमें पहली जैसी जीवंतता नहीं रह गई।

MAADHYAM IAS

बाद में मौहम्मद शाह (1719-48 ई.) के शासनकाल में प्रणय के आकर्षक दृश्यों की चित्रकारी शुरू हुई। परन्तु इस समय तक राजकीय चित्रशाला के अधिकांश चित्रकार प्रांतीय शासकों के दरबारों में जा चुके थे। मुगल कला के पतन से प्रांतीय शैली को लाभ पहुंचा।

34.5 मुगल चित्रकला पर यूरोप का प्रभाव

इस इकाई में पहले ही मुगल चित्रकला की मिली-जुली प्रकृति का उल्लेख किया जा चुका है। अपने बाद के चरण में, विशेषकर 17 वीं शताब्दी के दौरान मुगल चित्रकला पर यूरोपीय कला का प्रभाव दिखाई देता है। मुगल चित्रकारों ने यूरोप की चित्रकला से विषयवस्तु के साथ-साथ तकनीक को भी अपनाया। ए.जे.कैसर के अनुसार मुगल चित्रकार यूरोपीय चित्रकला की नकल किया करते थे और कभी-कभी इसे पुनर्व्याख्यायित भी किया करते थे। इसके साथ-साथ यूरोप के चित्रकारों के चित्रों के संग्रह जहांगीर, दाराशिकोह और कई मुगल कुलीनों के पास मौजूद थे (ए.जे. कैसर, **इंडियन रेसपोंस टु यूरोपीयन टेक्नॉलाजी एंड कल्चर**, 1982)।

यूरोपीय चित्र जब मुगल दरबार में लाये गए तो आरंभ में बहुत से चित्रकार इसकी नकल करने की ओर प्रवृत हुए। समकालीन यूरोपीय यात्री बताते हैं कि इस प्रकार की नकल में एक प्रकार की सहजता थी। परन्तु मुगल चित्रकारों ने यूरोपीय चित्रकला की विषयवस्तु को अपनाकर नए प्रयोग भी किए।

मुगल चित्रकला में त्रिआयामी चित्रों का भी विशेष महत्व है। स्पष्टतया इन पर यूरोपीय तकनीक का प्रभाव है। मुगल चित्रकारों ने यूरोपीय चित्रकला के प्रकाश और छाया के प्रभाव को अंकित करने की शैली भी अपनाई। इनका उपयोग अधिकतर रात के दृश्यों के अंकन के लिए होता था। प्रभा मंडल, परों वाले देवदूत और गरजते बादलों का अंकन भी यूरोपीय चित्रकला के प्रभाव का प्रतिफलन था। परन्तु यूरोप की महत्वपूर्ण तैल चित्रकला की तकनीक की ओर मुगल आकृष्ट नहीं हुए। अतैव इस काल में तैल चित्रों का सर्वथा अभाव रहा।

बोध प्रश्न 2

1) **17 वीं शताब्दी के दौरान मुगल चित्रकला में हुए विषयगत परिवर्तनों का वर्णन कीजिए।**

....

....

....

....

2) **किस मुगल शासक एवं राजकुमार ने यूरोपीय चित्रों का संग्रह बनाया था?**

....

....

....

....

3) **मुगल चित्रकारों ने यूरोपीय चित्रकला के किन-किन भावों को अपनाया?**

....

....

....

....

मुगल शैली पर यूरोपीय प्रभाव

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

34.6 दक्खन में चित्रकला

मुगल चित्रकला के विकास से पहले ही 13 वीं शताब्दी के अंत में दक्खन में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा राज्यों में चित्रकला की एक विशिष्ट शैली का उदय हो चुका था। परन्तु दक्खनी राज्यों में विकसित इस चित्रकला को 16 वीं शताब्दी में सबसे ज्यादा संरक्षण प्राप्त हुआ। 17 वीं शताब्दी में ही मुगल परंपरा के प्रभाव में यह दक्खनी शैली अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई। यहां हम 16 वीं-17 वीं शताब्दी में दक्खनी चित्रकला के विकास को समझने का प्रयास करेंगे।

34.6.1 दरबारी संरक्षण

बहमनी राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों ने चित्रकला को विशेष संरक्षण प्रदान किया। इन राज्यों के तहत की गई आरंभिक चित्रकारी 1565-69 के बीच के काल की है। इस चित्रकला के नमूने हमें **तारीफ़-ए-हुसैन शाही** के चित्रण में मिलते हैं जिसका निर्माण और चित्रण अहमदनगर में किया गया था। इसी समय बीजापुर में 1570 ई. के आसपास एक और दक्खनी पाण्डुलिपि का निर्माण और चित्रण हुआ। यह चित्रित पुस्तक **नुजूम-उल-उलूम** है। संभवतः इसका निर्माण अली आदिल शाह के संरक्षण में हुआ, जिसके दरबार में अनेक चित्रकार कार्यरत थे। लेकिन बीजापुर की परंपरा में और संभवतः बहमनी राज्य के सभी उत्तराधिकारी राज्यों के शासकों में इब्राहिम आदिल शाह (1580-1627) का नाम सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है जो स्वंय एक सिद्ध चित्रकार था। 16 वीं शताब्दी के अंत में अहमदनगर

और बीजापुर में **रागमाला** के नाम से चित्रकला की एक नयी परम्परा का उदय हुआ। इब्राहिम आदिल शाह के संरक्षण में यह परम्परा अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई।

दक्खनी चित्रकला का एक और प्रकार विकसित हुआ जिसमें राजकीय जुलूसों को भव्यता के साथ प्रस्तुत किया गया। इस प्रकार के कई चित्र गोलकुंडा के अब्दुल्ला कुतुब शाह (1626-72 ई.) के काल तक मिलते हैं।

18 वीं शताब्दी में हैदराबाद के आसफ जाही राजवंश के संरक्षण में दक्खनी चित्रकला फली-फूली। पक्षी का शिकार कर लौटते हुए और गोलकुंडा किले के समीप अपने खुशनुमा बगीचे में जाते आजम शाह और निजाम के दरबार के एक कुलीन हिक्मतयार खां का अपना चित्र संग्रह आदि, हैदराबाद की दक्खनी चित्रकारी के कुछ ज्वलंत उदाहरण हैं।

34.6.2 शैली और विषय

दक्खनी परम्परा के निर्माण के क्रम में उस पर कई परम्पराओं का प्रभाव पड़ा। दक्खनी राज्यों के कई शासक ईरानी चित्रकला के प्रशंसक थे और उनके पास चित्रों के अच्छे संग्रह थे। अतः उनके दरबारों में की गई चित्रकारी पर ईरानी शैली का प्रभाव स्पष्ट है। परन्तु यह समझ लेना चाहिए कि इस प्रभाव को ग्रहण करने में कोई एकरूपता और अनुशासन नहीं था। परिणामस्वरूप ईरानी चित्रकला के कई गुणों की बारीकी इनमें नहीं आ पाई। दक्खनी चित्रकला पर मुगल चित्रकला का भी प्रभाव था। दक्खनी और मुगल परम्पराओं के बीच संपर्क कई तरह से स्थापित हुआ। दोनों दरबारों के बीच चित्रकारों के साथ-साथ चित्रों का भी आदान-प्रदान हुआ।

दक्खनी चित्रकला पर बाहरी तत्वों का प्रभाव था परन्तु केवल इसी के आधार पर इनका मूल्यांकन करना संगत नहीं है। दक्खनी चित्रकला के सर्वश्रेष्ठ नमूनों में बाहरी तत्वों के समावेश के फलस्वरूप दर्शन का पुट तथा मौलिकता स्पष्टतः दिखाई देती है। दक्खनी चित्रकला की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं :

- क्रमिक संरचना अर्थात मुख्य आकृति गौण आकृतियों से बड़ी होती थी,
- रंगपट्टिका की सम्पन्नता जिसमें सफेद और सुनहरे रंगों का उपयोग किया जाता था, ऐसा उदाहरण अन्य भारतीय लघु चित्रों में नहीं मिलता है,
- खास गहनों, जैसे हार की पट्टिका का चित्रण,
- खासकर नारी चित्रों के निर्माण में कमरबंद और दुपट्टे में अतिशयोक्तिपूर्ण भंवर, तथा
- विभिन्न कोणों का निर्माण इस प्रकार किया जाता था कि मुख्य आकृति के चारों ओर मेहराब बन जाती थी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

रागमाला चित्रकला : तोड़ी रागिनी : दक्खन शैली

रागमाला चित्रकला : भैरव रागिनी : पूजा करती हुई स्त्री

34.7 राजपूत चित्रकला

राजस्थानी चित्रकला का सौन्दर्य बोध भिन्न था। आनन्द के. कुमारस्वामी के अनुसार इस शैली का उदय पूर्ववर्ती प्राक तुर्की परम्पराओं से हुआ और 1600 ई. के आसपास यह अपनी सम्पूर्णता पर पहुंच गया। आरंभ में इसने व्यापक जीवंतता का परिचय दिया हालांकि बाद में इसने मुगल प्रभाव को ग्रहण कर लिया। मुगल सत्ता के बिखरने के बाद यह पुनर्जीवित हुआ और विभिन्न राजपूत राज्यों के संरक्षण में फलने-फूलने लगा। आगे हम राजस्थानी कला की मुख्य शैली और विषयों के साथ-साथ 17 वीं-18 वीं शताब्दी के दौरान इसके कला केन्द्रों की भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

34.7.1 शैली और विषय

आरंभ से ही राजस्थानी चित्रकला में प्रकृति चित्रण का विशेष महत्व रहा। चित्रों में मुख्य भूमिका प्रकृति की ही होती थी, मनुष्य पूरक के रूप में होता था। इन चित्रों में चित्रित प्रकृति के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं :

- विभिन्न प्रकार के पेड़;
- सघन पुष्प गुच्छों का चित्रण;
- गाते पक्षी और उछल-कूद करते पशु;
- कमल के फूल से आप्लवित नदियां; और
- नीले आसमान से गिरती वर्षा की बूंदे।

रंगों की बहुलता राजस्थानी चित्रकला की महत्वपूर्ण विशेषता है। बादलों के लिए नीला रंग, कड़कती बिजली के स्वर्णिम रंग, और वनस्पति के लिए हरे रंग का उपयोग किया जाता था। इस क्षेत्र के चित्रकारों ने मुख्य रूप से निम्नलिखित विषयों का चुनाव अपने चित्रण में किया है :

- शिकार का दृश्य;
- छवि चित्रण; और
- संगीत की ऋतुएं।

17वीं शताब्दी की राजस्थानी चित्रकला में चित्रों को विभिन्न खानों में बांटा जाता था जिसमें स्थान विशेष को विकल कोणों और झुकानों में विभक्त किया जाता था और इनका उपयोग आकृतियों और समूहों के रूप में होता था।

34.7.2 मुख्य केन्द्र

क) **मेवाड़ स्कूल** : राजस्थानी चित्रकारों के समूह में निसारदीन (1606 ई.) का घराना सर्वप्रथम घराना माना जाता है। बाद में साहिबदीन ने 1627 और 1648 ई. के बीच इसी परम्परा को आगे बढ़ाया। इस काल में मेवाड़ स्कूल अपने उत्कर्ष पर पहुंच गया। सैंकड़ों की तादाद में चित्र श्रृंखलाएं बनाई गईं जिनमें मिथकों के साथ-साथ जीवन के व्यापक आयामों का चित्रण किया गया। जगत सिंह प्रथम (1628-52 ई.) के संरक्षण में **नायक भेद नामक** लंबी चित्र श्रृंखला बनाई गई। कई चित्रकारों ने मिलकर इस काव्यात्मक और भावनात्मक शैली में प्रस्तुत किया। परन्तु अगले पचास वर्षों में मेवाड़ की कला में मुगल कला का प्रभाव बढ़ता गया और यह नीचे दबती चली गई।

ख) **बूंदी स्कूल** : इसका इतिहास भी समानान्तर रूप से चलता है। परन्तु इसके इतिहास में (1620-35 ई. और 1680-1700 ई.) इन दो कालों का विशेष महत्व है। 18वीं शताब्दी के दौरान बूंदी कला में एक नया मोड़ आया। हालांकि विषय और तकनीक में यहां मुगल

मेवाड़ शैली

MAADHYAM IAS

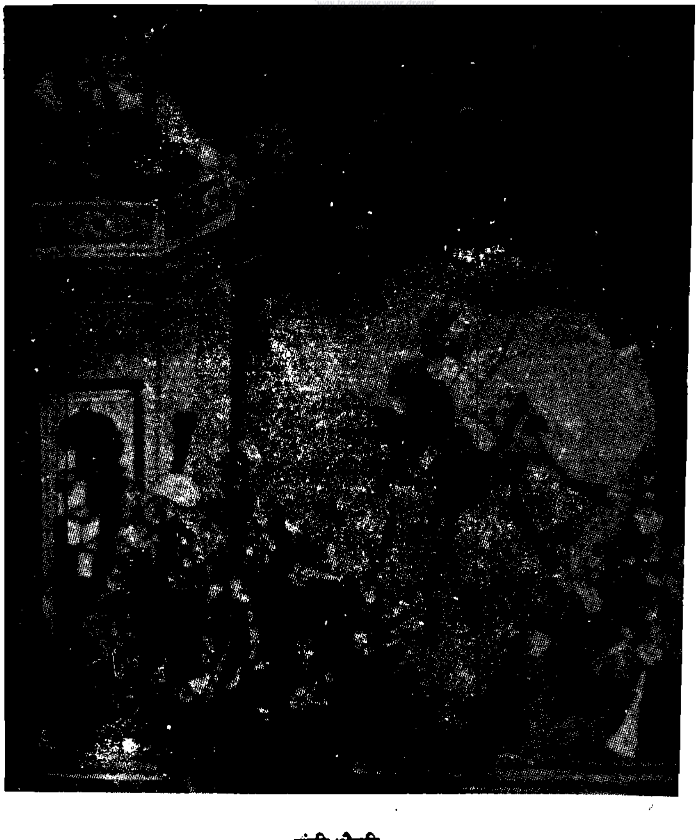

बूंदी शैली

कला का अनुसरण ही किया गया परन्तु अभिव्यक्ति शैली इनकी अपनी रही। नारी के सौंदर्य चित्रण पर विशेष बल दिया जाने लगा।

ग) **किशनगढ़ स्कूल** : किशनगढ़ स्कूल में संगीतबद्धता और संवेदनात्मकता थी। 18वीं शताब्दी के प्रांरब्ध (1699-1764 ई.) में नागरी दास के नाम से प्रसिद्ध महाराजा सांवत सिंह ने इसे प्रोत्साहन दिया। हालांकि राजस्थान के सभी दरबारों में पनपी चित्रकलाओं पर मुगल काल का प्रभाव था परन्तु किशनगढ़ की कला में हिन्दु भक्ति का तत्व बचा रहा। सांवत सिंह के संरक्षण में राधा-कृष्ण के प्रेम को आधार बनाकर अनेक चित्र बनाए गए। किशनगढ़ के चित्रों में कुशल कलाकार निहाल चंद के चित्र अनुपम हैं। किशनगढ़ की नारी की तीखी नाक, गोल आंखे और धनुषाकार मुख के चित्रण से राजस्थानी चित्रकला में एक नई परम्परा का आरंभ हुआ।

किशनगढ़ शैली

34.8 मुगलकालीन ललित कलाएं

16 वीं-18 वीं शताब्दी में मुगलों के द्वारा शासित क्षेत्र की अपेक्षा प्रान्तीय क्षेत्रों में ललित कला का ज्यादा विकास हुआ। परन्तु ललित कलाओं के ऐतिहासिक विकास की सूचना कम ही मिलती है। आगे जो वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है वह इधर-उधर बिखरी छुट-पुट सूचनाओं पर आधारित है।

34.8.1 संगीत

इस काल में क्षेत्रीय राज्य संगीत अध्ययन और विकास के केन्द्र बन गए। दक्षिण भारत में 16 वीं शताब्दी के आसपास जनक और जन्य रागों जैसे मूल और मूलाश्रित रागों का प्रचलन था। इसका सर्वप्रथम उल्लेख **स्वरमेल कलानिधि** नामक ग्रंथ से मिलता है। इसका लेखन 1550 ई. में कोर्डबिदु (आन्ध्र प्रदेश) के रामामात्य नामक लेखक ने किया था। इसमें 20 **जनक** और 64 **जन्य** रागों का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् सोमनाथ ने 1609 ई. में **रागविबोध** की रचना की जिसमें उत्तर भारत की कुछ शैलियों का समावेश किया गया है। 17 वीं शताब्दी के मध्य में तंजाउर में बेंकटामकिन ने **चतुरबंडी** प्रकाशिका नामक एक प्रमुख विवेचना संगीत पर लिखी (लगभग 1650 ई.)। यह पुस्तक कर्नाटक संगीत का आधार

ग्रंथ बन गई। उत्तर भारत का संगीत मुख्यतः भक्ति आंदोलन से प्रभावित था। 16 वीं शताब्दी के संत कवियों की रचनाएं अधिकांशतः संगीत पर आधारित होती थीं। स्वामी हरिदास ने वृंदावन में संगीत को खूब बढ़ावा दिया उन्हें अकबर के प्रसिद्ध दरबारी संगीतकार तानसेन का गुरु भी माना जाता है। तानसेन स्वयं उत्तर भारतीय संगीत का महान उद्गाता था। उसे **मियां की मल्हार, मियां की तोडी,** और **दरबारी** जैसे कुछ प्रमुख रागों का जन्मदाता माना जाता है। ग्वालियर के राजा मान सिंह (1486-1517 ई.) ने उत्तर भारत के संगीत की एक प्रमुख शैली ध्रुपद के विकास और परिष्कार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

18 वीं शताब्दी में मुगल सम्राट मौहम्मद शाह के दरबार में संगीत की उत्तर भारतीय शैली को अद्भुत प्रोत्साहन मिला। उसके दरबार के दो संगीतकार, सदारंग और अदारंग **ख्याल** गायकी के महान प्रवर्तक थे। इसी समय **तराना, दादरा** और ग़ज़ल जैसे संगीत के नए रूप सामने आए। इसके अतिरिक्त दरबारी संगीत में लोक संगीत को भी शामिल किया गया। इस श्रेणी में **ठुमरी** और टप्पा का उल्लेख किया जा सकता है। **ठुमरी** में लोक संगीत के मानदंडों का उपयोग होता है और **टप्पा** पंजाब के ऊँटवानों द्वारा गाये जाने वाले संगीत से विकसित हुआ।

एक बात गौर करने की है कि दक्षिण संगीत काफी कुछ नियमबद्ध और ग्रंथाधारित था परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में इस परंपरा का अभाव होने से इसमें काफी स्वच्छंदता पाई जाती थी। इस कारण उत्तर भारत में विभिन्न रागों को मिला कर अनेक प्रयोग किए गए। आज भी उत्तर भारतीय संगीत में यह उदारता मौजूद है।

34.8.2 नृत्य और नाटक

मध्यकालीन नृत्य और नाटक के संबंध में तत्कालीन ग्रंथों में बहुत कम वर्णन मिलता है। संगीत, नृत्य और नाटक तथा सृजनात्मक साहित्य की प्रमुख पुस्तकें भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में मुख्य स्रोत के रूप में उपलब्ध हैं।

इससे संबंधित पुस्तकें मुख्य रूप से उड़ीसा, दक्षिण भारत और मुगल सम्राट मौहम्मद शाह के दरबार में संग्रहीत की गईं। उड़ीसा में 17 वीं शताब्दी के दौरान महेश्वर महापात्र और रघुनाथ द्वारा क्रमशः दो पुस्तकें **अभिनय चंद्रिका** और **संगीत दामोदर** की रचना की गई। दक्षिण भारत में **आदि भारतम, भारत रत्नय**, तुलाजराजा (1729-1735 ई.) कृत **नाटयवेदागम्** और बालराम बरमन (1753-1798 ई.) कृत **बलराम भारतम्** प्रमुख ग्रंथ हैं। मौहम्मद शाह के दरबार में नृत्य और संगीत पर **संगीत मलिका** नामक ग्रंथ लिखा गया।

MAADHYAM IAS

बोध प्रश्न 3

1) दक्खनी चित्रकला की मुख्य विषयवस्तु पर 50 शब्दों में टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

2) राजस्थानी चित्रकला में चित्रित प्रकृति-चित्रण के तीन तत्वों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

3) राजपूत चित्रकला के दो प्रमुख संरक्षण केन्द्रों का नाम बताइए?

....

....

....

....

....

34.9 सारांश

इस इकाई में आपने मुगलों के अधीन चित्रकला और ललितकला के विकास का अध्ययन किया। इस काल की कलाओं में कई प्रकार के तत्वों का मिश्रण हुआ। चित्रों में ईरानी प्रभाव के साथ-साथ देशी परम्पराओं का भी उपयोग हुआ। 17 वीं शताब्दी के दौरान इस पर यूरोपीय चित्रकला का भी प्रभाव पड़ा।

संगीत, नृत्य और नाटक को भी राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। तानसेन ने अकबर के दरबार की शोभा बढ़ाई और संगीत को असीम ऊंचाई तक पहुंचा दिया। तुलनात्मक दृष्टि से इस काल में नृत्य और नाटक का विकास आरंभिक अवस्था में था।

34.10 शब्दावली

भित्ति चित्र : दीवार पर बने चित्र।

पट्टिका : चित्रकारी के लिए चित्रकार द्वारा रंग रखने और मिलाने के लिए उपयोग की जाने वाली चौकोर पट्टिका।

आरेख : रेखा चित्र।

मुलम्मासाज : चित्रों के ऊपर सोने की एक लगभग पारदर्शी परत चढ़ाने वाले।

छवि चित्रण : विशिष्ट व्यक्तियों के चेहरे अथवा आदमकद शरीर का चित्रण।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

34.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 34.2.2
2) देखिए उपभाग 34.3.1
3) देखिए उपभाग 34.3.3

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 34.4.2
2) जहांगीर और दारा शिकोह। देखिए भाग 34.5
3) प्रभामंडल, परों वाले देवदूत और गरजते बादल। देखिए भाग 34.5

बोध प्रश्न 3

1) देखिए उपभाग 34.6.2
2) देखिए उपभाग 34.7.1
3) उदाहरणस्वरूप मेवाड़ और बूंदी। देखिए उपभाग 34.7.2

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

इरफान हबीब (संपादक)	:	**मध्यकालीन भारत**, प्रथम भाग
के.ए. नीलकंठ शास्त्री	:	**दक्षिण भारत का इतिहास**
जी.डी. शर्मा	:	**मध्यकालीन भारतीय सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक संस्थाएं**
ए.जे. कैसर	:	**इंडियन रेस्पांस टु यूरोपियन टैक्नॉलोजी**
पर्सी ब्राउन	:	**इंडियन पेंटिंग्स**
एम.बी. बीच	:	**मुगल एंड राजपूत पेंटिंग्स**
एम.पी. वर्मा	:	**आर्ट एंड मैटीरियल कल्चर इन द पेंटिंग्स ऑफ अकबर्स कोर्ट।**

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 35 मुगल साम्राज्य का पतन

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य
35.1 प्रस्तावना
35.2 साम्राज्य-केंद्रित दृष्टिकोण
  35.2.1 जागीरदारी संकट
  35.2.2 कृषि व्यवस्था का संकट
  35.2.3 "संकट" का पुनर्परीक्षण
35.3 क्षेत्र-केंद्रित दृष्टिकोण
  35.3.1 केंद्र-क्षेत्र संबंध
  35.3.2 क्षेत्रीय राजनीति का स्वरूप
  35.3.3 अवलोकन
35.4 सारांश
35.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

35.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

- आपको मुगल साम्राज्य के पतन से संबंधित प्रश्न से समग्र रूप में परिचित कराना है।
- मुगल साम्राज्य के पतन के विषय में मध्यकालीन भारत के विशेषज्ञों के विभिन्न दृष्टिकोणों के विषय में भी आप जान सकेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

35.1 प्रस्तावना

लगभग तीन शताब्दियों तक भारत के काफी बड़े भूभाग पर मुगल साम्राज्य का वर्चस्व बना रहा, पर अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इसकी शक्ति और प्रतिष्ठा में तेजी के साथ गिरावट आई। केवल साम्राज्य की राजनैतिक सीमाएँ ही कम नहीं हुईं बल्कि अकबर और शाहजहाँ द्वारा परिश्रमपूर्वक खड़ी की गई पूरी प्रशासनिक संरचना भी चरमरा गई। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही साम्राज्य के सभी भागों में स्वतंत्र राज्यों का उदय हो गया।

मुगल साम्राज्य के पतन और क्षेत्रीय राज्यों के उदय की प्रक्रिया को लेकर इतिहासकारों में खूब बहस चली है। मुगल इतिहास के किसी अन्य पक्ष के मुकाबले इस मुद्दे पर विद्वानों के बीच सबसे ज्यादा मतभेद हैं। मुगल साम्राज्य के पतन संबंधी ऐतिहासिक दृष्टिकोण को दो मुख्य हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है। पहला, मुगल केंद्रित दृष्टिकोण,.इसके तहत विद्वान मुगल साम्राज्य के पतन का कारण स्वयं साम्राज्य की संरचना और कार्यपद्धति में ढूंढते हैं। दूसरे दृष्टिकोण को क्षेत्र-केंद्रित दृष्टिकोण कह सकते हैं जिसके तहत साम्राज्य के पतन के कारणों को क्षेत्रीय समस्याओं और साम्राज्य के विभिन्न भागों में फैली अव्यवस्थाओं में ढूंढा जाता है।

35.2 साम्राज्य-केंद्रित दृष्टिकोण

मुगल साम्राज्य के पतन की साम्राज्य केंद्रित व्याख्या का विकास विभिन्न चरणों में हुआ है। आरंभ में विकसित सिद्धांतों में शासकों के व्यक्तित्व और उनकी नीतियों को जिम्मेदार ठहराया गया। विलियम इरविन और जदुनाथ सरकार ने इस काल का पहला विस्तृत इतिहास लिखा (डब्लू. इरविन, **द लैटर मुगल्स,** पुनप्रकाशन, नई दिल्ली 1971, जदुनाथ सरकार, **द फॉल ऑफ मुगल अम्पायर,** कलकत्ता, 1938, **हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, I-V**, कलकत्ता 1912, 1916, 1919 और 1924)। उन्होंने मुगल शासकों और उनके कुलीनों के चरित्र की गिरावट को मुगल साम्राज्य के पतन का जिम्मेवार ठहराया। सरकार ने इस काल के कानून और व्यवस्था का भी विश्लेषण किया है। इसके लिए उन्होंने औरंगजेब को प्रमुख रूप से दोषी माना है। उनके अनुसार औरंगजेब एक कट्टर धार्मिक व्यक्ति था। उसने धर्म के आधार पर कुलीनों और अधिकारियों के साथ भेदभाव अपनाया। इस नीति के कारण कुलीनों में गहरा असंतोष फैल गया। उनका कहना है कि औरंगजेब के उत्तराधिकारी और उनके कुलीन अपने पूर्वजों की छाया मात्र थे और इस प्रकार वे औरंगजेब के द्वारा की गई गलतियों को सुधारने में असक्षम थे।

35.2.1 जागीरदारी संकट

1959 में सतीश चन्द्र की पुस्तक "**पार्टिज एंड पॉलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट, 1707-40,** 1959 दिल्ली, 1982, (तीसरा संस्करण)" का प्रकाशन हुआ। इसमें पहली बार मुगल साम्राज्य की संरचना के अध्ययन का गंभीर प्रयास किया गया। साम्राज्य की प्रकृति और इसके पतन को समझने के लिए इसकी कार्यपद्धति और इसकी योजनाओं का परीक्षण किया गया। सतीश चन्द्र ने साम्राज्य की कुछ प्रमुख संस्थाओं का अध्ययन किया। उन्होंने मुख्य रूप से **मनसबदारी** और **जागीरदारी** व्यवस्था की छानबीन की। मुगल साम्राज्य में कुलीन मुख्य राज्य अधिकारी थे। मुगल पदानुक्रम व्यवस्था में उनके स्थान के अनुसार उन्हें पदवी दी जाती थी। इन पदवियों को मनसब कहते थे। **मनसब** प्राप्तकर्ताओं को **मनसबदार** कहा जाता था, उन्हें भूराजस्व (**जागीर**) के माध्यम से वेतन दिया जाता था। अन्य जिम्मेदारियों के अलावा मनसबदारों को एक फौज भी रखनी पड़ती थी। सैनिकों के वेतन की व्यवस्था और फौज का रखरखाव इस **जागीर** की आमदनी से ही होता था। ये सैनिक **मनसबदार** की ताकत के आधार थे और उसे भूराजस्व वसूल करने में भी मदद करते थे। राजस्व की उपलब्धता निर्धारित करना और मुगलों द्वारा उसे वसूल करना इस व्यवस्था के सुचारु रूप से चलाने के लिए अपरिहार्य थे। सतीश चन्द्र के अनुसार औरंगजेब के शासन के अंतिम वर्षों में मुगल प्रशासन **मनसबदार-जागीरदार** व्यवस्था को बनाए रखने में असफल सिद्ध हुआ। जैसे ही यह व्यवस्था अव्यवस्थित होने लगी वैसे ही साम्राज्य का अंत अवश्यंभावी हो गया।

अतहर अली ने 1966 ई. में अठारहवीं शताब्दी के अंत में कुलीन और उनकी राजनीति पर एक पुस्तक लिखी (एम. अतहर अली, **द मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगजेब,** बम्बई, 1966, पुन: प्रकाशन, 1970)। इस पुस्तक में दक्खन राज्यों के अधिग्रहण, मुगल कुलीन वर्ग में मराठों और दक्खनियों के समावेश और जागीरों में आई कमी जैसी समस्याओं का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। अतहर अली के अनुसार दक्खन और मराठा राज्य क्षेत्रों में इस साम्राज्य के विस्तार के कारण कुलीनों की संख्या तेजी से बढ़ी और इससे जागीर व्यवस्था की कार्य पद्धति में संकट उत्पन्न हो गया। दक्षिण के कुलीनों के समावेश के कारण जागीरों की कमी पड़ने लगी और अच्छी जागीरें प्राप्त करने के लिए कुलीनों में होड़ लग गई। इससे बहुत हद तक जागीरदारी पर आधारित राजनैतिक संरचना चरमराने लगी।

1969 में प्रकाशित अपने एक महत्वपूर्ण आलेख में प्रो. एस. नुरूल हसन ने बताया कि मुगल शासन के तहत कृषि संबंधों में ऊपर से नीचे तक पिरामिड की शक्ल में एक प्राधिकारी संरचना का विकास हुआ। इस संरचना के तहत विभिन्न प्रकार के अधिकार एक दूसरे के ऊपर अध्यारोपित किए गए। इसके परिणामस्वरूप राज्य की राजस्व मांग का सबसे अधिक बोझ किसानों पर पड़ा। अठारहवीं शताब्दी में मुगल सत्ता के पतन के साथ **जागीरों** पर दबाव बढ़ने लगा और कृषि व्यवस्था पर संकट छा गया।

नुरूल हसन के अनुसार एक वर्ग के रूप में जमींदार राज्य के प्रति काफी निष्ठावान थे। पर मुगल साम्राज्य में कृषि व्यवस्था का विकास इस रूप में हुआ कि उनके और राज्य के बीच और उनके अपने बीच के संघर्षों को नियंत्रित नहीं किया जा सका। इससे अक्सर कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा हुई और राज्य की शक्ति में भी ह्रास हुआ। औरंगजेब की मृत्यु और साम्राज्यी शक्ति के कमजोर होने के बाद यह संतुलन बिगड़ गया। इस स्थिति में जमींदारों को एक ऐसा वर्ग ही नियंत्रित कर सकता था जो जमींदारों की सहायता पर निर्भर नहीं था। इस समय तक ऐसे किसी समुदाय का उदय नहीं हो पाया था अत: कृषीय संबंध भी नहीं बदल सके। ऐसी स्थिति में व्यवस्था का पतन अवश्यंभावी था।

एस. नुरूल हसन, "जमींदार अंडर द मुगल्स" **लैंड कन्ट्रोल एंड सोशल स्ट्रक्चर इन इंडियन हिस्ट्री,** सं. आर. ई. फ्राइकेन बर्ग, मैडिसन, 1969।

35.2.2 कृषि व्यवस्था का संकट

सतीश चन्द्र की महत्वपूर्ण पुस्तक के प्रकाशन के बाद अनेक विद्वानों ने साम्राज्य के राजनैतिक पतन के कारणों का पता लगाने के लिए इसकी कार्यपद्धति के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना शुरू किया। अब कारणों की खोज व्यक्तियों और शासक की नीतियों के बजाए मुगल साम्राज्य के आधारभूत ढाँचे में की जाने लगी जिस पर मुगल साम्राज्य टिका हुआ था। इरफान हबीब ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक में साम्राज्य के पतन का गहराई में जाकर विश्लेषण किया। (**द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया,** नई दिल्ली, 1963) हबीब के अनुसार मुगलों द्वारा राजस्व की वसूली व्यवस्था में द्वेष अंतर्निहित थे। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बड़ी से बड़ी सेना रखने की कोशिश की जाती थी और इस कारणवश राजस्व की दर भी ऊँची से ऊँची रखे जाने की नीति अपनाई जाती थी। दूसरी तरफ कुलीन अपनी जागीरों से ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करना चाहते थे। उन्हें किसानों की बरबादी की कोई चिंता नहीं होती थी। उन्हें इस बात की भी परवाह नहीं होती थी कि क्षेत्र विशेष में अत्यधिक वसूली करने से कृषक बर्बाद हो सकते हैं और उस क्षेत्र से राजस्व वसूली की संभावना पूरी तरह समाप्त हो सकती है। कुलीनों का एक जागीर से दूसरी जागीर में स्थानांतरण होता रहता था, इस कारण वे कृषि संबंधी दूरगामी सुधारों में भी रुचि नहीं लेते थे। किसानों पर बोझ बढ़ता गया और उन्हें जीवनयापन की मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित होना पड़ा। इस अतिशय शोषण की प्रतिक्रिया में किसानों के पास विरोध के अलावा और कोई चारा नहीं रहा। मध्यकालीन भारत में इस प्रकार के ग्रामीण विरोधों के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। कई स्थानों पर किसान खेत छोड़कर भाग गए। दूसरे गांवों या शहरों में चले जाने के कारण पूरा का पूरा गांव वीरान हो जाता था। कभी-कभी किसान राजस्व देने से मना कर देते थे और मुगल सत्ता के खिलाफ उठ खड़े होते थे। हबीब के अनुसार इन किसान विरोधों के कारण साम्राज्य के राजनैतिक और सामाजिक तंतु कमजोर हुए।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

35.2.3 संकट का पुनर्परीक्षण

जे. एफ. रिचार्डस, एम. एन. पियरसन और पी. हार्डी भी साम्राज्य के पतन के कारणों में दक्खन और मराठों के मामलों में मुगलों के उलझने को एक महत्वपूर्ण स्थान देते थे। (**जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज़,** वर्ष 35, अंक 2, फरवरी 1976, पृ. 221-63)। पर साम्राज्य की प्रकृति के संबंध में अलीगढ़ के इतिहासकारों से उनका मतभेद है। पियरसन के अनुसार, मुगल शासन अप्रत्यक्ष था। लोगों का जीवन स्थानीय संबंधों और विधि विधाओं से संचालित होता था न कि राज्य नियंत्रण से। केवल कुलीनों की दृष्टि में ही मुगल साम्राज्य अन्य "आदिम जुड़ावों" से मुक्त था। ये कुलीन केवल संरक्षण के कारण ही साम्राज्य से जुड़े हुए थे और यह जुड़ाव सम्राट की "निरंतर सैन्य सफलता" पर आधारित होता था। पियरसन का मानना है कि मुगल राज्य में गैर व्यक्तिपरक नौकरशाही का अभाव था और यह स्थिति उसके लिए बहुत आशावादी नहीं थी। जैसे ही मुगल सेना की शक्ति कमजोर पड़ने लगी और साम्राज्य का विस्तार रुकने लगा साथ ही अधिक राजस्व प्रदान करने वाली जागीरों की कमी पड़ने लगी और मुगल साम्राज्य की व्यक्तिपरक नौकरशाही में दरार पड़ने लगी। निश्चित रूप से इससे मुगल व्यवस्था के लिए खतरा उत्पन्न हो गया।

1970 के आसपास जे. एफ. रिचार्ड्स ने मुगल पतन के इन सिद्धांतों पर नई दृष्टि से विचार किया जो **बेजागीरी** (जागीरों की अनुपस्थिति) को मुगल साम्राज्य के पतन का मूल कारण मानते हैं। गोलकुंडा के अभिलेखागार से प्राप्त अनेक दस्तावेजों के आधार पर उन्होंने इस मत का खंडन किया है कि दक्खन में जागीरों की कमी थी जिसके कारण **बेजागीरी** उत्पन्न हुई और मुगल साम्राज्य का पतन हुआ।

रिचर्डस के अनुसार जागीरदारी संकट प्रमुख रूप से प्रशासकीय और प्रबंधकीय स्तर का था। उनका मानना है कि औरंगजेब के शासन काल के उत्तरार्द्ध में दक्खन राज्यों के अधिग्रहण से साम्राज्य के राजस्व स्रोतों में बढ़ोत्तरी अवश्य हुई पर इससे कहीं ज्यादा कुलीनों की संख्या बढ़ गई। कर्नाटक और मराठों के विरुद्ध निरंतर युद्ध के खर्च को पूरा करने के लिए औरंगजेब ने अधिकांश समृद्ध **जागीरों** को **खालसा** भूमि में परिणत कर दिया। इसके कारण **पायबाकी जागीरों** (वह भूमि जो जागीर में दिये जाने के लिये आरक्षित रखी जाती थी) की कमी हो गई। अत: यह संकट प्रशासनिक था और **बेजागीरी** के कारण उत्पन्न नहीं हुआ था। 1980 के आसपास सतीश चंद्र ने अपने शोध द्वारा **बेजागीरी** की समस्या को कुछ हद तक सुलझाया। उन्होंने कुछ नए स्रोतों और दस्तावेजों के आधार पर **बेजागीरी** और **जागीरदारी** में संकट के बीच स्पष्ट अंतर स्थापित किया। उनके मतानुसार शासकीय वर्ग के बढ़ने और जागीर से होने वाली आय में निरंतर गिरावट के कारण **जागीर** व्यवस्था का संकट पैदा नहीं हुआ। वस्तुत: सुचारु रूप से कार्य न कर पाने के कारण ही **जागीर** व्यवस्था में संकट पैदा हुआ। सतीश चन्द्र के अनुसार **जागीरदारी** के सुचारु रूप से कार्य न कर सकने की पृष्ठभूमि पर विचार करने के पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज को समझना आवश्यक है।

किसानों, जमींदारों और **मनसबदार/जागीरदार** के त्रिध्रुवीय संबंधों पर मुगल साम्राज्य का आधार टिका हुआ था। **मनसबदार/जागीरदार** द्वारा जमींदारों से भूराजस्व वसूल करने और किसानों या **रैय्यत** को खेती में संलग्न रखने में जागीर व्यवस्था की सफलता निहित थी। इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए **जागीरदार** के पास अच्छी फौज होनी चाहिए थी। इस फौज के रखरखाव के लिए उसमें अपनी **जागीर** से आवश्यक राजस्व और संसाधन जुटाने की क्षमता होनी चाहिए थी।
जागीरदार-जमींदार-किसान के इस नाजुक संतुलन को अव्यवस्थित करने वाला कोई भी कारण साम्राज्य को पतन की ओर ले जा सकता था।

MAADHYAM IAS

सतीश चन्द्र के अनुसार 17वीं शताब्दी में व्याप्त सामाजिक संघर्षों को मुगल अपने वर्गीय संबंधों के बृहद् ढाँचे के अंदर सुलझा न सके और इसके कारण वित्तीय संकट उत्पन्न हुआ और जागीर व्यवस्था में भी संकट बढ़ा क्योंकि ये एक दूसरे से जुड़े हुए थे। साम्राज्य के इतिहास के आरंभ में ही इस जागीर व्यवस्था में संकट के लक्षण उत्पन्न होने लगे थे। जहांगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में गंगा-यमुना दोआब के उपजाऊ क्षेत्र के बाहर साम्राज्य के विस्तार होने से यह संकट उभर कर सामने आ गया। शाहजहां के शासनकाल के अंत में जागीर भूमि के **जमा** (आकलित राजस्व) और **हासिल** (वास्तविक रूप में वसूला गया राजस्व) का अंतर सुस्पष्ट हो गया था। अगर कोई **मनसबदार** अपनी **जागीर** से एक वर्ष के राजस्व में से पांच महीने के बराबर का राजस्व वसूल कर लेता था तो वह भाग्यवान समझा जाता था। इसी वसूली के अनुसार उसे सवारों की संख्या भी घटानी पड़ती थी। दक्खन में यह वसूली और भी कम थी। वहां तीन महीने के बराबर का राजस्व वसूल हो पाता था और इसी तरह वहां के **जागीरदार** का प्रभाव भी कम था। जैसे ही **जागीरदार** की सैन्य शक्ति में कमी आई वैसे ही त्रिध्रुवीय संबंध छिन्न भिन्न हो गया और इस पर आधारित साम्राज्य भरभराकर गिर गया।

सतीश चंद्र के अनुसार **जागीरदारी** व्यवस्था का यह संकट कृषि और गैर कृषि अर्थव्यवस्था को तेजी से विकसित करके रोका जा सकता था। शासकों और कुलीनों के लिए व्यापार अतिरिक्त आय का साधन था। यहां हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि क्या कुलीन अपने संचित धन को नियमित रूप से व्यापार में निवेशित करते थे या कुछ अमीर लोग वैभव की जिंदगी बसर करने के लिए कभी कभी व्यापार कर लेते थे? मुगल कालीन व्यापारियों और राजनीति पर हुए अध्ययनों से यह ज्ञानकारी मिलती है कि अखिल भारतीय स्तर पर एक वर्ग के रूप में व्यापारी इतने शक्तिशाली नहीं थे कि वे राज्य सत्ता में हिस्सेदारी का दावा कर सकें। मुगल भारत में कमोवेश व्यापार और राजनीति अलग-अलग क्षेत्र रहे। कृषि क्षेत्र में हुआ विकास भी इससे बहुत भिन्न नहीं था। कई कारणों से राज्य ने छोटे किसानों की

अर्थव्यवस्था को ही प्रोत्साहन दिया। अतः **खुद काश्त** भूमि धारकों (समृद्ध किसानों) को भाड़े के मजदूरों की सहायता से खेती नहीं करने दी जाती थी तथा **पाही** किसानों (मध्य स्तर के किसान जिनके पास अपनी भूमि नहीं होती थी और ये अपने उत्पादन के औजारों के साथ एक गांव से दूसरे गांव जाते थे) को हटाकर अपनी खेती का विस्तार नहीं करने दिया गया। कुछ अमीर किसान सूद पर कर्ज दिया करते थे या गरीब किसानों की जमीन को बंधक रखकर उन्हें बटाईदार बना देते थे। अतः ये समृद्ध किसान बिचौलिए जमींदार या महाजन (अनाज व्यापारी तथा ऋणदाता) बनकर अपनी स्थिति सुधार सकते थे। इन कारणों से संभवतः कृषि अर्थव्यवस्था का विकास धीमा रहा और यह **जागीरदारी** संकट को टालने में असमर्थ रही। सतीश चन्द्र पुनः कहते हैं कि **जागीरदारी** संकट का मूलभूत आधार उस मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में निहित है जिसके कारण कृषि का विकास सीमित रहा। इसी संरचना पर प्रशासनिक व्यवस्था आधारित थी और दोनों के बीच क्रिया प्रतिक्रिया होती रहती थी। इसके अलावा शासकीय वर्ग का बढ़ता आकार, कुलीनों की जीवन शैली में बढ़ता आडंबर परिणामस्वरूप उत्पादन के विस्तार के लिए उपलब्ध अधिशेष में कमी और इसके कारण धीमा आर्थिक विकास आदि इस संकट को विकट बनाने में पूरक तत्व का कार्य कर रहे थे। (सतीश चन्द्र, **मेडिवल इंडिया : सोसाइटी द जागीरदारी क्राइसिस एंड द विलेज,** दिल्ली, 1982)।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों पर विचार करते हुए यह भी कहा गया है कि परम्परागत रूप से गैर राजनैतिक समझा जाने वाला समुदाय अठारहवीं शताब्दी में राजनीति में हिस्सा लेने लगा। कैरन लियोनार्ड के अनुसार "देशी बैंकिंग संस्थाएँ मुगल राज्य के अपरिहार्य मित्र थे, तथा प्रमुख कुलीन जरूरत से ज्यादा इन संस्थाओं पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर थे।" 1650-1750 के काल में जब इन बैंकिंग संस्थाओं ने "अपने आर्थिक और राजनैतिक सहयोग की दिशा" क्षेत्रीय राजनीति और शासकों के साथ साथ बंगाल में इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर मोड़ दी तो दिवालिएपन की स्थिति उत्पन्न हो गई, राजनैतिक संकटों का सिलसिला शुरू हो गया और साम्राज्य का पतन हो गया (कैरन लियोनार्ड, 'द "ग्रेट फर्म" थ्योरी ऑफ द डिक्लाइन ऑफ द मुगल अम्पायर', **कम्पेरेटिव स्टडीज इन सोसाइटी एंड हिस्ट्री,** वर्ष 21 अंक 2, अप्रैल 1979, पृ. 161-7)

मुगल राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं के वर्तमान उपलब्ध अध्ययन लियानार्ड के निष्कर्ष को कोई खास समर्थन प्रदान नहीं करते। फिलिप कैलकिन्स और एम. एन. पियर्सन ने क्रमशः बंगाल और गुजरात पर शोध करते हुए राजनीति में व्यापारियों के हिस्सा लेने के कुछ प्रमाण प्रस्तुत किए हैं (फिलिप सी कैलकिन्स, "द फॉर्मेशन ऑफ ए रीजनली ओरिएंटेड रूलिंग ग्रुप इन बंगाल", **जरनल ऑफ एशियन स्टडीज,** वर्ष 29 अंक 4, अगस्त 1970, एम. एन. पियर्सन, **मर्चेन्ट्स एंड रूलर्स इन गुजरात,** कैलिफोर्निया, 1976)। पर पियर्सन खुलकर यह नहीं कहता है कि मुगल वित्तीय व्यवस्था व्यापारियों के ऋण पर आधारित थी। कैलकिन्स ने एक खास काल और क्षेत्र तक अपने को सीमित रखकर अपनी सामान्य धारणा प्रतिपादित की थी। लियोनार्ड ने भी कैलकिन्स और पियर्सन द्वारा उपयोग में लाए गए स्रोतों का ही इस्तेमाल किया था। लियोनार्ड का निष्कर्ष बहुत स्वीकार्य नहीं लगता क्योंकि इस संदर्भ में कोई नये प्रमाण नहीं मिलते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) मुगल साम्राज्य के पतन के कारण के रूप में जागीरदारी संकट का आधारभूत तर्क क्या है?

....

....

....

....

....

2) "कृषि व्यवस्था के संकट" पर चार पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

3) जागीरदारी संकट के संदर्भ में जे. एफ. रिचार्ड्स के मुख्य तर्क का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

35.3 क्षेत्र-केंद्रित दृष्टिकोण

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

मुजफ्फर आलम और चेतन सिंह ने अपनी कृतियों में मुगल साम्राज्य के पतन की व्याख्या करते हुए क्षेत्र केंद्रित दृष्टिकोण अपनाया है। (एम. आलम, **द क्राइसिस ऑफ अम्पायर इन मुगल नार्थ इंडिया, अवध एंड द पंजाब 1707-1748,** नई दिल्ली 1986; चेतन सिंह, **रीजन एंड एम्पायर, पंजाब इन द सेवेंटींथ सेंचुरी,** नई दिल्ली 1991)। मुजफ्फर आलम ने मुगल काल के पंजाब और अवध के सूबों में हुई गतिविधियों का तुलनात्मक अध्ययन किया है जबकि चेतन सिंह ने 17वीं शताब्दी के पंजाब के क्षेत्रीय इतिहास का गहराई से अध्ययन किया है।

ये अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इनमें मुगल साम्राज्य की प्रकृति और इसके लगातार कमजोर होते जाने की प्रक्रिया और अंततः 17वीं के अन्त और आरंभिक 18वीं शताब्दी में इसके पतन पर प्रकाश डाला गया है।

35.3.1 केंद्र-क्षेत्र संबंध

आलम ने **सूबा** अवध को मुगल राज्य का क्षेत्रीय प्रारूप मानकर मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों की तलाश करने की कोशिश की है। आलम बताते हैं कि मुगल साम्राज्य विभिन्न स्तरों पर संघर्षरत समुदायों और विभिन्न देशी सामाजिक राजनैतिक व्यवस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करने वाली एजेंसी के रूप में कार्य करता था। एक अर्थ में साम्राज्य का आधार निषेधात्मक था, इसकी शक्ति स्थानीय समुदायों की अपने सीमित क्षेत्रों से बाहर बढ़कर स्वयं को संगठित करने की असमर्थता से प्रभावित होती थी। मुगलकालीन भारत में हुए राजनैतिक एकीकरण में एक हद तक कई दोष अंतर्निहित थे विभिन्न सामाजिक समुदायों का नेतृत्व करने वाले स्थानीय नेता अपने स्वार्थों और राजनैतिक समीकरण के लिए काफी हद तक कुछ शर्तों के साथ केंद्र से जुड़े हुए थे। ये स्थानीय नेता यह जानते थे कि वे अपने बल पर कुछ नहीं कर सकते थे। इसी कारण से कुलीन अपनी शक्ति और पद के लिए सीधे सम्राट से जुड़े हुए थे और स्वयं सम्राट सीधे उनकी नियुक्ति करता था। उनके पास कोई अनुवांशिक सम्पदा और अधिकार नहीं थे और वे अपने उत्तराधिकारियों के लिए भी कुछ छोड़ने की स्थिति में नहीं थे। साम्राज्य उनके संसाधनों की जांच और नियमन करता था। वे एक प्रकार से मुगल सम्राट के प्रतिनिधि होते थे। **जागीर** स्थानांतरण की नीति का मुख्य उद्देश्य उन पर नियंत्रण रखना और साम्राज्यी संगठन को मजबूत करना था। पर इससे कुलीनों को असुविधा हुआ करती थी और वे इसका विरोध करते थे। 17वीं शताब्दी

के दौरान मुगल साम्राज्य के कई क्षेत्रों में इस व्यवस्था का भली प्रकार कार्यान्वयन नहीं हो सका। स्थानीय संभ्रांत (जमींदार) और कुलीन, ग्राम और कस्बा आधारित **मदद ए माश** प्राप्तकर्ता (ऐसे विद्वजन जिन्हें मुगल सम्राटों द्वारा राजस्व मुक्त भूमि प्रदान की जाती थी) और विभिन्न क्षेत्रों और स्थानीय समुदायों से बड़ी संख्या में आए निचले स्तर के अधिकारी साम्राज्य के ढाँचे में एक दूसरे से गहरे रूप में जुड़े हुए थे। **मदद ए माश** भूमि विभिन्न जमींदारी क्षेत्रों में फैली हुई थी। इसका उद्देश्य साम्राज्य के दूर दराज के ग्रामीण इलाकों तक साम्राज्य के लिए कुछ प्रभाव क्षेत्रों का निर्माण करना था। सम्राटों का यह मानना था कि **मदद ए माश** प्राप्तकर्ता विद्रोही जमींदारों की शक्ति पर नियंत्रण रखने में सहायता कर सकेंगे और इस प्रकार साम्राज्य की सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था में संतुलन बना रहेगा।

आलम का मानना है कि आरंभिक 18वीं शताब्दी में मुगल व्यवस्था ज़मींदारों, **जागीरदारों, मदद ए माश** प्राप्तकर्ताओं और अवध के **शेखजादों** जैसे स्थानीय प्रभावशाली तत्वों पर निगाह और नियंत्रण न रख सकी और परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। 18वीं शताब्दी के आरंभ में अपना अस्तित्व स्थापित करने के लिए कुलीनों में जमींदारों से स्वतंत्र राजनैतिक गठबंधन करने की प्रवृत्ति बढ़ी। इसके अलावा मुगल सत्ता के विभिन्न भागीदार (जमींदार, **मदद ए माश** प्राप्तकर्ता आदि) एक दूसरे के अधिकारों और इलाकों को हड़पने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार की घटनाएँ बिल्कुल नई नहीं थीं परंतु साम्राज्य के उत्कर्ष की अवधि में यह नियंत्रण में रहे। इन्हें नियंत्रण में रखने के लिए कभी सैन्य बल की सहायता ली जाती थी और कभी कभी एक समुदाय के बीच दूसरे समुदाय को बसा दिया जाता था (उदाहरणस्वरूप अवध की जमींदारों के आस-पास **मदद ए माश** प्राप्तकर्ताओं को राजस्व का आवंटन)।

आलम मुख्य रूप से यह विश्लेषित करना चाहते हैं कि 18वीं शताब्दी के आरंभ में सामाजिक और राजनैतिक संतुलन किस प्रकार बिगड़ गया? दूसरे शब्दों में किन कारणों से 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। उनका मानना है कि 17वीं शताब्दी के अन्त और 18वीं शताब्दी के आरंभ में अवध और पंजाब में निश्चित आर्थिक विकास देखने को मिलता है। आलम का अध्ययन सतीश चंद्र और अन्य विद्वानों के अठाहरवीं शताब्दी के अंत के वित्तीय संकट के विचार के बिल्कुल विपरीत दृश्य उपस्थित करता है। मुगल सत्ता से जुड़े और साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने वाले सामाजिक समुदाय इन क्षेत्रों में हुई आर्थिक प्रगति से लाभ उठाने लगे। उनमें से कई लोगों ने इसकी सहायता से अपनी ताकत बढ़ाई और दूसरों के अधिकारों और विशेषाधिकारों को हड़पने का प्रयत्न करने लगे। इन गतिविधियों से साम्राज्य का राजनैतिक ढाँचा ढहने लगा। निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए मुजफ्फर आलम कहते है कि अवध और पंजाब में हुए एक प्रकार के राजनैतिक रूपांतरण और एक नई सूबेदारी के तत्वों के उदय और विन्यास में मुगल साम्राज्य के पतन के बीज मौजूद थे। वस्तुत: यह उस पतन की अभिव्यक्तियाँ थीं। इन दोनों प्रांतों में स्वतंत्र क्षेत्रीय इकाइयों के रूप में उदय होने के सभी तत्व मौजूद थे। पर पंजाब में इससे अव्यवस्था फैली पर अवध में एक स्थाई शासन की नींव रखी गई।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

35.3.2 क्षेत्रीय राजनीति का स्वरूप

मुगल साम्राज्य के पतन की व्याख्या करने के लिए मुजफ्फर आलम ने 18वीं शताब्दी की क्षेत्रीय गतिविधियों पर नजर डाली। यही दृष्टिकोण चेतन सिंह ने भी अपनाया। उनकी पुस्तक **रीजन एंड एम्पायर** में मुगलकालीन उत्तर भारत के क्षेत्रीय इतिहास पर एक नई दृष्टि डाली गई है। इसमें मुगल राजनीति के साथ-साथ समग्र पश्चिम एशिया में आए व्यापक राजनैतिक बदलाव के संदर्भ में मुगलकालीन पंजाब सूबा के इतिहास का अध्ययन किया गया है। उनका मानना है कि निस्संदेह मुगलकालीन प्रशासनिक ढाँचा क्षेत्रों को मुगल प्रशासन से जोड़ता था पर इस प्रकार के परम्परागत एकीकरण की अपनी कुछ समस्याएँ थीं। स्थानीय समाज और राजनीति में कई प्रकार के तनाव होते थे और इससे निपटने के लिए प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा मुगल सरकारी व्यवस्था के बनेबनाए प्रशासनिक विभाजनों और उपविभाजनों का अतिक्रमण भी कर लिया जाता था। आम प्रशासन और राजस्व प्रशासन दोनों क्षेत्रों में व्यावहारिक जरूरतों के कारण ऐसा करना पड़ता था। स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों की कार्यपद्धति तथा राजस्व व्यवस्था पर स्थानीयता का असर होता था। समय बीतने के साथ-साथ राजस्व प्रशासन में कुछ प्रथाएँ और रिवाज मान्य हो गए और उनसे नियम और कानून विकसित हुए जिन्होंने मुगल साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान किया।

चेतन सिंह के अनुसार 17वीं शताब्दी के अंत में सिंधु नदी में गाद जमा होने से पंजाब का जल मार्ग बुरी तरह बाधित हुआ। इससे पंजाब की वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा असर पड़ा। समकालीन तुर्की में राजनैतिक उथलपुथल, इरान के शाह का कांधार पर कब्जा और मुगलों द्वारा इसे प्राप्त करने के प्रयत्न के कारण थल मार्ग भी अवरुद्ध हो गया। इसी समय उत्तर-पश्चिम पंजाब में यूसूफजई विद्रोह (1667) और आफ़रीदी विद्रोह (1678) भी हुआ। सिंह का मानना है कि इन राजनैतिक गड़बड़ियों का असर पंजाब के समाज और अर्थव्यवस्था पर पड़ा। इनसे व्यापार बाधित हुआ और धीरे-धीरे वाणिज्यिक कृषि पर आधारित पंजाब की अर्थव्यवस्था नष्ट हो गई।

पंजाब में सामाजिक आर्थिक ढाँचे के कमजोर पड़ते ही सामाजिक विक्षोभ पैदा होने लगा। हालांकि सिंह का मानना है कि पंजाब में हर जगह आर्थिक विकास एक समान नहीं था अत: आर्थिक दृष्टि से विकसित और सम्पन्न इलाकों में ही आंदोलन हुए क्योंकि व्यापार के ह्रास से इन्हीं इलाकों पर सीधा प्रभाव पड़ा था। इन्हीं इलाकों में सिख विद्रोह अधिक हुए। अत: उनका निष्कर्ष है कि पंजाब में उत्पन्न सामाजिक विक्षोभ और अंतत: साम्राज्य से उसका संबंध विच्छेद एक लंबी प्रक्रिया का परिणाम था। 18वीं शताब्दी के पहले से, जब मुगल साम्राज्य राजनैतिक रूप से कमजोर होना शुरू नहीं हुआ था, ये प्रक्रियाएँ धीरे धीरे एक निश्चित गति से अग्रसर हो रही थीं।

यहीं पर साम्राज्य के संकट के जटिल प्रश्न को सिंह के अध्ययन ने एक नया आयाम दिया। मुजफ्फर आलम मुगल प्रांत अवध और पंजाब का मुगल साम्राज्य से संबंध विच्छेद की प्रक्रिया का आरंभ 18वीं शताब्दी की शुरुआत से मानते हैं जबकि सिंह का मानना है कि यह प्रक्रिया साम्राज्य के उत्कर्ष काल में भी चल रही थी। इस प्रकार पंजाब के क्षेत्रीय इतिहास के दृष्टिकोण से साम्राज्य के पतन को देखने पर अलग तस्वीर उभर कर आती है। विभिन्न सूबों ने केवल विभिन्न कारणों से ही साम्राज्य से अपने को अलग नहीं कर लिया बल्कि अक्सर यह संबंध विच्छेद राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों से उत्पन्न होता था जिस पर मुगल साम्राज्य का कोई नियंत्रण नहीं था।

35.3.3 अवलोकन

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

मुगल साम्राज्य के विभिन्न प्रांतों और क्षेत्रों में व्याप्त समस्याओं की एक व्याख्या प्रस्तुत करना कठिन है। इन्हीं कारणों से मुगल साम्राज्य के पतन का कोई एक कारण नहीं बताया जा सकता है। मुगल साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में मुगल साम्राज्य के पतन संबंधी किसी एक दृष्टिकोण को ग्रहण करना कठिन है। मुगल साम्राज्य केंद्र और क्षेत्र के आपसी संबंध पर टिका हुआ था। 18वीं शताब्दी के आरंभ में यह समझौता टूटने लगा। साम्राज्य के कई हिस्से अपने विकास के मार्ग स्वयं प्रशस्त करने लगे। अठारहवीं शताब्दी के क्षेत्रीय इतिहास से पता चलता है कि वर्तमान सामाजिक ढाँचे के अंदर ही विकास की संभावनाओं की खोज शुरू हो गई थी। स्पष्ट रूप से मुगल साम्राज्य के पतन का क्षेत्रीय इतिहास का दृष्टिकोण सम्पूर्ण भारत में मुगल साम्राज्य के पतन का कोई एक कारण नहीं मानता है। मुगल साम्राज्य केंद्र और क्षेत्रीय इलाकों के समझौते पर आधारित था। ये क्षेत्र मुगल साम्राज्य से केवल प्रशासनिक तौर पर नहीं जुड़े हुए थे। विजेता और विजित के बीच आर्थिक और सांस्कृतिक सम्मिलन भी हुआ था। इसी आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग पर मुगल ढाँचा आधारित था।

विभिन्न क्षेत्र मुगल साम्राज्य से इन कई बंधनों से जुड़े हुए थे। 17वीं शताब्दी के दौरान मुगलकालीन भारत में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन आने से इस गठबंधन पर प्रभाव पड़ना अपरिहार्य था। विभिन्न क्षेत्रों पर विभिन्न तरीकों से प्रभाव पड़ा। कुछ क्षेत्रों ने अपने संबंध मुगल केंद्रीय सत्ता से तोड़ लिए जबकि अन्य ने यह बनाए रखे। यह बात तर्क संगत प्रतीत होती है कि मुगल साम्राज्य के विकेन्द्रीकरण के समय विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियों ने केंद्र से पृथक होने के अलग-अलग तरीके अपनाए। निश्चित रूप से साम्राज्य के पतन की मुगल केंद्रित विचारधारा के विपरीत, मुगल साम्राज्य का ह्रास एक अधिक जटिल प्रक्रिया थी।

बोध प्रश्न 2

1) मुगल साम्राज्य के पतन के विषय में मुजफ्फर आलम के विचारों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में सिन्धु नदी के जल मार्ग के बन्द होने का पंजाब की आर्थिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

....

35.4 सारांश

प्रारंभ में यह मत स्वीकार्य था कि मुगल साम्राज्य के पतन में प्रशासनिक अव्यवस्था एक प्रमुख कारण था। इस अव्यवस्था ने **जागीर** व्यवस्था में संकट को जन्म दिया जो अंततः क्षेत्रीय शक्तियों के उदय में सहायक हुआ। बाद में आर्थिक ढाँचे के अध्ययन से यह मत सामने आया कि साम्राज्य कृषि व्यवस्था के संकट की ओर बढ़ रहा था और इससे आर्थिक ढाँचा प्रभावित हो रहा था। इससे जाटों, सतनामियों और सिखों का विद्रोह सामने आया जिसने साम्राज्य की नींव हिला दी। पर मुगल साम्राज्य के पतन के संदर्भ में कोई ऐसी व्याख्या नहीं विकसित की जा सकी है जो सभी प्रांतों और क्षेत्रों में लागू हो सके। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में संभवतः मुगल व्यवस्था को संभालकर रखने वाला संतुलन बिगड़ गया। इसके बाद इस व्यवस्था के विभिन्न अंगों का पुनर्गठन होने की प्रक्रिया शुरू हो गई जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्य का अंत और क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ।

MAADHYAM IAS

35.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) **जागीरों** की संख्या में कमी होने के कारण नये कुलीन वर्ग के बीच इन्हें आवंटित करने की समस्या पैदा हो गई। विवरण के लिए 35.2.1

2) देखिए उपभाग 35.2.2

3) देखिए उपभाग 35.2.3

बोध प्रश्न 2

1) उनका मानना था कि राज्य के विभिन्न सुविधाभोगियों मसलन **जमींदार जागीदार, शेखजादा** आदि के आपसी संतुलन और नियंत्रण को बनाए रखने में मुगल राज्य असक्षम हो गया था। इसी कारण से मुगल साम्राज्य का पतन हुआ। विस्तार के लिए उपभाग 35.3.1 देखिए।

2) देखिए उपभाग 35.3.2

इकाई 36 क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

इकाई की रूपरेखा

36.0 उद्देश्य
36.1 प्रस्तावना
36.2 क्षेत्रीय शक्तियों के उदय संबंधी ऐतिहासिक दृष्टिकोण
36.3 उत्तराधिकारी राज्य
- 36.3.1 अवध
- 36.3.2 बंगाल
- 36.3.3 हैदराबाद

36.4 नये राज्य
- 36.4.1 मराठा
- 36.4.2 पंजाब
- 36.4.3 जाट राज्य

36.5 स्वतंत्र राज्य
- 36.5.1 मैसूर
- 36.5.2 राजपूत राज्य
- 36.5.3 केरल

36.6 क्षेत्रीय शक्तियों की प्रकृति
36.7 सारांश
36.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

36.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- क्षेत्रीय राजनैतिक शक्तियों के उत्कर्ष के पूर्व की परिस्थितियों का उल्लेख कर सकेंगे;
- मुगल साम्राज्य के पतन के बाद उभरने वाले विभिन्न प्रकार के राज्यों पर प्रकाश डाल सकेंगे; और
- क्षेत्रीय शक्तियों की कार्यपद्धति और कमजोरियों को रेखांकित कर सकेंगे।

36.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई में हम 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य के पतन की चर्चा कर चुके हैं। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद स्वतंत्र क्षेत्रीय राज्यों का उदय इस काल की महत्वपूर्ण घटना है। हालांकि समकालीन फारसी कृतियों और आरंभिक अंग्रेज इतिहासकारों में इस पहलू को नजरअंदाज करने की प्रवृत्ति मिलती है। उनका उद्देश्य मुगल साम्राज्य के पतन को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाना और ब्रिटिश शासन की स्थापना का गुणगान करना है। 18वीं शताब्दी पर हुए समकालीन शोधों से इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ कि 18वीं शताब्दी के भारत का अध्ययन एक साम्राज्य के पतन या औपनिवेशिक शासन के आरंभ के रूप में नहीं किया जाना चाहिए बल्कि इस काल पर इनसे हटकर विचार किया

जाना चाहिए। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस इकाई में अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में क्षेत्रीय राजनैतिक शक्तियों के उदय के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाएगा।

36.2 क्षेत्रीय शक्तियों के उदय संबंधी ऐतिहासिक दृष्टिकोण

मुगल प्रशासनिक व्यवस्था पर विचार करते हुए (खंड 4) हमने मुगलकालीन प्रांतीय प्रशासन व्यवस्था की व्याख्या की थी। स्वतंत्र क्षेत्रीय शक्तियों के विकास के संदर्भ में 18वीं शताब्दी के दौरान मुगल प्रांतीय राजनैतिक व्यवस्था की बनावट को समझना आवश्यक है। इससे हमें क्षेत्रीय शक्तियों के उदय की प्रवृत्ति और इस प्रकृति को पहचानने में मदद मिलेगी। मुगल शासन की प्रकृति केंद्रान्मुख थी। कुलीनों, जमींदारों, जागीरदारों और प्रांतीय पदाधिकारियों को अधीनस्थ रखने में ही सम्राट और साम्राज्य की सफलता निहित थी। वस्तुत: यहां सम्राट (जो हमेशा मजबूत स्थिति में होता था) और अन्य शक्तियों के बीच हितों और आकांक्षाओं का संतुलन और समन्वय होता था। यह कहा जाता है कि औरंगजेब की मृत्यु के बाद स्थिति में परिवर्तन होने लगा। कई कारणों से मुगल सम्राट की शक्ति क्षीण होती गई।

दीवान (राजस्व प्रशासन का प्रमुख) और **नाजिम** (सूबेदार या कार्यकारी प्रधान) दो सर्वप्रमुख अधिकारी थे। दोनों को सीधे सम्राट नियुक्त करता था और उनके द्वारा प्रांतों पर नियंत्रण रखा जाता था। इसके अतिरिक्त **आमिल, फौजदार, कोतवाल,** आदि जैसे पदाधिकारी भी सम्राट द्वारा ही नियुक्त किए जाते थे। प्रांतीय गवर्नर भी सम्राट की कृपा पर ही अपने पद पर बने रहते थे। इस प्रकार नियुक्तियों पर नियंत्रण रख सम्राट अप्रत्यक्ष रूप से प्रांतीय प्रशासन पर नियंत्रण रखता था।

दुर्भाग्यवश केंद्रीय प्रशासन में हमेशा वित्तीय संकट बना रहा और कुलीन आपसी गुटों के संघर्षों में उलझे रहे। इस परिस्थिति में सम्राट इस संकट को रोक नहीं पाए। वह प्रांतीय गवर्नरों को अपेक्षित संरक्षण प्रदान करने में भी नाकाम रहे। इसके परिणामस्वरूप 18वीं शताब्दी के आरंभ में ये प्रांतीय गवर्नर अपनी स्वतंत्र शक्ति विकसित करने का आधार खोजने लगे। इस प्रवृत्ति का संकेत इस तथ्य से मिलता है कि वे सम्राट की पूर्व अनुमति के बिना ही स्थानीय नियुक्तियाँ करने लगे थे और प्रांतों में वंशगत शासन की स्थापना का प्रयत्न करने लगे। इस काल के दौरान मुगल सम्राट के प्रति वे सैद्धांतिक रूप से समर्पित रहे और नजराने भेजते रहे पर इन प्रांतीय गवर्नरों ने वस्तुत: प्रांतों पर अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम कर ली थी। यहां तक कि दक्खन, राजपूताना, आदि जैसे स्वायत्त राज्यों (जो मुगलों के सीधे नियंत्रण में नहीं थे पर मुगल सत्ता को स्वीकार करते थे) ने भी साम्राज्य से संबंध विच्छेद कर लिया। 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगलों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नियंत्रण वाले प्रांतों में स्वतंत्रता की आकांक्षा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही थी। इस काल में उदित होने वाले राज्यों को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

- मुगल साम्राज्य से अपने को पृथक कर के बने स्वतंत्र राज्य;
- मुगलों के खिलाफ विद्रोहियों द्वारा स्थापित नए राज्य; और
- स्वतंत्र राज्य।

आगे आने वाले भागों में हम इन राज्यों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

36.3 उत्तराधिकारी राज्य

अवध, बंगाल और हैदराबाद उत्तराधिकारी राज्य की श्रेणी में आते हैं। ये तीनों प्रांत प्रत्यक्ष रूप में मुगल प्रशासन के नियंत्रण में थे। इन राज्यों ने मुगल सम्राट की प्रभुसत्ता को चुनौती नहीं दी पर इनके गवर्नरों

MAADHYAM IAS

ने व्यावहारिक तौर पर स्वतंत्र और वंशगत सत्ता की स्थापना की और उस क्षेत्र के सभी पद और अधिकारी उसके नियंत्रण में आ गए। यह सब इन राज्यों में स्वायत्त राजनैतिक शक्तियों के उदय की ही अभिव्यक्ति थी। वृहद् मुगल संस्थागत ढाँचे के तहत एक नई राजनैतिक व्यवस्था का उदय हुआ।

36.3.1 अवध

सआदत खाँ 1722 ई. में अवध का **सूबेदार** बना। वह साम्राज्य की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की आकांक्षा रखता था। अपनी इस योजना में असफल होने के बाद उसने अवध को स्वतंत्र राजनैतिक शक्ति के रूप में उभारना शुरू किया। मुगल साम्राज्य की शक्ति के ह्रास से उसे अपनी इच्छा पूरी करने का मौका मिल गया। अवध का **सूबेदार** बनने के बाद उसे अवध के स्थानीय सरदारों और राजाओं के विद्रोहों का सामना करना पड़ा। अपनी स्थिति मजबूज करने के लिए उसने निम्नलिखित कदम उठाए :

- स्थानीय **जमींदारों** और स्वायत्त सरदारों के विद्रोहों को दबाना;
- **मदद-ए माश** प्राप्तकर्ताओं की शक्ति और अधिकारों में कमी करना;
- राजस्व वसूली को नियमित करना; तथा
- कुछ स्थानीय **जमींदारों** के साथ समझौता।

स्थानीय पदाधिकारियों को नियुक्त करते समय उसने केवल उनकी व्यक्तिगत वफादारी को ध्यान में रखा। जैसे ही उसने सम्राट की पूर्व अनुमति के बिना अपने दामाद सफदर जंग को उप-गवर्नर नियुक्त किया वैसे ही उसका उद्देश्य स्पष्ट हो गया।

सआदत खाँ के बाद सफदर जंग ने उसके पथ का अनुगमन किया ताकि प्रांतीय प्रशासन संभालने के लिए उसे सम्राट की तरफ न देखना पड़े। यहां तक कि दिल्ली को भेजा जाने वाला राजस्व भी अनियमित हो गया। अभी भी मुगल सम्राट के प्रति समर्पण का भाव मौजूद था पर 1739 और 1764 के बीच वस्तुत: अवध एक स्वायत्त राज्य के रूप में उभरकर सामने आया। सफदर जंग ने अपना नियंत्रण गंगा के मैदानी इलाकों तक बढ़ा लिया और रोहतास और चुनार के किलों पर नियंत्रण के साथ-साथ इलाहाबाद की **सूबेदारी** भी हासिल कर ली। केंद्रीय **दीवान** का पद समाप्त कर दिया गया। उसके उत्तराधिकारी शुजाउद्दौला ने भी अवध में स्वायत्त राजनैतिक व्यवस्था का आधार मजबूत करने का प्रयत्न किया। स्वायत्त राज्य की स्थापना के क्रम में एक उल्लेखनीय घटना यह घटी कि अवध के शासक के प्रति निष्ठा रखने वाले लोग समृद्ध हुए, जबकि मुगल सम्राट के प्रति निष्ठा रखने वाले लोगों की स्थिति खराब रही।

MAADHYAM IAS

36.3.2 बंगाल

बंगाल में मुर्शीद कुली खाँ ने स्वायत्तता की प्रक्रिया शुरू की। उसे पहले **दीवान** नियुक्त किया गया पर बाद में राजस्व प्रशासन में उसकी सफलता और औरंगजेब की मृत्यु के बाद फैली अनिश्चितता के कारण उसे बंगाल की **सूबेदारी** प्राप्त हो गई। मुर्शीद कुली खां ने **दीवान** और **नाजिम** का पद मिलाकर एक कर दिया। उसने सबसे पहले राजस्व प्रशासन पर ध्यान दिया और इसे सुधारने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए :

- छोटे बिचौलिए **जमींदारों** का खात्मा;
- विद्रोही **जमींदारों** और **जागीरदारों** का उड़ीसा के सीमांत प्रांतों में निष्कासन;
- राजस्व वसूल करने और भुगतान करने का उत्तरदायित्व ग्रहण करने वाले बड़े **जमींदारों** को प्रोत्साहन; और
- **खालिसा** भूमि का विस्तार।

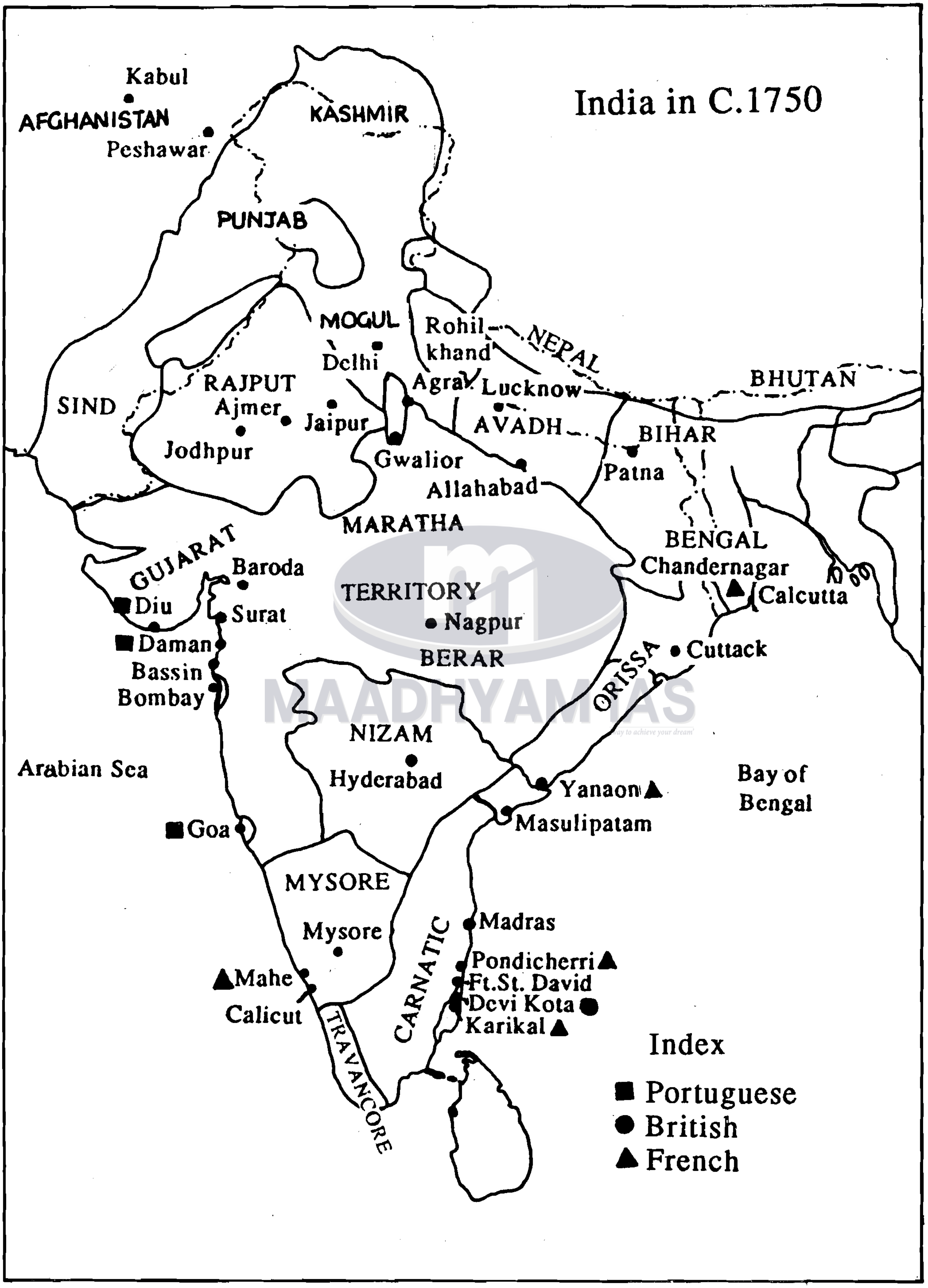
India in C.1750
Kabul
AFGHANISTAN
Peshawar
KASHMIR
PUNJAB
MOGUL
Delhi
Rohil khand
NEPAL
BHUTAN
SIND
RAJPUT
Ajmer
Jaipur
Jodhpur
Agra
Lucknow
AVADH
BIHAR
Patna
Gwalior
Allahabad
MARATHA
TERRITORY
GUJARAT
Baroda
Diu
Surat
Daman
Bassin
Bombay
Nagpur
BERAR
BENGAL
Chandernagar
Calcutta
Cuttack
ORISSA
NIZAM
Hyderabad
Arabian Sea
Bay of Bengal
Yanaon
Masulipatam
Goa
MYSORE
Mysore
Madras
CARNATIC
Pondicherri
Ft.St. David
Devi Kota
Karikal
Mahe
Calicut
TRAVANCORE
Index
Portuguese
British
French

अपने इन कार्यों से मुर्शीद कुली ने इन **जमींदारों** को प्रांत में एक शक्तिशाली राजनैतिक शक्ति के रूप में उभरने का मौका दिया। इसी प्रकार धनी और व्यापारी वर्ग को नवाब से प्रोत्साहन मिला और स्थानीय राजनीति में उन्होंने अपनी पहचान स्थापित कर ली। ये सभी गतिविधियां मुर्शीद कुली खां द्वारा बंगाल में अपना प्रभुत्व स्थापित करने की कुछ अभिव्यक्तियाँ थी। उसने अपने नाती सरफराज को अपना उत्तराधिकारी भी मनोनीत कर दिया। इस प्रकार उसने बंगाल में वंशगत शासन की परम्परा की शुरुआत कर दी। सरफराज को उसके पिता शुजाउद्दीन मौहम्मद खां ने पदच्युत कर दिया। शुजाउद्दीन ने मुर्शीद कुली द्वारा विकसित व्यवस्था का ही पालन किया और स्थानीय शक्ति समूहों के साथ व्यक्तिगत निष्ठा के संबंध बनाने का प्रयत्न किया। दिल्ली से उसका संबंध नजराना भेजने तक ही सीमित रह गया। दूसरे शासक अलीवर्दी खां ने सरफराज खां को मारकर गद्दी हथिया ली। अलीवर्दी के शासनकाल में स्वायत्तता और बढ़ी। मुगल शासक की परवाह न करते हुए वह प्रांतीय स्तर पर महत्वपूर्ण नियुक्तियां करने लगा। उसने अपने विश्वस्त व्यक्तियों को पटना, कटक और ढाका का उपनवाब नियुक्त किया। उसने राजस्व प्रशासन में बड़ी संख्या में हिंदुओं को नियुक्त किया और एक मजबूत सैन्य शक्ति का निर्माण किया। दिल्ली को भेजा जाने वाला नजराना भी अनियमित हो गया। अलीवर्दी के समय तक बंगाल, बिहार और उड़ीसा को मिलाकर एक प्रशासनिक व्यवस्था कायम हुई जिसने दिल्ली दरबार से अपना संबंध कम कर लिया और इस प्रकार पूर्वी भारत में एक स्वतंत्र राज्य का उदय हुआ।

36.3.3 हैदराबाद

अवध और बंगाल की तरह हैदराबाद में भी मुगल साम्राज्य की केंद्रीय सत्ता के कमजोर पड़ते ही दक्खन के **सूबेदार** को स्वायत्त राज्य स्थापित करने का आधार प्राप्त हो गया। निजाम उल मुल्क ने मुगलों द्वारा नियुक्त पदाधिकारियों को हटाकर और अपने आदमियों को नियुक्त कर हैदराबाद पर नियंत्रण स्थापित किया। उसने संधि और युद्ध करने तथा मनसब और उपाधियां देने का अधिकार प्राप्त कर लिया। अब मुगल सत्ता के नाम पर मात्र प्रतीकात्मक खुतबा पढ़ा जाता था। इस काल के दौरान राजस्व व्यवस्था में सुधार लाया गया, **जमींदारों** को दबाया गया और हिंदुओं के प्रति सहिष्णुता का भाव अपनाया गया। हैदराबाद में जमीन से जुड़े बिचौलियों को प्रोत्साहित किया गया और उन्होंने राज्य की राजनीति में प्रमुख भूमिका अदा की। राजनैतिक संतुलन स्थापित करने में बैंकरों, ऋणदाताओं और सैनिक अधिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी क्योंकि वे ही अनिवार्य वित्तीय और सैनिक सेवाएँ प्रदान करते थे। इस प्रकार निजामउलमुल्क के शासनकाल में हैदराबाद एक स्वतंत्र राज्य के रूप में विकसित हुआ और सम्राट के साथ नाममात्र का संबंध रह गया। उसके उत्तराधिकारियों को मराठों और यूरोपीय कम्पनियों से कड़ा संघर्ष करना पड़ा और वे ज्यादा दिन तक अपनी स्वायत्तता कायम न रख सके।

MAADHYAM IAS

36.4 नये राज्य

क्षेत्रीय राज्यों की दूसरी श्रेणी में ऐसे नए राज्य शामिल हैं जिन्होंने मुगल सत्ता का विरोध कर अपने को स्थापित किया।

36.4.1 मराठा

इस काल में उभरने वाले प्रांतीय राज्यों में मराठा राज्य का स्थान प्रमुख है। मराठों का उदय एक तरफ मुगल केंद्रीकरण के विरुद्ध क्षेत्रीय प्रतिक्रिया का परिणाम था तो दूसरी ओर यह विशेष वर्गों और जातियों की उच्च वर्गों में अपने उच्चस्थ बढ़ोतरी की इच्छा का परिणाम। मराठों के केन्द्रीय क्षेत्र पर कभी भी मुगलों का पूर्ण नियंत्रण स्थापित नहीं हो सका। पेशवा बाला जी विश्वनाथ के समय पेशवा का पद बहुत शक्तिशाली हो गया और मराठा राज्य को प्रमुख विस्तारवादी राज्य का दर्जा प्राप्त हो गया। बाला जी विश्वनाथ से लेकर बालाजी राव के शासनकाल तक मराठा शक्ति अपने उत्कर्ष पर पहुंच गयी और मराठा उत्तर, दक्षिण, पूर्व और मध्य भारत चारों ओर फैल गए। पानीपत की तीसरी लड़ाई में 1761 ई. में अफगानों ने मराठों को हरा दिया। इससे मराठा शक्ति को गहरा धक्का पहुंचा और उनका विजय अभियान रुक गया। प्रशासनिक दृष्टि से पूरा क्षेत्र नियंत्रित और गैर-नियंत्रित इलाकों में बंटा था।

गैर-नियंत्रित इलाकों में **जमींदारों** और सरदारों को प्रशासन चलाने की छूट मिली हुई थी पर उन्हें पेशवा को नियमित रूप से नजराना पेश करना होता था। नियंत्रित इलाकों पर मराठों का प्रत्यक्ष नियंत्रण था। इन इलाकों में भू-राजस्व के मूल्याकंन, प्रबंधन और वसूली व्यवस्था का विकास किया गया। नई व्यवस्था में **वतन** व्यवस्था सर्वप्रमुख थी। **वतनदार** का भूमि पर वंशगत अधिकार होता था और यह अधिकार किसी एक व्यक्ति के पास नहीं बल्कि पूरे कुटुम्ब के पास होता था (विस्तार के लिए इकाई 19 पढ़िए)। मराठों ने मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के कुछ हिस्सों को ग्रहण किया। उनका मुख्य ध्यान अधिशेष की प्राप्ति पर केंद्रित होता था। सुपरिभाषित प्रांतीय सत्ता के अभाव में वे अपने प्रभाव को सुदृढ़ करने में असफल रहे।

36.4.2 पंजाब

पंजाब का विकास अन्य क्षेत्रों से अलग ढंग पर हुआ। लाहौर के गवर्नर जकरिया खाँ ने पंजाब में स्वतंत्र राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना का प्रयत्न किया। पर सिखों के स्वतंत्र राजनैतिक सत्ता के लिए संघर्ष के कारण वह असफल रहा। सिख आंदोलन की शुरुआत गुरूनानक ने की थी। आरंभ में यह धार्मिक विश्वासों में सुधार और सिख समुदाय में बंधुत्व की भावना को मजबूत करने तक सीमित था, पर 18वीं शताब्दी के दौरान यह राजनैतिक आंदोलन में बदल गया। सिखों ने अपने को छोटे और तीव्रगामी जत्थों में संगठित किया और मुगल साम्राज्य के लिए गंभीर चुनौती पैदा कर दी। विदेशी आक्रमण (ईरानी और अफगान), मराठा आक्रमण और प्रांतीय प्रशासन के आंतरिक तनावों के कारण पंजाब की हालत काफी अनिश्चित हो गई और इससे सिखों को अपना आधार मजबूत करने की छूट मिली। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विभिन्न **सिख** समुदायों ने कई स्थानीय सरदारों के नेतृत्व में अपने को 12 बड़े संघों या **मिस्लों** में पुनर्गठित किया। 19वीं शताब्दी के आरंभ में रंजीत सिंह के नेतृत्व में एक स्वायत्त सिख राज्य की स्थापना की प्रक्रिया पूरी हुई।

36.4.3 जाट राज्य

जाट कृषक जाति के थे और दिल्ली तथा आगरा क्षेत्र के निवासी थे। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुगल साम्राज्य को कई कृषि आधारित वर्गों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा था, उनमें जाटों का आंदोलन महत्वपूर्ण था। समकालीन प्रवृत्ति का अनुगमन करते हुए जाटों ने भी अपने स्वतंत्र क्षेत्र या राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया। चूड़ामन और बदन सिंह ने इसमें पहल की पर सूरजमल ने 1756 और 1763 के बीच भरतपुर में जाट राज्य की स्थापना कर इसे मजबूती प्रदान की। यह राज्य पूर्व में गंगा, दक्षिण में चम्बल, उत्तर में दिल्ली और पश्चिम में आगरा तक फैला हुआ था। राज्य की प्रकृति सामंती थी और प्रशासनिक तथा राजस्व मामलों पर **जमींदारों** का पूर्ण नियंत्रण था। सूरजमल की मृत्यु के बाद यह राज्य ज्यादा दिन तक टिक नहीं पाया।

MADHYAM IAS
way to achieve your dream

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित का मिलान कीजिए :

i)	सआदत खाँ	(1)	बंगाल
ii)	जकरिया खाँ	(2)	हैदराबाद
iii)	मुर्शीद कुली खाँ	(3)	भरतपुर
iv)	सूरजमल	(4)	अवध
v)	निजाम उल मुल्क	(5)	पंजाब

2) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए :

जत्था ....

मिस्ल ....

वतनदार ....

36.5 स्वतंत्र राज्य

राज्यों की तीसरी कोटि में स्वतंत्र राज्यों का स्थान आता है। मूलत: इन राज्यों का उदय केंद्रीय सत्ता के कमजोर होने और क्षेत्रीय राज्यों पर इनकी पकड़ ढ़ीली होने के कारण हुआ।

36.5.1 मैसूर

मैसूर राज्य हैदराबाद के दक्षिण में अवस्थित था। हैदराबाद की तरह मैसूर मुगलों के सीधे नियंत्रण में नहीं था। मैसूर पहले विजयनगर साम्राज्य का अधीनस्थ राज्य था, बाद में वोडियार राजवंश ने यहां स्वायत्त राज्य की स्थापना की। 18वीं शताब्दी के दौरान हैदरअली और टीपू सुल्तान ने वोडयार शासकों को पदच्युत कर राज्य की स्वायत्तता को मजबूत किया। आरंभ में मैसूर पर एक तरफ मराठों का खतरा मंडरा रहा था और दूसरी तरफ हैदराबाद और कर्नाटक की तरफ से संकट थे, अंग्रेज भी मौके की तलाश में बैठे हुए थे। मैसूर सेना के कनिष्ठ पदाधिकारी के रूप में अपना जीवन शुरू करके हैदरअली इसका कुशल सेनानायक बन गया। उसने आधुनिक सेना के महत्व को ठीक से पहचाना और यूरोपीय सेना के ढंग पर मैसूर की सेना का आधुनिकीकरण किया। फ्रांसीसियों की सहायता से उसने सेना में संगठनात्मक अनुशासन स्थापित करने की कोशिश की। 1761 ई. तक उसने मैसूर राज्य के वास्तविक सत्ताधारी, मंत्री ननराज को पदच्युत कर दिया। उसने मैसूर की सीमा में विस्तार किया और मराठों, हैदराबाद और अंग्रेजों की दुश्मनी मोल ली। 1769 ई. में ब्रिटिश सेना ने हैदर को पराजित कर दिया। पर संघर्ष जारी रहा। 1782 ई. में उसकी मृत्यु के बाद 18वीं शताब्दी के अंत तक टीपू सुल्तान ने अपने पिता के संघर्ष को जारी रखा।

36.5.2 राजपूत राज्य

राजपूत शासकों ने भी अपनी स्वतंत्र राजनैतिक सत्ता स्थापित करने की कोशिश की। पड़ौसियों का राज्य हड़पकर उन्होंने अपने राज्य का विस्तार किया। मेवाड़, मारवाड़ और आमेर, जैसे राजपूत राज्यों ने मुगल साम्राज्य के खिलाफ गठबंधन कर लिया। पर राजपूतों की आपसी लड़ाई के कारण उनकी शक्ति कमजोर हुई। राजपूत राजाओं में जोधपुर के अजीत सिंह और जयपुर के जयसिंह सर्वप्रमुख हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

36.5.3 केरल

18वीं शताब्दी के आरंभ में केरल स्थानीय सरदारों और राजाओं के अधीन छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। पर 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह सब केरल, कोचीन, ट्रावणकोर और कालिकट जैसे महत्वपूर्ण राज्यों में समाहित हो गए। हैदरअली के अधीन मैसूर के विस्तार के कारण केरल मुश्किल परिस्थिति में पड़ गया। हैदरअली ने वस्तुत: मालाबार और कालिकट को अपने राज्य में मिला लिया। हैदरअली के आक्रमण से ट्रावणकोर बचा रहा। यह एक महत्वपूर्ण राज्य था। इसके राजा मार्तण्ड वर्मा ने ट्रावणकोर राज्य की सीमा कन्याकुमारी से कोचीन तक फैला दी। उसने पश्चिम के ढंग पर सेना को संगठित करने का प्रयास किया और राज्य के विकास के लिए कई प्रकार के प्रशासनिक कदम उठाए।

36.6 क्षेत्रीय शक्तियों की प्रकृति

विभिन्न क्षेत्रों में स्वायत्त राजनैतिक व्यवस्था का अलग-अलग ढंग से विकास हुआ। कुछ इलाकों में मुगल गवर्नरों ने अपने नियंत्रण क्षेत्र में स्वायत्त सत्ता की स्थापना की (जैसे बंगाल, अवध और हैदराबाद)। मराठा, सिख और जाट राज्यों की स्थापना मुगल साम्राज्य की सत्ता के विरुद्ध संघर्ष का नतीजा थी। मैसूर, राजपूताना और केरल पहले से ही अर्द्ध-स्वतंत्र थे। इन राज्यों का विकास जैसे भी हुआ हो, इन सबने अपनी अलग प्रशासनिक व्यवस्था कायम करने का प्रयत्न किया। उदाहरण के लिए हैदराबाद और मैसूर दोनों दक्षिण में स्थित थे, पर हैदराबाद सीधे मुगलों के नियंत्रण में था और मैसूर पर वोडियार

शासकों का नियंत्रण था। दोनों राज्यों में स्वायत्त प्रशासनिक व्यवस्था का विकास हुआ पर उनकी कार्यपद्धति अलग थी। मैसूर में सेना के संगठन को मजबूत करने पर बल दिया गया और स्थानीय सरदारों के नियंत्रण और शक्ति को दबाकर राज्य की वित्तीय स्थिति सुधारने की कोशिश की गई। पर हैदराबाद में स्थानीय सरदारों को नहीं छेड़ा गया। सेना के संगठन और राज्य के लिए राजस्व वसूल करने के तरीकों में भी अंतर था। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रीय शक्तियों ने भी अपने संस्थागत ढांचे खड़े किए और प्रशासन चलाने के लिए कई स्थानीय संस्थाओं का उपयोग किया। इन विभिन्नताओं के बावजूद 18वीं शताब्दी के दौरान क्षेत्रीय शक्तियों की कार्यपद्धति में कुछ समान विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

प्रांतों में उभरनेवाली स्वतंत्र राजनैतिक व्यवस्था ने मुगल सत्ता से अपना संबंध बनाए रखा। हालांकि मुगल सम्राट का प्रांतीय प्रशासन पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया था। पर अभी यह प्रांतीय राज्यों के लिए छत्रछाया के रूप में कार्य कर रहा था। नव उदित क्षेत्रीय शक्तियों ने उसके इस महत्व को स्वीकार किया। यहां तक कि मराठों और सिखों के विद्रोही सरदारों ने भी कभी-कभी मुगल सम्राट को सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार किया। निस्संदेह प्रत्येक राज्य ने अपनी प्रशासनिक व्यवस्था और सेना को अपनी जरूरत के अनुसार पुनर्व्यवस्थित किया, पर इन राज्यों ने मुगल प्रशासनिक व्यवस्था को ही ग्रहण किया। बंगाल, अवध और हैदराबाद में मुगल गवर्नरों द्वारा स्वतंत्र सत्ता कायम की गयी थी। अत: यहां स्वाभाविक रूप से मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का पालन किया गया। यहां तक कि मराठा राज्यों ने भी प्रशासन में मुगल पद्धति ही अपनाई। हालांकि इस संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि कई मुगल संस्थायें तो जारी रहीं परंतु मुगल राजनैतिक व्यवस्था का अंत हो गया। 18वीं शताब्दी में विकसित राजनैतिक व्यवस्था अपनी प्रकृति में क्षेत्रीय थी। इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता है जिससे यह कहा जा सके कि इन क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्थाओं की मूलभूत विशेषताएँ मुगलों से भिन्न थीं।

18वीं शताब्दी में उभरी क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्था ने जमींदारों, व्यापारियों, स्थानीय कुलीनों और सरदारों, जैसे विभिन्न स्थानीय समूहों के साथ मिलकर कार्य किया। 18वीं शताब्दी में केन्द्रीय सत्ता कमजोर पड़ने और मुगल राजकोष के खाली हो जाने पर व्यापारियों ने क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्था के उदय और कार्य संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने कुलीनों और शासकों को आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान की और इस प्रकार प्रशासन में उनका स्थान महत्वपूर्ण हो गया। उदाहरण के लिए बनारस के अग्रवाल बैंकर राजस्व मामलों पर नियंत्रण रखते थे। इसी प्रकार बंगाल में जगत सेठ घराने ने सत्ता की राजनीति में निर्णायक भूमिका निभाई। केन्द्रीय सत्ता के अभाव में व्यापारियों के समान जमींदार और स्थानीय सरदार अपने क्षेत्र की जनता के संरक्षक के रूप में उभरे। अपने अपने नियंत्रण क्षेत्र में जमींदार राजस्व और न्यायिक दोनों प्रशासन देखते थे। आम आदमी इन जमींदारों की कृपा पर निर्भर था। स्वाभाविक रूप में इस नव निर्मित क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्था में इन जमींदारों को जबरदस्त स्थानीय आधार प्राप्त था। अपनी शक्ति को बनाये रखने के लिए ये प्रांतीय शासक इन कतिपय स्थानीय हितों का ध्यान रखते थे। कुछ अपवाद भी मौजूद थे। उदाहरण के लिए मैसूर के शासक स्थानीय सरदारों को महत्व नहीं देते थे और अपनी मजबूत सेना और राजस्व पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर उन्होंने इन्हें पूर्णत: दरकिनार कर दिया। पर आमतौर पर 18वीं शताब्दी के दौरान क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्था के प्रशासन में इन स्थानीय समुदायों की निर्णायक भूमिका रही है। इसे क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण कमजोरी के रूप में देखा जा सकता है। इससे पता चलता है कि प्रांतीय शासक सुदृढ़ वित्तीय, प्रशासनिक और सैन्य संगठन की स्थापना नहीं कर पाए थे। अत: उन्हें स्थानीय समुदायों के सहयोग और सहायता पर निर्भर रहना पड़ता था। यह क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्था के प्रशासन की सबसे बड़ी कमजोरी थी और इसी कारण यहाँ स्थाई राजैनतिक व्यवस्था कायम न हो सकी। इसके अलावा ये क्षेत्रीय राज्य हमेशा अपने पड़ौसी राज्यों से लड़ते रहते थे। खासकर मराठों और दक्षिणी राज्यों के बीच अपने राज्यों की सीमाओं के विस्तार के लिए होड़ लगी रहती थी। इससे क्षेत्रीय शक्तियों के बीच तनाव पैदा हुआ और अंतत: इनमें से कोई किसी पर वर्चस्व स्थापित न कर सका। क्षेत्रीय शक्तियों के बीच एकता न रहने से बाहरी शक्तियों को भारत में पैर जमाने का मौका मिल गया।

MAADHYAM IAS

बोध प्रश्न 2

1) 18वीं शताब्दी के आरंभ में स्वायत्त राज्यों के उदय की पद्धति का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

2) 18वीं शताब्दी के आरंभ में क्षेत्रीय राजनीति की प्रकृति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

....

....

....

....

....

36.7 सारांश

इस इकाई में अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में क्षेत्रीय शक्तियों के उदय पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रक्रिया को समझने के लिए पहले हमने मुगल साम्राज्य के पतन से उत्पन्न स्थिति पर विचार किया। इसके बाद उत्तराधिकारी राज्यों, नये राज्यों और स्वतंत्र राज्यों के अधीन क्षेत्रीय राज्यों की तीन श्रेणियों पर विचार किया गया। इन राज्यों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की पर वे मुगल सत्ता से पूर्णत: अपना संबंध विच्छेद न कर सके। अत: ये क्षेत्रीय राज्य अखिल भारतीय स्तर पर एक ऐसी नई राजनैतिक व्यवस्था का निर्माण न कर सके जो मुगल व्यवस्था का विकल्प बन सके। यूरोपीय शक्तियों ने इस कमजोरी का फायदा उठाकर भारत में अपने पैर जमा लिए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

36.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) 4, ii) 5, iii) 1, iv) 3, v) 2.
2) देखिए उपभाग 36.4.1, 36.4.2

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 36.2, 36.3, 36.4, 36.5 बताइए कि क्षेत्रीय राजनैतिक शक्तियों का उदय एक समान नहीं हुआ। कुछ उत्तराधिकारी राज्य थे, और कुछ बिल्कुल स्वतंत्र रूप में उदित हुए।
2) भाग 36.6 पढ़िए। क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं पर विचार कीजिए और यह बताइए कि यह केन्द्र की प्रकृति से किस हद तक मिलती थी।

इकाई 37 आर्थिक विकास की संभावनाएँ : अवलोकन

यह इस पाठ्यक्रम (ई.एच.आई.-04) की अंतिम इकाई है। अब तक आप 16-18वीं शताब्दी के मध्यकालीन भारत के कई पक्षों से परिचित हो चुके हैं। यहाँ हम पिछले खंडों में चर्चित विषयों को दुहराने नहीं जा रहे हैं। वस्तुत: हम यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने जा रहे हैं। यहाँ हमने इस इकाई को बनी बनाई संरचना में नहीं ढाला है ताकि आप एक लय में पूरे तर्क को समझ सकें। यहाँ हम मध्यकालीन भारत की आर्थिक संरचना के प्रश्न पर विचार करने जा रहे हैं।

एक सवाल अक्सर पूछा जाता है कि ब्रिटिश आक्रमण के पूर्व भारत में औद्योगीकरण और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास क्यों नहीं हुआ? दूसरे शब्दों में, क्या यूरोप की तर्ज पर मुगलकालीन भारत में पूंजीवाद के विकास की संभावनाएँ थीं? इस प्रश्न पर डब्ल्यू. एच. मोरलैंड (**इंडिया ऐट द डेथ ऑफ अकबर, लंदन, 1929, फ्रॉम अकबर टू औरंगजेब, लंदन, 1923**) और ब्रज नारायण (**इंडियन एकोनॉमिक लाइफ, पास्ट एंड प्रेजेंट, लाहौर, 1929**) ने सरसरी तौर पर विचार किया है। हालांकि 1960 के बाद से मौरिस डी. मौरिस (1963), टोरू मतसुइ, विपिन चंद्र और तपन राय चौधरी (1968) ने लगातार इस प्रश्न पर बहस की है। पर वे मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी के भारत की बात करते हैं। हमारे लिए मुगल अर्थव्यवस्था की स्थिति पर अपने को केन्द्रित करना अधिक उपयोगी होगा। इस संदर्भ में इरफान हबीब ने काम किया है और मुगलकालीन भारत की अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी विकास की संभावनाओं का पता लगाया है (**अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक इतिहास कांग्रेस, ब्लूमिंग्टन, 1968 में प्रस्तुत और एन्क्वायरी, न्यू सीरीज, वर्ष-111, अंक 3, 1971, पृ. 1-56 में प्रकाशित**)। इसके बाद ए. आई. शि[illegible]क ने अपनी कृति **"इंडिया : एकोनॉमिक डेवलपमेंट इन द 16-18 सैंचुरी, मास्को, 1971"** में इस पर विचार किया है। (आप **द इंडियन हिस्टॉरिकल रिव्यू, वर्ष 1, अंक-2, सितंबर 1974, पृ. 240-46 में प्रकाशित ए. जान कैसर का "द रोल ऑफ ब्रोकर्स इन मेडिवल इंडिया"** का भी अध्ययन कर सकते हैं)।

यहाँ हम इस तथ्य की खोज करने के लिए प्रयत्नशील नहीं हैं कि मुगलकाल में पूंजीवादी ढांचा क्यों नही खड़ा हो सका, हमारा मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि मुगल अर्थव्यवस्था से पूंजीवादी विकास के संकेत मिलते रहे थे या नहीं ? महत्वपूर्ण बात यह है कि 17वीं शताब्दी में यूरोप पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से नहीं गुजर रहा था। उदाहरण के लिए इंग्लैंड में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जाकर पूंजीवाद का उदय आरंभ होने लगा था। इस समय इंग्लैंड में मुख्य रूप से व्यापारिक पूंजीवाद का विकास हो रहा था, औद्योगिक पूंजीवाद का नहीं।

सबसे पहले यह स्पष्ट कर लें कि पूंजीवाद शब्द का तात्पर्य क्या है ? इसके बाद ही हम मुगल अर्थव्यवस्था में इसकी उपस्थिति या अनुपस्थिति की बात कर सकते हैं। आइए, आरंभिक पूंजीवाद की महत्वपूर्ण विशेषताओं को सूचीबद्ध किया जाए :

i) उत्पादन-प्रक्रिया पर पूंजी का नियंत्रण;

ii) मुद्रा या बाजार संबंध;

iii) "वस्तुओं की अतिशय जमावट" (कार्ल मार्क्स); और

iv) उत्पादन तकनीक में नयापन।

इस बात में कोई शक नहीं है कि मध्यकालीन भारत में व्यापारियों के पास काफी पूंजी थी। यूरोपीय दस्तावेजों में उनके धन का आकलन किया गया है। बताया जाता है कि 1663 ई. में सूरत के कुछ व्यापारियों के पास 50-60 लाख रुपये से ज्यादा धन राशि थी। सूरत के मुल्ला अब्दुल गफूर के पास 80 लाख रुपये से भी ज्यादा की सम्पदा थी। उसके पास बीस जहाज थे (प्रत्येक का वजन 300 और 800 टन के बीच था)। अंग्रेज कारखानेदार बताते हैं कि उसका व्यापारिक लेन-देन कम्पनी से किसी भी प्रकार कम नहीं था। सूरत के अन्य व्यापारी के पास कहा जाता है कि 80 लाख रुपये से ज्यादा की सम्पदा थी। मैनरिक (1630) आगरा के व्यापारियों की अपार सम्पत्ति देखकर चकित था, उसने कुछ व्यापारियों के घर में "अनाज की तरह भरा" हुआ धन देखा था।

इसके अलावा व्यापारी अपने धन को व्यापार में लगाते रहते थे। गैर-व्यापारिक समुदायों का धन भी व्यापारिक गतिविधियों में लगाया जाता था। मुगल सम्राट, राजघराने की महिलाएं, राजकुमार और कुलीन अपना धन व्यापार में लगाते थे और कइयों के पास अपने जहाज भी थे। यह सही है कि उनका निवेश व्यापारियों के मुकाबले कम था पर महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी भागीदारी से "मुद्रा बाजार" का आकार अपने ढंग से बढ़ा।

मुगलकालीन भारत में ऋण और बैंकिंग व्यवस्था पूर्ण विकसित थी। आप सर्राफ की भूमिका और कार्यों के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। सर्राफ एक प्रकार का बैंकर था जो मुद्रा का लेन-देन करता था और हुंडी नामक विनिमय पत्र जारी करता था। (खंड 6 इकाई 24)। सर्राफ व्यापारियों की हुंडियों पर कमीशन लेता था और इस प्रकार वाणिज्य के लिए उपलब्ध मुद्रा में विस्तार होता था। इसके अलावा मार्ग (थल और जल दोनों) में माल के बीमे से सम्बद्ध वित्तीय प्रथा भी काफी विकसित थी। इसके अतिरिक्त ऋण दाता संस्थाएँ भी विकसित थीं जो सूद पर और बंधक रखकर ऋण दिया करती थीं। इस प्रकार 17वीं और 18वीं शताब्दियों के दौरान आधारभूत वित्तीय और आर्थिक संस्थाएँ स्पष्ट रूप में मौजूद थीं। ये संस्थाएँ मध्यकालीन अर्थव्यवस्था को पूंजीवाद के मार्ग पर ले जा सकती थीं।

इसके अलावा वस्तुओं मसलन कपड़ा, शोरा, नील आदि का उत्पादन बड़े पैमाने पर हो रहा था। दलाली की संस्था के माध्यम से भारतीय और विदेशी व्यापारियों तक माल आसानी से पहुँच जाया करता था। मध्यकालीन तकनीकी सीमाओं को देखते हुए यातायात के साधन भी अच्छे खासे विकसित थे। उत्पादन प्रक्रिया पर पूंजी के वर्चस्व और नियंत्रण से ही सही अर्थों में पूंजीवादी संबंधों का विकास हो सकता है। औद्योगिक और व्यापारिक पूंजी में यही मुख्य अंतर है। व्यापारिक पूंजी का उत्पादन से सीधा संबंध नहीं होता है। दूसरे शब्दों में व्यापारियों का उत्पादन पर नियंत्रण नहीं होता था। इसमें उत्पादन का कार्य स्वतंत्र रूप से कारीगर स्वयं करता था। वह स्वयं कच्चा माल खरीदता था, अपने घर पर काम करता था (घरेलू उत्पादन व्यवस्था), माल तैयार करता था और उस माल को बाजार में जाकर बेचता था। पूंजीवाद में ये सारी विशेषताएँ समाप्त हो जाती हैं और स्वतंत्र कारीगर एक मजदूर बनकर रह जाता है। धीरे-धीरे औद्योगिक पूंजी का उत्पादन के साधनों पर अधिकार हो गया और इसने सम्पूर्ण व्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। पर व्यापारिक से औद्योगिक पूंजीवाद में परिवर्तन अचानक एकाएक नहीं हो गया। व्यापारिक पूंजीवाद में ही एक संक्रमण काल आया। इसे "पुटिंग आउट" व्यवस्था कहा जाता है (आपने इसके बारे में खंड 6 की इकाई 22 में पढ़ा होगा)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस संक्रमण काल के चरित्र तथा विस्तार को समझना आवश्यक है। इसके अंतर्गत धीरे-धीरे उत्पादन तथा कारीगरों पर पूंजी का नियंत्रण हो गया। भारत में 17वीं शताब्दी से भी पहले से सीमित पैमाने पर इस प्रकार की व्यवस्था मौजूद थी जिसे ददनी के नाम से जाना जाता था। इसी समय दलालों का जन्म हुआ क्योंकि उन्हीं के माध्यम से व्यापारी प्राथमिक उत्पादकर्ता तक अग्रिम राशि पहुंचाते थे। आइए पहले "पुटिंग आउट व्यवस्था" की आर्थिक संरचना निर्धारित कर लें। 17वीं शताब्दी के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था माल बेचने वाले (उत्पादन कर्ताओं) के पक्ष में थी। मांग की कोई कमी नहीं थी और बाजार में खरीददारों के बीच प्रतियोगिता लगी रहती थी। अत: व्यापारियों की दृष्टि में, खासकर जो विदेशी व्यापार में लगे हुए थे, "पुटिंग आउट व्यवस्था" के जरिए वे अपने प्रतिद्वंद्वियों को दूर रखते थे और अपनी मनपसंद चीज जरूरत के हिसाब से प्राप्त करते थे, दर पहले से तय होती थी। दूसरी तरफ प्राथमिक उत्पादक को अग्रिम राशि मिल जाती थी। उसे काफी मात्रा में उत्पादन करना होता था और वह इस राशि का उपयोग कच्चा माल खरीदने के लिए करता था। (दूसरे चरण में कच्चे माल की भी आपूर्ति की गई)। इस प्रकार "पुटिंग आउट व्यवस्था" के कारण आर्थिक दृष्टि से व्यापारियों और कारीगरों दोनों का भला हुआ। इस संदर्भ में, उत्पादन प्रक्रिया में "पुटिंग आउट व्यवस्था" के जरिए व्यापारिक पूंजी के प्रवेश को समझने के लिए यह जानना जरूरी होगा कि क्या कारीगरों को व्यापारी अग्रिम राशि या कच्चा माल (या दोनों) और उत्पादन के औजार भी उपलब्ध कराते थे। कपड़ा निर्माण उद्योग में इस बात के काफी प्रमाण हैं कि नकद रूप में अग्रिम राशि दी जाती थी। अत: यह कहा जा सकता है कि उस समय अग्रिम के रूप में नगद देने का प्रावधान था। पर कच्चा माल देने की प्रथा कम थी और उत्पादन के औजार उपलब्ध कराने की प्रथा लगभग नहीं के बराबर थी।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि बुनकरों को कच्चा माल (धागा) देने की प्रथा इस कारण चल पड़ी क्योंकि यह समझा जाता था कि नकदी देने पर भी बुनकर अक्सर घटिया कोटि का माल लगाया करते

थे। ऐसा लगता है कि जब बुनकर स्वयं धागा या कच्चा रेशम खरीदता था तो उसे कुछ फायदा हो जाता था और व्यापारीगण उसकी गुणवत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाया करते थे। अत: यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कारीगर व्यापारियों द्वारा कच्चे माल की आपूर्ति पसंद नहीं करते होंगे क्योंकि इससे उनका मुनाफा घट जाता होगा। इसी प्रवृत्ति के कारण इस प्रथा यानि कच्चे माल की आपूर्ति संबंधी कोई सटीक आंकड़ा नहीं प्राप्त होता है।

इस प्रकार "पुटिंग आउट व्यवस्था" यहां नगदी अग्रिम देने तक सीमित थी। 17वीं शताब्दी के अंतिम दशकों के बंगाल पर टिप्पणी करते हुए स्ट्रेनशम मास्टर कहते हैं :

> ढाका में मलमल, सूती वस्त्र आदि के लिए अग्रिम राशि देने का सही मौसम जनवरी का महीना होता है। इनकी आपूर्ति के लिए दलाल या मध्यस्थ चार महीने का समय लेते हैं और छह महीने के भीतर बुनकरों से अपरिष्कृत भूरे रंग का कपड़ा लाते हैं।
>
> ये दलाल पैसा लेकर पैकारों को देते हैं जो इसे एक शहर से दूसरे शहर ले जाकर कारीगरों तक पहुंचाता है . . . ।

यहां मास्टर धागे की आपूर्ति की बिल्कुल चर्चा नहीं करता है। अन्य स्रोत भी हमें इसी निष्कर्ष पर पहुंचाते हैं। हमें कच्चे रेशम की आपूर्ति के संबंध में इंग्लिश फैक्टरी के दस्तावेजों में एक संदर्भ का उल्लेख मिलता है। यहां यह कारण बताया गया है कि गरीबी के कारण बुनकर अपेक्षित गुणवत्ता का रेशम नहीं खरीद पाते थे।

गुजरात में यह प्रथा (अग्रिम नगद राशि देना) बंगाल से ज्यादा व्यापक पैमाने पर फैली हुई थी। पर यहां भी यह प्रथा विकसित "पुटिंग आउट व्यवस्था" में विकसित न हो सकी। यहां तक कि शिचेरोव भी जो पूंजीवादी संबंधों के विकास का प्रबल समर्थक है, कारीगर को दिए जाने वाले कच्चे माल यानि धागे की आपूर्ति से संबंधित आंकड़े की कमी से स्तब्ध हो जाता है। वह स्वयं बताता है कि ग्रामीण इलाकों में "कच्चे माल की आपूर्ति की समस्या कभी नहीं रही क्योंकि कपास की खेती बृहत् पैमाने पर और कुछ इलाकों मे हर जगह होती थी, यह भारत की खास आर्थिक भौगोलिक विशेषता थी, कपास सभी खेतों में उपजाया जा सकता था या नजदीक के बाजार से खरीदा जा सकता था।" आगे पुन: वे बताते हैं कि "कताई का काम केवल बुनकर ही अपने घरों में नहीं करते थे बल्कि आम किसान भी यह काम करता था, इस प्रकार बुनकरों को लगातार और बड़ी मात्रा में कच्चा माल मिलता रहता था।" अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 17वीं शताब्दी के दौरान "पुटिंग आउट व्यवस्था" के तहत अग्रिम नगद राशि देने का प्रावधान था।

MADHYAM IAS

अब हम उत्पादन के संबंधों में बदलाव लाने में नगद अग्रिम की प्रथा की भूमिका की चर्चा कर सकते हैं। व्यापारी कारीगरों को अग्रिम राशि दिया करते थे पर वे उत्पादन प्रक्रिया में कोई खास हस्तक्षेप नहीं करते थे और इससे उत्पादन के संबंधों में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ। यह सही है कि एक अर्थ में उत्पादनकर्ता व्यापारी से अपने वादे से "बंधा" होता था, उसे खास समय में, नियत दर पर, खास मात्रा में और व्यापारी के आदेश के मुताबिक उत्पादन करना पड़ता था। पर कारीगर अभी भी उत्पादन के औजारों का मालिक था और कच्चा माल भी स्वयं उपलब्ध करता था। अंतर इतना ही हुआ कि वह अपना उत्पाद अग्रिम राशि देने वाले को ही बेच सकता था। व्यापारियों से इस प्रकार का आदेश प्राप्त करने में उसकी कोई विशेष आर्थिक मजबूरी (गरीबी के अलावा) नहीं थी। दूसरी तरफ व्यापारियों ने भी इसे स्वीकार कराने के लिए अन्य हथकंडे नहीं अपनाये। वस्तुत: व्यापारियों को अपने हित में कारीगरों से अग्रिम राशि लेने का अनुरोध करना पड़ता था। उदाहरण स्वरूप 1665 में अंग्रेज कारखानेदार सूरत से लिखता है :

डच आदि सूती कपड़ा खरीद लिया करते थे। अत: हमें कारीगरों से प्रार्थना करनी पड़ती थी और हम बुनकरों को जो कुछ भी बन पड़ता था देते थे। हम उन्हें 8-10 महीने पहले राशि दे दिया करते थे। वे हमसे बस इसी कारण जुड़े हुए थे।

यहां बुनकरों द्वारा अग्रिम राशि स्वीकार किए जाने पर व्यापारी अपने को उपकृत मानते थे। पर यह "बंधन" भी बहुत मजबूत नहीं था। 1647 में थाट्टा स्थित अंग्रेज कारखानेदार ने सूरत फैक्ट्री को लिखा :

इसके अलावा ये बुनकर अपने वादे के पक्के नहीं हैं, हम उन्हें अग्रिम राशि देते हैं, यह राशि हम वर्ष के आरंभ में देते हैं जब उन्हें पैसे की बहुत जरूरत होती है पर जैसे ही उनके पास कोई फेरी वाला कपड़ा व्यापारी या पैकार खरीददारी के लिए पहुंच जाता था वे हमारा साथ छोड़कर उनके लिए काम करने लगते थे, वह अग्रिम राशि भी नहीं देते थे, हमारे कपड़े बुनने में उन्हें अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है और उनके कपड़े आसानी से बुन लिए जाते हैं।

1622 ई. में वे भड़ौंच से फिर लिखते हैं : "हमें अग्रिम राशि काफी पहले देनी होती थी पर तैयार माल का मिलना बुनकर और दलाल की मर्जी पर आधारित होता था"।

ऊपर कही गई बात असंगत है क्योंकि 17वीं शताब्दी के दौरान व्यापारी और उत्पादक के बीच के संबंध पर विचार करते हुए शिचेरोव "आर्थिक बंधन", "आर्थिक निर्भरता", "शारीरिक प्रताड़ना" और "व्यापारी एकाधिकार" की बात करता है। अब कारीगर स्वतंत्र उत्पादक न रहकर "ठेके का उत्पादक" बन गया था। यह सही है कि वह अपने उत्पाद का मालिक नहीं रहा, पर अभी भी उसे कच्चे माल और उत्पादन के औजार के स्वामित्व से अलग नहीं किया जा सकता था।

कारीगर जब तक घरेलू उत्पादन प्रक्रिया से जुड़े थे तब तक उत्पादन के सही अर्थ में पूंजीवादी संबंध विकसित नहीं हो सकते थे। अग्रिम राशि लेकर उत्पादन करने की प्रथा में भी उत्पादक का औजार और कच्चे माल पर अधिकार बना हुआ था। इससे पता चलता है कि श्रम पर व्यापारिक पूंजी की पकड़ बहुत कमजोर थी। जब तक इनसे कारीगरों का अलगाव नहीं होता और ये एक साथ एक छत के नीचे बैठकर किसी एक वरिष्ठ पूंजीपति के निर्देश पर बड़ी संख्या में उत्पादन नहीं करते तब तक पूंजीवादी प्रवृत्ति का विकास नहीं होता। पर इस स्थिति में पुटिंग आउट व्यवस्था तथा दलाली व्यवस्था अंततः लुप्त हो सकती है और इसका स्थान उत्पादन के नए संबंध लेते हैं।

दूसरी तरफ हमें 17वीं शताब्दी में अधिशेष मूल्य अर्जित करने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है जिसमें मजदूरी कम करके ज्यादा काम लेकर कुछ श्रम समय की बचत हो सके। अगर व्यापारी गैर-आर्थिक हथकंडे अपनाते तो घरेलू व्यवस्था के अंतर्गत कार्य कर रहे इन कारीगरों का इतने लंबे समय तक उत्पादन के साधनों पर अधिकार न रहता। औजारों को बनाना या खरीदना आसान और सस्ता था और किसी प्रकार के तकनीकी परिवर्तन न होने से वे न मंहगे हुए और न कारीगरों की पहुंच के बाहर थे और इस प्रकार इन पर उनका अधिकार बना रहा। यहां मार्क्स के कथन का उल्लेख प्रासंगिक होगा :

> इस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था के विकास की प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों पर मजदूर का अधिकार छीन लिया जाता है, इस प्रक्रिया द्वारा एक तरफ जीवनयापन के सामाजिक साधन बदल जाते हैं और उत्पादन में पूंजी का वर्चस्व हो जाता है, दूसरी तरफ उत्पादक मजदूर बन जाता है।

यहां हम यह नहीं कहना चाहते हैं कि व्यापारिक पूंजी का उत्पादन के संगठन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। "पुटिंग आउट व्यवस्था" ने उत्पादक के "स्वतंत्र" अस्तित्व को "ठेके के मजदूर" में बदल दिया। यह उसे बाजार से भी काट देता है। यह प्रक्रिया स्वयं इस व्यवस्था में अंतर्निहित होती है। इसके अलावा बंगाल और गुजरात में विदेशी व्यापारियों द्वारा स्थापित कुछ कारखानों का हवाला मिलता है तथा कपड़ों की रंगाई और शोरे आदि के शोधन के लिए स्थापित इकाइयों का वर्णन 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मिलता है। यह परिवर्तन की दशा में एक कदम था। पर ये परिवर्तन इतने आधारभूत और व्यापक नहीं थे कि सही अर्थों में पूंजीवादी संबंधों का विकास कर सके। असल में ये सभी परिवर्तन उत्पादन की मौजूदा व्यवस्था के तहत ही हो रहे थे जहां उत्पादन की प्रक्रिया पर व्यापारिक पूंजी की पकड़ काफी कमजोर थी। इस प्रकार यह कहना गलत होगा कि भारत में 17वीं शताब्दी के दौरान व्यापारिक पूंजी ने "उत्पादन के परम्परागत सूत्रों" को तोड़ दिया था। यह बहुत छोटे भाग तक सीमित था और इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

यह सवाल अपने आप में महत्वपूर्ण है कि "पुटिंग आउट व्यवस्था" के जरिए क्रियाशील होने के बावजूद व्यापारिक पूंजी श्रम पर नियंत्रण क्यों नहीं स्थापित कर सकी ? इरफान हबीब ने परीक्षण करके बताया है कि व्यापारिक पूंजी के विकास का अभाव इस असफलता का कारण नहीं है। हम पहले ही बता चुके हैं

कि यहां मांग का अभाव नहीं था और बाजार प्रतियोगी खरीददारों से भरा पड़ा था और उत्पादक लाभ की स्थिति में थे, कारीगरों पर कोई विशेष आर्थिक दबाव नहीं था और न ही उन्हें गैर आर्थिक तरीकों से प्रताड़ित किया जा रहा था और वह अपनी मर्जी से सौदा करता था। इसके अलावा "पुटिंग आउट व्यवस्था" के तहत कार्य कर रहे "ठेके के मजदूरों" के अलावा कारीगर स्वतंत्र रूप से भी उत्पादन कर रहे थे। ऐसे कारीगरों की संख्या ज्यादा नहीं तो बराबर अवश्य थी। इसके अलावा कारीगर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चले जाते थे और अपना पेशा भी बदल लेते थे अत: गरीबी के दबाव में वे किसी "आर्थिक बंधन" या "निर्भरता" के जाल में नहीं फंसते थे। शिचेरोव ने कारीगरों की गरीबी पर बहुत जोर डाला है। अंतत: जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि दलाल और व्यापारी के हित हमेशा एक से नहीं होते। दलाल येन केन प्रकारेण गलत ढंग से धन कमाने की युक्ति लगाता रहता था, उत्पादक और व्यापारी दोनों इसके शिकार बनते थे। अत: हमेशा व्यापारिक पूंजी के हित में काम नहीं करता था, कभी-कभी वह कारीगरों से भी गठबंधन किया करता था।

ये सभी तथ्य वस्तुत: मार्क्स के दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं :

> व्यापारिक पूंजी के रूप में पूंजी के स्वतंत्र और प्रबल विकास में उत्पादन पूंजी के अधीन नहीं होता है, और इस प्रकार उत्पादन के नवीन तरीके के आधार पर विकसित हो रही पूंजी से उसका अस्तित्व अलग होता है। इस प्रकार व्यापारिक पूंजी का स्वतंत्र विकास समाज के आम आर्थिक विकास से मेल नहीं खाता है।

संभवत: उत्पादन प्रक्रिया से सबसे नजदीक से जुड़े कुछ व्यापारियों, खासकर "दलाल ठेकेदारों" (मध्यस्थ व्यापारियों) के लिए उत्पादक उद्यम का विकास करना कठिन काम नहीं होता। मुगल सम्राटों, कुलीनों और कुछ यूरोपीय कम्पनियों के कारखाने इसके उदाहरण हैं। पर तकनीकी में आधारभूत बदलाव के अभाव में केवल उत्पादन के संगठन में परिवर्तन से कोई मूलभूत परिवर्तन न हो सका।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

इरफान हबीब : **मुगलकालीन भारत की कृषि व्यवस्था (1556-1707)**

इरफान हबीब : **मध्यकालीन भारत (भाग 1)**

जी. डी. शर्मा : **राजपूत राज्य व्यवस्था**

अतहर अली : **मुगल अमीर वर्ग**

सतीश चन्द्र : **पार्टी एण्ड पॉलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट (1707-1740)** (हिन्दी-अनुवाद)

मुज़फ्फर आलम : **द क्राइसिस ऑफ एम्पायर इन मुगल नार्थ इंडिया : अवध एण्ड पंजाब (1707-1748)**

चेतन सिंह : **पंजाब इन द 17th सैंचुरी**

रिचर्ड बारनेट : **नॉर्थ इंडिया बिटवीन द एम्पायर्स**

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'